

पण्डितकुलकौस्तुभ  
श्रीहरिशङ्कर ओमकारजी शास्त्री  
शताब्दी स्मृति ग्रन्थ

**कौस्तुभकिरणावली**

**प्रकाशक :**

पण्डितकुलकौस्तुभ श्रीहरिशङ्कर ओमकारजी शास्त्री  
शताब्दी महात्सव समिति

२, जयश्री सोसायटी,

कारेलीबाग,

वडोदरा-३९० ०१८.

Tel. : (0265) 2460833

**सौजन्य :**

श्री वल्लभ विद्यापीठ एवं श्री विठ्ठलेश प्रभुचरण

आश्रम एवं होस्पिटल ट्रस्ट

वैभव को.ओ. सोसायटी,

पूणे - बेंगलोर रोड,

कोल्हापुर - ४१६ ००८.

**मुद्रक :**

यमुना आर्ट प्रिन्टर्स

१२, लक्ष्मी एस्टेट,

जलाराम मार्ग,

कारेलीबाग,

वडोदरा-३९० ०१८.

**आमुख**

**लेखक : पू.गो.श्रीचन्द्रगोपालजी महाराजश्री-बडौदा.**

“विद्वद्भिः सर्वथा श्राव्यं ते हि सन्मार्गरक्षकाः” श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणोंकी इस उक्तिको या आदेशको बहुत दीर्घकाल के पश्चात् भी कार्यान्वित के रूपमें सम्प्रदायमें परिणत होती हुई देखकर मैं अपने चित्तमें अतिशय प्रसन्नता अनुभव कर रहा हूँ। विद्वज्जनों द्वारा-आचार्यों द्वारा पण्डितकुलकौस्तुभ की उपाधि प्राप्त करनेका सम्मान प्राप्त गो.वा.माननीय शास्त्रीजी श्रीहरिशंकरजी शुक्ल ने अपने जीवनकालमें महान् परिश्रम करके जीवनके अन्तिम क्षणों तक वाणी व लेखनी द्वारा इस सम्प्रदायके सिद्धान्तोंकी सेवारूपमें जो गुरुपूजा (श्रीवल्लभाचार्यजी की सेवा) की है वह चिरस्मरणीय है। ऐसे उद्भट विद्वान द्वारा ग्रन्थों पर लिखी गई टीकाएं एवं ग्रन्थोंके भाषान्तरण जिज्ञासुजनों के लिये परम उपकारक सिद्ध हो सकते हैं। बडौदा के एक विद्वान कहा करते थे कि यह नाम से सुबोधिनी है वर्ना वास्तवमें बड़ी दुर्बोधिनी है। बात भी सत्य है, श्रीआचार्यचरणकी अति गंभीर व अतिशय गूढ़ ऐसी सूत्रात्मक वाणी को हृदयंगम करना सरल नहीं है। यदि श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण, श्रीगोकुलनाथजी आदि-श्रीहरिरायचरण प्रभृति महानुभाव एवं श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज इस वाणी का अपने ग्रन्थों द्वारा रहस्यप्रकाश नहीं करते तो आज श्रीआचार्यचरणका ग्रन्थस्थ-वाक्यस्थ आशय क्या है यह ज्ञात कर लेना हमारे लिये शक्य नहीं होता।

यद्यपि उपर्युक्त साहित्य से विद्वान जिज्ञासुजनों के लिये तो सुविधा हो जाती है, किन्तु जो ऐसे उत्तम विद्वान नहीं हैं फिर भी जिनमें विषयग्रहण शक्ति है, शास्त्रीय विषयोंमें रुचि है, क्लिष्ट विषयोंके समझने सुननेमें अप्रीति नहीं है व सम्प्रदाय के श्रीआचार्यके यथार्थ मर्मको जानने के लिये उत्सुक व प्रयत्नशील है ऐसे जिज्ञासुजनोंके लिये तो श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण-श्रीपुरुषोत्तमचरण आदि के ग्रन्थोंका समुचित आशय ग्रहण करना दुरूह ही बन जाता है। ऐसी स्थितिमें उन

लोगों को सुयोग्य विद्वानों द्वारा किये गये भाषान्तरण या ग्रन्थों पर लिखे गये विवेचन ही उनकी जिज्ञासापोषणमें उपयुक्त उपकारक सिद्ध हो सकते हैं।

विशेष करके आज जब कि अविद्वान अनधिकारी लोगों द्वारा बिना समझे ही आकर ग्रन्थों का विवेचन या भाषान्तरण लिखकर प्रकाशन किया जा रहा है जिसमें ग्रन्थकर्ता के आशय से कोसों दूर अपसिद्धान्त ही प्रस्तुत किया जा रहा है एवं इससे सिद्धान्त के नाम पर एक भ्रम सा फैलता है। ऐसी स्थितिमें महानुभावों के महामंगलकारी महान् आशयोंको अधिकारी जिज्ञासुजनों तक पहुँचाने के लिये अतिसिद्धान्तों को यथार्थ रूपमें प्रस्तुत करने वाला इन विद्वानों के परिश्रम से सिद्ध हुआ चाहिये ही जा सकता है।

महर्षि गो.वा.शास्त्रीजी श्रीहरिशंकरजी की शताब्दी के उपलक्ष्यमें उनके द्वारा विरचित साहित्य के प्रकाशनकी शृंखलामें संस्कृत भाषामें निर्मित साहित्य के अनन्तर गुजराती व देवनागरी (हिन्दी) में निर्मित साहित्य को इस प्रकाशन द्वारा सर्व जिज्ञासुजन लाभार्थ “पण्डितकुलकौस्तुभकिरणावली” नामसे प्रकाशित किया जा रहा है यह मेरी दृष्टिमें बहुत ही उत्तमविचारपूर्ण उत्तमोत्तम कार्य है। सम्प्रदाय की जीवनभर सेवा प्रदान करनेवाले सम्प्रदायके एक उद्भट विद्वान के प्रति इससे अधिक सुन्दर जीवनोत्तर श्रद्धांजलि और क्या हो सकती है।

इस संग्रहमें सर्व प्रथम श्रीशास्त्रीजी लिखित “पुष्टिमागीय सिद्धान्त शेखर” (गुजराती भाषामें) लेख पुस्तिका जो ५२ पृष्ठसे सम्पन्न है प्रकाशित है। इस लेखन के आरंभमें वैदूष्यपूर्ण वेद विषयक चर्चा की गई है। वेद भगवद्रूप होने से वेद अपौरुषेय है व ईश्वरवत् वेदका कालनिर्णय करना केवल बालसुलभ मूर्खताका ही प्रदर्शन करना है, इतना ही नहीं गलत युक्ति प्रयुक्तियों द्वारा वेदका काल ईसा पूर्व २००० जितना अर्वाचीन बताकर वे विदेशी विद्वान यह सिद्ध करना चाहते हैं कि पूर्वमें भारतमें अनार्य लोग रहते थे व आर्यों ने बाहर से भारतमें आकर अनार्योंको परास्त करके उन्होंने इस देशमें आर्यसंस्कृतिका प्रचलन किया। उसके बाद मुस्लिमोंने आक्रमण करके आर्यराजाओं को जीतकर मुस्लिम संस्कृतिको इस देशमें फैलाई, तदनन्तर योरप्यन लोगों ने मुस्लिमों से सत्ता छीन कर हस्तगत कर ली। इस प्रकार यह देश परापूर्वसे गुलाम ही बना रहा है अतः योरप्यनों से सत्ता

लेकर भी यह देश आर्यों का तो गुलाम ही बना रहेगा। जब कि सत्य यह है कि आर्य परापूर्वसे ही इस देशके निवासी हैं व यह भारत आर्यों का ही देश रहा है। विदेशों में जावा, सुमात्रा, इरान (मध्य एशिया) आदि स्थलों पर जो भारतीय स्मरण चिह्न प्राप्त होते हैं वे इस बात के सूचक नहीं हैं कि आर्य पूर्वमें मध्य एशियामें थे व वहाँ से भारत आये हैं, बरन् इससे तो यह जाहिर होता है कि भारत के आर्य ईसा से हजारों वर्ष पूर्वभी इतने विकसित थे कि उन्हें विश्वके दूर प्रदेशों का भी बराबर ज्ञान था व वहाँ आने-जाने के रूपमें वे बराबर सम्पर्क में थे एवं उस दौरान उन्होंने वहाँ वहाँ पर भी आर्य संस्कृतिको प्रचारित की थी। इस लेखनमें कई स्थलों पर विदेशी विद्वानों के मतों का भी उपन्यास करके भारत व भारतीय संस्कृति विषयक विदेशी विद्वानों की मान्यताओं में बहुत अधिक अनौचित्य रहा है इस बात को उन्होंने युक्तियों सह सप्रमाण सिद्ध किया है। इससे यह भी जाना जा सकता है कि श्रीशास्त्रीजी भारतीय शास्त्र उपरान्त विदेशी विद्वानों के मतों के भी सुपठित - सुपरिचित थे।

इसके पश्चात् अन्य नैयायिक आदि के वेद सम्बन्धमें प्रस्तुत विचारोंका उपन्यास करते हुए वेद विषयक श्रीवल्लभाचार्यजीका दृष्टिकोण वैदूष्यपूर्ण रीति से प्रस्तुत किया गया है। लेखक निर्भीकता से यह भी स्पष्ट शब्दोंमें लिखते हैं कि श्रीवल्लभाचार्यचरण वेद को नित्य, अपौरुषेय, स्वतः प्रमाण एवं भगवद्रूप मानते हैं, आपश्री के मतमें वेद भगवद्रूप होने से अर्थवादादि समेत प्रमाण है, वेदका व्याकरणादिमें जिस धातु और शब्दका जो अर्थ किया गया हो तदनुसार ही अर्थ करना चाहिये, वेद अलौकिक होने से उसमें लक्षणा नहीं की जा सकती, ऐसी वेदश्रद्धा अन्य कोई भी आचार्य में नहीं दीखती।

इसके उपरान्त व्याससूत्र और तत्प्रणेता, सूत्रोक्त साधन-फल, मायावादकी समीक्षा, जीव प्रतिबिम्ब नहीं है, जीव आभास नहीं है, अविद्या का सम्बन्ध एवं जीवकी अनादिताका खण्डन, “अविद्यावच्छिन्न चैतन्य जीव है” इस मतका खण्डन, जीवका अंशत्व एवं अणुत्व, जीव सर्वज्ञ क्यों नहीं? जीवमें संशयादि की प्रतीति कैसे होती है?, ज्ञानोत्पत्ति का स्वरूप, जीवाणुत्ववाद, ब्रह्मसम्बन्ध, भक्ति ही मुख्य साधन एवं फल है, प्रियत्व ही स्नेह है, भगवल्लीलाका नित्यत्व, गुण कर्म एवं नाम भी नित्य है, वेदमें लीलाका स्वरूप, लीला स्थलों की नित्यता,

लीला स्थान कहाँ है ? लीलास्थान एवं लीलाप्रविष्ट भक्त ब्रह्मात्मक है इत्यादि शीर्षकसे इस लेखनमें श्रीवल्लभ दृष्टिकोणसे कई तात्त्विक विषयों पर प्रकाश डाला गया है ।

इस तात्त्विकी विवेचनामें सिद्धान्त पक्षको बहुत ही सुदृढता से प्रस्तुत किया गया है एवं इस प्रस्तुतिमें भी वेद वेदाङ्गके प्रमाणों के उपरान्त सिद्धान्तस्थापनमें सामने आने वाले प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि तथा आधुनिक मतावलम्बी विद्वानों की आधुनिक विचारधारा के आधारवाली युक्तियाँ इन सब को सामने रखते हुए सबके निरसन पूर्वक सिद्धान्त पक्ष प्रस्तुत किया गया है । लेखनमें इस विशेषता पर भी ध्यानाकर्षण हुए बिना नहीं रहता कि स्वमतस्थापनमें जहाँ पर भी पूर्वपक्ष रखा गया है वहाँ वहाँ पर भी पूर्वपक्ष अच्छी तरह से विस्तार पूर्वक रखा गया है इतना ही नहीं पूर्वपक्ष की प्रस्तुतिमें भी पूरी इमानदारी बरती गई है, जब कि तत्त्वविचारजगतमें कई जगह पर ऐसाभी देखनेमें आया है कि स्वमत स्थापनमें जितनी न्यायिकता बरती गई है उतनी पूर्वपक्ष प्रस्तुति में ईमानदारी नहीं बरती गई है ।

इस लेखनमें श्रीशास्त्रीजीने श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज विरचित प्रस्थानरत्नाकर ग्रन्थ पर टीका लिखनेका मनोरथ प्रकट किया है । यदि वे अपने जीवनकालमें साकृत कर पाये हों तो वह टीका साम्प्रदायिक साहित्यमें अमूल्य निधि कही जायेगी ।

इसके अनन्तर द्वितीयक्रम पर पं. श्रीगोवर्धनजी शर्मा (श्रीगड्डुलालाजी) विरचित “सत्सिद्धान्तमार्तण्ड” का श्रीशास्त्रीजी द्वारा किया गया गुजरातीमें भाषान्तरण दिया गया है । भारतमार्तण्ड पं. श्रीगड्डुलालाजी श्रीवल्लभवंशजोंकी ही जाति के वेल्लनाडु ब्राह्मण थे व इस सम्प्रदाय के उत्तमकोटी के बहुमुखी प्रतिभाशाली प्रकाण्ड विद्वान् थे । वे वेदान्त तत्त्वज्ञान के उपरान्त ज्योतिष, धर्मशास्त्र, मीमांसा, व्याकरण आदिके भी उद्भट विद्वान् थे कि जो गो. श्रीपुरुषोत्तमजीकृत उत्सव प्रतान के कुछ विषयोंके उपर श्रीपुरुषोत्तमजी के तात्पर्य को स्पष्ट करने के लिये फुटकर लेख लिखे हैं उससे जाना जा सकता है ।

यह सत्सिद्धान्तमार्तण्ड ग्रन्थ भी उनकी बहुमुखी प्रतिभा का प्रदर्शक है । जयपुर नगर के तत्कालीन राजा रामसिंह के दरबारमें राज्याश्रय प्राप्त शैवमतावलम्बी

लक्ष्मणनाथ दण्डीने राज्याश्रयसे मदोन्मत्त होकर मलीनहृदयवश ६४ प्रश्न तैयार करके चारों मुख्य वैष्णवसम्प्रदायप्रवर्तकों को उत्तर के हेतुसे भेजे । इन प्रश्नों के श्रीवल्लभसम्प्रदाय मतानुसार ठोस उत्तर देने के लिये बम्बई के गो. श्रीजीवनलालजी महाराज की आज्ञा किये जाने पर उन प्रश्नों के उत्तर रूपमें यह ग्रन्थ पं. श्री गड्डुलालाजी द्वारा रचा गया है ।

यद्यपि कुल ६४ प्रश्न है किन्तु इनमें मुख्य आठ प्रश्न है एवं प्रत्येक प्रश्न के अन्तर्गत आठ-आठ प्रश्न है, ऐसे कुल ६४ की संख्या होती है । मुख्य आठ प्रश्न इस प्रकार है - (१) आपका सम्प्रदाय कौनसा है ? - उसमें, सम्प्रदाय शब्द का क्या अर्थ ? (२) (यह सम्प्रदाय) किस समयसे प्रवृत्त है ? (३) आपके (सम्प्रदायमें) उपदेश्य चारोंवर्ण हैं, तीन हैं या दो हैं ? (४) उपदेशमें रामकृष्णादि के मन्त्र समान है या उसमें भी न्यूनाधिकता है ? (५) आपका अत्यावश्यक कौन सा धर्म है ? (६) आपके मार्गमें तिलक किस प्रकार का है एवं वह क्यों किया जाता है । (७) सर्वशास्त्रसम्मत शिव-विष्णु का अभेद आपको सम्मत है या नहीं ? (८) आपका आह्निक किस प्रकार का है ? आठ प्रश्नोंमें से श्रीशास्त्रीजी द्वारा सात प्रश्नोंके उत्तर का ही भाषान्तरण उपलब्ध है, आठवें का श्रीशास्त्रीजी द्वारा भाषान्तरण किया गया था और आज अनुपलब्ध है या संयोगवश वे लिख नहीं पाये यह जानना आज शक्य नहीं है । फिर भी ऐसे बहुमूल्य ग्रन्थका गुर्जरमें भाषान्तरण होने से यह ग्रन्थ अनेक लोगों के लिये सरलता से ज्ञेय बन गया है । भाषान्तरणमें कई स्थलों पर नीचे छपी हुई श्रीशास्त्रीजी की टिप्पणी भी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है ।

तृतीय क्रममें “श्रीमद्भागवतनुं प्रामाण्य” नामक श्रीशास्त्रीजी लिखित लेख प्रकाशित है । यह ३२ पृष्ठमें गुर्जरभाषामें लिखा गया है । इसमें शास्त्र शब्द का अर्थ, पुराणोंका प्रामाण्य, पुराण लक्षण, पुराणों का कार्य एवं उनके हेतु, पुराणों की स्मरणिका, कल्प कितने ? पुराण पंचलक्षण या दशलक्षण इन शीर्षकों से लेखमें विविध पुराणों को लेकर पुराण विषयक चर्चा की गई है । इसमें भी जो लोग पुराणों को अमहत्त्वपूर्ण या अप्रमाण बताते हैं उनको प्रमाणों व तर्कों से बखूबी निरुत्तर किया गया है व पुराणों के कार्य व हेतु विषयक मैकडोनल, जेक्सन, विल्सन आदि अनेक विदेशी विद्वानों के बालिश अभिप्रायों को उनके ही वाक्य उद्धृत करके प्रस्तुत करते हुए सप्रमाण उनका खंडन किया गया है । तदनन्तर



श्रीमद् भागवत, श्रीमद् भागवतका श्रीकृष्ण स्वरूपत्व, श्रीमद्भागवतका भगवत्स्वरूप के साथ ऐक्य, श्रीमद्भागवत की महत्ता किस वजहसे है ? प्रामाण्य विचार, काल निर्णय इत्यादि शीर्षकों से श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के मतानुसार श्रीमद्भागवत संबंधी सविस्तृत विचार किया गया है। श्रीभागवत के काल निर्णय की विचारणामें भागवत किसी भी प्रकार से वैयाकरणी बोपदेवकृत नहीं है, भागवत की रचना श्रीशंकराचार्य व उनके परम गुरु श्रीगौडपादसे भी बहुत पूर्व हो चुकी थी यह बताने में उन्होंने श्रीशंकराचार्य व श्रीगौडपादके कितने ही वाक्य प्रस्तुत करते हुए विदेशी विद्वान मेगेस्थिनीस, जेक्सन, स्मिथ, प्लीनी, आल्बरोनी, कोलबुक आदि एवं भारतीय विद्वानों में भांडारकर, लोकमान्य तिलक आदि के वाक्यों को प्रस्तुत करते हुए इन महाशयों का अभिप्राय विचारपूर्ण नहीं है, उन सब विद्वानों ने विदेश की विचार भूमि पर बैठकर भारतदर्शन करने का दुःसाहस किया है जो कदापि शक्य नहीं है व सत्य उनके अभिप्रायों से हजारों योजन दूर है ऐसा तर्क-प्रमाण संगति से प्रतिपादन किया है। इस सम्बन्धमें पृष्ठ-१२३ की फूटनोट में कोई पुष्टिमार्गीय विद्वान कि जो महाप्रभु के मतसे विपरीत दिशामें विदेशी विद्वानों के अभिप्रायों की पंक्तिमें बैठकर कुछ लिखा होगा उस पर आलोचना करते हुए श्रीशास्त्रीजी निर्भीकता से स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि “श्रीवल्लभाधीश ही ऐसे लोगों से निज सिद्धान्त का रक्षण करें। अधुना तो अध्ययन-अध्यापन का जो अभाव प्रवर्तमान है एवं अग्रणी वैष्णवों तथा आचार्यवर्ग की तरफ से हो रही विद्वानों की अवहेलना ऐसे अपसिद्धान्तों के प्रचारमें कारणभूत है” गो.वा.श्रीशास्त्रीजी के इन वाक्योंमें उस समयकी वर्तमान परिस्थितिको लेकर एक श्रीवाल्लभ विद्वान के हृदय में कीतनी पीडा व आघात है यह प्रकट होता है। साथ ही इन वाक्यों का विषय आज कितना विस्तृत भयानक राक्षसी चेहरेमें उभर रहा है यह भी हम अनुभव कर सकते हैं। शायद यही वजह है कि आज सम्प्रदायमें आकर तो क्या साधारण ग्रन्थ का समुचित दर्शन करानेवाले विद्वानों की संख्या गणना की जाय तो अंगुलियों की बारह रेखाओं में से आधी भी ज्यादा कही जायेगी।

चतुर्थ तथा पांचवें क्रममें श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित तत्त्वार्थदीप निबन्ध के तीनों प्रकरण शास्त्रार्थ प्रकरण, सर्वनिर्णय प्रकरण, श्रीभागवतार्थ प्रकरण में से प्रथम के दो प्रकरणों पर अलगसे श्रीशास्त्रीजी द्वारा गुजराती भाषामें लिखे गये

लेख प्रकाशित है। ये दोनों लेख पूर्व में प्रकाशित सप्रकाश शास्त्रार्थ प्रकरण तथा सप्रकाश सर्वनिर्णयप्रकरण के आरंभमें प्रकाशित किये गये थे।

चाहे निबन्ध हो, चाहे अणुभाष्य हो, चाहे सुबोधिनी हो, चाहे पत्रावलम्ब हो या चाहे पूर्वमीमांसा भाष्य हो श्रीआचार्यचरण के या श्रीप्रभुचरणके या श्रीपुरुषोत्तमचरण के ग्रन्थ हों इन ग्रन्थों की पंक्तियों का यथार्थ अनुवाद-भाषान्तरण करने के लिये विद्वान की वह योग्यता अपेक्षित रहती है कि वह व्याकरण, न्याय वेदान्त, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद आदि के उपरांत मीमांसा का भी पंडित हो। क्योंकि इन महानुभावों की वाणीमें मीमांसा के कई न्याय-प्रमाण-उदाहरण आदि प्रस्तुत किये गये हैं। वैसे यही शैली श्रीव्यासचरण की भी देखी जाती है जैसे वेदान्तसूत्रमें वे तनुनप्त्र कर्म का उदाहरण भगवदनुग्रह के विषयमें देते हैं। अतः जो तनुनप्त्र क्या है यही ठीकसे नहीं जानता होगा तो यह उदाहरण किस प्रकार भगवदनुग्रहमें प्रयोजित है वह कैसे बता पायेगा। जब कि श्रीहरिशंकरजी शास्त्रीजी उस कोटीके विद्वान रहे हैं कि जिनमें पूर्वोल्लिखित योग्यता पूर्णरूपेण थी। अतः ऐसे विद्वान द्वारा निबन्ध का भाषान्तरण अपने आप ही प्रामाणिक बन जाता है। सर्व निर्णय में तो करीब २०० से अधिक कारिकाओं पर्यन्त एवं आगे भी इन विषयों की चर्चा की भरमार है।

निबन्धस्थ “पञ्चात्मकः स भगवान्” इस श्लोक के विवेचन में श्रुति वर्णित प्रभुके आकार का पञ्चात्मकत्व, द्विषडात्मकत्व, पञ्चद्वयी, शतसहस्रपरामितत्व को अलग से कोष्टक में देकर विषयको बहुत ही सरलतासे बताया है। इस भाषान्तरण की एक यह भी विशेषता है कि भाषान्तरण मात्र कारिकाओं का ही नहीं अपितु प्रकाश का भी भाषान्तरण किया गया है जिससे जिज्ञासु जनों के लिये यह बहुत ही उपयोगी बन गया है।

इसके अनन्तर षष्ठ क्रम पर “रास अने रसशास्त्र” विषय पर गुजराती भाषामें लिखा गया लेख प्रकाशित है कि जो पूर्व में तत्कालीन “पीयूष पत्रिका” में प्रकाशित हुआ था। लेखके आरंभमें “रस” की चर्चा करते हुए रस लोकोत्तर पदार्थ है एवं वह पदार्थ भगवान ही है यह सिद्धान्त स्थापित करके प्रथम अभिनव गुप्ताचार्य, मम्मभट्टाचार्य, भटनायक आदि प्राचीन विद्वानों एवं अर्वाचीन विद्वानों

के रस विषयक अभिप्रायों को प्रस्तुत करके नव रसों उपरान्त भक्तिरसकी भी चर्चा संक्षिप्तमें करके “रसानां समूहो रासः” की विस्तार से चर्चा की है। रासपंचाध्यायिस्थ रास विषयकी चर्चा करते हुए अन्तमें रासमें नवों रसों का कैसे समावेश हो जाता है यह बताया गया है।

इसके पश्चात् सातवें क्रम पर “श्रीमदाचार्यचरण की दृष्टिसे गीता का तात्पर्य” शीर्षक से गुजराती भाषामें लिखा गया एक लघुकाय लेख प्रकाशित है कि जो पूर्वमें “पीयूष पत्रिका” में प्रकाशित था। इसमें आरंभ में गीता के कृष्ण और क्राइस्ट एक है तथा गीता बायबल में वर्णित विषयों का ही अनुवाद है, कुछ पाश्चात्य विद्वानोंके इस मतका खंडन संक्षिप्तमें करके तदनन्तर जगत का सत्यत्व एवं चेतन जीवों का अंशत्व ही गीताकारको अभिप्रेत है उसकी सप्रमाण चर्चा करके तदनन्तर अन्तमें तत्त्वदीपिका एवं अमृततरङ्गिणी यह दो शुद्धाद्वैतानुसारिणी टीकाओंके आधार पर गीता के १८ अध्यायों का सार दिया गया है।

इसके पश्चात् आठवें अनुक्रम पर “श्रीगोपीगीतम्” नामक स्वतंत्र लघुकाय लेख प्रकाशित है जो पूर्वमें पुस्तिकाकार में प्रकाशित हो चुका है। यह लेख गोपीगीत सुबोधिनी का गुर्जरमें अनुवाद रूप है। यद्यपि गोपीगीतसुबोधिनी के कई अनुवाद दृष्टिगोचर हुए हैं किन्तु उनमें से कुछ तो इतनी शास्त्रीय भाषा प्रयोगवाले हैं कि जिसमें विभक्तिके प्रत्यय अक्षरों के अलावा संस्कृत शब्द ही प्रयोग होने से अनुवाद होकर भी अनुवाद स्वरूप बनते नहीं हैं, तो कुछ ऐसे भी देखे गये हैं कि भाषान्तरण या अनुवाद करते समय पंक्ति का जो हिस्सा उनके चित्तमें स्पष्ट नहीं होता हो वह हिस्सा बिना अनुवाद किये या बिना उल्लेख किये ही आगे बढ़ाया गया हो, तो कुछ अनुवाद इतने साधारण कक्षा के हैं कि उसमें गोपीगीत सुबोधिनी की भावगति ही दर्शन नहीं होती, तो कुछ ऐसे हैं कि जो सर्वथा अविद्वान द्वारा मनस्वीता से कुछ का कुछ अनुवाद के नाम पर होता है। यह सभी दोषों से यह लेखन अनूठा-निर्दुष्ट है। विद्वद् भोग्य है फिरभी सरल शब्दों में है व पंक्तिके अक्षर-अक्षर का भाषान्तरण भी है एवंच ऐसे विद्वान द्वारा होने से अपलाप की तो संभावना ही नहीं है।

इसके पश्चात् नवम अनुक्रम पर “श्रीमद् विठ्ठलेश्वर दीक्षित श्रीगुसांईजी”

शीर्षक से ४१ पृष्ठमें गुजराती भाषामें लिखा गया लेख प्रकाशित है। यह भी पूर्वमें पीयूष पत्रिकामें प्रकाशित हो चुका है। इसमें श्रीप्रभुचरण के विद्याध्ययन की सविस्तर चर्चा की गई है। श्रीप्रभुचरण का विद्याध्ययन अद्वैतसिद्धिकार मधुसूदनजी सरस्वती से या फिर उनके शिष्य माधवसरस्वती से किया था इस किंवदन्ती का इस लेखमें सप्रमाण खण्डन किया गया है इतना ही नहीं प.भ. श्रीदामोदरदासजी से श्रीप्रभुचरणने मार्गीय कतिपय ग्रन्थों का अध्ययन किया था व श्रीदामोदरदासजी से मार्ग रहस्य जाना जैसी चरित्र कथाएं हैं कि जो ८४ वैष्णवकी वार्ता आदि भाषा ग्रन्थोंमें वर्णित है उसे भी इस लेखमें बराबर सत्यपूर्ण नहीं है व कोई वैष्णवों द्वारा क्षेपक है ऐसा बताया गया है। वहाँ वे अपना अभिप्राय बंबई बडामन्दिर के नि.ली.पू.गो.श्रीगोकुलनाथजी महाराजश्री के वाक्य का उल्लेख करते हुए लिखते हैं “परंतु अत्यारे जे भाषाग्रन्थो प्रचलित छे, ते सुबोधिनीयादिवत् अक्षरशः सत्य ज छे, एम मानी शकाय नहीं. अनेक वंचक वैष्णवोए भाषासाहित्यमां फेरफार कर्यो छे, ए भाषाग्रन्थोना ज आधारे दामोदरदासजीनुं गुरुत्व स्थापन करवानो जे कुत्सित प्रयास कर्यो छे आनुं परिणाम दामोदरदासजी, पुरुषोत्तमदासजी, चाचा हरिवंशजी वगैरेने नाममंत्रनी दीक्षा आपवानो अधिकार हतो, तेओ क्षत्रिय होवा छतां नाममंत्र आपता हता. तो अत्यारे जेओ पोताने दामोदरदासजीना ज अमर अवतारो माने छे तेमने पण नाममंत्र के ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा आपवानो अधिकार छे ज, श्रीमदाचार्यचरणनो “मारा ज वंशजोने गुरु मानवा” एम आग्रह हतो नहीं. अमे पण गोस्वामी बालकोने दामोदरदासादिवत् सदुपदेश आपी शकीए छीए इत्यादि रीत्या (परिणाम) आवेलुं अनुभवाय छे.”

इस प्रकार श्रीशास्त्रीजी भाषा साहित्यमें कई क्षेपकों की संभावना विचारते हैं व यह कार्य स्वयं को दामोदरदासजी के अमर अवतार समझनेवाले तथाकथित प.भ. लोगोंका ही हो सकता है व आज भी वे सम्प्रदायमें कई प्रकारके अपसिद्धान्तरूप अनाचार फैला रहे हैं। शास्त्रीजी की इन दोनों बातोंमें मैं अपनी पूर्ण सहमति प्रकट करता हूँ।

वंशविस्तार के शीर्षक से श्रीप्रभुचरण के सातों लालजी व उनके भी पुत्रों के नाम जन्म संवत् के साथ दिये हैं जिसमें उनके जन्मसंवत्, मास, तिथि सहित

अधुना यह गृह कहाँ है उनके सेव्यस्वरूपका नाम, बहुजी का नाम व प्राकट्य स्थल को भी बताया गया है। इसमें षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी का अधुना गृह कहाँ (किस गाँव या किस शहरमें) है वहाँ पर अन्यो की तरह कुछ भी उल्लेख नहीं करके मात्र षष्ठ इतना ही लिखा गया है एवं सेव्य स्वरूप की जगह पर भी नाम खाली छोड़ दिया गया है। जब कि वे नीचे फूटनोटमें लिखते हैं कि (षष्ठ गृह विषय में बडोदरा, काशी, सुरत तीनों को बताकर फिर षष्ठगृह सेव्य स्वरूपमें श्रीकल्याणरायजी, श्रीमुकुन्दरायजी, श्रीबालकृष्णजी तीनों के नाम बताकरके वे स्वयं का मन्तव्य लिखते हैं कि) “अमो तो बडोदरास्थ श्रीवल्लभलालजीो षष्ठ गृहाधीश तरीके स्वीकारीए छीए” ऐसा लिख कर वे आगे लिखते हैं “जे गृहना जे मालिक होय तेना सेव्य स्वरूपने ज षष्ठस्वरूपत्वे स्वीकारवा जोइए. वंशविभेद गृहविभेदे छे. स्वरूपभेद नथी अन्यथा श्रीमथुरेशजी सौथी प्रथम पद्मनाभजीना (८४ वैष्णव में से एक) माथे बिराज्या तेथी पद्मनाभजीनुं गृह कहेवानो प्रसंग प्राप्त थशे.” श्रीशास्त्रीजी की इस बातसे मैं अपनी सहमति नहीं बना पाया हूँ। गृहविभेदसे वंशविभेद को स्वीकारने पर षष्ठत्व श्रीयदुनाथजी से प्राप्त है, तब फिर श्रीयदुनाथजीको वटवारेमें जो स्वरूप दिया गया उस स्वरूपको षष्ठनिधिमें नहीं स्वीकारना ऐसा क्यों? साथ ही उसके बाद भी जब जब भी गृहविभेद हुआ हो तब तब भी वंशविभेद स्वीकारना ही चाहिये और यदि ज्येष्ठभ्राता का गृह ही पिता की परंपरा का मुख्य गृह है ऐसा मान लेने पर फिर श्रीगिरिधरजी के ही गृह को मुख्य गृह कहना चाहिये व अन्य छःके गृहों को फिर उपगृह के रूपमें स्वीकारना चाहिये, जब कि सम्प्रदाय परम्परामें सातों की समानता ही देखी गई है। अतः इस विषय को जल्दबाजी नहीं करके हर एक पहलूओं का तलस्पर्श करते हुए जो भी वास्तविकता सामने आती हो वही स्वीकारना चाहिये ऐसा मेरा मानना है।

इसके अनन्तर श्रीप्रभुचरण का गुजरातप्रवास, गढानिवास, मथुरानिवास, श्रीगोकुलगाम बसाना व वहाँ सपरिवार निवास आदि नित्यलीलाप्रवेश तक का चरित्र ऐतिह्य लेखन प्रकार से लिखा गया है।

इसके पश्चात् दसवें अनुक्रम पर महानुभाव श्रीहरिरायचरण प्रणीत

“ब्रह्मवाद” ग्रन्थका श्रीशास्त्रीजी कृत देवनागरी में अनुवाद दिया गया है। श्रीआचार्यचरण तथा श्रीप्रभुचरण के बाद श्रीवल्लभवंशजों का भी साहित्य इस सम्प्रदायमें सागरोपम है। इतना विपुल साहित्य का निर्माण अन्य किसी वंश द्वारा देखा-सुना गया नहीं है। इसके भी अन्तर्गत इनमें सर्वाधिक एवं मूल्यवान साहित्य आज जिनका उपलब्ध है ऐसे दो महानुभाव है जिनमें से एक श्रीहरिरायचरण है व दूसरे श्रीपुरुषोत्तमचरण है। श्रीहरिरायचरण के साहित्यने तो श्रीआचार्यचरण-श्रीप्रभुचरण व पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों से संशोधन करके इस सम्प्रदायको संविधानबद्ध किया है। इसके पूर्व श्रीगोपीनाथचरण (श्रीआचार्यचरण के ज्येष्ठ लालजी) द्वारा भी इसके लिये प्रयत्न किया गया था। श्रीहरिरायचरणभी बहुमुखीप्रतिभासम्पन्न वरिष्ठ विद्वान श्रीवल्लभवंशज आचार्य थे। अन्यो से श्रीहरिरायचरण में यह विशेषता देखी जा सकती है कि उनका संस्कृत उपरान्त ब्रजभाषामें भी पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। उनके द्वारा निर्मित विविध छन्दोबद्ध माधुर्यपूर्ण संस्कृत श्लोक उपलब्ध है तो उसी तरह से विविध राग-ताल बद्ध ब्रजभाषामें भावपूर्ण पद भी उपलब्ध है।

श्रीआचार्यचरण तथा श्रीप्रभुचरण के पश्चात् आचार्यवंशजों द्वारा निर्मित साहित्यमें यदि वादग्रन्थ कोई उपलब्ध है तो मेरी जानकारी एवं स्मरणमें श्रीहरिरायचरण निर्मित “ब्रह्मवाद” ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के उपर नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी महाराजकी विद्वत्तापूर्ण टीका भी रची गई है जो प्रकाशित है। इस अनुवाद में ग्रन्थमें से प्रकरणों की अलग से छटनी करके “भक्तिमार्ग क्यों है?” “भक्ति का रसत्व” “ब्रह्मवाद का स्वरूप” “कार्यकारण रूपसे अद्वैत” “जगत्-ब्रह्म का अभेद” “प्रपञ्च में हेयत्व बुद्धि” “साध्य-साधन भेद” “लीला की नित्यता” “क्या बन्ध-मोक्ष भी नित्य है?” इत्यादि शीर्षक देकर विषय सुबोध-सुगम्य बनाया गया है। नीचे फूटनोट भी बहुत ही उपयोगी है एवं अनुवाद की भाषाभी शक्य उतनी सरल रखकर भी तात्त्विक गरिमाको यथास्वरूप रखा गया है।

इसके पश्चात् ग्यारहवें अनुक्रम पर गो.श्रीरघुनाथात्मज गो.श्रीब्रजनाथजी विरचित “ब्रह्मवाद” ग्रन्थ का श्रीशास्त्रीजी कृत देवनागरी में अनुवाद दिया गया है। यह एक छोटा-सा लघुग्रन्थ है किन्तु शुद्धाद्वैतवेदान्त -सिद्धान्त को वादशैली से बहुत सुन्दरतासे व स्पष्टतया प्रस्तुत किया गया है। शुद्धाद्वैतवेदान्त के जिज्ञासुओं

के लिये यह दोनों ही “ब्रह्मवाद” ग्रन्थ उपकारक है। इन दोनों ब्रह्मवादों का आधुनिकमें मास्टर डिग्री के शुद्धाद्वैत वेदान्त के अभ्यासक्रममें व संस्कृत के शुद्धाद्वैतवेदान्त के शास्त्री या आचार्य के अभ्यासक्रममें पाठ्यपुस्तकके रूपमें समावेश करना चाहिये। इस अनुवादमें भी पूर्ववत् ही प्रकरण अलग करके शीर्षक दिये गये हैं। इस ब्रह्मवाद ग्रन्थमें प्रायः करके ब्रह्म विषयक-ब्रह्म के धर्म विषयक चर्चा की गई है।

इसके पश्चात् बारहवें अनुक्रम पर श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित “प्रहस्तवाद वेदान्ततात्पर्यनिरूपण” ग्रन्थका श्रीशास्त्रीजी कृत देवनागरी भाषामें अनुवाद दिया गया है। प्रहस्तवाद ग्रन्थ के वादरूप तीन प्रकरण है (१) वेदान्ततात्पर्य निरूपण, (२) भ्रान्तशैवनिराकरण, (३) मूलस्वरूपनिर्धार। इनमेंसे प्रथम का ही मात्र अनुवाद इसमें है। बाकी के दो का अनुवाद नहीं किया गया है या आज अनुपलब्ध है यह ज्ञात नहीं हो सका है। फिरभी इसमें जो अधूरे अनुवाद है जैसा कि भागवतार्थ निबन्ध का अनुवाद शेष है। यद्यपि भागवतार्थ का अनुवाद गुजराती में उपलब्ध है किन्तु उसमें मात्र कारिकार्थ लिया गया है, प्रकाश का नहीं है। यद्यपि इसमें भी शास्त्रार्थ एवं सर्वनिर्णय का अनुवाद नहीं है, मात्र लेखरूप ही है। फिर भी लेखसे भी श्रीआचार्यचरण के ग्रन्थस्थ तात्पर्यको ग्रहण करने में काफ़ि अनुकूलता बन जाती है, इन सबका आज विद्यमान विद्वानों द्वारा प्रामाणिक अनुवाद तैयार करवा के उसका प्रकाशन आवश्यक है। इसमें भी नीचे दी गई फुटनोट महत्वपूर्ण है।

तेरहवें अनुक्रम पर श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित षोडशग्रन्थान्तर्गत “विवेकधैर्याश्रय” ग्रन्थ पर श्रीब्रजराजचरण लिखित टीका का श्रीशास्त्रीजी कृत देवनागरी भाषामें अनुवाद दिया गया है। इस अनुवादमें भी विवृत्युक्त विषयों को अलग अलग शीर्षकों से स्पष्ट किया गया है।

अन्तमें चौदहवें अनुक्रम पर “दशदिगन्तविजयी गो.श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज और अप्ययदीक्षित” नामक श्रीशास्त्रीजी द्वारा लिखित लेख देवनागरी भाषामें प्रकाशित है। यह लेख पूर्वमें अवतारवादावली पुस्तकमें प्रकाशित हो चुका है।

दार्शनिक जगतमें एवं पुष्टिमार्गीय विद्वानों की पंक्तिमें श्रीपुरुषोत्तमचरण

का नाम व स्थान अग्रगण्यों में है। श्रीआचार्यचरण-श्रीप्रभुचरण के बाद इस सम्प्रदाय में श्रीपुरुषोत्तमचरण का बहुमुखी वैदुष्य हिमालयकी चोटी सा आदरणीय रहा है। श्रीआचार्यचरण एवं श्रीप्रभुचरण के ग्रन्थोंको समझने के लिये श्रीपुरुषोत्तमजी का टीका साहित्य अनिवार्य आवश्यक माना जाता है। यद्यपि यहाँ पर एक और नामको भी अन्याय नहीं होना चाहिये वह नाम है लालूभट्टजी नामसे प्रसिद्ध श्रीबालकृष्णजी दीक्षितका। श्रीलालूभट्टजी का भी साहित्य श्रीआचार्यचरणके कई ग्रन्थों पर है एवं उनकी लेखनशैली की यह विशेषता रही है कि अति क्लिष्टता से ज्ञेय विषयका भी वे इतना सरलीकरण करके लिखते हैं जिससे पढ़नेवालोंकी बुद्धि पर विषयका भार प्रतीत नहीं होता जिससे साधारण विद्वान भी दुरूह विषयको बुद्धिगम्य बना सकते हैं। जब कि श्रीपुरुषोत्तमचरणकी लेखनशैली उच्च दार्शनिकों की शैली है। प्रमाणों को पुरस्कृत करते हुए प्रमेय का प्रतिपादन करनेवाली आपकी अनूठी शैली रही है एवं प्रमाणातीत वस्तुका भी प्रमाणातीतत्व वे प्रमाणोंसे ही सिद्ध करते हैं। जैसा कि श्रीप्रभुचरण भाष्यमें पुरुषोत्तम का लोकवेदातीत स्वरूप व उनके सम्बन्धी लोकका “ता वां वास्तु न्युष्मसि” इस ऋग्वेद के मंत्र का व्याख्यान करते हुए अत्राह पदके व्याख्यान में “तानि परे तथा ह्याह” इस सूत्रके व्याख्यानमें करते हैं। साथ ही श्रीआचार्यवाणी में भी जहाँ अर्थघटन या व्युत्पत्ति करने में साधारणबुद्धि को व्याकरणशास्त्रादि से दोष दिखाई देते हैं वहाँ पर भी वे शास्त्र से ही दोषनिराकरण करते हैं जैसा कि भागवतार्थ पञ्चम स्कन्ध निबन्धमें श्रीआचार्यचरण जम्बूद्वीपकी चर्चा करते हुए बताते हैं कि जहाँ बुद्धिशाली ज्ञानीजन उत्पन्न होते हैं ऐसा यह द्वीप होने से इसका नाम जम्बूद्वीप है, तब साधारणतया जम्बू शब्दसे जामून का वृक्ष ही अर्थ रूपमें चित्तमें आता है और जम्बूके वृक्षकी चर्चा भी इस द्वीपसे सम्बन्धवाली पुराणोंमें प्रसिद्ध है, ऐसी स्थितिमें जम्बूद्वीपसे बुद्धिशालिता का क्या सम्बन्ध ? यह प्रश्न बनता है, इसका समाधान वे इस प्रकार आवरणभङ्गमें देते हैं “जननं जन् बोधनं बुध् जन् बुध जना बुध् यस्मिन्निति जम्बुध् पृषोदरादित्वात् धकारनाशे उकारस्य दीर्घे च जाते जम्बूरिति भवति” वे शक्य हो वहाँ तक शास्त्रीय मर्यादाओं के भी आग्रही थे, इसी लिये वे निबन्धमें श्रीमद्भागवत सर्वोपकारक है इसकी चर्चामें द्वितीयस्कन्धस्थ ब्रह्माके प्रति भगवदुपदेशमें कही गई चतुःश्लोकीको स्त्री आदि के लिये पठन पाठनमें छोड़कर

ही शेष का उपयोग करने का विधान करते हैं। श्रीपुरुषोत्तमजी भावपक्षके विरोधी नहीं थे व वे भावकी प्रधानता को स्वीकारते भी है। सिद्धान्तरहस्य की टीकामें समर्पण विषयमें अर्पण के साथ लगे हुए सम् उपसर्गका वे अर्थ ग्रहण करते हैं “समुपसर्गश्च भावपूर्वकत्वायोक्तः” किन्तु उस समय पर सम्प्रदायमें कुछ ऐसे भी भावपक्ष के लोग थे कि जो सिद्धान्त को सही समझे बिना ही या तो सिद्धान्त को देखे-समझे बिना ही स्वच्छन्दतासे भाव नामसे सिद्धान्त विरुद्ध दिशामें ही बहे जा रहे थे, उनकी हरकतों से ही सम्प्रदाय का स्वरूप अशास्त्रीय-अवैदिक स्वरूपमें उभर रहा था, ऐसे ही लोगोंने श्रीपुरुषोत्तमजी को वेदपशु की संज्ञा दे रखी थी, श्रीपुरुषोत्तमजी के अथाग श्रम से ही इस मिथ्या प्रतिष्ठा से सम्प्रदाय बच सका है एवं आज भी अन्य सम्प्रदायवाले इस सम्प्रदाय की दार्शनिक परम्पराका आदर करते हैं।

इस लेखके आरंभमें श्रीआचार्यचरण से लेकर श्रीपुरुषोत्तमजी पर्यन्त की औरसवंशावली दी है जो उनके परिचयमें सुगमता करती है। उपरान्त आपश्रीका जीवनदर्शन कराते हुए आपश्री द्वारा रचित उपलब्ध ग्रन्थों की सूची, आपश्री के समकालीन दिग्गज पण्डितों की नामावली यह सब भी बहुत ही उपयोगी है। उसी के अन्तर्गत आपश्रीने बाल्यकालमें जिससे शास्त्रार्थ करके पराजित किया था वे उस समय के कट्टर वैष्णव द्वैषी शैव पण्डित अप्यय दीक्षितका भी परिचय विस्तार से दिया गया है। उन्होने वैष्णवद्वेष को लेकर ही शिवतत्त्वविवेक नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसके अक्षरशः खण्डन में श्रीपुरुषोत्तमजीने प्रहस्तवाद नामक ग्रन्थ रचा था। प्रहस्त का अर्थ होता है तमाचा। श्रीपुरुषोत्तमजी भाष्यप्रकाशमें भी जहाँ शैवों का उल्लेख करना होता है वहाँ पर वे तन्मतचौराः (श्रीरामानुज के ही मतका अवलम्बन करके नारायण या विष्णु की जगह पर शिव नाम का प्रतिपादन करनेवाले वैष्णवद्वेषी) के नामसे उल्लेख करते हैं।

श्रीपुरुषोत्तमजी तथा अप्यय दीक्षित के विषयमें यह लेख संशोधनात्मक रीति से कई ऐतिहासिक ग्रन्थों की छानबिन करते हुए प्रमाणपुरःसर लिखा गया है।

गो.वा. शास्त्रीजी श्रीहरिशंकरजी शुक्ल द्वारा संस्कृतमें लिखे गये ग्रन्थ आदि का संग्रह एवं गुजराती तथा देवनागरी में लिखे गये ग्रन्थों का संग्रह ऐसे दो

संग्रहों का अलग से प्रकाशन करने के कार्यमें वर्तमान में सम्प्रदाय के विद्वन्मूर्धन्य सत्सिद्धान्ताग्रही आदरणीय गो.श्रीश्याममनोहरजी महाराज (किशनगढ़-पार्लार, मुंबई) ने सम्पूर्ण प्रकाशन खर्च की रकम अपने ट्रस्ट द्वारा - “श्रीवल्लभविद्यापीठ - श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरणाश्रम ट्रस्ट (कोल्हापुर-महाराष्ट्र)” द्वारा व्यवस्था करना सोत्साह स्वीकार किया इसमें उनकी सम्प्रदायके विद्वानों प्रति अतिशय आदरपूर्विका प्रीति एवं सम्प्रदाय के सत्सिद्धान्तों के प्रचारकी तीव्र भावनाका दर्शन होता है। श्रीश्याममनोहरजीने इस ट्रस्ट के माध्यमसे अनेक संस्कृत-देवनागरी-गुजराती ग्रन्थों का प्रकाशन करके जो सिद्धान्त सेवा की है व कर रहे हैं वह विक्रम की इक्कीसवीं शताब्दि में अद्वितीय है। उन्होने कई सुबोधिण्यादि ग्रन्थों का पुनः प्रकाशन करके इन ग्रन्थोंको एक जीवनदानसा दिया है।

श्रीशास्त्रीजी के परिवारमें आज उनके दो आत्मज शास्त्रीजी श्रीकुमारिलभाई एवं शास्त्रीजी श्रीउदयनभाई दोनों ही अपने गो.वा.पिताके ही पथ पर चल कर बडौदा-गुजरातमें निवास करते हुए श्रीमहाप्रभु के सम्प्रदाय का दृढता से आश्रय करते हुए सतत सम्प्रदाय-सिद्धान्त सेवामें प्रवृत्त हैं। शास्त्रीजी श्रीकुमारिलभाईने न्यायशास्त्री, मीमांसातीर्थ, सर्वदर्शनतीर्थ का अध्ययन करके तदनन्तर वे आज पर्यन्त श्रीमहाप्रभु के इस सम्प्रदायकी सेवामें सदैव प्रवृत्त रहते हैं। शास्त्रीजी श्री उदयनभाई बडौदा-महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य पद को विभूषित कर चुके हैं एवं हमारे परिवार में से पू.श्रीदादाभाई (पू.गो.श्रीमथुरेश्वरजी महाराजश्री) द्वारा स्थापित अ.वि.श्रीवल्लभ प्रीति सेवा समाज ट्रस्ट में, पू.श्रीइन्दिराजीजी (पू.गो.श्रीइन्दिराबेटीजी महोदया) द्वारा स्थापित श्रीवल्लभ फाउन्डेशन ट्रस्ट में तथा हमारे द्वारा स्थापित श्रीवल्लभ विठ्ठल ग्रन्थ प्रकाशन मण्डल ट्रस्ट में सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। हमारे श्रीवल्लभ विठ्ठल ग्रन्थ प्रकाशन मण्डल ट्रस्ट द्वारा प्रतिवर्ष प्रकाशित “वैष्णव पञ्चाङ्ग” के वे पीछले १२ वर्ष से सम्पादक के रूपमें कार्यभार उठाते हुए कुशलता से कार्य संचालन कर रहे हैं। केवल बडौदामें ही नहीं अपितु भारतके व विदेशों के कई नगरोंमें वे अपनी ख्याति व प्रियता सम्पादन कर चुके हैं।

इन दोनों संग्रहों से सम्प्रदाय के सिद्धान्तप्रेमी जिज्ञासुजनों अवश्यमेव बहुलाभ

प्राप्त करनेवाले बनेंगे व उनके कई प्रश्नों का समाधान भी इससे प्राप्त हो सकेगा। इतना ही नहीं जो वल्लभ वेदान्त का अध्ययन करनेवाले या अध्यापन करानेवाले लोग हैं दोनों ही के लिये यह प्रकाशन उपकारक-पथप्रदर्शक बन सकेगा। मेरा तो यह सूचन अप्रासंगिक नहीं होगा कि इन दोनों संग्रहों में जो भी लेख-अनुवाद इत्यादि प्रकाशित किये गये हैं जो संस्कृत, देवनागरी व गुजराती भाषामें है वे सभी संस्कृत लेखों का हिन्दी-गुजराती दोनों में व जो गुजरातीमें है उनका हिन्दीमें एवं जो हिन्दीमें है उनका गुजरातीमें सुयोग्य विद्वान द्वारा भाषान्तरण तैयार कराके उनका प्रकाशन होना चाहिये एवं यदि शक्य हो तो इन सबका अंग्रेजीमें भी भाषान्तरण करके उसका भी प्रकाशन होना चाहिये।

इस अवसर पर तत्कालीन सम्प्रदाय के मूर्धन्यविद्वानों में से एक व सम्प्रदाय के लिये व विद्वज्जगत् के लिये गौरवास्पद ऐसे गो.वा.शास्त्रीजी श्रीहरिशंकरजी शुक्ल को मैं स्वयं की ओर से सादर हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ एवं उनके दोनों सुयोग्य आत्मजोंके लिये सप्रेम हार्दिक अनेक शुभकामना व्यक्त करता हूँ।

ऐसे सुन्दर, उपयोगी, उपकारक, आवश्यक प्रकाशन के लिये प्रकाशक-सम्पादक दोनों का अभिनन्दन करता हूँ व इस प्रकाशन के लिये अनेक शुभेच्छाएँ अभिव्यक्त करता हूँ।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु-श्रीकृष्णः प्रसन्नोऽस्तु।

ब्रज वि.सं. २०५९

(गुर्जर वि.सं. २०५८)

ब्रज श्रावण कृष्ण-११, सोमवार

(गुर्जर आषाढ कृ.११) सोमवार

दि.५-८-२००२

बडौदा (गुजरात)

(पू.गो.श्रीचन्द्रगोपालजी)



नि.ली.पू.पा. विद्वत्केसरिशुद्धाद्वैतसहस्रान्शुः गोरवामि श्रीमदनिरुद्धाचार्यचरणः  
(जामनगर-नडियाद)



नि.ली. पू. पा. गोस्वामि कुलकास्तुभ श्रीगोकुलनाथजी महाराजाः  
(मुम्बई)



नि.ली. पू. पा. श्रीमद् गोस्वामिविद्वद्गणकेसरी विद्यानिधि  
श्रीव्रजरत्नलालजी महाराजश्री (सुरत)



नि.ली.पू.पा. गोस्वामि श्रीमूरलीधरजी महाराजाः  
(वाराणसी)



दार्शनिकसार्वभौम-नैयायिककेसरि-गुरुवराः  
कै. श्रीबालकृष्ण मिश्राः  
(वाराणसी)





वेदशास्त्रसम्पन्न - मीमांसाकेसरि - गुरुवराः  
श्रीमच्चित्रस्वामिशस्त्रिणः



पण्डितप्रकाण्डः के. श्रीसिद्धेश्वरजी राजगुरुवः  
(करोली राज्य)



गो. वा. रूपादेवी मातृचरणाः  
(बुरहानपुर)



गो. वा. श्रौतस्मार्तकर्मकाण्डकेसरिणः श्रीओमकारजीशुक्ल तातपादाः  
(बुरहानपुर)



गो.वा. जडावलक्ष्मी महाभागा:



गो.वा. भगवच्छास्त्रनिष्ठाता: श्रीहरिशङ्कर शारिकर:

શ્રીહરિશંકર ઓમકારજી શાસ્ત્રિમહાભાગેભ્યઃ (ફેંટા ધારક)



“પંડિતકુલકૌસ્તુભ” પદવીપ્રદાન સમારોહઃ (નડિયાદ)

## શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજીની જીવન સાધના

જયન્ત પ્રે. ઠાકર

નિવૃત્ત નિયામક, પ્રાચ્ય વિદ્યા મંદિર, વડોદરા.

પંડિતકુલકૌસ્તુભ શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજીનો જન્મ વિદ્વાન શાસ્ત્રીઓની લાંબી પરંપરા ધરાવતા વિશિષ્ટ કુટુંબમાં મધ્યપ્રદેશના બુરહાનપુરમાં ઈ.સ. ૧૯૦૦ ના મે માસની ચોથી તારીખે થયો હતો. એ રીતે ઈ.સ. ૨૦૦૦ નું વર્ષ એમની શતાબ્દીનું વર્ષ ગણાય.

વિદ્વાનોના કુટુંબમાં જન્મ્યા હોવાથી તેમના અધ્યયનનો પ્રારંભ તેમના ઘરથી જ થયો. વેદ-વેદાંગ તથા કર્મકાંડનું પરંપરાગત શિક્ષણ ઘરમાંથી લઈને તેઓ વધુ અભ્યાસ અર્થે વિદ્યાધામ વારાણસી ગયા. ત્યાં ન્યાય, મીમાંસા અને વેદાન્ત જેવાં વિશિષ્ટ અને ગંભીર શાસ્ત્રોનો ઊંડો અભ્યાસ તેઓ કરી શક્યા અને ‘મીમાંસાશાસ્ત્રી’ તેમજ ‘વેદાન્તવિશારદ’ જેવી ઉપાધિઓ પણ તેમણે પ્રાપ્ત કરી. વળી ગોવર્ધન પીઠાધીશ્વર પૂ. ભારતીકૃષ્ણ શંકરાચાર્ય દ્વારા ‘પંડિતકુલકૌસ્તુભ’, ‘મીમાંસારત્ન’ વડોદરા અને ‘મીમાંસાભૂષણ’ ‘વેદાન્ત વિશારદ’ નાદિયા (બંગાળ) જેવી માનાર્હ ઉપાધિઓ વડે તેમને સન્માનવામાં આવેલા.

શ્રીશાસ્ત્રીજીના ગુરુવર્ચોમાં કેટલાક વિશેષ ઉલ્લેખનીય છે. (૧) મહામહોપાધ્યાય પંડિતપ્રવર નિત્યાનન્દ શાસ્ત્રી (૨) વારાણસીની કૉલેજ ઑફ ઓરીએન્ટલ લર્નિંગના આચાર્ય મહામહોપાધ્યાય પં. બાલકૃષ્ણ મિશ્ર તથા (૩) બનારસ હિન્દુ યુનિવર્સિટીની કૉલેજ ઑફ યિયોલોજીના આચાર્ય મહામહોપાધ્યાય પં. ચિત્રસ્વામી શાસ્ત્રી.

વિદ્યાવ્યાસંગ એ જ જેમનું જીવનધ્યેય હતું તેવા શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજી ભાંડારકર ઓરીએન્ટલ રિસર્ચ ઇન્સ્ટિટ્યૂટ-પૂના, ઈંગ્લેન્ડની રોયલ એશિયાટિક સોસાયટી અને ઑલ ઈન્ડિયા ઓરીએન્ટલ કોન્ફરન્સ જેવી વિશ્વવિખ્યાત વિદ્યાસંસ્થાઓના સભ્ય રહેલા, એટલું જ નહિ, પરંતુ એક વિદ્વાન સંશોધકના રૂપમાં તેઓશ્રી વડોદરાનું પ્રાચ્યવિદ્યામંદિર, વારાણસીનું સરસ્વતી ભવન, મદ્રાસની ગવર્નમેન્ટ મેન્યુસ્ક્રિપ્ટ લાયબ્રેરી તથા લંડનની ઈન્ડિયા ઑફિસ લાયબ્રેરી જેવી અતિપ્રસિદ્ધ સંશોધનસંસ્થાઓ સાથે સતત સંકળાયેલા પેલા રહેલા.

પોતાના પાંડિત્યની પ્રતિભાના પરમોચ્ચપ્રકર્ષને લીધે શ્રી શાસ્ત્રીજીને વેદિક ધર્મના જગદ્ગુરુ એવા મહાન આચાર્યો શ્રીશંકરાચાર્ય, શ્રીરામાનુજાચાર્ય અને

શ્રીવલ્લભાચાર્યની ગાદીની પરમ્પરામાં પ્રાપ્ત તત્કાલીન આચાર્ય મહોદયોમાંના ઘણાની સાથે અંગત સમ્બન્ધ બંધાય ગયો હતો. એમાં પુષ્ટિમાર્ગના તો અનેક ગોસ્વામી મહારાજોના અધ્યાપક તરીકે પણ તેઓશ્રીએ સેવાઓ આપેલી. સૌરાષ્ટ્રના લખતર રાજ્યના ચુપરાજ શ્રી બલભદ્રસિંહજી, રાજકુંવરી જયેન્દ્રકુંવરબા અને કુસુમકુંવરબાના આદરણીય અધ્યાપક તરીકે પણ તેઓ ઠીક સમય સુધી રહેલા. રાજસ્થાન તથા સૌરાષ્ટ્રના નીચેના રાજવીઓ સાથે પણ તેમને અતિનિકટના સંબંધો હતા :

- (૧) કરોલીના મહારાજા ભમરપાલજી
- (૨) કિશનગઢના મહારાજા ચક્રનારાયણસિંહજી
- (૩) નવાનગરના સુપ્રસિદ્ધ જામસાહેબ રણજિતસિંહજી
- (૪) લખતરના ઠાકોર સાહેબ પ.ભ. શ્રી ઈન્દ્રસિંહજી
- (૫) લખતરના ઠાકોર સાહેબના ભાણેજ ઘોળના ઠાકોર સાહેબ પ.ભ. શ્રી ચન્દ્રસિંહજી

- (૬) લાઠીના, કવિ કલાપીના વંશજ, ઠાકોર સાહેબ શ્રી પ્રહલાદસિંહજી અને
- (૭) વળા (પ્રાચીન વલ્લભીપુર)ના ઠાકોર સાહેબ શ્રી ગંભીરસિંહજી.

આ લખનારના પૂ. શ્વશુરશ્રી ત્યારે લખતરના રાજપુરોહિત હોવાથી તેમનો તેઓશ્રી સાથે ઠીકઠીક પરિચય થયેલો.

જાહેર જીવનમાં પણ પૂજ્ય શ્રીશાસ્ત્રીજી (૧) સનાતન ધર્મ સંસ્થાન, (૨) અખિલ ભારતીય વર્ણાશ્રમ સ્વરાજ્ય સંઘ (૩) અખિલ ભારતીય પુષ્ટિમાર્ગીય યેષ્ઠાવ પરિષદ અને (૪) અખિલ ભારતીય ધર્મ સંઘ જેવી ધર્મસંસ્થાઓની પ્રવૃત્તિઓ ગુજરાત-સૌરાષ્ટ્રમાં ચલાવતા હતા.

આ ચુસ્ત સનાતની પંડિતની બીજી નોંધપાત્ર પ્રવૃત્તિમાં એ જમાનામાં “અસ્પૃશ્યતાનિવારણ” તેમજ “હરિજનમંદિરપ્રવેશ”ની ચળવળના વિરોધમાં ઘણા સામ્પ્રદાયિક વડાઓએ ગુરુવાચુર સુધી જે પદયાત્રા કરી હતી તેમાં પણ પૂજ્ય શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજી તે સામ્પ્રદાયિક વડાઓ સાથે પદયાત્રામાં જોડાયા હતા. યેષ્ઠાવ પરિષદ જેવી નાની મોટી અનેક સંસ્થાઓમાં તેમણે પ્રમુખ અથવા મંત્રી તરીકે સક્રિય સેવાઓ આપી હતી.

શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજીના પાંડિત્યની પ્રતીકરૂપ જે વિશાળ અંગત પુસ્તકાલય હતું તેમાં પુષ્કળ મહત્ત્વપૂર્ણ મુદ્રિત ગ્રંથો ઉપરાન્ત ૨૫૦૦ જેટલા હસ્તલિખિત ગ્રંથો હતા જેમાંના કેટલાક તો ૮૦૦ વર્ષ અને તેથી પણ અધિક પ્રાચીન દુર્લભ ગ્રંથો હતા. તે ભેગા કરવામાં અને તેમનું સંશોધન કરવામાં તેમણે ઉઠાવેલ પરિશ્રમ

અને આર્થિક વ્યય દાદ માગી લે એવો હતો.

સ્વાધ્યાયાન્મા પ્રમદ અને સ્વાધ્યાયપ્રવચનાભ્યાં ન પ્રમદિતવ્યમ્ એ ઉપનિષદનાં પરમોચ્ચ, સ્વાધ્યાય સાધનાની મહત્તા વર્ણવતાં વિદ્વાનો અને “વિદ્વદ્ભિઃ સર્વથા શ્રાવ્યં તે હિ સન્માર્ગરક્ષકાઃ” (મુદ્રાલેખ) પૂ. શાસ્ત્રીજીના જીવનમાં વણાયેલા હોય એમ તેમના આ જીવન દર્શન પરથી કોઈને પણ જરૂર લાગે જ.

પ્રકાશનો :

શ્રી શાસ્ત્રીજી ઉચ્ચ કોટિના વિદ્યાપુરુષ હતા તે સત્યની પ્રતીતિ કરાવતાં તેમનાં પ્રકાશનોની પણ અહીં નોંધ લેવી આવશ્યક છે. પ્રકાશનો ઘણાં છે અને વિદ્વત્પાપૂર્ણ છે. અહીં આપેલી સૂચિમાં દરેકના મહત્ત્વનો ખ્યાલ આપવાનો પ્રયાસ કરાયો છે. કેટલાક ગ્રંથો આર્થિક સંકટને કારણે અઘૂરા રહી ગયા છે.

૧. શ્રીવલ્લભાચાર્યપ્રણીત બ્રહ્મસૂત્ર-અણુભાષ્ય (સંસ્કૃત) :

શ્રી ગિરધરજી મહારાજની ટીકા સાથે. આ સંપાદનમાં સંપાદક શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજીએ પણ સંસ્કૃતમાં પોતાની વિસ્તૃત ટિપ્પણી ઉમેરી છે. કોઈ ગુજરાતી વિદ્વાને ‘અણુભાષ્ય’ ઉપર કે તેની વૃત્તિ ઉપર કોઈ ટીકા-ટિપ્પણી લખવાનો આ પ્રથમ પ્રયાસ ગણાય. તેમની આ ટિપ્પણીની કેટલીક વિશિષ્ટતાઓ નોંધપાત્ર છે.

(૧) શ્રીવલ્લભાચાર્યે પોતાના ઉત્તરકાંડમાં જે દલીલો કરી છે તે જો પૂર્વકાંડમાં સાંખ્ય, ન્યાય કે મીમાંસામાં આવતી હોય, તો તેમને દલીલો ઉપરનીયે દલીલોના કોટિક્ક દ્વારા વધારે સરળ બનાવી છે.

(૨) સર્વ ભાષ્યકારો દરેક અધિકરણમાં તેમાં વ્યક્ત થયેલા ચિંતનોને સમજાવવા માટે સમુચિત ઉપનિષદનું એક વાક્ય ઉદ્ધૃત કરે છે, જેને ‘વિષયવાક્ય’ કહે છે. શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજીએ આને બદલે દરેક અધિકરણના પ્રારંભમાં જ જે તે વિષયનાં ઉપનિષદોમાંના આખા પ્રકરણોને જ ઉતાર્યા છે. આને પરિણામે દરેક વાક્યના સંદર્ભને બરાબર સમજવામાં વિદ્યાર્થીને મદદ મળે છે અને તે બધી દલીલોને બરાબર સમજી શકે છે.

(૩) ‘અણુભાષ્ય’ની ટીકા તેમજ વિવરણમાં ઉદાહરણોની આ સુપ્રસિદ્ધ અને પ્રોત્થિયુક્ત પદ્ધતિ સર્વત્ર અપનાવી છે. શ્રી શાસ્ત્રીજીને દરેક દર્શનનું કેવું ઉંડું જ્ઞાન હતું-સ્પષ્ટ સમજણ હતી તે આથી સ્પષ્ટ થાય છે. સંસ્કૃતભાષાના અન્ધકારના યુગમાં આ હકીકત ગુજરાત માટે ગૌરવસમી ગણાય.

(૪) દષ્ટિઙ્ગ: પદલાલિત્યમ્ એવી પૂ.શાસ્ત્રીજીની પણ પ્રોઢ ગિરામયી

શેલી હૃદયાવર્જક જણાય છે. ગુજરાતમાં માઘ, ભટ્ટિ અને મયૂર જેવાં સાહિત્યક્ષેત્રનાં રત્નો પાકેલાં છે અને આશાધર જેવા દાર્શનિકો પણ આ ગુર્જરભૂમિએ આપ્યા છે. અહીં વડોદરા અને જામનગર જેવા પ્રાચીન વિધાનાં કેન્દ્રો પણ છે. આ સાહિત્યશૃંગાર હજી અશ્વુણ રહી છે. છતાં આધુનિક યુગમાં તો શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીએ જ ભારતીય દર્શનશાસ્ત્રમાં ઊંડાણ તેમજ વ્યાપક પ્રદાન આ સાહિત્ય દ્વારા કર્યું છે એમ કહેવામાં અત્યુક્તિ નહિ ગણાય.

(૫) આમ તો ‘અણુભાષ્ય’ શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાન્ત પ્રસ્થાપિત કરે છે. પરંતુ શ્રી શાસ્ત્રીજીએ તો અહીં શંકરાચાર્ય, શ્રી રામાનુજાચાર્ય, શ્રીમદ્વાચાર્ય, શ્રીનિમ્બાર્કાચાર્ય, શ્રી વિજ્ઞાનભિષુ, શ્રીભાસ્કરાચાર્ય અને શ્રીશ્રીકંઠશિવાચાર્ય જેવાના મતોનાં ઉદ્ધરણો વ્યવસ્થિત રીતે ઉતાર્યા છે. આને લીધે આનો અભ્યાસ કરનાર વિદ્વાનોને આ બધાનાં દષ્ટિ બિન્દુઓનો તુલનાત્મક અભ્યાસ કરવાની સગવડ આ એક જ ગ્રંથમાંથી પ્રાપ્ત થઈ શકે છે. ભારતના દાર્શનિક ઇતિહાસમાં આવા પ્રકારનો પ્રયત્ન કદાચ આ પ્રથમ જ છે. એક સાથે અનેક આચાર્યોનાં દાર્શનિક ભાષ્યોનો તુલનાત્મક અભ્યાસ એ તો પૂ. શાસ્ત્રીજીની વિશિષ્ટ સિદ્ધિ જણાય છે.

૨. અણુભાષ્ય - બીજો ભાગ : આ બીજો ભાગ ઉપરિનિર્દિષ્ટ ગ્રંથ પછી વર્ષો પછી પ્રગટ થઈ શક્યો છે, પણ તેણે બધી પૂર્તિ કરી દીધી છે. તેમાં સંસ્કૃતમાં વિગતવાર પ્રસ્તાવના ઉપરાન્ત એક વિસ્તૃત લેખ મૂક્યો છે. જેમાં વિવિધ કોષ્ટકો તથા પટો (ચાર્ટ્સ) સાથે બીજાં દર્શનોના સિદ્ધાંતો પણ સમજાવ્યા છે. અંતે એક પરિશિષ્ટ મૂક્યું છે જેમાં દરેક અધિકરણના સંદર્ભને જોડ્યો છે.

આ બંને ગ્રંથો દર્શનશાસ્ત્રના અભ્યાસમાં ખૂબ માર્ગદર્શક થઈ પડે એવા છે. વલ્લભસંપ્રદાયમાં આ ગ્રંથો ખરેખર અદ્ભુત અને અભ્યાસીઓને વિશિષ્ટ અધ્યયન સામગ્રી પૂરી પાડે તેવા છે. આથી આપણું મસ્તક ગૌરવપૂર્વક તેમના ચરણોમાં ઝુકી જાય છે.

૩. સત્સિદ્ધાન્તમાર્તણ્ડ (સંસ્કૃત) : આના રચયિતા શ્રીગોવર્ધન શર્મા (શ્રી ગઢુલાલજી) છે. તેમાં યેષ્ઠાવોના વિધિવિધાન અંગેના ૬૪ પ્રશ્નોના પુષ્ટિમાર્ગીય સિદ્ધાન્તાનુસાર, ધર્મશાસ્ત્ર તથા મીમાંસાને અનુસરીને આપેલા ઉત્તરો છે. ધર્મશાસ્ત્રના આચાર્યકાંડના યેષ્ઠાવોને ઉપયોગી વિભાગની વિશદ ચર્ચા કરી હોવાથી એને ‘યેષ્ઠાવોનું ધર્મશાસ્ત્ર’ પણ ગણી શકાય. તેની વિશેષતાઓ :

(૧) આ ગ્રંથ અપ્રાપ્ય હતો, તેને શ્રી શાસ્ત્રીજીએ પ્રકાશિત કરી ઉપલબ્ધ બનાવ્યો. એનો ગુજરાતી અનુવાદ પણ કર્યો છે.

(૨) પોતાના આ સમ્પાદનમાં તેમણે ‘પ્રશ્નમાલા’નો સંસ્કૃત તેમજ ગુજરાતીમાં સંક્ષેપ કરીને તથા અન્ય પરિશિષ્ટો ઉમેરીને તેને ખૂબ ઉપયોગી બનાવ્યો છે.

(૩) પ્રારંભમાં મૂકેલી સંસ્કૃત પ્રસ્તાવના બાણ અને દંડી જેવા મહાન રચયિતાઓનું સ્મરણ કરાવે તેવી છે. તેમાં તેમણે આ ગ્રંથના મુદ્રણ-પ્રકાશનમાં તેમને મળેલા સહયોગનો આખો ઇતિહાસ આપ્યો છે તથા શ્રીગઢુલાલજીના જીવનની રૂપરેખા પણ આપી છે.

(૪) વારાણસીમાં થયેલ ધાર્મિક સંભાષણ પણ આમાં આપ્યું છે. સંસ્કૃત ભાષા ઉપર સરસ્વતીના આ વરદ પુત્ર શ્રી શાસ્ત્રીજીનું કેવું સાહજિક પ્રભુત્વ હતું તેની પ્રતીતિ કરાવવા માટે આ એક ગ્રંથ જ પૂરતો થાય તેમ છે.

૪. શ્રીમદ્-અથર્વણનારાયણ ઉપનિષદ (સંસ્કૃત) :

જેમાં નારાયણની ભક્તિનું નિરૂપણ કરેલું છે તેવું આ બહુ નાનું ઉપનિષદ છે. તેની વિશેષતાઓ :

(૧) આ ઉપનિષદ ઉપર ગોસ્વામી શ્રી અનિરુદ્ધાચાર્યજીએ ‘વેદાન્તવિદ્યાલંકાર’ નામક એક ભાષ્ય રચ્યું છે. વળી શ્રી શાસ્ત્રીજીએ તેના ઉપર ‘કિરણાવલી’ નામની એક વિસ્તૃત ટીકા લખીને તેની સાથે જોડી છે.

(૨) કોઈ ગુજરાતી પંડિતે કોઈ ઉપનિષદ ઉપર કોઈ ભાષ્ય કે ટીકાની રચના કરી હોય એવો આ પ્રથમ જ દાખલો છે, જે માટે આ બંને મહાવિદ્વાનો અભિનન્દનને પાત્ર છે. તે બંનેએ આ પહેલાં ‘ગોપાલ-પૂર્વતાપિની-ઉપનિષદ’ પણ પ્રકાશિત કર્યું છે તેની પણ નોંધ આ લેખમાં આપણે લીધી છે જ.

(૩) ન્યાયશાસ્ત્રના શબ્દકાંડનો શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજી પાસે વ્યવસ્થિત અભ્યાસ કર્યા પછી અને ‘ચિત્સુખી’, ‘અદ્વૈતસિદ્ધિ’, ‘ખંડનખંડખાધ’ તેમજ ‘તન્ત્રવાર્તિક’ વગેરે ગ્રંથોનો પણ પૂરો અભ્યાસ કર્યા પછી જ ગોસ્વામી ૧૦૮ શ્રી અનિરુદ્ધલાલજી મહારાજશ્રી પ્રાચીન પદ્ધતિએ પૂર્વપક્ષ-ઉત્તરપક્ષના નિરૂપણ સાથેના ગ્રંથો રચવાનો પ્રારંભ કરી શકેલા.

(૪) આમાં શ્રી શાસ્ત્રીજીએ જોડેલી ‘કિરણાવલી’ નામની પોતાની વિશિષ્ટ સુઘડ શૈલીમાં રચેલી ટીકામાં વિવિધ દાર્શનિક સિદ્ધાન્તોનો તુલનાત્મક અભ્યાસ રજૂ કરે છે. તેમાંયે ખાસ કરીને ન્યાય-યેશેષિક દર્શનોના સિદ્ધાંતોની વિગતે ચર્ચા થઈ છે. તેમાં પણ મન, પ્રાણ અને આકાશ વિષેની ચર્ચા વિશેષ નોંધપાત્ર બની રહી છે. ‘આકાશ’ એ અભાવાત્મક છે કે ભાવાત્મક એવી શંકા ઉઠાવીને પૂર્વ પક્ષમાં

નેચાચિકોએ જે દલીલો કરી છે તેને બરાબર પદ્ધતિસર તોડીને શ્રી શાસ્ત્રીજીએ અત્યંત કુશળતા દાખવી છે. આ ક્ષેત્રમાં આવું કૌશલ્ય વિરલ ગણાય.

૪-૫ તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ : (૧) 'શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ' અને (૨) 'સર્વનિર્ણયપ્રકરણ' : (સંસ્કૃત) : રચયિતા શ્રીવલ્લભાચાર્યજી.

આચાર્યશ્રીના મતે શબ્દપ્રમાણ એટલે વેદ. તેનું સંયોજન 'ગીતા', 'બ્રહ્મસૂત્ર' અને 'શ્રીમદ્ભાગવત'ના ઉપદેશ સાથે થવું જોઈએ. આમ મુખ્ય તત્ત્વ વેદ છે અને અંતિમ અર્થ ભાગવતે દર્શાવ્યો છે. આના ઉદ્બોધન અર્થે તેમણે અતિમૂલ્યવાન સિદ્ધાન્તગ્રંથ 'તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ' રચ્યો અને સાથે સાથે 'ભાગવત'નો અર્થ સ્પષ્ટ કરવા માટે 'સુબોધિની' નામની ટીકા રચી. આ 'તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ'માં ત્રણ પ્રકરણ છે : (૧) શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ, (૨) સર્વનિર્ણયપ્રકરણ અને (૩) ભાગવતાર્થપ્રકરણ. આમાંનાં પ્રથમ બે પ્રકરણો આ બે ગ્રંથોમાં આપ્યાં છે. શ્રી શાસ્ત્રીજીએ 'પ્રકાશ', 'આવરણભંગ', 'યોજના', 'ટિપ્પણી' અને 'સત્સ્નેહભાજન' નામની ટીકાઓની મૂળ હસ્તપ્રતો પ્રયત્નપૂર્વક પ્રાપ્ત કરીને ખૂબ ખંતપૂર્વક આમાં સંપાદન કર્યું છે. એ પહેલાં શુદ્ધ પાઠ પ્રકાશિત થયો ન હતો. એની સંસ્કૃતમાં વિસ્તૃત પ્રસ્તાવના અને ગુજરાતીમાં પ્રકરણ વિભાગ અને તત્ પ્રતિપાદ્ય વસ્તુ ગુજરાતીમાં વિશદરૂપે લખી છે. અને સંસ્કૃતમાં પાંચ પરિશિષ્ટો આપ્યાં છે.

આ બેઉ ગ્રંથોનું મૂલ્ય શ્રી શાસ્ત્રીજીની શૈલીને કારણે વધી ગયું છે, જેમાં દર્શનશાસ્ત્રનું ગાંભીર્ય ભરેલું છે. તેમણે ભાષાના માધુર્ય વડે દર્શન જેવો ગંભીર વિષય પણ ઉપભોગ્ય બનાવી શકાય છે તેવી પ્રતીતિ અહીં કરાવી છે ! આ પણ પૂ. શાસ્ત્રીજીની એક વિરલ સિદ્ધિ જ ગણી શકાય તેમ કહેવામાં કોઈ અત્યુક્તિ નથી.

૬. તૃતીયસ્કન્ધાર્થ (સંસ્કૃત)

ઉપરિનિર્દિષ્ટ 'તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ' નાં ત્રણ પ્રકરણો ઉપર ગોસ્વામી ૧૦૮ શ્રીકલ્યાણરાયજીએ 'ટિપ્પણી' લખી છે. આ ટીકા સંપૂર્ણતઃ પ્રાપ્ય નથી. તથાપિ શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજી પોતાના સંશોધનકાર્ય દરમિયાન 'ભાગવત'ના તૃતીય સ્કન્ધ ઉપરની 'ટિપ્પણી'ની એકમાત્ર હસ્તપ્રત મેળવી શક્યા છે અને વિદ્વાનોના ઉપયોગ અર્થે તેમણે તેને સમ્પૂર્ણતઃ અહીં પ્રકાશિત કરી દીધી છે.

૭. બ્રહ્મવાદ-સંગ્રહ (સંસ્કૃત-હિન્દી) : શુદ્ધાદ્વૈત ઉપરની ગોસ્વામી શ્રીહરિરાયજી અને ગોસ્વામી શ્રીવ્રજરાજજીએ રચેલ સર્વ રચનાઓનો આમાં સંગ્રહ

કર્યો છે. તેમાં સર્વ ઉપલબ્ધ ટીકાઓનો સમાવેશ થઈ જાય છે. તે સાથે હિન્દી અનુવાદ તેમજ સંસ્કૃતમાં લાંબી પ્રસ્તાવના પણ આપેલાં છે.

૮. શ્રી સુબોધિનીજી : (ગુજરાતી)

શ્રીવલ્લભાચાર્યજીએ સંસ્કૃતમાં રચેલ 'ભાગવત' ઉપરની સુંદર અને સવિસ્તર ભાષ્યરૂપે લખાયેલ આ ટીકાના દશમસ્કન્ધનાં પ્રથમ બે પ્રકરણોનું ગુજરાતી રૂપાંતર શ્રી શાસ્ત્રીજીએ અહીં આપ્યું છે. આની સાથે તેઓએ વિસ્તૃત અને સૂક્ષ્મ ચર્ચા પણ રજૂ કરી છે. આ સર્વ છણાવટ ખૂબ મહત્ત્વપૂર્ણ તંથા વિદ્વત્તાપૂર્ણ છે. આને માટે તેમણે ઘણો પરિશ્રમ કરેલો તેમજ સારું એવું સંશોધન પણ કરેલું. એમાં ન્યાય, મીમાંસા વગેરેના સિદ્ધાન્તોને વિશદ રીતે વ્યક્ત કરવા માટે તેમણે લંડનની ઈંકિયા ઓફિસ લાયબ્રેરી તથા જર્મનીની બર્લિન લાયબ્રેરીમાં સચવાયેલ પ્રાચીન હસ્તપ્રતોનો પણ ખંતપૂર્વક ઉપયોગ કર્યો છે.

૯. પુષ્ટિમાર્ગાચિ સિદ્ધાન્તશેખર : (ગુજરાતી)

આ પણ એક ગુજરાતી નિબંધ છે, જેમાં શુદ્ધાદ્વૈતના સિદ્ધાન્તોને યૈજ્ઞાનિક રીતે સમજાવવાનો પ્રશસ્ય પ્રયાસ કરેલો છે. આનું મુખ્ય લક્ષણ વેદ વિષેની ચર્ચા છે ! વેદી સર્વકાળે સત્ય છે એવું દર્શાવવાનો પ્રબળ પ્રયત્ન તેમાં થયો છે. દાર્શનિક દૃષ્ટિએ શ્રી શાસ્ત્રીજીએ એવું પુરવાર કર્યું છે કે વેદનું મૂળ કે પ્રારંભબિન્દુ નિશ્ચિત કરવાનો પ્રયત્ન કરવો એ ઈશ્વરનું મૂળ શોધવા જેટલું જ અશક્ય તેમજ નિરર્થક છે. અહીં એ પણ સાબિત કરવાનો પ્રબળ પ્રયત્ન કરેલો છે કે ભારતવર્ષના મૂળ પતનીઓ અનાયો નહિ પણ આયો જ હતા. અને સૌથી વિશેષ તો મનુષ્ય, ઈશ્વર અને વિશ્વના પરસ્પર સાથેના સંબંધ વિષેની અતિગંભીર ચર્ચા શુદ્ધાદ્વૈત દૃષ્ટિને લક્ષમાં રાખીને કરી છે.

૧૦. વેદાન્તતાત્પર્ય-નિરૂપણ : (હિન્દી-ગુજરાતી) : શ્રી પુરુષોત્તમજી મહારાજની સુંદર રચના 'પ્રહસ્તવાદ'ના પ્રથમ પ્રકરણનો હિન્દી તેમજ ગુજરાતીમાં અનુવાદ આમાં આપેલો છે.

૧૧. ગોપીગીત : (ગુજરાતી)

આમાં 'શ્રીમદ્ભાગવત'ના સુપ્રસિદ્ધ 'ગોપીગીત'નો 'સુબોધિની'-અનુસારનો ગુજરાતી અનુવાદ આપ્યો છે. તેમાં દરેક શબ્દ તેમજ શબ્દસમૂહનો ગૂઢાર્થ સમજાવવા માટે વિસ્તૃત ચર્ચા કરી છે અને અનુરૂપ કોષ્ટકો પણ આપ્યાં છે.

૧૨. શ્રીપુરુષોત્તમચરિત્ર : (ગુજરાતી)

વલ્લભસંપ્રદાયના સૌથી વધારે મહત્ત્વના ગ્રંથોના રચયિતા પરમવિદ્વાન

આચાર્યશ્રી પુરુષોત્તમજીનું દૂંકું જીવનચરિત્ર આમાં આપેલું છે. તેમાં ઘણાં ઐતિહાસિક તથ્યો ભરેલાં છે. વળીતેમના સમકાલીન - ૧૬ માં શતકના-ખ્યાતનામ પંડિતોની વિગતો પણ આપેલી છે. પુષ્ટિમાર્ગીય સિદ્ધાન્ત તેમજ શ્રીવદ્ધભાચાર્યના વંશવેલા વિષેના મહત્વના ગ્રંથો વિષેની માહિતી પણ આમાં મળે છે.

### ૧૩. શ્રીવિદ્ધલેશચરિત્ર : (ગુજરાતી)

આ પણ ગુજરાતીમાં સંક્ષિપ્ત જીવનચરિત્રનો ગ્રંથ છે. તેમાંથી ઈ.સન્ ૧૬ માં શતકનાં સાહિત્યિક વલણોનો વિષેની સારી માહિતી ઉપલબ્ધ થાય છે. મોગલ સમ્રાટ અકબર બાદશાહ, તેના વંશજો તેમજ તત્કાલીન રાજપૂત રાજાઓ અને હિન્દુ રાજકારણીઓ સાથેના શ્રીવદ્ધભાચાર્યજી તથા તેમના સુપુત્ર શ્રીવિદ્ધલેશજીના સંબંધોનું નિરૂપણ તેમાં પ્રાપ્ત થાય છે. ભારતીય દર્શન તથા ધર્મમાં શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાન્તે સર્જેલી કાન્તિ ઉપર પણ આમાં ઠીકઠીક પ્રકાશ પડે છે. આમ આ ગ્રંથ ઐતિહાસિક મહત્વ ધરાવે છે.

### ૧૪. ત્રિપાદનીતિનયનમ્ : (સંસ્કૃત)

આ ગ્રંથને શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજીનું સંસ્કૃત સાહિત્યમાંનું મૌલિક પ્રદાન લેખી શકાય. તે બીજી રીતે પણ મહત્વ ધરાવે છે. પૂર્વ મીમાંસામાં મુખ્ય બે મતોની શાખાઓ-સુપ્રસિદ્ધ છે : (૧) ભાક્રમત અને (૨) પ્રાભાકરમત. આ ઉપરાન્ત એક ત્રીજો મત પણ છે જે ‘મુરારેસ્તૃતીયઃ પન્થાઃ’ - ‘મુરારિનો ત્રીજો પંથ’ તરીકે જાણીતો છે. તેનું મહત્વ પહેલા બે કરતાં ઓછું ગણાય છે. ન્યાયશાસ્ત્ર તથા ‘ન્યાયમુક્તાવલિ’ ના પ્રામાણ્યવાદમાં પૂર્વપક્ષ તરીકે નિરૂપિત મુરારિમિશ્રના આ ત્રીજા પંથના સિદ્ધાન્તોની સોદાહરણ છણાવટ આ ગ્રંથમાં કરવામાં આવી છે. પૂર્વમીમાંસાના પ્રારંભિક પ્રકરણમાં નિર્દિષ્ટ વિષયો વિષેનાં શ્રીમુરારિ મિશ્રનાં અધિકૃત ઉદ્ધરણો શ્રી શાસ્ત્રીજીએ પરિશ્રમપૂર્વક મેળવેલી મૂળ હસ્તપ્રતોના આધારે અહીં મૂક્યાં છે. મીમાંસાની આ ત્રીજી શાખાને અધિક પ્રકાશમાં લાવીને તેમણે વિશેષતઃ મીમાંસાના વિદ્યાર્થીઓને ઉપકૃત કર્યા છે. તેના સિદ્ધાન્તો નવીન તથા સરળ છે. આ કાર્ય તેમણે એકલે હાથે કર્યું એ વાતની નોંધ લેવી જોઈએ. લાંબા સમયનું સંશોધન અને ખાસ્સા ધનવ્યય પછી શ્રી શાસ્ત્રીજી આને પ્રકાશિત કરી શક્યા છે. આ નિમિત્તે તેમણે એક શોધસંસ્થાન પણ ઊભું કરેલું, જે સમય જતાં આર્થિક પુષ્ટિને અભાવે કાળમાં વિલીન થઈ ગયું !

પ્રત્યેક કૃતિમાં પૂ. શાસ્ત્રીજીનો શાસ્ત્રપ્રેમ, વૈદિક પરમ્પરામાં નિષ્ઠા તથા અદ્ભુત સરસ્વતીસાધના આદિ મહનીય ગુણો ઉડીને આંખે વળગે તેવા આપણે

અવશ્ય જોઈ શકીએ છીએ. ‘સારસ્વતં કિમપિ તત્ સુમહારહસ્યમ્ ।’ એ પંક્તિ પૂ. શાસ્ત્રીજીની જીવન-સાધના જોતાં ચરિતાર્થ દેખાય છે.

### ૧૫. દેવયાજિકભાષ્ય : (સંસ્કૃત)

કાત્યાયનનાં શ્રોતસૂત્રો ઉપરનું દેવયાજિકનું આ ભાષ્ય અત્યંત મહત્વનું છે. જૂજ અપવાદો સિવાય ‘કાત્યાયનશ્રોતસૂત્ર’ ઉપરનાં લગભગ બધાં ભાષ્યો ગુજરાતીઓએ રચેલાં છે. શ્રી શાસ્ત્રીજીએ પોતાની પાસેની હસ્તપ્રતનો પુણે, જામનગર, નાસિક તથા વારાણસીની હસ્તપ્રતો સાથે તુલનાત્મક અભ્યાસ કરીને આ આવૃત્તિ તૈયાર કરી છે. આ પ્રકાશનમાં તો કેવળ પ્રથમ વિભાગ જ રજૂ કરાયો છે. જો આર્થિક સંકટ ન નડ્યું હોત તો સમગ્ર ભાષ્ય પ્રકાશિત કરી શકાત, જે વૈદિક સાહિત્યના અભ્યાસુઓને માટે મહત્વપૂર્ણ બની જાત.

### ૧૬. મયૂરકૃત સૂર્યશતક : (સંસ્કૃત)

પ્રસિદ્ધ ગુજરાતી કવિ મયૂરની આ માત્ર ૧૦૦ શ્લોકની અદ્ભુત રચનાએ કવિને ખૂબ ખ્યાતિ અપાવેલી. તેમાં સૂર્યકિરણોના પ્રભાવને વૈજ્ઞાનિક ઢબે સમજાવ્યો છે. આ કાવ્ય ઉપર આત્રેય કુલના કોઈ પંડિતે લખેલી પ્રાચીન ટીકાને આધારે શ્રી શાસ્ત્રીજીએ આ કૃતિનું સંપાદન કર્યું છે.

### ૧૭. ભાગવતનિબન્ધાર્ક : (સંસ્કૃત)

‘શ્રીદેવીભાગવત’ તેમજ ‘શ્રીમદ્ભાગવતપુરાણ’નો સમાવેશ ૧૮ મહાપુરાણોમાં થાય કે નહિ તેની ચર્ચા કરતો આ એક પ્રાચીન ગ્રંથ છે.

### ૧૮. વિવેકઘૈર્યાશ્રય : (હિન્દી)

શ્રીવદ્ધભાચાર્યપ્રણીત સંસ્કૃત ગ્રંથનો આ હિન્દી અનુવાદ છે.

### ૧૯. બ્રહ્મવાદ : (હિન્દી)

શ્રીહરિરાયજીવિરચિત સંસ્કૃત ગ્રંથનો આ હિન્દી અનુવાદ છે.

### ૨૦. તત્ત્વદીપનિબન્ધ અને તત્ત્વપ્રતિપાદવસ્તુ : (ગુજરાતી)

શ્રીવદ્ધભાચાર્યવિરચિત ‘તત્ત્વદીપનિબન્ધ’ (સંસ્કૃત) ઉપરનો આ ગુજરાતીમાં સ્વતંત્ર વિસ્તૃત ચર્ચા કરતો પાંડિત્યપૂર્ણ નિબન્ધ છે, જેમાં શ્રી શાસ્ત્રીજીએ શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાન્તને વિવિધ શાસ્ત્રોની દૃષ્ટિએ વિશદ રીતે સમજાવ્યો છે.

૨૧-૨૫. તત્ત્વાર્થદીપ નિબન્ધના સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં પરિશિષ્ટરૂપે પાંચ ગ્રંથો આપ્યા છે. (૧) ભાગવત સ્વરૂપ વિષયક શંકા નિરુસવાદ, ગોસ્વામી પુરુષોત્તમજી વિરચિત. (૨) ભાગવત પ્રમાણ ભાસ્કર, આના કર્તા અજ્ઞાત છે. (૩)



દુર્જનમુખ ચપેટિકા, ભટ્ટગંગાધર (પ્રહસ્તિકા વ્યાખ્યાકાર, પં. કનેયાલાલ) (૪) ભાગવત નિર્ણય સિદ્ધાન્ત રચનાકાર શ્રીદામોદર (૫) શ્રીમદ્ ભાગવત વિજયવાદ, કર્તા શ્રીરામકૃષ્ણ શર્મા.

આ પાંચ ગ્રંથો શ્રીમદ્ભાગવતનું માહાત્મ્ય દર્શાવી તે ૧૮ મહાપુરુષોમાંનું એક છે એમ સમજાવે છે.

૨૬. શ્રીમદ્ભાગવતચતુઃશ્લોક

‘ચતુઃશ્લોકી ભાગવત’ તરીકે પ્રસિદ્ધ પામેલા ‘ભાગવત’ના દ્વિતીય સ્કન્ધના ચાર શ્લોકો. આ અતિ મહત્વ ધરાવતા શ્લોકોની વિશદ ચર્ચા કરી શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાંતની દૃષ્ટિએ તેમનો અર્થ અહીં સમજાવ્યો છે.

૨૭. ગોપાલપૂર્વતાપિની ઉપનિષદ્ : (સંસ્કૃત)

‘અથર્વવેદ’માં જેનો ઉલ્લેખ છે એવા આ મહત્વપૂર્ણ ઉપનિષદ્ ઉપર ગોસ્વામી ૧૦૮ શ્રીઅનિરુદ્ધલાલજી મહારાજશ્રીએ ભાષ્ય રચ્યું છે અને એમણે પોતે સંશોધનપૂર્વક ટીકા લખી છે. એ બંને સાથે શ્રી શાસ્ત્રીજીએ આ ઉપનિષદ્ પ્રકાશિત કર્યું છે. આ પ્રકાશનની આગવી વિશિષ્ટતા રૂપે શ્રી શાસ્ત્રીજીની ૪૦ પાનની અભ્યાસપૂર્ણ પ્રસ્તાવના ગણાય, જેમાં તેમણે પુષ્ટિમાર્ગમાં જે ‘બ્રહ્મસમ્બન્ધ’ની દીક્ષા અપાય છે તેની વિગતવાર છણાવટ કરી છે.

૨૮. ભાગવતનિબન્ધાનુસાર અધ્યાયાર્થ : (સંસ્કૃત-ગુજરાતી)

આના મૂળ લેખક શ્રીગોકુલનાથજી હતા. તેની એક જ પ્રત ઉપલબ્ધ છે. આ સંસ્કૃત ગ્રંથમાં શ્રીગોકુલનાથજીએ ‘ભાગવતપુરાણ’માંથી કથાઓ આપી છે અને તેમનો દરેક અધ્યાય તેમજ પ્રતિપાદ્યસિદ્ધાન્ત સાથેનો સંબંધ વિશદ રીતે દર્શાવ્યો છે. આવો પ્રયત્ન બીજા ટીકાકારે ક્યો લાગતો નથી અને તેમનો આ પ્રયાસ સંપૂર્ણતયા સફળ રહ્યો છે. શ્રી શાસ્ત્રીજીએ પોતાના આ પ્રકાશનમાં ગુજરાતી અનુવાદ તેમજ અતિમહત્વપૂર્ણ પ્રસ્તાવના મૂક્યાં છે.

૨૯. જામવિજયકાવ્ય : (સંસ્કૃત)

આમાં નવાનગરના રાજ્યનો પ્રાચીન ઇતિહાસ નિરૂપાયો છે. આની એક હસ્તલિખિત પ્રત લંડનની ઈન્ડિયા ઓફિસ લાયબ્રેરીમાં રાખવામાં આવી છે.

સામાયિકો :-

આ ઉપરાંત શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજીએ કેટલાંક સામાયિકો પણ ચલાવેલાં તેની વિગતો આ રહી :

૧. યેષ્ઠાવયેભવ : (હિન્દી)

શ્રી શાસ્ત્રીજી જ્યારે વારાણસીના શ્રીગોપાલમંદિરના ગાદીપતિ ગોસ્વામી શ્રીમુરલીધરલાલજી મહારાજના અધ્યાપક તરીકે નિમાયેલા ત્યારે તેમણે વારાણસીથી આ હિન્દી માસિક શરૂ કરેલું. ત્રણ વર્ષ પછી જ્યારે તેઓ વારાણસીથી ભરતપુર રાજ્યના કામવનમાં ગયા ત્યારે આ માસિક સ્વાભાવિક રીતે બંધ પડ્યું. તથાપિ તે પછી ઘણા લાંબા સમય સુધી તેના જૂના અંકોની માગ ચાલુ રહેલી.

૨. યેષ્ઠાવધર્મપતાકા :

આ માસિક પણ શ્રી શાસ્ત્રીજીના સમ્પાદનમાં મુંબઈ તથા અમદાવાદથી પ્રગટ થતી. કામવનના ગોલોકવાસી ગોસ્વામી શ્રીદેવકીનન્દનજી મહારાજની સ્મૃતિમાં તે પ્રકટ થઈ હતી. બે વર્ષ બાદ કામવનથી શ્રી શાસ્ત્રીજી પાછા વારાણસી ગયા ત્યાં સુધી તેઓ તેનું સમ્પાદન કરતા રહ્યા.

૩. પીયૂષ પત્રિકા : (સંસ્કૃત)

નડીઆદ તેમજ જામનગરના મંદિરના ગોસ્વામી ૧૦૮ શ્રીઅનિરુદ્ધાચાર્યજીએ શ્રી શાસ્ત્રીજીને વારાણસીથી બોલાવ્યા અને તેમની પાસે તેઓએ શાંકર વેદાન્ત, ન્યાયદર્શન તેમજ યૈશેષિક દર્શનનો અભ્યાસ કર્યો. આ સમયે શ્રી શાસ્ત્રીજીએ તેમની સંસ્કૃત માસિક પત્રિકા ‘પીયૂષ પત્રિકા’ શરૂ કરી. આ માસિક પત્રિકાએ શ્રી શાસ્ત્રીજીને વિદ્વદ્વર્ગમાં ઘણી ખ્યાતિ આપી. તેમાં પ્રકાશિત થતાં લખાણોની અતિ ઉચ્ચ કક્ષા તથા તેના બહોળા ફેલાવાને કારણે ત્યારે પ્રકટ થતાં સંસ્કૃત સામાયિકોમાં આ પત્રિકા અગ્રેષ્ઠ ગણાતી. તેના ગ્રાહકો અને પ્રશંસકોમાં મેકડોનેલ, વિન્ટરનિટ્ઝ, કીથ અને પ્રો. સિલ્વન લેવી જેવા તે સમયના મહાન પાશ્ચાત્ય સંશોધકોનો પણ સમાવેશ થતો હતો. આ પત્રિકામાં ખૂબ વિદ્વત્તાપૂર્ણ અને ચિન્તનપ્રેરક લેખો પ્રકટ થતા, જેમાં સંશોધનનો એક અલગ વિભાગ પણ રહેતો. શ્રી શાસ્ત્રીજીએ એના પ્રકાશનમાં ખૂબ ધનવ્યય કર્યો અને તેને પ્રથમ કક્ષાનું સામાયિક બનાવી દીધું. પરંતુ છેવટે તેને પણ આર્થિક સહાયને અભાવે તેમને ન છૂટેકે બંધ કરવું પડ્યું !

૪. પુષ્ટિપીયૂષ : (ગુજરાતી)

સંસ્કૃત ‘પીયૂષ પત્રિકા’ના જેવું જ આ ગુજરાતી માસિક હતું, જેને શ્રી શાસ્ત્રીજી નડીઆદથી ચલાવતા. તે પણ ચાર વર્ષ ચાલ્યું.

૫. જ્યોતિ : (ગુજરાતી)

વર્ણાશ્રમ સ્વરાજ્ય સંઘની મુંબઈ શાખાનું આ સાપ્તાહિક મુખપત્ર હતું.

મહાત્માગાંધીની અસ્પૃશ્યતા નિવારણની ચળવળના તેમજ મંદિર પ્રવેશના નવા કાયદાના વિરોધમાં શ્રી શાસ્ત્રીજી આ પત્રિકા ચલાવતા. લોકમાન્ય તિલકના 'કેસરી'ના જેવું આ સાપ્તાહિક નીકળતું. તેમાં મહત્વના સમકાલીન રાજકીય, ધાર્મિક અને સામાજિક પ્રશ્નોની સરસ છણાવટ કરતાં. આ ચળવળ બંધ થતાં આ સાપ્તાહિક પણ આપોઆપ બંધ થયું.

ઉપર આપેલી વિગતો ઉપરથી સ્પષ્ટ સમજાય છે કે 'પંડિતકુલકૌસ્તુભ', 'મીમાંસારત્ન', 'મીમાંસાભૂષણ' જેવી માનાર્હ ઉપાધિઓથી આચાર્યોએ જેમને નવાજેલા તેવા પૂ. શ્રી હરિશંકર ઓમકારજી શાસ્ત્રીજી પોતાને વારાણસીમાંથી પ્રારંભે પ્રાપ્ત થયેલી 'મીમાંસા શાસ્ત્રી' તથા 'વેદાન્તવિશારદ' જેવી પદવીઓને સાર્થક્ય અર્પી જીવનભર વિદ્યાનો ભેખ ધરીને રહેલા હતા. આર્થિક સંકડામણને કારણે પોતાનાં અનેક સંશોધન કાર્યો અપૂર્ણ રહી ગયા છતાં આ મહાન વિદ્યાપુરુષ નિરાશાના સૂર વિના પોતાની જીવનસાધના આગળ ધપાવ્યે ગયા એ ભારતીય સંસ્કૃતિનું એક આગવું લક્ષણ છે. પોતાનાં વિદ્યાકાર્યો દ્વારા પોતાને મળેલ 'પંડિતકુલકૌસ્તુભ' એ સન્માનને તેમણે બરાબર સાર્થ કરી બતાવ્યું છે. આર્થિક સુવિધા સાંપડી હોત તો નિઃશંક તેઓ ઘણું અધિક મૂલ્યવાન પ્રદાન ભારતીય સંસ્કૃતિને ચરણે ધરી શક્યા હોત; પરંતુ તેઓ પોતાના મર્યાદિત જીવનકાલ દરમિયાન જે કંઈ આપી ગયા છે તે પણ કંઈ નાનુંસૂનું પ્રદાન નથી જ. શુદ્ધાદ્વૈતમાં નેપુણ્ય મેળવેલ વિદ્વાનોમાં બહુધા અન્ય દર્શનોનું એટલું ઊંડું અને વ્યાપક જ્ઞાન ભાગ્યે જ હોય છે. શ્રી શાસ્ત્રીજીની બાબતમાં અન્ય દર્શનોમાંનું ઊંડાણ અને વ્યાપ પણ એટલાં જ હતાં એ ખાસ નોંધપાત્ર હકીકત છે. આને પરિણામે સર્વ સિદ્ધાન્તોની સમુચિત તુલના કરીને તેઓ સાચું મૂલ્યાંકન કરી શકતા. સંસ્કૃત ભાષામાં બોલવું કે લખવું કે ગંભીર દલીલો કરવી કે એવી દલીલો કાપવી એ એમને માટે ગુજરાતી જેટલું જ સાહજિક બની ગયેલું. ગુજરાતી તેમજ હિન્દીમાં તેમણે મૂળ સંસ્કૃત ગ્રંથોના કરેલા અનુવાદો પણ વિશિષ્ટ પ્રોઢિ શૈલી યુક્ત રહ્યા છે.

આવું અદ્ભુત અને અપરિમિત ઉચ્ચ સાહિત્ય લેખન કરનારા પં. હરિશંકર શાસ્ત્રીજી ખરાઅર્થમાં સારસ્વત પુરુષ હતાં. તથા ભાષામાધુર્યને કારણે મૌલિક જેવા બની ગયા છે.

ગુજરાતના ગૌરવસમા આવા વિરલ સારસ્વતને તેમની જન્મશતાબ્દી પ્રસંગે કોટિ કોટિ વંદન !



## પાંડિત્ય અને પુરુષાર્થની વિરાટ પ્રતિમા

### પંડિતકુલકૌસ્તુભ શ્રદ્ધેય શ્રીહરિશંકર શાસ્ત્રીજી

પાસ્પદ્ધિતિ હિ પુષ્પવત્સુ ધવલો યેષાં યશો ભાસ્વરઃ  
શાસ્ત્રજ્ઞેષુ ચ સર્વશાસ્ત્રવિભવો સંસ્પર્દ્યતે વાક્પતિમ્ ।  
ઔદાર્યે કિલ ભવ્યદાનચરિતં કલ્પદ્રુમં લંઘતે  
પૂજ્યાઃ શ્રીહરિશંકરાઃ બુધવરાઃ વિજ્ઞૈઃ સદા સ્મર્યતે ॥

શુદ્ધાદ્વૈત પથે કૃતાઃ બહુવિધાઃ નામાઘ્ય સેવાદ્રુતા  
સાહિત્યં સુવિચાર્ય મર્મ સહિતં સમ્પાદિતં મુદ્રિતમ્ ।  
સર્વત્રૈવ યશસ્વિનઃ સુજયિનઃ છાત્રાઃ મુદાધ્યાપિતાઃ  
પૂજ્યાન્ શ્રીહરિશંકરાન્ સુચરિતાન્ સમ્પૂજયામો હ્રદા ॥

સદા પષ્ણિતવૃન્દેષુ કૌસ્તુભેવ સુદીપ્તિમાન્  
પૂજ્યાન્ ધર્મપરાન્ નિત્યં નમામો હરિશંકરાન્ ॥

#### જ્ઞાતિ ગૌરવ

ભગવદ્દશાસ્ત્ર નિષ્ણાત અમારા પ્રાતઃસ્મરણીય શાસ્ત્રીજીના પૂર્વજો સૈકાઓ પૂર્વે શ્રીતસ્માર્ત કર્મકાંડના પ્રકાંડ વિદ્વાનો તરીકે શ્રીનગર (કાશ્મિર)માં વસેલા. પંદરસો વર્ષ પહેલાં ત્યાંથી માળવાના રાજપરિવારે માળવા બોલાવ્યા હતા. શ્રીનગરથી આવેલા શ્રીગુરુ બ્રાહ્મણ અને અપભ્રંશે શ્રીગોડ બ્રાહ્મણ તરીકે આજે પણ વિખ્યાત છે.

#### સિદ્ધરાજે કહેલ સન્માન

સંવત્ અગિયારસો પચાસમાં ગુર્જરાધિપતિ સિદ્ધરાજે ગુજરાતમાં રુદ્રમાળનું નિર્માણ કર્યું એ પ્રસંગે આ માટેના તત્પજા વિદ્વાનોની આવશ્યકતા જણાતા માળવાથી એમના પૂર્વજોને સાદર આમંત્રણ આપી બોલાવ્યા અને રુદ્રમાળનો વિધિ એમના દ્વારા સંપન્ન કરાવ્યો. સત્કાર રૂપે વડોદરા પાસે છાયાપુરી (છાણી) ગામમાં જાગીરી આપી. વસવાટ કરાવ્યો તે સમયમાં વિદ્વાનોની વિદ્વતા અને શાસ્ત્રોનું તલસ્પર્શી અધ્યયન અધ્યાપનને કારણે છાયાપુરી ગામની ખ્યાતિ સમસ્ત ભારતમાં છોટી કાશીપુરી રૂપે પ્રસરી હતી.

### પૂર્વજોની અપૂર્વતા

પેશ્વાઓના શાસનકાળમાં મધ્યભારતના બુરહાનપુર નગરના શાસક સુબાઓને વેદ શાસ્ત્રોના નિષ્ણાત અને કર્મકાંડના જ્ઞાતા પુરોહિતની આવશ્યકતા જણાતા ગુજરાતના છાયાપુરી ગામથી શાસ્ત્રીજીની સાત પેઢી પૂર્વેના વિદ્વાન પરિવારને સન્માન સાથે આરાંત્રી નગર પાસે લોદીપુરા ગામમાં વસાવ્યા. જ્યાં આજે પણ એમના કુળદેવતાનું મંદિર છે. બુરહાનપુરની ફરતે બાવનપરા છે. તેમાં વસતા બ્રાહ્મણોના શુક્લ (પુરોહિત) તરીકે એમના કુટુંબના વિદ્વાનો કાર્યરત છે.

### સારસ્વત આનુવંશિકતા

અવિચ્છિન્ન વિદ્વત્પરંપરામાં પરમજ્ઞાની જ્ઞાનના ઓજસ્ પ્રસરાવતા પૂજ્ય શ્રી વામનજી શુક્લ શાસ્ત્રીજીના પિતામહ હતા. જેમના અધ્યક્ષ (આચાર્ય) પદે અને તત્ત્વાવધાનમાં અનેક યજ્ઞ કાર્યો ધર્મકાર્યો સંપન્ન થયા હતા. એમના યશસ્વી શિષ્યોની પરંપરા આજે પણ વિદ્યમાન છે અને વિદ્યાગુરુના યશોગાન ગાય છે. પંડિત શ્રી વામનજી શુક્લજીને ત્રણ પુત્રો હતા: મોટા પુત્ર ઓમકારજી વયલા માધવજી અને નાના લીલાશંકરજી. આમાં મોટાપુત્ર શ્રી ઓમકારજીને શ્રી રૂપાલક્ષ્મીની કુખે પૂજ્ય શ્રી હરિશંકરજી શાસ્ત્રીજીનો જન્મ થયો હતો. એ મંગલ દિવસ હતો સંવત્ ઓગણીશસો છપ્પન વૈશાખ સુદ પાંચમ શુક્રવાર, સન્ ઓગણીશસો મે ની ચોથી તારીખ.

### સિદ્ધિની સમૃદ્ધિ

કુટુંબના મોટા પુત્રને ત્યાં પ્રથમ પુત્ર હોવાથી શેશવકાળમાં સર્વની અસાધારણ વાત્સલ્ય સ્નેહ વર્ષામાં શાસ્ત્રીજીની બાલ્યાવસ્થા કુટુંબનો આનંદસાગર હતો. શાસ્ત્રીજીના પિતામહી પૂજ્ય મણિબાના પિતાજી મહાન્ સિદ્ધયોગી પુરૂષ હતા. એમણે એક સમયે સૂર્યગ્રહણના સમયમાં સૂર્યપુત્રી તાપી નદીના તીરે બાળક (શાસ્ત્રીજી)ની જિહવા પર વાગીશ્વરી વિદ્યાના બીજ મંત્રના પ્રયોગથી શાસ્ત્રીજીને ચતુર્દશ વિદ્યાના અધિષ્ઠાત્રી શારદામ્બાની પૂર્ણ સાક્ષાત્કારના અધિકારી બનાવ્યા હતા.

### સાવિત્રવ્રત-જ્ઞાનોપાસના

બાલ્યાવસ્થામાં પૂજ્ય દાદાજી, પિતાજી અને કાકાજીએ અધ્યયનનો પ્રારંભ કરાવ્યો. રમત-રમતમાં વાતો-વાતોમાં શબ્દરૂપાવલી, ધાતુરૂપાવલી, સમાસચક્ર અમરકોષ, પંચતંત્ર, હિતોપદેશ, નીતિશતક વગેરેનું અધ્યયન શાસ્ત્રીજીનું પૂર્ણ થયું હતું.

આઠ વર્ષની ઉંમરે ત્યાંના વેદ શાસ્ત્ર સંપન્ન કર્મકાંડના પ્રકાંડ પંડિત પૂજ્ય શ્રી ભૈયાજી શાસ્ત્રી દ્વારા શાસ્ત્રીજીને ઉપનયન સંસ્કાર થયા હતા. બ્રહ્મચર્યવ્રતી બની મૃગયર્મ, મેખલા, બ્રહ્મદંડ અને જટા ધારણ કરી પ્રાતઃસાચં સંધ્યોપાસના અગ્નિમાં સમિધાદાન અગ્નિ પરિચયરણથી બ્રહ્મવર્યસ્વી બન્યા. અને પૂજ્ય શ્રીગુરુચરણ પાસે વેદોનું અધ્યયન, પૂજ્ય પિતાજી તથા પૂજ્ય કાકાશ્રી પાસે વેદાંગોનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું હતું.

### જ્ઞાનમાં પ્રવીણતા-ગાર્હસ્થ્ય પ્રવેશ

બુરહાનપુરમાં જ્ઞાતિના કોઈ માંગલિક પ્રસંગે રાજસ્થાનના કરોલી રાજ્યના રાજગુરુ રાજપંડિત રાજજ્યોતિષી વિદ્વદ્વર્ય પૂજ્યશ્રી અમરેશ્વરજી અને પૂજ્ય શ્રી વાગેશ્વરજી પધાર્યા હતા, એ સમયે તેઓ શાસ્ત્રીજીના વડિલોને મળવા ઘેર પધાર્યા ત્યારે વિદ્યાર્થીઓ વેદાધ્યયન કરતા હતા. તેમાં ચૌદ વર્ષની કિશોરવયના શ્રીહરિશંકરજી ચતુર્વેદ સંહિતાનું સત્વર મુખપાઠ પારાયણ કરતાં હતા. તે જોઈ પ્રભાવિત થયેલા રાજપંડિતોએ અંત્યંત પ્રસન્નતા પ્રકટ કરી. અસાધારણ મેધાશક્તિ તેમજ શાસ્ત્રીજીના બ્રહ્મતેજથી આકર્ષિત રાજપંડિત શ્રી વાગેશ્વરજીએ પોતાની વહાલસોઈ કન્યા જડાવલક્ષ્મીનું શાસ્ત્રીજી અર્થે વાગ્દાન કરાવાની પોતાની વિનંતિ સ્વીકારવા જણાવ્યું. સહર્ષ આ નિવેદન શાસ્ત્રીજીના વડિલોએ પ્રભુની ઈચ્છા રૂપે સ્વીકાર્યું અને શાસ્ત્રીજીના વાગ્દાનનો વિધિ સુવર્ણમાં સુગંધ ભળે તેવા આનંદથી સંપન્ન થયો, અને કરોલીના રાજપંડિતો કરોલી વિદાય થયા.

એક વર્ષ પછી રાજસ્થાનની કરોલી નગરીમાં રાજપંડિત વાગેશ્વરજીના સુપુત્રી શ્રી જડાવલક્ષ્મી સાથે શાસ્ત્રીજીની પંદર વર્ષની વયે પાણીગ્રહણ સંસ્કાર વિધિ ખૂબ જ જાહોજલાલીથી કરવામાં આવ્યો હતો. રાજપંડિતજીએ જાન દશ દિવસ રોકી ખૂબ જ ભાવથી સર્વની આગતા-સ્વાગતા કરી હતી. કરોલી નરેશ શ્રી ભમરપાલજીના બુરહાનપુરથી પધારેલા વિદ્વાનોને રાજદરબારમાં પધારવાના ખાસ આગ્રહભર્યા નિમંત્રણથી સર્વે રાજદરબારમાં પધાર્યા હતા. રાજદરબારમાં ઉપસ્થિત થયેલી શાસ્ત્રચર્યામાં શાસ્ત્રીજીની પ્રત્યુત્પન્નમતિ વિદ્વતા તેજસ્વી પ્રતિભા જોઈ કરોલી નરેશ શિરપાવ અને મહાવસ્ત્રથી શાસ્ત્રીજીનું સન્માન કરેલું.

### ગૌરવપૂર્ણ ગુરુજનોનો તેજસ્વી તારસો

બુરહાનપુરમાં સત્તર વર્ષની વયમાં વારાણસીની સંસ્કૃતની પરીક્ષાઓમાં પ્રથમ રહેલા. પરીક્ષાનું કેન્દ્ર ખંડવામાં હતું. ખંડવાની હવેલીમાં બિરાજતા પૂજ્યશ્રી મહારાજે પોતાના શાસ્ત્રીજી તરીકે શાસ્ત્રીજીને રાખ્યા. લગભગ એક વર્ષ રહ્યા હશે

ત્યાં કોઈ માંગલિક પ્રસંગે કાશીના પૂજ્ય ગોસ્વામી શ્રીમુરલીધરજી પધારેલા. પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીની પ્રતિભાથી પ્રભાવિત થઈ શાસ્ત્રીજીને પોતાની સાથે આત્મીયતાથી કાશી લઈ ગયા.

વારાણસીમાં પોતાના અનેકવિધ કાર્યો સાથે શાસ્ત્રીજીએ અખિલ ભારતીય વિદ્વદ્વંદમાં સમાવેશીય મહામહોપાધ્યાય પૂજ્યશ્રી નિત્યાનંદ શાસ્ત્રી પર્વતીય પાસે શ્રૌતસૂત્રોનું ગહન અધ્યયન કર્યું. વારાણસેય કોલેજ ઓફ ઓરીઅન્ટલ લર્નિંગના આચાર્ય મહામહોપાધ્યાય પૂજ્ય શ્રીબાલકૃષ્ણ મિશ્રજી પાસે વેદાન્ત વગેરે શાસ્ત્રોનું અને બનારસ યુનિવર્સિટીની કોલેજ ઓફ ઈયોલોજીના આચાર્ય મહામહોપાધ્યાય પૂજ્ય શ્રી ચિત્રસ્વામિ શાસ્ત્રીજી પાસે મીમાંસા દર્શન અને ન્યાયદર્શનનું તલસ્પર્શી અધ્યયન કરી સન્માન સહ શાસ્ત્રી પદવી પ્રાપ્ત કરી હતી. વડોદરા આવતા માસ દક્ષિણા પરીક્ષામાં મીમાંસા રત્ન અને નાદિયા (શાન્તિપુર બંગાળ) થી વેદાન્ત વિશારદની વિશેષ યોગ્યતા સહ પદવી પ્રાપ્ત કરી. પૂજ્ય ગોસ્વામી મહારાજશ્રીને પણ આચાર્ય ગૌરવોચિત અભ્યાસ કરાવ્યો.

#### સહાધ્યાયી સમર્થ મહાનુભાવો

પૂજ્યપર શાસ્ત્રીજીના સહાધ્યાયીઓ વિદ્વતાના ક્ષેત્રે વંદનીય સદા સ્મરણીય રહ્યા છે. પૂજ્યશ્રી પદ્માભિરામ શાસ્ત્રીજી શ્રીસુબ્રહ્મણ્ય શાસ્ત્રીજી જેઓએ આચાર્ય પદવી પ્રાપ્ત કર્યા બાદ બનારસ હિન્દુ યુનિવર્સિટીમાં મીમાંસા દર્શનના વિભાગાધ્યક્ષ પદે હતા. ત્રીજા શ્રીરામસ્વામી શાસ્ત્રીજી પ્રાચ્ય વિદ્યામંદિર, વડોદરામાં શાસ્ત્રાનુસંધાન અને રામાયણ સંશોધન વિભાગમાં ઉચ્ચપદે હતા. આ ત્રણેય વિદ્વાનો ભારતના વિદ્વાનોમાં આગવું સ્થાન ધરાવતા હતા પણ શાસ્ત્રીજી તો સદાય સર્વમાન્ય મૂર્ધન્ય રહ્યા છે.

#### પુષ્ટિમાર્ગમાં ચિરંજીવી પ્રદાન

વારાણસીમાં પણ વિદ્યાનું ક્ષેત્ર જીવનક્ષેત્ર જ શાસ્ત્રીજીનું રહ્યું હતું. શ્રીગોપાલ મંદિરના પૂજ્યપાદ ગોસ્વામી શ્રીમુરલીધરજી મહારાજશ્રીને સાંપ્રદાયિક શાસ્ત્રીય ગ્રંથોનું અધ્યયન કરાવ્યું તેમજ “યેષ્ણવ યેભવ” યેષ્ણવ ધર્મ પતાકા” હિન્દી માસિક પત્રિકાના તન્ત્રી પદે રહી સુંદર સંપાદન કાર્યમાં યશસ્વી રહ્યા. સને ૧૯૨૪ માં ચોવીસ વર્ષની વયે શાસ્ત્રીજીએ ‘પુષ્ટિમાર્ગીય સ્તોત્રરત્નાકર’ શ્રીહરિરાયજી વિરચિત ‘બ્રહ્મવાદ’ રામકૃષ્ણ ભક્ત કૃત શુદ્ધાદ્વૈત પરિષ્કારનું સંપાદન હિન્દી ભાષાન્તર વિવિધ સંપ્રદાયોના મતમતાન્તરોની સમીક્ષાત્મક સંસ્કૃત ભૂમિકા સહિત પ્રકાશન કર્યું હતું.

#### ગુજરાતની ગૌરવયાત્રા

અમદાવાદમાં ગોસ્વામી ૧૦૮ શ્રીનટવરગોપાલજીના ઉપનયન પ્રસ્તાવ પ્રસંગે કાશીથી ગોસ્વામી ૧૦૮ શ્રીમુરલીધરજી મહારાજશ્રી સાથે શાસ્ત્રીજી મહારાજશ્રીના શાસ્ત્રીજી તરીકેના ગૌરવથી અમદાવાદ આવ્યા હતા. આ પ્રસંગે ઘણા બધા પુષ્ટિમાર્ગીય આચાર્યશ્રીઓ અને વિદ્વાનો પધારેલા. શાસ્ત્રીય ચર્ચાઓમાં પૂજ્ય શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રીજીની શાસ્ત્ર પ્રતિભાથી બધા જ પ્રભાવિત અને પ્રસન્ન થયેલા. આમાં જામનગરથી પધારેલા ગોસ્વામી ૧૦૮ શ્રી અનિરૂદ્ધલાલજી મહારાજશ્રીએ શાસ્ત્રીજીને આગ્રહ કરી આદર સહ પોતાની સાથે જામનગર આવવા આમંત્રણ આપ્યું. તેનો સ્વીકાર કરી ઓગણીશસો સત્તાવીશમાં સત્તાવીસ વર્ષની વયે જામનગર આવ્યા. મહારાજશ્રીને દર્શન શાસ્ત્રોનું અધ્યયન કરાવ્યું. પૂજ્ય ગોસ્વામી શ્રીમહારાજનું નકિયાદમાં પણ વિશાળ સ્થાન (મંદિર) હતું. ગ્રંથ મુદ્રણનું કાર્ય અમદાવાદમાં કરવાની સાનુકૂળતા રહે તેથી મહારાજશ્રીએ અને સાથે પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીએ નકિયાદમાં નિવાસ કર્યો.

#### સર્વોત્તમ સંપાદકત્વ

પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીના તન્ત્રીપદે ‘શ્રીપુષ્ટિ પીયૂષ’ ગુજરાતી સાંપ્રદાયિક માસિક પત્રિકા અને સંસ્કૃતમાં ‘પીયૂષ પત્રિકા’ આ પત્રિકાઓના વિશિષ્ટ વિશેષાંકો દર્શનાંક, રાસાંક, બ્રહ્મવાદાંક, નિત્યલીલાંક વગેરે અંકો દેશ વિદેશમાં વિદ્વાનોમાં સુજ્ઞ સમાજમાં અતિ આદર પામ્યા હતા. શાસ્ત્રીજીના અભિન્ન હૃદય મિત્રવર્થ સ્નેહી સંબંધી કે ભાઈ એકબીજાના સર્વસ્વ એવા પૂજ્ય શ્રીબદરીનાથ શાસ્ત્રીજીનો સંસ્કૃત પીયૂષ પત્રિકામાં એક લેખ છપાયો હતો. દેશની આઝાદી આગ ઝરતી ભાષામાં જેનું મથાળું હતું કે અંગ્રેજોના લોહીથી ભારતભૂમિ રંગારો તો જ આઝાદી મળશે. આ લેખ શાસ્ત્રીજીના તેજોદ્રેષીઓએ અંગ્રેજ હાકેમ આગળ રજૂ કરતાં પ્રેસ જસ કરવામાં આવ્યું. ઘણું બધું સાહિત્ય કુવામાં નાંખી દેવામાં આવ્યું. શાસ્ત્રીજી ઉપર કેસ કરવામાં આવ્યો શ્રીબદરીનાથ શાસ્ત્રીજી ઉપર સી.આઈ.ડી. મુકવામાં આવી હતી. આ બધામાંથી ભગવતકૃપાથી શાસ્ત્રીજીનું રક્ષણ થયું પણ પીયૂષપત્રિકા બંધ થઈ ગઈ. ભારતની ગુલામી દૂર કરવા અને દેશની આઝાદીની ભાવના શાસ્ત્રીજીના શ્વાસે શ્વાસે ભરી હતી. પછી શાસ્ત્રીજીએ સાંપ્રદાયિક આકર ગ્રંથોનું સંપાદન, વિવિધ ગ્રંથો ઉપર ટીકાઓ ટીપ્પણીઓ ભાષાંતર વગેરે લખી અપ્રાપ્ય ગ્રંથોનું પ્રકાશનનું ભગીરથ કાર્ય આરંભ્યું જેની વિગત આગળ દર્શાવવામાં આવી છે.

### વર્ણાશ્રમ સ્વરાજ સંઘના માંધાતા વક્તા

સન ૧૯૩૨ માં નડિયાદ મુકામે અખિલ ભારતીય સ્વરાજ સંઘનું છઠ્ઠું અધિવેશન ૨૮ ડિસેમ્બર ૧૯૩૨ થી ૧ જાન્યુઆરી ૧૯૩૩ સુધી યોજવામાં આવ્યું હતું. આ અધિવેશનમાં મુંબઈના ગોસ્વામી શ્રીગોકુલનાથજી મહારાજ, ગો. શ્રીવલ્લભજી મહારાજ, ગો. શ્રીગોપિકાવલ્લભજી મહારાજ, શ્રી રામાનુજાચાર્યજી, જગન્નાથપુરીના ગોવર્ધનપીઠના શંકરાચાર્ય શ્રીભારતીકૃષ્ણ તીર્થજી તથા અન્ય સમર્થ મહાનુભાવો પધાર્યા હતા. સર્વ આચાર્યવરોએ વર્ણાશ્રમ સંઘના સૂત્રધાર વિદ્વાનોએ પ્રજ્ઞ સિદ્ધાંતપૂર્ણ પ્રવચનોથી સફળ બનાવ્યું હતું. આ અધિવેશનથી પૂજ્ય ગોસ્વામી શ્રીઅનિરુદ્ધલાલજી મહારાજની અને પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીની કીર્તિ સર્વત્ર ફેલાઈ હતી. આ પછી પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીએ યેષ્ઠાવ પરિષદમાં એ સમયના અગ્રગણ્ય ગોસ્વામી આચાર્યવરો અને પૂ. પ્રોફેસર મગનલાલ શાસ્ત્રીજી, પૂજ્ય શ્રી જટાશંકર શાસ્ત્રીજી, પૂજ્ય શ્રી રમાનાથ શાસ્ત્રીજી, પ્રોફેસર જેઠાલાલ શાહ, શ્રીનાનુભાઈ ગાંધી, પૂજ્યશ્રી કેશવરામ કા. શાસ્ત્રીજી, પૂજ્યશ્રી બદરીનાથ કા. શાસ્ત્રીજી વગેરે વિદ્વદ્જનો સાથે રહી સંપ્રદાયના ઉત્કર્ષ માટે પ્રચાર-પ્રસારના અનેક કાર્યોનું આયોજન કરી સંપ્રદાયના વિદ્વેષીઓ સાથેની લડતમાં એક નીડર સેનાપતિ રૂપે આગળ આવ્યા હતા. એક સભામાં અન્ય સર્વ મતોના વિદ્વાનોને નિરૂત્તર કરી શ્રીમહાપ્રભુજીના અખંડ બ્રહ્મવાદનું નિરૂપણ એટલું સુંદર કરેલું કે જેના ફલરૂપે આચાર્યો દ્વારા પૂજ્ય શ્રીહરિશંકર શાસ્ત્રીજીને ‘પંડિત કુલ કૌસ્તુભ’ અને પૂજ્ય શ્રી બદરીનાથ શાસ્ત્રીજીને ‘પંડિત પંચાનન’ માનાર્હ પદવી મંચ પરથી આપવામાં આવી હતી.

### સર્વત્ર યશો વિજય પતાકા

સન્ ૧૯૩૭ થી ૧૯૪૨ સુધી શાસ્ત્રીજીનું કાર્યક્ષેત્ર મુંબઈ હતું. આ સમય દરમિયાન આર્યસમાજીઓ અને વિદ્યર્થીઓ દ્વારા કેવળ દ્વેષભાવથી પ્રેરાઈને પુષ્ટિમાર્ગ અને પુષ્ટિમાર્ગીય આચાર્યો પર મનઘડંત ઉપજાવી કાઢેલા આક્ષેપો થતા મુંબઈની હાઈકોર્ટમાં કેસ કરવામાં આવેલો અને તેમાં સંપ્રદાયના નીડર સેનાપતિ તરીકે શાસ્ત્રીજીએ લડત આપી. સંપ્રદાય અને આચાર્યોને ગૌરવાન્વિત કર્યા હતા. આ નિમિત્તે શાસ્ત્રીજીનું સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યોએ સન્માન કરી ચાલીસ હજાર રૂપિયા એમની સાંપ્રદાયિક પ્રવૃત્તિઓ અર્થે યેષ્ઠાવો અને આચાર્યો તરફથી અર્પણ કરવામાં આવેલા જે એમણે સંપ્રદાયના અમૂલ્ય ગ્રંથોના પ્રકાશન

કાર્ય માટે ટ્રસ્ટને ઉદારતાથી અર્પણ કર્યા હતા. આવી હતી પરમ સારસ્વત પુરૂષની અપૂર્વ ઉદારતા.

### જ્ઞાનનિષ્ઠ શાસ્ત્રીજીની કર્તવ્યનિષ્ઠા

પૂજ્યશ્રી શાસ્ત્રીજીનું કાર્યક્ષેત્ર ૧૯૩૫ થી ૧૯૪૨ સુધી મુંબઈ રહ્યું. પુષ્ટિ સંપ્રદાયના દુર્લભ ગ્રંથોનું સંપાદન-પ્રકાશનનું કાર્ય અતિસુંદર આવકાર્ય આરંભ્યું. સાથે સાથે નિર્ણયસાગર પ્રેસમાં સંશોધનના અધિકારી પદે કાર્યક્ષેત્રને ગૌરવાન્વિત કર્યું. મુંબઈની સેન્ટ ઝેવીયર કોલેજમાં બી.એ., એમ.એ. ના વર્ગોમાં વેદાન્ત મીમાંસાના વ્યાખ્યાતા તરીકે અભ્યાસ કરાવવા જતા હતા. કોલેજના લાયબ્રેરીયલ રેવરન્ટ ડૉ. ફાધર મોરે અને ફાધર ઇસ્ટ્રેલરે ભારતીય ફીલોસોફી (તત્ત્વજ્ઞાન)ના અનેક મૂળ ગ્રંથોનો પૂજ્ય શ્રીશાસ્ત્રીજી પાસે અભ્યાસ કરી એના તત્ત્વને સમજીને આત્મસંતોષ મેળવ્યો હતો. ગુજરાતના મૂર્ધન્ય સાહિત્યકાર સ્વર્ગસ્થ શ્રી કનૈયાલાલ માણેકલાલ મુન્શીના પરમ વિદુષી પત્ની લીલાવતી મુન્શીએ પણ પૂજ્ય શાસ્ત્રીજી પાસે વેદાન્તના ગ્રંથોનું અધ્યયન કરી શાસ્ત્રજ્ઞાન હૃદયંગમ કર્યું હતું અને શાસ્ત્રીજીનો ખૂબ જ ઉપકાર માન્યો હતો. એ સાથે એ સમયે મુંબઈમાં બિરાજતા કેટલાક ગોસ્વામી પૂજ્ય મહારાજશ્રીઓને અણુભાષ્ય વગેરે ગ્રંથોનો અભ્યાસ પણ શાસ્ત્રીજીએ કાંઈ પણ અપેક્ષા વિના ઉદારતાથી કરાવ્યો હતો.

### લખતરના રાજપંડિત, ભાગવતના શુકરવરૂપ.

સૌરાષ્ટ્રના લખતરના અને ઘોળ સ્ટેટના રાજવીઓ યેષ્ઠાવ સંપ્રદાયના પરમ ભગવદીય યેષ્ઠાવ હતા. દરબારગઢની હવેલીઓમાં પુષ્ટિમાર્ગીય પરંપરા પ્રમાણે ભગવાનની સેવા બિરાજે છે. લખતરના નામદાર ઠાકોર સાહેબા શ્રી ઈન્દ્રસિંહજીએ સન્ ૧૯૪૨ માં મુંબઈ મોટા મંદિરના નિત્યલીલાસ્થ ગોસ્વામી ૧૦૮ શ્રીગોકુલનાથજી મહારાજને વિનંતિ કરી કે પૂજ્ય શ્રી શાસ્ત્રીજીના મુખે શ્રીમદ્ ભાગવત કથામૃતપાન કરવા અમારી ઈચ્છા છે. તેથી પૂજ્યપાદ નિત્યલીલાસ્થ ગોસ્વામી ૧૦૮ શ્રી ગોકુલનાથજી મહારાજે આગ્રહ કરી પૂજ્ય શ્રી શાસ્ત્રીજીને ઠાકોર સાહેબના પરિવાર અને લખતરની જનતાને શ્રીમદ્ ભાગવત શ્રવણ કરાવવા લખતર મોકલ્યા.

ઠાકોર સાહેબનો પરિવાર અધિકારી વર્ગ અને સમગ્ર શ્રોતાગણ દિવ્ય સિદ્ધાન્તો સહ રસમય શ્રીમદ્ ભાગવત કથામૃતનું શ્રવણ કરી ભાવવિભોર બન્યા. પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીનો લખતરમાં જયજયકાર થયો. ઠાકોર સાહેબે પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીને બહુમાન સહ રાજ્યના રાજપંડિત પદે બિરાજવા વિનંતિ કરી. પોતાના પિતામહ

પરમ પ્રતાપી પરમ ભગવદીય નામદાર સ્વર્ગસ્થ શ્રી કરણસિંહજીના નામે સંસ્કૃત પાઠશાળાનું સંચાલન કરવા અને પોતાના યુવરાજ અને રાજકન્યાઓને સંસ્કૃતનું અધ્યયન કરાવવા વિનંતિ કરી. શાસ્ત્રીજીએ મુંબઈની વ્યસ્તતામાંથી વ્યવસ્થા કરી લખતરમાં અધ્યાપન સાથે ગ્રંથ સંપાદનનાં કાર્યમાં સાનુકૂળતા વધુ રહેશે અને પાઠશાળાનો વિકાસ કરવાના મનોરથથી ઠાકોર સાહેબની વિનંતિ સ્વીકારી લખતરમાં શાસ્ત્રીજીએ રાજપંકિત પટે નિવાસ કર્યો.

શ્રીકરણસિંહજી સંસ્કૃત પાઠશાળામાં વેદ યાજ્ઞિકી વ્યાકરણ સાહિત્ય અને વેદાન્તનો અભ્યાસ કરવા અસંખ્ય વિદ્યાર્થીઓ આવતા હતા. પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીના સન્નિષ્ઠ પરિશ્રમ અને પ્રયત્ન પ્રતિભાના પ્રતાપે પાઠશાળાને કાશીની અર્ને કલકત્તાની લેવાતી પરીક્ષાઓના કેન્દ્ર તરીકેની માન્યતા પ્રાપ્ત થઈ હતી. કેટલાય છાત્રોએ આ પાઠશાળામાં પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીના તત્ત્વાવધાનમાં અભ્યાસ કરી શાસ્ત્રીની પદવી પ્રાપ્ત કરી હતી.

લખતરનરેશ શ્રી ઈન્દ્રસિંહજીના મોટા દિકરી જયેન્દ્રકુંવરબા, શ્રીકુસુમકુંવરબા, યુવરાજ બલભદ્રસિંહજી અને શાસ્ત્રીજીના મોટા પુત્ર કુમારિલભાઈને સાથે બેસાડી શાસ્ત્રીજીએ સંસ્કૃતના પ્રારંભિક ગ્રંથોથી લઈ કાવ્ય ગ્રંથોનો અભ્યાસ સહજ રીતે તલસ્પર્શી કરાવ્યો હતો. પ્રતિદિન સાંજના લખતરના દિવાન સાહેબ શ્રી મણિભાઈ સરન્યાયાદીશ કેશવભાઈ ઓઝા, હાઈસ્કૂલના પ્રિન્સીપાલ શ્રી ચતુર્ભુજ પુજારા વેદાન્તનો અભ્યાસ કરવા શાસ્ત્રીજી પાસે આવતા હતા. પૂજ્ય શ્રી શાસ્ત્રીજીનું નિવાસ વિદ્યાધામ સંસ્કૃતધામ બની રહ્યું હતું. જેમ પંકિત મંડનમિશ્રજીના ઘરના પોપટ અને મેના શાસ્ત્ર ચર્ચા સાંભળી પરસ્પર ‘જગદ્ ધ્રુવં સ્યાત્ જગદ્ધ્રુવમ્’ આમ શાસ્ત્ર ચર્ચા કરતા તેમ પૂજ્ય શ્રી શાસ્ત્રીજીનું દોર (વાળ કાપવા) દર રવિવારે આવતા સદાચારી વાળંદ શ્રી મગનભાઈને પણ શાસ્ત્રીજીએ એક વર્ષમાં સંસ્કૃતમાં વાર્તાલાપ કરતા, સંસ્કૃત કાવ્યો સમજી શકે તેવા સંસ્કૃતના અભ્યાસી બનાવ્યા હતા. શાસ્ત્રીજીની અભ્યાસ કરાવવાની સરળ તેમજ પ્રોત્સાહક હતી. શાસ્ત્રીજીના લખતરમાં તૈયાર થયેલા શિષ્યોમાં પટ્ટશિષ્ય શ્રીમહેન્દ્રભાઈ મણિશંકર શુક્લ હતા. જેઓએ સૌરાષ્ટ્રમાં એક વિદ્વાન તરીકે ઘણી મોટી નામના મેળવી હતી.

#### સમર્થ વિવેચક અને આલેખક

નિત્ય રાતના નવથી બે વાગ્યા સુધી તત્ત્વજ્ઞાન દર્શન શાસ્ત્ર પુષ્ટિ સિદ્ધાન્તના ગ્રંથો પર ચિન્તનાત્મક વિવેચનો લેખો ભૂમિકાઓનું લેખન કાર્ય પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીનું અવિરત ચાલુ જ રહેતું. ઈંગ્લેન્ડની રોયલ એશિયાટિક સોસાયટીના

શાસ્ત્રીજી સભ્ય હતા તેથી ઓલ ઈન્ડિયા ઓરીએન્ટલ કોન્ફરન્સોમાં ભાગ લઈ વખતો વખત પોતાના સંશોધન પૂર્ણ નિબંધો શાસ્ત્રીજી પ્રસ્તુત કરતા હતા. જેના પરિણામે એ સમયના પંકિતો અને પ્રોફેસરોમાં આપણા શાસ્ત્રીજીનું અપૂર્વ આદરણી સ્થાન સન્માન હતું.

#### સફળ યાગના સમર્થ આચાર્ય

લખતર રાજ્યમાં અનાવૃષ્ટિના કારણે દુષ્કાળની પરિસ્થિતિ સર્જતી ત્યારે વિધિપૂર્વક નિર્માણ કરેલી રાજ્યની યજ્ઞશાળામાં દક્ષિણ ભારતમાંથી પુષ્કળ પ્રમાણમાં વેતસ્ (નેતર)ની સમિધો મંગાવી ચારે વેદોના વિદ્વાન બ્રાહ્મણો સાથે વેદિક પરંપરાથી કારીરીયાગ પર્જન્યયાગ કરાવતા જેના ફળ સ્વરૂપે અવશ્ય વરસાદ વરસતો જ. પ્રજાના પાણીના પ્રશ્નો ખેતીના પ્રશ્નોનું નિવારણ થતું. સર્વત્ર આનંદ આનંદ છવાઈ જતો હતો. આજે પણ ત્યાંના વૃદ્ધજનો આવા પ્રસંગોના સ્મરણ ભાવવિભોર બની કરે છે અને શાસ્ત્રીજી પ્રત્યેનો અહોભાવ પ્રકટ કરે છે.

#### રાજાઓના આદરણીય શાસ્ત્રીજી

લખતરની સાથે સાથે સૌરાષ્ટ્રના જામનગર, ભાવનગર, મોરબી, લાઠી, સાણંદ, ગોંડલ, બિલખા અને ઘોળના સમગ્ર રાજપરિવાર સાથે અને રાજસ્થાનના જયપુર, જોધપુર, બીકાનેર, કીશનગઢ, કોટા, સાંગોદ, શિરોહી, ઈંડર, અને દાંતા, ઉત્તર પ્રદેશના બરેલીના રાજવી અને રાજપરિવાર સાથે પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીના ધનિષ્ઠ આત્મીય પારિવારિક સંબંધ હતા. આ બધા પરિવારોમાં પ્રસંગો ઉપર પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીની ઉપસ્થિતિ અને માર્ગદર્શન અનિવાર્ય બની જતું હતું.

#### અનુદાનના પ્રખરજ્ઞાતા-રાષ્ટ્રહિત વિદ્યાતા

સને ઓગણીસો છેતાલીસમાં ઘોળના ઠાકોર સાહેબને ત્યાં પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીએ વિષ્ણુયાગ કરાવ્યો હતો. આ યજ્ઞમાં પુષ્ટિમાર્ગીય ગોસ્વામી આચાર્યોના ઉપાધ્યાય વેદશાસ્ત્રસંપત્ર શ્રી ચંદ્રશંકર લક્ષ્મીશંકર ઉપાધ્યાયજી મુંબઈથી, શાસ્ત્રીજીના અભિન્ન હૃદય વિદ્વદ્ધર્મ શ્રી બદરીનાથ કા. શાસ્ત્રીજી વડોદરાથી, વેદ પારંગત શ્રીધર શાસ્ત્રી વારે નાશિકથી, વિદ્વદ્ધર્મ શ્રી ગણેશ દીક્ષિતજી કાશીથી આવા યશસ્વી વિદ્વાનો પધાર્યા હતા, અને મુંબઈથી આદરણીય પૂજ્યપાદ ગોસ્વામીશ્રી ૧૦૮ શ્રીગોકુલનાથજી મહારાજ અને અન્ય ગોસ્વામી આચાર્યો પધાર્યા હતા.

હવે મહત્વની ઘટના એ છે કે સને ઓગણીશસો સુડતાલીશમાં ભારતની આઝાદી પછી સૌરાષ્ટ્રના જુનાગઢ સ્ટેટમાં નવાબી કારભાર ચાલતો હતો. અને

એનો પાકિસ્તાનમાં જોડાવાનો નિર્ણય હતો. જુનાગઢ સ્ટેટના રજવાડાઓ નવાબીથી ત્રાસી ગયા હતા. ભારતના પ્રથમ ગૃહમંત્રી લોખંડી પુરુષ સરદાર શ્રી વલ્લભભાઈ પટેલ માટે પણ જુનાગઢ માથાનો દુખાવો અને પ્રતિષ્ઠાનો પ્રશ્ન બની ગયો હતો. નવાબને સમજાવવાના બધા જ પ્રયત્નો સદંતર નિષ્ફળ નિવડ્યા હતા.

માઉન્ટ આબુમાં સૌરાષ્ટ્રના ઘણા રાજાઓ ઉનાળાની ગરમીના દિવસોમાં આરામ અર્થે આવતાં અને ત્યાં પોતપોતાના બનાવેલા હાઉસમાં રહેતા. સાણંદ બાપુ સાહેબ શ્રી જયવંતસિંહજી સાથે આપણા શાસ્ત્રીજી પણ ત્યાં રહેતા. એક દિવસે બીલખાના નામદાર ઠાકોર શ્રીજયવંતસિંહજીએ જુનાગઢના નવાબ તરફથી સૌરાષ્ટ્રના નાના રાજવીઓને થતા અસહ્ય ત્રાસમાંથી મુક્તિ અપાવવા અને સૌરાષ્ટ્રને અખંડિત બનાવવા કોઈ પૈદિક અનુષ્ઠાન કરવા શાસ્ત્રીજીને વિનંતિ કરી. શાસ્ત્રીએ રાષ્ટ્રના હિત માટે અથર્વવેદના બ્રહ્માસ્ત્ર જેવો પ્રત્યંગિરા યજ્ઞ કરવાનો નિર્ણય જણાવ્યો. ગુપ્ત રીતે બીલખાના દરબારગઢમાં આ મહાયજ્ઞ અનુષ્ઠાનના પ્રયોગનું આયોજન નક્કી થયું. કાશી, નાશિક, ત્ર્યંબક, મુંબઈ અને બુરહાનપુરથી સમર્થ વિદ્વાનોને બોલાવવામાં આવ્યા. સંપત બેહાર ત્રણ, ભાદરવા વદ દશમ ગુરૂવાર તારીખ નવ ઓકટોબર ઓગણીશસો સુડતાલીસના ગુરૂપુષ્યામૃતમાં આ મહાયજ્ઞનો પ્રારંભ કરવામાં આવ્યો. લગભગ ચોસઠ હજાર પાઠ અને હોમ થઈ રહ્યો હતો. સવાલસનો સંકલ્પ હતો ત્યાર પહેલા જ આ અનુષ્ઠાનના પ્રતાપે જુનાગઢના નવાબ અને દિવાન ભુક્તો (ઝૂલ્ફિકારના પિતા) રાતોરાત પોતાનું રાજ્ય છોડી પાકિસ્તાન ભણી નાશી ગયા. આપણા સૈનિકોએ જુનાગઢનો કબજો મેળવ્યો. ભારતના પ્રથમ વડા પ્રધાન પં. જવાહરલાલ નહેરૂ અને પ્રથમ ગૃહમંત્રી સરદાર વલ્લભભાઈ પટેલ પધાર્યા, વડાપ્રધાને રાષ્ટ્રીય ધ્વજ લહેરાવતા પ્રવચન કરતા કહ્યું કે આ સફળતા પાછળ કોઈ દેવી શક્તિનું બળ હશે એમ સ્વીકાર્યું હતું. સરદાર શ્રી વલ્લભભાઈ પટેલ તો બધું જ જાણતા હતા. ખંડિત સૌરાષ્ટ્ર અખંડિત બન્યું. આ યજ્ઞની પૂર્ણાહુતિ બે હજાર ચારના કાર્તિક સુદ આઠમને શુક્રવારે થઈ હતી.

શાસ્ત્રીજીના જ્યેષ્ઠ પુત્ર શ્રી કુમારિલભાઈએ આ અવસરે બીલખા નરેશને વિજયા દશમીના દિવસે સાયંકાળે શમી પૂજન કરાવ્યું હતું. અને રાજ્યની સીમાના ફરતે દિગ્બંધન અને દશે દિશામાં ક્ષેત્રકીલન કરાવ્યું હતું આથી પ્રસન્ન થયેલ બીલખા નરેશ દશ વિધા ભૂમિદાન જાહેર કર્યું હતું, યજ્ઞની પૂર્ણાહુતિ પછી રાજવી ઉપર ધૃતકબ્જલ મહાભિષેક કરવામાં આવ્યો હતો. રાજવીએ આ પ્રસંગે શાસ્ત્રીજીને રાજગુરૂ તરીકે શિરપાવ મહાદક્ષિણા સાથે ‘બ્રહ્મવિદ્યાનુસન્ધાન’ કેન્દ્ર માટે

ગિરનારની તળેટીમાં નદી કિનારે પચાસ વિધા જમીન દાનમાં આપીને સત્કારવામાં આવ્યા હતા. આ પ્રસંગનું વર્ણન બીલખા રાજ્યના દેવીપુત્ર બારોટ ચીતલના રહેવાસી કવિ શ્રી ભીખણ પ્રાગજીએ રચેલ કાવ્ય તેમના જ શબ્દોમાં આ સાથે પ્રકટ કરેલ છે.

### પ્રશસ્તિ કાવ્ય (દુહો)

બે હજારના ત્રણ વીશે માસ ભાદ્રપદ હોય  
ગુરુવાર સોહામણો વદ એ દસમી સોય  
યજ્ઞ એ દિન આદર્યો વાળા રાવલ રાજ  
ગહન નગારા ગડગડયા બીલખા કીધો સાજ  
મહાયજ્ઞ કરવા થકી મન આનન્દ ન માય (સોરઠો)  
રહો અવિચળ સદા આશિષ કવિ ભીખન કહે.

### ગીત સાણોરની ચાલનું

મોટો કૃત્યા વિનાશયજ્ઞ કીધો મહા ભૂપતી રાવતેરા બંકા  
બીલખા નગરમેં વાગીયા નગારા ગામડે ગામડે વાગીયા સુરડંકા  
શક્તિ પ્રત્યંગિરા દેવી આરાધીયા દુષ્ટ દુશ્મન તણો નાશ કરવા  
વળે આયુધ રહે ઢાલ બંદુક સદા ખડગ ધારણ કરો ગર્વ દંડી  
અસુરો સંહાર્યા રણ યુદ્ધે ચડી મહાભદ્રકાળી શીકોતર ચંડી  
હજારો વર્ષ પૂર્વે કર્યો છે યજ્ઞ આ ગોતમ મહામુની અંગિરા મહંતા  
અત્રી શૌનક અને મહા મુની વશિષ્ઠે ઋષિ પીપ્પલાદે કીધો અનંતા  
અપૂર્વ વેદો તણાં મંત્ર ઉચ્ચારથી યજ્ઞ કીધો હતો એહ ક્યારે  
મહા મુની મંડળ સર્વ ભેગું મળી નાશ અસુરો તણો કીધ ત્યારે  
વળી કળીયુગ વીશે યજ્ઞ કીધો હતો શિવાજી સત્રી મહાવીર જુદો  
છત્રપતી જેણે નામ નીજ ધરાવ્યું ચવનોતણો નાશ કીધો  
હીન્દવો ધર્મ રાખો સદા મહાબલી ભુપતી શિવાજી વીર બંકો  
પડી રણ મેદાને હાંક દીધી હતી અને વગાડ્યો સદા વિજય ડંકો  
મહાભિષેક આ ધૃતકંબલ તણો થયો છે આપનો વાળા રાવલ  
ઉજાળો સૂર્યવંશી મહાવીર એ વંશ આલણાતણી આજ કીરત  
આગળે શિવાજી વીરને હુવોતો મહાભિષેક ધૃતકંબલ તણો  
કાશીના પંડિતે જ કર્યો હતો ભક્ત ગાગાતણું નામ જાણો  
ત્યાર પછી કોઈને અભિષેક થયો નથી સાંભરી સુણાને વીર વાળા

લખતર સદા વસનાર પંડિત મહા શાસ્ત્રીજી મહા શુભ છે તો રસાળા  
રાજ્ય પંડિત હરિશંકર મહા પિતા ઓંકારજી કુલકોસ્તુભ ભયો  
સંવત હજાર બે ચાર કારતક મહા સુદી અષ્ટમી અને શુક્રવારે કર્યો  
શેષાઈની કાણ પર ખીલો મારી અને હદ બીલખા લણી બાંધી લીધી  
દુષ્ટ ચવનો હવે અહીં પેસે નહી શક્તિ ચવનો તણી જીતી લીધી  
ધન્ય ધન્ય રાવતેશ કીર્તિ ઉજ્જવળ કરી વીરને વીરતા આ જ શોભે  
યજ્ઞ પૂર્ણાહુતિ કરી આજે અહો ઝળ હળે તેજ અંબાર આભે  
મહારાજ પ્રેમથી યજ્ઞ એવો કરી કર્યા છે બ્રહ્મને ન્યાત આપે  
રાવતવાળા વિના લાડ પ્રજા અબળાના કષ્ટ કોણ કાપે.  
અમર જશવંતની કીર્તિ હે આપની ભૂપતિ લડે બહાદુર બંકા  
કરી ને રાજરૈયત પ્રતિપાલક શુભ હો શુભ હો વિજય ડંકા  
અભય... રહો આપને ભૂપતિ ભેરે રહે ચદુપતિનાથ જાયા  
કવિ ભીખન કહે નાથ રાવત તણી કોડ જુગા રાખજો અમર કાયા.

દુહો

આપ પ્રજાજન કે પ્રણતિજન પ્રતિપાલ  
સુખ સાગર રાવત તમો જગતપાલ ગુનપાલ

છયેયા

ગંગ જેસું તું પવિત્ર હો રાજન આલણવંશ ઉજળન ભારી  
રામ જેસું તુમ રામ હો રાજન રાજ્ય ચલાવત હો મન ધારી,  
ઈન્દ્ર જેસું બળધારી હો રાજન તેજ બલી હો મહાવૃતધારી  
વીર કો વીર મહા મેરો રાવત ભીખન ભાટ કહે છે નિહારી.  
ધર્મધુરંધર રાજે રહો સદા યજ્ઞ કરો સદા આનન્દકારી  
બ્રહ્મ મહા વિદ્યાવંત તેડાવજો બ્રહ્મના ભાગે મહાસુખકારી,  
શાસ્ત્રીજી હૈ મહાશાસ્ત્ર વેત્તા મહા રાજ્યકા હાથ મે દિલધારી  
ભીખન ભાટ કહે મેરો રાવત ગોકુલ જેસોઈ હૈ ગિરધારી.  
આલણવંશી અવિચલ રાવત અવિચલ રાજ્ય કુટુંબ પરિવારી  
જસવંત અવિચલ હોજો નિરંતર અંતર આશિષ હે પ્રભુ મારી,  
કાવ્ય કરું હથિયાર ધરું અને શિર કરું મેરા રાવત વારી  
આગે પીછું પાસે ચંદ હતો તેમ રાવત પાસે છે ભીખન ભારી.

છપ્પય

સંવત બેઈ હજાર સાલ તો ચાર મનાઈ  
માસ કારતક હોય તિથિ અષ્ટમી સુખદાઈ,  
વાર શુક્ર તો સોય પૂર્ણાહુતિ યજ્ઞ કરાઈ  
શાસ્ત્રીજી બ્રહ્મવંત રાવત કે હાથ ધરાઈ,  
(દોહો)

મહારાજ રાવત તમો અને મહારાજ સુવરાજ  
ભીખન ભાટ આશિષ કહે જય જય હો મહારાજ,

છપ્પય

રાજલ હોય કુળવાન અહોનિશ યજ્ઞ કરાવે  
મંત્રી હોય કુળવાન રાજકો ભય સે બચાવે,  
કવિ હોય કુળવાન રાજ્ય શૂરવીર કરાવે  
પંડિત હોય કુળવાન વેદ કો જ્ઞાન બતાવે,  
કુળવાન નર મહામર્દ હોય વીરતત્વ ભરપૂર દે  
ભીખનભાટ દુનિયા વીશે કુળવાન વીર ચે મરદ હે  
(આના રચનાર ચીતલના રહેવાસી કવિ બારોટ ભીખન પ્રાગજી છે)

સૌરાષ્ટ્રની અખંડિતાર્થે યોજાયેલા આ મહાયજ્ઞથી પ્રસન્ન થયેલા નામદાર  
બીલખા નરેશો પ્રથમ શાસ્ત્રીજીના ગુરુવર્યને સત્કારી પૂણ્યભૂમિ ગિરનારની તળેટીમાં  
કુલ સાઈઠવીધા ભૂમિ વૈદિક તત્ત્વજ્ઞાનના અભ્યુદયાર્થે શાસ્ત્રીજીને અર્પણ કરી  
આમંત્રિત વિદ્વાનોને સત્કાર્યા હતાં.

શાસ્ત્રીજીની ધર્મનિષ્ઠા-નિરપૂરતા

ભૂમિ મહાદાન હોવાથી તેનો અસ્વીકાર કરી પૂજ્ય આચાર્યો અને પોતાના  
પૂજ્ય ગુરુજનોની સંમતિ મેળવી 'બ્રહ્મવિદ્યા અનુસંધાન કેન્દ્ર' સંસ્થાની આ ભૂમિ  
પર સ્થાપના કરવા સંમતિ આપી. રાજ્યના મંત્રી મંડળે અને વિદ્વાનોએ આ  
પ્રસ્તાવને અતિ આનંદથી સ્વીકાર્યો.

બ્રહ્મવિદ્યા અનુસંધાન કેન્દ્રના સ્વપ્નદષ્ટા !

બ્રહ્મવિદ્યામાં સામર્થ્ય મેળવવા માટે સાધના ઉપાસના કરવી આવશ્યક  
હોવાથી ગો.વા. ઘોળનરેશ શ્રી ચન્દ્રસિંહજીએ નગરથી દૂર નદીના કાંઠે સુંદર  
વનરાજીમાં પર્ણકૂટીઓ બંધાવી. આઠ દસ ગાયો ગોવાળો સાથે આશ્રમની  
વ્યવસ્થા કરી અપેક્ષિત આવશ્યક સહાયતા પૂરી પાડી આપી હતી. આ સ્થાનમાં



નાશિકના વેદશાસ્ત્ર સંપત્ર પ્રકાંડ વિદ્વાન શ્રીધર શાસ્ત્રી વારે એવા જ વિદ્વદ્ધર્મ મહાદેવ શાસ્ત્રી વારે અને શાસ્ત્રીજીના પુત્ર શ્રીકુમારિલભાઈ અને શાસ્ત્રીજી આ ચારેએ પયોવ્રત રાખી અથર્વવેદમાં દશવિલી મન્મથ વિદ્યાનું ચાલીસ દિવસ પ્રયત્ન યમ-નિયમ-તપ-સ્વાધ્યાય-પ્રણિધાનપૂર્વક સાધના કરી. અનુષ્ઠાન નિર્વિઘ્ને ચાલે છે, કોઈ વસ્તુની આવશ્યકતા છે કે કેમ ? એ માટે અવાર-નવાર ઘોળનરેશ પધારતા હતા. વ્રતની સમાપ્તિમાં તે ત્રણ જન્ય વન્યફળ, પત્ર, પુષ્પ, કન્દ, મૂળ લાવી ઓઢુંબરના ખરલમાં ઓઢુંબરના દંડથી ખાંડી ગોઘૃત-મધુ મેળવી એ હુતદ્રવ્યથી હોમ કરી સ્વીષ્ટકૃત (વઘેલ હુતદ્રવ્ય) પોતે ગ્રહણ કરવાનું હોય છે. આપું દુઃસાધ્ય વ્રત પૂર્ણ કર્યું હતું પણ દેવ યોગે રાજકારણીઓના ગેરવહીવટના કારણે બ્રહ્મવિદ્યા અનુસંધાન કેન્દ્રને અર્પણ થયેલી ભૂમિ ખાલસા થઈ. ગુજરાતના ભાગ્યમાંથી બ્રહ્મવિદ્યા અનુસંધાન કેન્દ્ર નામશેષ બની ગયું, આથી વધુ દુર્ભાગ્ય શું હોઈ શકે !

#### પુરાતત્ત્વના પ્રખર જ્ઞાતા-અધ્યાક્ષ

શાસ્ત્રીજી પુરાતત્ત્વ વિદ્યાના તત્ત્વજ્ઞ અભ્યાસુ હતા. પુરાતત્ત્વના જ્ઞાતા શ્રી રાખાલદાસ બેનરજી, પ્રીન્સ ઓફ વેલ્સ મ્યુઝિયમના ક્યુરેટર, શ્રી રણછોડલાલ જી. જ્ઞાની લખનઉ મ્યુઝિયમના ક્યુરેટર શ્રીવાસુદેવશરણ ગુપ્તા સાથે મોહન જો દરો, સારનાથ ગારાણસીના ખોદકામ દ્વારા નીકળેલા અવશેષોના સંશોધનમાં પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીએ સંપૂર્ણ સહકાર આપેલો હોવાથી હિસ્ટોરીયન કોન્ફરન્સ-મદ્રાસ અને ઓલ ઇન્ડિયા ઓરિયન્ટલ કોન્ફરન્સમાં વારંવાર ભાગ લીધેલો હોવાથી અને વિશ્વ પ્રસિદ્ધ શ્રેષ્ઠ તત્ત્વજ્ઞાતા ડૉ. સર રાધાકૃષ્ણન ડૉ. ભગવત્ દત્ત અને ડૉ. બલવરકરના નિકટના ચિન્તક પ્રતિભાશાળી વિદ્વાન આપણા શાસ્ત્રીજીની સૌરાષ્ટ્ર ગવર્નમેન્ટે રાજકોટના આર્કીયોલોજી ઓરિયન્ટલમાં બદલી કરી વૉટસન મ્યુઝિયમ રાજકોટના ક્યુરેટર પદે નિયુક્ત કર્યા હતા. આ પદે પણ શાસ્ત્રીજીનું કાર્ય ખૂબ જ ચશસ્વી રહ્યું હતું.

#### તેજસ્વી હિષ્યોના યજ્ઞસ્વી પ્રાચાર્ય

સૌરાષ્ટ્રના શિક્ષણના નિયામકશ્રીએ ઓગણીશસો પચાસમાં સંસ્કૃતના ઉચ્ચતમ અભ્યાસને પ્રોત્સાહન આપવા અને રાજ્યની સંસ્કૃત પાઠશાળાઓની સુધારણા માટે રાજ્ય સરકારે માંગણી કરી શાસ્ત્રીજીની જામનગરની રાજકીય સંસ્કૃત પાઠશાળાના આચાર્ય પદે નિયુક્તિ કરી, શાંમળદાસ કોલેજના સંસ્કૃત વિભાગાધ્યક્ષ પ્રો. ડૉ. પ્રતાપરાય મોદી અને ગોંડલના રાજવૈદ્ય વિદ્વદ્ધર્મ શ્રીજીવરામ કાળીદાસની કમીટી રચી સૌરાષ્ટ્ર રાજ્યની પાઠશાળાઓના વિકાસનું કાર્ય સોંપવામાં આવ્યું.

જેના પરિણામે શાસ્ત્રી આચાર્ય કક્ષાના અધ્યાપનને વેગ મળ્યો. સંપૂર્ણાનંદ સંસ્કૃત વિશ્વવિદ્યાલય વારાણસી, બંગીય સંસ્કૃત પરિષદ કલકત્તા, ભારતીય વિદ્યા ભવન મુંબઈ, બૃહદ્ ગુજરાત પરિષદ અમદાવાદ તેમજ અન્ય સરકારમાન્ય ઉચ્ચસ્તરીય શાસ્ત્રીય પરીક્ષાઓના છાત્રો માટે અનેકવિધ સુવિધાં કરવામાં આવી. જેના પરિણામે તૈયાર થયેલા છાત્રો દેશમાં વિદ્વાનોના રૂપે સન્માન સ્થાન મેળવી રહ્યા છે.

#### આયુર્વેદમાં અનુદાન

અતિપ્રવાસ અને પરિત્રમથી શાસ્ત્રીજીના સ્વાસ્થ્ય ઉપર અસર થઈ અને સ્વાસ્થ્ય કથળવા માંડ્યું. શાસ્ત્રીજીએ સ્વૈચ્છિક નિવૃત્તિ સ્વીકારી પોતાના વતન બુરહાનપુર આવ્યાં. સ્વાસ્થ્ય લાભ થતાં પોતાની મૂળ પાઠશાળાના વિકાસનું કાર્ય સંભાળ્યું. શુદ્ધ આયુર્વેદના હિમાયતી શાસ્ત્રીજીએ પ્રતિષ્ઠિત યૈધ શ્રી જાદવજી ત્રિકમજી આચાર્ય, શ્રી શિવશંકર બાવાભાઈ અચલજી મુંબઈ તેમજ બુરહાનપુરના યૈધ શ્રીવામનરાવ, શ્રી શિવનાથ શાસ્ત્રી, શ્રી વિશ્વનાથ શાસ્ત્રી બનારસવાળા અને અન્ય યૈધરાજો સાથે મહાકોશલ પ્રાન્તીય આયુર્વેદ સંમેલન સને ઓગણીશસો પંચાવનમાં પોતાની અધ્યક્ષતા હેઠળ યોજ્યું હતું, જેના પરિણામે શુદ્ધ આયુર્વેદ ચિકિત્સા મહાવિદ્યાલયો ઓષધાલયો આજે વિકાસ પામ્યા છે.

#### ધર્મરક્ષા ક્ષેત્રે ધર્મવીર

શાસ્ત્રીજીની અધ્યાપન-સંશોધન-લેખન પ્રવૃત્તિ અખંડિત પણે ચાલુ જ હતી સાથે સાથે રામરાજ્ય પરિષદના ધર્મસંઘના સ્થાપક ધર્મપ્રાણ સન્યાસી શિરોમણી શાસ્ત્રાર્થ મહારથી પરમ વિદ્વાન પૂજ્ય શ્રી કરપાત્રીજી સાથે અતિનિકટનો સંબંધ હોવાથી સ્વામીજીના તત્ત્વાવધાનમાં હિન્દુકોડ બીલ, ગોવધ વિરોધી આન્દોલન તેમજ વિશ્વકલ્યાણાર્થ દિદ્ધીમાં સિદ્ધપુરમાં લક્ષ્યંડી ચક્ષો પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીના નેતૃત્વમાં કરવામાં આવેલા. સનાતન ધર્મ વિરોધીઓ સાથેની લડત દક્ષિણ ભારતની અસ્પૃશ્યના મંદિર પ્રવેશની લડતમાં શાસ્ત્રીજીએ શૂરવીર બની નેતૃત્વ નિભાવ્યું હતું. ધાર્મિક સમાજમાં શાસ્ત્રીજી રચનાત્મક કાર્યોથી તેજસ્વી સૂર્ય સમાન હતા.

#### વિદ્વાન પુરુષની વેદના

#### વિદ્વાન મિત્રોનું મનોમંથન

વાક્યપતિ શ્રીવલ્લભાધીશની વાણીના વારિધિમાં પ્રતિદિન અવગાહન કરનારા સર્વવિધ સેવાપરાયણ પુષ્ટિમાર્ગીય પૂર્વાચાર્યોએ રચેલા આકર ગ્રંથોના અધ્યયન,

અધ્યાપન, સંરક્ષણ, પ્રચાર, પ્રસાર, પ્રકાશન પ્રત્યે સંપ્રદાયની ઉપેક્ષા ખોતા શાસ્ત્રીજીના હૃદયમાં અપાર વેદના થતી હતી. “વત્રાવલમ્બન” ગ્રંથ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીના “વિદ્વદ્ધિઃ સર્વથા શ્રાવ્યં તે હિ સન્માર્ગ રક્ષકાઃ” વચનોને પોતાનો મુદ્રાલેખ માનનારા પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીને પુષ્ટિસંપ્રદાય માટે પૂર્વે પોતે કરેલો શ્રમ વ્યય, અને નામ સેવા વ્યર્થ નિવડશે એની વેદના શાસ્ત્રીજીના ચિત્તને કોરી ખાવા લાગી. આશ્રય અને સાધન વિના સંકલ્પ સિદ્ધિ સુલભ નથી એવો ચિત્તોક્તિ અહર્નિશ થતા પૂજ્ય શાસ્ત્રીજી વડોદરા આવ્યા. પોતાના અભિન્ન હૃદય પરમ આત્મીય ભાઈ શ્રી બદરીનાથ કા. શાસ્ત્રીજી પાસે પોતાની વેદના પ્રકટ કરી. શ્રી બદરીનાથ શાસ્ત્રીજીએ ધૈર્ય આપ્યું. વિતેલા જીવનની સફળતાઓનું વિહંગાવલોકન કરાવ્યું. કેટલાક માસ બંને સાથે રહ્યાં. હૈયું હળવું થયું. નિરાશા હતાશા દૂર થઈ. ઉત્તિષ્ઠત જાગ્રત પ્રાપ્ય વરાન્ નિબોધત” ના ધ્યેય તરફ આગળ વધવાનો નિર્ધાર કર્યો.

#### આચાર્યોનું ઔદાર્ય

પૂજ્યવર શાસ્ત્રીજી વડોદરાથી મુંબઈ આવ્યા. ગોસ્વામી મૂર્ધન્ય પૂ.પા.ગો.શ્રીદીક્ષિતજી (મુંબઈ) મહારાજે શાસ્ત્રીજીને પોતાની સાથે રાખ્યા. ભારતમાં અહીં તહીં જૂલો ખાંચરે પડેલા મહામૂલા ગ્રંથોની શોધખોળ અને સંપાદિત કરવાનો પુરુષાર્થ શરૂ કર્યો. મુંબઈમાં વસતા જિજ્ઞાસુ ગોસ્વામી બાળકોને અધ્યયન કરાવવા માંડ્યું. રોજ સાંજે સભાખંડમાં આચાર્ય પૂ.પા. ગો. શ્રીકૃષ્ણજીવનજી, પૂ.પા.ગો. શ્રી દીક્ષિતજી, પૂ.પા.ગો.શ્રી શ્યામમનોહરજી અને જિજ્ઞાસુ પેષણવો સમક્ષ સંપ્રદાયમાં પ્રવર્તતા અપસિદ્ધાંત જડતા અજ્ઞાનને દૂર કરતા પૂર્વાચાર્યોના સિદ્ધાંતોનું ગ્રંથોના પ્રમાણો સહ વ્યાખ્યાન આપવા લાગ્યા. આ કમ બે ત્રણ માસ ચાલ્યો હશે તેવામાં એક દિવસે પૌષ સુદ આઠમ બુધવાર તારીખ નવ જાન્યુઆરી ઓગણીશસો સત્તાવનના દિને ગોસ્વામી બાળકોને અધ્યયન કરાવીને પાછા ફર્યા બાદ કોઈ દક્ષિણ ભારતના માયાવાદના આગ્રહી વિદ્વાન પૂ.પા.ગો. શ્રી દીક્ષિતજી મહારાજશ્રી પાસે આવેલા તેમની સામે પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીને ચર્ચા થઈ વાદ-વિવાદનું સ્વરૂપ સર્જાયું. શાસ્ત્રાર્થમાં શાસ્ત્રીજીનો વિજય થયો વજ્રાદપિ કઠોરાણિ મૃદુની કુસુમાદપિ એવા લોકોત્તર કોમળ ચિત્ત શ્રુતિના શાસ્ત્રીજી હતા. હૃદયરોગી તો હતાજ શાસ્ત્રાર્થની ઉત્તેજનાને કારણે શ્રમ થયો હતો નિત્યક્રમ પ્રમાણે વ્યાખ્યાનનો સમય થતા સભાખંડમાં પધાર્યા. વ્યાખ્યાનના મંગલાચરણના પ્રારંભમાં જ પૂજ્યવાદ ગોસ્વામીશ્રી ૧૦૮ દીક્ષિતજી મહારાજ સભાખંડમાં પધારવા ઈચ્છે છે

તેથી થોડો સમય રોકાવવા કહેવડાવામાં આવ્યું. મહારાજશ્રીના સ્વાગત માટે શાસ્ત્રીજી ઊભા થઈ સામે જતાં શ્રીગિરિરાજ પાસે પહોંચતા જ હૃદયમાં સખત દુઃખાવો ઉપડતા ચક્કર આવતા ત્યાંજ ઈડવત્ કરતાં ઢળી પડ્યા. તરત જ નજીકના તેમના વડિલબન્ધુ સમા પેઘરાજ શ્રીવામનભાઈને બોલાવવામાં આવ્યા. તેમણે નાડી નિદાન કરી ઊંડા આઘાત સાથે જણાવ્યું કે શાસ્ત્રીજી ભગવદ્દામમાં પહોંચી ગયા છે. તેમના પાર્થિવ દેહને કોઈ ડૉક્ટર સ્પર્શ ન કરે. દુર્દેવે સંપ્રદાય અને સમગ્ર વિદ્વાનોનો આધાર સ્તંભ ખડી પડ્યો. આ સાંભળતામાં જ શોકનું વાદળ છવાઈ ગયું.

#### શાસ્ત્રીજીનો અવિનાશી અક્ષરદેહ

પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીએ જીવનભર શ્રીમહાપ્રભુજીમાં અવિચલ શ્રદ્ધા સેવી હતી. શ્રીહરિચરણના વચનાનુસાર

નાશ્રિતો વલ્લભાધિશો ન ચ દૃષ્ટા સુબોધિની ।

નારાધિ રાધિકાનાથો વૃથાતજન્મ ભૂતલે ॥

જીવનના ઘડવૈયા તાત્કાલીન વિદ્વાનોમાં અગ્રણી અદ્વિતીય તેજસ્વી વિદ્વાન તરીકે પ્રતિષ્ઠા પ્રાપ્ત કરેલા શાસ્ત્રીજીએ અણુભાષ્ય અને સુબોધિનીજીનું તલસ્પર્શી વિવેચન કરી અપ સિદ્ધાન્તોનું ખંડન કરી સત્સિદ્ધાન્તો સમજાવ્યા હતા અને લેખ અને વ્યાખ્યાનો દ્વારા પ્રચાર-પ્રસાર અને શાસ્ત્રાર્થો દ્વારા વિરોધિઓને પરાજીત કર્યા હતા. પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીનું પાંડિત્ય અને અનોખી પ્રતિભાના દર્શન આજે પણ એમના અક્ષરદેહથી કરતાં વિદ્વાનોને પણ આશ્ચર્ય થાય છે અને શાસ્ત્રીજીના વૈદુષ્ય પ્રત્યે આદર અને અહોભાવ થાય છે.

પુષ્ટિમાર્ગીય આચાર્યવરો પ્રત્યે સંદેવ આત્મીયભાવ અને સ્નેહભાવ રાખતા શાસ્ત્રીજી શ્રીમહાપ્રભુજીના આસુરવ્યામોહલીલા સમયે ઉચ્ચારાવેલા શબ્દો

યદા બર્હિર્મુખા યૂયં ભવિષ્યથ કથંચન ।

તદા કાલપ્રવાહસ્થા દેહચિત્તાદયોપ્યુત ॥

સર્વથા ભક્ષવિષ્યન્તિ યુષ્માનિતિ મતિર્મમ ।

ન લૌકિકઃ પ્રભુઃ કૃષ્ણો મનુતે નૈવ લૌકિકમ્ ॥

ક્યારેક ક્યારેક અપ્રિય પણ આવા હિતકારી પથ્ય વચનો શાસ્ત્રીજી નિર્ભય રીતે કહેતા સમજાવતા હતા. એવા વિરલ દેવી સૃષ્ટિના એ દિવ્ય પુરુષ હતા એમના પ્રતિસ્પર્ધીઓ પણ શાસ્ત્રીજીની આજીવન સાહિત્યસેવા શાસ્ત્રસેવા સંપ્રદાય સેવાને મુક્તકંઠે બિરદાવતા હતા.

## જીવન યાત્રાના અમૂલ્ય રત્નો

પૂજ્યવર શાસ્ત્રીજીના અગાધ અને અપાર જ્ઞાનને શબ્દોની મર્યાદામાં સમાવી શકાય એમ નથી. એકવાર વાંચ્યા સાંભળ્યા કે વિચાર્યા પછી એ કઠીનમાં કઠીન શાસ્ત્ર સિદ્ધાંતો. એમના હૃદયા૩૬ થઈ જતા હતા. “શાસ્ત્રેષુ કર્કષધિયો વયમેવ લોકે” “કાવ્યેષુ કોમલધિયો વયમેવ લોકે” આ પ્રકારના શાસ્ત્રીજીની લેખ સામગ્રીમાં પ્રત્યક્ષ અનુભવી શકાય છે.

શ્રીવલ્લભકુળના અનેક આચાર્યોએ શિષ્યોએ કુટુંબીજનોએ શાસ્ત્રીજીના જ્ઞાન ભંડારના ઉત્તરાધિકારી કહો કે ઉત્તમાધિકારી બન્યા જેમની સંખ્યા પચાસથી પણ અધિક થવા જાય છે.

પુસ્તક-લેખ-સંશોધન પ્રકાશનમાં પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીની લેખીનીમાંથી પ્રકટતી સરસ્વતી કાદંબરીના લેખક બાણભટ્ટ કે દશકુમારના રચયિતા દંડીની કે કવિ કાલિદાસની ભાષાના પ્રસાદ ઓજસ અને માધુર્ય ત્રણે ગુણોના ત્રિવેણી સંગમ રૂપ પ્રદર્શિત થઈ રહી છે.

શાસ્ત્રીજીના મિત્રો સમર્થકો વિદ્વત્પરિવાર વિશાળ અને વન્દનીય રહ્યો છે. શૈક્ષણિક ધાર્મિક સામાજિક કે સાંપ્રદાયિક ક્ષેત્રના દેદિધ્યમાન સંદેવ વીરસેનાપતિ રહ્યા છે.

પ્રકાંડ પાંકિત્ય સાથે શાસ્ત્રીજીની વિનોદવૃત્તિમાં શાસ્ત્રોના અનુસંધાન રહેતા હતા. એક વખત દેવીના ધ્યાનના શ્લોકનું એક પદ લઈ વિનોદમાં કહ્યું હતું “ચક્ષુઃ પદ્મ ગદેષુ” આમાં ગદેષુ પદ થવું જોઈ કે ગદાસુ.

પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીનો પ્રવાસ અને પ્રભાવ સાર્વત્રિક હતા. ભારત-પાકિસ્તાનના વિભાજન વખતે પોતાના પરિવાર સાથે પાકિસ્તાનના ભાગમાં હતાં ત્યાંથી શ્રી ચંદુભાઈ - છોટા સરદારના નામે ઓળખાતા ગવર્નર પોતાના પ્લેનમાં પોતાના પરિવાર સાથે શાસ્ત્રીજીને સપરિવાર ભારત સકુશળ પહોંચાડવાની સેવા સામેથી કરી હતી.

શાસ્ત્રીજી પૂર્વકાળના ઋષિપ્રવર કે કવિવર અથવા ભક્તવર જ હશે અને આ એમનો સંતિમ જન્મ હશે. એમના અન્તમાં

નામિષેકો ન સંસ્કારો સિંહસ્ય ક્રિયતે વને

વિક્રમાર્જિત રાજ્યસ્ય સ્વયમેવ મૃગેન્દ્રતા-

એ પ્રાતઃ સ્મરણીય તીર્થસ્વરૂપ પુણ્યપુરુષના ચરણે એમના શતાબ્દીપર્વના નિમિત્તે પ્રકાશિત થતા આ પ્રકાશનના અવસરે કોટિકોટિ દંડવત્ પ્રણામ અમારા સમગ્ર શાસ્ત્રી શુક્લ પરિવારના.

## સમર્થ પિતાના સગુણી સંતાન

ગુજરાતીમાં કહેવત છે કે મોરના ઈંડાને ચિતરવાના ન હોય એમ પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીને સંતાનમાં સૌથી મોટા દિકરી એક, બે પુત્રોમાં પિતાજીની તેજસ્વીતા પ્રકટ થયા વિના રહી નથી.

બહેન શ્રી તરૂલતાબેનના લગ્ન પૂજ્ય શ્રી શાસ્ત્રીજીની ઈચ્છા અને ભાવના પ્રમાણે ગુજરાતના વડોદરાના ચશસ્વી યાજ્ઞિક પરિવારમાં શ્રી હરિહરપ્રસાદ શુક્લ સાથે સુખી જીવન વિતાવી રહેલ છે. લગ્નતરમાં પિતાજી પાસે સંસ્કૃતનું સામાન્ય જ્ઞાન તો પ્રાપ્ત કરેલ. વડોદરાની હરણી વિદ્યાલયમાં શિક્ષિકા તરીકે સફળતા સંપાદન કરેલ છે.

શાસ્ત્રીજીના જયેષ્ઠ પુત્ર શ્રી કુમારિલભાઈ શુક્લનો અભ્યાસકાળ તપસ્વી અને તેજસ્વી રહ્યો છે. કુમારિલભાઈએ એમ.એ. સાહિત્યાચાર્ય, ષટ્દર્શનતીર્થ, મીમાંસા તીર્થ, સાહિત્યરત્ન (પ્રયાગ) સીનીયર એચ.એસ.એસ. વગેરે અનેકવિધ પદવીઓ પ્રાપ્ત કરી છે.

કુમારિલ નામ તો મીમાંસા શાસ્ત્રના દિગજ્જ વિદ્વાનનું નામ છે. ભારતનો વિશાળ જન સમાજ બોદ્ધમતમાં ડુબ્યો હતો અને પરમેશ્વરથી વિમુખ અને વેદ વિમુખ બન્યો હતો. કુમારિલ ભટ્ટાચાર્યે મીમાંસાના સિદ્ધાન્તોના માધ્યમથી જનસમાજને નાસ્તિકમાંથી આસ્તિક બનાવ્યો હતો. શાસ્ત્રીજીએ પોતાના મોટા દિકરા મીમાંસાના વિદ્વાન બને એ ભાવનાથી કુમારિલ નામ પુત્રનું રાખ્યું અને સત્પુત્રે મીમાંસા તીર્થ બની પિતાજીની ભાવનાને સાર્થક બનાવી. કાશીમાં સંસ્કૃતનો અભ્યાસ ૧૯૪૯ થી ૧૯૫૬ સુધીમાં પૂર્ણ કર્યો. કાશીના પ્રસિદ્ધ મૂર્ધન્ય વિદ્વાન શ્રી હરિરામજી શુક્લજી પાસે ન્યાય શાસ્ત્રનું પં. શ્રીબદરીનાથજી શુક્લજી પાસે પણ ન્યાયશાસ્ત્રનું મહામહોપાધ્યાય શ્રી નારાયણ શાસ્ત્રી જીસ્તે, શ્રી બટુકનાથ શાસ્ત્રી જીસ્તે પાસે સાહિત્ય શાસ્ત્રનું, શ્રી સુરેન્દ્રનાથ દ્વિવેદીજી પાસે ષટ્દર્શનનો અભ્યાસ કર્યો. કલકત્તાની “પ્રાચ્યવાણી” ઓરિયન્ટલ રીસર્ચ ઇનિસ્ટિટ્યુટની કાશી શાખાના સેક્રેટરી પદે રહી સેવા આપી. અધ્યાપન ક્ષેત્રે કલકત્તામાં રામપ્રાસાદિક સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલયમાં સંસ્કૃતનું અધ્યાપન કાર્યનો પ્રારંભ કર્યો પછી વડોદરા આવ્યા. શ્રી સયાજી વિદ્યાલયમાં અધ્યાપક તરીકે કાર્ય કરતાં, રોઝરી વિદ્યાલયમાં ૩૬ વર્ષ સુધી સંસ્કૃતના અધ્યાપક તરીકેની એમની અનોખી અધ્યાપન શૈલીથી એમની પાસે અભ્યાસ કરનાર આજે મોટા મોટા પદ પર રહેલા ખૂબ જ આદર સાથે યાદ કરે છે. અત્યારે નિવૃત્ત હોવા છતાં કર્મકાંડ-જ્યોતિષ-સંસ્કૃત-

વાસ્તુશાસ્ત્રમાં એમનું નામ ખૂબ જ પ્રસિદ્ધ છે. વડોદરાની વિદ્યુત્સભા અને સંસ્કૃત સેવા મંડલના ઉપપ્રમુખ પટે કેટલાક વર્ષો સુધી સેવા આપી છે.

શાસ્ત્રીજીના નાના પુત્ર શ્રી ઉદયનભાઈએ સાંગવેદ વિદ્યાલયમાં કાશીમાં વેદનું અધ્યયન કરેલું પછી વડોદરા આવી કાંકાત્રી પૂજ્ય બદરીનાથ શાસ્ત્રીજીની છાયામાં સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલયમાં સાહિત્ય, વ્યાકરણાચાર્ય સુવર્ણપદક સાથે અને યાજ્ઞિકીનું સાંગ અધ્યયન કર્યું.

ઉદયન આચાર્ય નામના ન્યાય શાસ્ત્રના અદ્વિતીય વિદ્વાન થઈ ગયા. એમણે રચેલ ન્યાય કુસુમાંજલિ ગ્રંથ પાંડિત્યની કસોટી કરે તેવો છે. એમણે પણ બોદ્ધ મતના પ્રભાવથી વેદ વિરુદ્ધના સ્વભાવના બનેલા સમાજને સ્પર્શી સમજ આપી યૈદિક સનાતન ધર્મની સર્વોપરિતા બતાવી ઈશ્વરથી વિમુખ સમાજને ઈશ્વર સન્મુખ કર્યો હતો. એ ઉદયનાચાર્યના નામ ઉપરથી શાસ્ત્રીજીએ પોતાનો નાનો પુત્ર આવો વિદ્વાન બને એ ભાવનાથી એનું નામ ઉદયન રાખેલું. અને આજે શ્રી ઉદયનભાઈએ પિતાની એ સદ્ભાવનાને પૂર્ણ કરી છે.

શ્રી ઉદયનભાઈ શુક્લ કેન્દ્રિય વિદ્યાલયમાં ચોદ વર્ષ અધ્યાપન કાર્યમાં યશસ્વી રહ્યા અને ત્યાંથી મહારાજ સયાજીરાવ વિશ્વ વિદ્યાલય-સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલયમાં છેલ્લા ચોવીસ વર્ષથી અધ્યાપક રૂપે અધ્યયન કરાવી રહ્યા છે. પ્રાચાર્ય પટે અને વિભાગાધ્યક્ષ પટે પણ શ્રી ઉદયનભાઈનું કાર્ય આવકાર્ય બની રહ્યું હતું. આજે પ્રાધ્યાપક તરીકે અભ્યાસ કરાવી રહ્યા છે. પુષ્ટિ સંપ્રદાયમાં પણ શ્રીઉદયનભાઈનું નામ અને સ્થાન આદરણીય રહ્યું છે શ્રીવલ્લભ વિક્રલ સંસ્થા દ્વારા શુદ્ધ પુષ્ટિમાર્ગીય પંચાંગનું સંપાદન છેલ્લા ચોદ વર્ષથી શ્રી ઉદયનભાઈ કરી રહ્યા છે. સંપ્રદાયના અનેક આદરણીય ટ્રસ્ટમાં શ્રી ઉદયનભાઈ ટ્રસ્ટી તરીકે ખૂબ જ સુંદર સહયોગ આપી રહ્યા છે. એ ટ્રસ્ટોના નામ “અનુગ્રહ ચેરીટેબલ ટ્રસ્ટ”, “વલ્લભ સેવા નિધિ”, “અખિલ વિશ્વ શ્રી વલ્લભ પ્રીતિ સેવા સમાજ ટ્રસ્ટ”, “સંસ્કૃત વિદ્યુત્સભા”, “વિશ્વ સંસ્કૃત પ્રતિષ્ઠાનમ્” આ સંસ્થા ટ્રસ્ટો સાથે શ્રી ઉદયનભાઈ જોડાયેલા છેજ. સત્પુત્રોની આ સિદ્ધિ અને સમૃદ્ધિ જોવા પૂજ્યવર શાસ્ત્રીજી રહ્યા નહિ એને ભગવદિચ્છા માનવી આ એક જ મનનું સમાધાન રહ્યું છે.

આચાર્યવર્ય પૂ.પા.ગો. ૧૦૮ શ્રીશ્યામમનોહરજી (પાર્લા - મુંબઈ)

પુષ્ટિ સંપ્રદાયમાં સિક્કાન્ત, શાસ્ત્ર, સાહિત્ય સેવા સંશોધનના ક્ષેત્રે પૂજ્યપાદ આચાર્યવર્ય ગો. શ્રી ૧૦૮ શ્રીશ્યામમનોહરજીનું પ્રદાન અદ્વિતીય અને આદરણીય

સંદેવ રહ્યું છે. વિદ્વાનો પ્રત્યેનો સમાદર આપશ્રીના ઘરની પરંપરા રહેલી છે. પૂજ્ય શ્રીહરિશંકરજી શાસ્ત્રીજી પ્રત્યે એમના સાહિત્ય પ્રત્યે પૂ.પા.ગો. શ્રીશ્યામમનોહરજીનો નિસ્વાર્થ સમાદરભાવ અપૂર્વ રહ્યો છે. જેના ફલરૂપે સન્ ૨૦૦૨ માં પૂજ્ય શાસ્ત્રીજીને પુરા થતાં સો વર્ષના શતાબ્દી પર્વના નિમિત્તે શાસ્ત્રીજીના સંબંધી આ સાહિત્ય પ્રકાશનની સમગ્ર જવાબદારી આપશ્રીએ સ્વીકારી અને આપશ્રીની આજ્ઞાથી શ્રીવલ્લભવિદ્યાપીઠ તથા શ્રી વિક્રલેશ પ્રભુચરણ આશ્રમ તથા હોસ્પિટલ ટ્રસ્ટ કોલ્હાપુરની અર્થ સહાયની ઉદારતા સંદેવ અવિસ્મરણીય છે. કૃતજ્ઞતાના દર્શનમાં આભારના શબ્દો શુષ્ક લાગે. આભાર ન માનવામાં આવે તો વિવેક હીનતા ગણાય આવી સ્થિતિમાં પૂજ્યવર આચાર્યવર્ય ગો. શ્રી ૧૦૮ શ્રીશ્યામમનોહરજી પ્રત્યે” વળે મહાપુરુષ તે ચરણારવિદમ્” આ હૃદયગત ભાવ પ્રદર્શિત થઈ જાય છે.

કોલ્હાપુરના બંને ટ્રસ્ટના ટ્રસ્ટી શ્રી હંસરાજભાઈ ગોકળદાસ વેદ શ્રીઆચાર્યચરણ શ્રીમહાપ્રભુજીના પરમકૃપાપાત્ર છે જ. આપના પ્રત્યે કૃતજ્ઞતામાં એક પરમ યૈષ્ઠાવને ભાવપૂર્ણ ભગવત્સ્મરણ એજ સર્વાધિક ભાવદર્શન રહેશે એ વિશ્વાસે વિરમું છું.

સંવત્ ૨૦૫૯  
રાસોત્સવ

વિદ્વદ્વશંવદ,  
શાસ્ત્રી પ્રદ્યુમ્ન બ. શુક્લ

પંકિતકુલ કૌસ્તુભ શ્રીહરિશંકર શાસ્ત્રીજીના સમકાલીન  
પુષ્ટિમાર્ગીય આચાર્યશ્રીઓ

નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી મુરલીધરલાલજી	- કાશી
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી અનિરુદ્ધલાલજી	- જામનગર
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી ગોકુલનાથજી	- મુંબઈ
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી પ્રજ્ઞલલાલજી	- સુરત
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી દીક્ષિતજી (વિક્કલનાથજી)	- મુંબઈ
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી કૃષ્ણજીવનજી	- મુંબઈ
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી દામોદરલાલજી	- નાથદ્વાર
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી પ્રજ્ઞભૂષણલાલજી	- કાંકરોલી
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી રણછોડલાલજી	- અમદાવાદ
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી ગોવિન્દરાયજી	- સુરત
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી મધુસૂદનલાલજી	- સુરત
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી વલ્લભલાલજી	- કામવન
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી ગોપીનાથજી	- મુંબઈ
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી મગ્નલાલજી	- વેરાવળ
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી પુરુષોત્તમલાલજી	- જૂનાગઢ
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી ગિરિધરજી	- કોટા
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી દ્વારકેશલાલજી	- કચ્છ-માંડવી
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી પ્રજ્ઞભૂષણલાલજી	- જામનગર
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી પ્રજ્ઞનાથલાલજી	- મુંબઈ
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી ગોકુલનાથજી (ભેચ્ચારાજી)	- મુંબઈ
નિ.લી. ગોસ્વામી શ્રી વિક્કલનાથજી	- કાંકરોલી

આ બધા સાથે નિકટતમ સંબંધ ધરાવતા હતા. ભૂતલ પર વિરાજતા ઈતર  
ગોસ્વામી મહારાજો સાથે પણ સારો સ્નેહ સંબંધ હતો.

શાસ્ત્રીજીના સમકાલીન વિદ્વાનો

પુષ્ટિમાર્ગીય વિદ્વાનો

ગો.વા. શ્રી મગ્નલાલ ગણપતરામ શાસ્ત્રીજી	-ભરૂચ
પંકિત પંચાનન ગો.વા. શ્રી બદ્રીનાથ કાશીનાથ શાસ્ત્રીજી	- વડોદરા
ગો.વા. શ્રી રમણનાથ શાસ્ત્રીજી	- વડોદરા

ગો.વા. શ્રી પુરુષોત્તમશર્મા ચતુર્વેદી	
ગો.વા. ડૉ. ગોવિન્દલાલ ભટ્ટ	- વડોદરા
ગો.વા. ડૉ. પ્રતાપરાય મોદી	- ભાવનગર-વડોદરા
ગો.વા. શ્રી મૂલચંદ તેલીવાલા	- ભરૂચ
ગો.વા. શ્રી જેઠાલાલ ગો. શાહ	- અમદાવાદ
ગો.વા. શ્રી નાનુલાલ ગાંધી	
ગો.વા. શ્રી હરિશચંદ્ર શાસ્ત્રીજી	- ભેચ્ચા-પંજાબ
ગો.વા. શ્રી હરિકૃષ્ણ શાસ્ત્રીજી	
ગો.વા. શ્રી વસન્તરામ શાસ્ત્રીજી	- અમદાવાદ-મુંબઈ
ગો.વા. શ્રી જટાશંકર શાસ્ત્રીજી	- વિદ્યાવિભાગ-કાંકરોલી
ગો.વા. શ્રી કૃષ્ણશંકર શાસ્ત્રીજી	- નડિયાદ-અમદાવાદ
ગો.વા. શ્રી લલિતજી શાસ્ત્રીજી	
ગો.વા. શ્રી કાશીરામ શાસ્ત્રીજી	- માંગરોળ
ગો.વા. શ્રી નાગરદાસ કા. શાસ્ત્રીજી	- અમદાવાદ
પ.ભ. શ્રી કેશવરામ કા. શાસ્ત્રીજી	- અમદાવાદ
ગો.વા. શ્રી જયાશંકર શાસ્ત્રીજી	- નડિયાદ
ગો.વા. શ્રી ના.પુ. સાંગાણી	
ગો.વા. શ્રી ધીરજરામ શાસ્ત્રીજી	- મુંબઈ
ગો.વા. શ્રી અમૃતરામ શાસ્ત્રીજી	- મુંબઈ
ગો.વા. શ્રી ધીરજલાલ સાંકળિયા	
ગો.વા. શ્રી ચીમનલાલ હ. શાસ્ત્રીજી	- સુરત
ગો.વા. શ્રી જેષ્ઠારામ શાસ્ત્રીજી	- ઉમરેઠ
ગો.વા. શ્રી રમણલાલ શાસ્ત્રીજી	- ઉમરેઠ
ગો.વા. શ્રી ભદ્રશંકર શાસ્ત્રીજી	- ખંભાત
ગો.વા. શ્રી ચન્દ્રશંકર શાસ્ત્રીજી	- શહેરા-પંચમહાલ
ગો.વા. શ્રી ચંદ્રશંકર ઉપાધ્યાયજી	- ભરૂચ-મુંબઈ
ગો.વા. શ્રી કંઠમણિ શાસ્ત્રીજી	- કાંકરોલી
ગો.વા. શ્રી દીકમણિ શાસ્ત્રીજી	- કાંકરોલી
ગો.વા. શ્રી મોહનલાલ પ્ર. શાસ્ત્રીજી	- ઉમરેઠ
ગો.વા. શ્રી વલ્લભજી ભાણજી મહેતા	- મોરબી

ગો.વા. શ્રી દુર્લભજી શાસ્ત્રીજી	- મોરબી
ગો.વા. શ્રી ગણપતરામ શાસ્ત્રીજી	- ભરૂચ
ગો.વા. શ્રી કવિ પંચાનન કુંજભિહારી શર્મા	
ગો.વા. શ્રી વિષ્ણુરામભાઈજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી વામનરાવ દી. શાસ્ત્રીજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી વિશ્વનાથ શાસ્ત્રીજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી શિવનાથ એ. શાસ્ત્રીજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી બદ્રીનાથ એ. શાસ્ત્રીજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી દયાનંદ નિ. શાસ્ત્રીજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી લીલાધર વા. શાસ્ત્રીજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી માધવરાય વા. શાસ્ત્રીજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી પૂર્ણાશંકર લી. શાસ્ત્રીજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી બાલકૃષ્ણ બી. શાસ્ત્રીજી	- બુરહાનપુર
ગો.વા. શ્રી શાંતિલાલ શાસ્ત્રીજી	- સિદ્ધપુર-અંબાજી
ગો.વા. શ્રી ગૌરીશંકર શાસ્ત્રીજી	- ચાણોદ
સ્વ. શોભિત મિશ્ર	- વડોદરા
સ્વ. પં. કાલિકાપ્રસાદ શુક્લ	- વડોદરા
સ્વ. હરિપ્રસાદ છ. મહેતા	- વડોદરા
સ્વ. લક્ષ્મીકાંત ઝા	- વડોદરા
સ્વ. પં.મણિશંકર	- વડોદરા
સ્વ. નરહરિ શાસ્ત્રીજી	- વડોદરા
સ્વ. રામચન્દ્ર શાસ્ત્રી ડોંગરે	- વડોદરા

### શાસ્ત્રીજી સાથે નિકટતમ પરિચય ધરાવતા વિદ્વાનો

ધર્મપ્રાણ યતિમૂર્ધન્ય બ્ર.લી. કરપાત્રીજી સ્વામી- અધ્યક્ષ રામરાજ્ય પરિષદ	
બ્ર.લી. શ્રીજગત્ગુરુ પ.પૂ. નિરંજનદેવ તીર્થ શંકરાચાર્ય	- પૂરી
બ્ર.લી. શ્રી જગત્ગુરુ પ.પૂ. અભિનવસચ્ચિદાનંદજી શંકરાચાર્ય	- દ્વારકા
બ્ર.લી. શ્રી જગત્ગુરુ પ.પૂ. કૃષ્ણબોધાશ્રમજી શંકરાચાર્ય	- બદ્રીકાશ્રમ
બ્ર.લી. શ્રી જગત્ગુરુ પ.પૂ. ચન્દ્રશેખર સરસ્વતી	- કાંચીકામકોટી
સ્વ. પંડિતરાજ લક્ષ્મણશાસ્ત્રી દ્રાવિડ	- વારાણસી
સ્વ. પંડિતરાજ રાજેશ્વરશાસ્ત્રી દ્રાવિડ	- વારાણસી

સ્વ. પ. મહામહોપાધ્યાય ગોપીનાથ કવિરાજ	- વારાણસી
સ્વ. પ. મહામહોપાધ્યાય ગિરિધરશર્મા ચતુર્વેદી	- વારાણસી
સ્વ. પ. મહામહોપાધ્યાય નારાયણ શાસ્ત્રી ખીસ્તે	- વારાણસી
સ્વ. પ. મહામહોપાધ્યાય હાથીભાઈ શાસ્ત્રીજી	- જામનગર
સ્વ. ડૉ. રાજેન્દ્રપ્રસાદ - રાષ્ટ્રપતિ - ભારતના રાષ્ટ્રપતિ	
સ્વ. ડૉ. રાધાકૃષ્ણન - ઉપરાષ્ટ્રપતિ - ભારતના ઉપરાષ્ટ્રપતિ	
સ્વ. શ્રી કનેયાલાલ મા. મુન્શી -રાજ્યપાલ ઉ.પ્ર.	
સ્વ. શ્રીમતી લીલાવતી ક. મુન્શી	
સ્વ. ગુરુવર્ય શ્રી નિત્યાનંદ પર્વતીય	- વારાણસી
સ્વ. ગુરુવર્ય શ્રી ચિત્રસ્વામી	- વારાણસી
સ્વ. ગુરુવર્ય શ્રી બાલકૃષ્ણ મિશ્ર	- વારાણસી
સ્વ. શ્રી દેવનાયકાચાર્ય	- રામાનુજ સંપ્રદાય
સ્વ. શ્રી વામાચરણ ભટ્ટાચાર્ય	- વારાણસી
સ્વ. ડૉ. ભગવત્દત્ત ઝા	- લખનઉ
સ્વ. શ્રી વાસુદેવ શરણ અગ્રવાલ	- લખનઉ
સ્વ. શ્રી મદનમોહન માલવિયાજી - બ.હિ.વિ.વિ.	- વારાણસી
સ્વ. ડૉ. વેલવરકર	
સ્વ. શ્રી રાખાલદાસ બેનરજી	- મુંબઈ
સ્વ. યેધરાજ શિવશંકરભાઈ બાવાભાઈ અચલજી	- મુંબઈ
સ્વ. યેધરાજ જાદવજી ત્રિકમજી આચાર્ય	
સ્વ. પ્રોફેસર જી.સી. ઝાલા	
સ્વ. શ્રી બાળાસાહેબ ખેર - મુખ્યપ્રધાન	- મુંબઈ
સ્વ. શ્રી બાલુ સમ્પૂર્ણાનંદજી - મુખ્ય પ્રધાન	- ઉ.પ્ર.
સ્વ. રેવરંટ ફાધર ડૉ. મોરે - સેન્ટ ઝેવિયર કોલેજ	- મુંબઈ
સ્વ. રેવરંટ ફાધર ઈસ્ટ્રાલર - સેન્ટ ઝેવિયર કોલેજ	- મુંબઈ

સમગ્ર ભારત અને વિદેશોમાં વસતા તત્કાલીન પરિચિત વિદ્વાનોની યાદી સ્થળ સંકોચને લીધે આપી નથી.

## -: અનુક્રમણિકા :-

ક્રમ	વિષય	પાન નં.
<b>કૌસ્તુભકિરણાવલી (ગુજરાતી)</b>		
૧	તકરપુષ્ટિમાર્ગીયસિદ્ધાન્તશેખર	૧
૨.	સત્સિદ્ધાન્તમાર્તણ્ડ:	૫૩
૩.	શ્રીમદ્ ભાગવતનું પ્રામાણ્ય	૯૯
૪.	તત્પાર્થદીપનિબન્ધ (શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ)	૧૩૩
૫.	તત્પાર્થદીપનિબન્ધ (સર્વનિર્ણયપ્રકરણ)	૨૨૩
૬.	રાસ અને રસશાસ્ત્ર	૨૪૫
૭.	ગીતાનું તાત્પર્ય	૨૫૬
૮.	શ્રીગોપીગીતમ્	૨૬૪
૯.	શ્રીમદ્ વિક્કલેશ્વરદીક્ષિત શ્રીગુસાંધંજી	૨૮૯
૧૦.	શ્રીમદાચાર્યવાઙ્મુક્તાવલી	૩૩૦
<b>કૌસ્તુભકિરણાવલી (હિન્દી)</b>		
૧૧.	બ્રહ્મવાદ (શ્રીહરિરાયમહાપ્રભુ વિરચિત)	૩૫૧
૧૨.	બ્રહ્મવાદ (શ્રીવ્રજરાજ વિરચિત)	૩૮૪
૧૩.	વેદાન્તતાત્પર્યનિરૂપણ	૩૯૫
૧૪.	વિવેકર્ધેર્યાશ્રયનિરૂપણ	૪૧૦
૧૫.	દશદિગન્તવિજયતી ગો.શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજ ઔર અપ્પય્યદીક્ષિત	૪૩૮

# પુષ્ટિમાર્ગીયસિદ્ધાન્તશેખર

લેખક : શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રી, મી.શા.વે.વિ. M.R.A.S.

## પ્રમાણ વિચાર

શ્રીમદખણ્ડભૂમણ્ડલાચાર્યચક્રવર્તિભગવદ્વેદનેયેશ્વાનરાવતાર-જગદ્ગુરુ શ્રીમહાપ્રભુજીએ ભગવત્સ્વરૂપનો અને તત્સેવાનો નિર્ણય વેદને અનુસરીને જ કર્યો છે. આપશ્રી વેદને જ પ્રમાણત્વે અંગીકાર કરે છે. વેદ ભગવત્સ્વરૂપ હોવાથી પરમ પ્રમાણ છે.

ગૌતમ, કણ્ણદ, કપિલ, પતંજલિ, જેમિનિ અને બાદરાયણ આ બધા વેદને પ્રમાણત્વે સ્વીકારે છે. કિંતુ પ્રત્યેકના મતમાં પ્રામાણ્ય પરીક્ષા સ્વતંત્ર રીતે થાય છે. ચાર્વાક, ચતુર્વિધ બૌદ્ધ અને જેનો પ્રત્યક્ષાદિનું પ્રામાણ્ય સ્વીકારે છે, શબ્દનું નહિ. તેમાંએ ચાર્વાક તો એકમાત્ર પ્રત્યક્ષને જ પ્રમાણ માને છે, બૌદ્ધ અને જેન પ્રત્યક્ષ અને અનુમાનને પણ પ્રમાણત્વે માને છે, કપિલ અને યોગીઓ પ્રત્યક્ષ, અનુમાન અને આગમને; જૈનાચિકો અને યેશોષિકો પ્રત્યક્ષ, અનુમાન, ઉપમાન અને શબ્દ, તથા વેદાન્તમાં શાંકરો પ્રત્યક્ષ, અનુમાન, ઉપમાન, શબ્દ, અર્થાપત્તિ અને અનુપલબ્ધિને પ્રામાણત્વે સ્વીકારે છે. મીમાંસકો અને યેચાકરણો શબ્દને પ્રામાણત્વે સ્વીકારીને પ્રત્યક્ષાદિને શબ્દના અવિરોધી હોય તો પ્રમાણ માને છે. અને શ્રીમદ્વેદભાષ્યાર્થજી શબ્દને જ પ્રમાણ કહે છે. પ્રત્યક્ષાદિ તો શબ્દની પાછળ અનુગમન કરનારા છે. શબ્દમાં ગમે તે વાક્યને પ્રમાણ નથી કહેતા પણ વેદને જ કહે છે. કપિલથી આરંભીને યેચાકરણાન્ત બધા શબ્દને પ્રમાણ કહે છે. પણ શ્રીમહાપ્રભુજી સંપૂર્ણ વેદભાગને અર્થાત્ અર્થવાદાદિને પણ પ્રમાણ કહે છે. જ્યારે અન્યમતાનુયાયીઓ અર્થવાદનું પ્રશંસા કે નિંદામાં તાત્પર્ય માને છે. શ્રીમહાપ્રભુજીની વેદમાં જેવી શ્રદ્ધા છે તેવી અન્યની નથી. બીજાઓ પોતાને યૈદિક કહેવડાવે છે, પણ વાસ્તવિક રીતે જોવામાં આવે તો તેઓ અનેક સ્થળે વેદનું અપમાન કરે છે. આવા યૈદિકોની અપેક્ષાએ તો ચાર્વાકાદિ અયૈદિકોજ સારા કે તેઓ વેદને માનતા જ નથી. વેદને માનીને તેનું અપમાન કરવું એ સર્વથા ગર્હ્ય છે. શાંકરો વેદને સત્ય અર્થાત્ ત્રિકાલાબાધિત કહે છે. જ્યારે તેઓ જગત્ને મિથ્યા અને નશ્વર માનીને જગદન્તઃપાતિત્વે વેદને પણ મિથ્યા અને નશ્વર કહેવાનું દુઃસાહસ કરે છે. મીમાંસકો વેદને નિત્ય માનીને સ્વતઃપ્રમાણ માને છે અને પછી કહે છે કે વેદનો અમુક ભાગ પ્રમાણ છે અને અમુક પ્રમાણ નથી. શ્રીમહાપ્રભુજી સંપૂર્ણ-મંત્ર, બ્રાહ્મણ,



આરણ્યક, ઉપનિષદને પ્રમાણ માને છે. આપત્રી આજ્ઞા કરે છે કે “વેદમાં અક્ષર માત્ર પણ અન્યથા કલ્પના કરવાથી દોષ લાગે છે.” આપત્રી વેદને નિત્ય, અપોરુષેય, સ્વતઃપ્રમાણ અને ભગવદ્ગુણ કહે છે. આપત્રી કહે છે કે વેદ ભગવદ્ગુણ હોવાથી અર્થવાદાદિસમેત પ્રમાણ છે. આપત્રી કિલ્લિડમનાદ કરીને કહે છે કે “વેદનો અર્થ વ્યાકરણાદિમાં જે ઘાતુ અને શબ્દનો જેવો અર્થ કરેલો હોય, તેને અનુસરીને જ કરવો, અન્યથા નહિ. વેદ અલૌકિક હોવાથી તેમાં લક્ષણ થઈ શકે નહિ.” આવી વેદશ્રદ્ધા અન્ય કોઈ પણ આચાર્યમાં જોવામાં આવી નથી. શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતા, વ્યાસસૂત્ર અને શ્રીમદ્ભાગવતને પણ વેદના સંદેહ દૂર કરનાર તરીકે પ્રમાણ માને છે. વાસ્તવિક રીતે તો આપત્રીનો સિદ્ધાન્ત વેદોઃ પ્રમાણમ્, અન્યદપ્રમાણમ્ એ જ છે.

### વેદ અલૌકિક છે

ભારત વર્ષની પ્રાચીન સંસ્કૃતિ વેદને ઈશ્વરરૂપ માને છે. ઈશ્વરને જેમ અનિત્ય માનવામાં પાપ લાગે છે, અથવા ઈશ્વરનોએ કોઈ ઉત્પાદક હોવો જોઈએ એવી કલ્પના કરનાર નાસ્તિક કહેવાય છે; તેમજ વેદને અનિત્ય અને વેદના પ્રણેતા અમુક ઋષિઓ હતા એમ બોલવામાં પાપ લાગે છે, શ્રીમહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરે છે કે વેદ અલૌકિક છે, માટે તેનો અર્થ લૌકિક પદ્ધતિએ ન કરી શકાય.

“અલૌકિકો હિ વેદાર્થો નં યુક્ત્યા પ્રતિપદ્યતે ।

તપસા વેદયુક્ત્યા વા પ્રસાદાત્પરમાત્મનઃ ॥”

વેદાર્થ અલૌકિક હોવાથી તે યુક્તિદ્વારા મેળવી શકાય નહિ. જો વેદાર્થની પ્રાપ્તિ કરવી હોય તો તપથી વૈદિક યુક્તિથી (પૂર્વોક્તર મીમાંસા પ્રતિપાદિત યુક્તિઓથી) અથવા પરમાત્માની કૃપાથી પ્રાપ્ત થઈ શકે; અન્યથા નહિ. આધુનિકો મેક્ષમૂલરાદિનાં ભાષાન્તરો વાંચીને વેદાર્થને જાણવાનો દાવો કરે છે; અને વેદમાં અમુક વાત નથી અને અમુક વાત છે, એમ કહેવાનું પણ સાહસ કરે છે. તેમજ વિધવાવિવાહાદિ વેદમાં છે અથવા એજિન, ટેલિફોન વગેરે વૈદિક કાલની સામગ્રી છે એમ કહીને અદ્ભુત શોધ કરવાની યશઃપ્રાપ્તિની દુરભિલાષા સેવે છે; તેમણે શ્રીમહાપ્રભુજીના વાક્યનો વિચાર કરવો જોઈએ. વેદ કદાપિ લૌકિક પદાર્થનું વિવેચન કરતો જ નથી. તે અલૌકિક હોવાથી અલૌકિક પદાર્થોનો જ બોધ કરાવે છે. વેદમાં લૌકિક વસ્તુની ગંધ પણ નથી. વેદ જડવાદનો પોષક ન હોવાથી તેમાં એજિન કે ટેલિફોન હોય જ નહિ. શ્રીમહાપ્રભુજીના સિદ્ધાન્ત પ્રમાણે આવી લૌકિક કલ્પના

કરનારને પાપકર્મ કરનાર અથવા નાસ્તિક કહી શકાય.

### શું વેદનો કાલનિર્ણય શક્ય છે ?

આધુનિકો પાશ્ચાત્ય પદ્ધતિને અનુસરીને વેદનો કાલનિર્ણય કરવામાં વિશેષતા માને છે. શ્રીમહાપ્રભુજી ઉપનિષદનાં પ્રમાણો આપીને કિલ્લિડમધોષ કરે છે કે વેદ અલૌકિક છે, ઈશ્વરરૂપ છે, અપોરુષેય છે, નિત્ય છે. જે પદાર્થ અલૌકિક, ઈશ્વરરૂપ, અપોરુષેય કે નિત્ય હોય તેનો કાલનિર્ણય કરવો અને આકાશમાં કુસુમને બતાવવું કે શશશૃંગની કલ્પના કરવી સમાન છે. જો ઈશ્વરનો કાલનિર્ણય શક્ય હોય તો ઈશ્વરરૂપ વેદનો ચે કાલનિર્ણય શક્ય હોઈ શકે. આધુનિકો પાસે દલીલો છે. તેઓ ઘણી સારી અને મનોરંજક દલીલો કરી શકે છે. વાસ્તવિક રીતે જો તેમની દલીલોનું નિરીક્ષણ કરવામાં આવે તો વેદવિષયક તેમના અજ્ઞાનની પ્રતીતિ થાય. તેમની દલીલો બાળકના જેવી છે. જેમ કોઈ બાળક પોતાની માને પૂછે કે ‘બા, બાપા પાઘડી પહેરે છે, તું કેમ નથી પહેરતી ? બાપાને મૂછો છે તને કેમ નથી ? બધાએ હાથપગવાળા માણસો છે. પુરુષને મૂછો હોય અને સ્ત્રીઓને કેમ ન હોય ? આવી દલીલો પ્રાકૃતિક નિયમનું અજ્ઞાન જ દાખવે છે. પાશ્ચાત્ય પદ્ધતિને અનુસરીને જે વિદ્વાનો વેદનો કાલનિર્ણય કરવા પ્રયાસ કરે છે તેમણે અધ્યાવધિ એવી એક પણ દલીલ રજૂ કરી નથી કે જેનો વિચાર પ્રાચીન દર્શનકારોએ કર્યો ન હોય. આપણા પ્રાચીન ઋષિઓ દીર્ઘદર્શી હતા તેથી જ તેમણે પોતાના ગ્રંથોમાં પૂર્વપક્ષ રૂપે તેવી દલીલો રજૂ કરીને તેના રદીઆ આપ્યા છે. અમે જેટલું જૂનું તેટલું સાચું અને નવું તેટલું મિથ્યા એમ કહેતા નથી. છતાંયે અમે ખાત્રી સાથે કહી શકીએ છીએ કે પ્રાચીન દર્શનકારોએ જેવો સૂક્ષ્મ વિચાર કર્યો છે તેવો સૂક્ષ્મ વિચાર કરવા આધુનિકો અસમર્થ છે. તેમના જેટલું બુદ્ધિબલ અને તલસ્પર્શજ્ઞાન આધુનિકોમાં નથી; ભલે આધુનિકો જડ પદાર્થોની શોધખોળ કરે, નવનવા આવિષ્કાર કરે, પણ આધ્યાત્મિક જગતમાં તો તેમની બુદ્ધિ કુંઠિત જ રહેવાની. પ્રાચીન ઋષિઓની સાથે હરીફાઈ કરે તેવું બુદ્ધિબલ નહિ જ પ્રાપ્ત કરી શકે. આધ્યાત્મિક જગતમાં નવનવા આવિષ્કાર કરનારા ઋષિઓ છે, તે ભગવદ્વતાર છે, સામાન્ય મનુષ્ય નથી. ઋષિઓ વલ્કલ વસ્ત્ર ધારણ કરનાર તે ઉચ્છવૃત્તિથી ગ્રવન નિર્વહન કરનારા હતા. ઐશોઆરામમાં અને ભૌતિકસુખમાં મગ્ન ન હોવાથી તેમની બુદ્ધિ સૂક્ષ્મતમ વિચાર કરી શકે તેવી હતી. અત્યારે વિચારશક્તિનો હાસ થતો જાય છે વિકાસ થતો નથી. વેદના વિચારકો શાસ્ત્રીય પદ્ધતિને અનુસરીને ગ્રવન ગાળતા હતા. તેમને પોતાનું ગ્રવન

શાસ્ત્રીય પદ્ધતિને અનુકૂળ બનાવવું પડતું હતું. નહિ કે સ્વેચ્છાચારિત્વમાં અગવડ જણાવવાથી નવીન ધર્મશાસ્ત્રની રચના કરવાની આવશ્યકતા જણાતી હતી. અત્યારે તો જડવાદમાં જ બુદ્ધિની પરાકાષ્ઠા આવી જાય છે, આધ્યાત્મિક વિચારમાં નહિ. આધ્યાત્મિક જગતના પ્રાણીને જડવાદીઓ પાગલ સમજે છે. પ્રકૃત વિષયમાં પણ પાશ્ચાત્યોની દલીલો સર્વથા નહિના જેવી છે. તેઓ પૂર્વમીમાંસાદિના પૂર્વપક્ષોનું પુનરુત્થાપન કરીને જલમન્યન કરવાનો પ્રયાસ આદરે છે તેથી તેનો વિચાર ત્યાજ્ય છે.

અત્યારે ઘણા પાશ્ચાત્ય અને પૌરસ્ત્ય વિદ્વાનો અને પ્રોફેસરો વેદકાલનો નિર્ણય કરવામાં પ્રયત્નશીલ જોવામાં આવે છે. વાસ્તવિક રીતે પાશ્ચાત્યોનો ઉદ્દેશ એ હોય છે કે વેદકાલને જેમ બને તેમ ઇ.સ. પૂર્વે બે હજાર વર્ષથી અર્વાચીન સિદ્ધ કરવો, અને ભારતીય જનતાને કહેવું કે તમે પણ આ દેશમાં એક પ્રકારે વિદેશી જ છો. આ દેશ અનાયોનો છે, જંગલીઓનો છે. તમે પણ આ દેશમાં અમારી પેઠે આવીને અધિકાર જમાવ્યો હતો. આ દેશને પરાધીન બનાવ્યો હતો. સૌથી પ્રથમ આ દેશમાં આર્યોએ આવીને અનાયો પર હુમલો કર્યો. ત્યારબાદ તમે એલેક્ઝાન્ડર વગેરે પાશ્ચાત્ય મુસાફરો પાસેથી સભ્યતા શીખ્યા અને કમશઃ મુસલમાનો આવ્યા અને અંતે અમારી સત્તા સ્થપાઈ. અર્થાત્ આ દેશ પ્રથમથીજ પરાધીન છે તે સ્વતંત્ર થઈ શકે નહિ. જ્યારે પ્રાચ્ય વિદ્વાનો એમ બતાવવાનો પ્રયાસ કરે છે, કે અમારું જ્ઞાન બહોળું છે, અમારી સભ્યતા પ્રાચીન છે અને અમેજ જગતના આદિગુરુ છીએ. પરંતુ આવી રીતે વિભિન્ન ઉદ્દેશોની સિદ્ધિથી ભારતીય ઇતિહાસમાં બે મહાન્ દોષો ઉમેરાય છે એક તો એ કે વેદવાણી ભગવદ્ગૂપ્ત છે, નિત્ય છે, અપૌરુષેય છે, પરમ પ્રમાણ છે તેનો કાલ નિર્ણય કરવાથી તે અનિત્ય. પૌરુષેય અને અનીશ્વરરૂપ હરે છે. અને દ્વિતીય દોષ એ કે અમે ભારતવર્ષના આદિથી નિવાસી નથી, વિદેશી છીએ અને અંગ્રેજો કે મુસલમાનોની પેઠે અહિં આવીને સત્તા જમાવી હતી, તેથી આ દેશ પ્રથમથી જ પરાધીન હતો, અત્યારે પરાધીન છે અને ઇતિહાસના બલથી ભવિષ્યમાં ચે પરાધીન રહેવો જોઈએ. એમ અનિચ્છાએ પણ સ્વીકારીએ છીએ, તેમજ વેદને પરમ આસ અને પરમ પ્રમાણત્વે સ્વીકારતાં છતાંએ હઠાત્ વેદશાસ્ત્રપ્રતિપાદિત સત્યચુગાદિ કાલનિયમનો ભંગ થાય છે. આપણે પરદેશી છીએ અને અહિં આવીને પોતાની સંસ્કૃતિનો પ્રચાર કર્યો; તેમાં ચે કાંઈ પ્રમાણ નથી. જ્યારે શાસ્ત્રીય ભૂગોળનું જ્ઞાન ન હોય ત્યારે જ આવા અપસિદ્ધાન્તો સ્વીકારી શકાય. રાન્ય દેશોમાં આર્યોનાં સ્મરણ ચિહ્નો મોજુદ છે. તે પ્રાચીન

ભારતીય સભ્યતાની વ્યાપકતાનાં શુભસ્મરણો છે. તે ઉપરથી એમ પણ સિદ્ધ થઈ શકે છે કે અમે ભારતવાસીઓએ જાવા, સુમાત્રા વગેરે ટાપુઓમાં ઉપનિવેશો સ્થાપ્યા હતા. ઇરાનમાં જે ચિહ્નો મળે છે તેથી એમ જાણી શકાય છે કે ઇરાનીઓને અમે સભ્યતા શીખવી હતી; નહિ કે અમે મધ્ય એશિયામાંથી અહિં આવ્યા હતા. આ સ્મરણ ચિહ્નોના આધારે એમ સિદ્ધ થતું નથી કે આર્યો ત્યાંથી અહીં આવ્યા હતા. પ્રત્યુત એમજ સિદ્ધ થાય છે કે આર્યસંસ્કૃતિની મહેક ત્યાં સુધી પહોંચી હતી.

વેદને અથવા શબ્દને અનિત્ય માનનાર નૈયાયિકોના મતનું ખડકન શબરસ્વામીએ મીમાંસાદર્શનના ભાષ્યમાં, પતંજલિએ વ્યાકરણમહાભાષ્યમાં, કુમારિલે સ્તોકવાર્તિકમાં, પ્રભાકરે બૃહતી અને ઋગ્વિમલામાં, અને તત્પશ્ચાત્ થયેલા અનેક મીમાંસકો, વૈદિકો તથા વૈયાકરણોએ કર્યું છે. આસ્થલે તે વિષયનો પ્રાચીન પદ્ધતિએ વિચાર અસ્થાને ગણાશે. કારણ કે તેમાં અમે નવી ચુક્તિઓ દાખલ કરી શકીશું નહિ. જે કહેવાઈ ગયું છે તેનો જ અનુવાદ કરવાનો રહ્યો. તેવા અનુવાદો પણ અનેક સ્થલે થયા છે. શ્રીમદ્વેદભાષ્યના મન્તવ્યનું સમર્થન કરવા માટે પણ તે વિષયની ચર્ચા કરવાનો પ્રયાસ અમે કરતા નથી. કારણ કે વસ્તુ અનેકવાર મહત્પુરુષોદ્ધારા સિદ્ધ કરાયેલી છે, તેને સિદ્ધ કરવાનું કાંઈપણ પ્રયોજન નથી. અને જો કદાચિત તેનો સમાવેશ પ્રસ્તુત લેખમાં થાય તો લેખનો આકાર વધી જાય અને તે ભાગને સર્વ સામાન્ય વેષણવો સમજી પણ નહિ શકે. સાધારણ શિક્ષિત વેષણવો પણ શ્રીમહાપ્રભુજીના સિદ્ધાન્તો સમજી શકે એવા સદુદ્દેશથી અત્યંત કઠિન અને વિદ્વદ્ગમ્ય વિષયોનો સમાવેશ કરવો અયોગ્ય છે. અમે તે વિષયની ચર્ચા “મીમાંસાન્યાયપ્રકાશ” ની ટીકામાં દાખલ કરી છે. અને જો શ્રીમહાપ્રભુજીની કૃપાથી “પ્રસ્થાનરત્નાકર” ની ટીકા સિદ્ધ કરવાનો અમારો મનોરથ પૂર્ણ થાય તો તેમાંચે તે વિષયની ચર્ચા સંસ્કૃત ભાષામાં દાર્શનિક પદ્ધતિએ દાખલ કરીશું. આ સ્થલે માત્ર શ્રીમહાપ્રભુજી વેદના વિષયમાં શું માને છે તેનું જ દિગ્દર્શન કરાવવાનો પ્રયાસ આદર્યો છે. આપશ્રીનું મંતવ્ય પ્રાચીન ઋષિ મુનિઓને અનુસરે છે. જેને તે વિષયમાં શંકા હોય તેણે શાબરભાષ્ય, સ્તોકવાર્તિક, બૃહતી, ઋગ્વિમલા, પાતંજલમહાભાષ્ય, વેદાન્તદર્શન, સાયણાચાર્યની ઋગ્વેદભાષ્યભૂમિકા વગેરે આસન્ધો વાંચીને શંકાની નિવૃત્તિ કરવી. હવે અમે શ્રીમહાપ્રભુજીનું વેદવિષયક મન્તવ્ય શું છે તે પ્રસિદ્ધ કરીએ છીએ. શ્વેતાશ્વતરીય શાખાનો મન્ત્રોપનિષદ્માં એક શ્રુતિ નીચે પ્રમાણે છે :-

“યો બ્રહ્માણં વિદધાતિ પૂર્વં યો વૈ વેદાંશ્ચ પ્રહિણોતિ તસ્મૈ ।

તં દેવમાત્મબુદ્ધિપ્રકાશં મુમુક્ષુર્વે શરણમહં પ્રપદ્યે ॥” ૬-૧૮

જે આદિદેવે પૂર્વે સૃષ્ટિના આરંભમાં બ્રહ્માનો (વેદપુરુષનો) આવિર્ભાવ કરીને તેને વેદો આપ્યા. અર્થાત્ બ્રહ્માના હૃદયમાં વેદરૂપી સ્વકીય જ્ઞાનનો પ્રકાશ કર્યો તે આત્મદેવને હું સંસારના તાપથી સંતપ્ત થયેલો જીવ શરણાગમન કરું છું. આ શ્રુતિવાક્યથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે વેદ એટલે ભગવત્સંબંધી અલૌકિકજ્ઞાનરાશિનો પ્રભુએજ કૃપા કરીને બ્રહ્માના કે જેનો વેદપુરુષ તરીકે આવિર્ભાવ પોતે જ કર્યો છે તેના હૃદયમાં પ્રકાશ કર્યો.

“અસ્ય નિઃશ્વસિતં વેદાઃ” આ શ્રુતિ વાક્ય પણ અપોરુષેય વેદનો આવિર્ભાવ બ્રહ્મામાંથી થયો એમ કહે છે. “તેને બ્રહ્મ હૃદાય આદિકવચે” આ શ્રીમદ્ભાગવતનું પ્રથમ વાક્ય પણ ભગવાનને જ વેદરાશિના પ્રકાશક સ્વીકારે છે. શ્રીમદ્ભાગવતનું શ્રીમદ્ભાગવતના પ્રથમ સ્લોકને વેદના બીજરૂપ ગાયત્રીનું સ્વરૂપ કહે છે. જેમ વેદમાં ગાયત્રી બીજ છે, તેમજ શ્રીમદ્ભાગવત પણ નિગમકલ્પતરૂનું પરિપક્વ રસાલ ફલ હોવાથી તેનો પ્રથમ સ્લોક બીજરૂપ ગાયત્રીનું જ સ્વરૂપ છે. આ ગાયત્રીરૂપ પ્રથમ સ્લોક પણ એજ પ્રતિપાદન કરે છે કે વેદનો આવિર્ભાવ ભગવાનમાંથી થયો અને ભગવાનજ કૃપા કરીને તે અલૌકિક જ્ઞાનરાશિનો પ્રકાશ કરે છે, અન્ય નહિ. આ સ્થળે શ્રીમદ્ભાગવતનું શ્રીસુબોધિનીજીમાં આજ્ઞા કરી છે કે:-

“નામપ્રપન્નકારણમહં-તેને ઇત્યાદિના । યદ્યપ્યવિશેષેણ કારણત્વં વક્તુમશક્યં, તથાપિ રૂપપ્રપન્નસક્તાનાં જીવાનાં નિવારણાર્થં ભેદનોક્તમ્ । બન્ધમોક્ષયોઃ પ્રકારભેદેન નિરૂપણાર્થં વેદજગતોભિન્નતયા નિરૂપણમ્ । ત્રિવિધાપ્યુત્પત્તિર્વેદે નાસ્તિ । કિન્તુ પ્રલયે સૂક્ષ્મતયાઽવસ્થાનમ્ । યથા વર્ણનામનેકભાષાવિતતત્ત્વં વિસ્તારસ્તથા શ્રુતેરપિ વેદશાખાભેદેન વિસ્તારઃ । બ્રહ્મ વેદમ્ । અવિકૃતત્વાય તથાવચઃ । હૃદેતિ મનઃપૂર્વકમ્ । સ્વાર્થમેતદિતિ ભાવઃ । પુરાણેન સહેતિ વા । પુરાણં હૃદયં સ્મૃતમિતિ વચનાત્ । “યો બ્રહ્માણં વિદધાતિ પૂર્વં યો વૈ વેદાંશ્ચ પ્રહિણોતિ તસ્મૈ” ઇતિ-બ્રહ્માર્થં વેદવિસ્તારઃ । ભગવત્તાત્પર્યં વેદ એવ, ન લોક ઇતિ વા હૃદેત્યુક્તમ્ । ય ઇતિ ગાયત્રીતૃતીયપાદસ્થસ્ય ગ્રહણમ્ । તેન સર્વપ્રેરકત્વમાયાતિ । અન્યથા વૈયર્થ્યાપત્તેઃ । યત્ ઇત્યસ્યૈવ સર્વવાક્યેષુ વિભક્તિવિપર્યયેણ યોજયિતું શક્યત્વાત્ । આદિકવચે બ્રહ્મણો વેદમાર્ગેણ બ્રહ્મત્વમુચ્યત ઇત્યર્થઃ । અન્યેષાં વેદનિષ્ઠાનામપિ તદ્રૂપેણૈવ મુક્તિરિતિ ભાવઃ । શબ્દરસાભિજ્ઞત્વાય કવિપદપ્રયોગઃ । ગોપનાર્થમન્યથાકથનસામર્થ્યાય વા । ન હ્યન્યસ્તાદૃશો

ઽસ્તીત્યાદિપદમ્ । કવિદોષાય ભાવાય વા । નાનાવિધસ્તોત્રેણ વા સન્તુષ્ટો ભગવાન્ તસ્મૈ વેદં પ્રકાશિતવાનિત્યાદિકવિપદપ્રયોગઃ ।”

અગ્નિવેદ સંહિતા ૮-૨-૨૩ માં નીચે પ્રમાણે શ્રુતિ સંભળાય છે :-

“યજ્ઞેન વાચઃ પદવીયમાયંસ્તામનવિદન્તૃષિષુ પ્રવિષ્ટામ્”

આ વાક્ય પણ યજ્ઞરૂપ પ્રભુની કૃપાથી વેદ વાણીની પ્રાપ્તિ જણાવે છે.

હવે તે ઈશ્વર કોણ અને બ્રહ્મા કોણ, તેનો વિચાર કરીશું કે જેની પાસેથી બીજા બધાને તે અલૌકિક જ્ઞાનરાશિની પ્રાપ્તિ થઈ. પાતંજલ દર્શનના પ્રથમ પાદનું ૨૪મું સૂત્ર આ પ્રમાણે છે:-

“ક્લેશકર્મવિપાકાશયૈરપરામૃષ્ટઃ પુરુષવિશેષ ઈશ્વરઃ ।”

જે કલેશકર્મવિપાકાશયથી અપરામૃષ્ટ હોય તે, પુરુષવિશેષ ઈશ્વર છે. તેનેજ યેદિકો “રસો વૈ સઃ” “તે રસ જ છે. રસરૂપ છે.” એમ કહીને બોલાવે છે. જેને વેદમાં બ્રહ્મ, સ્મૃતિમાં પરમાત્મા અને ભાગવતમાં ભગવાન્ કહે છે તેજ આ ઈશ્વર છે. તે ઈશ્વર બ્રહ્મા આદિનો ગુરુ છે.

પૂર્વેષામપિ ગુરુઃ કાલેનાવચ્છેદાત્ (પાતંજલ દર્શન ૧-૨૬.) તે ઈશ્વર પૂર્વજનો (બ્રહ્માદિનો) પણ ગુરુ છે, કેમકે તેનો કાલવિભાગ થઈ શકતો નથી. ઈશ્વરનો કાલવિભાગ થતો નથી. પણ ઈશ્વર પ્રતિપાદિત જ્ઞાન રાશિનો કાલવિભાગ થાય છે. આ પણ એક મૂર્ધકલ્પના જ છે. વેદ નિત્ય છે એમ મહર્ષિ જેમિનિ પણ કહે છે. “કર્મકે તત્ર દર્શનાત્” (૧-૧-૬ મીમાંસા દર્શન) આ સૂત્રથી આરંભીને બાર સૂત્રો વડે વેદ અનિત્ય છે એમ પૂર્વ પક્ષ કર્યો અને પછી “નિત્યસ્તુ સ્યાદ્ દર્શનસ્ય પરાર્થત્વાત્” (૧-૧-૬ મીમાંસા દર્શન) ઇત્યાદિ છ સૂત્રો વડે વેદ નિત્ય છે એમ સિદ્ધાન્ત કર્યો. તેમજ ભગવાન્ વેદવ્યાસે પણ ઉત્તર મીમાંસામાં અત્ત એવ ય નિત્યત્વમ્ (૧-૩-૨૯ વેદાન્ત દર્શન) આ સૂત્ર વડે વેદનું નિત્યત્વ પ્રતિપાદિત કર્યું છે.

હવે અહિ શંકા થાય છે કે જો વેદ નિત્ય હોય, અનાદિ હોય, ઈશ્વરરૂપ હોય તો તેમાં ઇતિહાસ કેમ આવે ? વસિષ્ઠ, ઉર્વશી, વિશ્વામિત્ર, આદિનાં નામો ક્યાંથી આવ્યા ? ઉતાસિ મૈત્રાવરુણો વસિષ્ઠોર્વશ્યા બ્રહ્મન્મનસોઽધિજાતઃ દ્રક્ષં સ્કન્નં બ્રહ્મણા દૈવ્યેન વિદ્યેદેવાઃ પુષ્કો વારવન્તઃ આ વાક્યમાં તેમજ શતપથ બ્રાહ્મણમાં વસિષ્ઠ, વિશ્વામિત્ર, ઉર્વશી આદિ ઐતિહાસિક વ્યક્તિઓનાં નામ અને કથાઓ જોવામાં આવે છે, તે ઉપરથી જાણી શકાય છે કે તે વ્યક્તિઓ અને ઐતિહાસિક ઘટનાઓ

૧. યજ્ઞો વૈ વિષ્ણુઃ ॥ ૨. વેદાન્તે ચ સ્મૃતૌ બ્રહ્મલિંગ ભાગવતે તથા । બ્રહ્મોતિ પરમાત્મેતિ ભગવાનિતિ રામ્ભુતે ।

પછી જ ઋચાઓ રચાઈ હશે. જે મંત્રનો જે ઋષિ હોય તે જ તે મંત્રનો પ્રણેતા કહી શકાય. જેમ રામાયણ, મહાભારત અને રઘુવંશ વગેરેના પ્રણેતા કમરશ: વાલ્મિકિ, બાદરાયણ અને કાલિદાસાદિ છે; તેમજ યૈદિક ઋચાઓના પ્રણેતા પણ તત્ત્વમંત્રોના ઋષિઓ હોઈ શકે. અને તેમના સમયનો નિર્ણય પૌરાણિક કથાઓના આધારે થઈ શકે તેમ હોવા છતાં વેદનો કાલનિર્ણય અશક્ય છે એમ કહેવું અને માનવું સર્વથા અસંગત છે.

આ પ્રકારે આધુનિક વિદ્વાનો જે ચુકિતને આગળ ધરે છે, તે પણ યૈદિકજ્ઞાન શૂન્યતાનું જ ઘોતન કરે છે. કારણ કે સંહિતામાં કે બ્રાહ્મણોમાં જે સ્થળે વસિષ્ઠાદિ નામો દ્રષ્ટિપથ થાય છે, તે કાંઈ ઐતિહાસિક વસિષ્ઠાદિનાં નામો નથી. જો હું મારા પુત્રનું નામ “રામ” અને તેની પત્નિનું નામ “સીતા” રાખું તો તે પણ દાશરથિરામ અને જનકાત્મજા સીતાનાં પરિચાયક નામો છે એમ તો નજ માની શકાય. તેમ જ વસિષ્ઠાદિનાં નામનું સામ્ય હોવાથી વેદનું અનિત્યત્વ-કૃતકત્વ સિદ્ધ થતું નથી વેદમાં જ વસિષ્ઠાદિ શબ્દોની નિરુક્તિ પણ બતાવી છે. છાંદોગ્યમાં “યો હૃદૈ વસિષ્ઠં વેદ, વસિષ્ઠો હ સ્વાનાં ભવતિ, વાગ્વાવ વસિષ્ઠઃ” આ શ્રુતિવડે વસિષ્ઠ પદાર્થનું નિર્વચન થાય છે. એજ પ્રમાણે તે તે પદાર્થોની વ્યુત્પત્તિ વેદમાંજ છે. નિરુક્તમાં “इन्द्रशत्रुः तत्को वृत्रो मेघ इति नैरुक्ताः, त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिका अपां च ज्योतिषां च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति, अहिवत्सु खलु मन्त्रवर्णा ब्राह्मणवादाश्च-” 1 2-4-22 આ રીતે પૃત્રની કથાનું તત્ત્વ દર્શાવ્યું છે. તેમજ પ્રજાપતિનું સુતાનુગમન, ઈન્દ્રનું અહલ્યાનુગમન ઇત્યાદિનું તાત્પર્ય સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યું છે. જે લોકો વેદ ઉપર આક્ષેપ કરે છે, તેઓ પ્રથમથી જ પોતાનું એક પ્રકારનું મન્તવ્ય બાંધી લે છે અને પછી કલ્પતરૂ સદશ વેદમાંથી સ્વમન્તવ્યને સિદ્ધ કરવા માટે પ્રમાણો ઉદ્ઘૃત કરે છે. પછી પ્રમાણવાક્યોનો પૂર્વાપર સંબંધ ગમે તેમ હોય, તેની દરકાર રાખવામાં આવતી નથી. જે વ્યક્તિએ સંપૂર્ણવેદનું સૂક્ષ્મ દ્રષ્ટિએ યૈદ્યરીતે ગુરૂપસત્તિપૂર્વક અધ્યયન કર્યું છે. અને પક્ષપાતનાં યશમાં ઉતારી નાંખ્યા છે, તેજ વેદના તત્ત્વને જાણી શકે. આવા અભ્યાસીઓ તો ઋષિમુનિઓજ હતા; કે જેમને વિદ્વાન્ તરીકેની પ્રસિદ્ધિનો અથવા અર્થપ્રાપ્તિનો લોભ ન હતો. આધુનિકો પાશ્ચાત્યોનાં ભાષાન્તરો વાંચીને વેદને જાણવાનો દાવો કરે છે અને નવનવા અર્થ કે સિદ્ધાન્તોનો પ્રચાર કરીને વિદ્વાન્ તરીકે પ્રસિદ્ધિ મેળવે છે. તેમને વાસ્તવિક તત્ત્વ અગમ્ય જ હોય છે. જેમને મોલિક્તાનો ચેપી રોગ લાગુ પડી ગયો છે, અને તેઓ જે વેદના વિષયમાં પોતાના

સ્વતન્ત્ર (?) વિચાર દર્શાવવાનો પ્રયાસ કરે છે તેમણે લક્ષમાં રાખવું જોઈએ કે યૈદિક તત્ત્વશોધકો સ્વતંત્ર વિચાર ધરાવતા ન હતા, પણ ગુરૂપસત્તિદ્વારા અધીતવેદવેદાન્ત હોવા છતાં તપ: અને બ્રહ્મચર્ય (સંયમ) દ્વારા પરમાત્માનો પ્રસાદ મેળવીને વલ્કલ વસ્ત્રો પરિધાન કરનારા અને ઉછપૃત્તિથી જીવન નિર્વહન કરનારા પ્રાતઃસ્મરણીય-પુણ્યસ્લોકો હતા. તેઓ યૈદિકતત્ત્વ શોધીને અનધિકારીના હાથમાં અર્પવાનું અવિચારશીલ પગલું ભરતા ન હતા. પણ ઉત્તમ અધિકારીને તપસા બ્રહ્મ વિજિજ્ઞાસસ્વ કહેતા હતા, અને તેની પૂર્ણ પરીક્ષા કરીને જ જ્ઞાન અર્પતા હતા, નહિ કે ઓક્ષફોર્ડમાં જઈને બે ચાર ભાષણો કરીને. અત્યારે પણ વાસ્તવિક યૈદિક જ્ઞાન આપણે પ્રાપ્ત કરવું હોય તો તે પૂજ્ય ઋષિ મુનિઓનું જ અનુસરણ કર્તવ્ય છે અને તદનુષ્ઠિત તપના પ્રભાવેજ તે જાણી શકાય છે.

કેટલાક એમ પણ કહે છે કે અમુક ઋષિને દક્ષિણ દેશનું જ્ઞાન ન હતું. તે ઋષિના સમયમાં આર્યો દક્ષિણમાં આવ્યા ન હતા, કારણ કે વેદમાં ગંગાચમુનાદિનું જ નામ આવે છે, તેથી પંજાબમાં જ તેઓ હતા એમ સિદ્ધ થાય છે. આ પણ એક પ્રકારનો પ્રમત્તપ્રલાપ જ કહી શકાય. પૂર્વાપર અનુસંધાન જોયા વિના કહેવું કે અમુકને અમુક પદાર્થનું જ્ઞાન નથી તે અચોગ્ય છે. આધુનિક શોધખોળનું વિચિત્ર પરિણામ અનેક સ્થળે પ્રસિદ્ધ થયું છે. જાવા ટાપુમાં થોડાક શિલાલેખ છે. તેમાંથી એકમાં દાનનું વર્ણન છે, પણ તે લેખનો અર્થ એક પાશ્ચાત્ય વિદ્વાને યજ્ઞ કર્યો છે. ત્યાં એક પ્રસ્તર સ્તૂપ છે તેમાં તે શિલાલેખ મળ્યો છે. “इष्ट्वा” અને “यूप” આ બે શબ્દ છે તે ઉપરથી પશ્ચિમના વિદ્વાને અનુમાન કર્યું છે કે આ યજ્ઞીય યૂપ છે, દાનનો સ્મરણ સ્તંભ નથી. જો તે વિદ્વાન (?) ને ધાતુપાઠ જ અવગત હોત તો સમજી શકત કે યજ્ઞ દાનાર્થક પણ છે. અને જો શ્રીતસૂત્રનું અધ્યયન કર્યું હોત અને કોઈ સારા યાજ્ઞિક પાસેથી યજ્ઞીય યૂપનો આકાર સમજી લેવાનો પ્રયત્ન કર્યો હોત તો પ્રસ્તર સ્તૂપને યજ્ઞીય યૂપ કહેવાનું સાહસ ન કરત એક પશ્ચિમના વિદ્વાને જે અર્થ કર્યો છે તેજ બરાબર છે. એમ પૌરસ્ત્ય પ્રોફેસરો પણ સ્વીકારે છે. આ પ્રકારનું અજ્ઞાન યૈદિકકાલ નિર્ણયમાં પણ દ્રષ્ટિપથ થાય છે.

પૃત્રની કથાની પેઠે જ પ્રજાપતિએ કરેલું સુતાનુગમન પણ વેદમાં છે. તેનું તત્ત્વ વેદમાં જ નીચે પ્રમાણે સમજાવ્યું છે:- “प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद् दिवमित्यन्य आहुरूपसमित्यन्ये तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्”

ઈત્યાદિ વાક્યો ઐતરેય બ્રાહ્મણમાં આવે છે. “પ્રજાપતિએ સ્વદુહિતામાં ગમન કર્યું” એનો અર્થ શું થાય ? કુમારિલ ભટ્ટ કહે છે કે તેમાં કાંઈ ચિંતા

કરવાનું પ્રયોજન નથી. પ્રજાપતિ કોઈ વ્યભિચારી પુરુષ નથી, પણ પવિત્ર સવિતા દેવ છે.

“પ્રજાપતિસ્તાવત્રજાપાલનાધિકારાદાદિત્ય એવોચ્યતે । સ ચ અરુણોદયવે-  
લાયામુષસમુદ્યન્નમ્યૈત્ સા તદાગમના દેવોપજાયત ઇતિ તદ્દુહિતૃત્વેન વ્યપદિશ્યતે ।  
તસ્યાં ધારુણકિરણાખ્યબીજનિક્ષેપાત્ સ્ત્રીપુરુષયોગવદુપચારઃ”

પ્રજાપતિ એટલે જેને પ્રજાપાલનનો અધિકાર છે એવો આદિત્ય પ્રજાપતિ શબ્દથી કહેવાય છે. અને તે અણ્ણોદય વેલાએ ઉપાની પાસે જાય છે. ઉપા પણ આદિત્યના આગમનથી ઉત્પન્ન થયેલી હોવાથી તે આદિત્યની દુહિતા અર્થાત્ કન્યા છે. અને તે ઉપામાં આદિત્ય અણ્ણાકિરણાખ્ય બીજવપન કરે છે. તેથી ત્યાં સ્ત્રી પુરુષના યોગવત્ ઉપચાર કહ્યો છે.” આ વર્ણન ઔપચારિક (લાક્ષણિક) છે. જે લોકો પ્રજાપતિ એટલે ઘાતા બ્રહ્મદેવ એવો અર્થ કરીને બ્રહ્મદેવ પર અનુચિત વ્યવહારનો દોષારોપ કરે છે, તેમને આ કથાનું તત્ત્વ સમજાતું નથી.

આવી જ રીતે તૈત્તિરીય આરણ્યકમાં “અહલ્યાયૈ જારઃ” ઇત્યાદિ શબ્દપ્રયોગ મળે છે. આ કથા વાલ્મિકીય રામાયણની કથા સાથે મળે છે. નિઙ્કતકાર ભાસ્કરાચાર્ય કહે છે કે “આદિત્યોત્ર જાર ઉચ્યતે રાત્રેર્જરયિતા” ૩-૩-૪. આ સ્થળે રાત્રિને ગળી જનાર આદિત્ય “જાર” શબ્દથી ગૃહીત કરવામાં આવ્યો છે. નહિ કે વ્યભિચારી. ક્યાં ગોતમપત્ની અને ક્યાં રાત્રિ ? કાંઈપણ મેળ નથી. છતાં વેદમાં દૂષણ જોનાર દોષ જુએ છે. જેને કમળો થાય તે પીળું દેખે. તેમાં વસ્તુનો દોષ નથી. પણ એની આંખનો જ દોષ છે. શ્રીમાન્ કુમારિલ સ્વામી આ વિષયને નીચે પ્રમાણે સમજાવે છે :-

“एवं समस्ततेजाः परमैश्वर्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैव, अह्निलीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्याः क्षयात्मकजरया हेतुत्वाज्जीर्यत्यस्मादनैनैवोदितेनेत्यादित्य एवाहल्याजारइत्युच्यते; नतु परस्त्रीव्यभिचारात्” ।

આ પ્રકારે પરમૈશ્વર્ય વાચક જે ઇન્દ્ર શબ્દ છે તે સમસ્ત તેજ્યાળા આદિત્યનો વાચક હોવાથી ઇન્દ્ર એટલે સવિતા દિવસમાં લીન થવાથી રાત્રિને અહલ્યા કહી તેને આદિત્ય કીણ કરે છે, જીર્ણ કરે છે, ગળી જાય છે. માટે આદિત્ય જ “અહલ્યાજાર” શબ્દથી લેવો. નહિ કે તે પુરસ્પર વ્યભિચારથી જાર છે.

આ રીતે યૈદિક કથાઓનું તાત્પર્ય ભિન્ન હોવાથી તે ઐતિહાસિક ઘટનાઓનું વર્ણન છે એમ કહી શકાય નહિ. માટેજ વેદ નિત્ય છે એમ સિદ્ધ થાય છે, તેથી તેનો કાલનિર્ણય પણ સર્વથા અશક્યજ છે.

## વેદ અપૌરુષેય છે

કેટલાક લોકો કહે છે-કે “તસ્માદ્ઝાત્સર્વહુતઋચઃ સામાનિ જજિરે । છન્દાંસિ જજિરે તસ્માદ્ઝજુસ્તસ્માદજાયત” (ઋ. સં. ૧૦ મંડલ, યજુ સં. ૩૧ અધ્યાય અથ. અ. ૧૧ કાં.) આ ઋચામાં ઋક્ સામ અને યજુષ્ણી ઉત્પત્તિ બતાવી છે. ભલે તે ઇશ્વરની પાસેથીજ ઉત્પન્ન થયા હોય તોપણ તેમની ઉત્પત્તિનો કાલ તો અમુક હોવો જોઈએ. અને પુરુષ એટલે ઇશ્વરની પાસેથી ઉત્પન્ન થવાથી તે પૌરુષેય પણ છે જ. આ એક જ મંત્રમાં વેદની ઉત્પત્તિ બતાવી છે એમ નથી. બીજા પણ મંત્રો વિદ્યમાન છે. ઐતરેય બ્રાહ્મણમાં “ઋગ્વેદ એવાગ્રેરજાયત યજુર્વેદો વાયોઃ સામવેદઃ આદિત્યાત્” ૫-૫-૭ તેમજ સ્મૃતિ પણ કહે છે કે “અગ્નિવાયુરવિમ્બસ્તુ ત્રયં બ્રહ્મ સનાતનમ્ દુદોહ યજ્ઞસિદ્ધયર્થમૃગ્યજુઃ સામલક્ષણમ્ ॥” (મ.૧.) આ વાક્યો વેદોની ઉત્પત્તિનાં સૂચક છે. આ ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે અગ્નિ, વાયુ અને આદિત્ય પાસેથી વેદ ઉત્પન્ન થયા તેથી તે પૌરુષેય છે.

આ આક્ષેપ પણ અસત્ય છે. જે આ ઉત્પત્તિ બતાવી છે તે ઉત્પત્તિ નથી પણ અધ્યયનાધ્યાપનનો ક્રમ છે. મૂઃ મૂવઃ અને સ્વઃ જેમાં પ્રધાન છે એવા અગ્નિ, વાયુ અને સૂર્ય માટે યજ્ઞોનું દોહન છે. આ સ્થળે અગ્નિવાયુરવિમ્બઃ આ ચતુર્થા વિભક્તિ છે, દોહન શબ્દનો અર્થ અધ્યાપન થાય છે. અર્થાત્ અગ્નિવાયુ અને સૂર્ય માટે વેદનું દોહન કર્યું-અગ્નિવાયુ અને સૂર્યને વેદ ભણાવ્યો આ અર્થ છે. તેથી કાંઈ પૌરુષેયત્વની સિદ્ધિ થતી નથી. મુદ્ડકોપનિષદમાં પણ “બ્રહ્મ દેવાનાં પ્રથમઃ સમ્બભૂવ, વિશ્વસ્ય કર્તા ભુવનસ્ય ગોપ્તા । સ બ્રહ્મવિદ્યાં સર્વવિદ્યાપ્રતિષ્ઠામથર્વાય જ્યેષ્ઠપુત્રાય પ્રાહ ॥ અથર્વણે યાં પ્રવદેત બ્રહ્મા તાં પુરોવાચાક્ષિરે બ્રહ્મવિદ્યામ્ । સ ભરદ્વાજાય સત્યવાહાય પ્રાહ ભારદ્વાજોઽક્ષિરસે પરાવરામ્ ॥” આ શ્રુતિમાં પણ અધ્યાપનનો જ ક્રમ બતાવ્યો છે.

મંત્ર, બ્રાહ્મણ, અને ઉપનિષદ આ સર્વ જ વેદ છે. જે લોકો કેવલ મંત્રભાગને વેદ માને છે તેઓ પણ આર્યેય નિર્ણયને સમજી શકતા નથી. વાસ્તવિક મંત્ર, બ્રાહ્મણ અને ઉપનિષદમાં ભેદજ નથી. બ્રાહ્મણ ભાગમાં વિધિવાક્યો આવે છે, સંહિતામાં પ્રયોગસમવેતાર્થ સ્મારકત્વ હોય છે અને ઉપનિષદમાં જ્ઞાનકાણ્ડનો સમાવેશ થાય છે, મંત્ર, બ્રાહ્મણાદિ વ્યવહારથી પ્રકરણ જ્ઞાન થાય છે, નહિ કે મંત્ર વેદ છે અને બ્રાહ્મણ વેદ નથી. આપસ્તમ્બ સૂત્રમાં કહ્યું છે કે મન્ત્રબ્રાહ્મણયોર્વેદનામધેયમ્ મંત્ર અને બ્રાહ્મણને વેદ કહે છે. બ્રાહ્મણમાં આરણ્યક

અને ઉપનિષદનો પણ સમાવેશ થાય છે. શુક્લ યજુર્વેદના પ્રાતિશાખ્યમાં પણ કહ્યું છે કે તદ્વ્યોદકેષુ મન્ત્રાણા ૨-૧-૩૦ શેષે બ્રાહ્મણશબ્દઃ ૨-૧-૩૧ મંત્ર બ્રાહ્મણનો વિભાગ કરતાં મહર્ષિ જેમિનિ પણ ઉભયને વેદ કહીને જ બોલાવે છે. અને આખ્યાપ્રવચનાત્ ૧-૧-૩૦ પરન્તુ શ્રુતિસામાન્યાત્ ૧-૧-૩૧ કૃતે વા નિયોગઃ સ્યાત્ કર્મણઃ સમ્બન્ધાત્ ૧-૧-૩૨ આ સૂત્રો વડે વેદ અપૌરુષેય છે એમ સિદ્ધ કર્યું છે. જેમને શંકા હોય તેમણે આ સ્થલનું સ્તોક વાર્તિક વાંચ્યું વિસ્તારના ભયથી અમે અત્રે વિરમીએ છીએ. શ્રી મહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરે છે કે - વેદ ભગવાનના નિઃશ્વાસરૂપ હોવાથી અપૌરુષેય છે.

### વ્યાસસૂત્ર અને તત્પ્રણેતા

શ્રીમહાપ્રભુજીએ અપૌરુષેય વેદને જ પ્રમાણત્વે સ્વીકાર્યો છે. પણ આધુનિક જીવો મંદ બુદ્ધિવાળા હોવાથી વેદના વાસ્તવિક અર્થને સમજી શકતા નથી; તેમને અનેક સ્થળે ભ્રમ થાય છે, તેથી વેદાર્થને સમજાવવાનો એક ક્રમ નિશ્ચિત કર્યો છે. તે એ કે જો પરસ્પર વિરોધી વેદ વાક્યોનો સમન્વય કરવો હોય તો તે ગીતાથી વિરૂદ્ધ ન હોવો જોઈએ કદાચિત્ ગીતામાં સંદેહ થાય તો તેનો અર્થ વ્યાસસૂત્રને અનુસરીને કરવો તથા જો વ્યાસસૂત્રમાં પણ સંદેહ રહી જાય તો તેનું સમાધાન શ્રીમદ્ભાગવતને અનુસરીને કરી લેવું. અર્થાત્ વેદનો અર્થ ગીતા, વ્યાસસૂત્ર અને શ્રીમદ્ભાગવતથી વિરૂદ્ધ ન હોવો જોઈએ. શ્રીમહાપ્રભુજીને વેદવ્યાસના મતથી વિરૂદ્ધ વેદાર્થ અભીષ્ટ નથી, આપશ્રી વેદવ્યાસને વ્યાસોડસ્માકં ગુરુઃ કહીને સંબોધે છે. આપશ્રીને વેદવ્યાસ માટે ઘણું માન છે. કેટલાક લોકો મહાભારતના પ્રણેતા વ્યાસ અને બ્રહ્મસૂત્રના પ્રણેતા વ્યાસ તેમજ સમાધિમાં ભાગવતના દૃષ્ટા વ્યાસમાં અન્તર માને છે. પણ શ્રી મહાપ્રભુજી આ ત્રણે ગ્રંથોના પ્રણેતાને વેદવ્યાસના જ નામથી ઓળખે છે. જેને વેદનો વિભાગ કર્યો અને શિષ્યથી શિષ્યો દ્વારા શાખાઓ જુદી પાડી તે જ મહાભારત, બ્રહ્મસૂત્ર અને શ્રીમદ્ભાગવતના પ્રણેતા છે. પારાશર વેદવ્યાસ ભગવાનની કલાનો અવતાર છે. ભગવન્નિઃશ્વાસરૂપ વેદના તાત્પર્યને તે જ ચથાર્થ રૂપે જાણે છે તેથી જ તેમણે શાખાઓને જુદી પાડી છે અને મહાભારત, બ્રહ્મસૂત્ર અને શ્રીમદ્ ભાગવતમાં વેદાર્થનો વિચાર કર્યો છે. આ ત્રણે ગ્રંથોમાં વેદનો જ વિચાર હોવાથી શ્રીમહાપ્રભુજી તેમને વેદના અર્થ નિર્ણાયક તરીકે સ્વીકારે છે.

### સૂત્રોક્ત સાધન અને ફળ

“તં ત્વૌપનિષદં પુરુષં પૃચ્છામિ” આ શ્રુતિ બ્રહ્મમાં ઉપનિષદ્ જ પ્રમાણ

છે. એમ કહે છે. માટે જ બ્રહ્મસૂત્રના પ્રથમાધ્યાયમાં સર્વ ઉપનિષદોનો સમન્વય બ્રહ્મમાં થાય છે એમ પ્રતીતાર્થનિરાકરણ પૂર્વક પ્રતિપાદન કર્યું. દ્વિતીયાધ્યાયમાં વિરૂદ્ધ સ્મૃતિઓનું નિરાકરણ કરી શ્રુતિ વાક્યોનો પણ પરસ્પર વિરોધ પરિહાર કર્યો. આ પ્રકારે અવિરોધ સિદ્ધ થવાથી સર્વ ઉપનિષદો બ્રહ્મ પર છે એમ સિદ્ધ થયું. હવે તૃતીયાધ્યાયમાં તે ઉપનિષદોની બોધકતા નિર્વિચિકિત્સ શબ્દજ્ઞાન વડે બ્રહ્મજ્ઞાન ઉત્પન્ન કરવામાં કેવી રીતે થાય એમ આકાંક્ષા ઉત્પન્ન થાય છે, કારણ કે ત્રાષિઓએ પોતપોતાની બુદ્ધિથી અનેક પ્રકારે ઉપનિષદની બોધકતાનો વિચાર કર્યો છે, તે સર્વની નિવૃત્તિ કરવા માટે આ તૃતીયાધ્યાયનો આરંભ છે, દ્વિતીયાધ્યાયમાં પ્રથમાધ્યાયોક્ત સમન્વયમાં જ્યાં તે અન્તરથી જણાતો વિરોધ તેની નિવૃત્તિ કરી છે. તેથી તે પ્રથમાર્થક બોધક અવિરોધાધ્યાય ઉપોદ્ધાતરૂપે છે, તે જ રીતે તૃતીયાધ્યાય પણ પ્રથમાધ્યાયમાં વિષયીભૂત જે ઉપનિષદો છે, તેમાં રહેલી બોધકતા પ્રકારનું શોધન કરેલું છે, આથી દ્વિતીય અને તૃતીયાધ્યાયનો ઉપજીવ્યોપજીવક ભાવ સિદ્ધ થાય છે, અથવા શેષશેષી ભાવ (અંગાંગીભાવ) સિદ્ધ થાય છે, સમન્વયાધ્યાય શેષી અને દ્વિતીય તૃતીયાધ્યાય શેષભાવમાં દાખલ થયો છે, કારણ કે તૃતીયાધ્યાયમાં વિદ્યા વિષયત્વે કરીને સમન્વય થયો છે, આ ત્રણે અધ્યાયોની સામાન્ય વિશેષભાવ સંગતિ છે, ઉપજીવ્ય ઉપજીવકભાવનો અર્થ કાર્યકારણ ભાવ થાય છે, તદનુસાર ઉપજીવક વિદ્યાકાર્ય છે તેજ તૃતીયાધ્યાયનો પ્રતિપાદ્ય વિષય છે.

શાસ્ત્રમાં તૃતીયાધ્યાયની સાધનાધ્યાયના નામથી પ્રસિદ્ધિ છે. તો પછી આ સાધનોનો જ વિચાર અધ્યાયાર્થ થવો જોઈએ, નહિ કે બોધકતા પ્રકારનો વિચાર અધ્યાયાર્થ છે એમ એક શંકા ધર્મ શકે છે. તેનું સમાધાન નીચે જણાવ્યા મુજબ છે :-

ગુરુમુખથી ઉપનિષદ્ પ્રતિપાદિત બ્રહ્મનું શ્રવણ કર્યા પછી સર્વ ઉપનિષદોનો સમન્વય બ્રહ્મમાં થાય છે અને શ્રુતિ સ્મૃતિઓનો પરસ્પર વિરોધ પણ નથી એમ અધ્યાય દ્વયવડે માનીને અન્તર નિર્દિધ્યાસન અર્થાત્ સમાધિ માનસી સેવા છે. સમાધિરૂપ જે માનસી સેવા બતાવી તેનો ઉપાય ચિત્તશુદ્ધિ દ્વારા કર્તવ્ય છે. યદ્યપિ માનસી સેવાનું સાધન તનુજા અને વિત્તજા સેવા છે, તથાપિ જેમિનિના મતનો પણ ઉપન્યાસ કરેલો હોવાથી કર્મદ્વારા ચિત્તશુદ્ધિ થાય ત્યારે ભકિત થાય અને ઉપાસના વડે પણ ચિત્તશુદ્ધિ થાય છે એમ ભાષ્યમાં કહ્યું છે, તેથી ઉપાસનાને સાધનત્વે ગ્રહણ કરી શકાય. તે ઉપાસનાઓ સર્વ શાખાઓમાં કવચિત્

“આત્મેત્યેવોપાસીત” ઇત્યાદિ વાક્યો વડે અને કવચિત્ પ્રકરણ વડે જણાવી છે. અર્થાત્ એક વાક્ય અથવા પ્રકરણમાં પઠિત ઉપાસના તત્પ્રકારનો બોધ કરાવીને વિધાને ઉત્પન્ન કરે છે. અને તે વિધાને તે પ્રકારનાં વાક્યો જેમાં હોય તેવી સર્વ શાખાઓ એક સાથે જ બોધ કરાવે છે. અર્થાત્ ઉપાસનાના જે અર્ચિરાદિ વિધાના પ્રકારો છે તે ઉપનિષદોમાં વર્ણિત છે. અને તેવા વાક્યોની બોધકતા આ તૃતીયાધ્યાયમાં દર્શાવી છે. તેથી તે સાધનાધ્યાય કહેવાય છે. જો બોધકતાનો વિચાર ન હોય તો સર્વ શાખાઓ મળીને એક વિધા કહે છે કે, અનેક તે જાણી શકાય નહિ. અને તે જાણ્યા વિના સાધનોનો નિર્ણય પણ થાય નહિ. માટે જ બોધકતા પ્રકાર અર્થ જ વિશેષ રમણીય છે, અને આ જ અર્થ રશ્મિકારને પણ સંમત છે.

જો ઉપનિષદમાં રહેલી બોધકતાનો પ્રકાર જ આ અધ્યાયનો અર્થ હોય તો સંસાર ગતિપ્રભેદ સંબંધ્યસૃષ્ટિ આદિ અધકિરણોમાં તો કેવલ બોધકતા જ છે પ્રકાર નથી તેની સંગતિ શી રીતે થાય ?

તેની પણ સંગતિ થાય છે. “બ્રહ્મવિદાન્નોતિ પરમ્” આ શ્રુતિમાં પરપ્રાપ્તિનું સાધન જે જ્ઞાન કહ્યું તે અપરોક્ષ જ્ઞાન જ અપેક્ષિત છે. “તસ્મિન્ દ્રષ્ટે પરાવરે” “આત્મન્યેવાત્માનં પશ્યેત્” ઇત્યાદિ શ્રુતિઓમાં દર્શન-જોવું-એ જ કહ્યું છે. અને તે દર્શન કાંઈ શબ્દશ્રવણ માત્રથી સમ્ભવતુ નથી. માટે શ્રવણ પછી મનનની આવશ્યકતા રહે છે. અને તે મનન “મન્તવ્યઃ” ઇત્યાદિ વિધિ વાક્યો વડે જ પ્રાપ્ત થાય છે. તે મનન પણ ચિત્તશુદ્ધિ વિના સમ્ભવતુ નથી. જે સ્થળે શ્રવણ માત્રથી ફલ કહ્યું હોય ત્યાં પણ ચિત્તશુદ્ધિની જરૂર તો હોય છે જ. અને શ્રવણ માત્રથી જેને ફળ મળે છે ત્યાં અવશ્ય શુદ્ધિ છે જ. એમ પણ ફલબલથી જ સિદ્ધ છે. માટે જન્મથી અને કર્મથી શુદ્ધિ હોય તો જ વિચારરૂપ સાધન સહિત પુરુષમાં વિદ્યા ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા જો પ્રભુ વરણ કરે તો જન્મકર્મની શુદ્ધિની અપેક્ષા રહેતી નથી. જેમ યોગમાં મનઃશુદ્ધિથી જ ફળ મળે છે. તેમ “અતો નિર્વિષયં નિત્યં મનઃ કાર્યં મુમુક્ષુણા” આ શ્રુતિને અનુસરીને જન્માદિ શુદ્ધિ ન હોય અને પ્રભુ કૃપા કરીને વરણ કરે-વરી લે તો મનઃશુદ્ધિ થઈ જાય છે. ધ્યાનભિન્દુ ઉપનિષદમાં કહ્યું છે કે- “મયિ શૈલસમં પાપં વિસ્તીર્ણં યોજનાન્ બહૂન્ ભિદ્યતે જ્ઞાનયોગેન” જો ઘણા યોજનો સુધી વિસ્તૃત થયેલું પર્વત સમાન પાપ હોય તો પણ મદ્વિષયક જ્ઞાન યોગ વડે તે ભેદાય છે. અર્થાત્ જ્યારે પ્રભુનું માહાત્મ્યજ્ઞાન થાય ત્યારે બધા પાપો પોતાની ભેળે જ દૂર થઈ જાય છે. પ્રભુ જ્યારે વરણ કરે છે ત્યારે “અપૂતઃ પૂતો ભવતિ” આ ગોપાલતાપિન્યુપનિષદની શ્રુતિને અનુસરીને ભક્ત પૂતાત્મા

થઈ જાય છે. તેને અન્ય સાધનોની અપેક્ષા રહેતી નથી.

અધિકારી હીન, મધ્યમ અને ઉત્તમ એમ ત્રણ પ્રકારના હોય છે, તેમાંથી ઉત્તમ અને મધ્યમની શુદ્ધિ વરણ અને યોગ વડે થઈ જાય છે. તેથી તેની શુદ્ધિનો વિચાર આ સ્થળે કર્યો નથી. કિન્તુ પ્રથમપાદમાં જઘન્ય અધિકારીની જ શુદ્ધિનો વિચાર કરેલો છે. શ્રીમદ્વેદવ્યાસ બાદરાયણનો જઘન્ય અધિકારીઓ માટે જ આ પ્રયાસ છે.

દ્વિતીયપાદમાં જીવની અવસ્થાદિના વિચાર પૂર્વક તેની બ્રહ્મભાવ પ્રાપ્તિમાં યોગ્યતાનો વિચાર આવે છે. જીવની યોગ્યતાનો વિચાર કરવાથી જીવનો મુક્તિમાં અધિકાર સિદ્ધ થવાથી બ્રહ્મ સ્વરૂપનો નિશ્ચય થાય.

તૃતીય પાદમાં અંતરંગ સાધન જે કર્મજ્ઞાન અને ભક્તિમાર્ગીય ઉપાસના તેનો વિચાર કરીને તે તે પ્રકારની ઉપાસનામાં કહેલા ગુણોનું ચિંતન છે અર્થાત્ અમુક પ્રકારની ઉપાસનામાં અમુક પ્રકારના ગુણ છે તેનો વિચાર આવે છે.

ચોથા પાદમાં બહિરંગ વિચાર વડે સ્થૂલ દેહવડે અને સાધારણ તથા જે બહિરંગ સાધનોનું આશ્રમ ધર્માદિનું આચરણ કરવામાં આવે છે તેનો વિચાર કરી પૂર્વોક્ત કાંડનો યજ્ઞ, તપ, શમદમાદિ તથા શ્રવણાદિ ભગવદ્ધર્મોનો ઉપસંહાર આવે છે. અર્થાત્ પ્રથમ પાદમાં બતાવ્યા પ્રમાણે જ જઘન્યાધિકારીઓની સ્વરૂપયોગ્યતા અને સહકારીયોગ્યતા પ્રથમ સિદ્ધ થાય ત્યારે દ્વિતીયપાદોક્ત રીતિથી બ્રહ્મસ્વરૂપનો નિશ્ચય થવાથી યથાધિકાર તે તે પ્રકારની ઉપાસના કરવાથી બ્રહ્મસ્વરૂપનું જ્ઞાન થાય. અને ઉત્તમ તથા મધ્યમ અધિકારીને દ્વિતીયપાદોક્ત બ્રહ્મભાવની પ્રાપ્તિ કરવામાં યોગ્યતા હોવાથી પ્રથમ પાદોક્ત યોગ્યતા ન હોય તો પણ યથાધિકારે વરણ થાય તો બ્રહ્મસ્વરૂપનો નિશ્ચય થઈ જાય અને પછી તે નિશ્ચિત કરેલા બ્રહ્મસ્વરૂપની તદુચિત રીતે ઉપાસના કરે ત્યારે બહિરંગ સાધનો સાથે પરપ્રાપ્તિ થાય.

ચતુર્થાધ્યાયમાં પૂર્વોક્ત સાધન કરનારા જીવને જે ફળની પ્રાપ્તિ થાય તેનું નિરુપણ આવે છે. જેમ સમન્વય અને અવિરોધાધ્યાયમાં શ્રુતિઓનો સમન્વય અને પરસ્પર વિરોધાભાવનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું, અને તૃતીયાધ્યાયમાં શ્રુતિઓની બોધકતાનો પ્રકાર બતાવ્યો તેમ જ આ અધ્યાયમાં બ્રહ્મવિદ્ અક્ષરબ્રહ્મને જાણનારની અવસ્થાનું નિરુપણ કરવાથી ક્રમથી સાક્ષાત્પ્રાપ્ત પરબ્રહ્મનું ફલ પ્રતિપાદન કર્યું છે.

### માયાવાદની સમીક્ષા

માયાવાદીઓ જીવને પ્રતિબિમ્બ માને છે અને સર્વ જગતને મિથ્યા કહે છે. તેમજ જગતમાં રહેલા વેદનું પણ મિથ્યાત્વ સિદ્ધ થાય છે તેથી તેમનો મત યૈદિક નથી એમ કહી શકાય. જો યૈદિક મત હોય તો જીવને પ્રતિબિમ્બ માની શકાય નહિ, પણ તેઓ માયામાં ફસાયલા હોવાથી તેમની બુદ્ધિ પણ માથિક થઈ ગઈ છે. વસ્તુતઃ જીવ અંશ છે અને અંશીની સેવા કરવી એ જ તેનો ધર્મ છે. (અંશાશીભાવ જીવ-બ્રહ્મ વચ્ચે સમજાવો.)

### જીવ પ્રતિબિમ્બ નથી

માયામાં જે ચૈતન્યનું પ્રતિબિમ્બ છે, તે ઈશ્વર છે, અને તે સર્વજ્ઞ છે; કારણ કે માયા શુદ્ધસત્પ્રધાના હોવાથી તે ઈશ્વરના જ્ઞાનનું આવરણ કરી શકે નહિ, અવિદ્યામાં જે ચૈતન્યનું પ્રતિબિમ્બ છે તે જીવ છે, તે અજ્ઞ છે કેમકે અવિદ્યા મલીન સત્પ્રધાના હોવાથી જ્ઞાનનું આવરણ કરી શકે છે. આ જીવ, ઈશ્વર અને શુદ્ધ ચૈતન્ય, અવિદ્યા અને માયા વડે પરસ્પર ભિન્ન પ્રતીત થાય છે અને વ્યવહાર દશામાં જ જીવની અવિદ્યાથી આ જગતની પ્રતીતિ થાય છે. પરંતુ અવિદ્યા, માયા ઉપાધિ આ સર્વ મિથ્યા હોવાથી વાસ્તવિક રીતે અભિન્ન જ છે એમ માયાવાદીઓ કહે છે.

પરંતુ શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાન્તની કસોટી ઉપર માયાવાદ વેદ વિરુદ્ધ ઠરે છે. કારણ કે રૂપ, રૂપવાન્ અને રૂપવાનમાં રહેલા સંયોગ વિભાગ વગેરે ધર્મો આટલા જ પદાર્થોનું પ્રતિબિમ્બ પડે છે. તેથી (માયાવાદીઓ) જેને બ્રહ્મ કહે છે તે નીરૂપ છે, અર્થાત્ કહેવાતા નીરૂપ બ્રહ્મનું-રૂપ રૂપવત્ત્વ તન્નિષ્ઠ ધર્મ કોઈપણ ન હોવાથી તેનું પ્રતિબિમ્બ કેમ હોઈ શકે ? બીજી દલીલ તમે (માયાવાદીઓ) એમ કહો છો, કે મલીન સત્પ્રધાના અવિદ્યામાં ચૈતન્ય; પ્રતિબિમ્બ પડે છે, તે જીવ કહેવાય છે. પ્રતિબિમ્બ દર્પણાદિ સ્વચ્છ પદાર્થમાં જ પડે છે, મલીનમાં નહિ. અવિદ્યાને તમે મલીન કહો છો અને તેમાં પ્રતિબિમ્બ પણ માનો છો તે કેમ સંભવે ? અતઃ તમે જે પ્રતિબિમ્બનું પ્રતિપાદન કરો છો તે આ પ્રકારે ચુકિતથી ખંડિત છે. તમારા મતના સમર્થનમાં તમે શ્રુતિ કે સૂત્રનું પ્રમાણ મૂકી શકતા નથી. ત્યારે તે સિદ્ધાન્ત યૈદિક છે એમ કેમ માની શકાય ? તમે પ્રતિબિમ્બની કલ્પના માત્ર કરો છો. કલ્પના પણ જો લોકાનુકૂલ હોય તો જ માની શકાય, લોકવિરુદ્ધ કલ્પનાના સ્વીકારમાં અનુપપત્તિ થાય; તેથી તમારી લોકવિરુદ્ધ કલ્પના સર્વથા માનવા લાયક નથી. જો નીરૂપનું પ્રતિબિમ્બ મલીન પદાર્થમાં પણ દ્રષ્ટિગોચર થતું હોય તો વાયુ (જે નીરૂપ છે,

તેનું) પ્રતિબિમ્બ કાષ્ઠમાં (મલીનમાં) દ્રષ્ટિગોચર થવું જોઈએ. જો તેમ થાય તો તમારી કલ્પનાને માની શકાય. અન્યથા કદાપિ તે માનવા યોગ્ય નથી.

માયાવાદીઓ એમ પણ દલીલ કરે છે કે આકાશ નીરૂપ છે, અને તેનું પ્રતિબિંબ દર્પણમાં પડે છે, તે ઉપરથી જાણી શકાય છે કે નીરૂપ બ્રહ્મનું ચે પ્રતિબિંબ પડી શકે છે. યદ્યપિ અવિદ્યા મલીન છે. તથાપિ એક બાજુએ તે સ્વચ્છ પણ છે જ. તેથી તેમાં પ્રતિબિંબની કલ્પના લોકવિરુદ્ધ ન કહી શકાય. જેમ રજતપાત્ર પૃષ્ઠ દેશસ્થિત ઘટાદિ પદાર્થનું આવરણ કરે છે અને બીજીબાજુએ સૂર્યનું પ્રતિબિંબ પણ ગ્રહણ કરે છે તેમ અવિદ્યા જ્ઞાનનું આવરણ અને ચૈતન્યનું પ્રતિબિંબ ગ્રહણ કરી શકે છે તેમ જ સૂર્યગ્રહણ સમયે કાજળથી મલીન થએલો કાચ સૂર્યનું પ્રતિબિંબ ગ્રહણ કરે છે. આ પણ પ્રત્યેકનો અનુભવ છે, તેથી પ્રતિબિંબવાદ સર્વથા અચુક્ત છે એમ કહી શકાય નહિ.

આ સ્થલે માયાવાદીઓ ભૂલ કરે છે. કારણ કે આકાશનું પ્રતિબિંબ કદાચ માની પણ લઈએ તો પણ તે ઉપરથી બ્રહ્મનું પ્રતિબિંબ સિદ્ધ થતું નથી. કારણ કે પ્રભાસહિત આકાશ પ્રતિબિંબિત થાય છે, અને પ્રભાને રૂપ છે. પ્રભાને નીરૂપ કોઈપણ કહેતું નથી. તેથી આકાશનું પ્રતિબિંબિત થવું બ્રહ્મના પ્રતિબિંબમાં પ્રમાણત્વે કેમ સ્વીકારી લેવાય ? પ્રભુ સ્વરૂપ સંબંધ વિશેષથી આકાશમાં સ્થિત છે. તેથી સ્વરૂપ સંબંધે આકાશને પણ રૂપવાન્ કહી શકાય, પણ તમારું બ્રહ્મ તો સર્વથા રૂપ સંબંધથી શૂન્ય જ છે. વાસ્તવિક રીતે રૂપવાનનું જ પ્રતિબિંબ થાય છે. આ સ્થલે “રૂપવાન્” શબ્દનો અર્થ દશ્ય પદાર્થ છે. આકાશ રૂપવાન્ નથી, તથાપિ વસ્તુ સ્વભાવ વડે કરીને તેનું પ્રતિબિંબ પડે છે, પરંતુ માયાવાદીઓનું બ્રહ્મ તો રૂપરહિત હોવાથી તથા દશ્ય પદાર્થ ન હોવાથી તેનું પ્રતિબિંબ માની શકાય તેમ નથી.

બીજી દલીલ માયાવાદીઓ એવી કરે છે કે પ્રતિબિંબમાં દશ્યત્વની અપેક્ષા રહે છે, અને દશ્યત્વમાં એ રૂપની અપેક્ષા હોય છે જ. જો આકાશ નીરૂપ હોવા છતાં પણ વસ્તુ સ્વભાવ વડે તે દશ્ય છે તો વસ્તુ સ્વભાવ વડે કરીને જ બ્રહ્મનું પણ પ્રતિબિંબ કેમ ન હોય ?

માયાવાદીઓની આ દલીલ પણ લૂલી છે. કારણ કે જો માયાવાદીની દલીલ માની પણ લેવાય તો પણ તેમના જ મત પ્રમાણે બ્રહ્મ અને અવિદ્યા ઉભયે વ્યાપક છે. અને વ્યાપકનું વ્યાપકમાં પ્રતિબિંબ અસંભવિત છે. અને આકાશનું પ્રતિબિંબ પ્રત્યક્ષમાં દેખાય છે, માટે તે સ્થલે વસ્તુ સામર્થ્ય માની લેવું પડે છે.



જો સાર્વત્રિક આ નિયમ લાગુ પડે તો અનવસ્થા થાય. જેમ આકાશનું પ્રતિબિંબ પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ છે, તેમ બ્રહ્મનું પ્રતિબિંબ પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ નથી. તેથી તેનું પ્રતિબિંબ માની શકાય નહિ. માયાવાદી એમ પણ કહે છે, કે જેમ આકાશનું પ્રતિબિંબ પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે તેમ બ્રહ્મનું પ્રતિબિંબ આદ્યર્પણ શ્રુતિપડે સિદ્ધ કરી શકાય છે. આદ્યર્પણશ્રુતિ નીચે પ્રમાણે છે :-

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ।

એક જ પરમાત્મા અવિધાકલ્પિત અનેક વસ્તુઓમાં સ્થિત છે, ઉપાધિના સંબંધ વડે કરીને તે જલસ્થિત ચંદ્રની પેઠે અનેક રૂપે દેખાય છે. આ શ્રુતિવાક્ય ચંદ્ર અને જલનું દૃષ્ટાન્ત આપે છે તેથી બ્રહ્મનું પ્રતિબિંબ પણ માની શકાય છે. તેમ જ બૃહદારણ્યક ઉપનિષદના તૃતીય બ્રાહ્મણમાં “રૂપં રૂપં પ્રતિરૂપો बभूव” આ શ્રુતિ છે. તેથી જીવ બ્રહ્મનું અવિધામાં પડેલું પ્રતિબિંબ છે એમ માની શકાય છે. વળી તત્ત્વમસિ ઇત્યાદિ અભેદ બોધક શ્રુતિઓ વડે તે પ્રતિબિંબ બ્રહ્મનું જ છે એમ પણ સિદ્ધ થાય છે. તેથી જ બ્રહ્મ સર્વથા રૂપરહિત હોવા છતાં તેનું પ્રતિબિંબ અવિધામાં પડે છે, એમાં કંઈ સંદેહ નથી.

માયાવાદીનો આ તર્ક પણ વૈદિક સિદ્ધાન્તથી સર્વથા અનુપાદેય છે. કારણ કે “एव एव हि भूतात्मा” વગેરે વાક્યો વડે જલચંદ્રનું દૃષ્ટાન્ત દેખાડીને પ્રતિબિંબ સિદ્ધ કરી શકાતું નથી; આ તો માત્ર ભ્રમ છે. જલચંદ્રનો અર્થ “પ્રતિબિંબ” નથી, પણ મંડલાકારથી પ્રતીત થતા જલપ્રવિષ્ટ ચંદ્રકિરણજ વાસ્તવિક અર્થ છે અને સંપૂર્ણશ્રુતિનો આશય એમ છે કે જેમ ચંદ્ર પોતાના કિરણરૂપી અંશ વડે જલમાં સ્થિત કરીને કિરણ મંડલરૂપે એક કંપાદિરૂપ થઈને નાનાત્વની પ્રતીતિ કરાવે છે, તેમ જ બ્રહ્મ પ્રતિશરીર જીવરૂપે એક હોવા છતાં પણ, ઈન્દ્રિયોના રૂપથી અનેકત્વની પ્રતીતિ કરાવે છે. વળી કોઈ શાખામાં “बहुधा” ના સ્થાને “दशधा” એવો પણ પાઠ છે તે પણ અમારા જ અર્થનો પોષક છે. ત્યાં “दशधा” નો અર્થ દશ ઈન્દ્રિયો એમ થાય છે. વળી જીવને પ્રતિબિંબ સિદ્ધ કરવા માટે “रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव” આ શ્રુતિને પ્રમાણત્વે માયાવાદી સ્વીકારે છે તે પણ અયોગ્ય છે. કારણ કે બૃહદારણ્યક તૃતીય બ્રાહ્મણના આરંભમાં “योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम्” આ શ્રુતિથી ઉપક્રમ થાય છે. અને ઉપસંહારમાં “तदेतद्ब्रह्म” આ જડાત્મક જગત્ બ્રહ્મ છે. “अयमात्मा ब्रह्म” આ આત્મા બ્રહ્મ છે. એમ કહેવામાં આવ્યું છે. ઉપક્રમ અને ઉપસંહારમાં બ્રહ્મનું સર્વ રૂપત્વે વર્ણન છે, તો

મધ્યમાં જ જીવનું પ્રકરણ ક્યાંથી આવે ? અને વાસ્તવિક રીતે તો માયાવાદ મુજબ પહેલાં “पुरश्चक्रे द्विपदः” આ મંત્ર વડે જે દ્વિપદ, ચતુષ્પદ, પુર (શરીર) બનાવીને બ્રહ્મે તેમાં પ્રવેશ કર્યો. ઇત્યાદિ વર્ણન આવે છે તે ઉપરથી બ્રહ્મની સર્વ રૂપતાનો વ્યાધાત પ્રાપ્ત થાય છે. કેમકે જે વસ્તુને નિર્માણ કરે છે અને જે પ્રવેશ કરે છે તે વસ્તુતઃ પૃથક્ હોય છે; આ સાધારણ નિયમ છે, તે નિયમનો વ્યાધાત પ્રાપ્ત થતાં “રૂપં રૂપં પ્રતિરૂપો बभूव” આ શ્રુતિ તેનું નિવારણ કરે છે. આ શ્રુતિનો અર્થ પ્રકરણને અનુસરીને એમ થાય છે કે - બ્રહ્મે સર્વનું નિર્માણ કરીને સર્વના મૂલરૂપ પોતેજ થઈ ગયું. આમાં પ્રતિબિંબની કલ્પના કરવી વ્યર્થ છે. અને એ શ્રુતિની વ્યાખ્યા “अयं वै हरयः” આ અનન્તરની શ્રુતિમાં આવે છે. આ શ્રુતિમાં બ્રહ્મની સર્વરૂપતાનું વર્ણન સ્પષ્ટ છે. તેથી “રૂપં રૂપં” આ શ્રુતિનો ઉપયોગ જીવને પ્રતિબિંબ પ્રમાણિત કરવામાં થઈ શકે તેમ નથી.

પ્રતિબિંબવાદીઓની એક વિચિત્ર દલીલ એવી પણ છે કે અવિદ્યા અઘટિત ઘટના પરીચસી હોવાથી તે વ્યાપક હોવા છતાં તેમાં પ્રતિબિંબ પડી શકે છે તેથી પ્રતિબિંબવાદ અસંગત નથી અને પૂર્વોક્ત શ્રુતિઓમાં યદ્યપિ પ્રતિબિંબ શબ્દ નથી. તથાપિ તે સ્થલે અન્યથા અર્થ કરવો અયોગ્ય છે. કારણ કે પ્રતિબિંબનું વર્ણન કઠોપનિષદમાં નીચે પ્રમાણે છે.

“ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे । छायाऽऽतपौ ब्रह्मविदो बदन्ति पद्माग्रयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥” આ શ્રુતિમાં પ્રતિબિંબ વાચક “छाया” શબ્દ છે. તેથી જીવ પ્રતિબિંબ છે એમ કહેવામાં બાધ આવતો નથી.

પરંતુ આ દલીલ શાસ્ત્ર સંમત નથી. કારણ કે “छाया” શબ્દનો અર્થ પ્રતિબિંબ થતો નથી. જો “छाया” શબ્દનો અર્થ પ્રતિબિંબ થાય તો શ્રુતિમાં અને “द्वा सुपर्णा” શ્રુતિમાં જીવ અને બ્રહ્મની સહ સ્થિતિ હૃદયાકાશમાં બતાવી છે તે અસંભવિત થાય. કેમકે બિંબ તથા પ્રતિબિંબ ઉભયની એકત્ર સ્થિતિ જ અસંભવિત છે, ચંદ્ર આકાશમાં અને તેનું પ્રતિબિંબ જળમાં રહે છે. તેમ જ વળી “छाया” અને પ્રતિબિંબ પદાર્થ પણ એક નથી. કારણ કે “छाया” સર્વદા પ્રકાશશૂન્ય દેશમાંજ હોય છે, પરંતુ પ્રતિબિંબ પ્રકાશશાલી પ્રદેશમાં જોવામાં આવે છે. તેથી “छाया” શબ્દ જીવને પ્રતિબિંબ પ્રમાણિત કરવામાં અશક્ત છે. અને કદાચ “छाया” શબ્દનો અર્થ પ્રતિબિંબ માની લેવાય તો પણ “छाया” નો અર્થ પ્રતિબિંબ પર્વત કે વૃક્ષનું પ્રતિબિંબ સંભવે છે, નહિ કે આતપ સ્વરૂપ બ્રહ્મનું, કેમકે જે સ્થલે આતપ રહે છે તે જ સ્થલમાં “छाया”ની સ્થિતિ સર્વદા અસંભવિત

છે. માટે જ કહોપનિષદની શ્રુતિનો “છાયા” શબ્દ જીવને પ્રતિબિંબ સિદ્ધ કરતો નથી. આ સ્થલે શ્રુતિનો આશય એમ છે કે આનંદના તિરોભાવથી જે જીવમાં વિલક્ષણતા છે તેનો બોધ “છાયા” શબ્દ કરાવે છે. જો માયાવાદી એવી દલીલ કરે છે કે “છાયા” શબ્દનો અર્થ પ્રતિબિંબ થાય નહિ, તો આનંદાંશનો તિરોભાવ એવો અર્થ પણ કેમ થાય ? તેનો ઉત્તર આ છે; બ્રહ્મને જીવ સહ હૃદયાકાશમાં પ્રવેશ માટે હૃદયાકાશ અને જીવના દર્શનની અપેક્ષા છે. અને તમારા મતાનુસાર સર્વજ્ઞ બ્રહ્મને એમનું દર્શન અશક્ય છે. કારણ કે આ પદાર્થો અજ્ઞાન કલ્પિત છે. જેને અજ્ઞાન સ્વરૂપા અવિદ્યાથી ભ્રમ થાય તેને જ આ પદાર્થો દૃષ્ટિગોચર થઈ શકે, સર્વજ્ઞને નહિ. લોકમાં પણ જેની પાસે દર્પણાદિ હોય તેને જ પ્રતિબિંબજન્ય પ્રાતિભાસિક પદાર્થો અજ્ઞાન કાર્યોનું દર્શન થાય છે અન્યને નહિ. માટે જીવને પ્રતિબિંબ માનવાથી પ્રથમ આ વિરોધનો પરિહાર કરવો જોઈએ. અને જો બ્રહ્મ જીવને જુએ તો ક્ષરાત્માનાવીશતે દેવ એકઃ આ શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદની શ્રુતિ, તથા “બ્રહ્મજીવનું નિયમન કરે છે” આ અર્થને કહેતી અન્તર્યામી બ્રાહ્મણની શ્રુતિઓ વ્યર્થ થાય. કેમકે દેખ્યા વિના બ્રહ્મ જીવનું નિયમન કરી શકે જ નહિ. જો આ શ્રુતિઓને અનુસરીને બ્રહ્મ હૃદયાકાશ અને જીવને જુએ છે એમ માનવામાં આવે તો બ્રહ્મ પણ જીવના જેવું અજ્ઞ અને ભ્રાન્ત છે એમ સિદ્ધ થાય. પણ તેમ નથી. બ્રહ્મ સર્વજ્ઞ છે અને જીવ અજ્ઞ છે, કારણ કે જીવમાંથી આનંદાંશનો તિરોભાવ થઈ ગયો છે.

માયાવાદીઓ જીવનું નિયમન કરનાર શુદ્ધ નથી, પણ માયોપહિત બ્રહ્મ છે એમ કહીને વળી એક નવું માયોપહિત બ્રહ્મ કલ્પે છે અને કહે છે માયોપહિત બ્રહ્મ જેમ સૃષ્ટિની રચના કરે છે તેમ જ તે જીવનું નિયમન અને હૃદયાકાશમાં પ્રવેશ પણ કરે છે. આ ઉપરથી તે બ્રહ્મ અજ્ઞ અથવા ભ્રાન્ત પણ થતું નથી. કેમકે વિદ્વાન્ પણ પોતાનું પ્રતિબિંબ દર્પણમાં જુએ છે, તેથી લોકમાં તેમને કોઈ ભ્રાન્ત કહેતું નથી. તેથી અમે જીવને પ્રતિબિંબ કહીએ છીએ, તે પણ અયોગ્ય નથી. આ મતનું ખંડન પૂર્વે જ થઈ ગયું છે. જ્ઞાન અને અજ્ઞાન એક સાથે રહેતાં નથી. પણ એક બીજાની વિરુદ્ધ દિશામાં હોય છે. તેમ જ નિત્યો નિત્યાનામ્ ઇત્યાદિ શ્રુતિઓમાં અને સ્મૃતિઓમાં જીવને નિત્ય કહેવામાં આવે છે. પ્રતિબિંબ અનિત્ય પદાર્થ છે તેથી તે જીવ પ્રતિબિંબ છે એમ માની શકાય નહિ. અને આ પ્રતિબિંબ પણ અવિદ્યાસ્થિત છે તેથી દર્પણ, જલ વગેરે આધારો જ્યારે નષ્ટ થઈ જાય છે ત્યારે તેમાં સ્થિત સૂર્ય, ચંદ્ર આદિના પ્રતિબિંબો પણ નષ્ટ થઈ જાય છે. એજ રીતે

મોક્ષ દશામાં અપરોક્ષ જ્ઞાનથી અવિદ્યાનો નાશ થતાં જીવનો એ નાશ થઈ જશે. ત્યારે જીવનું નિત્યત્વ નષ્ટ થતાં ઉપર જણાવેલી શ્રુતિમાં પ્રતિપાદિત નિત્યત્વનો બાધ આવશે અને જો કદાચ મોક્ષમાં જીવનો નાશ માનવામાં આવે તો મોક્ષાર્થ-સ્વનાશાર્થ-જીવની પ્રવૃત્તિ પણ ન થાય. કારણ કે કોઈ પણ પોતાનો નાશ ચાહતું નથી. તમારા મત પ્રમાણે મોક્ષનાં સાધનો પણ અવિદ્યા કલ્પિત મિથ્યા છે. તેથી તેમાં મુમુક્ષુની પ્રવૃત્તિ જ થશે નહિ. કેમકે સ્વાખ્નિક ભોજનથી કોઈને પણ વૃત્તિ થયેલી જાણવામાં કે જોવામાં નથી. માટે જ પ્રતિબિંબવાદ સર્વથા અસંગત અને શ્રુતિ વિરુદ્ધ છે.

વળી બ્રહ્મને માયોપાધિયુક્ત માયાવાદીઓ કલ્પે છે તે પણ મિથ્યા છે. પ્રહસ્તવાદમાં તેનું વિસ્તૃત ખંડન દશ દિગ્વિજયી શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજે કર્યું છે. પ્રહસ્તવાદના વેદાન્ત તાત્પર્ય નિરૂપણનું હિન્દી ભાષાન્તર વસંતરામભાઈની આજ્ઞાથી મેં કર્યું છે, તેમાં આ વિષયનો ઉદ્દાપોહ કરવામાં આવ્યો છે. આ લેખમાં વિસ્તારના ભયથી જ તેનો વિચાર કરવામાં આવ્યો નથી, શ્રીમદ્વલ્લભાધીશ્વરની અતુલ કૃપાથી તથા શ્રીપુરુષોત્તમજીના ગ્રંથોનું પરિશીલન કરવાથી માયાવાદની અનેક યુક્તિનું ખંડન કરવા તૈયાર છું. જો આ સ્થાને ઉપાધિનો વિચાર ભાષ્ય, વિદ્વન્મંડળ પ્રહસ્તાદિને અનુસરીને કરવામાં આવે તો ઘણાં પાનાંનો વિસ્તાર થાય તેથી આ સ્થળે તેનો વિચાર કર્યો નથી. જેમને પુરુષોત્તમજીના મતને અનુસરીને ઉપાધિવાદનું ખંડન વાંચવાની ઇચ્છા હોય તેમણે પ્રહસ્તવાદના વેદાન્ત તાત્પર્ય નિરૂપણનું મારું હિન્દી ભાષાન્તર વાંચવાનો શ્રમ લેવો.

### જીવ આત્માસ નથી

“અગ્નિર્યથૈકઃ” “એકઘા બહુઘા” ઇત્યાદિ શ્રુતિઓમાં એક જ બ્રહ્મ નાનારૂપે થાય છે. આ વર્ણન શુદ્ધાજ્ઞેતવાદને પણ સંમત છે. બ્રહ્મ નિરવયવ અને સાવયવ છે, તેનું નાનાત્વ બે પ્રકારે સંભવે છે. પ્રથમ એ કે એક જ ચંદ્ર જેમ જલ, દર્પણ વગેરે અનેક આધારોમાં પ્રતિબિંબિત થાય છે અને તે અનેક રૂપે દૃષ્ટિગોચર થાય છે તેમ જ એક જ પરમેશ્વર અવિદ્યાના અનેક પ્રદેશોમાં કે અન્તઃકરણોમાં પ્રતિબિંબરૂપ થઈને નાના રૂપ થાય છે. અને બીજો પ્રકાર એ કે જેમ આંખ સામે આંગળી ધરવાથી એક જ ચંદ્ર દ્વિધા દેખાય છે; તેમ અવિદ્યાના સંબંધથી એકજ બ્રહ્મ અનેક રૂપે ભાસમાન થાય છે. આ બે પ્રકારમાંથી પ્રથમ પ્રકારમાં શુદ્ધાજ્ઞેત બ્રહ્મવાદ દોષ બતાવે છે, તેથી તેમાં (પ્રતિબિંબવાદમાં) તે સંમત નથી. પણ

બીજો પ્રકાર તો માનવો જોઈએ. કેમકે આ પ્રકાર જો માનવામાં ન આવે તો બીજી કાંઈપણ ગતિ જ નથી. અને આ દ્વિતીય પક્ષમાં “જીવેશાવામાસેન કરોતિ” વગેરે નૃસિંહતાપિની ઉપનિષદની શ્રુતિ પ્રમાણરૂપે છે. આ શ્રુતિમાં જીવને માટે સ્પષ્ટ શબ્દમાં અભ્યાસનો ઉદ્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. અને ભગવાન વેદવ્યાસજી પણ આ શ્રુતિના અર્થનિર્ણયની દૃષ્ટિએ જ બ્રહ્મસૂત્રમાં “આમાસ એવ ચ” આ સૂત્રનો ઉપન્યાસ કરે છે. તેથી જીવ આભાસ છે. આભાસ શબ્દનો અન્યથા અર્થ પણ કરી શકાય તેમ નથી. આ પ્રકારે માયાવાદીઓ આક્ષેપ કરે છે. માયાવાદીઓની આભાસ કલ્પના પણ નિરાધાર છે. જીવ પ્રભુનો અંશ છે. પ્રતિબિંબ કે આભાસ નથી.

એક જ બ્રહ્મની અનેક રુપોમાં પ્રતીતિ થાય છે, તેમાં ચંદ્રના દૃષ્ટાન્તથી આભાસ છે એમ કહી શકાય નહિ. બ્રહ્મ અને ઈશ્વર સર્વજ્ઞ છે, તેનો પોતાના અનેક રૂપમાં ભ્રમ થતો નથી. અથવા અન્ય કોઈ સ્વરૂપમાં તેની અનેકતાની પ્રતીતિ થતી નથી. જીવને આભાસ સિદ્ધ કરવા માટે માયાવાદીઓ નૃસિંહતાપિની ઉપનિષદને આગળ ધરે છે. નૃસિંહતાપિની શ્રુતિ નીચે પ્રમાણે છે:-

“માયા સ્વાવ્યતિરિક્તાનિ પરિપૂર્ણાનિ ક્ષેત્રાણિ દર્શયિત્વા જીવેશાવામાસેન કરોતિ” માયા પોતાનાથી અભિન્ન સંપૂર્ણ ક્ષેત્રો (શરીરો) ને બતાવીને આભાસ પડે અથવા આભાસરૂપ જીવ અને ઈશ્વરને કરે છે.

આ શ્રુતિનો ઉપન્યાસ આભાસવાદના સમર્થનમાં કરવામાં આવે છે, તે વ્યર્થ છે. કારણ કે તેમાં “દર્શયિત્વા” પદનું વ્યાકરણને અનુસરીને એમ તાત્પર્ય છે કે ક્ષેત્ર દર્શનના સમયમાં જીવ અને ઈશ્વર ન હતાં. અને માયાવાદના જ સિદ્ધાન્ત પ્રમાણે ક્ષેત્ર દર્શનના સમયમાં જીવ અને ઈશ્વરનું ન રહેવું સિદ્ધ થતું નથી. માયાવાદીઓ જીવ અને ઈશ્વરને અનાદિ માને છે, તેથી તેમનું અસ્તિત્વ ક્ષેત્ર દર્શનથી પૂર્વે પણ સ્વીકારવું પડે છે, અને એમ આ શ્રુતિનો અભિપ્રાય માયાવાદથી વિરુદ્ધ છે અને માયાવાદીઓ તેમ જ ઉપન્યાસ આભાસવાદના સમર્થનમાં કરે છે એ અજ્ઞાન છે.

વાસ્તવિક રીતે શ્રુતિનો અર્થ નીચે દર્શાવ્યો છે :-

બ્રહ્મની માયાશક્તિથી અભિન્ન પરિપૂર્ણ શરીરોને બતાવીને “કું દેહ કું” આ અધ્યાસ દ્વારા કાર્વેશ્વર-બ્રહ્મા અને કાર્વજીવ મનુષ્યાદિ જીવોને કરે છે.

આજ પ્રકારે “આમાસ એવ ચ” આ સૂત્રનો એ આશય માત્ર આટલો જ છે કે આનન્દનો તિરોભાવ થઈ જવાથી જીવ બ્રહ્મ નથી. પરંતુ ચૈતન્ય આદિ સદશ

ગુણોથી તે બ્રહ્મસદૃશ છે, તેથી બ્રહ્માભાસ છે જેમ બ્રાહ્મણોમાં બ્રાહ્મણોપયોગી વિદ્યા તપ, વગેરે ન હોવાથી તે બ્રાહ્મણ નથી પણ બ્રાહ્મણાભાસ છે એમ કહેવાય છે. તેમ જ જીવ નથી પણ બ્રહ્માભાસ છે.

અને તે જ રીતે અવિદ્યા અને બ્રહ્મનો સંબંધ પણ થઈ શકતો નથી; કે જેથી બ્રહ્મની નાનાત્વે પ્રતીતિ થાય, અને તેને આભાસ કહી શકાય. સર્વજ્ઞ બ્રહ્મમાં જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરનારી અવિદ્યાનો આભાસ (અવિદ્યાના અજ્ઞત્વાદિ ધર્મને પોતાનામાં માનવા) તો સંભવી શકતો જ નથી. સંયોગ બે પૃથક પદાર્થોનો થાય છે. એક બીજાને જઈને મળે છે, પણ આ સ્થલે બંને વ્યાપક હોવાથી એકબીજાને જઈને કેમ મળી શકે ? સ્વરૂપ સંબંધ પણ નિત્ય હોવાથી માની શકાય તેમ નથી. કેમકે નિત્યનો નાશ ન હોવાથી મોક્ષ જ અસંભવ થઈ જશે.

### અવિદ્યાનો સમ્બન્ધ અને જીવની અનાદિતાનું ખંડન

માયાવાદીઓ સંબંધ, અવિદ્યા અને જીવ આ ત્રણેને અનાદિ માને છે, અને અવિદ્યા સંબંધ જ જીવભાવમાં કારણ છે એમ પણ કહે છે. પરંતુ અનાદિ જીવના જીવભાવમાં અવિદ્યા સંબંધ કારણ થઈ શકે તેમ નથી. જે પદાર્થ અનાદિ છે, તેને કારણની જ અપેક્ષા જ રહેતી નથી. તેથી અવિદ્યાનો જીવ કે બ્રહ્મ કોઈની સાથે સંબંધ નથી અને તેથી જ જીવ આભાસ પણ સિદ્ધ થઈ શકતો નથી.

જો પૂર્વપક્ષી એમ કહે છે કે - “બન્ધોઽસ્યાવિદ્યાનાદિઃ” (આ જીવને અવિદ્યાકૃત બંધ અનાદિ છે,) આ એકાદશ સ્કન્ધના વચનથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે અવિદ્યા સંબંધ કે જેને બંધ કહેવામાં આવે છે તે અનાદિ છે. તે અનાદિ હોવા છતાં પણ અવિદ્યાકૃત છે. તેથી આ વિષયમાં તર્ક કરવાની જરૂર નથી. અને આ સંબંધ અનાદિ છે તેથી જીવને પણ અનાદિ માનવો જોઈએ. આ મત પણ સર્વથા ખંડિત છે. જેમ કલ્પના અંતમાં ઈન્દ્ર વગેરે દેવોના જીવનનો અન્ત કહેવામાં આવે છે, તેમજ આ અવિદ્યાકૃત બન્ધનનો આદિમાં જન્મ થાય છે, તેથી તે વાસ્તવિક રીતે અનાદિ નથી પણ અતિપ્રાચીન હોવાથી અનાદિ કહેવાય છે. જો વાસ્તવિક રીતે આ બંધ અનાદિ હોત તો શાસ્ત્રમાં તેને અવિદ્યાકૃત કહેત નહિ. કારણની અપેક્ષા હોવાથી તે અનાદિ નથી પણ સાદિ જ છે. જીવ અનાદિ છે તેથી તેનું બંધન પણ અનાદિ જ હોવું જોઈએ, કારણકે જો બંધનને સાદિ માની લેવાય તો થોડા સમય સુધી તેને બંધન રહ્યું નથી તેનું શું કારણ એમ પોણ શંકા કરવી નહિ, કારણ કે જીવને પ્રારંભમાં થોડા સમય સુધી બંધન ન રહ્યું. તેનું કારણ ભગવદિચ્છા

છે; કે જે બંધ કરે છે તે પણ ભગવાનની શક્તિ અવિદ્યા છે, ભાવરૂપ અજ્ઞાન નથી, અને શક્તિ શક્તિમાનની ઈચ્છાને અનુસરીને જ કાર્ય કરે છે. તેથી જ શુક, સનક આદિ જીવો નિત્યમુક્ત છે, કેમકે ભગવાનની ઈચ્છા તેમને બદ્ધાવસ્થામાં રાખવાની નથી. તેમજ વિદ્યાપણ ભગવાનની શક્તિ જ છે. આ પણ ભગવાનની ઈચ્છાને અનુસરીને મોક્ષ આપે છે. શમદમાદિ અન્ય સાધનો પણ ભગવાનની ઈચ્છાને અનુસરીને જ મોક્ષ સાધે છે. આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે બંધમોક્ષ પણ ઐચ્છિકજ છે, સ્વાભાવિક નથી. જ્યારે જીવ બદ્ધ કે મુક્ત દશામાં હોતો નથી ત્યારે તે બ્રહ્મ સદૃશ જ હોય છે, તેથી બંધને અનાદિ માનવામાં સર્વથા અસંગતિ જ થાય છે. માટે જ જીવ આભાસ પણ સિદ્ધ થતો નથી.

### “અવિદ્યાવચ્છિન્ન ચૈતન્ય જીવ છે” આ મતના પ્રાચીનો આરંભ

વળી એમ પણ માનવામાં આવે છે કે વૈદિક અર્થના સન્નિવૃદ્ધ અર્થને સ્પષ્ટ કરવા માટે ભગવાન બાહ્યાયણે બ્રહ્મસૂત્રો રચ્યાં. જ્યારે વેદમાં જ જીવને અંશ કહ્યો નથી ત્યારે વ્યાસસૂત્રમાં પણ જીવને અંશ કહી શકાય નહિ. અને આવા વિરુદ્ધ સિદ્ધાન્ત (અગ્રેય અને અંશત્વ)નો સ્વીકાર કરવાની અપેક્ષા બ્રહ્મભિન્દુ ઉપનિષદની શ્રુતિને અનુસરીને જીવને “ઉપાધ્યવચ્છિન્ન ચૈતન્ય” માનવું જ યોગ્ય છે. ઉક્ત શ્રુતિ આ પ્રકારે છે:-

“ઘટસંવૃતમાકાશં લીયમાને ઘટે યથા ।

ઘટો લીયેત નાકાશં તદ્વજ્રીવો નભોપમઃ ॥”

જેમ ઘટનો નાશ થવાથી ઘટપરિચ્છિન્ન આકાશનો નાશ થતો નથી, તેમ જ ઉપાધિ (અન્તઃકરણ કે અવિદ્યા) નાશથી જીવ નષ્ટ થતો નથી. આ શ્રુતિમાં ઘટાકાશનું દૃષ્ટાન્ત આપીને ઉપાધિપરિચ્છિન્ન ચૈતન્યજીવ જીવ છે, એમ સ્પષ્ટ રીતે સિદ્ધ કરવામાં આવ્યું છે.

### અંશત્વનું સ્થાપન

આ પ્રકારે માયાવાદીઓ “ઘટસંવૃતમાકાશમ્” આ શ્રુતિનો અવિદ્યાવચ્છિન્ન કે અન્તઃકરણાવચ્છિન્ન ચૈતન્ય જ જીવ છે એમ સિદ્ધ કરવામાં આશ્રય લે છે. પરંતુ આ શ્રુતિનો અર્થ તે પ્રકારે થતો નથી. કારણ કે અનેક શ્રુતિઓ અને સ્મૃતિઓ જીવને અંશ કહે છે, તેનો વિરોધ પ્રાપ્ત થાય છે અને શ્રુતિના અર્થ નિર્ણાયક વ્યાસસૂત્રમાં પણ જીવને અંશ જ કહ્યો છે.

“યથાગ્રે: કુદ્રા વિસ્ફુલિન્ગા વ્યુદ્ધરન્તિ, એવમેવાસ્માદાત્મનઃ સર્વે પ્રાણાઃ, સર્વે લોકાઃ, સર્વે જીવાઃ, સર્વે એવાત્માનો વ્યુદ્ધરન્તિ । રમણીયચરણાઃ કપૂયચરણાઃ” (છાન્દોગ્યોપનિષદ) મમૈવાંશો જીવલોકે જીવમૂતઃ સનાતનઃ (ગીતા) અને અંશો નાનાવ્યપદેશાદન્યથા ચાપિ દાશકિતવાદિત્વમધીયત એકે (વ્યાસસૂત્ર.)

આ શ્રુતિ, સ્મૃતિ અને વ્યાસસૂત્રોમાં જીવને સ્પષ્ટજ બ્રહ્માંશ કહ્યો છે. આવા અનેક પ્રમાણો છે. વિસ્તાર ભયથી તેમનો ઉપન્યાસ કર્યો નથી.

“ઘટસંવૃતમાકાશમ્” આ શ્રુતિમાં જે જીવને ઘટાકાશની ઉપમા આપી છે, તેનું તાત્પર્ય માત્ર એટલું જ છે કે ઘટના વિકારો ઘટાકાશને સ્પર્શ કરતા નથી. તેમ જ સ્થૂલ સૂક્ષ્મ શરીરોની સાથે સંબંધ ધરાવતો જીવ હોવાથી શરીરના વિકારો જીવાત્માને સ્પર્શ કરતા નથી. આ ઉપરથી ઉપાધ્યવચ્છિન્ન બ્રહ્મ જ જીવ છે એવો અર્થ સર્વથા અસંગત થાય છે.

“અંશો નાનાવ્યપદેશાત્” ઈત્યાદિ સૂત્રથી પ્રથમના અધિકરણમાં ઈશ્વર જીવને ધર્મ તથા અધર્મને અનુસરીને સુખ કે દુઃખ દે છે; એમ વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, આ સુખ દુઃખ ત્યારે જ સંભવી શકે છે કે જ્યારે જીવની સાથે બ્રહ્મનો કોઈ પણ જાતનો સંબંધ હોય કેમકે સર્વથા સંબંધ શુન્ય હોય તેની પાસેથી પણ સુખદુઃખાદિનો લાભ થાય એમ લૌકિક દૃષ્ટાન્ત મળતું નથી. આથી જ સંબંધની આવશ્યકતા થાય છે, અને તે આવશ્યકતાની પૂર્તિ માટે “અંશો નાનાવ્યપદેશાત્” સૂત્રની પ્રવૃત્તિ છે, આ સ્થળે અંશ શબ્દથી સંબંધ માત્રનો બોધ કરાવવો એ જ તાત્પર્ય છે, જીવને અવયવ કહેવાનું તાત્પર્ય નથી. આ અંશ શબ્દ વેદાન્ત શાસ્ત્રનો પારિભાષિક શબ્દ છે, તેથી આ શબ્દનો અર્થ લૌકિક દૃષ્ટિએ થઈ શકતો નથી. આ સ્થળે અંશ કહેવાનું એટલું જ તાત્પર્ય છે કે જેમ અંશ પોતાના અંશીથી ભિન્ન કહેવાય છે અને અભિન્ન પણ કહેવાય છે, તેમજ જીવને પણ શ્રુતિઓ બ્રહ્મથી ભિન્ન અને અભિન્ન કહે છે, તેથી જીવ બ્રહ્માંશ નથી પણ બ્રહ્માંશ સદૃશ છે. અને જીવને અંશ પ્રમાણિત કરવામાં જે યથાગ્રે: કુદ્રા વિસ્ફુલિન્ગાઃ વગેરે શ્રુતિઓનો ઉપન્યાસ કરવામાં આવે છે તે પણ અનુપયુક્ત છે કારણ કે તેમાં અંશવાચક કોઈ શબ્દ આવતો નથી.

### જીવ અંશ અને અણુ છે

આપણે માયાવાદીને પૂછી શકીએ કે અંશ શબ્દનો અર્થ “અંશસદૃશ” જે તમારા મતમાં કરવામાં આવ્યો છે, તે અર્થ મુખ્ય છે કે ગૌણ છે ? જો મુખ્ય અર્થ

માનવામાં આવે તો તેના ઉદાહરણમાં બીજું શાસ્ત્રીય પ્રમાણ બતાવો ? અને જો ગોણ અર્થ કહો તો મુખ્યાર્થનો ત્યાગ કરીને ગોણ અર્થ ગ્રહણ કરવાનું કારણ શું છે ? “અંશો નાનાવ્યપદેશાત્” ઇત્યાદિ સૂત્ર પછી “મન્ત્રવર્ણાત્” “અપિ ચ સ્મર્યતે” આ બે સૂત્રોમાં એ જીવને અંશ જ કહેવામાં આવ્યો છે. અને ઉક્ત દ્વિતીયસૂત્રના “મમૈવાંશો જીવલોકે” આ વિષય વાક્યમાં પણ “અંશ” શબ્દ સ્પષ્ટ દેખાય છે. કદાચિત્ એકાદ સ્થલમાં ગોણ અર્થનો સ્વીકાર થાય પણ સર્વત્ર ગોણ અર્થનો સ્વીકાર કેમ કરી શકાય ? તેથી જીવ અંશ જ છે.

યદપિ “યથાગ્રેઃ ક્ષુદ્રા વિસ્ફુલિન્ગાઃ વ્યુદ્ધરન્તિ” આ શ્રુતિમાં અંશવાચક શબ્દ તમને કલિકાલરૂપી અંધકાર પડે દષ્ટિનું આરંભાદન થવાથી દેખાતો ન હોય, તથાપિ અમિકણોનું દષ્ટાન્ત એવું તો સુંદર છે કે તે ઉપરથી અંશત્વ તો શું પણ અંશત્વ સાથે સંબંધ ધરાવતા પ્રત્યેક વિષયનું પ્રતિપાદન ઘણી જ સરલતાથી થઈ શકે છે.

અમિકણના દષ્ટાન્ત સાથે નીચે દર્શાવેલા સાત વિષયો સંબંધ ધરાવે છે:-

- (૧) જેમ અમિકણ અમિનો અંશ છે, તેમ જીવ પણ બ્રહ્મનો અંશ છે.
- (૨) અમિકણની અપેક્ષાએ અમિનું સ્વરૂપ મ્હોટું છે, તેમજ જીવની અપેક્ષાએ બ્રહ્મ બૃહત્ છે.
- (૩) અમિથી અમિકણ બહુજ નાના હોય છે, તેમ જીવ પણ બ્રહ્મથી નાનો છે. અર્થાત્ જીવઅણુ છે.
- (૪) અમિકણો અમિથી જુદા પડે છે તે આવિર્ભાવ માત્ર છે, નહિ કે ઉત્પત્તિ તેમ જ જીવ બ્રહ્મથી પ્રકટ થાય છે, તે પણ આવિર્ભાવ માત્ર છે, ઉત્પત્તિ નથી.
- (૫) અમિકણની અમિમાં ફરીથી પ્રવેશ કરવાની યોગ્યતા હોય છે, તેમજ જીવ પણ બ્રહ્મમાં પ્રવેશ કરવાની યોગ્યતા ધરાવે છે.
- (૬) અમિકણનું અમિમાં પ્રવિષ્ટ થવા પછી ભિન્નત્વ હોતું નથી, તેમજ જીવની એ બ્રહ્મમાં પ્રાપ્તિ થવા પછી ભિન્નત્વે પ્રતીતિ થતી નથી.
- (૭) પ્રવેશ પછી પણ અમિથી પ્રકટ થવાની યોગ્યતા અમિકણમાં હોય છે, તેમ જ પ્રવિષ્ટ થયેલો જીવ મુક્ત થવા - ભય પામ્યા-પછી પણ પુનઃ બ્રહ્મમાંથી આવિર્ભાવ પામી શકે છે.

આ દષ્ટાન્ત સાથે સંપૂર્ણ શ્રુતિ, સ્મૃતિ અને વ્યાસસૂત્રો એકમત છે. તેથી જીવને અંશ અને અણુ માનવામાં કાંઈપણ આપત્તિ નથી.

### એક વિચિત્ર દલીલ

માયાવાદીઓ એવી એક વિચિત્ર દલીલ કરે છે, કે અમિના કણની સાથે અંશત્વ અણુત્વ વગેરે સાત ધર્મો જે સિદ્ધ કરવામાં આવે છે, તે અયોગ્ય છે, કેમકે વ્યુદ્ધરણ શ્રુતિમાં કેવલ જીવાત્માના વ્યુદ્ધરણનું વર્ણન નથી, પણ તેની સાથે જ અન્તઃકરણ, લોક, પ્રાણ વગેરેનું પણ વ્યુદ્ધરણ બતાવ્યું છે, જો વ્યુદ્ધરણ શ્રુતિના બંને જીવને અણુ અને અંશ માનવામાં આવે તો અન્તઃકરણ, લોક, અને પ્રાણ પણ અંશ અને અણુ સિદ્ધ થઈ જશે અને વાસ્તવિક રીતે ઉક્ત શ્રુતિમાં જીવાત્માઓની ઉત્પત્તિ બતાવી જ નથી. કેમકે વ્યુદ્ધરણ પદાર્થોમાં અન્તઃકરણ, લોક અને પ્રાણ અનિત્ય પદાર્થ છે, અને જીવ નિત્ય છે. તેથી વ્યુદ્ધરણ આ એક જ ક્રિયાપદ જોડે બધાનો સમ્બન્ધ કરવા માટે ઉત્પત્તિ અને આવિર્ભાવ એમ બે અર્થ માનવા પડશે. એ એકજ પદના બે અર્થ માનવાથી “સકૃદુદ્ધરિત” આ ન્યાયથી દોષ આવે છે. જો “વ્યુદ્ધરણ” આ પદની આવૃત્તિ કરવામાં આવે તો પણ બહુ જ કલેશ થાય. તેથી આ શ્રુતિમાં બુદ્ધિ પ્રાણ વગેરે માયિક પદાર્થોની ઉત્પત્તિ માનવી જ ઉત્તમ છે. માયિક અને અનિત્ય પદાર્થોની ઉત્પત્તિ માનવાથી “વ્યુદ્ધરણ” પદના બે અર્થ કરવાની જરૂર નથી.

### માયાવાદીને ઉત્તર

જો અંશત્વમાં કેવલ વિસ્ફુલિન્ગઃ દષ્ટાન્ત જ પ્રમાણ માનવામાં આવે તો કદાચ તમારી દલીલનો વિચાર કરીને જવાબ આપવાની જરૂર પડે. પણ અંશત્વ વિધાયક અને શ્રુતિઓ જ્યારે મોજુદ છે ત્યારે તમારી દલીલ ઉપેક્ષણીય છે. “પાદોસ્ય વિદ્વામ્ભૂતાનિ” “મમૈવાંશો જીવલોકે” “ણોઽણુરાત્મા ચેતસા વેદિતવ્યઃ” “નિત્યઃ સર્વગતઃ સ્થાણુઃ” આ શ્રુતિઓનો અર્થ કમશઃ બધાએ જીવ બ્રહ્મના અંશ છે. આ અણુ જીવાત્મા ચિત્ત પડે જાણવો, આ જીવાત્મા નિત્ય અન્તર્યામી રૂપ પરમાત્માની સાથે રહેનાર અને અણુ છે; એમ થાય છે. આ શ્રુતિઓ અને એવાં બીજાં અનેક પ્રમાણો શ્રુતિ, સ્મૃતિ અને સૂત્રોમાં જીવનું અંશત્વ અને અણુત્વ સિદ્ધ કરે છે. અને તે ઉપરથી ઉપર જણાવેલા સર્વ ધર્મોનું પરિજ્ઞાન થઈ જાય છે. તેથી વ્યુદ્ધરણ શ્રુતિમાં તમે દર્શાવેલા દોષ લાગુ પડતા નથી. અને જીવ તથા અન્તર્યામીને છોડીને બીજા કોઈપણ પદાર્થને અંશ કહેવામાં પ્રમાણાંતરની ઉપલબ્ધિ

નથી, તેથી તે અંશ કહેવાતા નથી. સંપૂર્ણ જગત્ બ્રહ્માત્મક છે, તેથી તેને નિત્ય તો સર્વ જ માને છે, પરંતુ જીવ અને અન્તર્યામીને અનેક પ્રમાણો વિશેષ કરીને નિત્ય કહે છે, તેથી અન્ય પદાર્થોની અપેક્ષાએ તેની નિત્યતામાં કાંઈ વિલક્ષણતા છે અને એ જ વિલક્ષણતાના નિર્વહન માટે બ્રહ્મમાં લય થઈ ગયા પછી જીવ બ્રહ્મથી અભિન્ન જેવો દેખાય છે; પરંતુ સર્વથા અભિન્ન નથી તે અગ્નિ અને વિસ્ફુર્લિંગના દષ્ટાન્ત ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે.

અને “વ્યુચરન્તિ” આ ક્રિયાપદનો “પ્રકટ થાય છે” એમ અર્થ છે, એ અર્થ ઉપર સંપૂર્ણ ભાર મૂકવાની પણ આવશ્યકતા નથી કેમકે જડ અને ચેતનની નિત્યત્વ સંબંધી વિલક્ષણતાની નિર્વહન માટે પ્રાકટ્ય સ્વરૂપમાં અંતર માની શકાય છે, પણ તેની પ્રતીતિ લોકમાં ઉત્પત્તિ, પ્રાકટ્ય આવિર્ભાવ વગેરે શબ્દો વડે કરવામાં આવે છે. વાસ્તવિક રીતે ઉત્પત્તિ અને પ્રાકટ્ય ભિન્ન પદાર્થ નથી. એમ પ્રાચીન આચાર્યોની નીચે દર્શાવેલી ઉક્તિ ઉપરથી સમજી શકાય છે.

“અનિત્યે જનનં નિત્યે પરિચ્છિન્ને સમાગમઃ ।

નિત્યપરિચ્છિન્નતનો પ્રાકટ્યં ચેતિ સા ત્રિધા ॥”

અનિત્ય વસ્તુઓની અભિવ્યક્તિને ઉત્પત્તિ, નિત્ય અણુ પદાર્થની અભિવ્યક્તિને સમાગમ, અને નિત્ય તથા વ્યાપક પદાર્થની અભિવ્યક્તિને પ્રાકટ્ય કહે છે. આમ અભિવ્યક્તિ ત્રણ પ્રકારની છે, આ પ્રમાણ ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે ઉત્પત્તિ અને પ્રાકટ્ય બંનેનો અર્થ એકજ છે. તેથી જીવ અંશ અને અણુ છે એમ સિદ્ધ થયું.

### જીવ સર્વજ્ઞ કેમ નથી ?

હવે એક શંકા એમ પણ થઈ શકે છે કે જીવ અલ્પજ્ઞ, અજ્ઞ અને ભ્રાન્ત છે જ્યારે બ્રહ્મ સર્વજ્ઞ છે; તો સર્વજ્ઞ બ્રહ્મનો અંશ અલ્પજ્ઞ જીવ કેમ થાય ? જો એમ સમાધાન માની લેવાય કે જેમ અગ્નિનો પ્રકાશ વિપુલ છે અને તણાજાનો અલ્પ પ્રકાશ છે, તેમ બ્રહ્મસર્વજ્ઞ અને જીવ અલ્પજ્ઞ છે. આ સમાધાન અંશતઃ સત્ય માની શકાય પણ જીવ અલ્પજ્ઞ હોવા ઉપરાંત અજ્ઞ અને ભ્રાન્ત પણ છે. તેનું સમાધાન અગ્નિ અને વિસ્ફુર્લિંગના દષ્ટાન્ત વડે થઈ શકે તેમ નથી. કારણ કે ભ્રમ અને અજ્ઞાન આ બંને જ્ઞાનના વિરોધી છે. જેમ વિસ્ફુર્લિંગમાં પ્રકાશના વિરોધી અન્ધકારનું અસ્તિત્વ સંભવતું નથી તેમ જીવમાં અજ્ઞતા અને ભ્રાન્તત્વનો સંભવ ન હોવો જોઈએ. તેમજ જો જીવને બ્રહ્માંશ માની લેવાય તો બ્રહ્મમાં રહેલો સર્વસમર્થત્વ ધર્મ

પણ જીવમાં હોવો જોઈએ, અર્થાત્ જીવને પણ સમર્થ માનવો પડે. જેમ અગ્નિકણમાં અગ્નિની દાહકત્વશક્તિ મોજૂદ છે, તેમ જીવમાં સર્વ સમર્થતા અને સર્વનિયામિકા શક્તિ પણ હોવી આવશ્યક છે તે ક્યાંયે દેખાતી નથી. જો એમ કહેવામાં આવે કે જીવનો શરીર સાથે સંબંધ થવાથી તે અસમર્થ બની ગયો; તો તે પણ અયોગ્ય છે. કારણ કે જીવ બ્રહ્માંશ હોવાથી અર્થાત્ બ્રહ્મ હોવાથી તેનો સંબંધ મલીન કુત્સિત શરીર સાથે થાય જ કેમ? અને “યથાગ્રે: કુદ્રા: વિસ્ફુલિન્ગા:” અને “મમૈવાંશો જીવલોકે” આ શ્રુતિ જીવને અંશ કહેતી નથી, પણ બ્રહ્મના ઉદરમાં રહેલા જીવનું સૃષ્ટિના પ્રારંભકાલમાં બહિર્ગમન કહે છે. માટે નાન્યોસ્તોસ્તિ દષ્ટા આ શ્રુતિઓનો એવો અર્થ નથી કે બ્રહ્મથી અતિરિક્ત કોઈ અન્ય જોનારજ નથી. અર્થાત્ બ્રહ્મ અને જીવ ભિન્ન નથી. કિન્તુ ભ્રાન્તિ, સંશય વગેરે મિથ્યા જ્ઞાનથી રહિત જોનાર બ્રહ્મ જ છે એવો અર્થ થાય છે. જેમ “પાર્થ: એવ ધનુર્ધર:” એવો શબ્દ પ્રયોગ કાંઈ બીજા ધનુર્ધરોનો નિષેધ કરતો નથી. પણ એવો અર્થ થાય છે કે અર્જુનના જેવો ધનુર્ધર બીજો નથી. તેથી જીવને બ્રહ્મસ્વરૂપ અથવા બ્રહ્માંશ કહેવો અયોગ્ય છે. “પાદોઽસ્ય વિશ્વાભૂતાનિ” “મમૈવાંશો જીવલોકે” ઇત્યાદિ શ્રુતિ અને સ્મૃતિ વચનો પણ અગ્નિનો અંશ તણાજો છે, તેમ જીવ બ્રહ્મનો અંશ છે એમ પ્રતિપાદન કરતા નથી પણ સામાન્ય અંશત્વ કહે છે. આનું તાત્પર્ય આટલું જ છે કે જીવપણ બ્રહ્મના સમાન ચેતન છે અને તે બ્રહ્મથી ન્હાનો છે. જેમ ચંદ્ર મંડલની અપેક્ષાએ ગુરુમંડલ લઘુ છે તેથી ચંદ્રમંડલનો શતાંશ ગુરુમંડલ છે એમ કહેવામાં આવે તો તેથી કાંઈ ગુરુમંડલ અને ચંદ્રમંડલનો અંશાંશિ ભાવ સ્થિર થઈ શકતો નથી, તેથી જીવને બ્રહ્માંશત્વે સર્વજ્ઞ સ્વીકારી શકાય તેમ નથી.

### જીવમાં સંશયાદિની પ્રતીતિ કેમ થાય છે ?

જેમ તેજ સૂર્યનો ધર્મ અને સૂર્યનું સ્વરૂપ પણ છે, તેમજ જ્ઞાન બ્રહ્મનું સ્વરૂપ અને ધર્મ પણ છે. “સત્યં જ્ઞાનમનન્તં બ્રહ્મ” આ શ્રુતિ વાક્યમાં બ્રહ્મના સ્વરૂપાત્મક જ્ઞાનનો ઉદ્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. અને “સ્વાભાવિકી જ્ઞાનબલક્રિયા ચ” આ વાક્યમાં ધર્માત્મક જ્ઞાનનો ઉદ્દેશ છે. વળી “ભગવાન્” આ નામ પણ ધર્માત્મક જ્ઞાનને પ્રમાણિત કરે છે. જો કેવલ બ્રહ્મજ્ઞાન સ્વરૂપ હોઈ તેનો ધર્મ જ્ઞાન ન હોત તો “મતુષ્” પ્રત્યયાંત ભગવાન્ નામની સાર્થકતા થાત નહિ. તેથી બ્રહ્મના સ્વરૂપાત્મક જ્ઞાનથી અતિરિક્ત ધર્માત્મક જ્ઞાન પણ માનવું પડે છે. યદ્યપિ બ્રહ્મના ધર્મો પણ બ્રહ્મ સ્વરૂપજ હોય છે. અને અદ્વૈત શ્રુતિમાં પણ તેમ જ

પ્રતિપાદન કર્યું છે, જો પૃથક્ માનવામાં આવે તો શ્રુતિમાં વિરોધ થાય; તથાપિ તેજના દષ્ટાન્તરે અનુસરીને જ્ઞાનની પ્રતીતિ ધર્મરૂપે અને ધર્મીરૂપે એમ બે પ્રકારે થાય છે; તેથી શ્રુતિઓ પણ જ્ઞાનનું પ્રતિપાદન બે પ્રકારે કરે છે. શ્રુતિઓને અનુસરીને જ્ઞાનને ધર્મરૂપ સ્વીકારવાની જરૂર છે, જીવમાં આ ધર્મરૂપ જ્ઞાનનો તિરોભાવ ભગવદિચ્છાથી થયેલો છે; તેથી સંશય, સંદેહ, ભ્રમ વગેરે મિથ્યા જ્ઞાનની પ્રતીતિ જીવમાં થાય છે.

### જ્ઞાનોત્પત્તિનું સ્વરૂપ

હવે પ્રસંગવશાત્ જ્ઞાનપ્રક્રિયાનો વિચાર કરવામાં આવે છે. શ્રીમદ્ભગવદ્ ગીતામાં પ્રભુ નિજ મુખારવિન્દથી આજ્ઞા કરે છે કે:-

“અધિષ્ઠાનં તથા કર્તા કરણં ચ પૃથગ્વિધમ્ ।  
વિવિધાશ્ચ પૃથક્ષેષ્ટા દેવં ચૈવાત્ર પદ્મમમ્ ॥  
શરીરવાદ્મનોભિર્યત્ કર્મ પ્રારમ્ભતે નરઃ ।  
ન્યાય્યં વા વિપરીતં વા પઞ્ચૈતે તસ્ય હેતવઃ” ॥

(૧) અધિષ્ઠાન - શરીર, (૨) કર્તા-જીવ (૩) કરણ બાહ્ય અને આભ્યન્તર એમ અનેક પ્રકારનું છે, (૪) ચેષ્ટા-પ્રાણાદિવાયુનું કર્મ અને શારીરિક કર્મ, દૈવ-કાલ કર્મ, ભગવદિચ્છા-અન્તર્યામી-મુખ્ય પ્રાણના સહાયકો અને ઈન્દ્રિયોના અધિષ્ઠાતાઓ એમ પાંચ કારણ જ્ઞાનોત્પત્તિમાં છે. આ પ્રકારે માનવાથી જે લોકો આત્મા અને મનના સંયોગથી જ્ઞાનોત્પત્તિ માને છે, તેનો પણ આ કારણોમાં જ સમાવેશ થઈ જાય છે. તેમાં ક્રમ આ પ્રકારે છે:- સૌથી પ્રથમ ભગવદિચ્છા વડે ઈશ્વરાંશ અન્તર્યામી કાલકર્મની સાથે અન્તઃકરણને પ્રેરે છે. આ અન્તઃકરણ ચાર પ્રકારનું છે. (૧) અહંકારનો દેવતા રૂપ છે. તેના હૃદય, ઈન્દ્રિય, પ્રાણ, આકાશ ઇત્યાદિ એકાદશસ્થાન છે. તે રૂપનું અધિષ્ઠાનરૂપ અન્તઃકરણ, દૈહિક, હૃદય, ઈન્દ્રિય વગેરેમાં અભિમાન ઉત્પન્ન કરે છે. (૨) બુદ્ધિના દેવતા બ્રહ્મા છે, આ બ્રહ્માના અધિષ્ઠાનરૂપ બુદ્ધિ જ્ઞાનેન્દ્રિયોને પ્રેરે છે. (૩) ચિત્ત સુષુપ્તિમાં આત્માને અનુગૃહીત કરે છે, બીજી અવસ્થામાં લીન રહે છે. (૪) ચંદ્રનું અધિષ્ઠાન મન જ્ઞાનેન્દ્રિય અને કર્મેન્દ્રિય ઉભયવિધ ઈન્દ્રિયોમાં નાયક-મુખ્ય છે. આ મન તે તે દેવતાના અધિષ્ઠાનરૂપ ઈન્દ્રિયોને પ્રેરે છે. ત્યારે તે તે ઈન્દ્રિયો પોતપોતાનાં કાર્ય કરે છે. આ સાધારણ રીતે જ્ઞાનની પ્રક્રિયા છે.

જ્ઞાનેન્દ્રિયો મન વડે પ્રેરાઈને પોતપોતાના વિષયો સાથે જોડાય છે, ને પછી

મન સાથે જોડાઈને સૌથી પ્રથમ નિર્વિકલ્પક જ્ઞાન ઉત્પન્ન કરે છે, ત્યારે મનોવૃત્તિ ઈન્દ્રિય દેશમાં હોય છે. અને જ્યારે તે મનોવૃત્તિ બુદ્ધિની સાથે જોડાય છે, ત્યારે સવિકલ્પક જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. આ પ્રમેય અનેકવિધ છે. તેમાંયે કેટલાક જુદી જાતનાં કારણો ભેગા થઈ જવાથી સંશય વિપર્યય વગેરે થાય છે. આ સંશયાદિ જાગૃત્ અવસ્થામાં થાય છે, અને યથા સંભવ સ્વપ્નમાં પણ થાય છે. શ્રીમદ્ભાગવતના ચતુર્થસ્કન્ધમાં કહ્યું છે કે “જ્યારે વિષયોથી આકૃષ્ટ ઈન્દ્રિયો વડે મન આક્રિષ્ઠ થાય છે ત્યારે ધ્યાતાની બુદ્ધિની ચેતનાને જળમાંથી નાળ ઉખાડી લે તે પ્રમાણે ચેતનાને હરે છે” અર્થાત્ સંશય, વિપર્યય વગેરે ઉત્પન્ન થાય છે. આ વાક્યથી જ્યારે પ્રથમ વિષય ઈન્દ્રિયોનું આકર્ષણ કરે અને ઈન્દ્રિયો મનને આકર્ષે છે ત્યારે મન કામાદિથી હણાય છે. અર્થાત્-કામોત્પત્તિમાં તે ઉપાદાન કારણ છે. અને તે પ્રકારના મનમાં દ્વેષ ઉત્પન્નથવાથી હીનબુદ્ધિ થાય છે. “ધ્યાતાની બુદ્ધિ” એમ કહેવાથી જે વિષયોનું સ્મરણ કરવામાં આવે તે વિષયો જ ઈન્દ્રિયનું આકર્ષણ કરે છે, નહિ કે પ્રત્યક્ષ વિષયો, એમ શંકા કરવી નહિ. કારણ કે કામિની રૂપદર્શનાદિમાં ચક્ષુ, શીતકાલમાં ઉષ્ણાદિથી ત્વચા-સ્પર્શોન્દ્રિય, સુંદર રાગયુક્ત ગીત સાંભળવાથી શ્રોત્રોન્દ્રિય, ચન્દનાદિના ગંધથી ઘ્રાણોન્દ્રિય, એકવાર આસ્વાદિત પદાર્થને ફરીથી આસ્વાદન કરવાથી રસોન્દ્રિય આકર્ષાય છે, અને આ સર્વથી મન આકર્ષાય છે એમ પ્રતિદિનનો આપણો અનુભવ છે અને આ પ્રત્યક્ષ થયેલા વિષયો-કાંઈક અન્તરાય આવી જાય ત્યારે સ્મરણ કરવાથી તે ઈન્દ્રિયો અને પછી ઈન્દ્રિયો મનને આકર્ષે છે.

મન બે પ્રકારનું છે. (૧) બાહ્ય અને (૨) આભ્યન્તર. આ બંને પ્રકારના મનનું નિરૂપણ તૃતીય સ્કન્ધના “પરાહ્તાન્તર્મનસઃ” આ શ્લોકના શ્રીસુબોધિનીમાં છે. બોધકની હાનોપાદાન બુદ્ધિ થાય છે, અને જે વિષયવડે ઈન્દ્રિય દ્વારા આકર્ષાતું નથી તદ્વિષયિણી ઉપેક્ષા બુદ્ધિ થાય છે. એમ એક સાથે નાનાબુદ્ધિનું અસ્તિત્વ સ્વીકારેલું છે. ત્યાં વેગથી એક સાથે અભિમાન ઉત્પન્ન થાય છે એમ કહી શકાય નહિ. કારણ કે એકાગ્રદશામાં પુસ્તકમાં એક સાથે અનેક સ્થલે સંભવે છે એમ બધાનો અનુભવ છે જ. આ ઉપરથી મન બાહ્ય અને આન્તર એમ બે પ્રકારનું છે. જ્યારે મનનું આકર્ષણ થતું નથી ત્યારે ઉપેક્ષા બુદ્ધિ હોય છે તેથી જ ઉપેક્ષા બુદ્ધિ અસ્થિર કહેવાય છે. ઉપેક્ષાવિરહિત બુદ્ધિ સ્થિર હોય છે પણ જ્યારે બુદ્ધિનો

“इन्द्रियविषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः । चेतना हरते बुद्धेस्तन्मतोयमिव हृदात् ॥ ચતુર્થસ્કન્ધ, અધ્યાય અઢાવીશમો.

અનુગ્રહ થતો નથી ત્યારે સવિકલ્પ જ્ઞાન પણ હોતું નથી, માત્ર નિર્વિકલ્પજ હોય છે, ઈન્દ્રિયો તો વિષયો સાથે જોડાઈને પ્રકાશજ કરે છે, તેમાં ચક્ષુરિન્દ્રિય વિષય સાથે સાક્ષાત્ જોડાતી નથી, પણ તેનાં કિરણો જ જોડાય છે, અથવા નિજ-ગુણ-રૂપ-દ્વારા જોડાય છે એમ ગમે તે પ્રકારે માની શકાય છે, અને તે જ પ્રકારે ઈન્દ્રિયથી મન પણ આકર્ષાય છે. ત્યારે પૃથ્વી પર ઘટ છે, આકાશમાં તારા છે, ઈત્યાદિ સવિકલ્પક જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે. જ્યારે નયનકિરણોનો વિષયની સાથે સંયોગ માનવામાં આવે, ત્યારે નયનકિરણો વિષય સુધી પહોંચે છે એમ માનવું જોઈએ. અને ચક્ષુરિન્દ્રિય સિવાય અન્ય ઈન્દ્રિયોના સંબંધમાં તો ઈન્દ્રિયો જ વિષય સાથે જોડાય છે, અને પછી તે વિષયાકૃષ્ટ ઈન્દ્રિયો દ્વારા મન આકર્ષાય છે; એમ કહેવું યોગ્ય છે, અને તે સમયે સાથે જ નિર્વિકલ્પક અને સવિકલ્પક જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, આ ઉભય પ્રકારના જ્ઞાનમાં વિષયેન્દ્રિયસ્પર્શ આદિ વ્યાપાર છે.

કોઈ એમ પણ કહે છે કે જો નયનકિરણનો સંયોગ સ્વીકારવામાં આવે તો પ્રથમ નયનનાં કિરણો સ્વીકારવા પડે, અને તેમ કરવાથી નયન પણ વ્યાપક ઠરે, ત્યારે બાદરાયણના “અણવશ્ચ” આ સૂત્રનો વિરોધ થાય, તેથી નયનકિરણનો સંયોગ માની શકાય નહિ. આ મત પણ બરાબર નથી. કારણ કે “આદિત્યો વા ણ્ણઃ” ઈત્યાદિ અનુવાકમાં અર્થિરૂપ કિરણોનો સૂર્યમણ્ડલથી ભેદ શ્રુતિ જ કહે છે અને મેરુ પર્વતથી ઉત્તર દેશમાં વ્યાપ્ત એવા આદિત્ય મંડલનું દશસહસ્રયોજન પરિમાણ પણ કહેવું જ છે, તેથી જેમ વ્યાપકત્વ અને તાદૃશ પરિણામનો બાધ નથી. તેમ આધ્યાત્મિક સૂર્યનું સ્વરૂપ ચક્ષુષ્ હોવાથી તેના કિરણો સ્વીકારાય તો તેમાં ઉક્ત સૂત્રનો વિરોધ થતો નથી. તેમજ “તથા પ્રાણઃ” આ સૂત્રમાં જીવના દેશનો સિદ્ધાન્તમાં સ્વીકાર છે જ. તેથી સર્વ શરીરમાં જીવના સામર્થ્યની પેઠે અથવા “ગુણાદ્વાલોકવત્” આ આલોક (તેજ) ને ગુણ માનવાથી તેજસ ચક્ષુ આલોક ગુણનો અવિનાભાવ (વ્યાપ્તિ) હોવાથી ઉક્ત દોષ લાગુ પડતો નથી. માટે જ વ્યયાનું સકલશરીરવ્યાપિત્વ દેવતાના સામર્થ્યથી અને સ્પર્શગુણથી ચુક્ત જ છે. અન્યથા ઉક્ત સૂત્રનો સાર્વત્રિક વિરોધ થાય. પણ તેમ કરવું અયોગ્ય છે. તેથી નયનકિરણનો વિષયને સંયોગ થાય અને પછી મનઃ સંયોગ થવાથી પ્રત્યક્ષ થાય છે. આ પ્રકારે જ પ્રક્રિયા માનવી ઉત્તમ છે.

કોઈ જ્ઞાનોત્પત્તિની પ્રક્રિયા નીચે પ્રમાણે બતાવે છે કે:-

આલોક પડે માયાનું કાર્ય જે તમસ્ તેને ઉત્પન્ન કરી પ્રતિબંધ થાય તે પ્રતિબંધ અટકાવાય છે. ત્યારે સન્મુખ અવ્યવહિત દેશમાં સ્થિત પૃથુબુદ્ધનોદરાકાર

વિશેષરૂપ થાય છે. અને પછી સત્ત્વપ્રધાન બુદ્ધિ તેમાં તદાકાર થાય ત્યારે પ્રતિજ્ઞાનાશ્રિત આધ્યાત્મિક ઘટાદિની અભિવ્યક્તિ થાય છે. આ ચાક્ષુષ પ્રત્યક્ષ કહેવાય છે. દૂર દેશવર્તિ ગંધ અને શબ્દને વાયુ દ્વારેન્દ્રિય અને શ્રોત્રેન્દ્રિય સુધી પહોંચાડે છે. ત્યારે અન્તઃસ્વાત્મક બુદ્ધિ તદાકાર થાય અને પછી જ્ઞાનાશ્રિત આધ્યાત્મિક ગંધ અને શબ્દની અભિવ્યક્તિ થાય તે દ્વારા જ અને શ્રવણ પ્રત્યક્ષ છે. આધ્યાત્મિક અને આધિભોતિકનો પણ અભેદ હોવાથી જેમ આધ્યાત્મિક ઘટનું પ્રત્યક્ષ થાય તેમ આધિભોતિક ઘટનું ચે પ્રત્યક્ષ થાય. તેમાં કોઈપણ પ્રકારનો દોષ આવતો નથી.

આ પ્રકારની પ્રત્યક્ષ પ્રક્રિયા પણ નિર્દોષ નથી, કારણ કે તેમાં પ્રથમ એમ કહેવાય છે કે આ લોક પડે તમોજનનરૂપ પ્રતિબંધ કરાય છે, કારણ કે શ્રીમદ્ભાગવતના એકાદશ સ્કંધમાં કહ્યું છે કે “યથા હિ ભાનોરુદયો નૃચક્ષુષાં તમો નિહન્યાત્” “જ્યારે સૂર્યનો ઉદય મનુષ્યના ચક્ષુઓના અન્ધકારનો નાશ કરે છે” - આ વાક્યમાં આદિત્યનો ઉદય તમોનાશક છે. એમ કહેવામાં આવ્યું છે. તેમ જ જ્યોતિરૂપ સૂર્યદેવતા પુરુષચક્ષુમાં વિષયનિષ્કરૂપની પ્રાપ્તિ છે એમ પણ અર્થ થાય છે, આલોક પડે પ્રત્યેક પદાર્થનો પ્રત્યક્ષ થાય છે. જ્યારે અનેક માણસો એક જ પદાર્થને જુએ છે ત્યારે પૂર્વોક્ત પ્રકારે જો પ્રત્યેકનો આલોક પડે તમોજનન પ્રતિબંધ થવાથી પ્રત્યક્ષ થાય છે એમ કહેવામાં આવે તો પ્રત્યેક વ્યક્તિ માટે તે પદાર્થના દર્શનમાં ભિન્ન ભિન્ન સૂર્ય માનવો પડે. અર્થાત્ રૂપ આલોકજન્ય છે એમ માનવાથી વિષય નીરૂપ થાય, અને જો વિષય નીરૂપ થાય તો બીજાને દેખાય નહિ એવી મહાન્ આપત્તિ ઉક્ત સિદ્ધાન્તમાં દષ્ટિપથ થાય છે. તેમજ જો આલોક પડે તમોજનનરૂપ પ્રતિબંધ જ માની લેવાય તો સાચંકાલે સૂર્યાસ્ત પછી રૂપપ્રાપ્ત દેવતાના ગમનથી કોઈપણ પદાર્થનું પ્રત્યક્ષ માની શકાય નહિ; અને તેથી ઘટાદિનું અદર્શન થાય. અતઃ એવ ઉક્ત સિદ્ધાન્ત માની શકાય તેવો નથી. વાસ્તવિક રીતે નયનાધિષ્ઠાતૃ દેવતા આદિત્ય છે, અને નયનકિરણ તથા વિષયને સંયોગ થાય છે એમ જ માનવું જોઈએ. જે લોકો તમોજનના પ્રતિબંધક આલોકને માને છે તેમનું કથન એમ છે કે સૂર્યાસ્ત થવાથી ચઘપિ તમોજનન પ્રતિબંધકત્વ નષ્ટ થાય છે, અને તેથી ઘટાદિની પ્રતીતિ અશક્ય થઈ પડે છે. પણ રાત્રિમાં પણ સૂર્ય કિરણોનું અસ્તિત્વ તો સ્વીકાર્યું છે જ. બ્રહ્મસૂત્રના ચતુર્થાધ્યાયમાં “નિશિ નેતિ ચેન્ન સમ્બન્ધસ્ય યાવદ્દેહભાવિત્વાદ્ દર્શયતિ ચ” આ સૂત્રમાં “અથ ઇતા હૃદયસ્ય નાડ્યઃ” આ વાક્યથી નાડીઓનો ઉપક્રમ કરીને દહરવિધામાં આ નાડીઓમાં સૂર્યની



સાથે સંબંધ થઈને વિસ્તૃત થાય છે એમ કહ્યું છે, તેથી નાડીઓ રાત્રિમાં પણ સૂર્યની સાથે સંબંધ હોવાથી આલોક તમોજનના પ્રતિબંધક છે અને માટેજ રાત્રિમાં ઘટાદિની પ્રતીતિ અયોગ્ય નથી એમ સમાધાન કરે છે. આ સમાધાન પણ અયોગ્ય જ છે. કારણ કે ત્યાં દહરવિધામાં નાડીઓનો રશ્મિ સાથે સુષુપ્તિ-સંબંધ હૃદય સાથે બતાવે છે. આ નાડીનું સુષુપ્ત રશ્મિઓ હૃદયાગ્રધોતન અને જીવોત્ક્રમણ માત્ર કાર્ય કહ્યું છે, તેથી તે રશ્મિઓ રૂપપ્રાપ્તિકા છે એમ માનવામાં કાંઈપણ પ્રમાણ નથી. વળી જ્યોતિર્બ્રહ્મણમાં આદિત્યના અસ્ત થયા બાદ “કિં જ્યોતિર્યં પુરુષઃ” ઇત્યાદિ વાક્યોનો વિરોધ પણ સ્પષ્ટ જ છે. આ વિરોધનો પરિહાર થઈ શકે તેમ નથી. માટે આદિત્યાદિની રશ્મિઓ રૂપપ્રાપ્તિકા છે એમાં શ્રુતિનું પ્રમાણ નથી, પણ આદિત્યરૂપ દેવતા રૂપપ્રાપ્તિકા છે એમ કહેવું સર્વથા અયુક્ત જ છે. વળી ચક્ષુમાં રૂપની પ્રાપ્તિ પ્રતિબિમ્બભવનરૂપ છે. અને પ્રતિબિમ્બભવનરૂપ જે રૂપપ્રાપ્તિ થાય છે તે પણ માયા વડેજ થાય છે. જો એમ ન માનવામાં આવે તો ઋત્વેડર્થ યત્પ્રતીયેત ઇત્યાદિ વાક્યો વ્યર્થ થાય. આ પ્રકારે બુદ્ધિયાકાર સમર્થકત્વ પણ પ્રતિબિમ્બનું જ છે. (અર્થાત્ બુદ્ધિવિષયાકાર થાય છે એમ જે પ્રથમ કહેવામાં આવ્યું છે તે તદાકારત્વ પણ પ્રતિબિમ્બ વિના થતું નથી) અને આધ્યાત્મિકરૂપ પણ માયામય જ થાય. અને આધ્યાત્મિકરૂપને જ્યારે માયામય કહેવામાં આવે ત્યારે તે અસત્ય છે એમ પણ માનવું જોઈએ. આધ્યાત્મિકરૂપમાં પણ અર્થ ક્રિયાકારિત્વ માત્ર છે. આદિદેવિક તો શબ્દેકનિષ્ઠ હોવાથી ભગવદાત્મક છે અને તે સત્ય પણ છે. આદિભૌતિકરૂપ પ્રપંચાત્મક છે. અને તે પ્રપંચરૂપ કાર્યરૂપ હોવા છતાં કારણરૂપે સત્ય જ છે; નહિ કે સ્વતઃ સત્ય છે કારણકે વિકારો તો વાણીથી કેવલ આરંભ કરાયેલા જ છે. આ પ્રકારે ચાક્ષુષ પ્રત્યક્ષ થાય.

ત્વયા જ પોતાના ગુણ-સ્પર્શ વડે શરીરમાં વ્યાપે છે. નહિ કે તેથી આગળ જઈ શકે છે. આ સ્પર્શન પ્રત્યક્ષ છે ઘ્રાણ, રસન અને શ્રવણ, પ્રત્યક્ષોના પોતપોતાના ગોલકમાં સ્થિત રહીને સકલ શરીરમાં નિજ દેવતાના સામર્થ્ય દ્વારા કે નિજ ગુણદ્વારા સકલ કાર્યોનું સંપાદન કરે છે.

કર્મેન્દ્રિયોમાં વાણીનો સ્પર્શ બહિર્ગમન કરે છે અને તેથી જ “ન કચ્છન્મર્મણિ સ્પૃશેત્” કોઈના મર્મને સ્પર્શ કરવો નહિ ઇત્યાદિ વાક્ય સંયમના નિયમો છે. વિદ્યુતના શબ્દનો હૃદયને સ્પર્શ થાય છે, ત્યારે હૃદય કમ્પિત થાય છે એમ સર્વનો અનુભવ છે, એટલું જ નહિ પણ કોઈકવાર વીજળીના કડાકાથી ભીંત પણ પડી જાય છે. આ ઉપરથી શબ્દનો સ્પર્શ પદાર્થાન્તરને થાય છે એમ સિદ્ધ થયું. વાયુ, ઉપસ્થ,

હસ્ત, પાદ પણ પ્રાણેન્દ્રિયાદિની પેઠે પોત પોતાના ગોલકમાં સ્થિત રહીને સર્વ શરીરમાં યથોચિત કાર્ય કરે છે, અને તેથી જ ચલન પગ વડે હસ્ત વડે તાલવાદન વગેરે કરી શકાય છે. તેથી બે ગોલકોની ઉભયત્ર (એકત્ર) સ્થિતિનો પણ સંભવ થાય છે.

આ સર્વ જ્ઞાન અને કર્મ અંતઃકરણાધ્યાસ વડે થાય છે. એને જીવ પોતાનું માની લે છે. જ્યારે માયાવાદીઓ અને નૈયાયિકોનો જ્ઞાનેચ્છાદિ વિષે આત્મધર્મત્વરૂપ પ્રવાદ માત્ર છે.

### ઐશ્વર્યાદિ ધર્મના તિરોભાવ

જેમ જ્ઞાનનો તિરોભાવ ભગવદિચ્છા વડે થયો છે, તેમજ બ્રહ્મનાં ઐશ્વર્ય, વીર્ય, યશ, શ્રી, જ્ઞાન અને યૌગ્ય આ ધર્મોનો એ તિરોભાવ ભગવાનની ઇચ્છા વડે જ થયો છે.

- (૧) ઐશ્વર્યનો તિરોભાવ થવાથી જીવ અસમર્થ થાય છે.
- (૨) વીર્ય (પરાક્રમ) નો તિરોભાવ થવાથી જીવને સર્વ દુઃખ સહન કરવાં પડે છે.
- (૩) યશનો તિરોભાવ થવાથી જીવ નિતાન્ત દીન થાય છે.
- (૪) શ્રીનો તિરોભાવ થવાથી જન્મ, મરણ આદિ અનેક આપત્તિઓનો અનુભવ કરે છે.
- (૫) જ્ઞાનના તિરોભાવથી ભ્રાન્તિ, સંશય વગેરે મિથ્યા જ્ઞાનની પ્રતીતિ થાય છે.
- (૬) યૌગ્યના તિરોભાવથી સંસારાસક્તિ થાય છે.

આનું પ્રમાણ ભગવાન બાદરાયણે “પરામિધ્યાનાત્તુ તિરોહિતં તતોહ્યસ્ય વન્ધવિપર્યયૌ” આ સૂત્રમાં આપ્યું છે. તેથી બ્રહ્મ અને જીવ વિલક્ષણ પ્રતીત થાય છે. વસ્તુતઃ જીવ અને બ્રહ્મનો અંશાંશિભાવ સંબંધ જ છે.

### જીવ બ્રહ્મનો નિર્જાંશ છે

વળી “પાદોડસ્ય વિશ્વા ભૂતાનિ” “મમૈવાંશો જીવલોકે” ઇત્યાદિ શ્રુતિ સ્મૃતિમાં “ચંદ્રમંડલનો શતાંશ ગુરુમંડલ છે.” ઇત્યાદિ વાક્યોમાં જેમ અંશ શબ્દનો ગોણ અર્થ ગ્રહણ કર્યો છે તેમ ગોણ અર્થ ગ્રહણ કરવામાં આવ્યો નથી. અથવા પુરુષના કર, ચરણ, જેમ નિર્જાંશ છે અને પુત્રાદિ વિભિન્નાંશ છે, તેમ મત્સ્યાદિ અવતાર ભગવાનના નિર્જાંશ છે અને જીવ ભિન્નાંશ છે એમ પણ અર્થ થતો નથી.

અને તે અર્થ ભગવાન્ બાદરાયણને પણ સંમત નથી.

“પ્રકાશાદિવન્નૈવં પરઃ” જેમ સૂર્ય અને અગ્નિના તેજથી લોકોને તાપ લાગે છે પણ સૂર્ય કે અગ્નિને કાંઈ થતું નથી. કારણ કે તે જ તેમનું સ્વરૂપ છે. તેમ જ બ્રહ્મમાં જીવને સુખદુઃખનો સ્પર્શ થતો નથી. કારણકે બ્રહ્મથી કોઈપણ પદાર્થ ભિન્ન નથી. જીવને જે સુખદુઃખાદિનો અનુભવ થાય છે તેનું કારણ ભગવાન્ની અવિદ્યાશક્તિનો પ્રભાવ છે. અને તેથીજ જીવને ભેદ બુદ્ધિ નથી. વળી “અનુજ્ઞા પરિહારૌ દેહસમ્બન્ધાજ્જ્યોતિરાદિવત્” જેમ ચાંડાલ, સ્મશાન વગેરેથી સંબન્ધ ધરાવતો અગ્નિનો અંશ અને જલાદિ અપવિત્ર માનવામાં આવે છે, પણ જગત્માં સર્વત્ર જ અગ્નિ કે જલાદિ અપવિત્ર નથી તેમ જ શરીરની સાથે બ્રહ્માંશ જીવનો આધ્યાત્મિક સંબંધ છે. તેથી ઉચ્ચનીચ ભાવ હોવાથી શુદ્ધિ, અશુદ્ધિ, ગ્રાહ્યતા અને અગ્રાહ્યતાનો વિચાર થાય છે, બ્રહ્મમાં થતો નથી. આ બંને સૂત્રોમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે જીવને સુખદુઃખ અને ગુણ દોષનો સ્પર્શ થતો નથી. જો જીવને બ્રહ્માંશ માનવામાં આવે તો જ આ સિદ્ધાન્ત માની શકાય અન્યથા નહિ. તેથી આ બંને સૂત્રોના અનુરોધથી જીવ બ્રહ્મનો નિર્જાશ જ છે એમ સિદ્ધ થયું અને તેના ધર્મોનો બ્રહ્મની ઈચ્છાથી જ તિરોભાવ થયો છે.

### જીવાણુત્પવાદ

માયાવાદીઓ કહે છે કે જો જીવ બ્રહ્મથી અભિન્ન છે, તો તે વ્યાપક પણ હોવો જોઈએ. પણ જ્યારે તમે જીવને અણુ માનો છો ત્યારે તેનું વ્યાપકત્વ નષ્ટ થઈ જાય છે. અણુ પદાર્થ વ્યાપક હોઈ શકે નહિ. વળી “સ વા એષ મહાનજ આત્મા” તે આ આત્મા મહાન, જન્મરહિત અને વ્યાપક છે. આકાશવત્ સર્વગતશ્ચ નિત્યઃ આત્મા આકાશની પેઠે વ્યાપક અને નિત્ય છે. નિત્યઃ સર્વગતઃ સ્થાણુઃ આત્મા નિત્ય, વ્યાપક અને અચલ છે. ઈત્યાદિ શ્રુતિ સ્મૃતિ વાક્યો પણ જીવને વ્યાપક કહે છે અને જો યુક્તિદ્વારા વિચાર કરવામાં આવે તો જીવને અણુ માનવો યોગ્ય છે. કેમકે સંપૂર્ણ શરીરમાં ચૈતન્ય વ્યાપે છે તે જીવનો ગુણ છે અને ગુણ પોતાના ગુણી (ધર્મ)થી વેગળો રહેતો નથી. જો જીવાત્માને અણુ કહેવામાં આવે તો તેની વ્યાપકતા નષ્ટ થાય. જેટલા પ્રદેશમાં અણુ જીવ રહી શકતો હોય તેટલા જ પ્રદેશમાં ચૈતન્ય પણ રહે, તેથી અન્યત્ર જઈ શકે નહિ. આ યુક્તિ પણ અણુત્પવાદથી વિરુદ્ધ પ્રમાણ આપે છે. વળી લોકમાં એક પણ એવું દષ્ટાન્ત મળતું નથી કે જ્યાં ધર્મ ધર્મી કરતાં અધિક પ્રદેશમાં રહેતા હોય. પુષ્પ વગેરે

સૌગન્ધિક પદાર્થનો ગંધ દૂરથી આવે છે તેનું કારણ વાયુ છે. વાયુ પુષ્પના પરાગને ઉડાડીને નાસિકા પ્રદેશ સારી સંયુક્ત કરે છે. અર્થાત્ પરાગની સાથે જ તેનો ધર્મ સુગંધ પણ આવે છે. તેમ જ ચંદનને શરીરના એક અંગ ઉપર ચોપડવાથી તેની શીતલતા સંપૂર્ણ શરીરને લાગે છે. તેનું કારણ પણ ચંદનના સૂક્ષ્મ અવયવનું સંપૂર્ણ શરીરમાં પ્રસરણ જ છે. મણિપ્રભા યદ્યપિ મણિ પ્રદેશથી અતિરિક્ત સ્થાનમાં હોય છે. તે પ્રભા ધર્મ નથી. મણિથી ઉત્પન્ન થયેલ વિરલાવયવ દ્રવ્યાન્તર જ છે. તેથી દષ્ટાન્ત ન હોવાથી આત્માથી અધિક દેશમાં તેનું ચૈતન્ય માની શકાશે નહિ. યદ્યપિ આત્માને શરીર પરિમાણ માનવાથી શરીરવ્યાપિ ચૈતન્યનું સમર્થન થઈ શકે છે, પરંતુ શરીર પરિમાણ માનવાથી આત્માના નિત્યત્વનો વ્યાધાત થાય છે. કારણ કે શાસ્ત્રીય મર્યાદા અણુ અને વ્યાપક પદાર્થને જ નિત્ય માને છે. મધ્ય પરિણામ પદાર્થ અનિત્ય હોય છે. તેથી અણુત્વ વ્યાપકતાનું સામાનાધિકરણ ન હોવાથી વિરોધ આવે છે.

આ પૂર્વપક્ષનો ઉત્તર નીચે મુજબ છે.

વ્યાપકતાનું પ્રતિપાદન કરનારી શ્રુતિઓ બ્રહ્મના પ્રકરણમાં કહેલી છે. તેથી બ્રહ્મ જ વ્યાપક છે એમ પ્રમાણિત થાય છે, જીવનું વ્યાપકત્વ પ્રમાણિત થતું નથી. અને અણુત્વનું પ્રતિપાદન કરતી શ્રુતિઓનો અભિપ્રાય પણ જીવને કાંઈ દુર્બોધ પ્રમાણિત કરવાનો નથી; કિન્તુ અણુ પ્રમાણિત કરવાનો જ છે. આ સિદ્ધાન્ત વ્યાસસૂત્રો વડે સ્પષ્ટ થાય છે. ભગવાન્ બાદરાયણ કહે છે કે “વ્યતિરેકો ગન્ધવદ્” જેમ ગન્ધ ધર્મીની અપેક્ષાએ અધિક પ્રદેશમાં રહે છે તેમ હૃદયસ્થ જીવનું ચૈતન્ય શરીરમાં વ્યાપે છે. “અવિરોધશ્ચન્દનવત્” જેમ એકદેશસ્થિત ચંદનબિંદુ સંપૂર્ણ શરીરમાં ચૈત્યનો પ્રસાર કરે છે તેમ એક દેશ સ્થિત અણુ જીવ પણ સંપૂર્ણ શરીરમાં ચૈતન્યનો સંચાર કરે છે. “ગુણાદ્વાડ્લોકવત્” એકદેશસ્થિત દીપ પ્રકાશદ્વારા સંપૂર્ણ ગૃહમાં વ્યાપ્ત રહે છે. તેમ એકદેશસ્થિત જીવનું ચૈતન્ય શરીરમાં વ્યાપ્ત રહે છે, માયાવાદીઓ આ સૂત્રોને પૂર્વપક્ષમાં માનીને તેના ઉદાહરણોનું યુક્તિ દ્વારા ખંડન કરે છે, તે અયોગ્ય છે. કારણ કે મોગરો, ગુલાબ, ચંપો વગેરે પુષ્પોની ગંધ દૂર સુધી જાય છે. અને તેમના અવયવ એવા શિથિલ હોતા નથી કે મંદ વાયુદ્વારા અન્યત્ર જઈ શકે. અને કદાચિત્ જાય તો ચારે બાજુએ પ્રસરતા અવયવોનું બાહુલ્ય માનવું એ કિલષ્ટ કલ્પના છે. જો અવયવો દૂર જતા રહેતા હોય તો પુષ્પનો નાશ થવો જોઈએ. જેમ કપૂરના અવયવો પ્રત્યેક ક્ષણે પૃથક્ થતા હોવાથી કપૂરનો નાશ થાય છે તેમ પુષ્પનો પણ નાશ થવો જોઈએ.

અથવા પુષ્પમાં છિદ્ર દેખાવાં જોઈએ. એમ પણ માની શકાતું નથી કે આઘાણ કરનારા મનુષ્યોના પૂર્વેના પુણ્યના પ્રભાવથી પુષ્પના છિદ્રો પૂર્ણ થઈ જાય છે. કારણ કે અનુમાનથી અવયવ પૂરક પુણ્ય પ્રભાવની કલ્પના કરવી, તદ્દપેક્ષયા તો ધર્મથી અધિક પ્રદેશમાં ધર્મ માનવો એ પ્રત્યક્ષથી પણ સિદ્ધ અને સરલ માર્ગ છે. આવા સરલ માર્ગનો પરિત્યાગ કરીને ક્લિષ્ટ કલ્પના કરવી અયોગ્ય છે. સૌગન્ધિક પદાર્થના સૂક્ષ્મ અવયવોનું નિર્ગમન સર્વત્ર સંભવે તેમ નથી. વેપારીને ત્યાં કોઠારમાં ચામડામાં વીટેલી કસ્તૂરી એક દાબડામાં બંધ કરવામાં આવે છે. છતાં તેનો ગંધ તો આવે જ છે. તેથી તેના અવયવનું નિર્ગમન માની શકાય તેમ નથી. વળી લંશુનના સ્પર્શવાળો હાથ હોય તો તેને બે ત્રણ વાર માઠી લગાડીને ઘોવાથી ચે ગંધ જતી નથી. આ ઉપરથી એમ જ માનવું પડે છે કે પદાર્થની અપેક્ષા ચે ગન્ધત્વાદિ ધર્મ અધિક પ્રદેશમાં હોઈ શકે છે આથી વ્યતિરેકો ગન્ધવચ્ચ ગુણાદ્વાડલોકવત્ વગેરે વ્યાસસૂત્રો પૂર્વપક્ષનાં સૂત્રો નથી પણ તે જીવનું અણુત્વજ પ્રદર્શિત કરે છે. તેથી અણુ સ્વરૂપ જીવાત્માના ચૈતન્યની વ્યાપ્તિ બ્રહ્મવત્ સંપૂર્ણ હોવી અનુચિત છે.

### સિદ્ધાંત

જીવ અણુ અને ભગવદંશ હોવાથી તેનો મુખ્ય ધર્મ ભગવત્સેવા જ છે. પુષ્ટિમાર્ગમાં મુખ્ય સાધન પણ ભગવત્સેવા જ છે. અને તેથી નિત્યલીલામાં પ્રવેશ એ જ મુખ્ય ફલ કહેવામાં આવ્યું છે. સેવાનો અધિકાર બ્રહ્મસંબંધ દ્વારા પ્રાપ્ત થાય છે. બ્રહ્મસંબંધ વિના સેવાનો અધિકાર થતો નથી. અને સેવા વિના નિત્યલીલામાં પ્રવેશ પણ નથી. નિત્યલીલાનો અનુભવ જ્ઞાની કે યોગીને દુર્લભ પણ છે, તે અનુગ્રહથી જ પ્રાપ્ય છે. સેવા જ ભગવદનુગ્રહ સાધિકા છે. કર્મ કે જ્ઞાન પડે અનુગ્રહ સાધ્ય નથી, જો અનુગ્રહ મેળવવો હોય તો ભગવત્સેવાની જરૂર છે.

### બ્રહ્મસંબંધ

બ્રહ્મસંબંધ એટલે આત્મનિવેદન અથવા પ્રત્યેક પદાર્થ ઉપરથી સ્વત્વ અને સ્વીયત્વ બુદ્ધિ ખસેડીને ભગવત્સંબંધની સ્થાપના કરવી તે. આ બ્રહ્મસંબંધ ગુરુદેવ દ્વારા થાય છે, બ્રહ્મસંબંધ દ્વારા જ શ્રીનાથજી જીવને ગ્રહે છે. અર્થાત્ પરણ કરી અનુગ્રહ પાત્રને સેવાનો અનુભવ કરાવે છે. શ્રીમદાચાર્યચરણે સિદ્ધાંત રહસ્યમાં બ્રહ્મસંબંધનું સ્વરૂપ, પ્રયોજન અને તેનો પ્રકાર તથા બ્રહ્મસંબંધીનાં કર્તવ્યનું નિરાકરણ કર્યું છે. “સિદ્ધાન્તરહસ્ય ગ્રંથ” ઉપર અનેક ગોસ્વામી બાલકો

અને વિક્રાન્ત યૈષ્ઠાવોની ટીકાઓ છે. આ ગ્રંથ ગોલોકવાસી ભાઈ મૂલચંદ્ર તેલીવાલાએ એકાદશવિવરણ સમેત સિદ્ધાન્ત રહસ્ય ગ્રંથનું મુદ્રણ કરાવીને પ્રસિદ્ધ કર્યો છે. તેમાં બ્રહ્મસંબંધનાં લક્ષણો જૂદા જૂદા ટીકાકારોએ આ પ્રકારે દર્શાવ્યાં છે :-

(૧) શ્રીગોકુલનાથજી આજ્ઞા કરે છે કે “બ્રહ્મસમ્બન્ધકરણં નામ એતન્માર્ગીયાચાર્યદ્વારા ભગવન્નિવેદનમ્” બ્રહ્મસંબંધકરણ એટલે એતન્માર્ગીય આચાર્યો દ્વારા (ગોસ્વામી બાલકો દ્વારા) પ્રભુને સ્વત્વ અને સ્વીયત્વબુદ્ધિ નિવૃત્તિ પૂર્વક સર્વ પદાર્થો નિવેદન કરવા.

(૨) શ્રીરઘુનાથજી આજ્ઞા કરે છે કે “બૃહત્વાદ્ બ્રહ્મ પુરુષોત્તમઃ તત્સંબન્ધસ્તસ્મિન્ દેહાત્મનોર્નિવેદનલક્ષણઃ” બૃહત્ હોવાથી બ્રહ્મ પુરુષોત્તમ છે. શ્રીયશોદોત્સંગલાલિત પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણ છે. તેનો સંબન્ધ એટલે પ્રભુને દેહ આત્મા વગેરેનું નિવેદન કરવું તે.

(૩) શ્રીકલ્યાણરાયજી આજ્ઞા કરે છે કે “બ્રહ્મસમ્બન્ધો નામ સ્થમાર્ગાચાર્યદ્વારા ભગવતિ નિવેદનમ્” બ્રહ્મસંબન્ધ એટલે સ્થમાર્ગીય આચાર્યદ્વારા પ્રભુને નિવેદન કરવું તે.

(૪) શ્રીવ્રજોત્સવજી આજ્ઞા કરે છે કે “બ્રહ્મસંબન્ધકરણં નામ સાક્ષાત્પુરુષોત્તમસમ્બન્ધકરણમ્ । તદ્દ શ્રીમદાચાર્યદ્વારા શરણગમનપૂર્વકમ્ ।” બ્રહ્મસંબન્ધકરણનો અર્થ શ્રીપુરુષોત્તમસંબન્ધકરણ થાય છે. અને તે શ્રીપુરુષોત્તમસંબન્ધ શ્રીમદાચાર્યચરણદ્વારા પ્રભુને શરણગમન કર્યા પછી થાય છે. આ ઉપરથી એમ પણ સિદ્ધ થાય છે કે શ્રીનાથજી જીવનો બ્રહ્મસંબન્ધ દ્વારા અંગીકાર કરે છે. તે શ્રીમદાચાર્યચરણની કાની (પુત્રવત ભાવ)થી કરે છે. અર્થાત્ પુષ્ટિમાર્ગીય ગુરુ શ્રીમદાચાર્યજીથી અતિરિક્ત અન્ય કોઈ નથી.

(૫) શ્રીગોકુલોત્સવજી આજ્ઞા કરે છે કે “બ્રહ્મણઃ શ્રીપુરુષોત્તમસ્ય સમ્બન્ધિકરણાત્ સર્વસમર્પણેન તદીયત્વસમ્પાદનાત્” બ્રહ્મ જે પુરુષોત્તમ તેનો સંબન્ધ સર્વ પદાર્થને કરાવવો. અર્થાત્ સર્વ પદાર્થો પુરુષોત્તમ સંબન્ધી છે. સર્વ સમર્પણદ્વારા સર્વ પદાર્થો પુરુષોત્તમ સંબન્ધી છે. તેના ઉપર સ્વત્વ કે સ્વીયત્વ બુદ્ધિ રાખવી નહિ.

(૬) શ્રી હરિરાયજી આજ્ઞા કરે છે કે “આદૌ સમ્બન્ધકરણં કન્યયેવ સ્વયંવરે । સ્વસ્ય સર્વપદાર્થાનાં મનસા તેન યોજનમ્ । સમ્બન્ધવંત્યા દૂત્યેવ ગુરુણા તત્કૃતિર્ભવેત્ । સમ્બન્ધશ્ચાપિ નિર્દોષસ્તથા સર્વસમઃ સ્મૃતઃ । વન્હેરિવેતિ બોધાય પ્રોક્તં

બ્રહ્મપદં પુનઃ । ‘નિર્દોષં હિ સમં બ્રહ્મે’ ત્યત્રોક્તં તત્તથાવિધમ્ । સ્યાત્ પ્રયુક્તે કૃષ્ણપદે વિષયત્વં ગુણાહિતિઃ । સમ્બન્ધે તાદૃશાપેક્ષા નાસ્તિ દોષનિવારણાત્ । દોષમાત્રનિવૃત્ત્યર્થં બ્રહ્મસમ્બન્ધ ઉચ્યતે ।”

પ્રથમ જેમ કન્યા સ્વયંવરમાં વરે છે તેમ પ્રભુ સાથે સંબન્ધ થાય છે. આ સંબન્ધ કરાવનાર સ્વયંવરમાં જેમ દૂતી હોય છે, તેમ આ સ્થલે ગુરુદેવ હોય છે. સંબન્ધ થતાં જ મનથી પ્રભુને પોતાના સર્વ પદાર્થોનું નિવેદન કરવામાં આવે છે. અર્થાત્ પ્રત્યેક પદાર્થ ઉપરથી સ્વત્વ અને સ્વીયત્વ બુદ્ધિ ખસેડીને ત્યાં ભગવત્પ્રભુ સ્થાપન થાય છે. આ સ્થલે બ્રહ્મસંબંધ શબ્દ યોજવામાં આવ્યો છે. તે ઉપરથી જણાય છે કે નિર્દોષ અને સર્વસમ બ્રહ્મ અગ્નિની જેમ દોષોને દૂર કરનાર છે. નો બ્રહ્મસંબન્ધ ન કહેતાં કૃષ્ણ સંબન્ધ કહેવામાં આવે તો યેષમ્બદોષ અને ગુણાહિતિ થાય પણ આચાર્યચરણ બ્રહ્મને નિર્દોષ અને સર્વસમ કહે છે. તેથી આ સ્થલે કૃષ્ણ શબ્દના સ્થાનમાં બ્રહ્મ શબ્દની યોજના કરી છે. (તેનો અન્યથા અર્થ કરવો નહિ) આ સ્થલે દેહ અને જીવના દોષ નિવારણ કરવાના છે. તેથી જ બ્રહ્મપદની અપેક્ષા છે. નહિ કે દોષ માત્રની નિવૃત્તિ માટે બ્રહ્મસંબંધનો ઉપદેશ કરાવ્યો છે.

(૭) શ્રીવિક્રમેશ્વર આજ્ઞા કરે છે કે “સિદ્ધાન્ત રહસ્ય” માં પ્રભુએ શ્રીમુખે જે આજ્ઞા કરી તે જ અક્ષરશઃ શ્રીમદાચાર્યચરણ કહે છે તે ઉપરથી એમ જાણી શકાય છે કે બ્રહ્મસમ્બન્ધ એટલે બ્રહ્મ જે હું (પ્રભુ) તેનો જે સંબન્ધ કરાવે તેનું નામ બ્રહ્મસંબંધ.

(૮) શ્રીગિરિધરજી આજ્ઞા કરે છે કે “અસ્મિન્ માર્ગે યશોદોત્સંગલાલિત શ્રીકૃષ્ણસ્યૈવોપાસ્યત્વાત્તસ્ય ઘાણલોકે અવતારમાત્રમત્વાદત્ર- તદ્વ્યાવૃત્ત્યર્થં બ્રહ્મપદોપાદાનમ્ । તેન બ્રહ્મણા સહ દેહજીવયોર્યઃ સમ્બન્ધઃ સ્વમાર્ગીયનિવેદનેન તદીયત્વસમ્પાદનલક્ષણઃ ।”

આ પુષ્ટિમાર્ગમાં યશોદોત્સંગલાલિત પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણ જ ઉપાસ્ય છે અને તે શ્રીકૃષ્ણને લોકો અજ્ઞાનતાથી-ભ્રમથી અવતાર માત્ર સમજે છે; અમારા પ્રભુ પૂર્ણ પુરુષોત્તમ છે, એમ બોધ કરાવવા માટે બ્રહ્મપદ ગ્રહણ કર્યું છે, તે ઉપરથી એમ સમજવું જોઈએ કે બ્રહ્મની સાથે (યશોદોત્સંગલાલિત પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણ સાથે) જે દેહ અને જીવનો સંબન્ધ થાય છે તે બ્રહ્મસંબંધ છે. અને તે જ સ્વમાર્ગીય નિવેદન કે તદીયત્વ કહેવાય છે.

(૯) પંકિતપુરંદર દશદિગ્વિજયી શ્રીપુરુષોત્તમજી આજ્ઞા કરે છે કે

“બ્રહ્મસમ્બન્ધો નામ સર્વસ્મિન્ ભગવત્સ્વામિકત્વરૂપઃ સમ્બન્ધઃ, તસ્ય કરણં નામ ભગવતા આચાર્યાન્ પ્રતિ ગદ્યોનોત્તો ય આત્મસમર્પણપ્રકારઃ, તદ્વીત્યા ભગવતિ સ્વાત્મસહિતસ્વીયસર્વપદાર્થાનાં ભગવતિ તથાત્વવિજ્ઞાપનમ્ ।” “સ વૈ નૈવ રમે” इति श्रुतेः, “क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुचियो पर ईश कुर्युः ।” इत्यादि वाक्याच्च; वस्तुतः सर्वस्य भगवदीयत्वेऽपि “स वૈ નૈવ રમે” इत्यादिश्रुत्या स्मरणार्थं द्वितीयनिर्माणાદિશ્રાવણાત્, તેનાપાદિતા યા તત્તત્પદાર્થે જીવસ્ય સ્વત્વસ્વીયત્વાભિમતિઃ, તત્પરિત્યાગે, તેષુ ભગવદીયત્વસ્ય વિજ્ઞાપનમિતિ યાવત્ ।”

બ્રહ્મસંબન્ધ એટલે સર્વ પદાર્થોમાં ભગવત્સ્વામિકત્વરૂપ સંબન્ધ (અર્થાત્ પ્રત્યેક પદાર્થોમાં સ્વામી ભગવાન છે, એવો સંબન્ધ સ્થાપન કરવો તે) આચાર્યચરણપ્રત્યે સાક્ષાત્ પુરુષોત્તમે પ્રકટ થઈને ગદ્ય મંત્રદ્વારા જે આત્મસમર્પણ પ્રકાર કહ્યો છે, તે બ્રહ્મસંબંધકરણ છે, (આચાર્યચરણે જ ભગવદાજ્ઞાથી ગદ્યમંત્રદ્વારા આત્મસમર્પણની પ્રણાલિકા સ્થાપન કરી છે, તેનું નામ બ્રહ્મસંબંધકરણ છે.) તે પ્રણાલિકાને અનુસરીને પોતાના આત્મા સહિત સ્વીય સર્વપદાર્થો પ્રભુના છે, એમ વિજ્ઞાપિ કરવી. સ વૈ નૈવ રમે અને ક્રીડાર્થમ્ વગેરે પ્રમાણો પણ એમ કહે છે કે જગત્ના પ્રત્યેક પદાર્થ પ્રભુએ પોતાના રમણ માટે સર્જ્યા છે, તે ઉપર સ્વત્વ અને સ્વીયત્વ બુદ્ધિ કરવી નહિ. તે પદાર્થો ઉપર જીવને ‘પોતે અને પોતાનું’ એવી જે અભિમતિ છે, તેનો પરિત્યાગ થવાથી તે સર્વ પદાર્થો ભગવદીય છે એમ જે વિજ્ઞાપન કરવામાં આવે છે તે બ્રહ્મસંબંધ છે:-

(૧૦) લાલુભક કહે છે કે “બ્રહ્મણા સહ સમ્બન્ધઃ સ્વસ્વામિભાવલક્ષણો દેહેન્દ્રિયપ્રાણાન્તઃકરણદારાગારપુત્રાદીનામાત્મનશ્ચ તદીયત્વમિતિ યાવત્ । તસ્ય કરણાત્ ગદ્યસહિતપદ્માક્ષરનિવેદનમન્ત્રસ્યોપદેશેન સ્ફુટીકરણાદિત્યર્થઃ”

બ્રહ્મની સાથે સંબન્ધ થાય તે બ્રહ્મસંબંધ કહેવાય. પ્રભુ સાથે સ્વસ્વામિભાવ સ્થાપન કરવો, અને દેહ, ઈન્દ્રિય, પ્રાણ, અંતઃકરણ દારા, ધર, પુત્રાદિ અને આત્મા પણ ભગવદીય છે. તે (ભગવદીયત્વ) ગદ્ય સહિત પંચાક્ષર નિવેદન મંત્રના ઉપદેશથી સ્ફુટ થાય છે.

(૧૧) શ્રીશાનુવર્તિદીકાકાર કહે છે કે “નિર્દોષં હિ સમં બ્રહ્માહમ્, તસ્મિન્ સમ્બન્ધસ્ય કરણાત્ સાધકતમાત્ સગદ્યપદ્માક્ષરકથનોત્ । અંશત્વેપિ “પરાભિધ્યાનાત્તુ તિરોહિતં તતો હ્યસ્ય બન્ધવિપર્યયો” इति भक्तिमार्गी

યાત્મસમર્પણાપરપર્યાયનિવેદનદ્વારા સેવકત્વકરણાદિત્યર્થઃ ।” પ્રભુ આજ્ઞા કરે છે કે, હું નિર્દોષ અને સર્વસમ બ્રહ્મ છું. મારા વિષે સંબંધ કરવાથી... ભક્તિમાર્ગીય આત્મસમર્પણ અથવા આત્મનિવેદન દ્વારા સેવકત્વ કરાય છે. અર્થાત્ આત્મનિવેદનથી પ્રભુ સાથે સેવ્યસેવકભાવરૂપ સંબંધ સ્થાપન થાય છે.

બ્રહ્મસંબંધ ફલાત્મક શ્રીકૃષ્ણ સાથે થતો હોવાથી ભક્તિમાર્ગીય રીતે તે સાધન છે અને તદ્દ્વારા સંપાદન થતું સર્વ પદાર્થોનું ભગવદીયત્વ અને સેવ્યસેવકત્વ ભાન તેથી જ છે એમ કહી શકાય.

### ઉપાસના કે ભક્તિ

“આત્મા વારે દૃષ્ટ્યઃ શ્રોતવ્યો મન્તવ્યો નિદિધ્યાસિતવ્યઃ” ઇત્યાદિ શ્રુતિમાં ભગવદ્ધર્મ તરીકે દર્શનાદિનું વિધાન છે. તેમજ “આત્મૈવેત્યુપાસીત” આ શ્રુતિ વાક્ય આત્મોપાસનાનું વિધાન કરે છે. જ્ઞાનીઓ ‘દૃષ્ટ્યઃ’ ઇત્યાદિનો ‘જ્ઞાતવ્ય’ એમ અર્થ કરીને “આત્મૈવેત્યુપાસીત” આ વાક્યમાં આત્માને જાણવો એમ અર્થ કરે છે, ભગવાન જાણી શકાય છે, જોય છે એમ પણ સિદ્ધ કરીને ભગવદુપાસના કરે છે. ત્યારે તેમને શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતામાં કહેલું “બહુનાં જન્મનામન્તે જ્ઞાનવાન માં પ્રપદ્યતે” અનેક જન્મો પછી જ્ઞાની મને પ્રાપ્ત કરે છે, આ ફલ પ્રાપ્ત થાય છે, અનેક જન્મો વડે તેમને આત્મસ્ફુર્તિ થાય છે ત્યારે ઘણા અભ્યાસ પછી જીવમાં આનંદાંશનો આવિર્ભાવ થાય ત્યારે સચ્ચિદાનંદ રૂપ ત્રણે અંશનું પ્રાકટ્ય થવાથી “બ્રહ્મૈવ સન્ બ્રહ્માન્નોતિ” ઇત્યાદિ શ્રુતિને અનુસરી બ્રહ્મભૂતતા થવાથી આત્મા તરીકે સાક્ષાત્કાર થાય છે આ જ જ્ઞાનમાર્ગીય મુખ્ય ફલ છે.

### ભક્તિ જ મુખ્ય સાધન અને ફલ છે

સર્વ સાધનોમાં ભક્તિ મુખ્ય સાધન છે. જ્ઞાનમાર્ગમાં જેમને મુક્ત કહ્યા છે, તે પણ આ ભક્તિની ઇચ્છા કરે છે. ભક્તિ ભગવત્કૃપા વડેજ પ્રાપ્ય છે, સાધનાન્તરથી અપ્રાપ્ય છે; જેમ પ્રભુ આનન્દમય છે તેમ ભક્તિ પણ આનન્દમય અને રસરૂપ છે.

મુક્તાત્માઓ પણ ભક્તિની ઇચ્છા ધરાવે છે, તેમને પણ ભક્તિની ઇચ્છા થાય એ જ હેતુ ભક્તિનો ઉત્કર્ષ બતાવવા માટે પર્યાપ્ત છે. કારણકે જ્ઞાનમાર્ગમાં મુક્તાત્મા ત્યારે જ કહેવાય છે કે જ્યારે જીવની સર્વ કામનાઓ લય પામે અને બ્રહ્મભૂત થાય. કામનાઓનો લય થઈ જાય ત્યારે પણ ભક્તિની કામના શેષ રહે છે. ભક્તિની કામના રહેવાની મુક્તત્વમાં દૂષણ નથી પણ ભૂષણ જ છે.

જ્ઞાનમાર્ગીઓ કહે છે કે મુક્તાત્માને કોઈપણ જાતની કામના હોતી જ નથી કારણ કે શ્રુતિમાં કહે છે કે “યદા સર્વે પ્રતીયન્તે કામા યેઽસ્ય હૃદિ સ્થિતાઃ । અથ મર્ત્યોઽમૃતો ભવત્યત્ર બ્રહ્મ સમશ્નુતે ।” જ્યારે જીવના હૃદયમાં સ્થિત થયેલા સર્વ પ્રકારના કામનો લય થાય ત્યારે જ મનુષ્ય અમૃત અર્થાત્ મુક્ત થાય છે અને મુક્તાત્મા જ બ્રહ્મદર્શન કરી શકે છે. આ વાક્યમાં મુક્તાત્માની કામનાનો લય સ્પષ્ટ જણાવ્યો છે. જો કામના - ભક્તિની કામના હોય તોપણ - સ્થિત રહે તો તેને આ શ્રુતિ વાક્ય મુક્ત રહેવાની ના પાડે છે. વળી તમે જેને ભક્તિ કહો છો, તે શું અનુગ્રહ છે કે દયા છે ? જો અનુગ્રહને ભક્તિ કહેવામાં આવતી હોય તો “તમક્રતું પશ્યતિ વીતશોકો ધાતુઃ પ્રસાદાન્મહિમાનમીશમ્” જે વીતશોક હોય તે ધાતાના અનુગ્રહથી ભગવદ્દર્શન કરે છે. આ વાક્યથી અનુગ્રહથી કેવલ ભગવદ્દર્શન થાય છે અને “મોક્ષમિક્ષેઞ્ઞનાર્દનાત્” જનાર્દન ભગવાન પાસેથી મોક્ષની ઇચ્છા કરવી, આ સ્મૃતિવાક્ય મુક્તિને અનુગ્રહસાધ્ય કહે છે. અર્થાત્ દર્શન અને મુક્તિ આ બે જ ફલ અનુગ્રહનાં છે. અને મુક્તાત્માને તે બંને અપ્રાપ્ય નથી. તેથી અનુગ્રહપદમાં મુક્તાત્માને ભક્તિની કામના થવી અસંભવ છે. અને જો ભક્તિનો અર્થ દયા કરવામાં આવે તો દયા એટલે બીજાનું દુઃખ દૂર કરવું, તે પણ સંભવી શકે નહિ, કારણ કે મુક્તાત્માને દયાની જરૂર જ નથી જેનું દુઃખ દૂર થઈ ગયું હોય તે જ મુક્તાત્મા કહેવાય. અર્થાત્ દુઃખના અભાવમાં દયાની ઇચ્છા કોણ કરે ? અને જો તમે ભક્તિનો અર્થ સ્નેહ કરતા હો, તો, તે સ્નેહ મનનો ધર્મ છે. તેથી સ્નેહ ભાવરૂપ થયો. તેને આનંદરૂપ કહી શકાય નહિ. વળી તમને આનન્દપદનો અર્થ સુખ વિવક્ષિત છે કે બ્રહ્મ ? જો આ બંને અર્થ ગ્રહણ કરો તો પણ તેમાં સ્થાયીભાવ ન હોવાથી તે ભક્તિ રસરૂપા કહી શકાય નહિ. બ્રહ્મધર્મ કહો તો ભક્તિમાંએ નિત્યતા હોવી જોઈએ. તે નિત્યતા પણ ભક્તિમાં દેખાતી નથી. ભક્તિ સર્વમાં સર્વકાલે હોતી નથી પણ કોઈમાં કદાચિત્ હોય છે. તેથી તેને નિત્ય કેમ કહેવાય ? “પુનશ્ચ ભૂયાઃસગવત્યનન્તે રતિઃ પ્રસન્નશ્ચ તદાશ્રયેષુ” અનંત ભગવાનમાં અને ભક્તોમાં મારો ફરીથી પ્રેમ થાઓ ઇત્યાદિ પ્રાર્થનાવાક્યોમાં ભક્તિની પુનઃ સંભાવના કહેવામાં આવી છે તે ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે ભક્તિ અનિત્ય છે, તેથીજ તે મુક્તાત્માઓને અભિલષિત નથી, અનુગ્રહથી પ્રાપ્ય નથી, આનંદધર્મ અને રસરૂપ પણ નથી. જ્ઞાનથી જ્ઞાનાદેવ હિ કૈવલ્યમ્ ઇત્યાદિ વાક્યોને અનુસરીને કેવલ્ય-મોક્ષ-પ્રાપ્ત થાય છે. હરિભક્તિની કદાચિત્ અને કવચિત્ સાધનાન્તરમાં ગણનાં થાય, તેને મુખ્ય સાધન અને શ્રેષ્ઠ સાધન કહી શકાય નહિ, તમે જે ભક્તિને મુક્તાત્માઓને

અભિલષિત, અનુગ્રહથી જ પ્રાપ્ય, આનંદધર્મ અને રસરૂપ કહો છો તે સર્વ અસંગત છે. અહીં નીચે મુજબ સમાધાન છે:-

શુદ્ધાદ્વૈતસિદ્ધાન્તમાં ભક્તિને જ મુખ્ય સાધન અને જ્ઞાનાદિને ગોણા કહ્યો છે તે શાસ્ત્રસિદ્ધ છે. કારણ કે ભૈત્રેયીબ્રાહ્મણમાં “યેનાહં નામૃતાસ્યાં કિમહં તેન કુર્યામ્” જે વડે હું મુક્ત થઈ શકતો નથી. તેથી હું શું કરું ? આ વાક્યથી આરંભીને મુક્ત થવા માટે આત્મદર્શનનો “આત્મા વારે દૃષ્ટવ્યઃ” ઇત્યાદિ વાક્યમાં ઉપદેશ કર્યો છે, અને તે (આત્મદર્શનનો) ઉપદેશ કરવા માટે “ન વા અરે પત્યુઃ કામાય પતિઃ પ્રિયો ભવતિ” પતિના માટે પતિપ્રિય નથી પણ આત્મા માટે પતિ પ્રિય છે. ઇત્યાદિ વાક્યોમાં નિરુપાધિ પ્રીતિનો અનેકવાર ઉપદેશ કરીને આત્મદર્શનનો પરિચય કરાવ્યો છે, અને ઉપસંહારમાં “સ્વલ્વમૃતત્ત્વમ્” આ વાક્યથી આત્મવિષયક જ્ઞાનને જ અમૃતત્વે કહેવામાં આવ્યું છે. ત્યાં સ્વપ્રતીતિથી પુત્રાદિની અપેક્ષાએ વધુ પ્રિય આત્મા જ છે એમ સચુક્તિક પ્રતિપાદન કર્યું છે. એમ ઉપક્રમ, ઉપસંહાર અને અભ્યાસવાક્યો વડે આ વાક્યો જીવ બોધક છે એમ કહેવામાં આવે છે; વળી આ સ્થલે આત્મજ્ઞાનાદિનું સર્વ વેદનરૂપ ફલસિદ્ધિ માટે આત્માનું સર્વરૂપત્વ સંભળાય છે, અને સમુદ્રાદિનું દૃષ્ટાન્ત કહીને આત્માને સર્વાધાર કહે છે, જે બીજી શ્રુતિઓમાં પણ આત્માને બ્રહ્મરૂપ કહે છે, તે સર્વ વાક્યો આત્મા (જીવાત્મા) નો ઉત્કર્ષ દર્શાવે છે, કારણ કે જગત્ની ઉત્પત્તિમાં જેમ બ્રહ્મ કારણ છે તેમ જીવનું પણ સહકારી કારણત્વ છે જ. માટે આ સ્થલે આત્મા શબ્દથી જીવ જ ગ્રહણ થાય છે. માયાવાદીની આ યુક્તિનો પરિહાર બ્રહ્મસૂત્રના વાક્યાન્વયાધિકરણ વડે થઈ જાય છે. આ વાક્યાન્વયાધિકરણ બ્રહ્મસૂત્રના પ્રથમાધ્યાયના ચતુર્થપાદનું સપ્તમ અધિકરણ છે. આ વાક્યાન્વયાધિકરણનો અર્થ આ પ્રકારે છે:- પૂર્વોક્ત શ્રુત્યાદિના ઉપક્રમમાં અમૃતત્વ-મોક્ષ-માટે આત્મદર્શન અને તેના સાધનનો ઉપદેશ થાય છે. અમૃતત્વ બ્રહ્મજ્ઞાનથી થાય છે, એમ પણ નિર્ણય કર્યો. તેમાં પ્રમાણ તમેવ વિદિત્વાડતિમૃત્યુમેતિ નાન્યઃ પન્થા વિદ્યતેઽયનાય તેને જાણીને જ અમૃતત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે, અન્ય માર્ગથી નહિ. તેને જાણનાર જ અમૃતત્વને પામે, બીજો માર્ગ નથી. એમ અન્યમાર્ગનો નિષેધ કરતી બ્રહ્મજ્ઞાન પ્રતિપાદિકા શ્રુતિઓ જ છે તેથી આ ભૈત્રેયી બ્રાહ્મણમાં પણ તે જ બ્રહ્મનો આત્મ શબ્દથી પરામર્શ કરીને તેનો દર્શનબોધક વાક્યો સાથે અન્યથ કરવામાં આવ્યો છે; નહિ કે જીવબોધક આત્મ શબ્દ સાથે. અન્યથા પૂર્વોક્ત શ્રુતિઓનો વિરોધ થશે. એજ પ્રકારે ઉપસંહાર વાક્યમાં પણ આત્મ શબ્દનો બ્રહ્મ સાથે જ અન્યથ થાય છે. ઉપક્રમ પ્રબળ હોય

છે, માટે ઉપક્રમને જ અનુસરવું જોઈએ, વળી એ જ પ્રકારે તમેવ વિદિત્વા ઇત્યાદિ વાક્યોનો પણ અન્યથ બ્રહ્મમાં જ થાય છે અને તે જ બ્રહ્મ સ્વરૂપ હોવાથી સાધાર છે. ભૈત્રેયીબ્રાહ્મણસ્થ વાક્યોનો અન્યથ જો જીવ પરત્વે કરવામાં આવે તો નિષ્પ્રયોજક અને અસદુત્કર્ષ બોધક હોવાથી તેનો અન્યથ અઘટિત ગણાય, તેમજ આત્મ શબ્દનો અન્યથ જીવ સાથે ન કરતાં પ્રિયત્વબોધક શબ્દોનો અન્યથ જ જીવ સાથે થાય એમ પણ શંકા કરવી નહિ. આનન્દમાં આનન્દજનક જ પ્રિયત્વે પ્રતીત થાય છે. તેથી આનન્દસ્વરૂપ આનન્દજનકનો વિચાર કરતાં “આનન્દો બ્રહ્મેતિ વ્યજાનાત્” “આનન્દાદ્વયેવ સ્વલ્વિમાનિ ભૂતાનિ જાયન્તે” “યો વૈ ભૂમા તત્સુખમ્, નાત્પે સુખમસ્તિ” ઇત્યાદિ વાક્યોમાં બ્રહ્મનું આનંદસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન તથા જીવને આનંદમય બ્રહ્મનું કાર્ય કહેવામાં આવે છે, તેમ જ “સર્વેવાત્મનો વ્યુદ્યરન્તિ” ઇત્યાદિ શ્રુતિમાં આત્મામાંથી જીવનું અંશત્વે વ્યુદ્યરણ પ્રતિપાદન કર્યું છે, જીવ અંશ છે એમ સિદ્ધ થવાથી જીવને જે પરમપ્રિયત્વે કહેવામાં આવે છે તે બ્રહ્મગત પ્રિયત્વ છે એમ સમજવું. અને તેમ થવાનું કારણ એજ કે બ્રહ્મ પોતે અવિષય હોવાથી અને તેનો અંશ જીવ તેની નિકટ હોવાથી જીવમાં તે સવિષય હોવાથી પ્રિયત્વ ભાસે છે. તેમજ “એષ હ્યવાનન્દયાતિ” આ જ આનંદ પમાડે છે. આ વાક્ય બ્રહ્મને જ આનંદજનક છે એમ પ્રતિપાદન કરે છે. અન્યત્ર પ્રિયત્વનો અધ્યાસ છે, અને તે પણ બ્રહ્મનો સંબંધ થવાથી જ. માટે ભૈત્રેયી બ્રાહ્મણના વાક્યોનો અન્યથ પણ બ્રહ્મમાં જ થાય છે, જીવમાં નહિ. તેથી અભ્યાસ (વારંવાર ઉપદેશ) પણ બ્રહ્મનો જ છે, એ પ્રકારે સાક્ષાત્ તથા પરંપરા સંબંધે આત્મવાચક શબ્દોનો અન્યથ બ્રહ્મમાં જ થાય છે, એમ વાક્યાન્વયાધિકરણમાં સિદ્ધાન્ત છે.

### પ્રિયત્વજ સ્નેહ છે

આ ભૈત્રેયી બ્રાહ્મણના વાક્યોમાં જે પ્રિયત્વ કહેવામાં આવ્યું છે તે જ સ્નેહ શબ્દ વાચ્ય છે. કોશમાં પણ પ્રેમનો જ પર્યાય વાચક શબ્દ સ્નેહ છે અને આ સ્નેહ જ્યારે પ્રભુ સાથે થાય ત્યારે તે ભક્તિ કહેવાય છે. અર્થાત્ ભગવદ્વિષયક સ્નેહને જ ભક્તિ કહે છે. નારદપંચરાત્રમાં ભક્તિનું લક્ષણ નીચે પ્રમાણે છે :-

માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વસ્તુ સુદઢઃ સર્વતોઽધિકઃ ।

સ્નેહો ભક્તિરિતિ પ્રોક્તસ્તયા મુક્તિર્ન ચાન્યથા ॥

માહાત્મ્યજ્ઞાન પૂર્વક, સુદઢ અને સર્વથી અધિક જે સ્નેહ છે તે જ ભક્તિ કહેવાય છે. તે વડે જ મુક્તિ થાય છે, અન્યથા નહિ. માહાત્મ્યજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ

પણ વિચારવા લાયક છે. મહાન્ (બૃહત્વાદ્યબ્રહ્મ) બ્રહ્મ છે, તત્સંબંધી જ્ઞાન. અર્થાત્ બ્રહ્મ જ્ઞાનપૂર્વક કે સર્વાત્મક ભાવપૂર્વક સુદૃઢ કદી પણ તૂટે નહિ તેવો અને સર્વથી અધિક સર્વોત્કૃષ્ટ સ્નેહ હોય તો જ તેને ભક્તિ કહી શકાય. “સુદૃઢ” શબ્દ બ્રહ્મ ધર્મત્વનો બોધ કરાવે છે. અને “સર્વતઃ અધિક” શબ્દ ભક્તિનું નિરુપાધિત્વ જણાવે છે અર્થાત્ બ્રહ્મજ્ઞાન કે સર્વાત્મભાવ સાથે બ્રહ્મ ધર્મત્વબોધક સુદૃઢ જે કદી પણ તૂટે નહિ (નિત્ય હોય) અને સોપાધિક ન હોય તેવો સ્નેહ ભક્તિ કહેવાય છે. તેમ જ શાંતિસૂત્ર ભક્તિસૂત્રમાં તેને ઈશ્વરમાં અનુરક્તિ કહે છે. ઈશ્વરમાં જે અનુરક્તિ થાય છે તે પરાભક્તિ કહેવાય છે. એ જ તાત્પર્ય શાંતિસૂત્ર મહર્ષિપ્રણીત ભક્તિસૂત્રોમાં “સા પરાનુરક્તિરીશ્વરે” આ સૂત્રમાં છે. આ સ્થલે પણ “પર” પદ નિરુપાધિત્વનો જ બોધ કરાવે છે. આટલા પ્રમાણથી સિદ્ધ થાય છે કે ભક્તિ નિત્ય અને નિરુપાધિક છે.

“દાનવ્રતતપોહોમજપસ્વાધ્યાયસંયમૈઃ । શ્રેયોભિર્વિવેચેન્શાન્યૈઃ કૃષ્ણે ભક્તિર્હિ સાધ્યતે” દાન વ્રત, તપ, હોમ, જપ, સ્વાધ્યાય, સંયમ તથા બીજાં શ્રેયસ્પાળા કર્મો વડે શ્રીકૃષ્ણમાં ભક્તિ સિદ્ધ થાય છે. ઈત્યાદિ સાધન વાક્યો તથા “પુનશ્ચ ભૂયાદ્ભગવત્યનન્તે રતિઃ” ફરીથી ભગવાન્ અનન્ત શ્રીકૃષ્ણમાં પ્રેમ થાઓ ઈત્યાદિ પ્રાર્થના વાક્યો અને શ્રુતિમાં ઉક્ત “ભક્તિરસ્ય ભજનં તદિહામુત્રફલભોગનૈરાશ્યેના-સ્મિન્મનઃ કલ્પનમ્” ભગવાન્ શ્રીકૃષ્ણનું ભજન, એહિક ફલભોગથી વિરક્ત થઈ પ્રભુમાં મન લગાડવું એ જ ભક્તિ છે. ઈત્યાદિ લક્ષણવાક્યો ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે ભક્તિ સાધી શકાય છે, ફરીથી મેળવી શકાય છે અને પ્રભુમાં મન કલ્પિત એ જ ભક્તિ છે; તો તેને અનિત્ય સિદ્ધ કરવાથી પૂર્વોક્ત વાક્યોનો વિરોધ આવે છે- એમ શંકા કરવી નહિ. કારણ કે યદ્યપિ આ વાક્યો ભક્તિને અનિત્ય સાબીત કરે છે. તથાપિ તે પૂર્વોક્ત વાક્યોનો વિરોધ કરી શકતા નથી કારણ કે “જ્ઞાનં પરમગુહ્યં મે યદ્વિજ્ઞાનસમન્વિતમ્ । સરહસ્યં તદજ્ઞંચ ગૃહાણ ગદિતં મયા” માફ પરમ ગુહ્ય વિજ્ઞાન સહિત જ્ઞાન, સાંગ અને રહસ્ય સાથે મેં કથન કરેલું છે, તું તે ગ્રહણ કર. આ ગીતાના વાક્યમાં જણાવેલા ભગવદ્જ્ઞાનની પેઠે તેમ જ “યુક્તં ભગૈઃ સ્વૈરિતરત્ર ઘાઙ્ઘૃવૈઃ” ઈત્યાદિ વાક્યોક્ત ભગવદ્દત્ત ઐશ્વર્યવત્ ભગવદ્વિચારિત આનુપૂર્વી વડે ભગવત્સમાગમન વગેરેનું પ્રતિપાદન છે, તેથી ભક્તિની નિત્યતામાં બાધ આવતો નથી. પ્રાર્થનાવાક્યમાં ‘પુનઃ’ પદ આવ્યું છે. તે વિધમાન પદાર્થનો એકની સાથે રહેલો સંબંધ નિવૃત્ત થાય અને પછી જો કાલાન્તરે તેની જ સાથે જોડાય તો ‘પુનઃ’ પદનો પ્રયોગ તે અર્થમાં કરવામાં આવે છે. જે ‘પુનરાગમન’

આ સ્થલે ‘પુનઃ’ પદનો પ્રયોગ છે. તેથી કાંઈ આવનારનો નાશ થઈ ગયો હતો એમ કલ્પી શકાતું નથી, માટે જ પ્રાર્થના વાક્ય વડે અનિત્યતા સિદ્ધ ન થવાથી કાંઈપણ વિરોધ નથી.

વળી જેમ “સ માનસીન આત્મા” ઈત્યાદિ વાક્યોમાં ભગવાનનો મનમાં આવિર્ભાવ થવાથી માનસીન કહેવામાં આવે છે. તેમ જ ભગવત્સંબંધ નિકટ હોવાથી ભક્તિનો પ્રાદુર્ભાવ મનમાં થાય એટલે તે મનોધર્મ કહેવાય. જેમ અતિપ્રજ્વલિત અગ્નિથી થોડા અંતર ઉપર કોઈ પદાર્થ હોય અને તે પણ નેકટ્યથી ઉષ્ણ થઈ જાય તેથી તે ઉષ્ણ સ્પર્શવાનું કહેવાય છે અને ઉષ્ણ સ્પર્શનું તારતમ્ય પણ સમજી શકાય છે. તેમજ ભગવાનના નેકટ્યનું તારતમ્ય સમજવાથી ભક્તિના અનુભવનું તારતમ્ય પણ સમજી શકાય છે. તેથી તે ‘મનઃકલ્પન’ મનોધર્મ છે. એમ લક્ષણ શ્રુતિના વાક્યથી મનોધર્મત્વ અનિત્યતાપત્તિ થતી નથી. વળી “સ્તો વૈ સઃ” ઈત્યાદિ શ્રુતિમાં ભગવાનનું સ્વરૂપ રસરૂપ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. પણ તે રસશાસ્ત્રોક્ત પ્રણાલિથી જ્યારે હૃદયમાં આવિર્ભૂત થાય ત્યારે જ રસત્વે અનુભવી શકાય. અન્યથા નહિ. તેમજ ભક્તિ પણ રસશાસ્ત્રોક્ત પ્રણાલિથી હૃદયમાં સ્થાયી ભાવત્વે આવિર્ભાવ પામે ત્યારે જ રસત્વે અનુભવ થાય તેથી તેની રસરૂપતામાં કાંઈ વિરોધ આવતો નથી, આ ભક્તિનો આવિર્ભાવ પણ અનુગ્રહવડે જ થાય છે. “ભગવાન્ ભજતાં મુકુન્દો મુક્તિં દદાતિકર્ત્ત્વિત્સ ન ભક્તિયોગમ્” ભગવાન્ મુકુન્દ ભક્તોને મુક્તિ આપે પણ કદી ભક્તિયોગ આપતા નથી. આ વાક્યથી ભક્તિ અતિ દુર્લભ છે એમ સિદ્ધ થાય છે, “ભગવાન્ કદી ભક્તિ આપતા નથી,” એમ કહેવાથી તે કોઈને કદીપણ આપતા જ નથી એમ શંકા કરવી નહિ. “કૃષિરુત્કૃષ્ટવચનો નશ્વ સદ્ભક્તિવાચકઃ । અશ્વાપિ દાતૃવચનસ્તેન કૃષ્ણં વિદુર્બુધાઃ ।” કૃષ્ણ એટલે ઉત્કૃષ્ટ, ન એટલે સદ્ભક્તિ અને અ એટલે તેના દાતા કહેવાય છે, તેથી ઉત્કૃષ્ટ સદ્ભક્તિના દાતા શ્રીકૃષ્ણ છે એમ પંડિતો જાણે છે, આ વાક્યમાં ભક્તિનું દાન પ્રભુ કરે છે એમ પણ કહ્યું છે. આથી જ ભક્તિ અનુગ્રહ વડે જ પ્રાપ્ય છે એમ નિશ્ચય છે.

અનુગ્રહ એટલે ફલદિત્સા અથવા બીજી કોઈ પ્રકારની ઈચ્છા એમ પણ કહી શકાય નહિ, “યસ્યાનુગ્રહમિચ્છામિ” જેનો અનુગ્રહ ઈચ્છુ છું, ઈત્યાદિ વાક્યમાં અનુગ્રહનો ઈચ્છા વિષયત્વે ઉદ્દેશ કર્યો છે, અને ફલદિત્સા ઈચ્છા વિષયત્વે ગ્રહણ કરી શકતી નથી, એમ ‘ભક્તિહંસ’ માં શ્રીગુણાંઈએ પ્રતિપાદન કર્યું છે, દયા પણ આનો જ પર્યાયવાચક શબ્દ છે, માટે જ “સાલોક્યસાર્હિસામીપ્યસારુપ્યૈ

કત્વમપ્યુત । દીયમાનં ન ગૃહ્ણન્તિ વિના મત્સેવનં જનાઃ ।” સાલોક્ય, સાષ્ટિ, સામીપ્ય અને સાશ્વત્ય વગેરે મુક્તિ આપવા છતાં પણ ભક્તો મારી સેવા વિના અન્ય કશાની ચે ઈચ્છા કરતા નથી, તેમ જ “મત્કામનયા પ્રતીતં ચ સાલોક્યા દિચતુષ્ટયમ્ । નેષ્ઠન્તિ સેવયા પૂર્ણાઃ કુતોડ્યત્કાલવિપ્લુતમ્ ।” ઇત્યાદિ વાક્યોમાં એ પ્રભુ ભક્તોને મુક્તિ આપે છે છતાં તે તો સેવા જ માગે છે એમ કહેવામાં આવ્યું છે, આ ઉપરથી જાણી શકાય છે કે મુક્તિની અપેક્ષાએ ભક્તિ શ્રેષ્ઠ છે; તેથી તે મુક્તાત્માઓને પણ અપેક્ષિત હોય તેમાં કંઈ પણ સંદેહ જેવું નથી શ્રીમદ્ભાગવતમાં કહ્યું છે કે: “આત્મારામશ્ચ મુનયો નિર્ગન્થા અપ્યુરુક્રમે કુર્વન્ત્યહેતુર્કીં ભક્તિમ્” મુનિઓ કે જે આત્મારામ છે મુક્તાત્માઓ છે તે પણ ઉરુક્રમ ભગવાનમાં અહેતુકી ભક્તિ કરે છે. આ વાક્યથી પણ મુક્તાત્માઓને ભક્તિની અભિલાષા હોય છે, એમ સિદ્ધ થાય છે. તેથી પૂર્વે કહેલી “મયા સર્વે પ્રતીયન્તે” ઇત્યાદિ શ્રુતિનો વિરોધ પ્રાપ્ત થતો નથી. તે સ્થલે આત્મકામથી અતિરિક્ત સર્વ કામનો લય અપેક્ષિત છે. અતઃ શ્રુતિ વિરોધની શંકા નિર્મૂલ છે. કારણ કે ભક્તિ આત્મધર્મ હોવાથી અને આત્મધર્મ પ્રાપ્તિ હોવાથી તેની કામનાથી આત્મકામનો અતિરેક થતો નથી.

### ભગવદ્લીલાનું નિત્યત્વ

હવે બ્રહ્મના ધર્મો જેમ બ્રહ્મમાં હોવાથી નિત્ય છે, તેમજ પ્રભુની ક્રિયાત્મક લીલા ગોવર્ધનોદ્ધરણાદિ અને લીલાસામગ્રી પર્વત, પશુ, પક્ષી વગેરેની નિત્યતાનો વિચાર કરાય છે. કારણ કે કેટલાક આધુનિકો પ્રભુની લીલાસામગ્રીની નિત્યતા સ્વીકારતાં અચકાચ છે. વૈદિક સિદ્ધાન્તોનો પૂર્ણ પરિચય ન હોવાથી તેમજ વિચાર સરણીમાં ભેદ હોવાથી તેઓ લીલા સામગ્રીની નિત્યતા અને ભગવત્સેવા તથા પ્રચલિત સેવા પ્રણાલિકાનો પરિહાસ કરતા દેખવામાં આવે છે. પણ વેદમાં એ ભગવાનની લીલાની નિત્યતા દર્શાવી છે. સામ્પ્રદાયિક ગ્રંથોમાં લીલા નિત્યત્વના વિષયમાં અનેક સ્થલે વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. શ્રીમદ્ભાગવતમાં જે સમયે શ્રીશુકદેવજી પરીક્ષિત રાજાને કથા સંભળાવવાનો ઉપક્રમ કરે છે તે સમયે “યદુવરપરિષત્તૈવૈદોર્ભિરસ્યન્નઘર્મમ્” “વ્રજપુરવનિતાનાં વર્દ્યન્ કામદેવમ્” ઇત્યાદિ વાક્યોમાં ક્રિયાત્મક લીલાઓને લક્ષ્ય કરીને વર્તમાનકાલિક પ્રયોગ કરે છે.

યદ્યપિ વ્યાકરણના નિયમાનુસાર વર્તમાનવાચક શબ્દોનો ઉપયોગ ભૂત અને ભવિષ્યમાં પણ સ્થલ વિશેષમાં થાય છે. લોકમાં ‘આ હું જાણું છું.’ વગેરે

વર્તમાનકાલિક પ્રયોગો જોવામાં આવે છે. તેમજ વર્દ્યન્ વગેરે વર્તમાનકાલિક પ્રયોગોથી પરીક્ષિતના સમયમાં શ્રીકૃષ્ણની લીલાઓની સત્તા સ્થિર કરી શકાતી નથી, તથાપિ આવા સ્થલોમાં વર્તમાનકાલિક પ્રયોગો મુખ્યાર્થમાં માની શકાતા નથી. ગોણાર્થમાં છે અને મુખ્યાર્થનો પરિત્યાગ કરી ગોણા અર્થમાં વર્તમાનકાલિક શબ્દપ્રયોગ અસમર્થ છે. વળી કદાચ એમ કહેવામાં આવે કે ‘વક્તાનું જે તરફ પ્રધાન લક્ષ્ય હોય તેના વાચક શબ્દોમાં ગોણાતાનો સ્વીકાર કરવો અવશ્ય અનુચિત છે, પરંતુ જે શબ્દ પ્રધાનના પ્રશંસક કે ઉપલક્ષક છે, તેમાં ગોણાતાનો સ્વીકાર કરવો અનુચિત નથી; તે પણ અયોગ્ય છે. કેમકે “લોહિતોષ્ણીષાઃ પ્રચરન્તિ” આ શ્રુતિ વાક્યમાં પ્રચરન્તિ ક્રિયાપદનો અર્થ પ્રચાર કરે છે. આ જ મુખ્ય અને વિદ્યેય અર્થ જણાય છે, પરંતુ તેનું પ્રથમ વિધાન થઈ જવાથી તે પદ અપૂર્વતાશૂન્ય હોવાથી પ્રધાન નથી; કિન્તુ વિશેષણો જે લોહિતોષ્ણીષાઃ છે, તેજ અપૂર્વ હોવાથી પ્રધાન માનવામાં આવે છે, તેજ રીતે “જયતિ જનનિવાસઃ” ઇત્યાદિ વાક્યોક્ત શ્રીકૃષ્ણ સર્વદા વર્તમાન છે, એમ જ શ્રીશુકાચાર્યનો આશય જણાય છે; પરંતુ આ પૂર્વ પ્રમાણોથી સિદ્ધ જ થયેલું હોવાથી અપૂર્વતાશૂન્ય છે, અને તેથી તેને પ્રધાન માની શકાય તેમ નથી. કિન્તુ અસ્યન્નઘર્મમ્, વર્ધ્યન્ કામદેવમ્ ઇત્યાદિ વિશેષણાંશ - જેનો અર્થ પરીક્ષિતના સમયમાં ચે જરાસંઘયુદ્ધ અને રાસોત્સવ વગેરે લીલાઓ પ્રભુ કરે છે એમ થાય છે એ જ અપૂર્વ હોવાથી મુખ્ય છે. તેથી તેમાં ગોણા વર્તમાનકાલિક અર્થ માનવો તદ્દન અયોગ્ય છે.

### ગુણ કર્મ અને નામ પણ નિત્ય છે

વળી દશમસ્કંધમાં નામકરણ સંસ્કારના પ્રસંગમાં “બહુનિ સન્તિ નામાનિ રૂપાણિ ચ સુતસ્ય તે” આ શ્લોકમાં ગર્ગાચાર્યજી શ્રીનંદરાયજીને કહે છે કે તમારા પુત્રનાં અનેક નામ અને રૂપો છે, તે સર્વ હું જાણું છું, લોકો જાણતા નથી. આ વાક્યમાં પણ લીલા સંબંધી રૂપ, નામ, વગેરેની નિત્યતાનું વર્ણન છે, કેમકે ભગવાન જે ગુણ, કર્મનો પ્રકાશ કરવા માટે નામ પ્રકટ કરે છે, તે જ નામ રૂપોને આ વાક્યમાં ગુણકર્માનુરૂપ કહ્યા છે. જેમ ગોવર્ધન ધારણ કરવાથી પ્રભુ ગોવર્ધનોદ્ધરણ કહેવાયા તેમ જ રામ, વામન વગેરે નામ પણ ગુણકર્મને અનુસરીને જ કહેવામાં આવ્યા છે. ક્રિયાત્મક અને લીલાસંબંધી પ્રત્યેક પદાર્થ નિત્ય હોય તો જ ગર્ગાચાર્ય સન્તિ આ વર્તમાનકાલિક ક્રિયાપદનો ઉપયોગ કરી શકે. ગર્ગાચાર્ય ત્રિકાલજ્ઞ છે. તેથી તેમના વચનો મિથ્યા નથી. પ્રભુની ક્રિયાત્મક લીલા અને લીલા



સંબંધી સર્વ પદાર્થો નિત્ય છે. લીલા અને તત્સંબંધી પદાર્થોનો સંબંધ જેમ સ્વરૂપ સાથે છે તેમજ નામની સાથે પણ છે. ભગવાન નિત્ય હોવાથી ભગવાનનાં સ્વરૂપો અને તે સ્વરૂપો વડે થતી લીલાઓ પણ નિત્ય જ છે. લોકમાં જે નામ છે, તે નામ નથી પણ નામાભાસ છે. તે નામ કેવલ રૂઢિથી અર્થજ્ઞાન કરાવે છે. પ્રભુના નામ યોગરૂઢ છે.

### વેદમાં લીલાનું સ્વરૂપ

બ્રહ્મની નિત્યતાનું વર્ણન અનેક શ્રુતિઓમાં આવે છે. પ્રભુની જે લીલા અન્ય નિરપેક્ષ છે, જેમાં પ્રવિષ્ટ ભક્તોની અપેક્ષા રહેતી નથી તેનું વર્ણન “તદેજતિ તન્નૈજતિ” ઇત્યાદિ શ્રુતિમાં કરવામાં આવ્યું છે. એજતિ અને નૈજતિ આ બંને વર્તમાનકાલિક ક્રિયાપદો છે. તેમાં પ્રથમનો અર્થ કમ્પાયમાન થવું અને દ્વિતીયનો અર્થ કમ્પાયમાન ન થવું એમ થાય છે. આ વર્તમાનાર્થક ક્રિયાપદો ઉપરથી જાણી શકાય છે કે કમ્પનક્રિયા તેનો અભાવ અને તેનું આધારભૂત બ્રહ્મસ્વરૂપ નિત્ય છે. સર્વદા સ્થિત રહે છે.

વળી પ્રભુની જે અન્ય સાપેક્ષ લીલા છે, જેમાં પ્રજાભક્તોની અપેક્ષા રહે છે, તેનું વર્ણન નીચેનાં મંત્રમાં આવે છે.

“વિષ્ણોઃ કર્માણિ પશ્યત, યતો વ્રતાનિ પસ્પશો ઇન્દ્રસ્ય યુજ્યઃ સઃ” ।

વિષ્ણુનાં કર્મો-યશોદાસ્તનપાન, ગોપાંગનાવિહાર, ઇત્યાદિ જુઓ. શ્રુતિઓ આ સમયે પણ પ્રભુની લીલા જોવાનો ઉપદેશ કરે છે, તે ઉપરથી પ્રભુની અન્યસાપેક્ષ લીલા પણ નિત્ય છે એમ સિદ્ધ થાય છે.

“જજ્ઞાન એવ વ્યવાઘત સ્પૃઘઃ પ્રાપશ્યદ્દીરો અભિપૌસ્યં રણમ્ ।

અવૃશ્વદદ્રિમવસઃ સૃજદસૃદસ્તન્નન્નાકં સ્વપયા પૃથુમ્ ॥”

જેણે પ્રકટ થતાં પૂતના, તૃણાવર્ત વગેરે દેત્યોનો નાશ કર્યો અને પછી મથુરા દ્વારકા વગેરે સ્થાનોમાં જરાસંઘ, શાલ્ય, વગેરે દેત્યોની સાથે યુદ્ધ કર્યું અને ઈંદ્ર કુપિત થઈને ગોકુલના વિનાશ માટે વૃષ્ટિ કરી ત્યારે ગોકુલનું રક્ષણ કરવા નિજ ઇચ્છાથી ગોવર્ધનગિરિને ઉપાડીને વિશાલ આકાશ આરુઢાદિત કર્યું. આ શ્રુતિમાં યદ્યપિ કોઈ શબ્દ નિત્યતાનો વાચક નથી. તથાપિ વેદ અને વેદાર્થ નિત્ય છે એમ વ્યાસસૂત્રીય સિદ્ધાન્ત હોવાથી વેદમાં વર્ણન કરેલી ભગવદ્લીલા પણ નિત્ય છે. તેમજ વજ્રં ચ વિષ્ણુઃ સચિવાનપોર્ણુતે ઇત્યાદિ વેદમંત્રોમાં વર્તમાનકાલિક ક્રિયાપદો આવે છે તે ઉપરથી લીલાની નિત્યતા સિદ્ધ થાય છે.

### લીલા સ્થાનની નિત્યતા

લીલાપરિકરની નિત્યતાનું વર્ણન અનેક શ્રુતિઓમાં મળે છે. આ સ્થલે ઉપર જણાવેલી શ્રુતિઓ સ્થાલીપુલાક ન્યાયથી ટાંકવામાં આવી છે. ઋગ્વેદસંહિતામાં ગોકુલનું વર્ણન નીચે જણાવેલી શ્રુતિમાં આવે છે.

“તા વાં વાસ્તૂન્યુષ્મસિ ગમધ્યૈ યત્ર ગાવો ભૂરિશ્રુજ્ઞાઃ અયાસઃ ।

અત્રાહ તદુરુગાયસ્ય વૃષ્ણઃ પરમં પદમવભાતિ ભૂરિ ॥”

અમે ત્યાંની વસ્તુઓ મેળવવાની ઇચ્છા કરીએ છીએ કે જ્યાં લાંબા શીંગડાવાળી સુંદર ગાયો છે, અને ગોપીઓના મનોરથોને પૂર્ણ કરવાવાળા ભગવાન વિષ્ણુના વ્યાપક પરમ પદ (સ્થાન) ની શોભા આ સમયે પૃથ્વી પર દેખાય છે.

આ શ્રુતિમાં શ્રીમદ્ગોકુલને વ્યાપક અને વિષ્ણુનું પરમ પદ કહ્યું છે. તેમ જ “અવભાતિ” આ વર્તમાનકાલિક ક્રિયાપદ દ્વારા શોભા વર્ણવી છે, તે ઉપરથી શ્રીમદ્ગોકુલની નિત્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આજ વાર્તાનું સમર્થન બીજો મંત્ર પણ કરે છે. કૃષ્ણાયજુર્વેદની સંહિતામાં અને ઋગ્વેદ તથા શુક્લ યજુર્વેદમાં આ મંત્ર આવે છે :-

“તદ્વિષ્ણોઃ પરમં પદં સદા પશ્યન્તિ સૂર્યઃ ।”

ભક્તો વિષ્ણુના પરમપદને સર્વદા જુએ છે. આ વાક્યથી પણ શ્રીમદ્ગોકુલની નિત્યતા જ વર્ણવે છે.

### લીલા સ્થાન ક્યાં છે ?

તા વાં વાસ્તૂનિ અને તદ્વિષ્ણોઃ વગેરે શ્રુતિઓમાં શ્રીમદ્ગોકુલની નિત્યતા સિદ્ધ થાય છે. ભક્તજનો શ્રીમદ્ગોકુલને કેવી રીતે જુએ છે ? આ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં તદ્વિષ્ણોઃ આ મંત્રનો ઉત્તરાર્ધ અત્યંત ઉપયોગી છે. ઉત્તરાર્ધમાં જણાવ્યું છે કે દિવીવ ચક્ષુરાતતમ્ આ વાક્યમાંથી પ્રથમ દષ્ટાંત દિવીવ છે. અર્થાત્ જેમ સ્વર્ગ સુખમય છે તેમ શ્રીમદ્ગોકુલ પણ સુખમય છે. ત્યાં રહેતા નિત્યલીલા પ્રવિષ્ટ ભક્તોનો દુઃખ સાથે કાંઈ પણ સંબંધ નથી. દ્વિતીય દષ્ટાંત ચક્ષુરિવ છે, તેનો અર્થ એમ થાય છે કે જેમ દિવ્ય-જ્ઞાન-સંપન્ન યોગીઓ વિના અન્ય કોઈને નેત્ર દષ્ટિગોચર થતું નથી. અને જે ગોલોકમાં રહે છે તેની પણ ‘નેત્ર’ સંજ્ઞા વડે પ્રસિદ્ધિ કરે છે. તેમ જ શ્રીમદ્ગોકુલ પણ જે ભક્તો પર પ્રભુનો પૂર્ણ અનુગ્રહ હોય તે જ તેના આર્થિદેવિક સ્વરૂપને જોઈ શકે અને જે ભૂસ્થાનમાં તે (ગોકુલ) સ્થિત છે તેની પણ ગોકુલત્વે પ્રસિદ્ધિ કરે છે. અને તૃતીય દષ્ટાંત આતત્તં ચક્ષુરિવ આ વાક્યમાં બતાવ્યું છે કે જેમ નેત્રેન્દ્રિય તેજસ છે પણ તેજના ગુણ રૂપ સ્પર્શ વગેરે

તેમાં અપ્રકટ છે, તિરોહિત છે, તેથી નેત્રેન્દ્રિય અન્ધકારમાં પ્રકટ થઈને નિજ તેજસત્ત્વનું જ્ઞાન કરાવવામાં અસમર્થ છે. તેમજ શ્રીમદ્ગોકુલ પણ આનન્દમય, અલૌકિક છે; પરંતુ પ્રભુની ઈચ્છાથી પ્રચ્છન્ન પ્રભાવવાળું રહે છે. તેથી ત્યાં રહેતા લોકોમાં યે કામ, ક્રોધ, લોભ, મોહ વગેરે દોષો જોવામાં આવે છે. વસ્તુતઃ દોષ નથી. આ પ્રકારે ત્રણે દષ્ટાન્તો બંધ બેસતાં આવે છે. અને તે ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે લીલાસ્થાન, મૃત્યુલોક, પાતાલલોક અને સ્વર્ગાદિલોકોની પેઠે નીચે કે ઉપર નથી પણ અહિં જ વિરાજમાન છે.

### લીલા સ્થાન અને લીલા પ્રવિષ્ટ ભક્તો બ્રહ્માત્મક છે

લીલા સ્થાન જડ નથી. “एतत्सत्यं ब्रह्मपुरम्” આ શ્રુતિ બ્રહ્મપુરનું વર્ણન કરે છે. આ બ્રહ્મપુર સત્ય છે. ત્રિકાલાબાધિત છે. અને તેમાં સર્વ કામો સમાહિત છે એમ પણ અસ્મિન્ કામા સમાહિતાઃ આ શ્રુત્યંશ કહે છે. તેમજ एष आत्माऽपहतपाप्मा આ બ્રહ્મપુર નિષ્પાપ આત્મા છે. એમ પણ અગ્નિમ શ્રુતિમાં કહ્યું છે. આત્મપદના પ્રયોગથી જાણી શકાય છે કે લીલા સ્થાન જડ કે અનાત્મ નથી. દહરં પુંડરીકં વેશ્મ દહરોઽસ્મિન્નન્તરાઽઽકાશઃ આ શ્રુતિનો અંશ લીલા સંબંધી જે પુંડરીકવેશ (ભક્તનું હૃદય કમલ) અને તદંતર્ગત આકાશને (પરમવ્યોમ) દહર કહે છે. તેને જ ભગવાન્ વેદવ્યાસ “दहर उत्तरेभ्यः” આ સૂત્રવડે બ્રહ્મ કહે છે. અને બૃહદ્ભામન પુરાણમાં બ્રહ્મ ભૃગુસંવાદમાં પણ કહે છે કે-

“ब्रह्मेति पठ्यतेऽस्माभिर्यद्रूप निर्गुणं परम् ।

वाङ्मनोगोचरातीतं ततो न ज्ञायते तु तत् ॥

आनन्दमात्रमिति यद्वदन्ति ह पुराविदः ।

तद्रूपं दर्शयास्माकं यदि देवो यरो हि नः ॥”

શ્રુતિઓ પ્રભુ પ્રત્યે કહે છે કે “જો આપ અમને વર આપવાની ઈચ્છા કરો છો તો દયા કરીને આપના તે સ્વરૂપનું દર્શન કરાવો કે જેને અમે મન અને વાણીથી પર તથા નિર્ગુણ કહીએ છીએ. જેને પ્રાચીન વિદ્વાનો આનન્દમય કહે છે.” પ્રભુએ આ પ્રાર્થના સાંભળીને યત્ર વૃન્દાક્ષનં નામ ઈત્યાદિ અગ્નિમ સ્લોકોમાં વર્ણિત, વૃંદાવન, ગોવર્ધન શ્રીયમુનાજી ઈત્યાદિ લીલા પરિકર સમેત નિજ સ્વરૂપ બતાવ્યું છે. જો નિત્યલીલા પરિકર બ્રહ્મસ્વરૂપ ન હોય તો બ્રહ્મદર્શનની ઈચ્છાએ પ્રાર્થના કરતી શ્રુતિઓ લીલા પરિકર સમેત દર્શન કરવાની ઈચ્છા પ્રગટ ન કરત. અને આ ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે ભગવાન્ની લીલા, લીલાપરિકરો અને ભક્તજનો સર્વજ બ્રહ્માત્મક છે. ઇતિશમ્.

સર્વવિદ્યાનિધાન-આશુકવીશ્વર-શતાવધાની-વેદાન્તમહાધાર્ય-ભારતમાર્તણ્ડ-  
શ્રીગોવર્ધનશર્મા (શ્રીગદ્ગુલાલજી) વિરચિતઃ

## સત્સિદ્ધાન્તમાર્તણ્ડઃ

અનુવાદ - શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રી, મી.શા.વે.વિ. M.R.A.S.

શ્રીમદ્વાલમુકુન્દમિન્દુવદનં વૃન્દાવનાનન્દિનમ્

વન્દે સુન્દરમેકમેવ ન પરાન્નિન્દામિ વૃન્દારકાન્ ।

વર્તન્તામચિરન્તનાદવિપદોઽનન્તાઽનન્તાતલે

મન્તું તે ગણયન્તુ માઽયમિતરાન્મૂર્ધા ન નન્તું ક્ષમઃ ॥૧॥

ચન્દ્ર સમાન મુખવાળા, વૃંદાવનને એટલે ત્યાં રહેનાર સ્થાવર જડ્ગમાત્મક અનન્ય ભક્તોને આનન્દ દેનાર એવા, સુન્દર (મનોહર) એકજ શ્રીમદ્ બાલમુકુન્દ પરમાત્માને જ હું વન્દુ છું. (પરંતુ દુરાગ્રહી જનોની પેઠે) હું બીજા દેવતાઓની નિન્દા કરતો નથી. ભૂતલ ઉપર અચિરન્તન (પુરાણપુરુષ પરમાત્માની અપેક્ષાથી અર્વાચીન) એવા અનન્ત દેવતાઓ ભલે બિરાજે. તેઓ મારો અપરાધ ગણે નહિ, કેમકે આ મારું મસ્તક એક પરાત્પર પરમાત્મા શ્રીકૃષ્ણને નમવા માટે અર્પણ કરી ચૂક્યો છું, માટે તે મસ્તક બીજા દેવને નમવાને અશક્ત છે.<sup>૧</sup>

મદોન્મત્ત દેવ્યોના મદથી જે દુષ્ટકર્મ બને છે, તેથી દુઃખી થનાર જે પૃથ્વી, તેને થનારો ભાર દૂર કરવા માટે લીલાથી અવતાર ધરનાર, નિષ્પક્ષ ભક્તનું રક્ષણ કરવા માટે દીક્ષા ધારણ કરનાર એવું સુદર્શન<sup>૨</sup> ચક્ર અનાદિ કાળથી જેણે હાથમાં ધર્યું છે, એવા શ્રીમથુરેશજી અમારું રક્ષણ કરો.

જેમણે પોતાના હૃદયમાં પુણ્ડરીકાક્ષ પરમાત્માને ધારણ કરીને, વેદાત્મક કિરણોથી, ભક્તોના હૃદય રૂપી કમલો પ્રકુલિત કર્યા, અને ઉત્તમ રાજમાર્ગ બતાવી હર્ષિત બનાવ્યા, તથા પરમહંસ પરમાત્માનું દર્શન થવામાં પ્રતિબન્ધક તથા કુમાર્ગે દોરી જનાર, એવા દુષ્ટવાદો નષ્ટ કર્યા, અને સત્પુરુષોનાં ઉત્તમ કર્મો શરૂ કર્યા,

૧. આ નમનાત્મક મક્કલાચરણ કરનાર, ગીતામાં કહેલા “અનન્યાશ્ચિન્તયન્તો માં યે જનાઃ પર્યુપાસતે, તેષાં નિત્યાભિયુક્તાનાં યોગક્ષેમં વહામ્યહમ્” એ સ્લોક પ્રમાણે અનન્ય ભક્તિ કરનાર છે, તેવા ભક્તો બીજા દેવતાના પૂજન પ્રસંગે પોતાના ઈષ્ટને અન્તર્યામીરૂપે જાણીને જ નમન ઈત્યાદિ કરે છે.

૨. સુદર્શન ચક્રને પરમાત્માની એવી આજ્ઞા છે કે, જ્યારે મારા કોઈ પણ અનન્ય ભક્ત ઉપર આપણે આવે, ત્યારે તારે જઈને તેનું રક્ષણ કર્યું. જેમ અમ્બરીષ રાજાને મારવાને દુર્વાસાએ મોટી કૃત્યા મોકલી હતી, તે સમયે સુદર્શન ચક્રથી જ અમ્બરીષ રાજાનું રક્ષણ થયું હતું.

એવા આ શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્ય રૂપ સૂર્ય (જગતનું) રક્ષણ કરો.

ઉત્તમ ઉત્તમ રસથી સેવાયેલું, શ્રુતિ (કાન) માં પહેરવા યોગ્ય છે ગુણ (કુણ્ડલ) જેના, અત્યંત કાન્તિયુક્ત મંડળવાળું, ઉત્તમ બ્રહ્મસૂત્ર (જનોઈ) ધારણ કરેલા એવા નિજ આચાર્યજી (શ્રીમહાપ્રભુજી)ના શ્રીઅડ્ડાને હું ભજું છું. આ શ્લોકનો બીજો અર્થ:-

ઉત્તમ જે પ્રેમરસ તેથી સેવાયેલું એવું, શ્રુતિ (વેદ) માં કહેલા (શમદમાદિ) ગુણોથી યુક્ત, પરપ્રભાવલય (બીજા અભક્તોના કુતર્કના પ્રભાવનો નાશ કરનારા) એવા સદ્બ્રહ્મ સૂત્ર (ઉત્તમ મીમાંસા) ના ભાષ્યરૂપ નિજાચાર્યજીનાં પ્રયત્નોને હું માનું છું. અર્થાત્ શ્રીઆચાર્યજીની કાયા તથા વાયા બેઉ દિવ્ય હોવાથી બેઉને લાગુ પડે એવી રચના આ શ્લોકમાં કરી, પોતાની ઉભયતઃ ગુરુભક્તિ દર્શાવી છે.

નિરંતર ભ્રમરે સેવેલું, પરાગથી શ્રેષ્ઠ કોમલ કમલની કાન્તિને હરનાર, એવા શ્રીવિક્રમેશજી (ગુસાંઈજી) ના બે ચરણને હું વન્દું છું.

### ઉપોદ્ઘાત

આ ભરતખણડના વાયવ્ય પ્રાંતમાં દુણ્ડાર નામનો દેશ છે. તે દેશમાં શ્રીસૂર્યવંશી રામચન્દ્ર કુલોદ્ભવ હોવાથી પરમ્પરાપ્રાપ્ત અત્યંત યૈષ્ઠાવ ધર્માનુસાર ઉપાસનામાં તત્પર રહીને, સર્વ સત્કાર્યમાં જાનકીનાથ શ્રીરામચન્દ્રનો જ આદર કરનાર, સકલ કલાનિધિ હોવાથી, પોતાનું રાજાપણું જેમણે સાર્થક કર્યું છે, એવા રાજાથી રક્ષણ પામેલું જયપુર નામનું નગર છે. ત્યાં હમણાં ઉત્તમ ધર્મધુરીણ રાજપદ ભોગવનાર રામસિંહ નામક રાજા રાજ કરે છે. તેની પાસે કોઈ એક શેવમતાવલમ્બી ચિહ્ન ધારણ કરનાર લક્ષ્મણનાથ નામનો દણ્ડી રહે છે. તેણે પોતાના ભાષણથી સત્પુરુષોમાં મોટો કલહ ઉત્પન્ન કરીને સંપૂર્ણ પ્રજાજનોમાં કોલાહલ ઉભો કર્યો છે.

જેણે રાજાના અતિનિર્મલ મનને સમય જોઈને બલાત્કારથી મલીન કર્યું છે. તે પોતે બાલપણથી જ દણ્ડી હોવાથી “નારાયણ” નામનું સડ્કીર્તન કરનાર, તેથી લક્ષ્મીપતિની સેવાનો અધિકારી ગણાય છતાં, હમણાં દૈત્ય સમ્પત્તિથી યુક્ત એટલે દ્રેષી બન્યો છે.

હમણાં તેણે, મોટો રાજાશ્રય મળવાથી, હષ્ટ, પુષ્ટ મદોન્મત્ત થઈ, સ્વચ્છંદ પાણે, કેવલ પોતાની ઈચ્છા માત્રથી જ કજ પ્રશ્નો તૈયાર કરીને, ભૂતલપર સર્વ ઠેકાણે તે પ્રશ્નો ચારે મુખ્ય યૈષ્ઠાવ સમ્પ્રદાય પ્રવર્તકો ઉપર મોકલી આપ્યા છે,

એવી વાત ઉત્તર આશાથી<sup>૧</sup> લાંબા વખતથી યૈશ્રવણે<sup>૨</sup> પડી હતી.

અર્થાત્ તે મુમ્બાપુર નિવાસી, સકલ ગુણગણથી સ્તુત્ય, શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યના વંશમાં મણિરૂપ ગોસ્વામી શ્રીજીવનલાલજી મહારાજને કાને પડી.

સમ્પૂર્ણ દુષ્ટવાદ રૂપી અન્ધકારને નષ્ટ કરનાર અને સુવર્ણદાનથી પોતાને આશ્રિતને જેને સુપાત્ર કર્યા છે, એવા અખૂટ સ્નેહથી પરિપૂર્ણ શ્રીવલ્લભકુલપ્રદીપ; પોતાના કિરણ પ્રભાવથી પ્રકાશમાન અને આશ્રિતોની દરિદ્રદશાને બાળનાર સત્ અને અસત્ માર્ગનો વિચાર કરનાર<sup>૩</sup>, એવા શ્રેષ્ઠ ગોસ્વામી શ્રીજીવનલાલજી મહારાજ વિરાજે છે.

જેની પાસે વેદાન્તશાસ્ત્ર, સાહિત્યશાસ્ત્ર, ઇત્યાદિક ઉત્તમ વિદ્યા અને લક્ષ્મી સાથે વસે છે, તે લક્ષ્મી-સરસ્વતીનો સાપત્ન્ય ભાવ છે, માટે જ કે શું ? પ્રત્યેક ક્ષણે તેઓ એક બીજાથી પોતાના ગુણોનો ઉત્કર્ષ દેખાડે છે.

નિરંતર સુરસ ભાવના (ઉત્તમ રસોનો સ્વીકાર); અથવા સુર (દેવ) ની સભાનું અવન (રક્ષણ) કરનાર; એવા જીવન અને જીવ એ બેમાં ન કારનો જ માત્ર ભેદ છે. પરંતુ જીવનું સર્વ કર્મ જીવન (પાણી) કરે છે. મતલબ કે બધા જીવો (ભક્તો)નું જીવન (જીવવાનું સાધન) તે શ્રીજીવનલાલજી મહારાજ છે.

વળી, જેમણે નવીન શ્લોકો કરવાની સ્ફુર્તિથી કીર્તિ સમ્પાદન કરી છે, અને જેની નવીન કાવ્ય ચમત્કૃતિ ઘણી સ્તુત્ય છે, અને વેદાન્તશાસ્ત્રરૂપી વનમાં કેસરીસિંહની માફક ગર્જના કરે છે, એવા શ્રેષ્ઠ શ્રીગોકુલાદીશજી મહારાજ પ્રસિદ્ધ છે.

તેમજ બીજા દુર્જનોને શિક્ષા કરવા માટે દીક્ષા લેનાર, અને બુદ્ધિ સમુદાયના ભણ્ડારરૂપ, એવા (ચદુનાથજી મહારાજ સુરતવાળા) બિરાજે છે. એ સિવાય બીજા પણ શ્રીપરમાત્માની અનન્ય સેવા કરનાર (ગોસ્વામી બાલકો) છે.

તે સર્વેએ સદરહુ કજ પ્રશ્નોની પત્રિકા કોઈક સ્થલેથી મેળવીને શ્રીજીવનલાલજી મહારાજની મોટી હવેલીના બગીચામાં મળી, અવલોકન કરી.

તે પછી, એ સર્વ પ્રશ્નો અતિશય અસંગત છે, એમ જોઈને, તેને ઉત્તર

૧. ઉત્તર આશા એટલે ઉત્તરદિશા (જયપુર) થી અને બીજો અર્થ ઉત્તર મળવાની આશાથી.

૨. યૈશ્રવણે એટલે ઉત્તર દિશામાં રહેનાર કુબેરને, બીજો અર્થ કુબેર જેવા ધનાઢ્ય ગોસ્વામી શ્રીજીવનલાલજી મહારાજને કાને.

૩. ગો. શ્રીજીવનલાલજી મહારાજ મુંબાઈમાં દર માસેગામ પરગામના વિદ્વાનોને ભેળોકરી એક સભા કરતા હતા અને તેમાં સર્વ શાસ્ત્રનો ઊંઘા પોહ કરાવી, સર્વનો સત્કાર કરતા હતા. હાલના આચાર્યોમાં તેવી શાસ્ત્રચર્ચા તથા વિદ્યાવિનોદની અભિરુચિનો અભાવ થવાથી તેવી ધર્મસભાનું સ્વપ્નમાં પણ દર્શન દુર્લભ થયું છે.

આપવાની ઉત્સુકતા નષ્ટ થતાં, એક ક્ષણ વિચાર કરવા લાગ્યા.

પછી; પદ વાક્ય, પ્રમાણને જાણનાર શ્રીજીવનાચાર્યજી મહારાજે, આગળ ઉભેલા મને એવી આજ્ઞા કરી કે-

આ પ્રશ્નો વિચિત્ર અર્થના અને વિચિત્ર સંસ્કૃતભાષામાં લખાયેલા છે, માટે એનો ઉત્તમ આચાર્યોના મુખથી આપવો ઉચિત નથી.

હાથીના ગણકસ્થલની ખંજવાળને દૂર કરવાનું જેનું પાણિકત્ય છે, એવા કેસરીસિંહના નર, નાની ઉંદરડી ઉપર પડતા નથી;

માટે, અમારી આજ્ઞાથી તમે ઘણો વિસ્તાર ન કરતા, આ પ્રશ્નોનો ટૂંકો ઉત્તર વેદાદિશાસ્ત્રોથી ભરપૂર એવા પ્રમાણોથી આપો;

ઘણું કરીને તે સર્વ ઉત્તરોનો અર્થ સુબોધ નોંધ્યો, તેમાં તર્ક-કર્કશ-ક્લેશ ન હોય. આ સાંભળીને બીજા બધા ગોસ્વામી બાલકોએ શ્રીજીવનલાલજી મહારાજના વિચારને અનુમોદન આપ્યું.

આ તેઓની ગુણવતી (માધુર્યાદિ ગુણોવાળી અને ગુણ એટલે દોરાવાળી) આમોદસમ્પદાહેતુ (આનન્દરૂપ સમૃદ્ધિના કારણવાળી તથા સુગન્ધ સમૃદ્ધિના કારણવાળી) સુમનોનન્દિતા (ઉત્તમ મનથી આનન્દિત કરેલી તથા કુલોથી શોભાયમાન) એવી ઉક્તિને પુષ્પમાળાની પેઠે માથે ચઢાવનાર, પોતાના પિતૃચરણ વિદ્વન્મણિ શ્રીઘનશ્યામ ભટ્ટજીથી શાસ્ત્રદષ્ટિ સમ્પાદન કરનાર, હું ગોવર્ધન શર્મા (શ્રીગણુલાલજી) યથામતિ આ લેખનો પ્રારંભ કરું છું.

હંસ સત્પક્ષપાતી હોય છે, તેમ વિદ્વાનો નક્કી સત્પક્ષ (સાચાપક્ષ) નો સ્વીકાર કરનાર હોય છે. તે નાલીકવણલ (કમલતન્તુને ખાનાર અથવા જેને કપટ વહાલું નથી); એવા વિદ્વાનો રાજહંસની પેઠે નીરક્ષીરનો વિવેક કરનાર હોય છે, માટે તેવા વિદ્વાનો આ મારી કૃતિમાંથી ગુણમાત્રનું ગ્રહણ કરો. દોષનો સ્વીકાર ન કરો, એમ હું ઈચ્છું છું.

### ગ્રન્થપરિભાષા

મુખ્ય પ્રશ્નો ૮ છે; પણ પ્રત્યેક પત્રમાં અવાન્તર આઠ આઠ પ્રશ્નો હોવાથી કુલ ૬૪ પ્રશ્નો થાય છે.

તે સર્વ પ્રશ્નોને સંખ્યાપૂર્વક લખીને એકેકનો ક્રમથી ઉત્તર અત્ર દર્શાવ્યો છે.

કારિકા (શ્લોક)માં સંક્ષિપ્ત ઉત્તર પ્રથમ આપ્યો છે અને તેના જ વિવરણનો ફરીથી પ્રમાણ પૂર્વક વિસ્તાર કર્યો છે-

અને ઉત્તરને અન્તે તેનો અત્યન્ત સાર પણ શ્લોકરૂપે દર્શાવ્યો છે. આવો ક્રમ સર્વ ઉત્તરોમાં એક સરખો રાખેલો છે.

કોઈ કોઈ સ્થલે તેમણે નહિ પૂછેલી એવી કેટલીક પ્રાસંગિક બાબતો પણ, પોતાના સિદ્ધાન્તની અનુકૂલતા માટે તથા ભવિષ્યમાં બીજા પ્રશ્નો ઉઠતાં અટકે તે માટે, ઉત્તરમાં નિરૂપણ કરી છે.

આ ગ્રન્થ ઘણો મોટો છે, માટે નિરર્થક છે, એવી બુદ્ધિથી તેનો ત્યાગ ન કરવો કેમકે સજ્જનો હંમેશા બીજાના શ્રમની નિરર્થકતા નષ્ટ કરવાની ઈચ્છા રાખનાર દયાળુ હોય છે, માટે તેઓને મારી પ્રાર્થના છે, કે -

આ ગ્રન્થ એકવાર પણ દષ્ટિગોચર કરવો, પછી તેનો વિચાર કરવો, જેથી તેમાં ગુણ કે દોષ જે હશે, તે, આપો આપ દેખાઈ પડશે. કેમકે, હાથના કંકણની પરીક્ષા માટે આરસીની શી જરૂર ?

**હવે આઠ મુખ્ય પ્રશ્નમાંનો પ્રથમ પ્રશ્ન**

**તમારો સમ્પ્રદાય કયો ? તેમાં, સમ્પ્રદાય શબ્દનો અર્થ શો ?**

**ઉત્તર :** અર્થ<sup>૧</sup> શ્રીહરિના ભક્ત, બ્રહ્મા, રુદ્ર વગેરે દેવોએ વેદમાંથી ભેદ, અભેદ ઈત્યાદિ ભેદપૂર્વક જે બહાર કાઢેલું, ઉત્તમ પરમ્પરાથી પ્રાપ્ત થયેલું, સર્વ પ્રકારનો ઉત્કર્ષ જેમાં સમાયેલો છે એવું, શ્રીહરિમન્ત્રાદિકનું જે દાન, તેને જ અમે સમ્પ્રદાય કહીએ છીએ.

તેનો સ્પષ્ટાર્થ એવો કે, સમ્ અને પ્ર એ બે ઉપસર્ગની આગળ દા ધાતુને ઘઙ્ પ્રત્યય લાગતાં આતો યુક્ ચિળ્કૃતોઃ (પા.સૂ. ) એ સૂત્રથી યુક્ પ્રત્યય કરતાં સમ્પ્રદાયશબ્દ સિદ્ધ થયો છે. તેમાં દા ધાતુનો અર્થ દાન અને સમ્ એ ઉપસર્ગનો અર્થ સમ્યક્ રીતે એટલે ભગવાનની આજ્ઞાથી, તેમના બ્રહ્મરુદ્રાદિ ભક્તોએ, જીવો ઉપર દયાર્થ અન્તઃકરણ પૂર્વક, અનાદિસિદ્ધ વેદમાંથી બહાર કાઢીને પ્રવૃત્ત કરેલું અને શિષ્ય પરમ્પરાથી આવેલું મન્ત્રનું જે દાન તે સમ્પ્રદાય શબ્દનો અર્થ છે. બ્રહ્માદિકોએ સમ્પ્રદાયો પ્રવૃત્ત કર્યા છે, એ શ્રીશંકરાચાર્યમતાવલમ્બી તમોને પણ સમ્મત છે. કારણ કે શ્રીમચ્છંકરાચાર્યજીએ પોતાના બૃહદારણ્યકાદિક ઉપનિષદના ભાષ્યના આરંભમાં, બ્રહ્મવિદ્યાના સમ્પ્રદાયને પ્રવૃત્ત કરનાર બ્રહ્માદિને

૧. અથ શબ્દ આરંભમાં અને ઇતિ સમાપ્તિમાં મૂકવાનો યૈદિક નિયમ છે. તે અથના અર્થો અમરકોષમાં :- મજ્જિમાનન્તરાન્મમ્પ્રજ્ઞાત્સર્વ્યથો અથ મંગલાચરણ, અનન્તર, આરંભ, પ્રશ્ન અને કાર્ત્ત્વ્ય (સમ્પૂર્ણતા) એમ બતાવ્યા છે. આ ઠેકાણે તેમાંના ઘણા ખરા લાગુ પડતા હોવાથી અથ શબ્દ વાપર્યો છે.

નમસ્કાર, અને વંશપરમ્પરાગત ઋષિઓને પ્રણામ, કરીને પછી સદ્ગુરુને નમન કર્યું છે. આ સર્વ વિચાર વિશેષે કરીને કિયત્કાલાત્પવૃત્તઃ ક્યારથી શરૂ થયો છે ? એ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં વિસ્તારથી કહીશું. પ્ર ઉપસર્ગનો અર્થ પ્રકર્ષ છે, હવે દાનનો પ્રકર્ષ એટલા માટે જ છે, કે તે દાન વેદમાંથી જ નીકળેલું છે, તેનો જ સ્પષ્ટાર્થ એવો છે કે સર્વ વેદોનો પ્રમેયાર્થ બે કાણ્ડથી કહ્યો છે. ૧ ધર્મ, ૨ બ્રહ્મ. કારણ કે ધર્મ અને બ્રહ્મ એ બંનેનું પ્રતિપાદન કરનાર જે અપૌરુષેય વાક્ય તેનેજ વેદ કહે છે. તે વેદમાં કહેલા સમ્પ્રદાયોમાં શિષ્યોને ઉપદેશ દ્વારા ધર્મનું પ્રદાન કર્યું છે. કારણ કે જે પોતાનો ધર્મ જાણતો નથી, પણ જાણવાની ઇચ્છા રાખે છે. તેમણે મુનિ એવા ગુરુપાસે જવું. તે માટે સમ્પ્રદાયપ્રવર્તક ગુરુપાસે જવાનું વેદમાં વિધાન છે. ધર્મદાન, સર્વ દાનોમાં શ્રેષ્ઠ છે, એમ શ્રુતિ, સ્મૃતિ અને પુરાણોમાં ઠેર ઠેર વારંવાર કહેલું છે.

હવે બ્રહ્મદાન પણ તે તે વેદોક્ત મહામન્ત્રના ઉપદેશથી શ્રવણદ્વારા, મનન અને નિદિધ્યાસન માટે ઉપયોગી છે. તે અર્થવાળા વેદના કેવલ્યોપનિષદમાં ભગવાન પરમેષ્ઠી (બ્રહ્મા) પાસે જઈને આશ્વલાયન ઋષિ બોલ્યા:- મહારાજ ! સત્પુરુષોએ નિરંતર સેવેલી, અત્યંત ગુપ્ત એવી, અને જેના યોગથી સર્વ પાપ નષ્ટ થઈને, જ્ઞાની થઈને પરાત્પર પુરુષોત્તમની પાસે જવાય છે; એવી, બ્રહ્મવિદ્યા આપ મને ભણાવો. તે આશ્વલાયનને બ્રહ્માએ કહ્યું, શ્રદ્ધા, ભક્તિ અને ધ્યાન એનાથી તમે જાણો. કારણ બ્રહ્મજ્ઞાન કર્મ કરવાથી સન્તતિથી, કે દ્રવ્યથી, મલતું નથી. પરંતુ તે સર્વનો ત્યાગ કરીને અનન્ય ભક્તિથી જ અમૃતરૂપ બ્રહ્મજ્ઞાન મળે છે. ગીતામાં કહ્યું છે કે :-

અનન્ય ભક્તિથી હું મળું છું. અનન્ય ભક્તિથી જ હું મળવો શક્ય છું. શ્રીભાગવતમાં કહ્યું છે કે, નિર્મલભક્તિથી શ્રીહરિ પ્રસન્ન થાય છે, બીજા કોઈ પણ સાધનથી પ્રાપ્ત થતા નથી. ઇત્યાદિ શ્રુતિ, સ્મૃતિ અને પુરાણનાં વચનોથી, પરમેશ્વરની અનન્ય ભક્તિ કરનારને જ તે મળે છે, એમ સંભળાય છે.

ભક્તપણું કોને પ્રાપ્ત થાય છે ? એ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં કહ્યું છે કે, હે ઉદ્ધવ ! આત્મનિવેદન કરનાર મનુષ્યને, મેં કહેલા ધર્મથી મારા પર ભક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે. યેષ્ણવધર્મ સિવાય, સદ્ગુરુની કૃપા સિવાય, શ્રીયેષ્ણાવી દીક્ષા લીધા વિના, શ્રીભગવદ્ભક્ત કેમ થવાય ? ઇત્યાદિ શ્રીભાગવત, પદ્મપુરાણાદિકનાં વચનોથી યેષ્ણવ મન્ત્રોપદેશથી જ સાધ્ય એવી ભક્તિ કરનાર ભક્ત બને છે. મન્ત્રનો વિચાર પદ્મપુરાણ તથા ગૌતમીતન્ત્ર વગેરેમાં કહેલો છે. તે એવો કે જે મન્ત્ર

સમ્પ્રદાયથી રહિત છે, તે સર્વમન્ત્ર નિષ્ફલ છે. એમ સર્વ પ્રકારે સમ્પ્રદાયથી જ સાધ્ય જે મન્ત્રગ્રહણ, તે દ્વારાજ બ્રહ્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે.

વિવિધ ઉપનિષદો, સૂત્રો, ગીતા વગેરે શ્રવણ કરવાથી, બ્રહ્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે. તે બ્રહ્મજ્ઞાન થવા માટે ગુરુપાસે જ જવું જોઈએ, એવો નિયમ કહ્યો છે. માટે પરમ્પરા પ્રાપ્ત સદ્ગુરુપાસે જઈને વેદાન્તજ્ઞાન સાંભળવું જોઈએ. શ્રવણ કરવાથી, મનન થાય છે, અને મનન થવાથી નિદિધ્યાસન (નિરંતર ધ્યાન) થાય છે, તેવા ધ્યાનથી સમાધિ થતાં બ્રહ્મનો સાક્ષાત્કાર થાય છે. એ વાત સત્પુરુષોના રાજમાર્ગમાં અનેક ઉપનિષદોએ દાંડી પીટીને હજારો વખત સંભળાવી છે. એજ પૂરતું છે. એ રીતે બ્રહ્મસાક્ષાત્કાર થવાનું કારણ સમ્પ્રદાય છે અને તે સમ્પ્રદાય શબ્દનો અર્થ સર્વ દાન કરતાં ઉત્તમ દાન એજ છે. માટે યાજ્ઞવલ્ક્ય મુનિએ પોતાની સ્મૃતિના પ્રથમ અધ્યાયના દાનપ્રકરણમાં નાના પ્રકારનાં દાનોનું નિરૂપણ કરીને, છેવટે ગુરુપરમ્પરાના ઉપદેશથી આવેલું, જેને સમ્પ્રદાય એવું બીજું નામ છે, એવું પરબ્રહ્મ સમ્બન્ધી જ્ઞાનનું પ્રદાન, એ સર્વ દાનથી અત્યંત શ્રેષ્ઠ દાન એમ કહ્યું છે.

સર્વદાન કરતાં અધિક, સર્વ ધર્મમય બ્રહ્મજ્ઞાન છે, તે આપનાર સદ્ગુરુ પોતે અક્ષય બ્રહ્મલોકને પામે છે. આ શ્લોકમાં બ્રહ્મ શબ્દ છે, માટે તેનો અર્થ વેદ (શબ્દબ્રહ્મ) માત્ર લેવો, એવી શંકા કોઈએ ઉઠાવવી નહિ, કેમકે સ્મૃતિ ગ્રંથોમાં પરમાત્મવાચક બ્રહ્મશબ્દથી વારંવાર વ્યવહાર કરેલો છે. તેની જ આગળ શ્રાદ્ધ પ્રકરણમાં શ્રાદ્ધને યોગ્ય બ્રાહ્મણ કોણ ? તેનો વિચાર ચાલતાં, વેદ જાણનારા બ્રાહ્મણ કરતાં, બ્રહ્મવેતા, તરુણ શ્રોત્રિય બ્રાહ્મણ જુદો કહ્યો છે. માટે પરમાત્માનું જ્ઞાન સમ્પાદન કરનારને બ્રહ્મવિત્ કહે છે. તેમ જ આ ઠેકાણે પણ બ્રહ્મ શબ્દથી પરમાત્માનું જ ગ્રહણ થાય છે. માટે જ મનુસ્મૃતિના બીજા અધ્યાયના ૧૪૦ માં શ્લોકમાં કહ્યું છે કે :-

જે દ્વિજ ગુરુ જનોઈ આપીને, તેને વેદ ભણાવે, એમ કહીને, સમ્પૂર્ણ વેદ અથવા તેની એક શાખા શીખવનારને ગુરુ કહીને, છેવટે શ્લોક ૪૪ માં શ્લોકમાં બ્રહ્મજ્ઞાનથી આપણા બેઉ કાનને જે ભરે છે તે, બ્રહ્મજ્ઞાનદાતા ગુરુ તેજ માતા અને તે જ પિતા જાણવો. તેનો કદીપણ દ્રોહ કરવો નહિ. એવી રીતે સર્વ કરતાં બ્રહ્મજ્ઞાનદાતા ગુરુનો ઉત્કર્ષ કહ્યો છે. માટે બ્રહ્મજ્ઞાનનું દાન એજ સમ્પ્રદાય શબ્દનો ખરો અર્થ મહર્ષિ મનુએ પણ દર્શાવ્યો છે.

સામવેદની કૌથુમીશાખાના સાંહિતી ઉપનિષદના ત્રીજા ખંડમાં એ અર્થ સ્પષ્ટ છે. માટે યાજ્ઞવલ્ક્ય સ્મૃતિમાં બ્રહ્મશબ્દથી પરમાત્માનું ગ્રહણ છે. અથવા બ્રહ્મશબ્દથી વેદનું પણ ગ્રહણ તન્ત્રગ્રન્થથી સિદ્ધ છે અને ઉપનિષદાદિરૂપ વેદના ઉપદેશ દ્વારા પરમાત્માનું જ્ઞાન થાય છે. તેમ જ સંવર્તસ્મૃતિમાં કહ્યું છે.

પોતાનાં પાપ નષ્ટ કરવા સારૂ નાના પ્રકારનાં શુભ દાનો કરવાં. એમ દાન પ્રકરણનો ઉપક્રમ કરીને કેટલાંક દાનો કહીને ભૂતોને (પ્રાણીઓને) અભયપ્રદાન કરવાથી સર્વ ઇચ્છા પૂર્ણ થાય છે. આ ઉપરથી સર્વ દાન કરતાં અભયદાનનો ઉત્કર્ષ કહ્યો છે. તે ઉત્કર્ષવાળું અભયદાન કયું ? પરબ્રહ્મની પ્રાપ્તિ કરાવી આપે તેજ. કેમકે, સર્વ પ્રકારના ભયનો અભાય બ્રહ્મજ્ઞાનથી જ સાધ્ય છે, એવો વેદનો સિદ્ધાન્ત છે. માટે શ્રીભાગવતના ત્રીજા સ્કન્ધના ૭ મા અધ્યાયના ૪૦ મા શ્લોકમાં કહ્યું છે કે સર્વ વેદ, યજ્ઞ, તપ, દાન, એ સર્વથી જીવને અભયદાનની એક કલા પણ પ્રાપ્ત થતી નથી, એમ મૈત્રેયે તત્ત્વજ્ઞાનની ઇચ્છા કરનાર વિદુરે કરેલા પ્રશ્નના ઉત્તરમાં કહ્યું છે અને તેના ઉત્તરમાં બ્રહ્મપ્રાપ્તિ કરાવી આપનાર જે ઉપદેશ, તેથી જીવને અભયદાન મળે છે, એવું શ્રીધરસ્વામીએ વ્યાખ્યાન પણ કર્યું છે. એવી જ રીતે પાણીનું દાન કરનાર વૃષ્ટિ પામે છે. અન્ન દેનાર અક્ષયસુખ પામે છે. એવી રીતે દરેક દાનમાં જે જે આપવાની વસ્તુ તેના દાનનું વિશેષ ફલ કહીને, છેવટે મનુમહારાજ બ્રહ્મજ્ઞાનનું દાન કરનારને શાશ્વત બ્રહ્મની પ્રાપ્તિ થાય છે એમ કહે છે. માટે આ ઉપરથી સર્વ દાન કરતાં બ્રહ્મજ્ઞાન દાન શ્રેષ્ઠ છે. માટે તેવું દાન એજ સમ્પ્રદાય શબ્દનો ખરો અર્થ છે. પરાશર સ્મૃતિના પ્રથમાધ્યાયના શ્લોક ૩૭ની માધવકૃત વ્યાખ્યામાં ભવિષ્યોત્તર પુરાણનું વચન છે, કે આર્તને અન્નદાન કરવું એવો ઉપક્રમ કરી, યાજ્ઞકને સુવર્ણદાન આપવાથી, બ્રહ્મચારીને વિદ્યાદાન આપવાથી અને અનપત્ય (પુત્ર પુત્રી વિનાના પુરુષ) ને કન્યાદાન આપવાથી શ્રેષ્ઠ ગતિ મળે છે.

આ ઠેકાણે વિદ્યા એટલે બ્રહ્મપ્રાપ્તિ જેનાથી થાય છે તે ઉપનિષદમહામન્ત્ર સ્વરૂપી બ્રહ્મવિદ્યા જાણવી. કારણ બ્રહ્મચારી, પાનપ્રસ્થ અને સંન્યાસી આ ત્રણ આશ્રમીને જે વિદ્યાદાન કરવાનું છે, તે વિદ્યાશબ્દનો અર્થ “યદેવ વિદ્યાયા કરોતિ” ઇત્યાદિ વેદવાક્યમાં બ્રહ્મવિદ્યા જે લીધી છે તે જ વિદ્યા જાણવાની છે. એ પ્રસિદ્ધ છે. માટે આ ઉપર એવી શંકા થાય છે કે, ગૃહસ્થાશ્રમીને સમ્પ્રદાય એટલે મહામન્ત્રનો અધિકાર જ નથી કે શું ? પરંતુ ઊદ્યરિતસ્ એટલે બ્રહ્મચારી, પાનપ્રસ્થ અને સંન્યાસી, એ ત્રણને વિદ્યાદાન કરવાથી તેને બીજી કંઈ વિશેષ પ્રવૃત્તિ ન

હોવાથી મોક્ષરૂપ ફલસમ્પત્તિ જલ્દી પ્રાપ્ત થાય છે, માટે, તેને વિદ્યાદાન કરવાથી અધિક ફળ મળે છે, એવું તે વચનનું તાત્પર્ય છે. એ ઉપરથી ગૃહસ્થને મહામન્ત્ર દાન કરવાનો નિષેધ થતો નથી. કારણ ચારે આશ્રમીને સમ્પ્રદાયની આવશ્યકતા છે, એવો અર્થ કિમાશ્રમનિષ્ઠઃ, એ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં વિસ્તારથી નિરૂપણ કરીશું. તે જ પ્રમાણએ આર્ત (પીડિત) વગેરેને અન્નદાન કરવાની આવશ્યકતા કહેલી છે. કારણ તેમાં ફલાધિક્ષ્ય છે, એ ઉપરથી આર્ત ન હોય, તેવાને અન્નદાન કરવાનો નિષેધ નથી. એવી જ રીતે અત્રિસ્મૃતિમાં શ્લોક ૩૧૬ કહ્યું છે કે :-

રેશમી વસ્ત્રનું દાન, સૂતરાઉ વસ્ત્રનું દાન એવી રીતે સર્વ દાનનું નિરૂપણ કરીને છેવટે, શ્લોક ૩૨૮ માં સર્વદાન કરતાં વિદ્યાદાન એ અતિશ્રેષ્ઠ છે, તે દાન પુત્ર ઇત્યાદિક પોતાના સ્વજનોને અને નિષ્કપટી બ્રાહ્મણને આપવું. તે આપનાર જો સકામ હોય તો, તેને સ્વર્ગપ્રાપ્તિ થાય છે અને નિષ્કામ હોય તો તેને મોક્ષ મળે છે. એ રીતે બ્રહ્મવિદ્યાના ફળનો ઉત્કર્ષ કહીને તેનો જ પર્યાયવાચક શબ્દ સમ્પ્રદાય છે, એમ દેખાડ્યું છે; માટે સમ્પ્રદાય એટલે મહામન્ત્રરૂપ બ્રહ્મવિદ્યાનું દાન, એ સર્વથી શ્રેષ્ઠ છે. એ મન્ત્રની જે શ્રુતિ છાન્દોગ્ય ઉપનિષદમાં અધ્યાય ૩ ખંડ ૧૧ મધુવિદ્યાને છેડે છે. ત્યાં કહ્યું છે, કે તે આ બ્રહ્મવિદ્યા બ્રહ્મદેવે (દક્ષાદિ) પ્રજાપતિને કહી છે. પ્રજાપતિએ મનુને કહી, મનુએ પ્રજાને કહી, તે આ બ્રહ્મવિદ્યા શ્વેતકેતુ નામના જ્યેષ્ઠ પુત્રને તેના પિતાએ કહી તે આ બ્રહ્મવિદ્યા પિતાએ જ્યેષ્ઠ પુત્રને નિરન્તર કહેવી. માત્ર તે પુત્ર વિનયી અને અન્તેવાસી (પાસે રહેનારો શિષ્ય) હોવો જોઈએ. બીજા કોઈને એ વિદ્યા આપવી નહિ. વિનયી કે અન્તેવાસી ન હોય તેવો બીજો કોઈ ગમે તેટલું અધિક દ્રવ્ય આપે તો પણ તેને એ બ્રહ્મવિદ્યા આપવી નહિ. આ વાક્યથી પણ સમ્પ્રદાય શબ્દમાં રહેલા સમ્ ઉપસર્ગનો અર્થ પરમ્પરાથી આવેલું બ્રહ્મવિદ્યાનું દાન એ સ્પષ્ટ કહીને, પ્રશબ્દથી જે આધિક્યરૂપી અર્થ એટલે સર્વદાનમાં શ્રેષ્ઠ એ કહ્યું છે.

તે વિદ્યા શ્રેષ્ઠ કેમ છે ? તે દર્શાવવા કહ્યું છે કે દ્રવ્યથી સમ્પૂર્ણ ભરેલી સમુદ્રપલયાકિંત પૃથ્વીદાન કરતાં પણ, આ વિદ્યા મોટી છે. બૃહસ્પતિ સ્મૃતિમાં રાજાએ ૧૦૦ અશ્વમેધયજ્ઞ કર્યા પછી, પોતાના શ્રેષ્ઠગુરુ જે ભગવાન બૃહસ્પતિ તેને જઈને પ્રશ્ન કર્યો કે હે મહારાજ કયું દાન કરવાથી સર્વ પ્રકારનું સુખ પ્રાપ્ત થાય છે ? એવું અક્ષય અને મોટો અર્થ આપનાર એવું જે મોટું તપ હોય તે મને કહો. એવી રીતે અક્ષય રહેનાર, જે મહાર્થ તેના દાન વિષે ઇન્દ્રે પોતાના ગુરુ જે બૃહસ્પતિ તેને પ્રશ્ન કરતાં, તેના ઉત્તરમાં મહાબુદ્ધિમાન્ વાક્પતિ બૃહસ્પતિએ પૃથ્વી ઇત્યાદિક

દાનની પ્રસંશા કરીને કહ્યું કે મુખ્ય અતિદાન ત્રણ કહ્યાં છે, ગાય, પૃથ્વી અને સરસ્વતી. એ ત્રણ દાનો અનુક્રમે જપ, વાપન અને દોહન એ ત્રણ યોગથી દાન દેનારને તારે છે. એ ત્રણમાં પણ સરસ્વતીદાન ઉત્તમ કહ્યું છે. આ ઠેકાણે સરસ્વતીદાન એટલે પરમ્પરાથી આવેલું ઉત્તમ શાસ્ત્રવિષયક બ્રહ્મજ્ઞાન એજ સમ્પ્રદાય શબ્દનો વાચ્ય અર્થ છે. એના મૂલભૂત કૌથુમીયશાખાના સાંહિત્ય ઉપનિષદ્માં ૩-૪ ખણ્ડમાં વિચારપૂર્વક એ વાત સ્પષ્ટ કરી છે, અને એજ વાક્ય તે ઠેકાણે ચોથા ખણ્ડમાં જપ, વાપન અને દોહન ઇત્યાદિકનું દાન કરનારાઓનો નરકથી ઉદ્ધાર થાય છે એવો શ્લોકના ઉત્તરાર્થનો પાઠ છે, એમ દેખાય છે. એવી જ રીતે, અર્થથી સમ્પ્રદાયના ઉત્કર્ષ બોધક વચનો સ્મૃતિ, અને પુરાણોમાં ઠેક ઠેકાણે ઘણાં મળે છે તે જોવાં. મતલબ કે પરમ્પરાથી પ્રાપ્ત થયેલું શ્રેષ્ઠ ભગવન્મન્ત્રાદિકનું જે દાન એજ મોક્ષનું સાધન છે માટે સર્વ કરતાં પ્રફુલ્લ (શ્રેષ્ઠ) ઉપદેશ રૂપી જે સન્મન્ત્રદાન એજ સમ્પ્રદાયશબ્દનો અર્થ છે.

હવે, એવી શંકા થાય છે કે મન્ત્રદાન કરવું એ દાન થતું નથી, કારણ દાનનું લક્ષણ, પોતાના સ્વામિત્વની નિવૃત્તિપૂર્વક બીજાનું જે સ્વામિત્વ ઉત્પન્ન કરવું તે છે. એ ઠેકાણે શિષ્યને ગુરુએ મન્ત્રાદિકનો ઉપદેશ કરવાથી, ગુરુપાસેથી મળેલા તે મન્ત્રની સત્તા નીકળી જતી નથી. જો ગુરુની મન્ત્ર ઉપરની પોતાની સત્તા નષ્ટ થાય છે, એમ માનીએ તો તે ગુરુએ કરેલા જપનું ફલ ગુરુને મલશે નહિ, અને બીજા શિષ્યને તે મન્ત્રનું દાન પણ કરી શકશે નહિ; કારણ મન્ત્ર ઇત્યાદિક સુવર્ણ વગેરે પદાર્થની પેઠે હાથમાં આપવાં અશક્ય છે.

એવી શંકા બરાબર નથી. ધર્મશાસ્ત્રમાં પોતાની કપોલકલ્પિત યુક્તિ છોડીને, માત્ર શાસ્ત્રને અનુસરીને વ્યવસ્થા કરવી યોગ્ય છે. કારણ શાસ્ત્રમાં મન્ત્રોપદેશને દાનરૂપે પૂર્વે કહેલાં વચનોમાં સ્પષ્ટ ગણેલું છે. માટે ગુરુપાસેથી જે મન્ત્રાદિક શિષ્યને મળે છે, તે મન્ત્રપરનું ગુરુનું સ્વામિત્વ જો કે જતું નથી તથાપિ તે મન્ત્રઉપર ઉપદેશદ્વારા શિષ્યની સત્તા ઉત્પન્ન થાય છે, અને એજ પ્રકારનું દાન ધર્મશાસ્ત્રમાં મન્ત્ર વિષે કહ્યું છે, માટે તેનો આદર કરવો યોગ્ય છે. માટે જ ચાજવલ્કયે આચાર્યાચાર્યાના દાન-પ્રકરણના શ્લોક ૧૫ માં કહ્યું છે કે :-

“સર્વ દાન કરતાં બ્રહ્મજ્ઞાન ઘણું શ્રેષ્ઠ છે, કેમકે તેમાં સર્વ ધર્મનો સમાવેશ થાય છે.” તે ઉપર વિજ્ઞાનેશ્વરે ટીકાના વ્યાખ્યાનમાં કહ્યું છે કે બ્રહ્મજ્ઞાનના દાનમાં બીજાનું સ્વત્ત્વ ઉત્પન્ન કરવું એટલું જ દાન છે, કારણ ત્યાં ઉપદેશ કરનાર ગુરુની સ્વત્ત્વ નિવૃત્તિ કરવી અશક્ય છે.

બીજી એવી શંકા કરી છે કે સોનાની પેઠે હાથમાં આપી શકાતું નથી માટે મન્ત્રોપદેશ એ દાન નથી.

તેનો ઉત્તર ત્યાંજ શ્લોક ૧૪ માં વાહન, વૃક્ષ, શય્યા અને પ્રિય એવા કમથી પ્રિય શબ્દનું વ્યાખ્યાન કરતાં, તેનો અર્થ ‘ધર્મ’ એજ કહ્યો છે. તેનું પણ દાન કરવાને કહ્યું છે. હવે સોના વગેરે પદાર્થની પેઠે ધર્મનું દાન હાથમાં આપવું અશક્ય છે. બીજી સ્મૃતિમાં પણ ધર્મદાન કહ્યું છે. માટે પરમ્પરાથી આવેલું ઉત્તમ મોક્ષ દેનાર અને પ્રફુલ્લ મન્ત્રાદિકનું જે દાન એજ સમ્પ્રદાય શબ્દનો અર્થ છે. હવે અહીં કોઈ પણ જાતની શંકાને અવકાશ જ રહેતો નથી.

સમ્પ્રદાયશબ્દની શક્તિ ઉત્તમ પ્રફુલ્લદાન એટલો અર્થ લેવાથી, સમ્પ્રદાય શબ્દની પ્રવૃત્તિ થવામાં કંઈ હરકત નથી, એમ છતાં, તેમાં પરમ્પરાથી આવેલો મન્ત્રાદિક ઉપદેશ પૂર્વક ઉત્તમ પ્રફુલ્લદાન એવો કરવાની શી જરૂર છે ? કારણ તેમ કરવાથી શક્તિનો સંકોચ થાય છે. તેવો સંકોચ કરવાને વિશેષ પ્રમાણ ન હોવાથી, તેમ કરવું યોગ્ય નથી.

એવી કોઈ શંકા કરે તો તે ઠીક નથી. કેમકે અમરકોષના ત્રીજા કાંડમાં, વર્ગ ૨ શ્લોક ૭ માં ‘આમ્નાય’ એ શબ્દ સમ્પ્રદાયના પર્યાયમાં આપ્યો છે. ત્યાં જ “રામાશ્રમી” “અમરવિવેક” ટીકામાં, પરમ્પરાગત ગુરુથી મળેલો જે સદુપદેશ તેનાજ આમ્નાય અને સમ્પ્રદાય એ નામ છે, એવું વ્યાખ્યાન કર્યું છે. અમુક શબ્દની શક્તિ અમુક અર્થ ઉપર છે, એ વિષે શક્તિગ્રાહક પ્રમાણ વ્યાકરણ, કોષ, આપ્તવાક્ય અને વ્યવહાર અને વાક્યનો શેષ અને ટીકા ઇત્યાદિક છે. તેમાં વ્યાકરણ સમ્બન્ધી વિચાર પૂર્વે જણાવ્યો. કોષનું પ્રમાણ હમણાં જ કહ્યું. હવે આપ્તવાક્યનો વિચાર નીચે પ્રમાણે છે.

મુણ્ડક ઉપનિષદના ભાષ્ય ઉપર ભાવાર્થટીપિકા નામની ટીકા વગેરે ગ્રંથમાં વિદ્યાનો સમ્પ્રદાય ચલાવનારની પરમ્પરાનો સમ્બન્ધ અગાઉથી જ લઈને એમ કહ્યું છે કે :- સમ્પ્રદાયને અનુસરીને, અને પૂર્વ અને પર શું છે તેના સમ્બન્ધનો વિચાર કરીને, શ્રીશંકરાચાર્ય, શ્રીધરસ્વામી વગેરેએ પોતાના ગ્રંથમાં તેવાં તેવાં વચનોનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. અને તે પ્રસિદ્ધ જ છે. અને વ્યવહાર પણ એવો છે કે આ “સમ્પ્રદાય” વિષ્ણુસ્વામી સમ્પ્રદાય છે. જેમ રામાનુજ સમ્પ્રદાય સર્વ લોકપ્રસિદ્ધ છે, તેવો જ આ પણ છે. પૂર્વે કહેલા સ્થલની વ્યાખ્યા કરતાં, “સુધાપ્રભૃતિ” અનેક ગ્રંથની ટીકામાં એ સ્પષ્ટ કહ્યું છે. માટે સમ્પ્રદાય શબ્દની શક્તિ અમે કહેલા અર્થ વિષે છે, એ વિષે સંશયનો લેશ પણ રહ્યો નથી. માટે આ

સમ્પ્રદાય શબ્દ યોગરૂઢ હોઈને સંજ્ઞાવાચક છે. હવે અમે કહેલા અર્થને અનુસરીને જ “વ્યાખ્યાસુધા” વગેરે ગ્રંથોમાં ભાનુદીક્ષિત વગેરે પંડિતોએ ‘સમ્પ્રદાય’ શબ્દનું વ્યાખ્યાન ભાવાર્થ ઘસન્ત પ્રત્યય લઈને કર્યું છે. બીજા કેટલાક પંડિતો, ઉત્તમ રીતે જેનું દાન કરાય છે, એવી વ્યુત્પત્તિ કરીને કર્મણિ ઘસન્ત છે, એમ વ્યાખ્યાન કરે છે. કેટલાક ઉત્તમદાન કરી શકાય છે, જેના યોગથી એવી કરણ વ્યુત્પત્તિ કરે છે. પરંતુ તેમ કરવાથી સમ્પ્રદાય શબ્દ સિદ્ધ થતો નથી. વ્યાકરણ શાસ્ત્રમાં બહુલ ગ્રહણ છે માટે કદાચિત્ ઘસ્ પ્રત્યય કરીને કરણાર્થ કાયમ રાખીને સમ્પ્રદાય શબ્દ તૈયાર કરવો, એ અગતિક ગતિ છે. માટે તેવા અર્થની પ્રાચીન વિદ્વાનોએ ઉપેક્ષા કરી છે. બીજું એ કે “આપી શકાય છે જે” એવો અર્થ કયો એટલે “આપી શકાતો” મન્ત્ર જ છે, માટે સમ્પ્રદાય શબ્દથી મન્ત્ર જ આવશે. એમ થાય તો, સમ્પ્રદાય સિવાય આવેલા મન્ત્રો વ્યર્થ છે. એ વચનોનો વિરોધ આવશે. અને બ્રહ્મા, રુદ્ર ઈત્યાદિક તે તે સમ્પ્રદાયના પ્રવર્તક આચાર્ય છે એવો જે વ્યવહાર છે, તેને વિરોધ આવશે. હવે કોઈ કોઈ સ્થલે ઉપદેશ વિષયક જે વસ્તુ તે વાચક પણ સમ્પ્રદાય શબ્દ વાપર્યો છે, પરંતુ તે શબ્દ, સમ્પ્રદાય શબ્દનો જે મુખ્ય અર્થ સાથે સમ્બન્ધ ધરાવનાર હોવાથી તે મન્ત્રને પણ લક્ષણથી સમ્પ્રદાય કહ્યો છે. જેમ ત્રાય, પૃથ્વી, સરસ્વતી એ અતિદાન કહ્યાં છે. માટે અમે કહેલો જ સમ્પ્રદાય શબ્દનો અર્થ ઉત્તમ રીતે સર્વ સમ્મત છે, એમ સિદ્ધ થયું. કરણ વ્યુત્પત્તિ ઈત્યાદિકનું ખંડન કરવા વિષે અમારો આગ્રહ નથી.

હવે એવી શંકા આવશે કે સમ્પ્રદાય શબ્દના અર્થનો પ્રસંગ ચાલતાં વચમાં કારિકામાં “હરિમંત્રાદી કર્મક” એમ કહેવું અયોગ્ય છે. શેવ વગેરે સમ્પ્રદાયમાં પણ, સમ્પ્રદાય શબ્દનો વ્યવહાર છે. તેમાં તમે કહ્યા પ્રમાણે સમ્પ્રદાય શબ્દનો અર્થ નથી, માટે તમારો અર્થ દૂષિત છે.

એમ કોઈનું કહેવું વ્યાજબી નથી. કારણકે પ્રશ્ન કરતી વખતે તમારો સમ્પ્રદાય કયો ? અને તમારા સમ્પ્રદાય શબ્દનો અર્થ શું ? એવો પ્રશ્ન છે. માટે તેમાં તમારો સમ્પ્રદાય એવું પદ મૂક્યું છે માટે, સર્વનામથી પરામર્શ (સમ્બન્ધ) થતો હોવાથી, યેષ્ઠાવ સમ્પ્રદાય જ લેવો સચુક્તિ છે, માટે તેનું લક્ષણ કહેવું યોગ્ય છે. બીજા કેટલાક શેવ વગેરે મતમાં સમ્પ્રદાય એ શબ્દ ઔપચારિક (લાક્ષણિક) છે. કારણ પરમ્પરાથી શેવ સમ્પ્રદાયનું આચરણ કરવું એ યેષ્ઠાવ સમ્પ્રદાયમાં પ્રવેશ થવાના કારણરૂપ છે. તેજ વાત બ્રહ્મપુરાણની સમાસિમાં “માયાનુકીર્તન” અધ્યાયમાં શ્રીવેદવ્યાસે કહી છે :-

“હે દ્વિજોત્તમ ! આ લોકમાં મનુષ્યોની મન, વચન અને કર્મ અને અન્તર્યામીની પ્રેરણાથી બીજા દેવો ઉપર જે ભક્તિ ઉપજે છે, તેથી કરીને હે મુનિયો ! યજ્ઞ કરવાની ઈચ્છા ઉપજે છે. પછી તે સાધનપૂર્વક લક્ષ્મીની પ્રાપ્તિ માટે અગ્નિમાં દેવીનિમિત્તે હોમહવન કરે છે. હોમથી અગ્નિ પ્રસન્ન થાય છે. અગ્નિ પ્રસન્ન થયેથી શ્રીસૂર્યનારાયણની ભક્તિ કરવાનું મન થાય છે, તેથી તે નિરન્તર સૂર્યનું આરાધન કરે છે. સૂર્ય પ્રસન્ન થતાં, શ્રીશિવજીની પૂજા કરવાની ઈચ્છા થાય છે. પ્રયત્ન અને વિધિપૂર્વક શિવપૂજનથી શિવ પ્રસન્ન થાય છે. શિવ પ્રસન્ન થતાં, અવ્યય, જગન્નાથ, શ્રીવાસુદેવ નામક કેશવ પરમાત્માની સેવા કરવાની ઈચ્છા થાય છે. અને તે સેવાથી ભોગ અને મોક્ષ બન્ને મળે છે.

માટે મુખ્યત્વે કરીને યેષ્ઠાવ સમ્પ્રદાય ઉપર જ સમ્પ્રદાય શબ્દની પ્રવૃત્તિ છે, એમ કહ્યું છે. માટે સમ્યક્ (ઉત્તમ) પ્રકૃષ્ટ (શ્રેષ્ઠ) દાન “તે મન્ત્રાદિકનું શ્રુતિમૂલક દાન” એવો સમ્પ્રદાય શબ્દનો અર્થ, પ્રાચીન વિદ્વાનોએ કહ્યો છે.

#### પ્રથમ પ્રશ્નોત્તર સમાપ્ત\*

આઠ પત્રોપૈકી પ્રથમ પત્રમાં -

પ્રથમ પત્ર સમ્પ્રદાયના કેટલા ભેદ છે ?

ઉત્તર - શું તમારો આ પ્રશ્ન સર્વ જ સમ્પ્રદાયોની સંખ્યા વિષે છે કે યેષ્ઠાવસમ્પ્રદાયોની સંખ્યાનો આ પ્રશ્ન હોય તો, યેષ્ઠાવ, હૈરણ્યગર્ભ, શેવપ્રભૃતિ અનન્ત સમ્પ્રદાયો છે. તે શાસ્ત્રમાં અને લોકમાં તે તે સ્થલે પ્રસિદ્ધ છે.

જો, કેવલ યેષ્ઠાવસમ્પ્રદાયોની સંખ્યા વિષે પ્રશ્ન હોય તો -

ચતુર્ભુજ એવા વિષ્ણુ ભગવાનની ભુજાની છાયામાં સ્થિતિ કરવાથી સુનિર્ભય એવા ચાર સમ્પ્રદાયો, મહામાયાના ભયને દૂર કરનારા છે. (૧) રુદ્ર, (૨) લક્ષ્મીજી, (૩) બ્રહ્માજી અને (૪) સનકાદિક. આ ચાર જગત્નો ઉદ્ધાર કરનારા આચાર્યોએ, ક્ષીરસાગરમાં પોદતાં એવા અને ધ્યાના સાગરને જેમણે નિજ સ્વરૂપમાં લીન કરેલો છે એવા પ્રભુની પાસેથી તે મેળવી પ્રસિદ્ધ (પ્રકાશ) કરેલા છે. દ્વાપરયુગના અન્તે ભગવદિચ્છાથી કાપાલિકાદિક, બોદ્ધ અને બ્રહ્મવાદ ઈત્યાદિવડે દેવોએ તે સમ્પ્રદાયોને શિથિલ કર્યા : શ્રીવિષ્ણુસ્વામી, રામાનુજ, મધ્વ અને નિમ્બાર્કે અવતાર ધરી ફરીથી તેમનું સમર્થન કર્યું : આ ચાર સમ્પ્રદાયો મુખ્ય છે. બીજા તે તે સમ્પ્રદાયો પર જ આધાર રાખનારા હોવાથી ગોણા છે; કે જે

\* ૧ થી ૬૪ પ્રશ્નોમાં શાસ્ત્રાર્થને જ મુખ્ય માનેલો હોવાથી કેવળ ગુજરાતી વાંચનારને તેનો ઉપયોગ નથી માટે અમે કેવલ પ્રશ્ન અને છેવટનો જવાબ એટલાનો જ સંક્ષેપ કરીને યેષ્ઠાવોની જાણને માટે ગુજરાતીમાં તાત્પર્યમાત્ર લખ્યું છે.



પ્રકાશાનન્દ વગેરે અનન્ત સમ્પ્રદાયો છે. એ સત્સમ્પ્રદાયો જગતમાં જય પામે છે. તેથી

સત્સમ્પ્રદાયના ભેદ ચતુઃસમુદ્રરૂપી કાંચીને ધારણ કરતી ઘરિત્રી ઉપર પ્રસિદ્ધ છે: તેઓ ચારે પુરુષાર્થોનું દાન કરવા સમર્થ છે: જેમાં ચારે વેદની શ્રુતિ પ્રમાણ છે.

**બીજો પ્રશ્ન :- શા માટે (સમ્પ્રદાયો શા માટે છે ?)**

**ઉત્તર -** બ્રહ્મજ્ઞાનના શ્રવણથી સર્વ કર્મની સમૃદ્ધિ થાય છે. છેવટે ફલ-સાધન-રૂપા ભક્તિ અને મુક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે. આ એક જ અર્ગલા વિનાનું (હંમેશા ઉઘાડું) મોક્ષનું દ્વાર છે. યેષ્ણવત્પનો ઉદ્ભવ મન્ત્રોપદેશથી થાય છે. આચાર્યના શાસનથી (ઉપદેશથી) વેદના સર્વ ધર્મ નિયત થાય છે. (એકબીજાનો બાધ કરતા નથી). તેથી સર્વ જગતનું સ્વધર્મતઃ (સ્વધર્મકર્તૃક) રક્ષણ થાય છે. આ પ્રકારનાં મુખ્ય પ્રયોજનો, પ્રભુએ સમ્પ્રદાય પ્રકટ કર્યા તેમાં છે. બીજાં પણ ગોણા પ્રયોજનો હજારો છે. સમ્પ્રદાયોને પ્રકટ કરવામાં પ્રભુના અનન્ત પ્રયોજનો છે. સર્વ પ્રકારના સત્ફલોની પરમ્પરાવાળા સમ્પ્રદાયોના સન્તાનને-વિસ્તારને-મારે કેટલો વર્ણવવો ?

વિદ્રેષીઓના રોષના પોષણ માટે, સારા વિદ્વાનોના સન્તોષ માટે, અજ્ઞાનીઓનો મોહ દૂર કરવા માટે - થોડાંક બતાવ્યા છે જ.

**ત્રીજો પ્રશ્ન :- તે સમ્પ્રદાયો કયા કયા યૈલક્ષણથી સમ્મત છે ?**

**ઉત્તર -** આ તમારો પ્રશ્ન જ અચુક છે. તમે અહીં જિજ્ઞાસા-બોધક કિમ્ શબ્દ વાપર્યો છે, તેનો યૈલક્ષણમાં સામાન્યાધિકરણે અન્વય થાય. જ્યારે યૈલક્ષણ, અસાધારણ ધર્મ છે. કેન શબ્દ ત્રીજી વિભક્તિનો હોવાથી પ્રયોજકત્વ તૃતીયાનો અર્થ છે. તેમાં પ્રકૃતિ કિમ્ શબ્દના અર્થનો આધેયતા સમ્બન્ધે અન્વય થાય. પ્રત્યયાર્થ જે પ્રયોજકતા તેનો સમ્મતશબ્દનો એકદેશ જે સમ્મતિ તેમાં નિરૂપકતા સમ્બન્ધે અન્વય થાય. હવે કયા પ્રકારની સમ્મતિ માટે તમે પૂછ્યા કરી છે - તેનો સ્પષ્ટ પણે બોધ થતો ન હોવા છતાં પ્રકરણને અનુસરીને સમજાય છે કે - તે તે સમ્પ્રદાયને અનુયોગી અને પરસ્પર પ્રતિયોગી ભેદવિશિષ્ટ સમ્મતિ માટે તમે પૂછ્યા કરેલી હશે. પૂર્વવાક્યમાં તમે ભેદશબ્દ ગ્રહણ કર્યો છે. તેથી ભેદશબ્દથી ગ્રહણ કરાયલા તે તે સમ્પ્રદાયવિશેષના વિષયવાળી, તાદૃશસમ્મતિપ્રયોજિકા, સાધારણ ધર્મવિષયિણી, તમારી બુલુત્સા છે. ત્યારે સાંભળો -

સમ્પ્રદાયોમાં ઘણાં પ્રકારનું યૈલક્ષણ છે. આચારમાં, ચિહ્નમાં, સાધનમાં, ફલમાં, ભક્ત્યાદિકના પ્રકારોમાં અને સિદ્ધાન્તોમાં વિસ્તાર સાથે યૈલક્ષણ છે. જેમ કે તુલસીકાષ્ઠની માલા કેટલાક સદા કંઠમાં ધારણ કરે છે; જ્યારે બીજા કેવલ

પૂજાદિક અવસરે જ ધરે છે. તેજ રીતે ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર, મુદ્રા અને સેવાના પ્રકારોમાં ઘણા પ્રકારભેદો છે. જે તે તે ગ્રન્થોમાં દેખાડ્યા છે જ. શુદ્ધાદ્વૈત, દ્વૈત, વિશિષ્ટાદ્વૈત, દ્વૈતાદ્વૈત એ રીતે સિદ્ધાન્તોમાં યે વેદની શ્રુતિઓના નિર્ણયથી પરસ્પર વિલક્ષણતા, ઘણા વિસ્તાર સાથે તે તે સમ્પ્રદાયના ગ્રન્થોમાં છે. આવા ભેદો અનન્ત છે. અત્યન્ત વિસ્તારના ભયથી તે સર્વ અહીં વર્ણવી શકાય નહિ. જો તમારી બહુ જ ઉત્કટ જિજ્ઞાસા હોય તો પણ તે સર્વનું યૈલક્ષણ એક સ્થળે ન જ વર્ણવી શકાય. તે માટે તમારે જે તે સમ્પ્રદાયના આચાર્યો પાસે શરણે જઈ શિષ્યત્વ પ્રાપ્ત કરીને જે તે ગ્રન્થોનો સારો અભ્યાસ કરવો અને યૈલક્ષણ જાણી લેવું. સાત્ત્વિકાદિક ભેદથી નાના પ્રકૃતિના જીવ છે - તે સર્વનો ઉદ્ધાર તે તે પ્રકારના યોગ્ય ઉપદેશથી થાય છે. એ રીતે સર્વ સમ્પ્રદાયોનો અવિરોધ પણ થાય.

(આ સ્થલે યદ્યપિ પ્રશ્નકાર કેવલ જે તે સમ્પ્રદાય માટે વેદધર્મ્યવિધયા પ્રશ્ન કરે છે; તથાપિ ભારતમાર્તણ્ડે વેદધર્મ્ય ઉપરાંત સાધર્મ્ય પણ બતાવી આપ્યું એ જ ભારતમાર્તણ્ડની મહત્તા છે. વિપક્ષી દ્વેષબુદ્ધિવાળો છે જ્યારે સિદ્ધાન્તીને તેનો સ્પર્શ પણ નથી. આ પદ્ધતિને વાદીને નિગ્રહસ્થાનમાં લાવવા માટે સારા પંડિતો સ્વીકારે છે.)

**ચોથો પ્રશ્ન :- આ ભેદોમાં તમારી સમ્મતિ છે કે નહિ ?**

**ઉત્તર :-** વેદશાસ્ત્રથી વિરુદ્ધ ન હોય તેવા ભેદોમાં સમ્મતિ છે જ. પણ વેદશાસ્ત્રથી વિરુદ્ધમાં કોઈ પણ આસ્તિકની સમ્મતિ ન જ હોઈ શકે. લોકોના ખેદરૂપી અરણ્યોના દાવાનળ એવા વેદમૂલક માર્ગભેદમાં સમ્મતિ છે જ.

**પાંચમો પ્રશ્ન :- જો સમ્મતિ છે તો તેનું આચરણ કેમ નહિ ?**

**ઉત્તર :-** વેદને અનુસરતા ભેદોમાં અમારી સમ્મતિ છે; તો પણ અમને અમારા ધર્મથી જુદા ધર્મનું આચરણ ઈષ્ટ નથી. જેમ કર્મના વિધિનિષેધોથી સર્વ જ આસ્તિકોના સ્વ અને ઈતર ધર્મ પરસ્પર ભિન્ન છે. તે તે શાખાના પાઠો અને તે તે કલ્પસૂત્રોમાં કહેલા કર્મો હોવા છતાં અને તેમાં સર્વની સમ્મતિ હોવા છતાં જેમ સ્વશાખાપૂર્વક અધ્યયન અને સ્વશાખીય કર્મ જ ઉક્ત છે; તેમ અમારે માટે પણ અમારા સમ્પ્રદાયનો આચાર જ ઈષ્ટ છે.

એ રીતે સમ્મતિ હોવા છતાં અન્ય સમ્પ્રદાય કે અન્ય ધર્મની કૃતિ પ્રાપ્ત નથી. તમે જે પ્રશ્ન પૂછ્યો છે તે તમારી ચાતુરી છે.

**છઠ્ઠો પ્રશ્ન :- જો સમ્મતિ નથી તો ભેદ શા માટે માનો છો ? (છઠ્ઠા પ્રશ્નનો પહેલો ભાગ)**

**ઉત્તર :-** વૈદિક સમ્પ્રદાયોમાં સમ્મતિ જણાવી છે, હવે, આ અવૈદિક

સમ્પ્રદાયો માટે હેતુનો પર્યયુગ (બુદ્ધિપૂર્વક ખંડન કરવા માટે જ કરેલો પ્રશ્ન) સર્વથા વૃથા છે. કારણ કે અમારી સમ્મતિ યૈદિક સમ્પ્રદાયોમાં તો છે જ. જો તમે વિકલ્પવાળા બંને પ્રશ્નમાં હેતુ જાણવા ઈચ્છો છો તો તેવો હેતુ વેદશાસ્ત્રવિરોધરૂપ જણાવ્યો છે. તેથી આ પ્રશ્ન ઉત્તરને યોગ્ય નથી.

આ પ્રશ્ન માર્ગકુલમાં કલહાકુલતા જાણવા માટે કલાથી (યુક્તિથી) રચવામાં આવ્યો છે, પણ તેથી સારા માણસો વૃથા કલહ શા માટે કરે ? (અર્થાત્ અમારે કોઈ સમ્પ્રદાયને અયૈદિક કહીને વૃથા કલહ શા માટે વ્હોરી લેવો ? જેમાં વેદશાસ્ત્રનો વિરોધ હોય તે અયૈદિક સમ્પ્રદાય છે આટલું કહેવું જ બસ છે.)

**પ્રશ્નનો બીજો ભાગ :- શું એ ભેદ વર્ણનિષ્ઠ છે ?**

**ઉત્તર :-** આ પ્રશ્નમાં કિમ્ શબ્દ પૃથક્ પદ છે કે સમસ્ત ? પૃથક્ પદ માનીને સમ્પ્રદાય વર્ણનિષ્ઠ છે કે નહિ એવી જિજ્ઞાસા છે કે સમાસાન્ત એક પદ માનીને કયા વર્ણમાં નિષ્ઠા છે એવો અર્થ કરી સમ્પ્રદાયકૃત વર્ણવિશેષ કયો છે એમ પૂછ્યા છે ?

જો કિમ્ પદને પૃથક્ માનીને પૂછ્યા કરી હોય તો - વર્ણવિશેષ મનુષ્યોમાં સંપ્રદાયની પ્રવૃત્તિ હોવાથી જે વસ્તુ પ્રત્યક્ષસિદ્ધ છે તેનો, સંશયનું સ્વરૂપ ઘડતાં, અભાવકોટિમાં ઉદય ન થતો હોવાથી અને સંશય એ એકધર્મિક-વિરુદ્ધકોટિદ્રવ્યાવગાહિ-જ્ઞાનરૂપ હોવાથી સંશય જ ઉત્પન્ન થતો નથી; ત્યારે આ પ્રશ્ન વ્યર્થ છે.

હવે, અગ્નિમવાક્ય (કિમાશ્રમનિષ્ઠઃ) ના અનુસન્ધાનથી એમ જણાય છે કે ધર્મ બે પ્રકારના પ્રશ્નકર્તાને અભિમત છે, (૧) વર્ણધર્મ અને (૨) આશ્રમધર્મ; ત્યારે, ભગવન્મન્ત્રગ્રહણ અને ભગવત્સેવાદિ સમ્પ્રદાયધર્મો વર્ણધર્મ છે કે આશ્રમધર્મો છે, એ જાણવા માટે પ્રશ્ન છે, જો એમ હોય તો કહીએ છીએ -

ધર્મોનું દ્વૈવિધ્ય એ રીતે શાસ્ત્રને સમ્મત નથી. કારણ કે વર્ણધર્મ કે આશ્રમધર્મ ઉપરાંત પણ જાતિધર્મ, કુલધર્મ, દેશધર્મ ઇત્યાદિ ધર્મોનું વર્ણન પણ તે તે સ્થલે શાસ્ત્રોમાં મળે છે. વળી, “વર્ણ, આશ્રમ અને ઇતરના જે ધર્મો છે, તે અમને સર્વ જ કહો” આ યાજ્ઞવલ્ક્યસ્મૃતિના પ્રશ્નવાક્યમાં મિતાક્ષરાકાર વિજ્ઞાનેશ્વર છ પ્રકારના ધર્મો જણાવે છે. (૧) વર્ણધર્મ, (૨) આશ્રમધર્મ, (૩) વર્ણાશ્રમધર્મ, (૪) ગુણધર્મ, (૫) નિમિત્તધર્મ અને (૬) સાધારણધર્મ. તેમાં સમ્પ્રદાયધર્મો એ સાધારણધર્મ છે. કારણકે સમ્પ્રદાયને સમ્મત એવા તુલસીકાષ્ઠમાલાધારણાદિક આચારો ઘણું કરીને સર્વ વર્ણમાં સાધારણ છે. વિજ્ઞાનેશ્વરે પણ અહિંસા-શૌચ-

આચારાદિકને સાધારણધર્મમાં કહીને તેનું આચરણ આચાર્યએ કરણપૂર્વક જ કહ્યું છે. આ આચાર્યકરણ સામ્પ્રદાયિક ગુરુને શરણે જવારૂપ છે. જો ઉપનયનકાલિક આચાર્યનું ગ્રહણ કરાય તો તેવા આચાર્યની ઉપસતિ સ્ત્રીશૂદ્રાદિક કરી શકે નહિ તેથી અહિંસાદિ સાધારણધર્મ ન થઈ શકે. વળી, બાહ્ય અને આન્તર એમ બંને પ્રકારનું શૌચ કેવલ સમ્પ્રદાયથી જ લભ્ય છે.

એ રીતે સ્વધર્મના શિક્ષણાર્થે, ભગવદ્ભક્તિની સિદ્ધિ અર્થે, પોતપોતાના અધિકારને અનુસરી બ્રહ્મજ્ઞાન અર્થે અને મુક્તિ અર્થે, અને તેના મૂલભૂત ભગવન્મન્ત્રગ્રહણને અર્થે પણ ચારે વર્ણોએ સમ્પ્રદાયનું સેવન કરવું. આથી જ પ્રભુની ભુજાની છાયાથી નિર્ભય એવા સર્વવર્ણનિષ્ઠ સમ્પ્રદાયો બ્રહ્મર્ષિઓએ શાસ્ત્રોમાં વર્ણવ્યા છે.

**સાતમો પ્રશ્ન :- જો વર્ણનિષ્ઠ હોય તો સમ્પ્રદાયપૂર્વક વર્ણ છે કે વર્ણપૂર્વક સમ્પ્રદાય છે ?**

**ઉત્તર :-** તમે સમ્પ્રદાયપૂર્વક અને વર્ણપૂર્વક શબ્દો વાપર્યા છે, તો તે તમારું પૂર્વત્વ શું ? (૧) અવશ્ય-રચિત-નિયતવૃત્તિત્વ, કે (૨) પૂર્વકાલિકત્વમાત્ર ? જો પ્રથમ પક્ષ ઈષ્ટ હોય તો-“વેદાન્તકૃત્ અને વેદવિદ્ હું છું” એમ ભગવાન્ શ્રીમુખે કહેતા હોવાથી સમ્પ્રદાય ભગવત્કૃત્ હોવાથી, અને વર્ણો પણ “બ્રાહ્મણ આ વિરાટપુરુષનું મુખ છે, બાહુ ક્ષત્રિય છે”, “મુખ, બાહુ, ઊરુ અને પગથી ક્રમશઃ બ્રાહ્મણ, ક્ષત્રિય, યેશ્ય, શૂદ્ર ઉત્પન્ન થયા” ઇત્યાદિ શ્રુતિસ્મૃતિથી ભગવત્કૃત વર્ણ પણ હોવાથી, સૃષ્ટિના આરમ્ભમાં વર્ણ અને સમ્પ્રદાય ભગવત્કૃત હોવાથી એ બેમાંથી એક-બેમાંથી એકનું કારણ હશે એમ શંકા બાળકને પણ થતી નથી. તેથી આ પ્રશ્ન અત્યન્ત અયુક્ત છે.

હવે, જો, સર્વવર્ણને પણ આવશ્યક એવા યેષ્ઠાવ સમ્પ્રદાય તમને સમ્પ્રદાયશબ્દથી ઈષ્ટ છે, તો, સમ્પ્રદાયના ગ્રહણથી જ તેમને તે તે વર્ણવેશિષ્ટ્ય છે કે પ્રથમતઃ તે તે વર્ણવેશિષ્ટ્ય અને પછી સમ્પ્રદાય એમ તમારા પ્રશ્નનો અર્થ થાય. ત્યારે આવો જ પ્રશ્ન તમારે માટે કેમ પ્રવૃત્ત ન થાય ? દ્વિજમાત્રાધિકારક એવા ગાયત્રીમન્ત્રના ઉપદેશથી જ દ્વિજત્વસિદ્ધિ કે દ્વિજત્વપૂર્વક ઉપદેશ? તેમ જ સર્વ જ વર્ણને બલાત્કારે ભસ્મરુદ્રાદિધારણરૂપ શિવદીક્ષાના ચિહ્નધારણાનો આગ્રહ કરનાર એવા તમારા પણ મતમાં તેના ધારણપૂર્વક વર્ણ કે વર્ણપૂર્વક ધારણ એવો સામો પ્રશ્ન થાય જ. માટે તમારે જાતે જેનો જવાબ આપવાનો છે, એવા તુલ્યયોગક્ષેમવાળા પ્રશ્નના તમારા પોતાના જ ઉત્તરથી સન્તોષ પામો, એ જ પુરતું છે.

એજ રીતે દ્વિતીય પ્રશ્ન (પૂર્વકાલિકત્વમાત્ર)નો પણ જવાબ છે.

પ્રભુ નિત્ય હોવાથી, પ્રભુએ પ્રત્યેક બ્રહ્માને અને પ્રત્યેક કલ્પ કે સૃષ્ટિકાલમાં જ સર્જ્યા છે; તેથી કાંઈ તે એકબીજાનું કારણ થઈ શકે નહિ. છતાં તેમ કહેનારનું કથન આકાશપુષ્પના સુગન્ધ સમાન છે. આથી વર્ણો પણ સમ્પ્રદાયપૂર્વક નથી અને સમ્પ્રદાયો પણ વર્ણપૂર્વક નથી.

**સાતમા પ્રશ્નનો બીજો ભાગ :- શું આશ્રમનિષ્ઠ છે ?**

**ઉત્તર :-** આ પ્રશ્નમાં પણ પહેલાની પેઠે કિમ્ એ બુભુક્ષાબોધક પદને જુદું માનીને સમ્પ્રદાયથી ઉપલક્ષિત તે તે ધર્મો આશ્રમધર્મ છે કે નહિ ? એવી જિજ્ઞાસા છે કે સમ્પ્રદાયની કયા આશ્રમમાં નિષ્ઠા છે એમ બહુગ્રીહિ સમાસ માનીને સમ્પ્રદાયકૃત આશ્રમ વિશેષ કયો છે ? એવી પૃચ્છા છે ? અહીં પણ પ્રથમ કલ્પમાં કિં વર્ણનિષ્ઠઃ એ પ્રશ્નના જેવો જ સમાનયોગદેશ પ્રશ્ન હોવાથી, તેના ઉત્તરથી જ આ પ્રશ્ન પણ દત્તોત્તર છે. જો દ્વિતીય કલ્પ હોય તો પ્રથમ કલ્પમાં જણાવ્યું તેમ સામાન્ય ધર્મ હોવાથી - આનો પણ જવાબ મળી જાય છે. તથાપિ કહીએ છીએ કે-

ભગવન્મન્ત્રગ્રહણ, ભગવત્પૂજન, વેદચિન્તન, એક પક્ષના અવલમ્બનથી અતૃષ્ણા-શમ-દમ વગેરે, બ્રહ્મજ્ઞાન, પછી મુક્તિ અને સુનિર્મલ કૃષ્ણભક્તિ એ સર્વ જ આશ્રમોમાં છે. તેથી આ ધર્મોની સર્વાશ્રમનિષ્ઠતા તે તે સમ્પ્રદાયોમાં મહર્ષિઓએ સ્પષ્ટપણે જણાવી છે અને તેજ રીતે સર્વ જ સચ્ચાસ્ત્રથી હર્ષિત થનારા જાણે છે.

એ રીતે મેં પણ સર્વ સત્સમ્પ્રદાયોમાં રહેનારા વેષણવોની સર્વ આશ્રમમોમાં અત્યાવશ્યકતા કહી છે.

**આઠમો પ્રશ્ન :- જો આશ્રમનિષ્ઠ હોય તો આશ્રમપૂર્વક સમ્પ્રદાય કે સમ્પ્રદાયપૂર્વક આશ્રમ ?**

**ઉત્તર :-** અહીં પણ પૂર્વત્વ એટલે કારણત્વ વિવક્ષિત છે કે પૂર્વકાલિકત્વમાત્ર ? પ્રથમ પક્ષ (કારણત્વ) યોગ્ય નથી. ઉપર કહ્યું તેમ અને હવે ક્લેવાશે તેમ “વેદાન્તકૃત્ અને વેદવિદ્ હું છું” “પ્રથમ વેદના શબ્દોથી જ પૃથક્ સંસ્થા બનાવી” ઈત્યાદિ ગીતા અને મનુસ્મૃતિ જેમ પ્રમાણમૂર્ધન્ય એવા ગ્રંથોના સેકડો વચનોથી સમ્પ્રદાયો ઈશ્વરે જ પ્રકટ કર્યા છે એમ સિદ્ધ થતું હોવાથી અને એજ રીતે આશ્રમોનું પણ ભગવત્કૃતત્વ હોવાથી -

જેમને પ્રજા નથી એવા આશ્રમો (બ્રહ્મચર્ય, વાનપ્રસ્થ અને સંન્યાસ) એ ત્રણ પ્રભુના ત્રણ ચરણ ત્રિલોકથી બહાર છે અને એક ચરણ જે ગૃહસ્થાશ્રમ તે ત્રણે લોકમાં છે. એમ દ્વિતીય સ્કન્ધમાં કહ્યું છે. અને એકાદશ સ્કન્ધમાં પણ- “મારા (પ્રભુના) જઘનમાંથી ગૃહસ્થાશ્રમ, હૃદયમાંથી બ્રહ્મચર્યાશ્રમ, વક્ષઃસ્થલમાંથી વાનપ્રસ્થાશ્રમ અને મસ્તકમાંથી સંન્યાસાશ્રમ પ્રકટ થયા છે.” કહેલું હોવાથી એ આશ્રમો પ્રભુએ જ કર્યા છે એમ નિશ્ચય થતો હોવાથી, તેમ જ એકમાં બીજાને કારણ માની શકાતું ન હોવાથી-આ તમારો પ્રશ્ન અસ્થાને છે.

દ્વિતીય પક્ષ સ્વીકારતા હો તો, સમ્પ્રદાય અને આશ્રમ એ બંને પણ પ્રભુએ સૃષ્ટિના આરંભકાલમાં જ પ્રકટ કરેલા હોવાથી તેઓ સમકાલિક સિદ્ધ થાય છે. તેથી તેમાંથી એકને પૂર્વકાલિક કહેવું યોગ્ય નથી.

અથવા આશ્રમનું ગ્રહણ કર્યા પછી સમ્પ્રદાયનું ગ્રહણ થાય કે સમ્પ્રદાયનું ગ્રહણ કર્યા પછી આશ્રમનું ગ્રહણ થાય ? એવી જ જો વિચિકિત્સા (સંદેહ) હોય તો અમે બંનેનો સ્વીકાર કરીએ છીએ. કારણ કે તે અનુભવસિદ્ધ છે. ગૃહસ્થાશ્રમમાં, બ્રહ્મચર્યાશ્રમમાં અનુષ્ઠિત સમ્પ્રદાયધર્મનું ઉત્તરકાલિકત્વ છે અને ગૃહસ્થાશ્રમનું વાનપ્રસ્થાશ્રમમાં અનુષ્ઠેય સમ્પ્રદાયધર્મનું પૂર્વકાલિકત્વ છેજ. એવી રીતે બધું સમજી લેવું. જો એમ માનો તો બ્રહ્મચર્યાશ્રમમાં સમ્પ્રદાયનું પૂર્વકાલિકત્વ આવતું ન હોવાથી દોષ પ્રાપ્ત થાય. પણ આ દોષ નથી. “બાલ્યાવસ્થાથી જ હરિભક્તિ” ઈત્યાદિ વાક્યોથી સર્વ શિષ્ટોમાં જન્મપ્રભૃતિ હરિભક્તિનો સ્વીકાર હોવાથી અને ધ્રુવ, પહ્લાદાદિમાં અત્યન્ત બાલ્યાવસ્થાથી જ સમ્પ્રદાયગ્રહણપૂર્વક ભગવદ્ભક્તિ પુરાણોમાં પ્રસિદ્ધ હોવાથી દોષ આવી શકે નહિ. ખરી રીતે તો પ્રશ્નકર્તાએ પાંડિત્ય દેખાડવા પૂરતી જ ધૂર્તતા વાપરી છે.

ઉપર જણાવેલા આ આઠે પ્રશ્નો અજ્ઞાનીઓને કષ્ટ દેનારા અને શિષ્ટોને ઉપહાસ દેનારા છે. આ પહેલો પ્રશ્ન અનિષ્ટ છે. તેનો જવાબ આપ્યો છે.

પ્રથમાષ્ટક સમાપ્ત

## હવે દ્વિતીય પ્રધાન પ્રશ્ન

**પ્રશ્ન : કેટલા સમયથી પ્રવૃત્ત છે ?**

**ઉત્તર :-** અહીં કાલાત્ પદથી જણાતા પ્રભૃતિ પદના યોગે પંચમી વિભક્તિ છે. અપાદાને પશ્ચમી આ સૂત્રમાં કાર્તિક્યાઃ પ્રભૃતિ એમ મહાભાષ્યનો પ્રયોગ હોવાથી

પ્રભૃતિ-આરભ્ય-વેગેર પદનો યોગ હોય તો પંચમી થાય એમ સ્વીકાર્યું છે; તેથી અવધિત્વ પંચમીનો અર્થ થયો. હવે જિજ્ઞાસાબોધક કિમ્ થી ઘ પ્રત્યયનિષ્પન્ન પરિમાણવાચક વતુપ્ થી કિયત્ શબ્દ સિદ્ધ થયો છે, તેનો સામાનાધિકરણે કાલમાં અન્વય થાય. તેથી સમ્પ્રદાય-પ્રવૃત્તિ-અવધિભૂત-કાલથી આરભ્ની-વર્તમાન-કાલપર્યન્ત-કાલનિષ્ઠ-પરિમાણ (સંખ્યાવિશેષ-વિશિષ્ટ-સમ્વત્સરયુગાદિરૂપ (કાલગણના) પ્રશ્નકારને જિજ્ઞાસિત છે એમ જણાય છે. તેના ઉત્તરમાં અમે જણાવીએ છીએ કે-

અનાદિસિદ્ધ એવા વેદોક્ત સમ્પ્રદાયો અનાદિ છે. તેથી કાલની પ્રવૃત્તિનો પ્રશ્ન, અનાદિ વસ્તુને માટેનો, ત્યાં ઉચિત નથી. સમ્પ્રદાયો કલ્પે કલ્પે હરિની ઈચ્છાથી જગત્ની સૃષ્ટિ સાથે જ પ્રવર્તે છે. તે (સમ્પ્રદાયો) વેદની પેઠે સિદ્ધ જ છે. જ્યારે જગત્નો લય થાય (ભગવત્સ્વરૂપમાં તિરોભાવ થાય) ત્યારે તે (સમ્પ્રદાયો) પણ તિરોધાન પામે. તેથી યેષ્ઠાવ સમ્પ્રદાયો અનાદિકાલિક છે. અનાદિસિદ્ધ એવા વેદમાં કહેલા છે. કલ્પે કલ્પે પ્રવર્તે છે. બ્રહ્મ-રુદ્રાદિ દેવોએ, નારદાદિ યેષ્ઠાવોએ અને પૂર્વે થયેલા અન્ય પ્રાક્તન મહર્ષિઓએ તેમનું સેવન કર્યું છે.

**બીજાનો પહેલો પ્રશ્ન (નવમો પ્રશ્ન) :-** ઘણા સમયથી જો (સમ્પ્રદાય) પ્રવૃત્ત હોય મન્યાદિક ગ્રંથોમાં (સમ્પ્રદાયો) મન્યાદિ ગ્રંથોમાં દેખાતા ન હોવાથી અને મન્યાદિ ગ્રંથોથી તે (સમ્પ્રદાયો) વિલક્ષણ હોવાથી કેમ પ્રમાણ હોઈ શકે ?

**ઉત્તર :-** ખરેખર તમે મનુસ્મૃતિ જ જોઈ છે, બીજું કાંઈ જોયું નથી. કારણ કે તમે વેદોક્તસમ્પ્રદાયોમાં મન્યાદિ-અદૃષ્ટતા કહો છો. આ પ્રશ્નમાં સ્વરૂપાસિદ્ધ બે હેત્વાભાસો તમે કહ્યા છે, તેથી તમારો આ પ્રશ્ન દત્તોત્તર છે. સમ્પ્રદાયો, પ્રમાણમૂર્ધન્ય એવા વેદાદિમાં વર્ણિત છે, હરિએ તે પ્રવર્તાવ્યા છે, તેઓ અનાદિ છે. “કેમ પ્રમાણ હોઈ શકે” અહીં બે હેત્વાભાસને આશ્રય હોવાથી તમારો આ પ્રશ્ન, શાસ્ત્રો જોયા ન હોવાથી કે દ્રેષથી છે એમ અમને જણાય છે.

**બીજાનો બીજો પ્રશ્ન (દશમો પ્રશ્ન) :-** જો સમ્પ્રદાયો થોડા સમયથી પ્રવર્ત્યા હોય, તો ધર્માદિનિર્ણય, તેનો વિધિ અને તેનાં ફલો સર્વત્ર (શાસ્ત્રોમાં) મળી આવતા હોવાથી (સમ્પ્રદાય) કેમ પ્રવર્ત્યો ?

**ઉત્તર :-** અહીં યદિ ના અર્થવાળા ચૈત્ અવ્યયથી, થોડા સમયથી પ્રવૃત્તિપક્ષવાળો જ આ પ્રશ્ન તમને ઈષ્ટ છે એમ જણાય છે. અમે તો ઘણા સમયથી સમ્પ્રદાયો પ્રવર્ત્યા છે એમ (સમ્પ્રદાયો) વેદસિદ્ધ હોવાથી સ્વીકારીએ

છીએ. પ્રશ્નના બે પક્ષ થયા. તેમાં પ્રથમ પક્ષનું વેદાદિથી સમર્થન થતાં ઉત્તર મળી જાય છે. આ પ્રશ્નમાં ઉપલભ્યમાનત્વાત્ આ પદ સાથે અન્વિત થતા ધર્માદિ નિર્ણય, તેનો વિધિ અને તેનાં ફલો આ પદોમાં ષષ્ઠી વિભક્તિનો પ્રયોગ જોઈએ, તે ઠેકાણે પ્રથમા વાપરી છે; તે કદાચ તમે ઘણા આર્ષ ગ્રંથો વાંચ્યા છે તેથી આર્ષ પ્રયોગ હશે ! ભલે હો, આવાં સંસ્કૃત ભાષાનાં તમારાં કૌશલ્યો (?) આ પ્રશ્નોમાં ઘણી જગ્યાએ છે જ. તેઓ નજરે પડતાં જ વિદ્વાનોને સ્વતઃ સમજાઈ જાય છે, તેથી અમે પારકાનાં છિદ્રોનું ઉદ્ઘાટન કરતાં નથી.

ધર્માદિનિર્ણય, તેનો વિધિ અને વેદમાં જણાવેલાં, તેનાં ફલ લોકોને જણાવીને જ અને લોકોને જ્ઞાન અને ભક્તિમાં પ્રવૃત્તિ કરવા માટે જ પ્રભુએ ઘરાનો ઉદ્ધાર કરવા ધુરન્ધર એવા સમ્પ્રદાયો પ્રકટ કર્યા છે.

**બીજાનો ત્રીજો પ્રશ્ન (અગ્યારમો પ્રશ્ન) :-** વળી, વેદ-પુરાણ-ઈતિહાસમાં પુષ્કલરીતે ધર્મનિર્ણય અને તેનો ફલનિર્ણય છે જ, ફરીથી નવી રીતે અને અશાસ્ત્રીય રીતે (સમ્પ્રદાયનું) શું પ્રયોજન છે ?

**ઉત્તર :-** આનો જવાબ એમ અપાય -

એક એક રજુ કરેલા પ્રશ્નોથી જ આ પ્રશ્નની ગતાર્થતા થઈ જતી હોવાથી, માત્ર પોતે કલ્પેલી પ્રશ્ન સંખ્યાની પૂર્તિને માટે જ આ પ્રશ્ન છે. ઉપરના પ્રશ્નોમાં અને આ પ્રશ્નમાં છે કાંઈ વિલક્ષણતા ? કે જેથી સામ્પ્રદાયિક રીતિમાં નવીનત્વ અને અશાસ્ત્રીયત્વનો ઉપસેપ કર્યો ?

સમ્પ્રદાયો અનાદિ એવા વેદથી સિદ્ધ છે, અનાદિ છે, ઉદ્ધાર કરનારા પ્રભુએ શ્રુતિથી પ્રવર્તાવ્યા છે, તેમાં, નવીનત્વ અને અશાસ્ત્રીયત્વ કહેનાર, તમે પરબ્રહ્માદિથી પણ પોતાની જાતને પ્રાક્તન માનનારા જણાઓ છો. શું તમને વેદાદિમાં શાસ્ત્રત્વ માન્ય નથી ? જો એમ ન હોય તો વેદે જણાવેલામાં તમે અશાસ્ત્રીયત્વ કેમ કહી શકો ?

**બીજાનો ચોથો પ્રશ્ન (બારમો પ્રશ્ન) :-** આચાર્ય કોણ હોય ?

**ઉત્તર :-** શું અહીં સમ્પ્રદાયપ્રવર્તક-આચાર્યલક્ષણ ઈષ્ટ છે કે તદ્વ્યક્તિવિશેષ ? જો સમ્પ્રદાયપ્રવર્તક-આચાર્યલક્ષણ વિવક્ષિત છે તો -

સારસંગ્રહમાં પદ્મપુરાણનું પચન છે કે-

અસંખ્યશાખાઓનું અધ્યયન કરનાર અને સર્વ યજ્ઞોમાં દીક્ષિત હોય કે મોટા કુલમાં ઉત્પન્ન થયો હોય તો પણ અયેષ્ઠાવ ગુરુ ન થઈ શકે. જે-યેષ્ઠાવ એ મન્ત્રો આપે તે ભવબન્ધનો વિનાશક આચાર્ય છે એમ જાણવું.

અમારી આચાર્યપરમ્પરા-

આદૌ શ્રીપુરુષોત્તમં પુરહરં શ્રીનારદાચ્ચં મુનિં

કૃષ્ણં વ્યાસગુરું શુકં તદનુ વિષ્ણુસ્વામિનં દ્રાવિડમ્ ।

તચ્છિષ્યં કિલ ચિલ્વમજ્જલમહં વન્દે મહાયોગિનં

શ્રીમદ્ભગવાનમ ધામ ચ ભજેડસ્મત્સમ્પ્રદાયાધિપમ્ ॥

(૧) પુરુષોત્તમ, (૨) મહાદેવજી, (૩) નારદમુનિ, (૪) કૃષ્ણ, (૫) ગુરુ વ્યાસ, (૬) શુકદેવજી, (૭) વિષ્ણુસ્વામી, (૮) તેમના શિષ્ય મહાયોગી ચિલ્વમજ્જલ, અને (૯) શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી એ રીતે શાણ્દિલ્યસંહિતામાં પણ જણાવી છે. આ પરમ્પરા પરમાત્માપુરુષોત્તમપુરઃસર છે, ચિરકાલથી ચાલી આવી છે, ચરાચરને અભીષ્ટ, પૃથ્વીપર ભક્તિમાં તત્પર છે. શ્રીગોપીપતિથી શરૂ થાય છે, વિષ્ણુસ્વામી તેનું (પરમ્પરાનું) મધ્ય છે અને તે છેક શ્રીમદાચાર્યચરણ શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી પર્યંત છે.

બીજાનો પાંચમો પ્રશ્ન (તેરમો પ્રશ્ન):- તેમાં (ગુરુપરમ્પરામાં) વર્ણનિર્દેશ, દેશનિર્દેશ અને વંશપરમ્પરાનિર્દેશ પણ જણાવવો.

ઉત્તર :- પૂર્વવત્ અહીં પણ ક્યા વર્ણમાં, દેશમાં, વંશમાં આચાર્ય ઉત્પન્ન થઈ શકે એમ પૂછો છો ? કે તમારા સમ્પ્રદાયના પ્રવર્તક આચાર્યો ક્યા દેશ-વર્ણ-વંશમાં ઉત્પન્ન થયા તે પૂછો છો ?

જો પ્રથમપક્ષ હોય તો દેશવિશેષ કે વંશવિશેષનો શાસ્ત્રસિદ્ધ નિયમ આચાર્યત્વપ્રયોજક નથી. તથાપિ બ્રાહ્મણવર્ણોત્પન્ન, મન્યાદિએ જેની પ્રશંસા કરી છે તેવા, ત્રૈવર્ણિકને રહેવા માટે યોગ્ય આર્યાવર્તમાં ઉત્પન્ન થયેલો અને માતૃકુલ તથા પિતૃકુલ જેના શુદ્ધ હોય તેવો જ આચાર્ય થઈ શકે. આ બહુશિષ્ટસમ્મત સિદ્ધાંત છે. તે બ્રાહ્મણવર્ણમાં જ ઉત્પન્ન થયેલો હોવો જોઈએ. નહિ કે અન્ય વર્ણમાં. ધર્મોપદેશમાં બ્રાહ્મણને જ અધિકાર છે. મનુએ પ્રથમાધ્યાયમાં કહ્યું છે કે - બ્રાહ્મણની ઉત્પત્તિ જ મૂર્તિમાન્ ધર્મ છે. તે (બ્રાહ્મણ) ધર્મને માટે જ ઉત્પન્ન થાય છે - તે (બ્રાહ્મણ) મુક્તિ મેળવે છે. ધર્મરૂપી જનનનાનું રક્ષણ કરવા માટે- સર્વ ભૂતનો ઈશ્વર જ પૃથ્વી પર બ્રાહ્મણરૂપે અવતરે છે.

જો દ્વિતીયપક્ષ હોય તો સૌથી પ્રથમ આચાર્ય કે જે સર્વનું કારણ છે, સર્વેશ્વર છે તેના વર્ણનો નિર્દેશ શી રીતે હોય ? શિવ, નારદ, વ્યાસાદિક સ્વવંશ સહિત શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્ય સુધી સર્વ જ બ્રાહ્મણ છે. હવે દેશ નિર્દેશ પણ સાંભળો. સૌથી પ્રથમ આચાર્યના તો પોતાના જ રોમમંડલમાં અનેક બ્રહ્માંડ હોવાથી અમે તેનો

દેશનિર્દેશ ન કરી શકીએ. શિવનો દેશ ભગવદ્ધામ અથવા કેલાસાદિ છે. નારદજીને તો દક્ષનો શાપ હોવાથી તે ભમતા જ છે એટલે તેમના દેશનો નિયમ નથી. કિન્તુ પર્યટન જ તેમનો દેશ છે. વ્યાસજી યમુનાતીરમાં પ્રકટ થયા અને બદરિકાશ્રમમાં રહ્યા. શુકદેવજી વ્યાસજીને ત્યાં પ્રકટ થતાં જ ચાલી નિકળ્યા તેથી તેમની સ્થિતિનો નિયમ નથી. આ સર્વ કાંઈ પુરાણોમાં જે તે સ્થલે પ્રસિદ્ધ જ છે. અન્ય આચાર્યો પ્રાધાન્યેન દ્રાવિડ દેશમાં જ પ્રકટ થયા છે. અમારા આચાર્યચરણનો પ્રાદુર્ભાવ અન્નિકુંડમાંથી હોવાથી અન્નિકુંડ દેશ છે. તથાપિ ચમ્પારણ્ય છે; એમ શાંદિલ્યસંહિતામાં જણાવ્યું છે.

બીજાના છ-સાત-આઠ પ્રશ્નો (૧૪-૧૫-૧૬):-

બ્રાહ્મણ સિવાય અન્ય વર્ણ પણ નિજ આચાર્યત્વ કરી શકે કે નહિ ? જો કરી શકે તો તે શાસ્ત્રવિરુદ્ધ છે, ન કરી શકે તો તેનું આચાર્યત્વ કેમ ? તેણે (બ્રાહ્મણોત્તરવર્ણો) ઉપદેશ્યો પણ હીન વર્ણના જ હોય, તેઓ કલ્યાણભાગી કેમ થાય ?

ઉત્તર :- અમારા સમ્પ્રદાયમાં શ્રીમહાદેવાચાર્યથી શરૂ કરી સ્વરૂપે અને અત્યારે સ્વવંશરૂપે સ્વસમ્પ્રદાયનું અનુશાસન કરનાર શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યપર્યંત કોઈ પણ બ્રાહ્મણાતિરિક્ત આચાર્ય થયો નથી. આ પ્રણાલિકા શાસ્ત્રસિદ્ધ છે. સર્વ વર્ણનો ગુરુ બ્રાહ્મણ છે. ઈત્યાદિ વચ્ચેનો શાસ્ત્રમાં મળી આવે છે. આટલાથી જ ત્રણે પ્રશ્નોનો ઉત્તર આવી જાય છે.

જેમના સમ્પ્રદાયમાં સ્વેચ્છાથી કે શાપને લીધે ક્ષત્રિયાદિ વર્ણમાં ઉત્પન્ન થઈને પણ મહાનુભાવો ભગવદાજ્ઞાથી ભક્તિ-ધર્મોપદેશ કરે છે. તેવા પુરુષોને જ તમારો આ પ્રશ્ન મૌન ધારણ કરાવે. અમને આ પ્રશ્ન સાથે કાંઈ લાગતું વળગતું નથી.

એ રીતે સમ્પ્રદાયની ઉત્પત્તિના સમયથી આચાર્યપંક્તિ સુધીનો બીજો પ્રશ્ન- આઠ પ્રશ્નો સાથે દત્તોત્તર છે.

દ્વિતીયાષ્ટક સમાપ્ત

ત્રીજો પ્રધાન પ્રશ્ન

પ્રશ્ન :- તમારા ઉપદેશ્ય ચારે વર્ણ છે, ત્રણ છે કે બે છે ?

ઉત્તર :- જગતનો ઉદ્ધાર કરવામાં ચતુર એવા પ્રભુએ ચારે વર્ણોનો

ઉદ્ધાર કરવા માટે નિજ સમ્પ્રદાયનો ઉપદેશ સોથી પ્રથમ મહાદેવજીને કર્યો. ભગવન્મન્ત્રનું ગ્રહણ કરવામાં, પ્રભુની નિત્ય સેવામાં, અધિકારને અનુસરી ગુરુએ દેખાડેલા જ્ઞાનમાં, મુક્તિમાં અને ભુક્તિમાં ચારે વર્ણને અધિકાર છે; તેથી ચારે વર્ણ ઉપદેશ્ય છે.

આ સર્વ “વર્ણનિષ્ઠ” પ્રશ્નમાં આવી જાય છે. છતાં જુદો પ્રશ્ન કરવાનું ચોસઠની સંખ્યાની પૂર્તિ વિના અન્ય દેખાતું નથી.

**ત્રીજાના પ્રથમ દ્વિતીય પ્રશ્નો (સત્તરમો અને અઠારમો પ્રશ્ન) :-** ત્રણ વર્ણો દ્વિજ છે, તેમાં ગર્ભાધાનાદિસંસ્કારપૂર્વક ચક્ષોપવીત ગ્રહણ અને સાવિત્રીગ્રહણ મુખ્ય છે. તે વિના દ્વિજાતિત્વના અભાવમાં જેમ પ્રાત્યત્વ પ્રાપ્ત થાય છે, તેમ તમારા ઉપદેશના અભાવે પણ પ્રાત્યત્વ પ્રાપ્ત થાય કે ? જો તેમ હોય તો તમારા ઉપદેશના અભાવે સ્નાનાદિક વૃદ્ધા થાય, પણ તેમ શાસ્ત્રને સમ્મત નથી. જો પ્રાત્યત્વ પ્રાપ્ત નથી થતું એમ કહો તો પછી ઉપદેશ માટે વિશેષ આગ્રહ શા માટે ?

**ઉત્તર :-** આ પ્રશ્નના પણ બે ભાગ છે. પહેલા ભાગમાં જિજ્ઞાસાબોધક કિમ્ શબ્દના અભાવે પ્રષ્ટવ્યાંશ સ્ફુટ થતો નથી. જો ત્રૈવર્ણિકને એ મુખ્ય છે કે નહિ એમ તમારો ભાવ હોય તો બે કોટિમાંથી કોઈ પણ એકનો નિર્ધાર થઈ શકે તેવા કોટિદ્વયની ઉદ્ભાવના માટે ન વા. ઈત્યાદિ વિકલ્પબોધક પદનો ઉલ્લેખ અપેક્ષિત છે. (આ તો થયું પ્રશ્નકારની ભાષાનું દૂષણ)-

હવે ઉત્તર પણ સાંભળો-ત્રૈવર્ણિકને ગાયત્રીગ્રહણ મુખ્ય છે તેમાં કયો પ્રામાણિક પુરુષ ના પાડે ? પણ આટલું જ મુખ્ય છે તેથી વિશેષ કંઈ જ નથી એમ પ્રામાણિકપણે ન કહી શકાય.

જો પ્રશ્નનો બીજો ભાગ એજ પહેલો છે એમ કહો તો અંકલેખન પ્રમાદથી છે. અથવા જેમ ત્રૈવર્ણિકને ગાયત્રીગ્રહણ વિના દ્વિજત્વ સિદ્ધ થતું નથી અને પ્રાત્યત્વ પ્રાપ્ત થાય છે, તે અનિષ્ટ છે, તેથી ગાયત્રીગ્રહણ આવશ્યક છે; તેમ તમારા યૈષ્ઠાવ સામ્પ્રદાયિક મન્ત્રોના ગ્રહણ વિના તેણું અનિષ્ટ શું છે કે જેથી ઉપદેશનું ગ્રહણ આવશ્યક છે એમ સિદ્ધ થાય ? એવો જો અર્થ હોય તો અમે કહીએ છીએ -

શ્રીકૃષ્ણના મન્ત્રોનો યૈષ્ઠાવસમ્પ્રદાયથી ઉપદેશ ન થયો હોય તો યૈષ્ઠાવત્વ સિદ્ધ થતું નથી. યૈષ્ઠાવત્વ સિદ્ધ ન થાય તો ભક્તિ અને જ્ઞાન અત્યંત દુર્લભ છે. જ્યારે ભક્તિ અને જ્ઞાનનો જ અભાવ હોય ત્યારે પ્રભુની કૃપા શી રીતે થાય ?

જેને ભગવત્પ્રસાદ જ પ્રાપ્ત નથી તેને મુક્તિયે ક્યાંથી હોય અને સુખ પણ કેમ હોય ? તેથી મોક્ષાદિની સિદ્ધિ માટે ઉપદેશ આવશ્યક છે.

વળી, તમે જ કહ્યું ને કે ત્રૈવર્ણિકને ગાયત્રી આવશ્યક છે ? પણ ગાયત્રીનો ઉપદેશ થયા પછી પણ ગાયત્રીના અર્થની અપેક્ષા તો રહે જ. કે જેના જપથી ફલસિદ્ધિ થાય. એ ગાયત્રીનો અર્થ તો સ્વયં હરિ જ છે. ગાયત્રીદ્વારા બુદ્ધિ કૃષ્ણને અર્પવાની છે. આ પ્રકારે સમન્વયાધ્યાયમાં (બ્રહ્મસૂત્રના પ્રથમાધ્યાયમાં), અને અન્યત્ર પણ નિર્ણય કરેલો છે જ. તેથી ગાયત્રીનું ચે ફલ મેળવવા માટે યૈષ્ઠાવત્વપ્રાપ્તક દીક્ષાની જરૂર છે. તે વિના સેવામાં અધિકાર નથી. સેવા ચારે પુરુષાર્થ માટે છે. આ ઉપરાંત બીજા પણ ઘન્ય અને વિમલ ફલો ઘણાં છે. એ સર્વનો નિર્ણય પ્રાચીન ઋષિઓએ કર્યો છે. તે તમારે હૃદયના દ્વાર ઉઘાડી જોઈ લેવો. એ રીતે યૈષ્ઠાવમન્ત્રોનો ઉપદેશ અત્યંત આવશ્યક છે. જગત્ના નાથ, બ્રહ્મરુદ્રાદિકના પણ ઈશ્વર એવા શ્રીહરિ પ્રસન્ન થાય તેથી વિશેષ અમારા ચિત્તનું બીજું કૃત્ય શું હોઈ શકે ?

**ત્રીજાનો ત્રીજો પ્રશ્ન (ઓગણીસમો પ્રશ્ન) :-** જેમ વર્ણાશ્રમધર્મનું અને તેના ફલનું વર્ણન સર્વ ગ્રંથોમાં છે, તેમ તમારા સમ્પ્રદાયનું અને તેના ફલનું વર્ણન કેમ નથી ?

**ઉત્તર :-** સર્વ ગ્રંથોમાં વર્ણાશ્રમનું વર્ણન છે એ લેખ પ્રમાદથી છે. કારણ કે શિક્ષા, વ્યાકરણ, નિરુક્ત, છન્દ વગેરે અંગ ગ્રંથોમાં અને પ્રતિશાખ્ય, નિઘણ્ટુ વગેરે ઉપાંગ ગ્રંથોમાં અને તેમજ આયુર્વેદ, ધનુર્વેદ, ગાન્ધર્વવેદ, સ્થાપત્યવેદ વગેરે ઉપવેદ ગ્રંથોમાં અને તે ઉપર લખાયેલા અસંખ્ય ગ્રંથોમાં વર્ણાશ્રમનું વર્ણન નથી. વળી કાવ્યશાસ્ત્ર, નાટ્યશાસ્ત્ર વગેરેમાં પણ નિયમથી તેનું વર્ણન નથી. સર્વ ગ્રંથોમાં વર્ણાશ્રમનિરૂપકત્વે વ્યાસિ સિદ્ધ થતી નથી. ઉક્ત સર્વ ગ્રંથોમાં ગ્રંથત્વનો સર્વવેત્તાઓ દ્વારા વ્યવહાર છે જ.

જો ગ્રંથ શબ્દથી સ્મૃતિપુરાણાદિનું જ ગ્રહણ કરો તો તેમાં અમારા યૈષ્ઠાવ-સમ્પ્રદાયનું અને તેને અભિમત એવા સિદ્ધાન્તનું, ભક્તિ, જ્ઞાન, ભગવત્સેવા, ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર, તુલસીકાષ્ઠમાલા, શંખચક્રાદિધારણ વગેરે ધર્મોનું; અને ભગવત્પ્રસાદ અને પરમપદપ્રાપ્તિ વગેરે સમ્પ્રદાયનાં ફલ છે તેમના વર્ણનોના મહાકલ્પો તો તે સ્થલે વારંવાર દેખાય છે જ. પણ તે તો તે જ જોઈ શકે કે જેઓ બહુગ્રંથરૂપી સાગરનાં કર્ણધાર હોઈ સત્પુરુષ હોય. માટે કંઈ દોષ નથી.

સર્વ જ પ્રમાણો એક ઠેકાણે લખી શકાય નહિ. તેથી તમારા સન્તોષની

ખાતર દિઝમાત્ર દેખાડ્યું છે. સર્વગ્રંથોનું બહાનું કહી પોતાને મોઢે જ સર્વજ્ઞ હોવાનો દાવો કરે તેવા બોદ્ધ-યેભવશૂન્યને (બુદ્ધિના યેભવ રહિતને, અથવા બોદ્ધ મતના ચિહ્ન રહિતને) ઉત્તર શું હોય ?

**ત્રીજાનો ચોથો પ્રશ્ન (વીસમો પ્રશ્ન) :-** (આ પ્રશ્ન ત્રણ કોટિવાળા સંશયથી યુક્ત છે. ) તમારા આચાર્યોથી પૂર્વના આચાર્યો વ્યાસાદિક ન્યૂન છે, સમાન છે અધિક છે ?

**ઉત્તર :-** વ્યાસાદિકથી અમારા આચાર્યો કોઈક અંશે ન્યૂન છે, કોઈક અંશે તુલ્ય છે અને કોઈક અંશે અધિક પણ છે. અમારા પૂર્વાચાર્યોએ વ્યાસાદિકને અનુસરીને ધર્મ અને બ્રહ્મનો નિર્ણય કરીને જીવના ઉદ્ધાર માટે પ્રત્યેક શાસ્ત્રોના અર્થો - પ્રમેયો પ્રવર્ત્યા, તેમ જ ઘણાં સ્થલોમાં તેમણે પોતાના ગુરુત્વે પણ વ્યાસાદિકને સ્વીકાર્યા, તેથી અમારા આચાર્યો વ્યાસાદિકથી ન્યૂન છે. વળી જેમ પૂર્વાચાર્યોએ સાંખ્ય-પાતંજલ, તર્ક અને દિગમ્બરાદિ અર્વાચીન અયેદિક સિદ્ધાન્તોના નિરાસપૂર્વક ચતુર્લક્ષણી વેગેરનું પ્રણયન કર્યું; તેમ અમારા આચાર્યોએ તેને માટે ભાષ્ય, સુબોધિની, તત્ત્વટીપનિબંધ વગેરે ઘણા મોટા ગ્રંથો, અનેક અર્વાચીન માયાવાદાદિકૃત કુસિદ્ધાન્તોના નિરાસ માટે પ્રકટ કર્યા, તેથી વાણી અને મનને અગોચર એવા અર્થો-પદાર્થો-પ્રમેયોનું નિરૂપણ કરેલું હોવાથી અમારા આચાર્યોનું વ્યાસાદિની પેઠે સર્વજ્ઞત્વ પણ નિર્મત્સરહૃદયવાળા સહૃદય પુરુષો સ્વીકારે છે. વળી વ્યાસાદિની પેઠે તેઓ અત્યારે સર્વને દેખાતા ન હોવા છતાં વ્યાસાદિવત્ બહુજનમાન્ય પણ તેઓ છે જ એમ સર્વનો અનુભવ તમે જાણો છો. આથી અમારા આચાર્યોનું વ્યાસાદિતુલ્યત્વ સુસ્થ જ છે. તેમ જ વ્યાસાદિકના અનેક ગ્રંથો હોવા છતાં; ચતુર્લક્ષણીના અર્થમાં પ્રવેશ કરવાની ક્ષમતા ન હોવાથી, અને તેથી સુગમ પુરાણાદિકમાં વિવિધ વિચિત્ર દેવાદિકના વર્ણનો જોઈને ભ્રમમાં પડતા અલ્પમતિવાળાઓને, કલિકાલથી કલુષિત કલહે સત્કર્મ અને જ્ઞાનાદિકનો નાશ કર્યો હોય તેવા સમયમાં અમારા જેવાઓના ઉદ્ધાર માટે ભાષ્ય, સુબોધિન્યાદિક્ષારા હાથ લંબાવ અને શ્રીનન્દનન્દનના ચરણકમલમાં સ્થાપનારા આચાર્યો વ્યાસાદિકથી શ્રેષ્ઠ પણ છે જ.

**ત્રીજાનો પાંચમો પ્રશ્ન (એકવીસમો પ્રશ્ન) :-** જો વ્યાસાદિક તમારા આચાર્યોથી ન્યૂન હોય તો સર્વ ધર્મમાર્ગનો વિપ્લવ થાય, જો સમાન હોય તો તમારા ગ્રંથોનો પ્રચાર સર્વત્ર થાય તે કેમ નથી ?

**પ્રથમ કોટિનું ઉત્તર :-** પ્રથમ કોટિનો અર્થ એવો હોઈ શકે - જો તમારા

આચાર્યોથી વ્યાસાદિક ન્યૂન હોય તો તેમના માહાત્મ્યનું પ્રતિપાદન કરનારા શાસ્ત્રોનો વિરોધ પ્રાપ્ત થાય. સકલધર્મમાર્ગના વ્યાસાદિક કર્તા છે, ત્યારે તે જો ન્યૂન હોય તો વિપ્લવ થાય. આનો જવાબ નીચે મુજબ છે -

આધ્યાત્મિકજ્ઞાન અને સન્મનના દાનથી પ્રભુને પમાડનારા આચાર્યો સર્વથી શ્રેષ્ઠ છે. આચાર્યો સાક્ષાત્ પરબ્રહ્મરૂપ છે, તેથી તેઓ સર્વથી શ્રેષ્ઠ છે, એમ માનવું એવો નિર્ણય વ્યાસાદિકે જ ધર્મમાર્ગમાં કર્યો છે. તેથી વ્યાસાદિક જ જો આચાર્યોને શ્રેષ્ઠ માનવા માટે કહેતા હોય તો વિપ્લવનો ગન્ધ પણ ધર્મમાર્ગમાં ન જ હોય.

હવે દ્વિતીય કોટિ - સમાન હોય તો ... ઇત્યાદિનો અર્થ એવો હોઈ શકે, કે વ્યાસાદિક કૃત મહાભારતાદિની પેઠે તમારા આચાર્યોના ગ્રંથોનો સર્વત્ર પ્રચાર નથી તેનું શું કારણ ?

સાદૃશ્યમાં વ્યાસાદિગત સર્વધર્મ, ઉપમેય અસ્મદાચાર્યમાં ન સમ્ભવે. કેમકે સાદૃશ્યનું લક્ષણ - તેથી ભિન્ન હોવા છતાં તેમાં રહેલા ધર્મો પૈકી કેટલાક ધર્મો તેમાં હોવા - એ છે. તેથી ગ્રંથપ્રચારરૂપ ધર્મ ન હોય તો પણ ક્ષતિ નથી. ગ્રંથપ્રચાર હોવા છતાં તુલ્યતામાં હાનિ નથી. જો તેમ ન માનો તો વ્યાસે જ જાતે પોતાના જેવા જે આચાર્યોના નામ પોતાના ગ્રંથમાં જણાવ્યા છે - જેમકે આશ્મરથ, ઓડુલોમિ, કાશકૃત્સ્ન-તેમનાં ગ્રંથોનો અત્યારે પ્રકાશ ન હોવાથી તેઓ અદ્યમ ઠરે. જ્યારે તેઓ વેદાન્તના આચાર્યો હતા એમ લગભગ બધા જ આચાર્યો સ્વીકારે છે. હવે પ્રચારશબ્દથી તમારે શું તેમના પ્રામાણ્યના સ્વીકારપૂર્વક તેમના ગ્રંથોનું અધ્યયન ઇષ્ટ છે કે તેવા ગ્રંથોનું પર્યાલોચનમાત્ર ? જો પ્રથમ પક્ષ ઇષ્ટ હોય તો વ્યાસના એ ગ્રંથોનો તેવો પ્રચાર સર્વત્ર ક્યાંયે નથી. જો એમ કહો કે વેદનું પ્રામાણ્ય માનનારાઓમાં તેમનો પ્રચાર છે, તો તે પણ યોગ્ય નથી, કારણ કે વેદનું પ્રામાણ્ય સ્વીકારનારા પૂર્વમીમાંસકો, તાર્કિકો વગેરે બીજા દર્શનોને અનુસરનારા વ્યાસના વેદાન્તદર્શનનું પ્રામાણ્ય સ્વીકારતા નથી. જેમ જેમિનિએ નવમાધ્યાયમાં, કર્મ જ ફલ અર્પે છે નહિ કે ઈશ્વર એમ નિર્ણય કર્યો છે. તેમ જ તાર્કિકો ઈશ્વરને નિમિત્તકારણ માને છે નહિ કે ઉપાદાનકારણ - એટલું જ નહિ પણ પ્રકૃતિશ્ચ પ્રતિજ્ઞાદૃષ્ટાન્તાનુપરોધાત્ ઇત્યાદિ અનેક સૂત્રમાં વ્યાસે ઈશ્વરનું ઉપાદાનકારણત્વ દેખાડ્યું, છતાં તેઓ સ્વીકારતા નથી. જો એમ કહો કે વ્યાસદર્શનના અનુયાયીઓમાં તેનો પ્રચાર છે, તો વ્યાસદર્શનાન્તઃપાતિ અમારા સમ્પ્રદાયમાં અમારા આચાર્યોના ગ્રંથોનો પ્રચાર છે જ. હવે જો દ્વિતીય કોટિનો

આશ્રય લેતા હો તો, કેટલાક તટસ્થવૃત્તિથી, કેટલાક પ્રિયવૃત્તિથી અને તમારા જેવા કેટલાક દ્વેષવૃત્તિથી પણ અમારા આચાર્યોનું ગ્રંથોનું પર્યાલોચન કરે છે જ. આથી જ તમે પણ સાતમા પ્રશ્નમાં લખ્યું છે કે પ્રમાણ હોય તો કેમ તમારા જ ગ્રંથોમાં વિરુદ્ધ રીતે વર્ણવ્યું છે ઇત્યાદિ. તેમ જ તમારા ગુરુત્વે જાણમાં આવેલા સચ્ચિદાનંદગિરિએ સહસ્રાક્ષ નામના ગ્રંથમાં અમારા મતરૂપી સૂર્યપર ધૂતિપ્રક્ષેપ કરવાનું શરૂ કર્યું છે, એમ કિમ્પદન્ટી સંભળાય છે. આથી, અમારા ગ્રંથોનો પ્રચાર છે, તેમાં આ તમારો પ્રશ્ન જ પ્રમાણ છે. જો તેમ ન હોય તો તમે ભારત અને ભાગવતની ટીકાઓથી વિરુદ્ધ અમારો મત છે એવો આક્ષેપ શી રીતે કરી શકો ? જો તમે અમારા ગ્રંથોના પર્યાલોચન વિના જ લખ્યું હોય તો એ તમારી ધૃષ્ટતા છે. માટે આવા પ્રશ્નો બસ કરો.

બૃહત્પરાશરસ્મૃતિમાં જણાવ્યું છે કે - પ્રત્યેક કલ્પમાં કે કલ્પોના મધ્યમાં ધર્મને ઋષિઓ સ્મરે છે. સત્યયુગનો ધર્મ ત્રેતામાં અને ત્રેતાનો દ્વાપરમાં ફરી ફરીને ઋષિઓ સ્મરે છે. એ રીતે યુગે યુગે ધર્મમાં વેલક્ષણ હોવાથી તે તે યુગમાં તેવી તેવી પ્રવૃત્તિને માટે આચાર્યોનો આવિર્ભાવ થાય છે. યુગે યુગમાં જે ધર્મો હોય અને તે તે ધર્મોમાં જે બ્રાહ્મણો હોય તેમની નિન્દા કરવી નહિ. તેમજ તે તે યુગના સિદ્ધાંતોની, વ્રતીઓની કે ચતિઓની પણ નિન્દા કરવી નહિ.

**ત્રીજાનો છઠ્ઠો પ્રશ્ન (બાવીસમો પ્રશ્ન) :-** (ઉપરના જ પ્રશ્નનો અવાન્તર આ પ્રશ્ન છે.) :- જો વ્યાસાદિકથી અધિક તમારા આચાર્યો હોય તો તેમાં પ્રમાણ આપો.

**ઉત્તર :-** જો અહીં વ્યાસાદિકની અપેક્ષાએ અમારા આચાર્યોના ઉત્કર્ષમાં પ્રમાણની જિજ્ઞાસા હોય તો, તમારી સામે પણ એ જ પ્રશ્ન રજૂ કરી શકાય. તમારા આચાર્યોથી વ્યાસાદિક ન્યૂન છે, સમાન છે કે અધિક છે ? તેમાં અમે જે પ્રથમ કોટિમાં ઉત્તર આપ્યું છે તેથી જ તમારે સન્તોષ માનવો ઘટે છે. બીજા કોટિ ગુજબ જ આડું ચાલવું હોય તો પૂર્વાચાર્યોના ઉત્કર્ષમાં તમારે સ્મૃતિપુરાણાદિની અસમ્મતિ દેખાડવી રહી. માટે અવો કુત્સિત પ્રયાસ ન જ કરવો.

૧. આ ઉપરથી એમ માનવાનું નથી કે અત્યારે જે નવાં ધર્મશાસ્ત્રો રચવા માટે સંસારસુધારાનો દમ્ભ કરનારા લોકો કોલાહલ કરે છે તે અપ્રમાણ છે. કલિયુગના ધર્મો સ્મૃતિકારોએ જણાવ્યા છે જ. તેમજ આચાર્યોએ પણ તેનો નિર્ણય કર્યો છે જ. સત્તા ભરીને ભગવાનનું અસ્તિત્વ અનુકૂળ વિરુદ્ધ મતોની ગણતરી કરનાર કોઈદેશમાં ભગવાન પણ હારી ગયો અને તે દેશમાં પ્રાર્થનામંદિરો પણ નાશ પામ્યા એમ કોઈદેશમાં બન્યું, તેનું અનુકરણ અધર્મ છે, ધર્મ નહિ. સ્મૃતિઓનું પુનઃ પ્રણયન કરવા માટે ભગવાન જ અવતરે છે. મનુષ્યાધિકારની બહારની આ વાત છે

અમે વ્યાસાદિકથી અમારા આચાર્યોની ન્યૂનતા, તુલ્યતા અને અધિકતા દેખાડી આપી છે; માન્ય હો કે ન હો. તમારા હમનું નિવારણ અન્ય રીતે ન જ થાય.

**ત્રીજાનો સાતમો પ્રશ્ન (ત્રેવીસમો પ્રશ્ન) :-** જો શૂદ્રો પણ ઉપદેશ્ય છે તો સત્ શૂદ્રો જ કે અસત્ શૂદ્રો પણ ? સાધારણ શૂદ્રો જ ઉપદેશ્ય હોય તો અધમ કેમ નહિ ? તે પણ ઉપદેશ્ય હોય તો વેષ્ટાવત્વે તેમની સાથે તુલ્યતા છે કે ન્યૂનતા ? જો ન્યૂનતા છે તો તમારી દીક્ષાથી શું ? જો તુલ્યતા છે તો તેમણે (શૂદ્રોએ) કરેલા પાકાદિકનો અંગીકાર કેમ કરતા નથી ? જો શૂદ્રે કરેલા પાકનો અંગીકાર કરો છો તો સર્વ વર્ણોની સમાનતા કહેનારા તમે ધન્ય છો ?

**ઉત્તર :-** ઉપદેશ્ય શૂદ્ર સામાન્ય છે એમ અમે પહેલાં કહ્યું છે જ. ભક્તિશાસ્ત્રમાં સામાન્ય રીતે શૂદ્રને પણ અધિકાર છે. આ વસ્તુ કિં વર્ણનિષ્ઠઃ આ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં આવી જાય છે. છતાં જ્યારે તમે અવસર જ આપો છો તો કાંઈ કહેવું જરૂરનું લાગે છે.

હવે, તમે જે પ્રશ્નવાક્યમાં જણાવ્યું કે શૂદ્ર ઉપદેશ્ય જ છે તો તેમની સાથે વેષ્ટાવત્વે તુલ્યતા છે કે ન્યૂનતા ? જો ન્યૂનતા છે તો તમારી દીક્ષાથી શું ? તુલ્યત્વ છે તો તેમનું રાંધેલું કેમ ખાતા નથી ? આનો જવાબ સાંભળો - અમે ચાણકાલાદિકને ઉપદેશ્ય માન્યા નથી. જો શૂદ્રોને ઉપદેશ્ય માનતા જ આ પ્રશ્નને અવસર છે એમ કહો તો વેષ્ટાવત્વે તુલ્યતા હોવા છતાં જાતિથી પાકાદિકમાં અયોગ્યતા છે, તેથી અમે તેમનું રાંધેલું ખાતા નથી. દીક્ષાથી જે ઉત્કર્ષ થાય છે, તેનું, સમાનરીતે મોક્ષાધિકારમાં પર્યવસાન છે. તેથી કાંઈ જાતિમાં ઉત્કર્ષ થતો નથી. વસન્તઋતુમાં સર્વ વૃક્ષો પુષ્પવાળાં બને, નવાં પાંદડા ધારણ કરે છે, પણ લીંબડાની કડવાશનો નાશ થતો નથી. મન્ત્રથી ચુકત શરીર પ્રભુનાં ચરણમાં સમાનરીતે પ્રાપ્ત થાય છે આ સિદ્ધાન્ત સર્વ મુનિયોને માન્ય છે.

**ત્રીજાનો આઠમો પ્રશ્ન (ચોવીસમો પ્રશ્ન) :-** જો સત્ શૂદ્રો જ ઉપદેશ્ય હોય તો તેવા સત્ શૂદ્રો કયા ? તેમનું લક્ષણ કહો ?

**ઉત્તર :-** અમે તો સામાન્ય રીતે સત્ શૂદ્ર અને અસત્ શૂદ્રને ઉપદેશ્ય માનીએ છીએ તેથી અમારે આ પ્રશ્નનો વિચાર કરવાનું પ્રયોજન નથી.



### ચોથો પ્રધાન પ્રશ્ન

**પ્રશ્ન :-** ઉપદેશમાં રામકૃષ્ણાદિના મન્ત્રો સમાન છે કે તેમાં પણ ન્યૂનાધિકતા છે ?

**ઉત્તર :-** તમે તર્કબંધ છો. રામકૃષ્ણાદિના મન્ત્રોમાં સમાનતા છે; ન્યૂનતા પણ છે અને અધિકતા પણ છે. એ ન્યૂનાધિક્ય તે તે પ્રકારની અપેક્ષા ઉપર આધાર રાખે છે.

**ચોથાનો પહેલો પ્રશ્ન (પચીસમો પ્રશ્ન) :-** જો સમાનતા છે તો તમે અન્ય મન્ત્રને ગ્રહણ કરવાનો નિષેધ કેમ કરો છો ?

**ઉત્તર :-** અહીં નિષેધશબ્દથી કોઈ પણ અધિકારીએ અમુક મન્ત્ર ગ્રહણ ન કરવો એમ કહેવા ઈચ્છો છો કે અમારા સમ્પ્રદાયમાં અમારું ઈષ્ટ ફલ જે પુરુષોત્તમ સાયુજ્ય, તે આપનાર અમારી આચાર્યપરમ્પરાથી પ્રાપ્ત થતા મન્ત્ર વિના અન્ય મન્ત્ર ગ્રહણ કરવાનો નિષેધ કહો છો ? પ્રથમ પક્ષ અયોગ્ય છે. કારણ કે અમારા આચાર્યોએ તેવો નિષેધ ક્યાંયે કર્યો નથી. જો દ્વિતીય પક્ષ ઈષ્ટ હોય તો આ પ્રશ્ન હવે આપનાર પ્રશ્નથી જુદો નથી. તેથી તેનો જવાબ પણ ત્યાં જ મળશે. તમે માત્ર ૬૪ ની સંખ્યાપૂર્તિ માટે જ આવા અસમ્બંધ પ્રશ્નો ઉમેર્યા છે.

**ચોથાનો બીજો પ્રશ્ન (છવીસમો પ્રશ્ન) :-** અન્ય મન્ત્રનું દાન તમારા શિષ્યને કેમ કરતા નથી ?

**ઉત્તર :-** અમારું અભીષ્ટ ફલ પુરુષોત્તમ સાયુજ્ય છે, તે અમારી આચાર્યપરમ્પરાથી ઉપદેશાતા કૃષ્ણમન્ત્રોથી જ સિદ્ધ થાય છે. તેથી અન્ય મન્ત્રગ્રહણનું પ્રયોજન રહેતું નથી. તેમ તેવો સદાચાર પણ નથી. તેથી અમે ગોપાલાદિત્રય મન્ત્રો વિના અન્ય મન્ત્રો ગ્રહણ કરતા નથી. અમારા સમ્પ્રદાયમાં સ્વીકારેલા કૃષ્ણમન્ત્રનો ઉત્કર્ષ ઘણાં પ્રમાણોથી સિદ્ધ જ છે. તેથી અમારા સમ્પ્રદાયમાં સ્વીકારેલા ગોપાલમન્ત્રાદિ ત્રણ મન્ત્રો જ અમારી આચાર્યપરમ્પરાએ પોતાના શિષ્યોને ઉપદેશાય છે. અમારું અભીષ્ટ તેટલાથી જ સિદ્ધ થઈ જાય છે. અન્ય મન્ત્રોનું પ્રયોજન બાકી રહેતું નથી. છતાં અન્ય મન્ત્રો જો ઉપદેશાય તો અમારા સમ્પ્રદાયની મર્યાદાનું ઉલ્લંઘન થાય છે અને સદાચારનો એ વિરોધ પ્રાપ્ત થાય છે. અમારા સમ્પ્રદાયમાં પુરુષોત્તમથી આરંભી અત્યારસુધીના આચાર્યોએ સામ્પ્રદાયિક કોઈ પણ શિષ્યને ઈતર મન્ત્રનો ઉપદેશ કર્યો નથી. આથી સામ્પ્રદાયિક મન્ત્ર જ પોતાના શિષ્યને અપાય છે.

**ચોથાનો ત્રીજો પ્રશ્ન (સત્તાવીસમો પ્રશ્ન) :-** અન્ય મન્ત્રો જો ન્યૂન હોય તો સર્વ મન્ત્રો મોક્ષ આપનાર છે, એ શાસ્ત્રસમ્મત સિદ્ધાન્ત હોવાથી ન્યૂનતા શી રીતે ?

**ઉત્તર :-** અમે રામકૃષ્ણાદિના મન્ત્રોની ન્યૂનતા કે અધિકતા પાછલા પ્રશ્નના ઉત્તરમાં જણાવી દીધી છે. ભગવન્મન્ત્રોમાં તે તે મન્ત્રોનું મોક્ષદાતૃત્વ શાસ્ત્રોમાં વર્ણવેલું હોવા છતાં પણ તે મન્ત્રના સામર્થ્યથી મોક્ષદાતૃત્વ નથી, કિન્તુ તેની અધિક્ષાતૃ દેવતાના સામર્થ્યથી છે. જ્યારે રામકૃષ્ણાદિના મન્ત્રોનો એ રીતે વિચાર કરીએ ત્યારે તે તે મન્ત્રોથી તે તે ભગવદવતાર સાથે સાયુજ્ય રૂપી મોક્ષ થાય. આ વસ્તુ તૈત્તિરીય ઉપનિષદમાં જણાવી છે જ. તેથી તે તે અવતારો સાથે સાયુજ્યની ઈચ્છાવાળાઓએ તે તે મન્ત્રોનું ઉપાસન કરવું યોગ્ય છે. પણ ભગવદવતારોમાંયે પૂર્ણત્વ, અંશત્વ, કલાત્વનું તારતમ્ય શાસ્ત્રસિદ્ધ છે. તે રીતે તેવી દેવતાના મન્ત્રો માટે પણ સમજવું. આથી અમે પૂર્ણપુરુષોત્તમના જ મન્ત્રોનું ઉપાસન કરીએ છીએ. આનું તારતમ્ય સૂક્ષ્મમતિવાળાઓએ જાતે સમજી લેવું.

**ચોથાનો ચોથો પ્રશ્ન (અઠ્ઠાવીસમો પ્રશ્ન) :-** મન્ત્રોની પ્રશંસા ઉપરથી જો તમે તમારા ઈષ્ટ મન્ત્રોની ન્યૂનાધિકતાનો વિચાર કરો તો પ્રશંસાથી પ્રાપ્ત થતી ઉપપત્તિ અન્ય મન્ત્રો માટે પણ સમાન જ છે ?

**ઉત્તર :-** આ પ્રશ્નનો એવો અર્થ થાય કે જો તમે તમારા ઈષ્ટ મન્ત્ર માટે જ શાસ્ત્રસિદ્ધ મોક્ષદાતૃત્વરૂપી પ્રશંસાને વાસ્તવિક માનો અને તેવા જ અન્ય વાક્યોને અર્થવાદ માનો તો અન્ય મન્ત્રોને પોતાના ઈષ્ટમન્ત્રત્વે સ્વીકારનારને પણ તમારા મન્ત્રો માટેની પ્રશંસાને અર્થવાદ કહેવાનો હક છે. તેથી એકને વાસ્તવિક અને અન્યને અવાસ્તવિક કહેવાય નહિ.

પણ અમે ક્યાં સર્વમન્ત્રોને માટે તમે કહો છો તે રીતે અર્થવાદરીત્યા સ્વીકારીએ જ છીએ. અમે તો મન્ત્રનિષ્ઠદેવતાના તારતમ્યથી તેનો નિર્ણય કરીએ છીએ. તેથી તમે કરેલા પ્રશ્નનું મૂલ જ વિશીર્ણ થઈ જાય છે.

**ચોથાનો પાંચમો પ્રશ્ન (ઓગણત્રીસમો પ્રશ્ન) :-** શૈવ, શાકતાદિ મન્ત્રોનું મોક્ષદાતૃત્વ સ્વીકારો છો કે નહિ ?

**ઉત્તર :-** મન્ત્રોમાં મોક્ષદાતૃત્વ દેવતાના પ્રસાદથી જ પ્રાપ્ત થાય છે. મોક્ષને આપનાર તો સર્વવન્દિત મુક્ત જ છે. તે જ પ્રભુના અંશો સર્વદેવો છે. સકામપુરુષો જ તેમનો આશ્રય કરે છે. પ્રભુ જ સકામ પુરુષોને તે તે દેવતાઓ દ્વારા, માહાત્મ્યબુદ્ધિથી ફલ અર્પે છે. આથી કેવલ યેષ્ઠાવી મન્ત્ર જ મોક્ષને આપનાર

છે. અન્ય મંત્રો ભક્તોની કામના પૂરી કરે છે. અન્ય દેવતાઓના મંત્રો સાક્ષાત્ મોક્ષ આપનારા નથી. તેમને પ્રભુના તે તે સ્વરૂપો દ્વારા ત્રૈવર્ગિક ફલ જ મળે છે. આથી, મોક્ષને આપનાર કેવલ શ્રીકૃષ્ણની સેવા જ છે. એ જ કૃષ્ણ દેવોને આનન્દ પમાડનાર છે. શિવભક્ત્યાદિ મુક્તિને આપનાર નથી. તેથી તે વિના અમારું અન્ય દેવત નથી. તેથી યેષ્ણવમંત્રો જ મુક્તિને આપનારા છે એમ શાસ્ત્રો સારી પેઠે કહે છે; નહિ કે શૈવશાક્ટાદિ મંત્રો.

**ચોથાનો છઠ્ઠો પ્રશ્ન (ત્રીસમો પ્રશ્ન) :-** જો અન્ય મંત્રોનું મોક્ષદાત્વ સ્વીકારો છો તો તેમની નિન્દા શા માટે કરો છો ?

**ઉત્તર :-** આ પ્રશ્નમાં અસ્તિ અને ચૈત્ શબ્દોથી શૈવશાક્ટાદિ મંત્રોના મોક્ષદાત્વના પક્ષનું જ અવતરણ થાય છે. તેથી આ પ્રશ્ન ઉપરના પ્રશ્નના ઉત્તર-તે મંત્રો મોક્ષ દેનારા નથી-તેથી જ-દત્તોત્તર છે.

હવે તમે નિન્દાને માટે પૂછો છો, તો નિન્દા શબ્દથી શું અવિધમાન દોષનું કીર્તન તમને વિવક્ષિત છે કે વિધમાન દોષનું કીર્તન ? અથવા અમે તે મંત્રોનું ગ્રહણ અને જપાદિક કેમ કરતા નથી તે વિવક્ષિત છે ?

પ્રથમ પક્ષ-અવિધમાનદોષકીર્તન-યોગ્ય નથી. કારણ કે અમારા બ્રહ્મવાદમાં સર્વ જ બ્રહ્મરૂપ છે. નદી, સમુદ્ર વગેરે સર્વ જ પ્રભુનું શરીર છે, તેથી સર્વને અનન્યરીતે પ્રણમે-ઈત્યાદિ વાક્યોથી સર્વને જ પ્રણામ કરવાનું જણાવેલું હોવાથી અમારા સમ્પ્રદાયમાં કોઈની નિન્દાને અપકાશ જ નથી.

દ્વિતીય પક્ષ-વિધમાનદોષનું કીર્તન-પણ યોગ્ય નથી. કારણ કે જો કોઈ વિધમાન દોષ કહે તો તે નિન્દા થતી નથી. જો તેમ ન હોય તો સર્વ વસ્તુઓમાં તાત્પર્યકરીતે જે ગુણદોષ છે તેનું વર્ણન કરનારા જ્યોતિષ અને આયુર્વેદાદિ શાસ્ત્રો પણ નિન્દા કરનારા હોવાથી અગ્રાહ્ય હરે.

ત્રીજો પક્ષ-અમે તે મંત્રોનું કેમ ગ્રહણ કરતા નથી-પણ યોગ્ય નથી. કારણ કે પરધર્મનું આચરણ ન કરવું એ તો શાસ્ત્રસિદ્ધ જ છે. આથી જ યાજ્ઞવલ્ક્યસ્મૃતિના તૃતીયાધ્યાયમાં આપત્તિને સમયે પણ બ્રાહ્મણે હીન-હીનતર-હીનતમથી પણ પ્રતિગ્રહ કરવો શ્રેષ્ઠ છે; પણ ક્ષાત્રવૃત્તિરૂપ પરધર્મ સેવવો નહિ એમ જણાવ્યું છે. આથી શ્રીનન્દનનંદન એવા પ્રભુના ચરણને સાનન્દ-અમન્દરીતે નમીએ છીએ. અન્ય દેવો પ્રભુ સાથે શુદ્ધ અદ્વૈતવાળા હોવાથી અમે તેમને નિન્દતા નથી.

**ચોથાનો સાતમો પ્રશ્ન (એકત્રીસમો પ્રશ્ન) :-** જો શૈવાદિ મંત્રો મોક્ષ આપનારા નથી, તો તેમ પ્રતિપાદન કરતા શાસ્ત્રની સંજ્ઞા શી રીતે થાય ?

**ઉત્તર :-** તમે જણાવો છો તેવું શાસ્ત્રવચન જ દુર્લભ છે. કદાચિત્ તેવું વાક્ય સમ્ભવે, તો તે વાક્ય તામસગુણપરત્વે છે; એ રીતે તેવા શાસ્ત્રાર્થની સડ્ગતિ થાય છે. બુદ્ધિમાન્ પુરુષોની પ્રીતિ ગોપીપતિ એવા પ્રભુના ચરણમાં જ હોય છે.

**ચોથાનો આઠમો પ્રશ્ન (બત્રીસમો પ્રશ્ન) :-** જેને પત્ની નથી, તેવા ગુરુઓને દીક્ષા આપવાનો અધિકાર છે કે નહિ ?

**ઉત્તર :-** ગુરુ પત્નીયુક્ત હોય કે અપત્નીક હોય, જીવોના ઉદ્ધાર માટે યત્નવાળો જ હોય છે. દયાથી તે જો દીક્ષા આપે તો તેને દોષ નથી. જે હંમેશ જ બ્રહ્મચર્યવ્રત ધારણ કરનારા છે, એવા સનકાદિને પણ દીક્ષાદાનમાં અધિકાર છે. ઉદ્યોગપર્વ-ભારતમાં તેમણે વિદુરજીને દીક્ષા આપી એમ જણાવ્યું છે. વળી તેમણે જ ધૃતરાષ્ટ્રને વિજ્ઞાનનો ઉપદેશ કર્યો છે એ તો પ્રસિદ્ધ છે. તેમ જ ભાગવતના ચતુર્થસ્કન્ધમાં પૃથુરાજાને સનકાદિકે ઉપદેશ કર્યો એમ જણાવ્યું છે. નારદપંચરાત્રમાં પણ નારદજીને સનકાદિકે ભગવન્મન્ત્ર-કવચાદિનો ઉપદેશ કર્યો એમ જણાવ્યું છે. નારદજીએ પણ જે આજન્મ બ્રહ્મચારી છે, વ્યાસજીને ભગવન્મન્ત્રની દીક્ષા આપી એમ નારદપંચરાત્ર અને બ્રહ્મવૈવર્તાદિમાં પ્રસિદ્ધ છે. વળી ભાગવત અને ગૌડીયમંત્રમાં પણ નારદે ધ્રુવને દ્વાદશાક્ષર મન્ત્રનો ઉપદેશ કર્યો એમ જણાવ્યું છે. વળી વ્યાસાદિને નારદે જ્ઞાનોપદેશ કર્યોનો ઉલ્લેખ પણ ભાગવત, વગેરેમાં સ્પષ્ટ છે. એ રીતે અપત્નીક નારાયણ મહર્ષિએ સિંહથી લીધેલા બ્રાહ્મણ બાલકને ભગવન્મન્ત્રનો ઉપદેશ કર્યો તે પણ નારદપંચરાત્રમાં છે. એ જ રીતે પુરાણોમાં અન્યત્ર પણ તેવા ઇતિહાસો આંખ ઉઘાડીને જોઈ લેવા.

વળી, જે દિવસે યૌરાગ્ય થાય તે જ દિવસે સંન્યાસ ગ્રહણ કરવો. અવિષ્ણુત બ્રહ્મચર્ય જે આશ્રમમાં ચાહે તેમાં પ્રવેશ કરે ઇત્યાદિ શ્રુતિસ્મૃતિવાક્યોથી આશ્રમસમુચ્ચય પક્ષ સ્વીકારી સંન્યાસાશ્રમ ગ્રહણ કરનારને પણ દીક્ષાદાનનો અધિકાર છે. જેમ શંકરાચાર્યને દક્ષિણામૂર્તિની દીક્ષાનો અધિકાર છે. આથી જ યાજ્ઞવલ્ક્યસ્મૃતિના પ્રાયશ્ચિતાધ્યાયના વાનપ્રસ્થપ્રકરણમાં “સુતન્વસ્તપત્નીકઃ” ઇત્યાદિ વાક્યની મિતાક્ષરામાં વાનપ્રસ્થાશ્રમીનેયેતાનાગ્નિસાધ્યકર્મમાં અધિકારપ્રાપ્ત થાય છે. દીક્ષા પણ દાન જ છે. દાન, ગાય, પૃથ્વી અને સરસ્વતી ભેદે ત્રણ પ્રકારે સામવેદના સંહિતોપનિષદ્ અને બૃહસ્પતિસ્મૃતિમાં જણાવ્યું છે. આથી અમારા સમ્પ્રદાયમાં પરમ્પરાથી નારદ-શુક-અને દેવાદિ આચાર્યો પત્નીરહિત હોવા છતાં દીક્ષા આપે છે; તેમાં શાસ્ત્રનો પણ વિરોધ નથી તેથી પત્નીરહિત ગુરુને પણ દીક્ષાદાનનો અધિકાર છે.

ચતુર્થાષ્ટક સમાપ્ત

### પાંચમો પ્રધાન પ્રશ્ન

**પ્રશ્ન :- અત્યાવશ્યક, તમારો કયો ધર્મ છે ?**

**ઉત્તર :-** સ્વગુરુના મુખથી શ્રીકૃષ્ણના મન્ત્રોનું ગ્રહણ, પ્રભુનું શ્રવણ, કીર્તન સ્મરણ, પાદસેવન, અર્ચન, વન્દન, દાસ્ય, સખ્ય અને આત્મનિવેદન, સ્વાચાર્યદર્શિતરીત્યા અનુષ્ઠિતિ, આ ધર્મ અમારો આવશ્યક ધર્મ છે, કે જે વેદવેદાન્તમાં કહ્યો છે. આ ધર્મ યેષ્ણવત્વપ્રયુક્ત છે. તેમ જ અધ્યાપનાદિ, પ્રજ્ઞાસાધક, વ્યાપારાદિક અને દ્વિજસેવાદિક વર્ણપ્રયુક્ત ધર્મ છે. તે જ રીતે તે તે આશ્રમપ્રયુક્ત ધર્મો પણ છે. તે સર્વ જ આવશ્યક છે. તેમનું અનુષ્ઠાન યથાર્થ રીતે થાય છે જ. તેમાં વર્ણાશ્રમથી પ્રાપ્ત ધર્મપ્રત્યવાયની નિવૃત્તિ માટે કરીએ છીએ. જ્ઞાનમાં અધિકાર પ્રાપ્ત થવા માટે તેમની જરૂર છે, તેથી તેવા ઉજ્જવલ ધર્મોનું અનુષ્ઠાન કરીએ છીએ. તેમના વડે ચિત્તને શુદ્ધ કરીને તે વર્ણાશ્રમધર્મોનું અનુષ્ઠાન જ્ઞાનભક્ત્યાદિની સિદ્ધિ માટે છે. પ્રભુની સેવાદિક ધર્મો સાક્ષાત્ મોક્ષને માટે આચરીએ છીએ. આથી જ અમારા આચાર્યચરણે પણ તે બંને ધર્મો જણાવ્યા છે. વર્ણાશ્રમાદિક જે ધર્મો યેષ્ણવત્વપ્રયુક્ત છે તે જ આચરીએ છીએ. અન્ય દેવતાના મન્ત્રો કે તેમની ઉપાસના અથવા પુત્રેષ્ટ્યાદિ કામ્ય હોવાથી તેમને વર્જ્ય માનીએ છીએ. તે આવશ્યક નથી. અન્ય દેવતાઓની ઉપાસના કરતા નથી તેમાં હેતુ યો વૈ સ્વાં દેવતાં ઈત્યાદિ શ્રુતિથી પ્રાપ્ત થતો નિષેધ જ છે. તેમ જ વાયવ્યં શ્વેતમાલમેત ભૂતિકામઃ ઈત્યાદિ કેવલ કામ્ય કર્મો પણ કરતા નથી. કારણ કે કામના જ નથી. આ બધું અમે વેદાન્તચિન્તામણિમાં વર્ણવ્યું છે જ.

**પાંચમાનો પહેલો પ્રશ્ન (તેત્રીસમો પ્રશ્ન) :-** જો હરિદ્યાનાદિકને તમે આવશ્યક કહો ત્યારે તમારે સંન્યાસાચર્યાદિને અનાવશ્યક કહેવું નોઈએ. ત્યારે તમારા મતમાં વર્ણાશ્રમની ગણના છે કે નહિ ?

**ઉત્તર :-** અંગાંગિત્વે ઉભયમાં વિરોધ કહેવાને કોઈ પણ શ્રુતિયુક્તિને જાણનાર શક્ત નથી. ત્યારે ધ્યાનાદિકની આવશ્યકતાના વિધાનમાં સંન્યાસિકની અનાવશ્યકતા શી રીતે હોય ? પરસ્પર વિરુદ્ધમાંથી કોઈ પણ એકનો સ્વીકાર કરતાં અન્યનું અનાવશ્યકત્વ પ્રાપ્ત થાય. અહીં સંન્યાસવન્દન, ગાયત્રીજપાદિક કાંઈ પ્રભુના ધ્યાનમાં વિરુદ્ધ નથી, પ્રત્યુત અંગાંગિભાવે હોવાથી અનુકૂલ જ છે. તેથી અમે ઉભયને આવશ્યકત્વે સ્વીકારીએ છીએ ત્યારે તમારો આ પ્રશ્ન અવિચારીપણે જ કરાયલો છે.

જેમ જેમ શાસ્ત્રકથા વિચારાય છે તેમ તેમ યોગ્ય વચનો મળતા જ આવે છે. બહુ લજવાથી થાક્યો છું માટે પ્રભુના માર્ગમાં નકામો વાદ ન કરો. ગતિ આપનારા સમ્પ્રદાયમાં વર્ણાશ્રમનું વર્ણન પ્રભુમાં રતિના સુન્દર વિચારના સંયોગથી કરવામાં આવ્યું છે; તે જ સત્સમ્પ્રદાય છે અન્ય નહિ, એમ સમજો.

**પાંચમાનો બીજો પ્રશ્ન (ચોત્રીસમો પ્રશ્ન) :-** જે સંન્યાસિવિહીન હોય તેમાં બ્રાહ્મણત્વ તમને સમ્મત છે કે નહિ ?

**ઉત્તર :-** સૂતકાદિ પ્રતિબન્ધ વિના, નિત્યસંન્યાસિનો લોપ થતાં બ્રાહ્મણત્વ તિરોધાન પામે છે. તેમજ દેવના દેવ એવા રમાપતિ પ્રભુની સેવાદિમાં જે રોકાયલો નથી તેવાનું બ્રાહ્મણત્વ લોપાય છે અને જે વૃથા કર્મલોપ કરે છે તેનું પણ બ્રાહ્મણત્વ નષ્ટ થાય છે એમ શાસ્ત્રથી સુસમ્મત છે.

અહીં બ્રાહ્મણત્વ એટલે બ્રહ્માનનં ક્ષત્રભુજો મહાત્મા આ દ્વિતીયસ્કન્ધ સ્લોકના સુબોધિનીગ્રંથમાં શ્રીમદાચાર્યચરણે બતાવી છે તે દિશાએ બ્રાહ્મણબીજથી પરિણીત બ્રાહ્મણક્ષેત્રમાં ઉત્પન્ન થયેલા શરીરમાં ગર્ભાધાનાદિ સંસ્કારો વડે ઉત્પન્ન થનારી દેવતા છે. સંન્યાસવન્દનાદિના લોપથી, મ્લેચ્છાત્ન-ભક્ષણથી, પ્રતિકૂલ આચરણથી પ્રાયશ્ચિત્ત ન કરે તો તેનું તિરોધાન થાય છે. ફરીથી તેના પ્રાદુર્ભાવ માટે સ્વલ્પ યૈગુણ્યે સ્વલ્પ અને ગુરુ યૈગુણ્યે પુનઃસંસ્કારાદિરૂપ ગુરુ પ્રાયશ્ચિત્તો છે. જેમ શાસ્ત્રોક્તવિધિએ પ્રતિમામાં પ્રતિષ્ઠા કરવાથી દેવતાનો આવિર્ભાવ થાય અને કોઈ કારણે દેવતાનું તિરોધાન થતાં સ્વલ્પ યૈગુણ્યે પ્રોક્ષણ, પંચામૃતસ્નાનાદિકથી પુનઃ પ્રાદુર્ભાવ થાય છે. જો મ્લેચ્છાદિના સંસર્ગથી અતિશય અનાચાર થતાં પુનઃ પ્રતિષ્ઠા કરતાં દેવતાનો પ્રાદુર્ભાવ થાય. તેથી જ્યાં સચ્ચાસ્ત્રોના વિચારથી સ્વચ્છાચારવાળો સત્પુરુષનો માર્ગ છે, ત્યાં અસત્તર્કના સમ્પર્કથી કર્કશ અકસ્માત્ શાથી આવો પ્રશ્ન થાય ?

**પાંચમાનો ત્રીજો પ્રશ્ન (પાંત્રીસમો પ્રશ્ન) :-** સંન્યાસવન્દનાદિ ન કરવાથી પ્રાપ્ત થતું પ્રાયશ્ચિત્ત તમને સમ્મત છે કે નહિ ?

**ઉત્તર :-** તમે બલાત્કારે દેખાડેલું પ્રાયશ્ચિત્ત સમ્મત નથી. કારણ કે તમે બાળકની પેઠે આવા સર્વસમ્મત વિષયમાં પ્રશ્ન કરો છો. ઉપરના પ્રશ્નમાં સંન્યાસ ન કરવાથી બ્રાહ્મણત્વનો અભાવ થાય છે એમ પ્રતિપાદન કર્યું છે. હવે સંન્યાસ ન કરવાથી કેવલ પાપ જ થાય એમ પૂછનારની આ પૂર્વાપરાનુસંધાનની ચતુરતા છે. અસ્તુ. સંન્યાસનો લોપ સફૂત્ કે અભ્યાસથી થતાં જુદા જુદા-પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તો શાસ્ત્રસિદ્ધ છે. તે તે અધિકારીએ પાપનો નાશ કરવા માટે તેવા પ્રાયશ્ચિત્તો કરવાં.

આવા સર્વસમ્મત વિષયમાં કયા આસ્તિકની સમ્મતિ ન હોય ? સન્ધ્યાદિ નિર્મલ કર્મ નિત્ય કરનાર એવા અમને પ્રાયશ્ચિત્તનો પ્રસંગ જ નથી. કારણ કે અમારા ચિત્તમાં હંમેશા હરિ સ્થિતિ કરે છે.

**પાંચમાનો ચોથો પ્રશ્ન (છત્રીસમો પ્રશ્ન) :- ગૃહસ્થાશ્રમીઓને પંચદેવનું પૂજન આવશ્યક છે કે નહિ ?**

**ઉત્તર :-** સર્વ ગૃહસ્થાશ્રમીઓને પંચદેવનું પૂજન આવશ્યક નથી. તેવો શિષ્ટાચાર પણ નથી. પોતાને જે ઈષ્ટ હોય તે જ દેવનું હંમેશા પૂજન કરવું, એમ પ્રામાણિક ઘણા નિબંધોમાં નિર્ણય કર્યો છે. જેમને પંચદેવની દીક્ષા હોય તેમને જ નિત્ય પંચદેવના અર્ચનનો વિધિ છે. જે સમ્પ્રદાયોમાં એકેક જ દેવનું પૂજન છે, તે સમ્પ્રદાયના અનુયાયીઓએ તેનું ઉદ્વેગન સર્વથા ન જ કરવું. હંમેશા દેવાર્ચન કરવું. પણ બહુ દેવની ભક્તિ નિન્દિત છે. બૃહદારણ્યક ઉપનિષદમાં પણ એક જ દેવનું અર્ચન પુણ્યરૂપ છે એમ જણાવ્યું છે. તે જ રીતે સાચામાઘવપ્રભૃતિએ પરાશરસ્મૃતિની વ્યાખ્યામાં નિર્ણય કર્યો છે. કિન્તુ કલિયુગમાં વિષ્ણુ કે શિવ એ બેમાંથી એકનું અર્ચન જ મુખ્ય છે. તેમનું જ કીર્તન કરવાથી કલિના મલનો નાશ થાય છે. વળી સન્ધ્યાવન્દનાદિની પેઠે નિત્યત્વ હોવાથી અને સર્વ વૈદિક કર્મો દેવપૂજામૂલક હોવાથી દરેકે તે અવશ્ય કર્તવ્ય છે જ. તેથી બધાએ શાલગ્રામશિલા અને દ્વારપતી ચક્રનું પૂજન કરવું. અથવા પ્રતિમા સાથે તેમનું પૂજન કરવું. પ્રતિમાનું પૂજન કરવાનો અધિકાર સ્ત્રીઓને અને શૂદ્રોને નથી. માટે તેમણે દ્વાદશાણ દ્વારા પૂજન કરવું. જે નિત્ય અર્ચન કરતો નથી તે પ્રત્યવાચી થાય છે. દેવાર્ચન વિના માણસ નરકનો અધિકારી બને છે, પણ જે શાલગ્રામાદિકનું અર્ચન કરે છે તે નહિ. શાલગ્રામનો મહિમા વર્ણવી શકાતો નથી. સૂતકાદિમાં પણ નિત્ય દેવાર્ચનનો લોપ નથી. ગુરુએ પદરાવી આપેલ સ્વરૂપની સેવા નિત્ય કરવી. એ જ સર્વ દેવનો દેવ છે. મૂર્તિનો ઉત્કર્ષ ભારતવર્ષમાં છે. તેથી શ્રીકૃષ્ણમૂર્તિનું સેવન કરવું, નહિ કે દુર્ગાદિ ઉગ્ર દેવોનું કે જે મોક્ષ આપી શકતા નથી. અન્ય દેવોની સેવા કામ્ય છે અને સાન્ત ફલ છે, અનિત્ય છે. તે અવેદ્યાગરૂપા હોવાથી યેષ્ઠાવોને માટે નિષિદ્ધ છે. આથી જ શાસ્ત્રસેતુરૂપ હેતુઓ વડે વિદ્વાનોમાં પતાકારૂપ પાંડિત્યોએ શ્રીપતિ પુરુષોત્તમની જ સેવા કરવા જણાવ્યું છે.

**પાંચમાનો પાંચમો પ્રશ્ન (સાડત્રીસમો પ્રશ્ન) :- પાર્થિવ પૂજા વિના ભોજન કરવું ઉચિત છે કે નહિ ?**

**ઉત્તર :-** આ પ્રશ્નનો જવાબ ઉપરના પ્રશ્નમાં જ આવી જાય છે. તથાપિ

તથ્ય અને મનુષ્યોને પથ્ય થાય તેમ કહીએ છીએ. કોઈ પણ ઠેકાણે પાર્થિવ પૂજાને નિત્ય કહી નથી. કામ્ય જ કહી છે તેથી પાર્થિવ પૂજા વિના પણ ભોજન કરવાનો ગૃહસ્થને દોષ નથી, ત્યારે પ્રભુના અનન્ય દાસ એવા યેષ્ઠાવોને તો દોષ હોય જ ક્યાંથી ? શૈવને પાર્થિવ પૂજા આવશ્યક છે. અન્યને કામ્ય છે. તે વિના જો ગૃહસ્થાશ્રમી ભોજન કરે તો દોષ નથી.

**પાંચમાનો છઠ્ઠો પ્રશ્ન (આડત્રીસમો પ્રશ્ન) :- બલિ યૈશ્વદેવાદિ કરવું કે નહિ ?**

**ઉત્તર :-** પ્રથમ તો સ્થલભેદે અનાવશ્યક જ છે. છતાં શાસ્ત્રોક્ત રીતે કરવાનું છે. કારણ કે ન કરવાથી પ્રત્યવાચ થાય છે અને કરવાથી સત્ફલની પ્રાપ્તિ છે. સત્ફલ મોક્ષોપયોગી હોવાથી પ્રભુના પ્રસાદથી યેષ્ઠાવે યૈશ્વદેવાદિક કરવાં. અધિકારને અનુસરીને માણસોએ યૈશ્વદેવાદિક કરવાં. કારણ કે નિત્યભૈમિત્તિક કર્મો આવશ્યક છે. જ્ઞાનનિષ્ઠ દ્વિજો જો યૈશ્વદેવાદિક ન કરે તો પણ પ્રત્યવાચ નથી એમ મન્યાદિકના પચનથી સિદ્ધ થાય છે. તેથી તેવો અધિકારી ન કરે તો પણ ક્ષતિ નથી. કાર્ય અને અકાર્યનો વિચાર તો એક પ્રભુ જ જાણે છે. પણ પોતાના આચારને અનુસરી, કુલધર્મને અનુસરી યથાશક્તિ અને યથાબુદ્ધિ કર્મ કરવું. નિર્મલ સત્કર્મ નિરાકુલ રીતે જ બધાએ કરવું. આથી જ પ્રભુએ પણ કહ્યું કે કર્મણો ગહના ગતિઃ ।

**પાંચમાનો સાતમો પ્રશ્ન (ઓગણચાલીસમો પ્રશ્ન) :- ભગવન્નિવેદિતના ગ્રહણમાં વિધિનિષેધની સંગતિ શી રીતે થાય ?**

**ઉત્તર :-** પ્રભુએ નિવેદન કરેલી વસ્તુ પ્રસાદરૂપે પ્રાપ્ત થાય તે મહાભાગ્ય છે. સર્વને તે અત્યન્ત દુર્લભ છે. તેનો ત્યાગ કરે તે અભક્ત કહેવાય. અભક્તને તે અપાય પણ નહિ. નિર્માત્યાદિનો નિષેધ અન્ય દેવતાપરક છે. શિવનિર્માત્યનું ગ્રહણ નથી. નિષેધભ્રમ કરતાં વાક્યોનો નિર્ણય શિવનિર્માત્ય પરત્વે કર્યો છે. તેથી, નિત્ય ભગવદ્ભક્તોએ તો પ્રભુનો પ્રસાદ જ લેવાનો છે. નિવેદન કર્યા વિના કોઈ વસ્તુનું ગ્રહણ નથી. ભગવન્નિવેદિત વસ્તુનું ભોજન કરવા માટે શ્રુતિ, સ્મૃતિ અને પુરાણોમાં વિધાન છે. નિવેદિત પદાર્થના ગ્રહણથી પુણ્યાતિશય થાય છે. તે ચિત્ત શુદ્ધ કરે છે. પાપનો નાશ કરે છે. તેથી પ્રભુનો પ્રસાદ જ લેવો, કે જે અનેક સત્ફલોનો સાધક છે. નિવેદન કર્યા વિના કાંઈ પણ ખવાય જ નહિ. નિવેદન કર્યા વિના લેવાથી અત્યન્ત દોષ પ્રાપ્ત થાય છે. સર્વસાધારણ ગ્રન્થોમાં પણ તેનું વર્ણન વિસ્તાર સાથે મળે છે. પ્રભુને અર્પણ કરેલી વસ્તુઓનું ગ્રહણ કરવાના જે

વિધિવાક્યો છે તેની વ્યવસ્થા પણ કહી છે. આથી પ્રભુનો પ્રસાદ ગ્રહણ કરીને પ્રસન્નતા મેળવવી.

**પાંચમાનો આઠમો પ્રશ્ન (ચાળીસમો પ્રશ્ન) :-** અન્ય દેવતાઓને નિવેદિત અન્ન ભોજ્ય છે કે નહિ ?

**ઉત્તર :-** અન્ય દેવતાઓને નિવેદિત અન્નના ભોજનનો નિષેધ છે. સૌરશાકતાદિ નેવેધના ભોજનનું પ્રાયશ્ચિત્ત નિબંધ ગ્રંથોમાં જણાવ્યું છે. તેમાંય શિવનિર્માલ્યનો સંસર્ગ ન જ કરવો. શિવને નિવેદિત અન્નના ભક્ષણનો પણ કોઈક ઠેકાણે વિધિ છે. તે પણ પંચદેવાર્ચનના અંગત્વે છે, કારણ કે પંચદેવમાં શાલગ્રામ હોવાથી દોષનું શોધન થઈ જાય છે. યેષ્ઠાવોએ તે લેવાનું નથી. કારણ કે યેષ્ઠાવોએ અનન્યવ્રત ગ્રહણ કરવાનું છે. યેષ્ઠાવોની તેવી પરમ્પરા પણ નથી. તેથી અમારે અન્ય કોઈ પણ દેવને સમર્પેલું અન્ન લેવાય નહિ. રમાપતિ પ્રભુની અઘરસુધાથી મિશ્રિત અન્ન જ અમારે ગ્રાહ્ય છે. અમારે તો કન્દર્પના દર્પનું ઠરણ કરનાર, આનંદના સન્દોહનું મંદિર એવા પ્રભુનો જ પ્રસાદ લેવાનો છે.

#### પંચમાષ્ટક સમાપ્ત

#### છઠ્ઠો પ્રધાન પ્રશ્ન

**પ્રશ્ન :-** તમારા માર્ગમાં તિલક કેવું છે અને તે શાથી કરવાનું છે ?

**ઉત્તર :-** અમે નિર્દોષ એવું ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર તિલક જ કરીએ છીએ. તે ગોપીચન્દનથી મિશ્રિત ભગવત્પ્રસાદી કુંકુમાદિ દ્રવ્યથી કરાય છે. આ યેષ્ઠાવનું ચિહ્ન હોવાથી, પાવન હોવાથી, પાપનો નાશ કરનાર હોવાથી, આવશ્યક હોવાથી અને પ્રભુને પમાડનાર હોવાથી કરાય છે.

**છઠ્ઠાનો પહેલો પ્રશ્ન (એકતાલીસમો પ્રશ્ન) :-** તમારા સમ્પ્રદાયમાં શ્રીસ્વામિનીજીને કેવું તિલક કરવાનું વિધાન છે ?

**ઉત્તર :-** ઈશ્વર કાંઈ વેદના વાક્યોથી નિયોજ્ય નથી. પ્રભુને અને શ્રીસ્વામિનીજીને જેવું રુચિર લાગે તેવું જ તિલક કરવું. તેમાં પરમ્પરા જ પ્રમાણ છે. મૃગમદાદિ દ્રવ્યોથી તે થાય છે. પ્રભુને જે દ્રવ્યોથી તિલક થાય તે જ દ્રવ્યોથી શ્રીસ્વામિનીજીને પણ તિલક થાય, તે સ્ત્રીને યોગ્ય આકારવાનું હોય. શાસ્ત્રમાં પણ લોકવત્તુ લીલાકૈવલ્યમ્ ઇત્યાદિ સૂત્રમાં લોકવત્ સર્વ કરવાનું જણાવ્યું છે

તિલક એ પૂજનું અંગ હોવાથી પ્રભુને ઊર્ધ્વપુંડ્રતિલક કોઈ પણ ઉક્ત અને સુંદર દ્રવ્યથી કરવું. આપણો જેવો પરમ્પરાગત આચાર હોય તેમ કરવું. શ્રીસ્વામિનીજીને સ્ત્રીને યોગ્ય લાગે તેવું જ ભક્તોએ તિલક કરવું.

**છઠ્ઠાનો બીજો પ્રશ્ન (બેતાળીસમો પ્રશ્ન) :-** તમારા શિષ્યોને અને તેમની સ્ત્રીઓને સમાન રીતિથી જ તિલક છે કે ચલક્ષણે ?

**ઉત્તર :-** પુરુષોએ ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર કરવાનો વિધિ છે. સ્ત્રીઓને ઊર્ધ્વપુણ્ડ્રનો વિધિ ક્યાંયે નથી. તિલક યેદિક હોવાથી પતિએ કર્યું એટલે તેનું ફલ સ્ત્રીઓને પ્રાપ્ત જ છે. અહીં યેદિકત્વ એટલે વેદમન્ત્રના ઉચ્ચારણપૂર્વક કરવાનો બધો પ્રકાર એમ સમજવું. સ્ત્રીઓએ ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર કરવું નહિ. સુંદર અને સ્પષ્ટ બિન્દુરૂપ જ ચાંદલો કરવો.

**છઠ્ઠાનો ત્રીજો પ્રશ્ન (તેતાળીસમો પ્રશ્ન) :-** દ્રવ્યભેદમાં પ્રમાણ શું છે ?

**ઉત્તર :-** ઊર્ધ્વપુણ્ડ્રતિલકને માટે પ્રભુનું પ્રસાદી ગોપીચન્દનાદિકનું જ ગ્રહણ છે. અથવા પ્રભુનું પ્રસાદી ચન્દન લેવું. તે માટે શાસ્ત્રોમાં ઘણો વિસ્તૃત વિચાર કર્યો છે જ.

**છઠ્ઠાનો ચોથો પ્રશ્ન (ચુવાળીસમો પ્રશ્ન) :-** તિલકના આકાર ભેદમાં પ્રમાણ શું ?

**ઉત્તર :-** માધવાદિકે તિલકના આકાર માટે ઘણા વિસ્તાર સાથે વર્ણન કર્યું છે. તેમાંથી તાત્પર્યરૂપે સ્વપરમ્પરાથી પ્રાપ્ત આકાર જ ગ્રાહ્ય છે.

**છઠ્ઠાનો પાંચમો પ્રશ્ન (પિસ્તાળીસમો પ્રશ્ન) :-** ભારત-મન્વાદિસ્મૃતિ આચારાદર્શ વગેરે ગ્રંથોમાં તિલકનું વિધાન છે કે નહિ ?

**ઉત્તર :-** શ્રુતિમાં, પુરાણમાં અને બધા જ આદિનક ગ્રંથોમાં ઊર્ધ્વપુણ્ડ્રનું વિધાન છે અને તે સર્વને માન્ય છે. તથાપિ, છે કે નહિ ? એવો સંશય જ કેમ ઉદ્ભવે છે ? શંકારૂપી કાદવમાં તમારું ચિત્ત દૂષિત થયેલું છે તેને શ્રુતિસ્મૃત્યાદિરૂપ નિર્મલ જલથી શુદ્ધ કરવું જોઈએ.

**છઠ્ઠાનો છઠ્ઠો પ્રશ્ન (છેતાળીસમો પ્રશ્ન) :-** આથી જ તિલકની આવશ્યકતાનું પ્રયોજન શું ?

**ઉત્તર :-** પ્રશ્નકારનો આશય એવો હોવો જોઈએ, અત્ત એવ આ તસિલ પ્રત્યયાન્તસર્વનામથી એમ સમજાય છે કે પૂર્વોક્ત ભારતાદિગ્રંથોમાં તિલક ઉક્ત નથી; તો તેની જરૂર શી ? નો જરૂર હોય તો ભારતાદિ ગ્રંથોમાં જણાવ્યું હોત. જ્યારે તેમાં જણાવ્યું નથી, ત્યારે તેની જરૂર નથી, એમ સમજાય છે.

તમારા આ પ્રશ્નનો જવાબ પહેલાં જ અપાઈ ગયો છે. તમે કહો છો કે તિલકનું વિધાન નથી, જ્યારે અમે તેનું પ્રતિપાદન સર્વ ગ્રંથોમાં છે એમ કહ્યું છે. તેથી હવે આ પ્રશ્ન હેતુના અભાવે આવી શકે નહિ. તથાપિ જેમ તમે પ્રશ્ન પૂછવાની ઉત્સુકતા સેવી છો, તેમ અમે પણ ઉત્તર આપવાની ઉત્સુકતા સેવીએ છીએ, કારણ કે યેષ્ઠાવોને કોઈ પૂછનાર નથી તેથી તેમના હૃદયમાં અસન્તોષ રહે છે. સર્વ જ આહિનકના ગ્રંથોમાં સંન્ધ્યાપન્દનાદિની પેઠે તિલકની નિત્યતા જણાવી છે. તિલક વિના કરેલું સર્વ કર્મ નિષ્ફલ થાય છે. અગ્નિહોત્રની સાથે તેની તુલનાનો અતિદેશ હોવાથી પણ નિત્ય છે. તિલક ધારણ ન કરે તો દોષ છે. તેથી સર્વને ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર આપંચક છે. તેની આવશ્યકતા સર્વસાધારણ ગ્રંથોમાં છે. ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર જ શૈવોએ અને યેષ્ઠાવોએ સદા કરવું એમ અમે ટકિલા વાક્યોમાં મળી આવે છે. માટે ઉદાર દિલથી સર્વકોઈએ ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર જ કરવું એમ સમજી લેવું.

**છઠ્ઠાનો સાતમો પ્રશ્ન (સુડતાલીસમો પ્રશ્ન) :- જુદા પ્રકારના તિલકની નિંદામાં પ્રમાણ શું છે ?**

**ઉત્તર :-** અમે કમલનયન એવા પ્રભુના ચરણકમલના ભ્રમર છીએ, તેથી અમે કોઈપણ વિજાતીય તિલકાદિની નિંદા કરતા જ નથી. જે ખરા અદ્વૈતવાદી શિષ્ટપુરુષો છે, તે નિન્ધ વસ્તુની ચે નિન્દા કરતા નથી. ત્યારે જે શાસ્ત્રમાં જણાવ્યું હોય તેની તેઓ નિન્દા શી રીતે કરે ? શુનિ ચૈવ શ્વપાકે ચ પણ્ડિતાઃ સમદર્શિનઃ । કૂતરો અને ચંડાળ પ્રત્યે પણ પંડિતો સમદર્શી હોય છે. \* એ ન્યાયે આચાર્યોએ કશાની જ નિન્દા કરી નથી. માત્ર અમે અન્યધર્મત્વે અન્યનું ભજન ન કરીએ. કારણ કે સ્વધર્મમાં મરણ પણ શ્રેયસ્કર છે અને પરધર્મ ભયાપહ છે.

તમે અન્ય તિલકધારણ કરતા નથી માટે અધારણત્વે નિન્દા થઈ એમ જો કહો તો સ્વશાખીય કર્મ કરતાં પરશાખીય કર્મની પણ નિન્દા પ્રાપ્ત થાય. માટે કહું છું કે દર્પણમાં મુખ જોઈ લો. સુરૂપ કુરૂપનું ભાન તમને તમારી મેળે જ થશે.

બ્રાહ્મણોએ ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર જ ધારણ કરવું. કારણ કે બ્રાહ્મણને માટે તેનો વિધિ છે. ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર એ વિષ્ણુચિન્હ છે અને બ્રાહ્મણોએ વિષ્ણુચિન્હ જ ધારણ કરવું જોઈએ એમ શાસ્ત્રો કહે છે. તેથી બ્રાહ્મણોએ ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર વિના ત્રિપુણ્ડ્રાદિધારણ ન કરવું. બ્રાહ્મણનું ત્રિપુંડ્રધારણ કરવું શાસ્ત્રનિષિદ્ધ છે. અમે

\* સમદર્શિત્વે, ઈશ્વરશાસ્ત્રે વેદ છે, નહિ કે વ્યવહાર્યત્વે. વ્યવહાર તો તત્ત્વજ્ઞસ્તુગત છે. ઘડો અને શકોઈ બંને મુન્નારાશત્રે વેદ છે, નહિ કે તત્ત્વજ્ઞચવહાર્યત્વે, વ્યવહાર તત્ત્વજ્ઞસ્તુનિયત છે. વેદતા કાર્યકારણભાવનિયત છે. આ રહસ્ય સમજીને વર્તવું.

વિજાતીયમાં પણ નિન્દા કરવાનું જાણતા નથી. (અમે નિન્દા મેળવી જ નથી) માટે અમારે નિન્દાના પ્રમાણની શોધ કરવાનું પ્રયોજન નથી.

**છઠ્ઠાનો આઠમો પ્રશ્ન (અડતાળીસમો પ્રશ્ન) :- વિજાતીય તિલકનો અંગીકાર કરવામાં દોષ છે, તેમાં પ્રમાણ શું ?**

**ઉત્તર :-** તિલકની આવશ્યકતાનું પ્રયોજન શું, એમ તમે પૂછેલું તેના જવાબમાં અમે બધું કહી દીધું છે. તેમાં આ પ્રશ્ન ગતાર્થ છે. છતાં કહીએ છીએ કે વિહિત આવશ્યકને ધારણ ન કરવું એ જ દોષ છે. ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર વિનાના માણસને જોઈ ને સૂર્યનું દર્શન એ પ્રાયશ્ચિત પણ બતાવ્યું છે. જ્યારે ઊર્ધ્વપુણ્ડ્ર રહિતનો શ્રીકૃષ્ણ ત્યાગ કરે છે, તેથી હવે આથી વિશેષ બીજો કયો દોષ કહેવો ?

શાસ્ત્રમાં સંગત એવા ઊર્ધ્વપુણ્ડ્રને માટે આઠે પ્રશ્ન સાથે આ પ્રશ્નનો ભંગ કર્યો. ઉત્તર આપનારનું મંગલ થાઓ.

ષષ્ઠાષ્ટક સમાપ્ત

### સાતમો પ્રધાન પ્રશ્ન

**પ્રશ્ન :-** સર્વ શાસ્ત્રને સમ્મત શિવ-વિષ્ણુનો અભેદ તમને સમ્મત છે કે નહિ ?

**ઉત્તર :-** સ્વર અને અક્ષરથી પર ભગવાન પુરુષોત્તમ છે. તે નિર્ગુણ, અનન્તગુણ, અચિન્ત્ય અને અનન્તશક્તિમાન છે; નિત્ય, અનન્ત, નિજ-અભિન્ન એવા અચિન્ત્ય ધર્મનો આશ્રય છે, મહાન છે. તે જ સત્-ચિત્-ગણિતાનન્દ એવો અક્ષર છે. મુણ્ડક, બૃહદારણ્યક અને કઠવલ્લી ઉપનિષદોમાં એમ સ્ફુટ પ્રતિપાદન કર્યું છે. સત્પાદિક પ્રકૃતિના ગુણો અક્ષરને ઉપધાન કરે છે. સત્ત્વથી ઉપહિત વિષ્ણુ રજસ્થી ઉપહિત બ્રહ્મા અને તમસ્થી ઉપહિત મહાદેવજ છે; એમ એક જ બ્રહ્મ ત્રિધા છે. ઉપાધિભેદે તેઓ ભિન્ન છે અને બ્રહ્મભાવે અભિન્ન છે. તેથીએ અન્ય ઉત્તમ પુરુષ છે, કે જે પરમાત્મા કહેવાય છે. એ ભગવાન એક માત્ર ભક્તિથી જ લભ્ય છે. નિર્ગુણ છે અને સર્વનું કારણ છે. દાસ્યવાળા એવા અમારે વૃથાશ્રમ દૂર કરી એની જ સેવા કરવાની છે. વેદાદિમાં તેના ભેદ-અભેદ વર્ણવ્યા છે. પણ ભક્તોના દુઃખોનું છેદન કરવા માટે પુમાન-પુરુષોત્તમ પૃથક્ છે. સર્વથી પર છે.

**સાતમાનો પહેલો પ્રશ્ન (ઓગણપચાસમો પ્રશ્ન) :-** તેમાં, જો અભેદ સમ્મત છે, તો તેવો ઉપદેશ કેમ કરતા નથી ? પ્રત્યુત શિવપૂજાદિનો નિષેધ કેમ કરો છો ?

**ઉત્તર :-** શું અહીં અભેદ શબ્દથી અભેદનો ઉપદેશ જ વિવક્ષિત છે કે મન્ત્રોપદેશ ? જો કેવલ અભેદોપદેશ વિવક્ષિત હો તો અમારા આચાર્યોએ ભાષ્ય, સુબોધિની વગેરેમાં ઉપદેશો લે છે જ. (નિર્ણય છે જ) તે તે ગ્રન્થોના અધ્યયન સમયે શિષ્યોને પણ ઉપદેશ કરે છે, માટે તમારો આ પ્રશ્ન વ્યર્થ છે. જો મન્ત્રોપદેશ માટે કહો તો ચોથા પ્રધાન પ્રશ્નમાં પાંચમાદિ પ્રશ્નોના ઉત્તરમાં તેનો જવાબ જોઈ લેવો.

શિવપૂજાદિકનો નિષેધ કેમ કરો છો એમ જે પૂછ્યું, તે સત્ય છે, અમે તેનો નિષેધ કરીએ છીએ. તમે એમ જ કહેવા માગો છો ને કે જ્યારે શિવ-વિષ્ણુનો અભેદ સ્વીકારો છો ત્યારે જેમ વિષ્ણુ રામ-કૃષ્ણાદિ રૂપોનું ઉપાસન કરો છો તેમ શિવનું પણ ઉપાસન તમારે કરવું જોઈએ, કારણ કે તે વિષ્ણુથી અભિન્ન છે ? આનો જવાબ એ છે કે તાદાત્મ્યરૂપ અભેદ ગુણાવતારનો જ શિવ-વિષ્ણુનો છે. જો અમે ગુણાવતાર એવા વિષ્ણુના ઉપાસક હોઈએ તો તમે કહો છો તેમ શિવોપાસના પણ પ્રાપ્ત થાય. જો અમે ગુણાવતારના ઉપાસક ન હોઈએ તો પ્રાપ્ત ન થાય. અમે તો સર્વકારણરૂપ એવા સર્વેશ્વર પુરુષોત્તમની સેવા કરીએ છીએ. તેથી તેની સેવામાં જ સર્વદેવોની ઉપાસના ગતાર્થ છે. અમારે તો સકલનો દેવ, દેવાદિદેવ, લક્ષ્મીપ્રિય એવા પુરુષોત્તમ પૂજ્ય છે. તેથી પ્રયોજનના અભાવે વામદેવાદિક અન્ય પૂજ્ય ન હોઈ શકે. અન્ય દેવોનો દ્વેષ અમે કરતા જ નથી. શાખાધિકરણન્યાયે કેલવ સ્વધર્મનું આચરણ માત્ર અમે કરીએ છીએ. અમને અમારા ગુરુ શિવે જે સમ્પ્રદાય દેખાડ્યો છે તેને અમે અનુસરીએ છીએ.

**સાતમાનો બીજો પ્રશ્ન (પચાસમો પ્રશ્ન) :-** જો (શિવ-વિષ્ણુમાં) ભેદ હોય તો શાસ્ત્રોક્ત દોષભાગી થાય ?

**ઉત્તર :-** જે લોકો શિવ અને વિષ્ણુમાં ભેદ છે એમ કહે તેઓ ભલે દોષભાગી થાય. (અમે કહેતા નથી, એટલે અમને તે દોષ પ્રાપ્ત નથી.) અમે તો તેમના તાદાત્મ્યે અભેદ જ વર્ણવ્યો છે. અથવા, તેમનો અભેદ છે એમ કહેવું એ પણ ન્યૂનતા દેખાડ્યા જેવું છે. કારણ કે જેઓ “આ સર્વ જ બ્રહ્મ છે”, “અહીં નાના-અનેક-કાંઈ પણ નથી”, “આ સર્વ આત્મભાવે જ છે” ઇત્યાદિ શ્રુતિયોને જોનારા છે, તેઓ તો સર્વ શુદ્ધ અદ્વૈતરૂપે જ જુએ છે. તેમને વિષે દોષ પ્રાપ્ત કેમ થાય ? અર્થાત્ ન જ થાય.

**સાતમાનો ત્રીજો પ્રશ્ન (એકાવનમો પ્રશ્ન) :-** વળી, પૂર્વના આચાર્યોએ જેમ ભારતાદિની ટીકામાં વિરોધનો પરિહાર કર્યો છે તે પ્રમાણ છે કે નહિ ?

**ઉત્તર :-** પ્રથમ તો ભારતાદિના ટીકાકારો શ્રીધર, ચતુર્ધર વગેરે આચાર્યપદવીએ પહોંચેલા ન હોવાથી તેમનું આચાર્યત્વ જ સ્વરૂપથી અસિદ્ધ છે. પ્રથમ જે આચાર્યનું લક્ષણ દેખાડ્યું છે તેનો તેઓમાં સમન્વય થતો નથી. કેવલ પૂર્વત્વથી જ પૂર્વાચાર્યત્વ કહેવાય નહિ. જો તેમ થાય તો વિશેષ્યાભાવ પ્રયુક્ત વિશિષ્ટાભાવ દુષ્પરિહાર્ય થાય. જો એમ કહેવા ઇચ્છતા હો કે પૂર્વાચાર્ય શંકરાદિક અને ટીકાકાર શ્રીધરાદિકે કરેલા નિર્ણયોમાંથી ક્યાનું પ્રામાણ્ય છે ? તો ત્યાં સમુચ્ચયવાચક ચ શબ્દ જોઈએ.

હવે ઉત્તર પણ સાંભળો. પહેલાં જ “ભેદમાં સમ્મતિ છે કે નહિ” આ પ્રશ્નમાં જ અમે જણાવ્યું છે કે અમારા આચાર્યને વેદાદિચતુષ્ટય પ્રમાણ ઇષ્ટ હોવાથી વેદાદિને અનુકૂલ જે કાંઈ હોય તે પ્રમાણ છે અને વિરુદ્ધ હોય તે અપ્રમાણ છે. આથી જ ભારત-ભાગવતાદિ ટીકાર્થ વિરોધપરિહારનું પ્રામાણ્ય કે અપ્રામાણ્ય શ્રુત્યાદિના વિરોધ અવિરોધે તમારે સમજી લેવું જોઈએ. અમારા સમ્પ્રદાયમાં શ્રીમદાચાર્યચરણ, શ્રીવિક્કલાચાર્ય, શ્રી પુરુષોત્તમજી, શ્રીગિરિધરજી ઇત્યાદિએ સુબોધિની, ટિપ્પણી, પ્રકાશ, બાલપ્રબોધિની વગેરે ભાગવતની ટીકાઓ કરી છે. સામ્પ્રદાયિક શિષ્યોએ પણ ગોપાલભટ્ટ, બાલકૃષ્ણભટ્ટ, પ્રજનાથભટ્ટ વગેરેએ ટીકાઓ લખી છે. તેમાં શ્રુત્યાદિકને અનુસરીને વિરોધપરિહાર કર્યો છે. તેમાં અમારે માટે પ્રમાણ છે. જો ટીકાત્વે સર્વ જ ટીકાઓનું પ્રામાણ્ય કહેતા હો, તો ટીકાત્વે અમારા સમ્પ્રદાયની ટીકાઓનું ચે પ્રામાણ્ય તમે કેમ સ્વીકારતા નથી ? ટીકાત્વે અવિશેષ તો તેમાંયે છે જ. જો એમ કહેશો કે ભિન્ન સમ્પ્રદાય હોવાથી અમે તેમનું પ્રામાણ્ય સ્વીકારતા નથી. ત્યારે એજ અમારો ચે જવાબ છે. તવ પુરુષં વદન્ત્યર્થિલશક્તિઘૃતોઽશમ્ ઇત્યાદિ સ્થલમાં અંશ ઇવ અંશઃ કૃત્ત ઇવ એ રીતે વ્યાખ્યાન કરનારને અને ગીતામાં “આસુરં પાર્થ મે શૃણુ” થી શરૂ કરી “અસત્યમપ્રતિષ્ઠન્તે જગદાહુર્નીશ્વરમ્” ઇત્યાદિમાં જણાવ્યા મુજબ જગત્ના અસત્યત્વવાદનો પ્રતિષેધ કરનારા વાક્યોનો અસત્યમિતિ નાસ્તિ સત્યં વેદપુરાણાદિપ્રમાણં યસ્મિન્ તાદૃશં જગદાહુઃ એ રીતે વિચિત્ર વ્યાખ્યાન કરનારને શી રીતે પ્રમાણત્વે સ્વીકારીએ ? તેથી અમારા આચાર્યોએ શ્રુત્યાદિના વિરોધનો જે પરિહાર કર્યો છે તે જ સર્વાંશે પ્રમાણ છે. ઇતર વ્યાખ્યાનકારોએ કરેલા વ્યાખ્યાનો શ્રુત્યાદિથી અવિરુદ્ધ હોય તે જ પ્રમાણ છે.

**સાતમાનો ચોથો પ્રશ્ન (બાવનમો પ્રશ્ન) :-** જો (અન્ય ટીકાકારોનો નિર્ણય) પ્રમાણ છે તો તમારા ગ્રન્થોમાં વિરુદ્ધ રીતે વર્ણન કેમ કર્યું છે ?

**ઉત્તર :-** અમે સમ્પૂર્ણ રીતે અન્ય ટીકાકારોનું પ્રામાણ્ય જ સ્વીકાર્યું નથી,

ત્યારે તેની સ્વીકૃતિવાળો આ પ્રશ્ન જ ઉપસ્થિત થઈ શકતો નથી. અમારા સમ્પ્રદાયનો સિદ્ધાન્ત અનાદિ છે અને શ્રુતિસમૃત્યાદિને સમ્મત છે. કેટલાક વેદ-પુરાણાદિના વ્યાખ્યાતાઓએ તેથી વિરુદ્ધ વ્યાખ્યાન કર્યું, ત્યારે તેનું ખાલન કરીને સત્સિદ્ધાન્તની પ્રવૃત્તિને અર્થે ઈશ્વરાજાથી અમારા આચાર્યનો અવતાર થયો. તેમણે પ્રમાણ-યુક્તિરૂપી દાવાનળથી દુર્વાદરૂપી કાનનને દગ્ધ કરીને શ્રુતિસ્મૃતિને અનુસરીને નિર્ણય કર્યો છે. તેથી પ્રાચીન શ્રુતિસ્મૃતિ સાથે અમારો વિરોધ નથી. અર્વાચીનોની વાણી સાથે વિરોધ હોય તો તેથી ક્ષતિ પણ નથી.

**સાતમાનો પાંચમો પ્રશ્ન (ત્રેપનમો પ્રશ્ન) :- જો (અન્ય ટીકાકારો) અપ્રમાણ છે, તો તેઓ વિજ છે કે અજ ?**

**ઉત્તર :-** તેઓ અર્થવિરોધમાં વિજ જ છે. તેમણે કરેલા ટીકાદિ ગ્રંથોમાં પોતપોતાના અભિપ્રાયથી વેદાદિનું લાપન કરવાનું ચાતુર્ય કર્યું છે, વિરોધપરિહાર માટે વિવિધ પ્રકારની યુક્તિઓ જણાવી છે અને પોતે અભ્યાસ કરેલા વિષયોનું પાંડિત્ય પણ પ્રદર્શિત કર્યું છે એમ પ્રત્યક્ષપણે અનુભવાય છે. પણ તેઓ સર્વાર્થજ્ઞ તો નથી જ. કારણ કે તેમના તે ગ્રંથોમાં અર્થવિરોધમાં તેમના કરતાં વધારે વિજ્ઞોએ તેમના દૂષણો પણ દેખાડેલા મળી આવે છે જ.

**સાતમાનો છઠ્ઠો પ્રશ્ન (ચોપનમો પ્રશ્ન) :- જો વિજ હોય તો તેમનો લેખ પ્રમાણ જ છે.**

**ઉત્તર :-** તેઓ વિજ જ છે. સર્વજ્ઞ નથી. જો સર્વજ્ઞ હોત તો તેમના જ વાક્યોમાં પરસ્પર વિરોધ ન હોત. જ્યારે પરસ્પર વિરોધ તો દેખાય છે જ. તમારા અભિમત ગ્રંથકારોના રત્નપ્રભા, ભામતી, કલ્પતરુ વગેરે ભાષ્યનાં વ્યાખ્યાનોમાં પરસ્પર વિરોધ અને પોતપોતાના અભિપ્રાય મુજબ ભાષ્યના અર્થને યોજેલો દેખાય છે. વળી કેટલાક તમારા જ પક્ષવાળાઓએ સ્વીકારેલા પ્રતિબિમ્બવાદને તમારા જ બીજાઓ અવચ્છિન્નવાદનો આશ્રય લઈને દૂષ્ય ઠરાવે છે. એ જ રીતે ન્યાય-વ્યાકરણમાં એ દેખાય છે. ત્યાં એ પ્રાચીન અને અર્વાચીનનો મતભેદ છે. ધર્મશાસ્ત્રાદિમાં એ તેવો જ વિરોધ છે. માધવ અને વિજ્ઞાનેશ્વરમાં તેવા વિરોધો સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. તેથી જો તેઓ સર્વજ્ઞ હોત તો તેમની અંદર પરસ્પર વિરોધ કેમ થાત ? એક સર્વજ્ઞના વચનને બીજો સર્વજ્ઞ કેમ દૂષ્ય માને ? આથી જ તેઓ વિજ હોવા છતાં સર્વજ્ઞ ન હોવાથી તેમના લેખનું સર્વરીતે પ્રામાણ્ય કોઈ પણ ન જ સ્વીકારે. તેઓ અજ પણ નથી ને સર્વજ્ઞ પણ નથી. કેવલ વિજ છે.

તેથી તેમના લેખનું પ્રામાણ્ય સર્વાંશે નથી.

**સાતમાનો સાતમો પ્રશ્ન :- (પંચાવનમો પ્રશ્ન) :- જો તેઓ અજ હોય તો આખા જગત્થી વિરુદ્ધ કહેનારા તમે કેવા ?**

**ઉત્તર :-** અમે તેમને વિષે સર્વથા અજ્ઞત્વનું ઉપપાદન કર્યું નથી. તેમ અમે આખા જગત્થી વિરુદ્ધ બોલનારા એ નથી. અમારા જેવા જ જગત્માં ઘણા છે. જો કેટલાક અનભિમતવાદીઓને સર્વજગદ્વિરુદ્ધ કહી શકાતું હોય તો અનાદિસિદ્ધ એવા યેષ્ઠાવમતો તમે તમારા ગ્રંથોનો અનુવાદપૂર્વક ઉલ્લેખ કરી તેમનું ખંડન કરો છો, ત્યારે તમારે વિષે પણ સર્વજગદ્વિરુદ્ધવાદિત્વ પ્રસરે જ. વળી, જગત્ને સ્વજુ ભુજંગની પેઠે અસત્ય, અપ્રતિષ્ઠિત અને અનીશ્વર કહેનારા જ ખરી રીતે જગદ્વિરુદ્ધવાદી છે. નહિ કે જગત્ને ઈશ્વરકર્મત્વે તાદ્રૂપ્યે સ્વીકારનારા અમે.

**(પુષ્ટિમાર્ગીય વૈષ્ણવ કેવો હોય ?)**

**ઉત્તર :-** હવે તમે જે આક્ષેપ કર્યો કે તમે કેવા ? તે પણ સાંભળો-સર્વ વેદશાસ્ત્રમાં પ્રસિદ્ધ એવા સમ્પ્રદાયના અનુયાયી અમે છીએ. જ્યાં સુધી ભૂમંડલમાં વેદ વિભાગ છે, ત્યાં સુધી વર્ણવિભાગ છે, ત્યાં સુધી ચારે વર્ણના અભિમત શિષ્યોથી સમ્પન્ન, શિવાદિ સર્વ વૃન્દાસ્કવૃન્દે જેના પદારવિન્દને વન્દન કરેલું છે એવા નન્દનન્દના ચરણનલિનના મિલિન્દ, વેદવ્યાસ, વિષ્ણુસ્વામી, શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યચરણના અનુચર, તેમની કૃપાથી વેદાદિના પ્રમાણના ઘોષવાળા પક્ષના પાતથી તન્મૂલક (વેદમૂલક) સદ્યુક્તિના સમૂહની આંચવડે વિવિધ-વિષયી મહાન્ એવા દુર્વાદિ-સર્પના ભોગનું વિદલન કરવાની સાર્થશક્તિ છે, દ્વિજરાજ સ્વભાવ છે, જેમનો એવા; અત્યારના પણ અમારા આચાર્યચરણો-તે વલ્લભાચાર્યના ચરણરજને જ ઘન માનનારા હોવાથી તેમની અનુક્રમ્પાથી વાદયુદ્ધમાં અવિકમ્પ એવા અમે શું તમારા અજાણ્યા છીએ, કે એ રીતે કહો છે ? અથવા હરિભક્તોપર કલિકાલને અનુકૂલ એવો આ તમારો આક્ષેપ યુક્ત જ છે. માધવીય આચારકાણ્ડના પ્રથમાધ્યાયના વ્યાખ્યાનમાં વિષ્ણુપુરાણનું વાક્ય છે કે -

જ્યારે જ્યારે વેદમાર્ગને અનુસરનારા સત્પુરુષોની હાનિ થાય, ત્યારે ત્યારે સારા બ્રાહ્મણોએ કલિની વૃદ્ધિનું અનુમાન કરી લેવું. વેદવાક્યોપર પ્રીતિ ન રહે અને પાષણમાં રતિ થાય, ત્યારે ત્યારે કલિની વૃદ્ધિનું અનુમાન ઉત્તમ બ્રાહ્મણોએ કરવું.

એ, ભલે હો. તથાપિ અમારે એવા અકલ્યાણવાદો ન જ કહેવા. તેમ વિતણ્ડથી શુષ્ક ચેર પણ ઉત્પન્ન ન કરવું. શાતાતપસ્મૃતિમાં કહ્યું છે કે -



હમ્મેશા ભદ્ર જ બોલવું. શુષ્ક ઘેર અને વિવાદ કોઈની સાથે કદી પણ કરવો નહિ.

સાતમાનો આઠમો પ્રશ્ન (છપ્પનમો પ્રશ્ન) :- જે તમારો દ્રેષ કરે છે, તે મારો દ્રેષ કરે છે, જે તમને અનુસરે છે, તે મને અનુસરે છે, જે તમારી ઉપાસના કરે છે તે મારી ઉપાસના કરે છે,” ઈત્યાદિ વાક્યોનો અર્થ પણ કઈ રીતે થાય તેનું વિવેચન કરો.

ઉત્તર :- તપ અને વ્રતાદિસહિત ભક્તિથી ભક્તોને વશ થયેલા ભક્તવત્સલ ભગવાન શિવાદિને કે જેઓ પરમભક્ત છે, આવા વાક્યો કહે તો તેમાં આશ્ચર્ય શું ? અર્જુનાદિ ભક્તોને પણ એમ જ કહ્યું છે. સિત્તોતેરે નાડિયોની અન્દર હૃદયમાં રહેનાર પ્રભુની કૃપાથી આ સાતમો પ્રશ્ન પણ આઠે અંગો સાથે સઘઃ મારાથી ઉત્તરિત છે.

સમમાજક સમાપ્ત



## શ્રીમદ્ ભાગવતનું પ્રામાણ્ય

લેખક : શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રી, મી.શા.વે.વિ. M.R.A.S.

નાશ્રિતો વલ્લભાધીશો ન ચ દૃષ્ટા સુબોધિની ।

નારાધિ રાધિકાનાથો વૃથા તઙ્ગન્મભૂતલે ॥

સંપૂર્ણ સંસ્કૃતવાદ્મયમાં શ્રીમદ્ભાગવત જેવા પરાત્પર અને નિરુપાધિક શ્રીકૃષ્ણની ભક્તિનું પ્રતિપાદન કરનાર અન્ય ગ્રંથ મળવો મુશ્કેલ છે. ભક્તિ રસ છે. રસ એટલે વિભાવ, અનુભાવ અને સાત્ત્વિકાદિભાવો વડે અનુનીયમાન સ્થાયીભાવ. જેમ ભક્તિ રસ છે, તેમ રસાત્મા શ્રીકૃષ્ણ. રસો વૈ સઃ ઈત્યાદિ શ્રુતિઓ અને આનન્દમયોડ્મ્યાસાત્ ઈત્યાદિ સૂત્રો પ્રભુની રસાત્મકતા સિદ્ધ કરે છે. આ બંનેનું ઐક્ય સાધનાર શ્રીમદ્ભાગવત વિના અન્ય નથી.

શ્રીમદ્ભાગવત પુરાણ છે.

શ્રીમદ્ભાગવતની ગણના મહાપુરાણમાં થાય છે. સામાન્ય રીતે પુરાણશબ્દ ઉપરથી સૃષ્ટિક્રમ, મન્યન્તરકથા, વંશવર્ણન, ભગવદ્ચરિત્રો વગેરેથી યુક્ત ગ્રંથનો જ બોધ થાય છે. વાસ્તવિક રીતે જોતા પુરાણશબ્દ આવા સંકુચિત અર્થ વાળો નથી. ઇતિહાસપુરાણાભ્યાં વેદં સમુપવૃંહયેત્ । વિભેત્યત્પશ્ચુતાદ્વેદો મામયં પ્રહરિષ્યતિ ઈત્યાદિ વાક્યોથી વેદાર્થનું ઉપબૃંહણ કરવા માટે જ પુરાણો છે. વેદાર્થનો વિસ્તાર, આ એકજ પ્રયોજન હોવાથી પુરાણોની મહત્તા વેદાર્થને સમજાવવામાં જ છે. પ્રાચીન સભ્યતા કે સંસ્કૃતિ અથવા રાજાઓ તથા ભક્તોના ચરિત્રોનું વર્ણન કરનારા પુરાણો છે, આટલું જ જે લોકો માને છે, તેઓ મ્હોટી ભૂલ કરે છે. પુરાણોનું વાસ્તવિક સ્વરૂપજ્ઞાન જેમણે મેળવ્યું નથી, તેઓ ગમે તેવા આક્ષેપો કરે, તે માત્ર પ્રમત્તપ્રલાપજ કહી શકાય. જ્યાં સુધી મૂલ લેખક અને ગ્રંથનું સત્યસ્વરૂપ જાણ્યું નથી, ત્યાં સુધી તેના વિષયમાં અમુકપ્રકારનું મતપ્રદર્શન કરવું સર્વથા અયોગ્ય છે. અત્યારે આપણા સમાજમાં કાઈસ્ટ ઉપરથી કૃષ્ણ અથવા ડાયાનીસ કે હીરાકલીસ ઉપરથી દ્યનિસાદૃશ્યને પ્રમાણ માનીને દક્ષ કે હરિ શબ્દ શોધી કાઢનારા અને તેજ મન્તવ્ય સાચું છે, એમ માનનારાઓની સંખ્યા ઓછી નથી. દ્યનિસાદૃશ્યથી કેટલો અનર્થ થયો છે, તે કાલનિર્ણયના પ્રકરણમાં સમજાવીશું, જેમ દ્યનિસાદૃશ્ય ઉપરથી જ અમુક પ્રકારની કલ્પના કરાય છે, તેમ પુરાણોના કથા ભાગો ને સમજી શકવાથી કે સમજવાની દરકાર વિના પુરાણો માટે પણ અનેક પ્રકારની ભ્રામક કલ્પનાઓનો પણ

સાહિત્યમાં સમાવેશ થયો છે. શ્રીસુબોધિનીજીનું પ્રયોજન શ્રીમદ્ભાગવતનું સત્યસ્વરૂપ જનસમાજ સમક્ષ રજુ કરવાનું છે, અમે નિષ્પક્ષપાત પણે પુરવાર કરી આપીશું કે પુરાણો કેવલ કિંવદન્તીઓ ઉપર આધાર રાખીને અમુક પ્રકારની ગાથાઓનું વર્ણન કરનારા ગ્રંથો જ નથી: કિન્તુ હિન્દુ સંસ્કૃતિનું મહાર્થ સ્વરૂપ સમજાવનારા વેદોના જેટલું જ પ્રામાણ્ય ધરાવે છે. અને તેમાંથી શ્રીમદ્ભાગવત મૂર્ધન્ય છે. વિદ્વાનોએ લક્ષમાં રાખવાનું છે, કે આ પંક્તિઓ અમારું ધ્યેય નથી, અથવા તો અમે પ્રથમથી આ પ્રકારનો વિચાર બાંધીને પ્રસ્તુત લેખમાં પ્રવૃત્ત થયા છીએ, એમ પણ માનવાનું નથી. ઉપરની પંક્તિઓ પ્રમાણો દ્વારા સિદ્ધ થયેલા ઉપસંહારનું એક જણાવવા માટે ઉપક્રમ સ્થાનાપત્ર છે.

### પુરાણો શાસ્ત્ર છે.

ભગવાન્ ભાષ્યકાર શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી તત્ત્વાર્થટીપનિબંધના શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણની સમાપ્તિમાં આજ્ઞા કરે છે, કે-

અર્થોડ્યમેવ નિચિત્તૈરપિ વેદવાક્યૈ રામાયણૈઃ સહિતભારતપદ્ધતૈઃ ।

અન્યૈશ્ચ શાસ્ત્રવચનૈઃ સહ તત્ત્વસૂત્રનિર્ણયતે સહૃદયં હરિણા સદૈવ ॥

આ સ્થલે <sup>૧</sup>અન્યૈશ્ચ શાસ્ત્રવચનૈઃ શબ્દનો અર્થ પુરાણ કરવામાં આવ્યો છે. શાસ્ત્ર એટલે ધર્મનું રાજાજ્ઞાની પેઠે શાસન કરનાર ગ્રંથ. અથવા તો જેમ ન્યાય અને અન્યાયનો વિવેક કરીને રાજા અમુક પ્રકારનું વિધાન પ્રવર્તાવે, તેમ ધર્માધર્મનો વિવેક કરી યોગ્ય દિશામાં પ્રવૃત્તિ કરાવનારા ગ્રંથો. વેદનો અર્થ અત્યંત ગમ્ભીર હોવાથી વેદાર્થ, કેવલ શબ્દોની ખેંચતાણથી થઈ શકતો નથી. કિન્તુ નિરુક્ત, કલ્પસૂત્રો, <sup>૨</sup>ધોડશલક્ષણી (પૂર્વોત્તરમીમાંસા), ભગવદ્ગીતા, અને <sup>૩</sup>સમાધિભાષાને અનુસરતો જ કરવાનો છે. વેદનો પૂર્ણકાલ અને ઉત્તર કાલ ધર્મ અને જ્ઞાનનું જ પ્રતિપાદન કરે છે, તેથી વેદનો ગમે તે પ્રકારે સ્પતન્ન રીતે અર્થ કરીને સ્વાભિમત વિધાનો થઈ શકે નહિ. જેમ જ્યોતિઃશાસ્ત્ર, વેદકશાસ્ત્ર અથવા તો ભૂમિતિ વગેરેમાં વપરાતા શબ્દો તે તે વિષયને અનુકૂલ એવા જ અર્થના બોધક હોઈ શકે; તે વિષયોની સાથે અસમ્બંધ એવું એક પણ વિધાન જો કાઢવામાં આવે તો અપ્રામાણિક ગણાય; તેમ ધર્મ અને જ્ઞાનનું પ્રતિપાદન કરનારા વેદોના અર્થનિર્ણય માટે પણ ધર્મ કે જ્ઞાનથી અતિરિકત

જે અર્થો સ્વબુદ્ધિએ ઉપજાવી કાઢવામાં આવે છે, તે પણ વિદ્વાનોને ગ્રાહ્ય ન જ હોઈ શકે. આ રીતે વેદનો કાલનિર્ણય વૈદિકઈતિહાસ, કે વૈદિકસભ્યતાની કલ્પનાના આકાશના ઉડનારા પક્ષીઓ ભૂલભરેલી દિશામાં ઉડ્ડયન કરતા હોવાથી, આજ સુધી એક પણ સિદ્ધાન્ત સ્થાપી શક્યા નથી. અથવા તો ઉદ્દિષ્ટ સ્થળે પહોંચી શક્યા નથી. તેમની કલ્પનાનું આકાશ અનન્ત હોવાથી અને જે દિશામાં ગમન કરવાનું છે, તેનો નિર્ણય થયેલો ન હોવાથી, પ્રતિક્ષણ તેમના વિધાનો બદલાયા કરે છે, અને દિગ્ભ્રમ પ્રતિક્ષણ થતો હોવાથી અનન્ત આકાશમાં તેમનું ઉદ્દિષ્ટ સ્થાન પણ લીન થઈ ગયેલું હોવાથી તેઓ તે સ્થળને શોધી પણ શક્યા નથી. કાલનિર્ણય, ઇતિહાસ કે સભ્યતા માટે વેદની જે શ્રુતિઓ ટાંકવામાં આવે છે, તે સર્વથા અસ્થાને છે, એટલું જ નહિ પણ વેદનું પ્રયોજન x અને મર્મ સમજવાની દરકાર કર્યા વિના અકાલકલ્પ તાલકલ્પ કરવા જેવું છે. વેદનો અર્થ શાબ્દિક મારામારીને લીધે અન્યથા ન થાય તે માટે જ ભગવાન્ વેદવ્યાસે વેદનો વ્યાસ, તદુપબૃંહણાર્થે પુરાણો અને તત્ત્વસૂત્રોનો આવિર્ભાવ કરી અને સ્વશિષ્ય જેમિનિ દ્વારા ધર્મસૂત્રો રચાવ્યા. વેદનો અર્થ કરતાં પહેલાં જો આટલું ધ્યાનમાં રાખવામાં આવે તો જ પુરાણોના સમ્બંધમાં અત્યારે જે અત્યંત ગર્હ કલ્પનાઓ કરવામાં આવે છે, તેની <sup>૧</sup>અયોગ્યતા બરાબર સમજી શકાય. પરંતુ કેટલાક પાશ્ચાત્યવિદ્યાવિભૂષિતો અને તેમના સમ્બંધમાં આવનારા વિદ્વાનો એવી દલીલ કરે છે કે, અર્થનિર્ણયમાં બંધનની જરૂર હોય જ નહિ. વિદ્વાન તરીકે પંકાતા આ લોકોના આવા મન્ટવ્યો હાસ્યજનક હોઈ, તેમના માટે માન ઉત્પન્ન કરતાં નથી, પ્રત્યુત તેઓને ઉપેક્ષ્યની કોટિમાં જ સમાવિષ્ટ કરે છે. અને તેમની પાશ્ચાત્યસભ્યતામાં જેમ સ્વાતન્ત્ર્યનો અર્થ ઉચ્છૃંખલતા બતાવે છે, તેમ આ વિષયમાં ચે થતું હોવાથી તેમના પ્રત્યે સ્વાભાવિક રીતે ક્રોધ પણ ઉદ્ભવે છે. જેમ સ્વાતન્ત્ર્ય શબ્દનો અર્થ ઉચ્છૃંખલતા થતો હોય તો તે અનિષ્ટોત્પાદક હોવાથી વિદ્વદ્ગ્રાહ્ય નથી, તે જ્યારે સૈન્ધવમાનય ઇત્યાદિ લોકિકવાક્યોમાં ચે વક્તાનું તાત્પર્ય સમજવાની જરૂર પડે. તે જ પ્રકારે વેદ વાક્યોનું તાત્પર્ય સમજવાની દરકાર પણ ન કરવી એને ઉચ્છૃંખલતા વિના અન્ય ક્યા શબ્દ વડે ઓળખાવી શકાય ? શિષ્ટોએ આદ્યત એવા ઉપગ્રમોપસંહારાદવમ્યાસોડ્પૂર્વતા ફલમ્ । અર્થવાદોપપત્તી લિજ્જન્ન તાત્પર્ય નિર્ણયે

૧. અન્યાનિ શાસ્ત્રાણિ પુરાણસ્વરૂપાણિ (પ્રકાશ જુઓ.) ૨. આપણા સમગ્રદાયમાં પૂર્વોત્તરમીમાંસાનું એક્યશાસ્ત્ર સ્વીકાર્યું નથી. અન્યથા વ્યાસસૂત્રાવિરોધિત્વાત્તદક્ષીકરણમ્ ઇત્યાદિ પંક્તિઓની વૈયથ્યપતિ પ્રાપ્ત થાય. ધોડશલક્ષણી શબ્દ આ સ્થલે શાસ્ત્રશ્રવ્ય અર્થમાં જ સમજવો.

૩. સમાધિભાષા પુરાણાન્તરનું ચે ઉપલક્ષણ છે. અન્યથા અન્યૈશ્ચ શાસ્ત્રવચનૈઃ ઇત્યાદિ વાક્યો વ્યર્થ થાય.

x સમ્બંધ, વિષય, અધિકારી અને પ્રયોજન આ ચારે સમજવવા જોઈએ.

૧. આપણાં સંપ્રદાયમાં પૂર્વોત્તર મીમાંસાનું એક્ય શાસ્ત્ર ઇત્યાદિ પંક્તિઓની વૈયથ્યપતિ પ્રાપ્ત થાય. શોડશલક્ષણી શબ્દ આ સ્થલે શાસ્ત્રશ્રવ્યના અર્થમાં સમજવો.

ઈત્યાદિ નિયમો તાત્પર્ય જાણવા માટે આવશ્યક છે જ. અન્યથા જેમ સ્વાતન્ત્ર્યનો અર્થ મનગમતું. એમ કરવાથી સમાજમાં અવ્યવસ્થા પ્રસરે, તેમ અર્થ નિર્ણયમાં એ અવ્યવસ્થા પ્રસરે જ. અત્યારે હિન્દુ સમાજ તે જ અવ્યવસ્થાના કડવા ફલ ચાખે છે.

સર્વ જ પુરાણો પ્રભુના તે તે સ્વરૂપનું વર્ણન કરે છે. જેમ જ્ઞાનના અઙ્ગરૂપે સૂર્યાદિરૂપો ધારણ કરનાર પ્રભુનું વર્ણન ઉપનિષદોમાં મળે છે, તેમજ પ્રભુના જુદાં જુદાં સ્વરૂપોનું વર્ણન તે તે પુરાણો કરે છે. પુરાણેષ્વપિ સર્વેષુ તત્ત્વરૂપો હરિસ્તથા એમ શ્રીમદ્દાસપ્રભુજી આજ્ઞા કરે છે. સર્વજ પુરાણો પ્રભુના માહાત્મ્યનું જ પ્રતિપાદન કરે છે. અને દુર્ગા, ગણપતિ કે પ્રકૃતિનું મહત્ત્વ જણાવતાં પુરાણો પણ આવરણદેવતારૂપે હોવાથી વિશિષ્ટ (શ્રીકૃષ્ણ) ના શેષત્વે (અઙ્ગત્વે) છે. અથવા સર્વ રૂપો પ્રભુનાં જ સ્વરૂપો છે. સાધનરૂપે અને ફલરૂપે પ્રભુ પોતે જ છે. આ રીતે પુરાણો કેવલ ધર્માધર્મનો જ નિર્ણય વેદને અનુસરીને કરતા હોવાથી શાસ્ત્રો જ છે.

હવે આપણે શાસ્ત્રશબ્દનો અર્થ જાણવા પછી પુરાણો વેદાર્થનું ઉપબૃંહણ કઈ રીતે કરે છે, તે તપાસીશું.

### શાસ્ત્રશબ્દનો અર્થ

શાસ્ (સુ) ધાતુ ઉપરથી શાસ્ત્રશબ્દ સિદ્ધ થાય છે. આ ધાતુનો અર્થ અનુશિષ્ટિ થાય છે. અનુશિષ્ટિ એટલે શિક્ષણ કે આજ્ઞા. અર્થાત્ ધર્માધર્મનું શિક્ષણ આપે તે શાસ્ત્ર. શ્રીમદભગવદ્ગીતામાં તસ્માદ્દશાસ્ત્રં પ્રમાણં તે કાર્યાકાર્યવ્યવસ્થિતૌ (૧૬-૨૪) કર્તાવ્ય કર્તાવ્યની વ્યવસ્થા સમજાવનારું સાધન શાસ્ત્રશબ્દ વડે વ્યવહાર થાય છે. સર્વ જ વિદ્વાનો “શાસ્ત્ર” શબ્દનો અર્થ વેદ અને તદુપજીવી સ્મૃતિપુરાણાદિ કરે છે. જ્યારે કેટલાક પ્રાચીનવિદ્વાનો શાસ્ત્રશબ્દની શક્તિને સંકુચિત કરીને વ્યવસ્થિતવિજ્ઞાન (systematic science) કરે છે. તે વ્યવસ્થિતવિજ્ઞાન કે કલા પણ હોઈ શકે. આ પ્રકારનો અર્થ અત્યંત સંકુચિત થઈ જાય છે. વાસ્તવિક રીતે તો scriptures શબ્દથી જ શાસ્ત્રો ઓળખાય છે. પરંતુ તેમાં એ ધર્મગ્રંથોનો જ બોધ થતો હોવાથી વિવેકનો સમાવેશ થતો નથી.

યદપિ આ સિવાય, શાસ્ત્રશબ્દ, આજ્ઞા, (મ.ભા.પ.૧૪૮. ૨૦, જ્ઞાન શિશુ. પ. ૪૭), વિદ્યાની શાખા (રઘુ ૧-૧૯) ઈત્યાદિ અર્થમાં પણ વપરાય છે, તથાપિ મુખ્ય અર્થ તો અનુશિષ્ટિ જ છે. અને તેની પરિભાષા (Technical term) કાર્યાકાર્યની વ્યવસ્થાનું સાધન ભગવદ્ગીતા મુજબ હોઈ શકે. શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી

મહારાજ આજ્ઞા કરે છે, કે ‘શાસ્ત્રો રાજાની પેઠે આજ્ઞા કરે છે. તેથી જો તેમનો (શાસ્ત્રોનો) વિરોધ પ્રાપ્ત થતો હોય તો અપરાધ પણ બોધિત થાય છે.

જો કે રાજાના માટે પણ વિચાર કરવાનો તો હોય છે જ; રાજા પણ જો અયોગ્ય આજ્ઞા કરતો હોય તો તેનો પણ બાધ પ્રસક્ત થાય, એમ શાસ્ત્રોનો ઉદ્બોધ છે. અર્થાત્ જ વિવેકપૂર્વક રાજાજ્ઞા હોવી જોઈએ. અન્યથા અદ્વૈત્યાનુ દણ્ડયન્ રાજા દણ્ડયોશ્ચૈવાપ્યદણ્ડયન્ ઈત્યાદિ વાક્યો વ્યર્થ થઈ જાય. શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી મહારાજ શાસ્ત્રોને રાજાજ્ઞાવત્ કહે છે. તેનું તાત્પર્ય તેના પાલનમાં આવશ્યકત્વનો બોધ કરાવવામાં જ છે, નહિ કે તદ્વિષયક વિચારની અકર્તવ્યતામાં. જેમ રાજાજ્ઞાનું પાલન ન થાય તો દણ્ડનો ભય રહે, તેમ શાસ્ત્રાજ્ઞાનું એ પાલન ન થાય, તો પ્રત્યવાયનો ભય રાખવો. આ રીતે વિચારી જોતાં શાસ્ત્રશબ્દ વિવેક પુરઃસર ધર્માધર્મનું શિક્ષણ આપવાના અર્થમાં છે. પુરાણો પણ તાદૃશ વિવેક કરે છે, તેથી તે પણ શાસ્ત્રશબ્દવાચ્ય હોઈ શકે. અતએવ યેચાકરણ મૂર્ધન્યમણિ બોપદેવ પાંડિત કહે છે કે-

શાસ્ત્રે સ્કન્ધે પ્રકરણેઽધ્યાયે વાક્યે પદેઽક્ષરે ।

ગુરુપદિદ્ધો યોઽર્થસ્તં વિમૃશન્વિષ્ણુતત્પરઃ ॥

શાસ્ત્ર, સ્કન્ધ, પ્રકરણ, અધ્યાય, વાક્ય, પદ અને અક્ષરમાં ગુરુએ જે અર્થ ઉપદેશ્યો હોય, તેનો વિચાર કરતા વિષ્ણુતત્પર થવાય છે. આ વાક્યમાં સૌથી પહેલાં ભાગવતશાસ્ત્રના અર્થનો વિચાર જણાવ્યો છે. શ્રીમદ્ભાગવત પણ પુરાણરૂપ હોવાથી અને પુરાણનો એક ભાગ (શ્રીમદ્ભાગવત) જો શાસ્ત્ર હોય, તો સમ્પૂર્ણ પુરાણ પણ શાસ્ત્ર જ હોઈ શકે. કારણ કે પૂર્વે જેમ એક જ વેદ હતો અને તેના ચાર ભાગ કરી ઋગ્વેદ, યજુર્વેદ, સામવેદ અને અથર્વવેદ કર્યા, અને તેમની અનેક શાખાઓ શિષ્યપ્રશિષ્યો દ્વારા વેદવ્યાસે પ્રસરાવી, તેમજ પૂર્વે પુરાણ પણ એક જ હતું એવા વાક્યો મળી આવતા હોવાથી તે એક જ પુરાણના અષ્ટાદશપુરાણો અને ઉપપુરાણો થયા છે. અતએવ પૂર્વકાલનું એક જ પુરાણ

૧. શાસ્ત્રોનો ઉડો અભ્યાસ કરનારા વિદ્વાનો સારી પેઠે જાણે છે, કે આજ્ઞાકાલ વેદ અને પુરાણોના સમ્બન્ધમાં જે શિક્ષાઓ આસ્તિક જનતાની લાગણીને દુઃખ દેવા માટે કરવામાં આવે છે, તે સર્વ જ શિક્ષાઓનું સમાધાન જેમિન્યાદિ મહર્ષિઓ, શબ્દરાદિ આચાર્યો અને કુમારિલાદિ વિદ્વાનોએ આપ્યું છે. અત્યારે તો તેની તેજ (કે જેમનું સમાધાન થઈ ચુક્યું છે) શિક્ષાઓ આગળ ધરીને કેવલ જલમન્યન કરવામાં આવે છે. આ લોકો જો વેદ અને પુરાણોનો ઉડો અભ્યાસ કરતા હોય તો સમાહિત શિક્ષાઓનું પુનરુત્થાન કરે જ નહિ. અખણ્ડિત અને શાસ્ત્રના પ્રયોજનને અનુસરતીજ શિક્ષાઓ થાય. કિન્તુ તેમ થતું ન હોવાથી તે કલ્પનાઓ ગર્હ અને અયોગ્ય જ છે.

શાસ્ત્રરૂપ હોઈ શકે. અને તત્પશ્ચાત્ તેના જે ભેદો થયા તેને પણ શાસ્ત્રશબ્દથી વ્યવહાર કરી શકાય. ઉપર જે વાક્ય બોપદેવનું મૂક્યું છે, તેનો પૂર્વાર્ધ જેમને તેમ ગ્રહણ કરીને શ્રીમદ્ભાગવતુ પણ આજ્ઞા કરે છે કે-

શાસ્ત્રે સ્કન્ધે પ્રકરણેઽધ્યાયે વાક્યે પદેઽક્ષરે ।

एकार्थं समधा जानन्नविरोधेन मुच्यते ॥

શાસ્ત્રમાં, સ્કન્ધમાં, પ્રકરણમાં આધ્યાયમાં, વાક્યમાં, પદમાં અને અક્ષરમાં રહેલો એક જ અર્થ સાત પ્રકારે જાણો, તો તેના અવિરોધનું (તેની એકવાક્યતાનું) જ્ઞાન થતાં મુક્ત થાય છે. આ ઉપરથી પણ શ્રીમદ્ભાગવતનું શાસ્ત્રત્વસિદ્ધ થતાં પુરાણો એ શાસ્ત્રરૂપ જ છે, એમાં લેશ માત્ર પણ શકડા રહેતી નથી.

અમે સારી પેઠે જાણીએ છીએ કે કેટલાક પરપ્રત્યયનેયબુદ્ધિ એવા પાણ્ડિતમન્યો, કોલબ્રુક સાહેબ (Colebrook) જેવા હિન્દુસંસ્કૃતિથી તદ્દન અજાણ્યા પાશ્ચાત્ય પાણ્ડિતોના કથનથી દોરાઈને શ્રીમદ્ભાગવતને બોપદેવ કૃત માને છે, તેથી બોપદેવના વાક્યને પ્રમાણત્વે ન સ્વીકારે, અને તેજ રીતે શ્રીમદ્ભાગવતુ પણ બોપદેવની પછી પ્રકટેલા હોવાથી તેમજ તેઓશ્રી ભાગવતના પ્રસિદ્ધ પક્ષપાતી અને ટીકાકાર હોવાથી, તેમજ જે વાક્ય ઉપર ટાંકવામાં આવ્યું છે, તેઓનો પૂર્વાર્ધ બોપદેવનો જ હોવાથી અપ્રમાણ પણ કદાચ કોઈ માને. જોકે આ પ્રકારનું મન્ય શુદ્ધ અજ્ઞાન જ છે, (શ્રીમદ્ભાગવતના કાલનિર્ણયમાં આ અજ્ઞાન ખુદ પાડવામાં આવ્યું છે.) તથાપિ તુષ્યતુ દુર્જનન્યાયને અનુસરીને ઊંડા ઉતરીને તપાસીશું.

### પુરાણોનું પ્રામાણ્ય

વિચારશીલ વિદ્વાનો કહે છે, કે વેદનો એક પણ એવો વિષય નથી, કે જેનું વિસ્તૃત વર્ણન પુરાણોમાં આવતું ન હોય. વાસ્તવિક રીતે વેદનું પ્રામાણ્ય તો શ્રીમાન્ કુમારિલભટ્ટે જગત્ની સમક્ષ રજુ કર્યું છે. યદ્યપિ ભટ્ટપાદના મતને અમે અક્ષરશઃ મળતા ન હોઈએ, તો પણ એટલું તો સ્વીકારવું પડશે, કે જ્યારે સમ્પૂર્ણ એશિઆખંડ બોદ્ધવિચારોથી આકાન્ત થયેલો હતો, ત્યારે શક્રાચાર્યની અપેક્ષાએ વધુ નિડરતાથી કુમારિલભટ્ટે જ વેદોનું સ્વતઃપ્રામાણ્ય દેખાડી આપ્યું હતું, તેની સાક્ષી અદ્યાપિ વાર્તિકાદિગ્રન્થો પૂરે છે. સૂક્ષ્મેક્ષિકાથી જોનારને દેખાઈ આવશે કે, કેવલ કર્મકાણ્ડનો જ વિચાર કરવા પ્રવૃત્ત થયેલા કુમારિલભટ્ટે તન્ત્રવાર્તિકમાં યૈદિક શ્રુતિઓ અને પૌરાણિક ઉપાખ્યાનોની ઘણીજ સુંદર સંગતિ

કરી દેખાડી છે. કોઈ એક વ્યક્તિના કથનને જ અનુસરીને પુરાણોની નિન્દામાં લોકો પ્રવૃત્ત થાય છે. તેમની જ દષ્ટિમાં પુરાણોનું પ્રામાણ્ય હોઈ શકતું નથી. વેદ અને પુરાણોની એકવાક્યતા કરવાનો જેણે પ્રયાસ જ કર્યો નથી, કે જેણે પુરાણોનો ઊંડો અભ્યાસ કરીને તેમાં જ પ્રતિપાદન કરેલા વિષયોનું મર્મ સમજી લેવા પ્રયાસ આદર્યો નથી. તેવી વ્યક્તિને પુરાણોના વિષયમાં શકડા સમ્ભવે, તેમાં કંઈ પણ અસ્વાભાવિકતા જેવું નથી. આક્ષેપ કરનારાઓ ભગવત્સ્વરૂપ વેદ ઉપર અને જગન્માન્ય ગીતાજી ઉપર પણ આક્ષેપ તો કરે છે જ; તેટલાથી જ કાંઈ તેમનું અપ્રમાણ્ય સિદ્ધ થતું નથી. તેમજ પુરાણોનો ઊંડો અભ્યાસ કર્યા વિના કોઈ વ્યક્તિ ગમે તેવા ગલીય આક્ષેપ કરે, તો પણ તે ઉત્તરણીય નથી, પ્રત્યુત ઉપેક્ષણીય જ છે. અદ્યાવધિ પુરાણોની વિરુદ્ધ જેટલું સાહિત્ય પ્રકટ થયું છે, તેમાં કોઈએ પણ પૂર્વાચાર્યોએ આપેલા સમાધાનોનું ખાણડ કરીને વિરોધ જણાવ્યો નથી. પછી ભલે તે સાહિત્ય પર્વતપ્રાચ હોય, તેથી કાંઈ પણ સિદ્ધ થઈ શકતું નથી. આવા આક્ષેપકારો તો પરિહાસ્યાસ્પદજ લેખાય. વેદ અને પુરાણોની એકવાક્યતા કરનારા વિદ્વાનો કુમારિલભટ્ટથી આરમ્ભીને આજ સુધી ઘણાં થયા છે. જ્યારે ભગવતી શ્રુતિ જ પુરાણોને પણ વેદવત્ ભગવન્નિઃશ્વસિત માને છે, ત્યારે તેથી વિરુદ્ધ કોઈ પણ વેદાનુયાયી વિદ્વાન નિર્ણય આપી શકે જ નહિ. અન્યથા સર્વત્ર જ અનાસ્થા પ્રસજ્ઞ પ્રાપ્ત થાય. બૃહદારણ્યક ઉપનિષદ્ નીચે પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે-

एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्वेदो यजुर्वेदः  
सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषद् श्लोकान्यनुव्याख्यानानि  
व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निःश्वसितानि ॥

આ શ્રુતિવડે પુરાણો પણ નિઃશ્વસિત છે, એમ સ્પષ્ટ વિધાન કરવામાં આવ્યું છે. જો કોઈ વ્યાખ્યાનકારને અનુસરીને વેદમાં જ ઇતિહાસ અને પુરાણનો સમાવેશ કરવામાં આવે, તો વેદ્યતુષ્ટ્યથી પૃથક્ ઇતિહાસ પુરાણનો ઉદ્દેખ કરવાની જરૂર રહે નહિ. તેમજ ઇતિહાસઃ પુરાણં વેદાનાં પદ્મમો વેદઃ આ વાક્ય પણ વ્યર્થ પડી જાય. જ્યારે ભગવતી શ્રુતિ ઇતિહાસ પુરાણોને એ ઉદ્દેખ કરે છે, ત્યારે સમજવું જોઈએ કે વેદ ચતુષ્ટયાન્તર્ગત ઐતિહાસિક વાક્યોથી પૃથક્ત્વે ઇતિહાસ અને

૧. દયાનન્દાદિએ પુરાણોનું અપ્રામાણ્ય છે, એમ અવિચારપૂર્ણ નિર્ણય આપ્યો છે. તેમના લેખમાં પૂર્વાચાર્યોએ કરેલી એકવાક્યતાના સંબંધમાં લેશમાત્ર પણ વિચાર કરાયો નથી, તેમ તેનું શ્રુતિ-ચુક્ત ખાણડ પણ કર્યું નથી. માત્ર ગાત્રિપ્રદાન જ કર્યું છે. કિશ્કિયનો કે ચવનો હિન્દુ ધર્મને ઉતારી પાડવા માટે જેમ કેવલ આક્ષેપ કરે, તેમ કરવામાં પાણ્ડિત્યની કસોટી થતી નથી.

પુરાણનો બોધ કરાવે છે.

આ શિવાય છાન્દોગ્ય ઉપનિષદ્માં-

ઋગ્વેદં ભગવતોઽધ્યેમિ યજુર્વેદં સામવેદમિતિહાસં પુરાણં પશ્ચમં વેદાનાં વેદમ્

આ વાક્યમાં પણ પુરાણનો વિશેષતયા ઉલ્લેખ છે. જો વેદાન્તોર્ગત પૌરાણિકવાક્યો જ પુરાણશબ્દના બોધક હોય તો તેનું પૃથક્ અધ્યયન જ નિર્ણયક થાય.

વેદ અને પુરાણોની એકવાક્યતા પૂર્વાચાર્યો કેવી રીતે કરે છે, તેનું ચે સ્થાલીપુલાકન્યાએ અવલોકન કરવું આવશ્યક છે -

બ્રહ્માજીએ સ્વસુતામાં અનુગમન કર્યું એમ પુરાણોમાં કથા આવે છે. તેમજ એતરેય બ્રાહ્મણમાં પણ તેવા વાક્યો છે. પ્રજાપતિર્વે સ્વાં દુહિતરમભ્યધ્યાયદિવમિત્યન્યે તામૃશ્યો ભૂત્વા રોહિતં ભૂતામભ્યૈત્ કુમારિભ્યઃ આ વાક્યનું વિવરણ નીચે પ્રમાણે આપે છે.

પ્રજાપતિસ્તાવત્પ્રજાપાલનાધિકારાદાદિત્ય એવોચ્યતે સ ચ અરુણોદયવેલાયામુષસમુદ્યન્નચૈત્ । સા તદાગમનાદેવોપજાયત્ । ઇતિ તદ્દુહિતૃત્વેન વ્યપદિશ્યતે । તસ્યાં ચારુણકિરણાઘ્યવીજનિક્ષેપાત્સ્ત્રીપુરુષયોગવદુપચારઃ ।

આવી જ રીતે તેતિરીય આરણ્યકમાં અહલ્યાયૈ જારઃ ઇત્યાદિ શબ્દ પ્રયોગ મળે છે. આ કથા પણ પુરાણોમાં પ્રસિદ્ધ છે. પરંતુ તેનું તાત્પર્ય નીચે મુજબ છે-

एवं समस्ततेजाः परमैश्वर्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैव, अहनि लीयमानतया रात्रेरहल्याशब्दवाच्याया क्षयात्मकजरत्या हेतुत्वाज्जीर्यत्यस्मादनेनैवोदितेनेत्यादित्य एवाहल्याजार इत्युच्यते; न तु परस्त्रीव्यभिचारात् । આ રીતે અનેક સ્થળે પુરાણોને શ્રુતિઓ સાથે સરખાવીને તેનું વાસ્તવિક તાત્પર્ય વિદ્વાનોએ સમજાવ્યું છે.

શ્રુતિ અને પુરાણના સમ્બન્ધનો વિચાર કરતા જણાઈ આવે છે, કે તે ઉભયમાં પરસ્પર ઉપજીવ્ય ઉપજીવક અથવા બીજા શબ્દોમાં કહેવામાં આવે તો પોષ્યપોષક સમ્બન્ધ છે. શ્રુતિ લોકગાથારૂપી પુરાણનો આશ્રય લે છે, અને પુરાણો શ્રુતિનો અનુવાદ કરતા જણાય છે. શ્રુતિમાં પૂર્વશ્લોકોનો કેટલેક સ્થળે આશ્રય લેવાયો છે, જ્યારે પુરાણો શ્રુતિનો આધાર લે છે. વાયુ પારાણમાં -

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा कृतम् ।

अनन्तरं च वक्रेश्वरो वेदास्तस्य विनिःसृताः ॥ (अ. ૧ શ્લો. ૫૪)

બ્રહ્માજીએ સર્વશાસ્ત્રોની ચે પહેલાં પુરાણ પ્રકટાવ્યું, અને તે પછી તેમના મુખમાંથી વેદો નિકળ્યા. મત્સ્ય પુરાણના ૫૩ મા અધ્યાયમાં આજ શ્લોક મળી

આવે છે. પરંતુ ત્યાં વિનિઃસૃતાઃ ના સ્થાનમાં વિનિર્ગતાઃ એમ પાઠ છે. જ્યારે શ્રુતિ, પુરાણને પાંચમો વેદ કહે છે.

આટલું તો સ્મરણમાં રાખવું જ જોઈએ કે વેદની પહેલાં પુરાણો ન હતા, પણ પુરાણ હતું. જેમ આજે ઈકો યજુર્વેદસ્તં ચતુર્ધાવ્યકલ્પયત્ ઇત્યાદિ વાક્યો એક જ વેદના ચાર વિભાગ જણાવે છે, તેમ પૂર્વે એક જ પુરાણ હતું, તેનો વિસ્તાર અથવા વિભાગ અષ્ટાદશ પુરાણરૂપે છે. અથર્વવેદમાં-

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।

उच्छिष्टाज्ઞિરે सर्व दिवि देवादिविश्रिताः ॥૧૧-૭-૨૪.

એતરેય બ્રાહ્મણમાં પુરાણશબ્દ દેખા દેતો નથી, તથાપિ ગાથા, શ્લોક ઇત્યાદિ શબ્દો સ્પષ્ટ જણાય છે, એટલું નહિ, પણ તેમાં તે ગાથાઓ અને શ્લોક જેમના તેમ છે. આ ઉપરથી સમજી શકાય છે કે ગાથા શ્લોક વગેરે પુરાણનું ભાગ કરાવે છે.

જનમેજયને કાપધેય ઋષિએ એન્દ્ર મહાભિષેક કર્યો. જનમેજયે અશ્વમેધ યજ્ઞ કર્યો ઇત્યાદિ કથા એતરેય બ્રાહ્મણમાં છે. ત્યાં કહે છે કે-

तदप्येते श्लोका अभिगीताः-

याभिर्गोभिरुदवं प्रैयमेधा अयाजन् ।

द्वेद्वे सहस्रे बद्धानामात्रेयो मध्यतो ददात् ॥

આ પ્રકારના બીજા ચાર શ્લોક છે.

બ્રાહ્મણો દેવતાનું પૂજન કરીને મન્ત્ર પુષ્પાંજલિ ગ્રહણ કરી મન્ત્રો બોલે છે. તેમાં છેલ્લો મંત્ર શ્લોક જ છે-

तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो-

मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे ।

आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासदः । इति ।

વેદમૂલક ઇતિહાસપુરાણમાં આથી વિશેષ પ્રમાણોની જરૂર નથી. એતરેયબ્રાહ્મણમાં આ પ્રકારની ગાથાઓ અનેક છે. તેમજ શતપથબ્રાહ્મણમાં અને ગોપથબ્રાહ્મણમાં પણ પુરાણનો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ આવે છે. સદ્ગત કાળે અને સદ્ગત કોલ્હટરકરના ગ્રન્થો અનુક્રમે પુરાણનિરીક્ષણ અને ભાગવતાદર્શમાં તેવા પ્રમાણો અનેક આપ્યા છે. તેમાંથી થોડાંક આ સ્થળે મૂકવા યોગ્ય લાગે છે.

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वयाख्याताः सपुराणाः सस्वराः । गोपथ ब्रा० पू० भा० प्र० २

અધ્વર્યુસ્તાક્ષ્યૌ વૈ પશ્યતો રાજેત્યાહ.... તાનુપવિશતિ પુરાણમ્ । વેદઃ સોડ્યમિતિ કિંચિત્પુરાણમાયચક્ષીત । એવમેવાધ્વર્યુઃ સમ્પ્રેષ્યતિ ન પ્રક્રમાન્ જુહોતિ । અથ દશમહન્ ।

- શતપથબ્રાં ૧૩-૪-૩૧૩

એવં વિદ્વાન્વાકો વાક્યમિતિહાસઃ પુરાણમિત્યહરહઃ સ્વાધ્યાયમધીતે તં એનં તૃપ્તાસ્તર્પયન્તિ સર્વૈઃ કામૈઃ સર્વેર્ભોગૈઃ । - શતપથબ્રાં ૧૧-૭-૧

ઉપરના વાક્યોમાં પુરાણશબ્દ સ્પષ્ટરીતે જોવામાં આવે છે, તેથી શબ્દકાને લેશ માત્ર પણ સ્થાન રહેતું નથી.

આ સિવાયનું અર્થવેદમાં એક વિશેષ વાક્ય પણ મળી આવે છે- સંવૃત્તી દિશમનુવ્યવલક્ષમિતિહાસશ્ચ પુરાણં ચ ગાથાશ્ચ નારાશંસીશ્ચાનુવ્યવલક્ષમ્ । - અર્થવેદ કાં ૧૫. અનુ. ૧

આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે યજ્ઞના દશમે દિવસે અધ્વર્યુએ યજ્ઞમાનને પુરાણ સંભળાવવું જોઈએ. આથી પુરાણની વેદતુલ્યતા અને તેનું વેદવત્ પ્રામાણ્ય સિદ્ધ થઈ શકે તેમ છે.

ઉપર બૃહદારણ્યક ઉપનિષદની શ્રુતિ ટાંકી છે, તે સિવાય એવી પણ શ્રુતિઓ મળી આવે છે, કે જેમાં પુરાણશબ્દનો ઉલ્લેખ જોવામાં આવે છે.

વાઘા વૈ સમ્રાડ્યન્ધુઃ પ્રજાયત ઋગ્વેદો યજુર્વેદઃ સામવેદોઽથર્વાક્ષિરસ ઇતિહાસઃ પુરાણં વિદ્યા ઉપનિષદઃ શ્લોકાઃ સૂત્રાણ્યનુવ્યાખ્યાનાનિ ।

અં ૪૦ બ્રાં ૧ મં. ૨

બૃહદારણ્યક ઉપનિષદ કેવલ પુરાણનું નામ આપીને જ બેસી રહે, તેમ નથી, પ્રત્યુત પુરાણના શ્લોકોનો યે ઉલ્લેખ કરે છે-

અથેષ શ્લોકો ભવતિ -

યતશ્ચોદેતિ સૂર્યોઽસ્તં યત્ર ગચ્છતિ ઇતિ । ૧-૫-૨૩

તદેષ શ્લોકો ભવતિ -

અર્વાચિલશ્વમસ ઋર્ધ્વબુધ્નસ્તસ્મિન્યશો નિરિતં વિશ્વરૂપમ્ ।

તસ્યાસતઃ ઋષયઃ સપ્તતીરે વાગૃમી બ્રહ્મણા સંવિદાના ॥૨-૨-૩

છાન્દોગ્યમાં પણ તેવા પ્રાચીન શ્લોકોનો ઉલ્લેખ છે-

શતં ચૈકા ચ હૃદયસ્ય નાડ્યસ્તાસાં મૂર્ધાનમભિનિઃસૃતૈકા ।

તયોર્ધ્વમામન્નમૃતત્વમેતિ વિશ્વહૃદન્યા ઉક્રમણે ભવન્તિ ॥૮-૬

જેમ ઉપનિષદોમાં અને વેદોમાં પુરાણશબ્દ મળી આવે છે, તેમ ધર્મસૂત્રોમાં

યે પુરાણોને પ્રમાણ માનવામાં આવે છે. આપસ્તમ્બ ધર્મસૂત્રકાર લખે છે, કે- પુરાણે શ્લોકાવુદાહરન્તિ-

ઉદ્યતામાહતા મિક્ષાં પુરસ્તાદપ્રવેદિતામ્ ।

મોજ્યાં મેને પ્રજાપતિરમિ દુષ્કૃતકારિણઃ ॥

ન તસ્ય પિતરોઽશ્રન્તિ દશવર્ષાણિ પચ્ચ ચ ।

ન ચ હવિષ્યં વહત્યગ્નિર્યસ્તામભ્યધિમન્યતે ॥

અન્નાદૈ ભૂણહા માર્ષિં અનેના અભિશંસતિ ।

સ્તેનઃ પ્રમુક્તો રાજનિ યાચન્નનૃતસક્કરઃ ॥

૧-૧૧-૧૩ થી ૧૫

આ શ્લોકો પ્રાચીન પુરાણોમાંથી લેવાયા હશે. આજ શ્લોકો થોડા ફેરફાર સાથે મનુસ્મૃતિમાં પણ મળી આવે છે, એમ કોલ્હટકર જણાવે છે. અમે તે જોયા નથી. આપસ્તમ્બ સૂત્રમાં ભવિષ્ય પુરાણનો પણ એક શ્લોક આપ્યો છે.

તેમજ ગૌતમ ધર્મસૂત્રમાં કહેવામાં આવ્યું છે કે વેદ, ધર્મશાસ્ત્ર, વેદાણ અને પુરાણોના આધારે રાજાએ ન્યાય આપવો; એમ મહારાષ્ટ્રીય જ્ઞાનકોશકાર રા. રા. શ્રીધર વ્યંકટેશ કેતકર જણાવે છે. (જુઓ મ.જ્ઞા.કો. (૫) ૧૪૪.)

પૂર્વે એક પુરાણ હતું કે હશે, તેના જ ભેદો અષ્ટાદશ મહાપુરાણો છે. ઇતિહાસપુરાણાનિ મિદ્યન્તેકાલગૌરવાત્ ઈત્યાદિ સ્કન્દ પુરાણનું વાક્ય તેમાં પ્રમાણ છે.

આ રીતે પુરાણોનું પ્રામાણ્ય સિદ્ધ થતું હોવાથી જ શ્રીમહાપ્રભુજી સર્વનિર્ણયપ્રકરણીયનિબન્ધમાં આજ્ઞા કરે છે કે-

પુરાણં વેદવત્ પૂર્વસિદ્ધં સર્વોપયોગિ તત્ ।

સર્વોપકારણાનીહ ધર્મસ્ય નરગેહયોઃ ॥

તદજ્ઞાને સર્વમૌઢ્યં તેન તદ્વદ્યં સ્મૃતમ્ ।

ભાવયુક્તસ્ય ધર્મસ્ય પ્રમિતૌ તત્પ્રયુજ્યતે ॥

જેમ વેદ પૂર્વસિદ્ધ છે, તેમ પુરાણ પણ પૂર્વસિદ્ધ જ છે. તે સર્વોપયોગી છે. પુરાણમાં નર અને ગેહ (ગૃહ) ના સર્વ ઉપકરણો (સાધનો) જણાવ્યાં છે. જો તેનું જ્ઞાન ન હોય તો સર્વ પ્રકારે મોઢ્ય (મૂઢતા) પ્રાપ્ત થાય. આ પ્રકારે પુરાણ શ્રેષ્ઠ હોવાથી તે જ પ્રભુનું હૃદય છે. ભાવયુક્ત ધર્મના જ્ઞાનમાં તેનો ઉપયોગ થાય છે.

વળી, શ્રીમહાપ્રભુજી એમ પણ જણાવે છે, કે બ્રહ્મપ્રકરણ પણ પુરાણમૂલક છે. પુરાણમૂલકં ચાપિ હ્યાશ્રમાચારતોદિતમ્ । બ્રહ્મપ્રકરણ પણ પુરાણ મૂલક છે,

અને બ્રહ્મચર્યાદિ આશ્રમોના આચારથી વર્ણવાયું છે. (કહેવાયું છે.)

આ પ્રકારે પુરાણોનું પ્રામાણ્ય સિદ્ધ થતું હોવાથી લોક વ્યવહાર પણ ધર્મને ઉપકારક કેમ થાય, એ જાણવા માટે પુરાણ જ સાધનરૂપ છે, પ્રમાણરૂપ છે. તેથી જ કહેવામાં આવ્યું છે, કે શ્રુતિસ્મૃતી ઉમે નેત્રે પુરાણં હૃદયં સ્મૃતમ્ શ્રુતિ (વેદ) અને સ્મૃતિ (ધર્મશાસ્ત્ર) એ બંને પ્રભુના નેત્ર છે અને પુરાણ હૃદય છે.

જેમ વેદ વ્યાસે વેદનો વ્યાસ કર્યો તેમ કલ્પભેદે પુરાણોના પણ વિભાગ કર્યા છે. તેમાં કેટલાંક સાત્ત્વિક, કેટલાંક રાજસ અને કેટલાંક તામસ છે. પૂર્વે એક પુરાણ હતું તેમાં પ્રમાણ નીચે મુજબ છે-

પુરાણમેકમેવાસીત્તસ્મિન્કલ્પાન્તરેડનઘ ।

ત્રિવર્ગસાઘનં પુણ્યં શતકોટિપ્રવિસ્તરમ્ ॥

આ વાક્યાનુસાર જે એક જ પુરાણ હતું તેનો વ્યાસે વિસ્તાર કર્યો. અથવા વિભાગ કર્યો સમષ્ટાદશપુરાણાનિ કૃત્વા સત્યવતીસુતઃ આ વાક્યમાં અઢાર પુરાણ કરીને (ભારત કર્યું) એમ જે ઉદ્દેશ આવે છે, ત્યાં એકના અનેક - અઢાર કર્યા એમજ અર્થ સમજવો, નહિ કે અઢાર પુરાણ રચ્યા. કારણ કે શિવાદ્યા ઋષિપર્યન્તાઃ સ્મર્તારોડસ્ય ન કારકાઃ શિવથી આરંભીને ઋષિ સુધીના સર્વે સ્મર્તા (સ્મરણકરનારા) છે, નહિ કે રચનારા ઇત્યાદિ વાક્યોમાં બાધપ્રસક્તિ થાય. સર્વત્ર વેદાદિમાં પ્રભુનું જ ગુણગાન છે. વેદે રામાયણે ચૈવ પુરાણે ભારતે તથા । આદૌ મધ્યેડવસાને ચ હરિઃ સર્વત્ર ગીયતે વેદમાં રામાયણમાં, પુરાણમાં અને ભારતમાં; આદિ, મધ્ય અને અવસાનમાં સર્વત્ર ભગવાન જ ગવાય છે.

પુરાણો વેદતુલ્ય છે. ત્રેવણિકેતરને ભાગવતાદિના પાઠનો અધિકાર નથી, તેથી જ શ્રાવયેદ્યતુરો વર્ણાન્ કૃત્વા બ્રાહ્મણમગ્રતઃ ઇત્યાદિ વાક્યો બ્રાહ્મણને આગળ કરીને ચારે વર્ણને કેવલ શ્રવણ કરવાનો જ અધિકાર આપે છે. તેમ જ ઐતિહ્યને અતિરિક્ત પ્રમાણ પણ માનમાં આવ્યું છે. યદ્યપિ શબ્દપ્રમાણમાં તેનો અન્તર્ભાવ થઈ શકે, તથાપિ ઐતિહ્યને પૃથક્ પ્રમાણ માનવામાં એજ સ્વારસ્ય છે, કે તે વેદવત્ પ્રમાણ છે. કેવલ તર્ક તેનો બાધ કરી શકે નહિ. અથવા શ્રુતિ અને સ્મૃતિની અપેક્ષાએ પુરાણોનું પ્રામાણ્ય ઓછું છે, એમ પણ માની શકાય નહિ.

હવે, પુરાણના લક્ષણનો વિચાર કર્યા પછી શ્રીમદ્ભાગવતનો આધુનિક વિકાસનો મત મુજબ કાલનિર્ણય વિચારીશું. બહિરંગપરીક્ષા પછી શ્રીમદ્ ભાગવતની અંતરંગપરીક્ષા કે પ્રસ્તુત ભાગમાં પ્રતિપાદન કરેલા પદાર્થો સંબંધી વિચાર કરવામાં આવશે.

## પુરાણનું લક્ષણ

પુરાણશબ્દની નિરુક્તિ વાયુપુરણ અને પદ્મપુરાણમાં નીચે મુજબ મળી આવે છે-

પુરાપરમ્પરાં વક્તિ પુરાણં તેન વૈ સ્મૃતમ્ ।

નિરુક્તિમસ્ય યો વેદ સર્વપાપૈઃ પ્રમુચ્યતે ॥

પુરાપરમ્પરા (પ્રાચીન પરમ્પરા) કહે છે, તેથી તે પુરાણ કહેવાય છે. આ રીતે જે 'પુરાણ શબ્દની નિરુક્તિ જાણે તે સર્વ પાપોથી મુક્ત થાય છે. આ રીતે જ શુક્નીતિમાં કે જેનો ઉદ્દેશ મહાભારતમાં ચે મળી આવે છે - લખ્યું છે, કે-

સર્ગશ્ચ પ્રતિસર્ગશ્ચ વંશો મન્યન્તરાણિ ચ ।

વંશાનુચરિતં યસ્મિન્પુરાણં તત્ત્વકીર્તિતમ્ ॥

સર્ગ, પ્રતિસર્ગ, વંશ, મન્યન્તર અને વંશાનુચરિત જેમાં કહેવાયું હોય, તે પુરાણ કહેવાય છે. ઉપરથી સમજી શકાય છે, કે પુરાણનું ક્ષેત્ર ઘણું વિસ્તૃત છે. કેટલાક લોકો ઇતિહાસ અને પુરાણને એક કોટિમાં ગણે છે, તેઓ મોટામાં મોટી ભૂલ કરે છે. કારણ કે શુક્નીતિમાં જ ઇતિહાસની નિરુક્તિ નીચે મુજબ જણાવી છે.

પ્રાગ્વૃત્તકથનં ચૈકરાજકૃત્યમિષાદિતઃ ।

યસ્મિન્ સ ઇતિહાસઃ સ્યાત્પુરાવૃત્તઃ સ એવ હિ ॥

એક રાજાના કૃત્યના નિમિત્તની પ્રાચીન ઘટનાસમૂહનું જેમાં વર્ણન કરવામાં આવ્યું હોય, તે ઇતિહાસ કહેવાય, અને તેજ પુરાવૃત્ત પણ કહેવાય છે. આ ઉપરથી સમજી શકાશે, કે ઇતિહાસમાં પુરાણની ઘણી બાબતોનો સમાવેશ કરી શકાય છે, પરંતુ પુરાણમાં ઇતિહાસનો સમાવેશ થતો નથી. રામાયણ, મહાભારતાદિ આ રીતે ઇતિહાસની કોટિમાં સમાવિષ્ટ થાય છે, પરંતુ સમચરિત્ર કે પાણડવચરિત્ર પુરાણમાં હોવા છતાં પુરાણનો સમાવેશ ઇતિહાસમાં થતો નથી. અને તેથી જ પુરાણમાં ઘણા આખ્યાનો અને ઉપાખ્યાનો ઇત્યાદિનો સમાવેશ થતો જોવામાં આવે છે. આખ્યાન, ઉપાખ્યાન, ગાથા અને કાવ્યો પુરાણોમાં છે. શ્રીધરસ્વામી વિષ્ણુપુરાણની ટીકામાં તેનો નિર્ણય નીચે મુજબ કરે છે-

સ્વયં દૃષ્ટાર્થકથનં પ્રાહુરાધ્યાનકં બુધાઃ ।

શ્રુતસ્યાર્થસ્ય કથનં ઉપાધ્યાનં પ્રચક્ષતે ॥

ગાથાસ્તુ પિતૃપૃથિવીપ્રભૃતિગીતયઃ ।

કલ્પશુદ્ધિઃ શ્રાદ્ધકલ્પાદિનિર્ણયઃ ॥

સ્વતઃ જોયેલી વાર્તાનું કથન કરવું તે આખ્યાન કહેવાય, સાંભળેલી વસ્તુનું કથન ઉપાખ્યાન છે, પિતૃ, પૃથ્વી વગેરેએ જે વસ્તુનું ગાન કર્યું હોય તે ગાથા કહેવાય, અને શ્રાદ્ધકલ્પાદિનો જેમાં નિર્ણય હોય (જે કાલનિર્ણય કરે) તે કલ્પશુદ્ધિ છે. આ રીતે જો પુરાણ અને ઇતિહાસમાં વપરાયેલા પારિભાષિક શબ્દોનું જ્ઞાન થાય તોજ પુરાણોનું રહસ્ય સમજાય અને તે મુજબ વેદાર્થ પણ સમજી શકાય. કારણ કે વેદમાં જે ઉપાખ્યાન અને ગાથાઓ આવે છે; અને તે ઉપરથી વેદાર્થના નિર્ણયમાં ઘણા પાલિડતો પણ ગોથાં ખાતા દેખાય છે. પુરાણ અને વેદાર્થની એક વાક્યતા છે. પરંતુ અફસોસ થાય છે, કે ઘણાં પાલિડતો પણ આ વસ્તુ સમજતા નથી, તેથી ભારતીય તત્ત્વવેત્તાઓને તેઓ અનિચ્છાએ પણ અન્યાય કરે છે. મત્સ્યપુરાણના ત્રેપનમાં અધ્યાયમાં સ્પષ્ટ જણાવ્યું છે, કે પુરાણં સર્વશાસ્ત્રાણાં પ્રથમં બ્રહ્મણા સ્મૃતં । અનન્તરં ચ વક્ત્રેભ્યો વેદાસ્તસ્ય વિનિર્ગતાઃ સર્વશાસ્ત્રોથી પહેલાં બ્રહ્માજીએ પુરાણનું સ્મરણ કર્યું અને તે પછી તેમના ચારે મુખમાંથી વ્રેદો નિકળ્યા. એજ અધ્યાયમાં આગળ જઈને જણાવે છે, કે - અઘાદશપુરાણાનિ જ્ઞાત્વા સત્યવતીસુતઃ । ભારતાખ્યાનમતુલં ઘટ્ટે તદુપસૃહિતમ્ ॥ સત્યવતીસુત એવા વ્યાસજીએ અઘાર પુરાણ જાણીને તેના ઉપબૃહદાંશપે (વિસ્તારાંશપે) ભારતાખ્યાન કર્યું. કેટલાક પુસ્તકોમાં જ્ઞાત્વાની જગ્યાએ કૃત્વા પણ પાઠ છે. પરંતુ ત્યાં જે સ્વતંત્ર કર્તૃત્વતો નથી જ. કારણ કે અમે ઉપર જણાવ્યું છે, તેમ વેદની શ્રુતિઓમાં પુરાણનો ઉલ્લેખ હોવાથી અને પુરાણ પણ ભગવન્નિઃશ્વસિત હોવાથી જ અપૌરુષેય છે. રેવામહાત્મ્ય અને પદ્મપુરાણમાં પણ તે પ્રકારના અનેક વાક્યો જોવામાં આવે છે. એમ સારી પેઠે જાણીએ છીએ કે આ પ્રકારના વાક્યોને કેટલાક પાલિડતો સ્તુતિત્વે કલ્પે છે. અને કેટલાક તો પ્રક્ષિપ્ત પણ કહે છે. પરંતુ તેમ કલ્પના કરવામાં કે કહેવામાં કાંઈ પણ તથ્ય નથી. જો સ્તુતિત્વે મિથ્યાત્વ પ્રાપ્ત થતું હોય તો વેદમાંજે તે પ્રકારના વાક્યો હોવાથી મિથ્યાત્વની પ્રસક્તિ થાય અને તેમ થવાથી અવિશેષાત્ સર્વત્રજ અપ્રામાણ્યાપત્તિ થાય. તેમજ પ્રક્ષિપ્ત કથન પણ અયોગ્ય છે. પ્રક્ષેપ સર્વત્ર જ માની શકાય. પ્રક્ષેપમાં કાંઈ પણ પ્રમાણ નથી. આજે હું જેને પ્રમાણ કહેતો હોઉં તેને જો કોઈ પ્રક્ષિપ્ત કહે, તો અન્ય જેને પ્રમાણ કહે તેને હું પણ પ્રક્ષિપ્ત કહી શકું. એમ થવાથી વાસ્તવિક તત્ત્વનિર્ણય સમ્ભવજ નહિ. આ રીતે થયેલા નિર્ણયો કેટલા અપ્રમાણિક છે. તે અત્રે કાલનિર્ણયમાં જણાવીશું.

## પુરાણોનું કાર્ય અને તેમનો હેતુ

યદપિ પુરાણ અનન્ત છે, સૌથી પહેલાં બ્રહ્માજીએ તેનું સ્મરણ કર્યું, તથાપિ અત્યારે જે ઉપલબ્ધ પુરાણો છે, તેની પ્રવૃત્તિ તો વ્યાસજીથી જ થાય છે. તે પછી શિષ્ય પ્રશિષ્યોએ તેમનો પ્રચાર કરેલો હોવાથી વ્યાસના શિષ્યોનું તેમાં પ્રવર્તકત્વ સ્વીકારી શકાય છે. વ્યાસજીએ પુરાણનો પ્રચાર ૧૧ માટે કર્યો, તે પણ જાણવા જેવું છે.

इतिहासपुराणानि मया सृष्टिनि सुव्रत ।

य एते चतुरो वेदा गूढार्थाः सततं स्मृताः ॥

अतस्त्वैतानि सृष्टानि बोधायैषां महामुने ॥

જે આ ચારે વેદ કે જે ગૂઢ અર્થવાળાં છે, તેના બોધ માટે ઇતિહાસ અને પુરાણોનો મેં આવિર્ભાવ કર્યો છે. મહાભારતમાં જણાવ્યું છે, કે-

इतिहासपुराणाम्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।

बिभेत्यल्पश्रुताद्धेदो मामयं प्रतिरिष्या ति ॥

આ ઉપરથી વેદાર્થનો નિર્ણય પુરાણો વિના થઈ શકે નહિ એમ સ્પષ્ટ દેખાય છે. છતાં જે લોકો પુરાણોને કોરે મૂકી દઈને વેદાર્થ કરવાનો ડોળ કરે છે, તે કેવલ ભારતીય સંસ્કૃતિની પ્રતારણાજ કરે છે. વેદનું પ્રયોજન સમજ્યા વિના જે અર્થ કરાય તેને પ્રતારણાં અન્ય શબ્દ વડે ઓળખાવી શકાય જ નહિ. પદ્મપુરાણમાં કહ્યું છે કે પુરાણે ધર્મનિશ્ચયઃ પુરાણમાં વેદ પ્રતિપાદિત ધર્મનો જ નિર્ણય-નિશ્ચય છે. છતાં વેદમાંથી તદ્દન શાસ્ત્ર વિરુદ્ધ સિદ્ધાન્તો ઉપજાવી કાઢવાં એ પ્રતાપરણા નહિ તો બીજું શું હોઈ શકે ? પુરાણનું મુખ ઇતિહાસ નથી, ભૂગોળ નથી કેવલ વિદ્યા પણ નથી, પ્રત્યુત ધર્મનિર્ણય છે. તેથી જો પુરાણમાં આ વિષયો અવ્યવસ્થિત હોય તો તેમાં નવાઈ શી છે ? તથાપિ જો પુરાણોનું સૂક્ષ્મ નિરીક્ષણ કરવામાં આવે તો ઉપર જણાવેલા વિષયોની વ્યવસ્થિત શૃંખલા બાંધી શકાય. હાલમાં જ બરોડા સંસ્કૃત કોલેજના પ્રિન્સીપાલ મિ. યાજ્ઞિકે પુરાણોના આધારે પૃથ્વી અને ભારતવર્ષના માનચિત્ર (નકશા) તૈયાર કર્યા છે. દુર્લભ કાંઈ નથી. જો જગત્માં કોઈ પણ દુર્લભ પદાર્થ હોય તો વિચાર કરનાર જ દુર્લભ કહેવાય. અથવા તો ભગવાન્ પોતે દુર્લભ છે. ભારતીય સંસ્કૃતિની છાયા પણ જેમની ઉપર પડી નથી તેવા અંગ્રેજ વિચારકો અને તેમના જ વિચારોનું ઉચ્છિષ્ટ ગ્રહણ કરનારા કેટલાક ભારતીય વિદ્વાનો પણ પુરાણોના વિષયોમાં ગમે તેવી કલ્પના ભલે કરતા,



પરંતુ તેથી કાંઈ પુરાણોની વાસ્તવિક સ્થિતિનું જ્ઞાન થતું નથી. અમારી પાસે વિલ્સન, મેકડોનલ, જેક્સન, તેલંગ, વગેરેના આ સંબંધમાં ઘણા લેખો મોજુદ છે. પરંતુ તેમાં ચુક્તિ વિહીનતા જ દૃષ્ટિગોચર થાય છે, તેમની ચુક્તિઓનો જવાબ તે પાલિકોના જન્મથી સેંકડો વર્ષ પહેલાં અનેક વિદ્વાનોએ આપેલો છે. તેમણે તો આ વિદ્વાનોના કલ્પેલા પૂર્વપક્ષોને જ સિદ્ધાંતરૂપે સ્વીકારીને જલમન્યન કરવાની કુચેષ્ટા માત્ર કરી છે. ઉદાહરણ માટે તેમાંના બે-એક ફકરાઓ આ સ્થળે ટાંક્યા છે- એક પંડિત આ વિષયમાં “બોદ્ધ ભારત વર્ષ” નામના પુસ્તકમાં નીચે મુજબ લખે છે-

"It jars upon the readers to hear the chronicles called the mendacious fiction of unscrupulous monks. Such expressions are inaccurate; and they show a grave want of appreciation of the points worth considering. Just as in the case of Megasthenes, of the early English Chronicles, it would be unreasonable to expect that sort of historical training which is of quite recent growth even in Europe.... The hypothesis of deliberate being, of conscious forgery, is generally discredited. What we find in such chronicles is not indeed sober history, as we should now understand the term; but neither it is fiction. It is good evidence of opinion as held of the Time when it was written."

(Buddhist India, P. 274)

વ્યાસની પછી પુરાણોનું સ્વરૂપ મિ. તેલંગે કેવું જોયું, તે નીચેના શબ્દો ઉપરથી સમજી શકાશે. તેલંગે ભગવદ્ગીતા ઉપોદ્ધાતમાં જણાવ્યું છે કે-

"There is a good deal in the Puranas, That I think must be admitted to be every ancient, while undoubtedly also there is a great deal in them what is very modern." P.14.

મેકડોનલ સાહેબ કાંઈક જુદું જ જુએ છે.

"Never-the-less they contain much that is old, and it is not always possible to assume that the passages they have in common with મહાભારત and મનુ have been borrowed from those works." History of Sanskrit Literature by Macdonal" P. 299-317.

ઉપર જણાવેલા શોધકો પુરાણોનો સંબંધ સ્મૃતિઓ સાથે શોધી કાઢે છે. પરંતુ તેઓ સમજતા નથી કે પુરાણ સ્વતઃ જ ધર્મનિર્ણય કરનાર હોવાથી સ્વાભાવિક રીતે જ પુરાણ અને સ્મૃતિઓમાં થોડું ઘણું સામ્ય હોઈ શકે.

વિલ્સન કહે છે કે-

It is possible, however, that there may have been an earlier class of Puranas, of which those we now have are but the partial and adulterated representatives. The identity of the words-(for in several of them long passages are literally the same) - is a sufficient proof that in all such cases they must be copied from some other similar work or from a common or original.

આ રીતે અનેક મતમતન્ટરો પુરાણોના સંબંધમાં પ્રચલિત થાય છે. પરંતુ તેમાં વિશ્વાસલાયક તત્ત્વ કેટલું છે, તે વિજ્ઞા વિદ્વાનો જ સમજી શકે તેમ છે. જ્યારે ભારતીય સંસ્કૃતિના વિષયમાં વિચાર કરવાનો હોય, ત્યારે ભારતીય દૃષ્ટિ જ ઉપયોગી હોઈ શકે. જો હું આજે સેક્સપીયરના નાટકોની પરીક્ષા ઉદ્ભવ કે મમ્મટની દૃષ્ટિથી કરવા બેસી જાઉં તો તે કેટલું યોગ્ય હોઈ શકે ? તેમાં જેમ ભારતીય દૃષ્ટિ ઉપયોગી નથી, તેમ ભારતીય મનતવ્યોનું નિરીક્ષણ ભારતીય શાસ્ત્રોની દૃષ્ટિએ જ તેના ઉપયોગનો વિચાર કરી કરવું જોઈએ.

### પુરાણોની યાદી

પુરાણ ઘણાં છે. તેમાંથી અષ્ટાદશ પુરાણો મુખ્ય છે. ઈતર પુરાણો ઉપપુરાણ છે. તે નીચેની સૂચી ઉપરથી સમજી શકાશે.

પુરાણ	કલ્પ	શ્લોક	પુરાણ	કલ્પ	શ્લોક
૧ બ્રહ્મ	બ્રાહ્મ	૧૦૦૦૦	૧૦ બ્રહ્મવૈવર્ત	રથન્ટર	૧૮૦૦૦
૨ પદ્મ	પાદ્મ	૫૫૦૦૦	૧૧ લિંગ	કલ્પાન્તમાં(?)	૧૧૦૦૦
૩ વિષ્ણુ	વારાહ	૨૩૦૦૦	૧૨ વારાહ	માનવ	૨૪૦૦૦
૪ વાયુ	શ્વેત	૨૪૦૦૦	૧૩ સ્કન્ધ	તત્પુરુષ	૮૧૧૦૦
૫ ભાગવત	સારસ્વત	૧૮૦૦૦	૧૪ વામન	કૂર્મ	૧૦૦૦૦
૬ નારદ	બૃહત્	૨૫૦૦૦	૧૫ નૃસિંહ	લક્ષ્મી	૧૦૦૦૦
૭ માર્કણ્ડેય	માર્કણ્ડેય	૮૦૦૦	૧૬ મત્સ્ય	સત્ય	૧૪૦૦૦
૮ અગ્નિ	ઈશાન	૧૬૦૦૦	૧૭ ગરુડ	ગારુડ	૧૮૦૦૦
૯ ભવિષ્ય	અધોર	૧૪૫૦૦	૧૮ બ્રહ્માણ્ડ	બ્રહ્માણ્ડ	૧૨૦૦૦

ઉપર જણાવેલા પુરાણોમાં સાત્ત્વિક રાજસ અને તામસ એમ ત્રણ પ્રકાર હરિવલ્લભસુધોદય નામના પુરાણસમુચ્ચયમાં પદ્મના ઉત્તરખણ્ડના બેતાલીશમાં અધ્યાયમાં રુદ્ર અને ઉમાના સમ્વાદમાં જણાવ્યા છે, ત્યાં (૧) માત્સ્ય,

(૨) કોર્મ, (૩) લેડ્ગ, (૪) શેપ, (૫) સ્કાન્દ અને (૬) આગ્નેય આ છ પુરાણો સાત્ત્વિક છે, (૧) બ્રહ્માણ્ડ, (૨) બ્રહ્મવૈવર્ત, (૩) માર્કણ્ડેય, (૪) ભવિષ્ય, (૫) વામન અને (૬) બ્રાહ્મ આ પુરાણો રાજસ છે, અને બાકીના તામસ પુરાણો છે, એમ કહેવામાં આવ્યું છે. ઇતરત્ર સાત્ત્વિક સાત્ત્વિક વગેરે ભેદે બને પુરાણો ગણાવ્યા છે. સાત્ત્વિક કલ્પોમાં વિષ્ણુથી, રાજસ કલ્પોમાં બ્રહ્માજીથી, તામસ કલ્પોમાં શિવજીથી અને સફ્કીર્ણ કલ્પોમાં પિતૃસરસ્વત્યાદિથી સૃષ્ટિના પ્રકારો જણાવ્યા છે. સર્વરૂપ હરિ છે. તેથી સર્વ જ સૃષ્ટિ પ્રકારોનો ઉપસંહાર પ્રભુમાં થાય છે.

આ પુરાણોનાં જુદાં જુદાં લક્ષણો મત્સ્યપુરાણમાં આપ્યાં છે. ત્યાંથી વિશેષજિજ્ઞાસુએ સફ્ગ્રહ કરી લેવો.

### કલ્પ કેટલા ?

હવે કલ્પના સંબંધમાં ચે થોડોક વિચાર કરવો આવશ્યક છે. કાઠીયાવાડથી બગસરાના કેટલાક જિજ્ઞાસુ યેષ્ઠાવોએ મને આ સમ્બન્ધમાં શડ્કા પૂછી હતી. પરંતુ સમયના અભાવે હું તેમની જિજ્ઞાસા પૂર્ણ કરી શક્યો નહિ. તેમને આ સ્થળમાંથી નિજ જિજ્ઞાસાની પૂર્તિ કરી લેવા વિજ્ઞાસિ છે. પ્રભુકૃપાથી જો સ્વાસ્થ્ય અને અવકાશ પ્રાપ્ત થશે, તો આ વિષયમાં કાંઈક વિશેષ પણ લખી શકાશે.

સામાન્ય રીતે કલ્પને બ્રહ્માજીનો એક દિવસ ગણવામાં આવે છે. ત્રીસ દિવસનો એક માસ. બાર માસનું વર્ષ અને એવા સો વર્ષનું બ્રહ્માજીનું આયુષ્ય લેખાય છે. તે કલ્પો અનુક્રમે નીચે મુજબ છે.

મત્સ્યપુરાણમાં કલ્પનું અનુકીર્તન કરતાં જણાવે છે, કે - (૧) શ્વેતકલ્પ, (૨) નીલલોહિત, (૩) વામદેવ, (૪) રથન્તર, (૫) રૌરવ, (૬) પ્રાણ, (૭) બૃહત્, (૮) કન્દર્પ, (૯) સહ્ય, (૧૦) ઈશાન, (૧૧) વ્યાન, (૧૨) સારસ્વત (૧૩) ઉદાન, (૧૪) ગારુડ, (૧૫) કોર્મ, આ બ્રહ્માજીની પૂનમ છે, (૧૬) નારસિંહ, (૧૭) સમાન, (૧૮) આગ્નેય, (૧૯) સોમ, (૨૦) માનવ, (૨૧) ઉદાન, (૨૨) યેકુલ્હ, (૨૩) લક્ષ્મી, (૨૪) સાવિત્રી, (૨૫) અધોર, (૨૬) વારાહ, (૨૭) યૈરાજ, (૨૮) ગૌરી, (૨૯) માહેશ્વર કલ્પ (કે જેમાં ત્રિપુરાસુરનો વધ થયો) અને (૩૦) પિતૃકલ્પ. આ બ્રહ્માજીની આમાવાસ્યા છે, આ રીતે સર્વપાપનો નાશ કરનાર બ્રહ્માનો માસ થાય છે. પરંતુ આ શિવાયના ચે સેંકડો કલ્પો છે. જેમાં બ્રહ્મા પ્રકટ થયા, તે બ્રાહ્મકલ્પ છે. ત્રણસો ને સાઠ પણ કલ્પ કહ્યા છે. અવાન્તર કલ્પોમાં ભુશાદિ ત્રણ લોકનો જ લય થાય છે. પરંતુ જ્યારે સો

વર્ષ પૂર્ણ થાય ત્યારે મહાપ્રલય થાય.

ઉપર જણાવેલા કલ્પોના લક્ષણાદિક અને જ્યોતિઃશાસ્ત્રને અનુસરીને કાલ ગણના પણ જણાવી છે. તેનો જો આ સ્થળે સમાવેશ કરવામાં આવે, તો ઘણો વિસ્તાર થઈ જાય, તેથી અમે આ સ્થળે આટલું જ દિગ્દર્શન કરાવીને વીરમીએ છીએ. સામાન્ય રીતે સૂર્યસિદ્ધાન્તને અનુસરતી કાલ ગણના શબ્દ કલ્પદ્રુમ અને વાયસ્વત્યકોષમાં ચે જણાવી છે. ત્યાંથી પણ તેનો સફ્ગ્રહ થઈ શકે તેમ છે.

### પુરાણ પંચલક્ષણ કે દશલક્ષણ

સામાન્ય રીતે પુરાણશબ્દ ઉચ્ચારતા મહાપુરાણ અને ઉપપુરાણ બંનેનું જ્ઞાન થાય છે. પંચલક્ષણ ઉપપુરાણ હોય છે, અને દશલક્ષણ મહાપુરાણ કહેવાય છે. પાંડિતપુરન્દર શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજ સર્વ. નિર્ણયપ્રકરણીય આવરણભડ્ગમાં તેનો ઉલ્લેખ નીચે મુજબ કરે છે. આદિત્યપુરાણમાં કહ્યું છે કે-

સર્ગોડસ્યાથ વિસર્ગશ્ચ ઋતિર્મન્વન્તરાણિ ચ ।

વંશો વંશ્યા (શા) નુચરિતં સંસ્થા હેતુરથાશ્રયઃ ॥

દશભિર્લક્ષણૈર્યુક્તં પુરાણં તદ્વિદો વિદુઃ ॥

આ પ્રકારે દશલક્ષણલક્ષિત દશલક્ષણથી લક્ષિત મહાપુરાણ હોય છે અને પંચલક્ષણ યુક્ત પુરાણ (સામાન્ય) કે ઉપપુરાણ હોય છે. શ્રીમદ્ભાગવત પણ દશલક્ષણલક્ષિત હોવાથી મહાપુરાણ છે. આ દશેના સ્વરૂપો પણ ત્યાં (આદિત્ય પુરાણમાં) જણાવ્યાં છે.

### શ્રીમદ્ભાગવત

શ્રીમદ્ભાગવત મહાપુરાણ છે, કે દેવીભાગવત મહાપુરાણ છે. એમ એક વાદ પણ અસ્તિત્વ ધરાવે છે. આ વાદનું સત્યસ્વરૂપ અને સિદ્ધાન્ત આ ભાગમાં જ પરિશિષ્ટ રૂપે મુદ્રણ કરેલા “ભાગવતવિજયવાદમાં”

૧ દેવીપુરાણ, કાલિકાપુરાણ કે દેવીભાગવત મહાપુરાણ છે, કે શ્રીમદ્ભાગવત મહાપુરાણ છે, આ વિષયનું વિવેચન કરનારા બીજા પણ સાત ગ્રંથો મળી આવે છે. (૧) રામાશ્રયકૃત દુર્જનમુખયપેટિકા (૨) કાશીનાથ ભટ્ટાચાર્ય કૃત દુર્જનમુખમહાયપેટિકા, (૩) દુર્જનમુખપદ્મપાદુકા. (૪) મિતાક્ષરાની બાલંભટ્ટીટીકા, (૫) દેવીભાગવતનીલકંઠ કૃત પ્રસ્તાવના (૬) ભાગવતભૂષણ અને (૭) સિદ્ધાન્તદર્પણ. આમાંથી બીજો, ચોથો અને પાંચમો ગ્રંથ દેવીભાગવતનો પક્ષ ગ્રહણ કરે છે. અન્ય શ્રીમદ્ભાગવતના પક્ષમાં છે. આ સિવાય અને અનેક

ગ્રંથો છે. શ્રીમદ્ પુરુષોત્તમજી મહારાજે “ભાગવતશંકા નિરાસવાદ” રચ્યો છે, તેમજ “ભાગવતપ્રમાણભાસ્કર” નામનો એક લઘુ ગ્રંથ પણ છે. આ ગ્રંથો વે.શા.સં. લક્ષ્મીરામ શાસ્ત્રીજીની અનુકંપાથી અમને પ્રાપ્ત થયા છે. આ સિવાય દુર્જનમુખવિદ્યવંસનવાદ પણ અમારી પાસે છે, યથાવસરે “શ્રીવીરૂપવત્રિકા” દ્વારા તેનું મુદ્રણ થશે જ. હવે આ વિષયમાં ઉંડા ન ઉતરતા શ્રીમદ્ભાગવતના સ્વરૂપનો જ વિચાર કરવો આવશ્યક છે.

### શ્રીમદ્ભાગવતનું શ્રીકૃષ્ણસ્વરૂપત્વ

શ્રીમદ્ભાગવત સ્વરૂપાત્મક છે, એમ તો પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રત્યેક યેષ્ઠાવ સમજે છે જ. તદ્દનુસાર મોટા મોટા મંદિરોમાં પ્રભુની સાથે નિજમંદિરમાં શ્રીસુબોધિનીજી કે શ્રીમદ્ભાગવતની નિયમિત સેવા પણ થાય છે. કેટલાક યેષ્ઠાવો તો સ્વરૂપના અભાવે શ્રીમદ્ભાગવતની સેવા કરી ભોગધરી પ્રસાદ લે છે. અર્થાત્ જ શ્રીમદ્ભાગવત અને ભગવત્સ્વરૂપ અભિન્ન છે, એવી ભાવના સેંકડો વર્ષથી પોષાયેલી દેખાય છે. આ પ્રકારની ભાવનાનું મૂળ શ્રીમદ્ભાગવતના વાક્યોમાં મળી આવે છે.

ભાગવતાર્થનિબન્ધના પ્રારંભમાં જ શ્રીમદ્ભાગવત મંગલાચરણ કરીને શ્રીમદ્ભાગવતને ભગવત્સ્વરૂપથી અભિન્નત્વે જણાવે છે.

શ્રીકૃષ્ણં સદ્ધિદાનંદ દશલીલાયુતં સદા ।

સર્વભક્તસમુદ્ધારે વિસ્ફુરન્તં પરં નુમઃ ॥

આ સ્થળે શ્રીકૃષ્ણને દશવિધલીલાયુક્ત કહે છે. શ્રીકૃષ્ણની દશવિધલીલાનો ઉલ્લેખ કરવાનું પ્રયોજન અહિંયા તો ફલરૂપ પરમાનન્દના સાધનત્વે શ્રીમદ્ભાગવતનું શ્રવણ જ છે, તેથી દશવિધલીલા યુક્તત્વે શ્રીમદ્ભાગવતની શ્રવણસ્વરૂપતા પણ છે. પ્રભુ દશવિધ લીલા યુક્ત છે અને શ્રીમદ્ભાગવત દશવિધલીલાનું પ્રતિપાદન કરે છે, તેથી પણ તે દશવિધ લીલા વિશિષ્ટ તો છેજ. શ્રીમદ્ભાગવત આજ્ઞા કરે છે, કે દશવિધલીલાસ્વરૂપે વ્યાપાર કરતું સ્વરૂપ જ શ્રવણવિષયત્વે ગ્રાહ્ય છે. ભગવદવતાર અને શ્રીમદ્ભાગવત એ ઉભયનું પ્રયોજન સર્વભક્તોનો સમુદ્ધાર છે. સર્વભક્ત એટલે હીન, મધ્યમ અને ઉત્તમ અધિકારવિશિષ્ટ ભક્તો. જેમ અવતારદશામાં સાક્ષાત્ ઉદ્ધાર કર્યો, તેમ અનવતાર દશામાં શ્રીમદ્ભાગવતાદિ ઉદ્ધારક છે. તેનું દેદીપ્યમાન પ્રમાણ પરીક્ષિતનો ઉદ્ધાર પણ હોઈ શકે. પાણ્ડવોનો ઉદ્ધાર સ્વરૂપ વડે કર્યો, ત્યારે પરીક્ષિતનો ઉદ્ધાર શ્રીમદ્ભાગવત વડે કર્યો, આથી

યે વિશેષ શ્રીમદ્ભાગવતની ભગવત્સ્વરૂપતાના વિષયમાં કાંઈ કહેવા જેવું અવશિષ્ટ રહેતું નથી, તથાપિ, જો પ્રમાણોનો જ સંગ્રહ કરવો હોય, તો પુષ્કળ પ્રમાણો પ્રાપ્ત થઈ શકે છે. શ્રીમદ્ભાગવતની વાસ્તવિક મહત્તા તો તત્પ્રતિપાદ્ય તત્ત્વો ઉપરથી જ જાણી શકાય તેમ છે. ઈતર પ્રમાણો મહાત્મ્યનું જ ખ્યાપન કરે છે.

### ભગવત્સ્વરૂપ સાથે એક્ય

શ્રીમદ્ભાગવતનું ભગવત્સ્વરૂપ સાથે શ્રીમદ્ભાગવતનું એ અને અન્ય પણ વિદ્વાનોએ એક્ય સ્થાપન કર્યું છે. ઈતીદં દ્વાદશસ્કન્ધં પુરાણં હરિરેવ સઃ ઇત્યાદિ વાક્યો દ્વાદશસ્કન્ધયુક્ત એટલે શ્રીમદ્ભાગવતને શબ્દતઃ અને અર્થતઃ સાક્ષાત્ ભગવદ્રૂપત્વે ભેદ હોવા છતાં પણ - પરસ્પરાકાંક્ષાથી રહિત હોવા છતાં પણ - ભગવદ્રૂપ હોવાથી ઉભય (પ્રભુનું નિજ સ્વરૂપ અને શ્રીમદ્ભાગવત) એક જ છે, એમ પ્રતિપાદન કરે છે. શ્રીમદ્ભાગવતના બાર સ્કન્ધ પ્રભુના બાર અંગો છે, તે નીચેના કોષ્ટક (Table) ઉપરથી બરાબર સમજી શકાશે.

શ્રીઅંગનું નામ	સ્કન્ધ	લીલા	સર્ગાદિ લીલાની વ્યાખ્યા
૧ દક્ષિણચરણારવિન્દ	પ્રથમસ્કન્ધ	અધિકારલીલા	૦
૨ વામચરણારવિન્દ	દ્વિતીયસ્કન્ધ	જ્ઞાનલીલા	૦
૩ દક્ષિણબાહુ	તૃતીયસ્કન્ધ	સ્વર્ગલીલા ૧	બ્રહ્માની પાસેથી સત્પાદિ ગુણના વેષમ્બ વડે પંચ મહાભૂત, તન્માત્રા, ઈન્દ્રિયો અને અંતઃકરણની ઉત્પત્તિનો પ્રકાર સર્ગશબ્દ વાચ્ય છે.
૪ વામબાહુ	ચતુર્થસ્કન્ધ	વિસર્ગલીલા ૨	બ્રહ્માજીની પાસેથી ચરાચરની ઉત્પત્તિ વિસર્ગ કહેવાય છે.
૫ દક્ષિણસક્રિય	પંચમસ્કન્ધ	સ્થાનલીલા ૩	ભગવાનનો વિજય-સર્જના પદાર્થોનું મર્યાદાપૂર્વક પાલન જ ઉત્કર્ષ છે. આને સ્થાનલીલા કહે છે.
૬ વામસક્રિય	ષષ્ઠસ્કન્ધ	પોષણલીલા ૪	નિજ ભક્તો ઉપર પ્રભુનો અનુગ્રહ પોષણ કે પુષ્ટિ છે.
૭ દક્ષિણશ્રીહસ્ત	સપ્તમસ્કન્ધ	ઊતિલીલા ૫	કર્મ વડે વૃદ્ધિ પામે તે કર્મવાસના ઊતિલીલા કહેવાય છે.
૮ દક્ષિણસ્તન	અષ્ટમસ્કન્ધ	મન્યન્તરલીલા ૬	ભગવાનનુગૃહીત મન્યન્તરાધિપતિઓનો ધર્મ તે મન્યન્તરલીલા

૯ પામસ્તન	નવમસ્કન્ધ	ઈશાનુકથાલીલા ૭	અવતારોનું ચરિત્ર અને ભગવાનને અનુસરનારા રાજાઓનું ચરિત્ર ઈશાનુકથા કહેવાય.
૧૦ હૃદય	દશમસ્કન્ધ	નિરોધલીલા ૮	પ્રપંચ વિસ્મૃતિપૂર્વક ભગવદાસક્તિ નિરોધ છે. (વિશેષ માટે જુઓ શ્રીસુબોધિનીજીનો અનુવાદ અને વિવેચન)
૧૧ શ્રીમસ્તક	એકાદશસ્કન્ધ	મુક્તિલીલા ૯	અન્યથા સ્વરૂપનો ત્યાગ કરી સ્વસ્વરૂપમાં અવસ્થિતિ એ મુક્તિ.
૧૨ પામશ્રીહસ્ત	દ્વાદશસ્કન્ધ	આશ્રયલીલા ૧૦	જગતનો આવિર્ભાવ, નિરોધ અને પ્રલય જે વડે જાણી શકાય તે આશ્રય.

આ રીતે શ્રીનાથજીના દ્વાદશ શ્રીઅક્ષો સાથે શ્રીમદ્ભાગવતની સરખામણી થાય છે. અને તેથી જ તે ભગવત્સ્વરૂપથી અભિન્ન છે.

### શ્રીમદ્ભાગવતની મહત્તા શાથી છે ?

અન્ય પુરાણો પંચલક્ષણલક્ષિત છે, જ્યારે શ્રીમદ્ભાગવત દશવિધલીલાવિશિષ્ટ છે. આજ શ્રીમદ્ભાગવતની મહતાનું ઘોતક છે. તસ્માત્ इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् । પ્રોક્તં ભગવતા, પ્રાહ પ્રીતઃ પુત્રાય ભૂતકૃત (૨-૧-૪૩) તે (પૂછનાર) પુત્ર-નારદને પ્રસન્ન થયેલા બ્રહ્માજીએ દશલક્ષણયુક્ત ભાગવત, કે જે (તેમણે પણ) ભગવાન પાસેથી સાંભળ્યું હતું - કહ્યું. એ દશલક્ષણ ઉપરના કોઈકમાં જણાવેલી દશપ્રકારની લીલા જ છે. અન્ય પુરાણોની અપેક્ષાએ આટલું યેશિષ્ટ્ય હોવાથી ભાગવતનું પ્રામાણ્ય વિશેષ છે. જેમ વેદમાં જણાવેલા સામાન્ય વિધિની અપેક્ષાએ વિશેષવિધિ વિશિષ્ટ હોવાથી તે સામાન્યનો બાધ કરી શકે, પરંતુ સામાન્ય વિશેષનો બાધ ન કરે; આ પ્રકારે યદ્યપિ એક બીજાના બાધક હોય, તથાપિ તે બંનેમાંથી એકને ય અપ્રામાણ્યાપત્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી; તેજ રીતે અન્ય પુરાણો પણ જોકે વેદાર્થનો વિસ્તાર કરે છે, તો પણ શ્રીમદ્ભાગવત વિશિષ્ટ પ્રકારે વેદાર્થનો નિર્ણય કરે છે. અતએવ વેદમાં થતા સન્દેહનું ચે એકાન્તિક નિવારણ તો શ્રીમદ્ભાગવતજ કરી શકે. આથી જ શ્રીમદાચાર્યચરણ શ્રીમદ્ભાગવતને પ્રમાણમૂર્ધન્યત્વે સ્વીકારે છે. કેટલાક લોકો આ તત્ત્વને સમજ્યા વિના જ આક્ષેપ કરે છે, કે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી અન્ય પુરાણો કે ધર્મશાસ્ત્રોને પ્રમાણત્વે સ્વીકારતા નથી. આ આક્ષેપ સર્વથા અસ્થાને છે. અગ્નિહોત્રં જુહોતિ

યવાગૂં પચતિ ઇત્યાદિ સ્થળે જેમ પાઠક્રમને દુર્બલ માનીને અર્થક્રમ તેનો બાધ કરે છે, તેથી પાઠસાદૃશ્યને અમુક કર્મઠ માનતો નથી, એમ કોઈ પણ વિચારશીલ વિદ્વાન્ કહી શકે નહિ. અને જો તેમ કહે તો તેનું મોઢ્યજ પ્રદર્શિત થાય, તેજ પ્રકાર અત્રે પણ સમજી લેવો.

### પ્રામાણ્યવિચાર

પ્રામાણ્યવિચાર પ્રત્યેક વિચારકને આવશ્યક છે. કેવલ પ્રત્યક્ષને જ પ્રમાણ માનનાર લોકાયતિકથી આરંભીને ઐતિહ્ય પ્રચ્યન્ત પ્રમાણગણના કરનારા વિદ્વાનો વિદ્યમાન છે. છતાં પરમતત્ત્વનો નિર્ણય કરવા માટે ઇતર પ્રમાણોની અપેક્ષાએ શબ્દ પ્રમાણ જ અને તેમાં ચે સ્વતઃપ્રમાણ વેદ જ પરમપ્રમાણ રૂપ છે. શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતાનું પ્રયોજન સન્દેહનિવારણ છે. તેથી જો વેદમાં સન્દેહ થતો હોય, તો તેનો નિર્ણય ભગવદ્ ગીતાને અનુસરીને કરવો. વ્યાસસૂત્રો તો મુખ્યત્વે વેદના ઉત્તરકાણ્ડનો જ વિચાર કરવા માટે છે, તેથી ગીતા વડે જો સન્દેહનિરાકરણ ન થાય, તો સૂત્રવડે કરવું, અને જો તેમાં ચે સન્દેહ શેષ રહી જાય, તો શ્રીમદ્ ભાગવત વેદાર્થરૂપ જ હોવાથી અથવા વેદપ્રતિપાદિત પ્રમેયરૂપ હોવાથી શ્રીમદ્ ભાગવતોક્ત જ પ્રમેય સ્વીકારવું. આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે, કે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી વેદાઃ પ્રમાણમ્ એમજ કહે છે. અથવા વેદથી ચે શ્રીકૃષ્ણરૂપ પરમતત્ત્વ જ જ્ઞેય (પ્રમેય) હોવાથી ભાગવતમ્ પ્રમાણમ્ એમ કહે, તો તેમાં લેશમાત્ર પણ આલેપાર્હ વસ્તુ નથી. ઇતર પ્રમાણો વેદમૂલક હોવાથી અને પ્રમેયનો નિર્ણય ભાગવત વિના થતો ન હોવાથી વેદાનુસાર કે શ્રીમદ્ભાગવતાનુસાર જ ઇતર સર્વ પ્રમાણો ગ્રાહ્ય હોઈ શકે.

અન્ય આચાર્યોમાં અમુકે ભાગવતનું પ્રમાણ નિજગ્રન્થોમાં ઉદ્કૃત કર્યું નથી, તેથી તેનું પ્રામાણ્ય કેમ હોઈ શકે ? ઇત્યાદિ શંકા તો વાક્યહલ કહેવાય, કારણ કે વસ્તુસ્થિતિનો વિચાર ન કર્યો હોય તોજ આવી શંકાઓ ઉદ્ભવે. અથવા નિજદોષોનું આચ્છાદન કરવા આ પ્રકારનો છલ કરવો પડે. આચાર્યો કેવલ અમુક વસ્તુસ્થિતિનોજ વિચાર કરે છે. જેમ જેમિનિ આચાર્ય કર્મનો જ વિચાર કરવા પ્રવૃત્ત થાય, ત્યારે તેમાં સંન્યાસનો વિચાર હોય જ ક્યાંથી ? અથવા સાંખ્યનો વિચારક ઉપનિષદપ્રતિપાદ્ય બ્રહ્મનો વિચાર શા માટે કરે ? તેમ વ્યાસસૂત્રના પ્રારંભમાં જ જે વ્યક્તિ અધ્યાસને અવલમ્બીને વિચાર કરવા પ્રવૃત્ત થાય, તેને શ્રીમદ્ભાગવતાદિની અપેક્ષા નજ રહે. જેમ પ્રકૃતિ કે પરમાણુનો વિચાર કરનાર ઉપનિષદનો જો વિચાર ન કરે, તો તેથી ઉપનિષદનું અપ્રામાણ્ય સિદ્ધ થતું નથી, તેમ અધ્યાસને અવલંબીને

વિચારમાં પ્રવૃત્ત થનાર જો ભાગવતનું પ્રમાણ નિજ ગ્રંથોમાં ન મૂકે, તો તેથી કાંઈ ભાગવત અપ્રમાણ થતું નથી. વાસ્તવિક રીતે તો જે વિચારકને જે વિષયનું વિશેષ જ્ઞાન હોય, તે વ્યક્તિ તેજ વિષયને અવલમ્બીને વિચારમાં પ્રવૃત્ત થાય, તેથી ઈતર પદાર્થોનું અસ્તિત્વ કે પ્રામાણ્ય નષ્ટ થતું નથી તદ્દત્ જ જો આવા વિચારકોએ શ્રીમદ્ભાગવતનું અધ્યયન ન કર્યું હોય, તો તેથી કાંઈ ભાગવતના અસ્તિત્વમાં કે પ્રામાણ્યમાં ક્ષતિ થતી નથી.

આથી જ ભાગવતાર્થનિબંધના આવરણભંગમાં શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજ શ્રીમદ્ભાગવતની મહત્તા જણાવનારાવાક્યો મૂકે છે. શતશોથ સહસ્રૈશ્ચ કિમન્યૈઃ શાસ્ત્રસંહૃતૈઃ । ગૃહે ન તિષ્ઠતે યસ્ય શ્રીમદ્ભાગવતં કલૌ । કથં સ વૈષ્ણવો જ્ઞેયઃ શ્રીમદ્ભાગવતં કલૌ । ગૃહે ન તિષ્ઠતે યસ્ય શ્વપાદધિકો હિ સઃ આ વાક્યો ઉપરથી સમજી શકાય છે, કે યેષ્ણાવે શ્રીમદ્ભાગવતનો પાઠ અવશ્ય જ કર્તવ્ય છે. શ્રીમદ્ભાગવતની વૃત્તિ ગ્રહણ ન કરવી એમ પણ આજ્ઞા કરે છે. ભાગવત ભગવત્સ્વરૂપ હોવાથી તેની વૃત્તિ ગ્રહણ ન કરી શકાય.

શ્રીમદ્ભાગવતનું એક મહત્ત્વ એ છે કે ભારતીય વાઙ્મયમાંથી સૌથી પહેલાં શ્રીમદ્ભાગવતનું ભાષાન્તર અંગ્રેજી ભાષામાં થયું છે. જો કે ઉપનિષદો અને ગીતાનું ભાષાન્તર તેથી થયે પૂર્વે થયું છે, પરંતુ તે ભાષાન્તરો અન્ય ભાષાઓના અનુવાદોના આધારે અંગ્રેજીમાં થયા છે.

એમ પણ કહેવાય છે કે કવિકુલમણિ કાલિદાસના શાકુન્તલ નાટકનું અંગ્રેજી ભાષાન્તર સૌથી પ્રથમ થયું છે. પરંતુ તેથી થયે પૂર્વે હિન્દુસ્તાનના પ્રથમ ગવર્નર જનરલ પોરેનહેસ્ટિંગ્સે શ્રીમદ્ભાગવતનું ભાષાન્તર કર્યું છે, એમ ઈમર્સનના એક નિબંધ ઉપરથી જણાય છે. ઈમર્સન લખે છે કે-

I am not surprised, to find an Englishman like Warren Hastings, who had been struck with the grand style of thinking in the Indian writings, deprecating the prejudices of his countrymen while offering them translation of the Bhagwata. He goes on to bespeak the indulgence to ornaments of fancy unsuited to of our taste, and passages elevated to a tract of sublimity into which our habits of judgment will find it difficult or pursue them !"

### કાલનિર્ણય

શ્રીમદ્ભાગવતના કાલનિર્ણય માટે ઘણો વિવાદ થયા છે, તેથી અમે પણ જો આ સ્થળે તેનો વિચાર કરવા પ્રવૃત્ત થઈએ, તો તે અસ્થાને ગણાશે નહિ.

અત્યારે પશ્ચિમના વિદ્વાનોના સમ્પર્કથી ભારતીય વિદ્વાનો પણ કાલનિર્ણયમાં વિશેષ મહત્ત્વ માનતા થયા છે. જ્યારે વેદનો ચે કાલનિર્ણય કરવાની કુચેષ્ટાઓ ચાલતી હોય, ત્યારે અનિચ્છા થે પણ તટસ્થ વિદ્વાનોને આ દિશામાં પ્રયાણ કરવાની ફરજ પડે છે.

ઐતિહાસિક દષ્ટિએ કાલનિર્ણય કરનારાઓનો મુખ્ય આધાર તે તે સમયમાં બનેલા બનાવો અને પરદેશી યાત્રાળુઓની નોંધપોથી ઉપર જ જોવામાં આવે છે. અમુક ગ્રંથમાં અમુક ગ્રંથનું નામ આવતું નથી માટે તે ગ્રંથ, તે ગ્રંથની પછી રચ્યો હશે. અને અમુક યાત્રાળુની નોંધમાં અમુક બનાવનું વર્ણન નથી, માટે તે બનાવ તે પછીનો હોવો જોઈએ. આ પ્રકારની હાસ્યારૂપ વાસ્તવિક તત્ત્વને વિકૃત સ્વરૂપમાં જનસમાજની સમક્ષ રજુ કરવાનું પાપ કરતા તેઓને લેશમાત્ર સંડોવ્યો થતો નથી. હું તો વિદ્વાન્માત્રનો ભક્ત છું. પછી ભલે તે વિદ્વાન્ જો ચાર્વાકમત પણ અત્યારે વિદ્યમાન હોય અને તેનું ચે અનુસરણ કરતો હોય. હું તેના મતનો ભક્ત તો ન જ હોઈ શકું, પરંતુ તેની તીક્ષ્ણ બુદ્ધિ અને યુક્તિયુક્તતા તો ખચિતજ મને આશ્ચર્ય યક્તિ બનાવે છે. જેટલા માનથી હું કુમારિલભટ્ટ, ઉદયાનાયાર્ય કે ઉદ્યોતકરના મતનું મનન કરું છું, તેટલા જ માનથી હું તત્ત્વસંહ્યા અને સ્યાદ્વાદરત્નાકર પણ વાંચું છું આમ કરવાથી મને તુલનાત્મક અભ્યાસ કરવાનો લાભ મળે છે, અને તેથી જ તેમના પ્રયાસને ઇતિહાસ સંશોધકોના પ્રયાસની પેઠે હાસ્યારૂપ તો ન જ કહી શકું. આધુનિક ઇતિહાસસંશોધકો અને તેમાં ચે સંસ્કૃત સાહિત્યના સંબંધમાં શોધખોળ કરનારાઓની ઘણીખરી યુક્તિઓ હાસ્યારૂપ જ હોય છે. અમુક વ્યક્તિએ અમુક મતનો ઉલ્લેખ કર્યો નથી, તેથી પોર્વાપર્ય કેમ સંભવે એજ સમજી શકાતું નથી. ધારો કે આજે એક વ્યક્તિ ભગવદ્ગીતાના સંબંધમાં નિબંધ લખતો હોય અને તેમાં ગાંધીજીના આનંદોલનનું વર્ણન હોય, અરે તેમણે કરેલા ગીતાના અનુવાદની ચે જો તેણે ઉપેક્ષા કરી હોય, તો તે વ્યક્તિ ગાંધીજીથી પૂર્વે જન્મ્યો હતો, એમ કહેવું. કેટલું યોગ્ય હોઈ શકે ?

૧. શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી વેદના એક અક્ષરને પણ અન્યથા માનતા નથી. આ મતમાં અર્થવાદાદિ સમેત સંપૂર્ણ વેદ પ્રમાણ છે. તે ઈશ્વરરૂપ છે. એમ તેઓશ્રી અસંકૃત ઉદ્ધોષ કરે છે. છતાં તેઓશ્રીના મતનું અનુસરણ કરનાર કોઈક વિદ્વાન્ વેદનો કાલનિર્ણય કરવા પ્રવૃત્ત થાય, અને વિદેશીય વિદ્વાનોની જેમ ભારતમાં પૂર્વે અનાયોજ પસતા હતા, આર્યો તો બહારથી આવીને વસ્યા (જેમ પારસીઓ, મુસલામાનો કે યુરોપીયનો વસ્યા છે.) એમ માને તે અત્યંત દુઃખની વાર્તા છે. શ્રીવલ્લભાચાર્યજી આવી વ્યક્તિઓથી નિજ સિદ્ધાન્તનું રક્ષણ કરે. અત્યારે અધ્યયનાધ્યપનનો થયેલો અભાવ અને યેષ્ણોયો તથા આચાર્યોએ કરેલી વિદ્વાનોની અવહેલના જ આવા અપસિદ્ધાન્તોના પ્રચારમાં કારણભૂત હોઈ શકે.

અથવા છેલ્લી ચક્કરપરિષદમાં મિસ્ટર ના . પુ. સાં. કે. ન . પુ. સં. નું સ્થાન ન હોય તો તેઓ તે સમયથી પૂર્વે મહાયાત્રા કરી ગયા હતા અથવા જન્મ્યા જ ન હતા એમ કેમ કહેવાય ? એમ કહેવું હાસ્યાસ્પદ જ હોઈ શકે, અથવા બીજા શબ્દોમાં કહેવાય તો આ શુદ્ધ મૂર્ખતા જ છે.

વેદકાલ ઈ.સ. પૂર્વે ૧૨૦૦ થી ઈ.સ. પૂર્વે ૧૦૦૦૦ વર્ષ સુધી ઝોલાં ખાય છે, આ પ્રકારની સ્થિતિ ઇતિહાસ શોધકોના પ્રયાસને જ આભારી છે. આ પ્રકારે જ સ્મૃતિગ્રંથો અને પુરાણોમાં ચે કાલનિર્ણયની સ્થિતિ છે. શ્રીશંકરાચાર્યજીનો સમય ઈ.સ. પૂર્વે છે. એમ પ્રતિપાદન કરનારા અને આઠમી સદીમાં છે, એમ કહેનારાઓની ખોટ નથી. આવી દુસ્વસ્થિતિમાં શ્રીમદ્ભાગવતને જો કોઈ બોપદેવકૃત કહે, તો તેમાં આશ્ચર્ય જેવું કાંઈ પણ નથી. આવતી કાલે કદાચ કોઈ તેને અઢારમી અને ઓગણસમી સદીનું પણ કહે, કારણ કે તે સમયથી જ તેના મુદ્રણનો ઉપક્રમ થયો. અને પરમ દિવસે કોઈ તેને એકવીસમી કે બાવીસમી સદીમાં પણ મૂકે, કારણ કે તે સમય સુધી નવા નવા પાણિડત્યને લીધે ભાગવતોક્ત તત્ત્વોને કોણ જાણે કેવુંક વિફૂત સ્વરૂપ પણ પ્રાપ્ત થાય. ઇશ્વરની લીલા વિચિત્ર છે.

પરદેશી મુસાફરોની નોંધબુકો કેટલી અપૂર્ણ અને વિરુદ્ધ વિધાન કરનારી હોય છે, તેનો પણ દાખલો આપવો અસ્થાને નહિ ગણાય. મેગેસ્થિનીસ (Megasthenes) નામનો એક પરદેશી મુસાફર ભારતવર્ષમાં આવ્યો હતો. જુના જમાનામાં કે જ્યારે આજની અપેક્ષાએ આચાર વિચાર ઘણાં જ પ્રબલ પ્રમાણમાં અસ્તિત્વ ધરાવતા હતા, તે સમયે તેને કોણે સંઘર્ષો હશે, અથવા તેને સાચી બીના કોણે જણાવી હશે, એ પણ વિચારવા જેવું છે. આવા પરદેશી વ્યક્તિને - કે જે જમાનામાં બ્રાહ્મણ સમાજને તથા અન્ય ઉચ્ચવર્ણોને તેવા વ્યક્તિનો પડછાયો પણ અભડાઈ જતો હતો - સાચી ઘટનાઓનું અજ્ઞાન જ રહેવાનો સંભવ વિશેષ છે. છતાં તેની નોંધબુક અત્યારના શોધકોની દૃષ્ટિમાં, એક આસ્તિકની દૃષ્ટિમાં વેદનું પ્રામાણ્ય જેટલું હોઈ શકે, તેથી ચે વિશેષ પ્રામાણ્ય છે. રોમન અને ગ્રીક દેવતાઓમાં હીરાક્લેસ (Heracles) અને ડાયોનિસસ (Dionysos) નામના પણ દેવો છે. તેમને એલેક્ઝાંડર (Alexander) ના પૂર્વજો કલ્પીને, તેમણે પણ ભારત વર્ષ ઉપર આક્રમણ કર્યું હતું, એમ વિધાન મેગેસ્થિનીસ કરે છે. અને ધ્વનિસાદશ્યના મોહને લીધે કેટલાક વિદ્વાનો તેમને હરિ અને દક્ષ પણ કલ્પી લે છે. જેકસન નામનો એક ઇતિહાસકાર લખે છે કે-

"Magasthenes is also of this opinion, for he advises persons

not credit the ancient historians of India owing to the fact that, with the exception of expeditions of Heracles, of Diynisos (Bacches) and the later invasion of Alexander no army was ever sent out of their country by the Indians nor did any foreign enemy, ever invade or conquer it."

History of India by A. Vol IX P. 4

આ ઉપરથી પરદેશી મુસાફરોના વર્ણનોનું રેખાચિત્ર દૃષ્ટિપથ થયા વિના રહેશે નહિ. આ પ્રકારે જ સ્મિથ સાહેબ પણ ઉપર જણાવેલા હીરાક્લીસ અને ડાયોનિસસ શિવાય એક વિશેષ વ્યક્તિનો-સેમીરામીસનો-ઉમેરો કરતા જણાય છે, તે લખે છે કે-

"Alexander the great, having completed subjugation of Bactria, resolved to execute his cherished purpose of emulating and surpassing the mythical explyits of Dionysos, Heracles, Semiramis by effecting the conquest of India"

History of India by Smith Vol. II P.42.

ધારોકે આ હીરાક્લીસ અને ડાયોનિસસ, મહાન્ એલેક્ઝાંડરના પૂર્વજો જ હોય, તો પણ તેમને હરિ કે દક્ષ કહેવામાં તથ્યાંશ કેટલો છે, તે સમજી શકાતું નથી. પરંતુ આપણા વિદ્વાનોને ધ્વનિસાદશ્યનો રોગ લાગુ પડેલો હોવાથી તેમને આવા શબ્દોને ભારતીય ચંત્રમાં મૂક્યા વિના શાન્તિ વળતી નથી. વળી એક આશ્ચર્યકારક વર્ણન ઇતિહાસમાં મળી આવે છે. પ્લીની નામનો એક લેખક છે. તે જણાવે છે, કે-

From the days of father Bacchus to Alexander the great, their kings are reckoned at 154, whose reigns extend over 6451 years and 3 months.

(Mr. Crindley's Ancient India quited by T. C. Kale.)

આ માહિતી તેણે કેમ મેળવી તે આશ્ચર્ય છે. આ લોકોનો હેતુ એવો જણાય છે, કે ભારતવર્ષમાં હીરાક્લીસ અને ડાયોનિસસના ભક્તો હતા. અથવા તેમના વંશજોની જ સમ્પતિ ભાતવર્ષ છે. અર્થાત્ જ આધુનિક ભારતીય જનતા પણ તેમની પેઠે પરદેશી છે. ભારતીય વિદ્વાનો પણ પરદેશી મન્તવ્યોને ભારતીય વસ્ત્રો પહેરાવીને ધ્વનિસાદશ્યના બલથી મનગમતા વિધાનો કરે છે. જો ડાયોનિસસનો અર્થ દક્ષ લેવામાં આવે તો જેમ ડાયોનિસસ ગ્રીક દેવતા છે અને તેની ભક્તિ ત્યાં પ્રચલિત હતી, તેમ દક્ષની ભક્તિ પણ ભારતવર્ષમાં પ્રચલિત હોવી જોઈએ, બસ, થઈ ગયું; એક વિધાન એવું પણ પ્રકટ કરી શકાય, કે જેમ રામ, કૃષ્ણ વગેરે

દેવોની ભક્તિ થાય છે, તેમ દક્ષભક્તિ પણ શાસ્ત્રસિદ્ધ છે. દક્ષ પંથનો ચે શોધ કરવો જોઈએ.

મેગેસ્થિનીસને પ્રમાણ માનીને જેકસન સાહેબ કહે છે, કે ભારતવર્ષમાં સાત વર્ણો (Casts) હતા. (૧) તત્ત્વજ્ઞો (Philosophers) (૨) ખેડૂત (Husband-men) (૩) ભરવાડ અને શિકારી વર્ણો (Shepherds) (૪) વેપારી (૫) ક્ષત્રિય (૬) નિરીક્ષકો (Ephorais or Inspectors) અને રાજમંત્રી (Councillors and Assessors of Kings) આ જુદા જુદા વર્ણોમાં રોટી બેટી વ્યવહાર ન હતો. આ પ્રકારના વિધાનો કેટલા અસત્યપૂર્ણ હોય છે, તે વિચારશીલ કોઈ પણ હિન્દુ સરલતાથી સમજી શકે છે.

શ્રીમદ્ ભાગવતના સંબંધમાં પણ આ પ્રકારનાં જ અનેક મિથ્યા વિધાનો થયાં છે, એક આલ્બરોની નામનો વિદ્વાન થયો છે, તેણે આરબીલાષામાં ભારતીય વાઙ્મયનો ઇતિહાસ ઈ.સ. ૧૦૩૦ ના સુમારે લખ્યો. તેનું અંગ્રેજી ભાષાન્તર પણ પ્રકટ થયું છે. આ પરદેશી વિદ્વાને પુરાણોની યાદી આપી છે, તેમાં પહેલા નંબરની યાદી અશુદ્ધ છે. બીજા નંબરની યાદી બરાબર છે.

તે યાદીઓ નીચે મુજબ છે-

યાદી નંબર ૧		યાદી નંબર ૨	
(૧) આદિ	(૧૦) આદિત્ય	(૧) બ્રહ્મ	(૧૦) બ્રહ્મવૈવર્ત
(૨) મત્સ્ય	(૧૧) સોમ	(૨) પદ્મ	(૧૧) લિંગ
(૩) કૂર્મ	(૧૨) સાંબ	(૩) વિષ્ણુ	(૧૨) વરાહ
(૪) વરાહ	(૧૩) બ્રહ્માણ્ડ	(૪) શિવ	(૧૩) સ્કન્દ
(૫) નારસિંહ	(૧૪) માર્કણ્ડેય	(૫) ભાગવત	(૧૪) વામન
(૬) વામન	(૧૫) તાર્ક્ય	(૬) નારદ	(૧૫) કૂર્મ
(૭) વાયુ	(૧૬) વિષ્ણુ	(૭) માર્કણ્ડેય	(૧૬) મત્સ્ય
(૮) નંદી	(૧૭) બ્રહ્મ	(૮) અગ્નિ	(૧૭) ગરુડ
(૯) સ્કન્દ	(૧૮) ભવિષ્ય	(૯) ભવિષ્ય	(૧૮) બ્રહ્માણ્ડ

(જુઓ Trubner Series P. 130-131)

ઓલ્બરોની કહે છે કે પહેલા નંબરની યાદી તજ્ઞ વિદ્વાનોની પાસેથી મેળવેલી માહિતી મુજબ તૈયાર કરી છે. અને બીજા નંબરની યાદી વિષ્ણુપુરાણમાંથી ઉતારી લીધી છે. આ ઉપરથી સમજી શકાય છે, કે પરદેશીઓને જે માહિતી મળે છે, તે સર્વથા અપૂર્ણ જ હોય છે. પરંતુ બીજા નંબરની યાદી ઉપરથી આટલું તો

સમજી શકાય છે, કે આલ્બરોનીના સમયમાં (એટલે અગ્યારમી સદીમાં) વિષ્ણુપુરાણની જે પ્રત મળી હતી તેમાં શ્રીમદ્ભાગવતનો ઉલ્લેખ છે. જો આ પ્રતને તે સમયથી બસો વર્ષ જુની માની લેવામાં આવે, તો પણ બોપદેવથી પહેલાં શ્રીમદ્ભાગવતનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થઈ જાય છે. છતાં કોલબ્રુક (Colbrooks) સાહેબ લખે છે કે-

I am myself inclined to adopt an opinion supported by many learned Hindoos, who consider the celebrated Shri Bhagwata as the work of a grammarian Bopadev supposed to have about six hundred years ago.

ડૉ. ભાલકારકરે ભાગવતનો સમય અગ્યારમી સદીમાં મૂક્યો છે. અને યેઢે નવમી સદીમાં ભાગવતનો પ્રાદુર્ભાવ સૂચવ્યો છે. ટિળકે “ભાગવતની પુરાણોની પાછળથી બનાવવામાં આવી છે.” એમ નિન્દાજનક રિમાર્ક કરી છે. આ પ્રકારના મન્ટવ્યોમાં હેતુ માત્ર એક જ છે. અને તે એ કે શક્તરાચાર્યના ગ્રંથોમાં ભાગવતનું વાક્ય જડતું નથી, શક્તરાચાર્યનું મત ભાગવતના વાક્યવિના પણ સિદ્ધ થઈ જતું હોય, તો તેમને ભાગવતનું વાક્ય પોતાના ગ્રંથમાં મૂકવાની જરૂર ન પડે એ સ્વાભાવિક છે. શંકરાચાર્યના ગ્રંથોમાં જેમના વાક્યોનો સમાવેશ થયો નથી એવા સહસ્ત્રાવધિ ગ્રંથો હશે, તેથી કાંઈ એમ સિદ્ધ થતું નથી કે શક્તરાચાર્યે તેમના વાક્યો લીધા નથી માટે તે ગ્રંથો તે સમયમાં ન હતા. અરે શક્તરાચાર્ય જે વેદાન્તનો વિચાર કરવા પ્રવૃત્ત થાય છે, તેવા વેદાન્ત-ઉપનિષદોના ઘણા વાક્યો અને બ્રાહ્મણ ગ્રંથોના પણ વાક્યો પોતાના ભાષ્યમાં તેમણે મૂક્યા નથી. તેથી તે ઉપનિષદો કે બ્રાહ્મણ ગ્રંથોનું તે સમયે અસ્તિત્વ જ ન હતું, એમ કોણ કહી શકે ? અન્ય વાક્યો કેમ ન મૂક્યાં ? આ પ્રશ્નનો જવાબ એક જ છે, કે તેમને તેની જરૂર પડી નહિ. જ્યાં જેની જરૂર પડી અથવા જે વિષયની તાત્કાલિક સ્ફૂર્તિ થઈ તે લખાયું. આ લોકો શંકરાચાર્યજીને આગળ ઘરીને સત્યને છુપાવવાનો પ્રયાસ કરે છે. પરંતુ તેઓ સમજતા નથી, કે આથી તો શક્તરાચાર્યજી ભાગવત ભણ્યા ન હતા, અથવા ભાગવતના તેઓ અભ્યાસી ન હતા, એમ આક્ષેપ કરીને આવા એક સમર્થ વિદ્વાનને ભાગવતથી અનભિજ્ઞોની કક્ષામાં મૂકવાનો નીચ પ્રયાસ તેઓ અજાણ્યે પણ કરે છે, છતાં તેઓ શક્તરાચાર્યજીના અનુયાયી હોવાનો દાવો કરે છે. આથી વિશેષ વીસમી સદીનું આશ્ચર્ય બીજું શું હોઈ શકે ? આ પ્રકારનું આશ્ચર્ય અમને જ થાય છે, એમ નથી, પણ કર્નલ વ્હીનસ કેનેડી નામનો એક યૂરોપીયન વિદ્વાન પણ એવા જ આશ્ચર્યજનક ઉદ્ગાર સાથે જણાવે છે, કે ભાગવતનો ઉલ્લેખ



વિષ્ણુપુરાણ, પદ્મપુરાણ, નારદપુરાણ, મત્સ્યપુરાણ વગેરેમાં સ્પષ્ટ હોવા છતાં, વિદ્વાનોને ભાગવત બોપદેવ સુધીનું અર્વાચીન જણાય છે, તેનું કારણ સમજી શકાતું નથી.

શ્રીમદ્ભાગવતના એક પ્રસિદ્ધ ટીકાકાર શ્રીધરસ્વામી પણ છે. જેમ આલ્બરોનીની પહેલાં ભાગવત હતું એમ નક્કી જ છે, તેમ શ્રીધરસ્વામીની પહેલાં પણ ભાગવત હતું એ પણ નિશ્ચિત જ છે. શ્રીધરસ્વામી પણ અગ્યારમી સદીના એક પ્રસિદ્ધ પદ્ધિત છે. તેમના સમયથી પૂર્વે શ્રીમદ્ભાગવતનું અસ્તિત્વ હતું અને તે સમયે શ્રીમદ્ભાગવતમાં તેમને ઘણા પાઠ ભેદો પણ મળી આવ્યા હતા. શ્રીધરસ્વામીએ વિષ્ણુપુરાણ ઉપર પણ ટીકા લખી છે. શ્રીધરસ્વામી જણાવે છે કે વિષ્ણુપુરાણ ઉપર ચિત્સુખાચાર્યની પણ ટીકા હતી. આ ચિત્સુખાચાર્ય શંકરાચાર્યજીના સમકાલીન હોઈ દ્વિતીય શંકરાચાર્યત્વે તેમના પીઠ ઉપર પ્રતિષ્ઠિત થયા હતા, એમ કહેવાય છે. હનુમાન નામના એક પ્રાચીન પદ્ધિતે કે જે શંકરાચાર્યજીથી એ પ્રાચીન છે, શ્રીમદ્ભાગવત ઉપર ટીકા લખી છે. શંકરાચાર્યજીએ પોતે પણ શ્રીમદ્ભાગવત ઉપર ટીકા લખી હતી એમ મધ્વાચાર્યજી કહે છે. પરંતુ તે ટીકા અત્યારે ઉપલબ્ધ થતી નથી. શ્રીમદ્ભાગવતની ટીકાઓની યાદી ભાગવતભૂષણ નામના ગ્રંથમાં ગોપાળાચાર્ય કહાડકરે આપી છે. તે લખે છે, કે - હનુમતી-ચિત્સુખી-શાઙ્કરી-શ્રીમન્મધ્વાચાર્યકૃતભાગવતતાત્પર્યવલ્લભા-ચાર્યકૃતસુબોધિની-રામાનુજીયવીરરાઘવી-નિમ્બાર્કીયા-બોપદેવકૃતહરિલીલા-મુક્તાફલ-પરમહંસપ્રિયાચ્ચવ્યાખ્યાત્રય-વિદ્વત્કામધેનુ-સમ્બન્ધોક્તિ-તત્ત્વદીપિકા-શુકહૃદયાસુદર્શની-મુનિભાવપ્રકાશિકા-પ્રહર્ષિણી-શ્રીધરી-વિજયધ્વજી-યાદુપતી-શ્રીનિવાસી-સત્યધર્મતીર્થી-બૃહત્તોષિણી-લઘુતોષિણી-ચક્રવર્તી-સન્દર્ભતોષિણી-સારમાધવી-વામની-એકનાથીપુરુષોત્તમી આ પ્રકારે એકત્રીસ ટીકાઓ શ્રીમદ્ભાગવત જેવા મહાન ગ્રંથ ઉપર હોય, એજ તેની પ્રાચીનતા અને પ્રામાણ્યનો સ્વીકાર કરાવવા માટે પૂરતું છે.

હવે વિચાર કરવાનો એટલો જ બાકી રહે છે, કે જો શંકરાચાર્યજીએ શાઙ્કરી નામની ટીકા લખી હોય, તો તેમના કોઈ પણ ગ્રંથમાં શ્રીમદ્ભાગવતના સંબંધમાં ઉલ્લેખ અવશ્ય જ હોવો જોઈએ. ઘણા લોકો આ પ્રકારનો આક્ષેપ કરે છે. અમારી પાસે જે સાહિત્ય એકત્રિત થયું છે, તે ઉપરથી આટલું તો સમજી શકાય છે, કે ઉપરનો

૧. ઉપર જણાવેલી ટીકાઓ પૈકી હનુમતી (૬૦૦-૭૦૦) શાઙ્કરી (૮૦૦) અને ચિત્સુખી (૮૫૦) એ ત્રણ ટીકાઓ ઘણી પ્રાચીન હતી.

આક્ષેપ પણ બોપદેવની કૃતિના આક્ષેપની પેઠે સર્વથા નિર્મૂલ જ છે. ગોપાલાચાર્ય કહાડકરે ભાગવતભૂષણમાં ઉપરના આક્ષેપની નિર્મૂલતા સિદ્ધ કરી બતાવી છે.

શંકરાચાર્યજીએ વિષ્ણુસહસ્રનામ ઉપર ભાષ્ય રચ્યું છે. તેના પ્રથમ શતકના પાંચમા નામનું ભાષ્ય કરતા શંકરાચાર્યજી લખે છે કે 'સ આશ્રયઃ પરબ્રહ્મ પરમાત્મા પરાત્પરઃ' इति भागवते वળી પ્રથમ શતકના પંચાવનમાં નામનું ભાષ્ય કરતા લખે છે, કે 'पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् इत्यादिभागवते तेमज तेमलो ચતુર્દશમતવિવેક નામનો ગ્રંથ લખ્યો છે, તેમાં કહે છે કે - परमहंसधर्मो भागवते पुराणे कृष्णो नोद्धावायोपदिष्टः आ प्रकारे तेमना जुदा जुदा ग्रन्थोમાં શ્રીમદ્ભાગવતના વચનો અને નામનો ઉલ્લેખ જોવામાં આવે છે.

શંકરાચાર્યજીના પરમગુરુ ગોડપાદાચાર્યજીએ પંચીકરણની વ્યાખ્યામાં લખ્યું છે કે जगृहे पौरुषं रूपमिति भागवतमुपन्यस्तम् उत्तर गीता ઉપર પણ ગોડપદાચાર્યજીની ટીકા છે, તેમાં તદુક્ત ભાગવતે હન્યાન્મુદિભિરાકાશમ્ (૨-૪૮) આ શ્લોકની વ્યાખ્યામાં શ્રેયઃ સૂતિં ભક્તિમુદસ્ય તે વિમો ક્લિશ્યન્તિ ये केवलमात्मलब्धये । तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् । શંકરાચાર્યજીનો સમય જો મોડામાં મોડો આઠમી સદીમાં માનવામાં આવે તો તેમના પરમગુરુ તેમનાથી ચે પચાશ વર્ષે તો જ્યેષ્ઠ હોય જ. અર્થાત્ ગોડપદાચાર્યનો સમય સાતમી સદીના ઉત્તરાર્ધમાં આવે. જ્યારે સાતમી સદીના ઉત્તરાર્ધ સુધીના પંડિતો શ્રીમદ્ભાગવતના પ્રમાણો નિજ ગ્રંથોમાં મૂકતા દેખાય છે, ત્યારે તેની પ્રાચીનતામાં વધારો થાય છે.

જૈમિનીય અશ્વમેધ પર્વમાં શ્રીમદ્ભાગવતનો ઉલ્લેખ છે. ભારતં હરિવંશં ચ પુત્રદં ધનદં ભવેત્ । શ્રીમદ્ભાગવતં પુણ્યં ભુક્તિમુક્તિફલપ્રદમ્ જૈ. અ. ૫૮-૯૫

જૈમિનીય અશ્વમેધનો સમય ઈ.સ. પૂર્વેનો એક બે સદી જેટલો જુનો તો માનવો જ જોઈએ. આ શિવાય ઋગ્વિદ્યાનમાં શોનકે પણ ભાગવતનો ઉલ્લેખ કર્યો છે. છતાં જો બોપદેવને શ્રીમદ્ ભાગવત જેવો ગ્રંથ રચવાનું સૌભાગ્ય અનાયાસે જ મળી જતું હોય તો તેના જેવો ભાગ્યશાળી અન્ય કોઈ હોઈ શકે ?

પારગીટર નામનો એક યૂરોપીયન વિદ્વાન Dynasties of the Kali Age નામના પુસ્તકમાં બાડલિયન ગ્રંથસંગ્રહાલયમાં ભાગવતની એક જૂની પ્રત હોવાનું જણાવે છે. આ પ્રત તેમના કહેવા મુજબ ચોદમી સદીની છે.

બોપદેવનો સમય તેરમી સદીમાં આવે છે. યૈયાકરણ બોપદેવપદ્ધિતે હેમાદ્રિ દેવગિરિના ચાદવપંશીય રાજા મહાદેવના સંતોષ માટે શ્રીમદ્ભાગવતનું વર્ણન કરતા

ત્રણ ગ્રંથો રચ્યા. મુકતાફલ નામના ગ્રંથમાં ઓગણીસ અધ્યાયવડે શ્રીમદ્ભાગવત તત્ત્વનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. હરિલીલા નામનું પુસ્તક તો ભાગવતની અનુક્રમણિકાના રૂપમાં જ છે. રાજા મહાદેવનો રાજ્યકાલ ઈ.સ. ૧૨૬૯ થી ૧૨૭૧ સુધીનો છે. આ ઉપરથી બોપદેવ પણ્ડિતે ઉપરના ગ્રંથો તેરમી સદીમાં લખ્યા, એમ જણાય છે. પરંતુ કાશીના Princes of wales Sarvasati Bhawan માં બંગાળી અક્ષરોમાં લખાયેલું શ્રીમદ્ભાગવતનું પુસ્તક વિદ્યમાન છે. આ પુસ્તક બારમી સદીનું છે. આ ઉપરથી સ્પષ્ટ છે, કે શ્રીમદ્ભાગવત બોપદેવની કૃતિ નથી. જે લોકો બોપદેવના નામથી અકાઉડતાઉડવ કરે છે, તે અસ્થાને જ છે, એમ કોઈ પણ વિચારવાનું વ્યક્તિ સમજી શકે છે.

આ રીતે શ્રીમદ્ભાગવતની પ્રાચીનતાના સંબંધમાં જો વિશેષ વિચાર કરવામાં આવે તો એક મહાન ગ્રંથ તૈયાર થાય.

અમારા મત મુજબ તો સર્વજ પુરાણો વેદસમકક્ષ છે. પુરાણોનું પ્રામાણ્ય વેદના જેવું જ હોવાથી તેનો કાલનિર્ણય કરવો સર્વથા અયોગ્ય છે. જેમ વેદ ભગવન્નિઃશ્ચસિત છે, તેમ પુરાણો પણ છે. અર્થાત્ જ ભાગવત પણ ભગવદ્રૂપ છે. અમે શ્રીમદ્ભાગવતની ભગવદ્રૂપતા ઉપર જણાવી જ છે. જો કોઈ વિદ્વાન ભગવાનનો કાલનિર્ણય કરી શકે, તો જ વેદનો અને ભાગવતનો એ કાલનિર્ણય શક્ય થાય.

### શાસ્ત્રાર્થ અને રક્ષ્ઢ્યાર્થ

ઉપર જણાવ્યા મુજબ શ્રીમદ્ભાગવત દશવિધલીલાવિશિષ્ટ હોવાથી તેમાં મુખ્યત્વે દશવિધલીલાવિશિષ્ટ શ્રીકૃષ્ણ જ પ્રતિપાદ્ય હોઈ શકે. આનન્દમય રસઘન શ્રીકૃષ્ણ જ પરાત્પર તત્ત્વ છે, એમ શ્રીમદ્ભાગવત પ્રતિપાદન કરે છે. રક્ષ્ઢ્યોના વિશિષ્ટ અર્થનો વિચાર તે તે રક્ષ્ઢ્યના પ્રારંભમાં કરવામાં આવ્યો છે. અત્યારે તો પ્રસ્તુત દશમસ્કન્ધના સંબંધમાં જ વિચાર કરીશું.

શ્રીમદ્ભાગવત ભગવત્સ્વરૂપ છે, એમ પૂર્વે કહેવાયું છે. ભાગવતરૂપે મૂર્તિમાન પ્રભુનું હૃદય આ દશમસ્કન્ધ છે. દશવિધલીલામાંથી નિરોઢલીલાનું વર્ણન આ રક્ષ્ઢ્યમાં મળી આવે છે.

વાસ્તવિક રીતે વિચારતા જણાશે કે શ્રીમદ્ભાગવતમાં આદિથી અન્ત સુધી તત્ત્વજ્ઞાનનો જ વિચાર ઓતપ્રોત છે. તથાપિ વાંચનારની ઉપર એવી અસર થતી નથી, કે તે તત્ત્વજ્ઞાનનો ગ્રંથ વાંચે છે. તત્ત્વજ્ઞાનના ગ્રંથો ઘણું કરીને ગંભીર

વિચારોથી ભરપુર હોવાને લીધે જ્ઞાનતન્તુઓ ઉપર વઢારે ભાર આવી પડે છે. પરંતુ શ્રીમદ્ભાગવતમાં રુચિરતા હોવાથી તેમાં વર્ણવેલું તત્ત્વ ગંભીર હોવા છતાં, જ્ઞાનતન્તુઓ ઉપર ભાર આવી પડતો નથી. વિવિધ લીલાઓનું વર્ણન અને આખ્યાનો તથા ઉપાખ્યાનોનું ગ્રંથન જ રુચિરતા સંપાદન કરે છે. તેમાં એ પ્રત્યેક શબ્દ ઉપર શ્રીસુબોધિનીજીમાં ગંભીર વિચાર કરેલો હોવાથી વાંચનારને શ્રીમદ્ભાગવતમાં સ્થિત વિષયોનો બોધસારી પેઢે થઈ શકે છે. શ્રીસુબોધિનીજીમાં તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક ગંભીર વિચારણા હોવા છતાં ભાષા સૌષ્ઢવને લીધે રુચિરતા આવી જાય છે. અમારી દષ્ટિમાં તો ભાષા સૌષ્ઢવથી શ્રીમદ્ભાગવતનું “શ્રીસુબોધિની” નામ રાખેલું હોવું જોઈએ. શ્રીમદ્ભાગવતનું અર્થેલા વિષયો તો પંડિતોને પણ મુંઝવી નાંખે, તેવા હોવાથી સુબોધિનીને સ્થાને દુર્બોધિનીના જ નામ રાખવું જોઈતું હતું. યદ્યપિ મારી આ કલ્પનામાં તથ્યાંશ છે, તથાપિ સુબોધિનીજી નામ રાખવાનું મુખ્ય પ્રયોજન શું, તે જાણવું જોઈએ. શ્રીમદ્ભાગવતના પ્રાકટ્ય પહેલાં અનેક ટીકાકારો થયા છે. પરંતુ ગૌડપાદાચાર્યથી આરંભીને શ્રીધરસ્વામી પર્યન્તના વિચારકોએ ઘણો પ્રયાસ કર્યો છતાં, તેઓ શ્રીમદ્ભાગવત સ્થિત સુંદર તત્ત્વોને પારખી શક્યા નથી. જ્યારે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજીએ તે તત્ત્વોને સુંદરતા અને સરલતા અર્પી છે, આથી જ તેઓશ્રીની ટીકાનું નામ સુબોધિની છે. શ્રીસુબોધિનીની રચના ભગવદાજ્ઞા દ્વારા થઈ છે. જેમ વ્યાસને ભાગવતના પ્રાકટ્ય માટે આજ્ઞા થઈ તેમ આચાર્યચરણને તેની ટીકા માટે આજ્ઞા થઈ છે, એમ તેઓશ્રી પ્રથમ રક્ષ્ઢ્યના પ્રારંભમાં જ જણાવે છે-

અર્થ તસ્ય વિવેચિતું નહિ વિભુવૈજ્ઞાનરાદ્વાક્પતે-

રન્ધસ્તત્ર વિધાય માતુષતનું માં વ્યાસવચ્છ્રીપતિઃ ।

દત્વાજ્ઞાં ચ કૃપાવલોકનપટુર્યસ્માદતોઽહં મુદા

ગૂઢાર્થ પ્રકટીકરોમિ બહુધા વ્યાસસ્ય વિષ્ણોઃ પ્રિયમ્ ॥

આ વાક્ય ઉપરથી જાણી શકાય છે, કે ભગવાને જેમ વેદનો વિસ્તાર કરવા માટે વ્યાસને આજ્ઞા કરી, તેમ મનુષ્યદેહધારી શ્રીવૈશ્વાનરને શ્રીમદ્ભાગવતનો ગૂઢાર્થ પ્રકટ કરવા માટે આજ્ઞા કરી છે. અને તેથી જ શ્રીસુબોધિનીજીમાં શ્રીમદ્ભાગવતનું ગૂઢાર્થનો પ્રકાશ કર્યો છે.

શ્રીસુબોધિનીજીના પ્રારંભમાં (પ્રથમસ્કંધમાં) પોતે પ્રતિજ્ઞા કરે છે, કે આ વિવૃતિમાં લક્ષણોનો ઉપયોગ કરવામાં આવશે નહિ. સાતે અર્થનો અવિરોધ સ્થાપન થશે. નિબન્ધમાં ચાર અર્થ કહ્યા છે, બાકીના ત્રણ અર્થ આ શ્રીસુબોધિનીજીમાં

કહીશ. આ પ્રકારની પોતાની પ્રતિજ્ઞા હોવાથી તેને અનુસરીને જ સુબોધિનીજીની રચના કરી છે. તેથી સુબોધિનીજીમાં શબ્દોની ખેંચતાણ કે શાબ્દિક શાસ્ત્રાર્થ (વાગ્જાલ) વિશેષરૂપે જોવામાં આવતો નથી. શ્રીમહાપ્રભુજીના વાક્યો ઘણાં જ ટુંકાં હોય છે. તેથી ઉપર ઉપરથી સરલ દેખાય છે, છતાં તેમાં અર્થ ગામ્ભીર્ય પુષ્કળ રહેલું છે. શ્રીસુબોધિનીજીનો અભ્યાસ કરનારા વિદ્વાનો તે ગામ્ભીર્યથી પરિચિત છે. શ્રીસુબોધિનીજીનો આજસુધી શુદ્ધ અનુવાદ કોઈ પણ વિદ્વાને કરવાનું સાહસ કર્યું નથી, તેનું પણ એક કારણ અર્થગામ્ભીર્ય છે.

### ટીકાગ્રંથો

શ્રીસુબોધિનીજીમાં અર્થગામ્ભીર્ય હોવાથી મૂળ શ્રીસુબોધિની ઉપરથી શ્રીમહાપ્રભુજીનું હાઈ સમજી શકાય તેમ નથી. શ્રીગુણાંકજીએ શ્રીમહાપ્રભુજીનો આશય સમજાવવા માટે ટિપ્પણી નામક એક સદ્સિદ્ધ ટીકા લખી છે. પરંતુ આ ટીકા સદ્સિદ્ધ જ હોવાથી શ્રીપુરુષોત્તમજીએ મૂળ શ્રીસુબોધિની અને ટિપ્પણીજી એ ઉભયનું વિવરણ કરવા માટે પ્રકાશ નામની ટીકા રચી. આ ઉપરાંત શ્રીવલ્લભજી મહારાજે લેખ નામની ટીકા પણ લખી છે. આ લેખ ચાવડપલબ્ધ શ્રીસુબોધિનીજી ઉપર પ્રાપ્ત થાય છે. આ સિવાય લાલુભટ્ટજીની યોજના અને નિર્ભયરામભટ્ટજીકૃત કારિકાવ્યાખ્યા પણ ઉપલબ્ધ થાય છે.

શ્રીસુબોધિનીજીનું પદ્ધતિલાપન કરવા માટે આટલા સાધનો ઉપરાંત વિવાદાસ્પદ વિષયોનું સ્પષ્ટીકરણ કરવા માટે અનેક વિદ્વાન્ ગોસ્વામી બાલકોએ સ્વતંત્ર ગ્રંથો પણ રચ્યા છે. હું ખાત્રીપૂર્વક કહી શકું છું, કે શ્રીમદ્ભાગવતના જુદા જુદા વિષયો ઉપર વિશદ વ્યાખ્યાન કરતું જેટલું સાહિત્ય પુષ્ટિ માર્ગે નિર્માણ કર્યું છે, તેટલું અન્ય કોઈ પણ સંપ્રદાયે આલેખ્યું નથી. શ્રીમદ્ભાગવત ઉપર અનેક દિગ્ગજ પંડિતોએ ટીકાઓ લખી છે, પરંતુ શ્રીસુબોધિનીજીની સરખામણીમાં ઉતરે એવી એક પણ ટીકા અન્ય કોઈ પણ આચાર્ય કે પંડિતે કરી નથી. પુષ્ટિમાર્ગે શ્રીમદ્ભાગવતની જે સેવા બજાવી છે, તે અદ્વિતીય કે અવર્ણનીય જ છે.



## તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ

### પ્રકરણ વિભાગ અને તત્ત્વતિપાઘ વસ્તુ

#### શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ

લેખક : શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રી મી.શા.વે.વિ. M.R.A.S.

“વિદ્વદ્ભિઃ સર્વથા શ્રાવ્યં તે હિ સન્માર્ગરક્ષકાઃ”

(શ્રીમદ્ભક્તમાધાર્યવરણાઃ)

“કાલો હાયં નિરવધિર્વિપુલા ચ પૃથ્વી”

(મુદ્રાલેખોડયં વિદુષામ)

ક્ષણેન બ્રહ્માદ્યાન્નાગનપવનાપઃ ક્ષિતિવિભે

પ્રજાઃ પ્રાણાંશ્વેતઃ સૃજતિ, સકલં યો ભવતિ ચ ।

વિરુદ્ધાન્ધર્માન્વૈ ધરતિ રમણાર્થં વિભુરપિ,

નમામિ શ્રીરાધાધરમધુમદોન્નાસલસિતમ્ ॥૧॥

શ્રીરાધાધરમાધુર્યપાનમુગ્ધમનોહરઃ ।

કન્દર્પદર્પદલનઃ પાયાન્મદનમોહનઃ ॥૨॥

માયાવાદતમોનિરાસનપટુઃ શ્રીલક્ષ્મણસ્યાત્મજો

જિત્વા રાજસમાસ્થિતાન્બુધવરો વાદેષુ સદ્ધ્યાવતઃ ।

શુદ્ધાદ્વૈતવિભાકરં સુખકરં પ્રાદર્શયન્નિર્મયો

વેદોદ્ધારધુરન્ધુરો વિજયતે શ્રીવલ્લભાર્યઃ પ્રભુઃ ॥૩॥

નમો ભગવતે તસ્મૈ કૃષ્ણાયાદ્વૈતકર્મણે ।

રૂપનામવિભેદેન જગત્કીડતિ યો યતઃ ॥૧॥

વાગધીશ શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી (શ્રીમહાપ્રભુજી)ના ગ્રંથોમાં સ્વતંત્રરીતે નિજહાઈને પ્રગટ કરનારા પત્રાવલમ્બન, ધોડશગ્રંથો અને તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ એ ત્રણ જ આજે ઉપલબ્ધ છે. તે પૈકી આજે પ્રાપ્ત થતું પત્રાવલમ્બન અપૂર્ણ છે. તેમાં પણ જેટલો ભાગ પ્રાપ્ય છે, તે, વાદમાં વેદાર્થનો નિર્ણય કેમ કરવો ? પૂર્વોત્તરમીમાંસાનું પ્રયોજન શું ? વિચારશાસ્ત્રના આરમ્ભમાં અધ્યયનવિધિ જ મૂલ હોવાથી, વેદમાં પ્રાપ્ત થતાં સ્વાધ્યાયોડધ્યેતવ્યઃ, અષ્ટવર્ષ બ્રાહ્મણમુપનયીત તમધ્યાપયીત, સાક્ષો વેદોડધ્યેયો જ્ઞેયશ્ચ એ ત્રણ વિધિવાક્યો પૈકી કયું વાક્ય ઉત્પત્તિ વાક્ય છે, ? ભાદ્ર કે પ્રાભાકરના મત મુજબ અધ્યયનવિધિનો સ્વીકાર

કરવા જતાં કયા દોષો ઉપસ્થિત થાય છે ? અનારભ્યાધીત વાક્યોમાં ઈતર વાક્યોને તરછેષ્ટવ્યે સ્વીકારવા જતાં સડ્ગતિ કેટલી દુરુહ બની જાય છે ? વેદાર્થમાં, લક્ષણાદિ, શાબ્દબોધ-પ્રક્રિયોપકારક પ્રણાલિકાનો ક્યાં અને કેટલો ઉપયોગ થઈ શકે ? ઇત્યાદિ વાદને ઉપયોગી વિચાર પ્રણાલીનું અનુસરણ જોવામાં આવે છે અને તે પણ અપૂર્ણ હોવાથી ઉચ્ચકક્ષાની વિચારસરણીનું અનુસરણ કરનારા વાદપ્રિય વિદ્વાનોને યથાકથગ્નિયત્ ઉપકારક છે, સર્વથા તો નહિ જ.

ષોડશગ્રન્થો એકેક પ્રકરણ ઉપર આચાર્યચરણના હાર્દને પ્રકટ કરે છે. તથાપિ તે ગ્રન્થો વસ્તુતત્ત્વનો નિર્ણય કરવા માટે વાદસરણિમાં ઉપયોગી વિચાર-પદ્ધતિનું નિદર્શન કરાવનારા ન હોવાથી, કેવલ સોળવિષયો ઉપર આચાર્યશ્રીનો અન્તિમ નિર્ણય શો છે તે જાણવા પૂરતા સૈદ્ધાન્તિક - પણ સૂત્રાત્મક ભાષામાં ઉચ્ચતમ વસ્તુતત્ત્વને રજુ કરનારા ગ્રન્થો છે. યેષ્ઠાવમાત્રને ષોડશગ્રન્થો અક્ષરશઃ જ નહિ પણ તદુક્ત અર્થને બરાબર સમજીને તદનુસાર જીવન ઘડવા માટે મહાન્ ઉપકારક પ્રકરણ ગ્રન્થો છે. વિદ્વાનોને આચાર્યચરણના અન્તિમ નિર્ણયો જાણવા માટે તેનો ઉપયોગ શ્રુતિવાક્યવત્ બને આ હેતુથી જ જેમ ઈતર સમ્પ્રદાયોમાં નિત્યનિયમમાં સ્તોત્ર પાઠાદિનો ઉપયોગ છે; તેમ પુષ્ટિમાર્ગમાં સ્તોત્રાદિ ઉપરાંત ષોડશગ્રન્થોનો પાઠ પણ એક આવશ્યક કર્મત્વે સ્વીકારાય છે. તે પ્રણાલિકા આજે પણ અબાધિતરીતે સર્વત્ર દષ્ટિ પથ થાય છે. આ પ્રણાલિકાને જ આજથી પચાસ વર્ષ પૂર્વે પણ જ્યારે સર્વકોઈ યેષ્ઠાવોને શિક્ષણ આપનારી પાઠશાળાઓનું ગામેગામે અસ્તિત્વ ન હતું, ત્યારે આજે છે, તેથીયે વિશેષ પ્રકારે, યેષ્ઠાવોને સ્વમાર્ગીય સિદ્ધાન્તનો બોધ હતો. શિક્ષાપત્રો અને ષોડશગ્રન્થો દ્વારા જેટલું સૈદ્ધાન્તિક અને આચાર્યાર્થ જ્ઞાન યેષ્ઠાવોએ પચાસ વર્ષ પહેલાં પણ મેળવ્યું હતું, તેટલું જ્ઞાન આજની સામ્પ્રદાયિક પાઠશાળાઓ દ્વારા કે પરીક્ષાઓ દ્વારા ભાગ્યે જ મળે છે. (આથી અમારા વક્તવ્યનો હેતુ એવો નથી જ કે એ સંસ્થાઓ અનુપયોગી છે. એમની ઉપયોગિતા અમે અનેકવાર સ્વીકારી છે. વ્યાખ્યાનોમાં તે માટે પૂરતા પ્રમાણમાં કહેવામાં આવ્યું છે. તેજો દ્વારા પણ અમારા હાર્દને અમે પ્રકટ કર્યું છે. આજે પણ આવી સંસ્થાઓ પ્રત્યે શુભાકાંક્ષા પ્રકટ કરવાની કોઈ પણ તક ગુમાવવા અમારી તૈયારી નથી.) ષોડશગ્રન્થો અને શિક્ષાપત્રો બાળકોને કણસ્થ થાય અને તેનું વાસ્તવિક મર્મ તેમના મસ્તિષ્કમાં એવી રીતે હસાવવામાં આવે કે તેની અસર આજન્મ રહી શકે; તો તેનું મિષ્ટફલ આપણે નજરોનજર જોઈ શકીએ.

કિન્તુ, ષોડશગ્રન્થોમાં સર્વ જ વિષયોનો સમાવેશ થતો ન હોવાથી અને

તે કેવલ સિદ્ધાન્તપ્રતિપાદક ગ્રન્થો હોવાથી નિર્ણયવસ્તુ, પ્રામાણ્યવિચાર, વિચાર કરવાની વાદ પદ્ધતિ સાધકબાધક દાખલા-દલીલો ઇત્યાદિનો સમાવેશ તેમાં નથી. અતએવ તત્ત્વાર્થદીપનિબંધને જ શ્રીમહાપ્રભુજીના સ્વતન્ત્ર વિચારરૂપે સ્વીકારી શકાય. જો કે શ્રીમદણુભાષ્ય, શ્રીસુબોધિનીજી અને અન્ય ટીકા ગ્રન્થોનો ઉપયોગ કાંઈ તત્ત્વદીપનિબંધના જ્ઞાનથી ઓછો થતો નથી, તથાપિ તે ગ્રન્થો બ્રહ્મસૂત્ર, શ્રીમદ્ભાગવત અને તે તે ગ્રન્થોનું જ હાર્દ સમજાવવા માટે છે; નહિ કે ચાવત્ - વાડમચનો નિર્ણય કરવા માટે. આ વસ્તુસ્થિતિને ધ્યાનમાં લેવાથી તત્ત્વાર્થદીપનિબંધની ઉપયોગિતા અને ઉપાદેયતામાં અભિવૃદ્ધિ જ થાય છે. પરંતુ ખેદનો વિષય છે કે પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણબલને સર્વથા નિરવકાશ માનનારા અને બી.એ. કે એમ.એ. થયા પછી પણ વસ્તુતત્ત્વના નિર્ણયમાં તટસ્થપૃષ્ઠિનો ત્યાગ કરી પૂર્વે થએલા કેટલાક વિવાદો, કલહો અને પક્ષપાતોને મક્કમ રીતે વળગી રહેનારા સામ્પ્રદાયિક વિદ્વાનોમાં કૃષ્ણસેવાપરં વીક્ષ્ય અને વર્ણાશ્રમવર્તાં ધર્મઃ ઇત્યાદિ કતિપથ વાક્યો (પ્રકરણસડ્ગતિની કે અર્થસડ્ગતિની દરકાર રાખ્યા વિના) માટે વિશેષ આદર જોવામાં આવે છે. કિન્તુ તત્ત્વદીપનિબંધ માટે આદર જોવામાં આવતો નથી. જ્યાં શ્રીમદાચાર્યચરણ સ્વયમેવ ઉદ્ઘોષ કરે છે કે-

અથવા સર્વરૂપત્વાન્નામલીલાવિમેદતઃ ।

વિરુદ્ધાંશપરિત્યાગાત્પ્રમાણં સર્વમેવ હિ ॥

(શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ ૯)

વેદાદિ પ્રમાણ ચતુષ્ઠય ઉપરાંત પણ પ્રભુ નામલીલાના વિભેદે કરીને સર્વરૂપ હોવાથી વિરુદ્ધાંશનો પરિત્યાગ કરીને સર્વ જ વાડ્મચ વિદ્વદ્વશામાં પ્રમાણ છે. વિરુદ્ધાંશનો પરિત્યાગ એ શબ્દ પણ એક પ્રકારનું મર્મ ધરાવે છે. રૂપલીલાની પેઠે નામલીલામાં અનેક પ્રકારો હોવાથી તે તે પ્રકારને ગ્રહણ કરીને જુદા જુદા વાક્યોની પ્રવૃત્તિ છે. વાસ્તવિક રીતે શાસ્ત્રીય વાક્યોમાં કોઈ પણ સ્થળે વિરુદ્ધ વસ્તુનું પ્રતિપાદન નથી. સ્વરૂપલીલામાં જેમ અનેકત્ર પરસ્પર વિરુદ્ધ વસ્તુ દેખા દે છે, તેમ નામલીલામાં પણ છે. અતએવ વિરુદ્ધ ન હોવા છતાં વિરુદ્ધવત્ ભાસે છે. અતએવ વિરુદ્ધાંશનો પરિત્યાગ એટલે વિરુદ્ધત્વે ભાસતા વાક્યોનો અવિરુદ્ધત્વે તાત્પર્યનિર્ધાર. આ ઉપરથી સ્પષ્ટ સમજાય છે કે શ્રીમહાપ્રભુજીએ “વેદાઃ પ્રમાણમ્” એમ પ્રતિજ્ઞા કરીને શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાન્ત પ્રકટ કર્યો અને તદુપોદ્બલકત્વે સર્વજ વાડ્મચનો તાત્પર્યનિર્ધાર પણ કરી દેખાડ્યો. આ પ્રકારનો તાત્પર્યનિર્ધાર કરવાની વ્યવસ્થા તત્ત્વાર્થદીપનિબંધમાં છે. વાડ્મત્રમેવ પ્રમાણમ્, અર્થસ્ય

ભગવદ્ગુપ્તવાત્ એમ શ્રીમહાપ્રભુજી પ્રકાશમાં સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ કરે છે. આથી જ તત્ત્વાર્થદીપનિબંધોક્ત પ્રકાર સ્વીકાર્યા વિના; તે તે શાસ્ત્રો, આચારો, વ્યક્તિઓ કે મતમતાન્તરોની ચર્ચા કરવામાં આવે અને તેવી ચર્ચા માટે એ ઈતસ્તતઃ પ્રાપ્ત થતાં કોઈ વાક્યો કે વાક્યાંશનો આશ્રય લેવાય અને તે પુષ્ટિમાર્ગીય નિર્ણય કહેવાય, તો, તેવો પ્રયાસ શ્રીમદ્વાચાર્યચરણના લક્ષ્યબિન્દુથી વિરુદ્ધ હોવાથી સર્વથા હેય છે. એટલું જ નહિ પણ તેવો નિર્ણય બુદ્ધિપૂર્વક પ્રકટ કરવામાં આવતો હોય, તો તે, પુષ્ટિમાર્ગીય નિર્ણયની છાપ કરીને જનસમાજની આંખમાં ઘૂલિપ્રસેપ કરવાનો કુત્સિત પ્રયાસ જ કહેવાય. પ્રસ્તુત નિબંધમાં સદસદ્વિવેકબુદ્ધિ ધરાવનારા વિદ્વાનો જોઈ શકશે કે કયા પ્રકારની વિચારસરણિ શ્રીમહાપ્રભુજીને અભીષ્ટ છે અને તેઓ શ્રીમાન્ વાઙ્મયના તત્ત્વ માટે શો અભિપ્રાય ધરાવે છે ? પ્રસ્તુત નિબંધની રચનામાં અમારો ઉદ્દેશ એ પણ છે કે વીસમી સદીના ભારતવર્ષમાં ખોટી સાચી જાહેર ખબરોનો સર્વથા અનુપાદેય અને કવાચિત્કત્વે-કોઈકવેળા-ઉપાદેય પણ વસ્તુઓનો વિક્રય કરવામાં ગ્રાહકોને મોહ થાય તેમ તદ્દન બેજવાબદાર રીતે આશ્રય લેવાય છે, તેમ શાસ્ત્રીય વસ્તુ-તત્ત્વના નિર્ણય માટે પણ મોહ ઉત્પન્ન કરે તેવી ભાષામાં કે જનતામાં જુદા જુદા પ્રકારે ચક્ર્યાર ઉભી થાય તે માટે અશિષ્ટ ભાષામાં પણ પ્રતિપાદનીય અને ખાલ્ડનીય વિષયોનો મૂલ લેખકના દષ્ટિબિન્દુને અનુસરતો સૂક્ષ્મ વિચાર કર્યા વિના વર્તમાનપત્રોનો આશ્રય લેવાય છે. પરિણામે જનતા અવળે રસ્તે દોરાય છે. આ રીતે કોઈ પણ પ્રકારનો તાત્ત્વિકનિર્ણય થઈ શકતો નથી. આવી પરિસ્થિતિમાં જિજ્ઞાસુજનો શ્રીમહાપ્રભુજીના લક્ષ્યને જાણીને વાસ્તવિક રીતે પુષ્ટિમાર્ગીય નિર્ણય શો છે તેનો સ્વતઃ જ નિર્ધાર કરી શકે, તેમજ જેમને શાસ્ત્રીય વસ્તુ જાણવાની ઈચ્છા નથી, મતમતાન્તરો જાણીને સ્વયમેવ વસ્તુતત્ત્વનો નિર્ધાર કરવાની ઉત્કણ કે ક્ષમતા નથી, તેમના માટે અમારો પ્રયાસ નથી; કિન્તુ જેઓ તે પ્રકારની ક્ષમતા ધરાવતા હોય, તેઓ શ્રીમદ્વાચાર્યજીની વિચારસરણિ પણ જાણી શકે અને જો તેમને તેમાં લેશતઃ પણ ઉપાદેયતા જણાય તો અમે સફલપ્રયાસ છીએ.

### તત્ત્વાર્થદીપનિબંધનો ઉપક્રમ

શ્રીમદ્વાચાર્યજીના ગ્રંથોમાં તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ સૌથી છેલ્લો ગ્રંથ છે, એમ તદુક્ત પ્રકાશના શબ્દો ઉપરથી સમજી શકાય છે. પણ, તે જિજ્ઞાસુને પુષ્ટિમાર્ગીય સાહિત્યમાં પ્રવેશ કરવા માટે અને ભાગવતનો રહસ્યાર્થ સમજવા માટે પહેલો ગ્રંથ

છે. શ્રીસુબોધિનીજીમાં તત્ત્વદીપનિબંધનો ઉલ્લેખ જોવામાં આવે છે, તથાપિ શ્રીમદ્ભાગવતની બૃહદ્દીકા ઉપલબ્ધ થતી નથી અને જે ભાગ કવચિત્ ઉપલબ્ધ છે તે સર્વથા સંશયારૂપ હોવાથી તેમજ સૂક્ષ્મ દીકા પણ અપૂર્ણ અને સંશયારૂપ હોવાથી શ્રીસુબોધિનીજીને જ જો કેટલાક વિદ્વાનોના મત મુજબ બૃહદ્દીકા માનવામાં આવે તો તત્ત્વદીપ નિબંધનું સ્થાન ઉપાન્ત્ય ગણાય. પરંતુ એટલું તો માનવું જ પડશે કે તત્ત્વદીપનિબંધની રચનાથી પૂર્વે શ્રીમદ્વાચાર્યજીએ ભાગવતની દીકા લખી હતી. પછી તે સૂક્ષ્મ દીકા હોય, બૃહદ્દીકા હોય કે સુબોધિનીજી હોય. પ્રાચીન વિદ્વાનોના ગ્રંથોમાં, પ્રથમ રચિતગ્રંથોમાં ઉત્તરોત્તર રચાયેલા ગ્રંથોનો પણ અનેકસ્થળે નામનિર્દેશ જોવામાં આવે છે, તેથી રચનાક્રમ ગોઠવવામાં આજના વિચારકોને ઘણીવાર મુંઝવણ થતી દેખાય છે. પ્રાચીનકાળમાં મુદ્રણકલાનો અભાવ હોવાથી અને તેમની રચના સર્વથા નિર્દોષ છે એમ સમ્પૂર્ણપણે ખાત્રી થતા પહેલાં તે રચનાનો પ્રકાશ કરતા વિદ્વાનો અચકાતા હોવાથી ઘણા સમય સુધી ગ્રંથો લખીને રાખી મૂકવામાં આવતા હતા. ગ્રંથલેખન પછી જ્યાં સુધી તે ગ્રંથ જનસમાજ સમક્ષ પ્રકાશ પામે નહિ, તેટલા સમયમાં અન્ય ગ્રંથોનું પ્રણયન થઈ જતું; આથી જ પૂર્વરચિતગ્રંથમાં ઉત્તરોત્તર રચાયેલા ગ્રંથોનો નામનિર્દેશ અને કેટલોક સુધારો વધારો દ્વિતીયાવૃત્તિઓમાં થતો. શ્રીમદ્વાચાર્યજી, તત્ત્વાર્થદીપનિબંધની રચના ક્યારે થઈ તે સ્પષ્ટ શબ્દોમાં જણાવે છે. આથી આજના વિચારકને તે માટે વિશેષ ઊંઘાપોહ કરવાની જરૂર રહેતી નથી. ચકારાન્વીમાંસાદ્વ્યભાષ્યં, પ્રકરણાનિ, ભાગવતદીકા ચ સદ્ગૃહીતા (પ્રકાશ શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણ સ્તો. ૫) આ ઉપરથી સ્પષ્ટ રીતે સમજાય છે કે શ્રીમદ્વાચાર્ય, પૂર્વમીમાંસાભાષ્ય, ષોડશગ્રંથો અને શ્રીમદ્ભાગવતની દીકાના પ્રણયન પછી જ તત્ત્વાર્થદીપનિબંધની રચના થઈ છે. આ દીકા બૃહદ્દીકા હશે કે સૂક્ષ્મ દીકા હશે અને તે કેવી હશે, તેમાં શું લખ્યું છે, તેની રચના ક્યારે થઈ ઇત્યાદિ વસ્તુનો નિર્ણય કરવા માટે આજના સંશોધકોને અનેક કલ્પનાઓનો આશ્રય ન લેવો પડે તે માટે પ્રથમસ્કન્ધ સુબોધિનીજીના મડ્ગલાચરણ પછીનાં છેલ્લા સ્લોકમાં આપશ્રી જણાવે છે કે -

અર્થત્રયં તુ વક્ષ્યામિ નિબન્ધેઽસ્તિ ચતુષ્ટયમ્ ।

અત્ર સન્તઃ સ્વસન્તોષૈરાજ્ઞાં યચ્છન્તુ સિદ્ધયે ॥

તત્ત્વાર્થદીપનિબંધના ભાગવતાર્થ પ્રકરણમાં-

શાસ્ત્રે સ્કન્ધે પ્રકરણેઽધ્યાયે વાક્યે પદેઽક્ષરે ।

एकाथं सप्तधा जानन्नविरोधेन मुच्यते ॥

(ભા.પ્ર.)

આ વાક્યમાં જે સાત અર્થોનું પ્રતિપાદન કર્યું છે તે પૈકી છેલ્લા ત્રણ અર્થોનું વિવેચન સુબોધિનીજીમાં કરે છે એવી પ્રતિજ્ઞા કરીને પ્રથમના ચાર અર્થોનું વિવેચન નિબંધમાં કર્યું છે એમ પણ સૂચન કરે છે. આ ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે, કે નિબંધની રચના પછી શ્રીસુબોધિનીજીની રચના થઈ. પરંતુ પૂર્વોક્ત વાક્યમાં ભાગવતની ટીકાનો પણ ઉલ્લેખ હોવાથી સુબોધિની પછી નિબંધની રચના કલ્પી શકાય છે. હવે જો સૂક્ષ્મટીકા કે બૃહટ્ટીકાનું ગ્રહણ “ભાગવતટીકા” શબ્દથી થાય, તો સંશયારૂપ વસ્તુ ઉપર આધાર રાખવો પડે. જો એમ કહેવાય કે નિબંધની કારિકાઓ રચાઈ તે પછી સુબોધિનીજીની રચના થઈ અને તત્પશ્ચાત્ નિબંધની ટીકારૂપે પ્રકાશ લખાયો. જો તેમ સ્વીકારીએ તો ચક્રારાત્ પદનો કાંઈ જ અર્થ નથી. મૂલનો ચ શબ્દ આટલા અર્થનો બોધક છે. એમ તો ત્યારે જ કહી શકાય કે જો તે પહેલાં ચ શબ્દથી સૂચવેલા ગ્રંથો વિદ્યમાન હોય. અન્યથા ચક્રારાત્ પદનો ઉલ્લેખ નિરર્થક તેમજ આજ્ઞાપૂર્વે તુ યા જાતા ઇત્યાદિ વાક્યનો આધાર લઈને પ્રકરણ ગ્રંથોને અન્તિમત્વે સ્વીકારાય તો પ્રકાશસ્થિત પ્રકરણ ગ્રંથોનો ઉલ્લેખ પણ નિરર્થક ઠરે. આથી જ એમ માનવું જોઈએ કે નિબંધ અને પ્રકાશ જ સૌથી છેલ્લો ગ્રંથ છે. સુબોધિન્યાદિના પ્રણયન .... પ્રકાશમાં ચક્રારાત્ ઇત્યાદિ પંક્તિનો સમાવેશ કર્યો હશે. તેમ જ ઇતરત્ર નિબંધ કે .....નો નામોલ્લેખ પણ તે પ્રકારના સુધારાનું જ સૂચન કરે છે. અથવા જો નિબંધને ..... ગ્રંથ માનવામાં આવે તો પણ યુક્તિસંગત છે.

તત્ત્વદીપનિબંધ વિના શ્રીવલ્લભાચાર્યજીના ગ્રંથોનો સમ્યક્ બોધ થવો દુઃસાધ્ય છે. .... અસમ્ભવિત છે, તેથી, તે પ્રથમ છે, એમ કહેવામાં આવે, તોયે બાધ નથી.

### આચાર્યચરણના સ્વરૂપનો નિર્દેશ

શ્રીવલ્લભાચાર્યજી નિજજનોને સ્વસ્વરૂપનો બોધ શ્રીસુબોધિનીજી અને નિબંધ ..... મઙ્ગલાચરણમાં જ કરાવી આપે છે. આ સિવાય ઇતરત્ર આપશ્રીના સ્વરૂપનો થતો નથી.

તત્ત્વાર્થદીપનિબંધનો ઉપક્રમ પરમકાષ્ઠાપત્ર વસ્તુ શ્રીકૃષ્ણાખ્ય તત્ત્વ જ છે એમ .... કરી આપવા માટે છે. મઙ્ગલાચરણમાં નમો ભગવતે તસ્મૈ કૃષ્ણાયદ્ભુતકર્મણે કહીને .... તત્ત્વરૂપે અદ્ભુતકર્મા શ્રીકૃષ્ણને જ ઓળખાવે છે.

### અનુબંધચતુષ્ટય

મઙ્ગલાચરણમાં અનુબંધચતુષ્ટયનું ગ્રંથન કરવું એવી પ્રાચીન પ્રણાલિકા છે. તદનુસાર તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ ગ્રંથના, અધિકારી, વિષય, પ્રયોજન અને સમ્બંધ એ અનુબંધચતુષ્ટયનું નિરૂપણ કર્યા વિના તેમાં બુદ્ધિમાન્ પુરુષોની પ્રવૃત્તિ થાય નહિ. અહિયાં ગ્રંથનું પ્રયોજન, પરમતત્ત્વ રસાત્મક શ્રીકૃષ્ણનું ફલરૂપત્વ પ્રતિપાદન કરવું એ જ છે. તત્પ્રાસિની ઇચ્છા ધરાવતો મહાભાગ્યવાન્ ભક્ત અધિકારી છે. દૈન્ય અને પ્રપત્તિ વિના ભગવત્પ્રાસિ થાય નહિ, તેથી ભગવદ્ભક્તિ એ વિષય છે. પ્રતિપાદ્યપ્રતિપાદકભાવ સમ્બંધ છે. વ્યાસદર્શનને અનુસરી વેદાત્મા શ્રીકૃષ્ણ પ્રમાણરૂપ છે. પરમકાષ્ઠાપત્ર રસાત્મક શ્રીકૃષ્ણ પ્રમેય છે. શ્રીકૃષ્ણને શરણાગમન એજ પ્રપત્તિરૂપ સાધન છે અને ફલરૂપ રસાત્મા શ્રીકૃષ્ણ જ ફલ છે. અથવા આનન્દેકવિગ્રહ શ્રીકૃષ્ણસહ સર્વકામાશન એજ ફલ છે એમ પણ કહી શકાય.

### ગ્રંથનું નામકરણ

અનુબંધ ચતુષ્ટયનો વિચાર કર્યા પછી તત્ત્વાર્થદીપના ઉપક્રમનો વિચાર કરવા માટે ગ્રંથના નામનો શબ્દાર્થ જાણવો પણ આવશ્યક છે. તત્ત્વ શબ્દ પ્રમેયવાચક છે. અર્શાદિગ્ણ પઠિત શબ્દોથી મતુર્થમાં અચ્ પ્રત્યય થતો હોવાથી વેદોક્તતત્ત્વ કે પ્રમેયની દીસિ જેમાં હોય તે તત્ત્વદીપ એમ અર્થ થાય. અત્ર દીપ પ્રમાણસિદ્ધ જ્ઞાનરૂપ તેજસ્વિતાનો શબ્દબોધક છે. અર્થાત્ પ્રમાણ (પ્રમા-જ્ઞાન-નું કરણ)થી સિદ્ધ તત્ત્વ એટલે પ્રમેયનું પ્રકાશન શ્રીવલ્લભાચાર્યજી તત્ત્વદીપનિબંધમાં કરે છે.

સર્વોદ્ધારપ્રયત્નાત્મા મૂલસ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણનો પ્રાદુર્ભાવ થયો. પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણ જ સર્વોદ્ધાર પ્રયત્નાત્મા છે, એ વાત જણાવવા માટે ભગવાન્ વેદવ્યાસે સર્વને અત્યંત સુખદાયક એવા શ્રીમદ્ભાગવતનો વેદાર્થરૂપે પ્રકાશ કર્યો. શ્રીમદ્ભાગવત સર્વને સુખદાયક છે એમ યૈશ્વાનરાવતાર શ્રીવલ્લભાચાર્યજીએ તત્ત્વાર્થદીપ નિબંધના નિબંધનથી સિદ્ધ કરી આપ્યું. તત્ત્વદીપ નિબંધમાં તત્ત્વ-પ્રમેય-ની દીસિ-પ્રમાણસિદ્ધ તેજસ્વિતા છે એમ પ્રકાશ વડે દેખાડી આપ્યું છે. અર્થાત્ જ પ્રભુ સર્વોદ્ધારપ્રયત્નાત્મા હોવાથી નિજ સ્વરૂપનું સર્વને મૂલરૂપત્વ જણાવવા માટે વ્યાસરૂપે પોતે જ શ્રીમદ્ભાગવત પ્રકટાવ્યું, યૈશ્વાનરત્વે વાણીની અધિષ્ઠાત્રી દેવતાનું સ્વરૂપ ધરી ભાગવતના તત્ત્વ-પ્રમેય-ની દીસિનું દર્શન કરાવ્યું, તે દીસિ પણ અન્તર્ગર્ભસ્થ ન રહે તદર્થ તત્પ્રકાશ કર્યો.

### મુખ્ય ત્રણ પ્રકરણો

તત્ત્વદીપનિબંધના મુખ્ય ત્રણ જ પ્રકરણ છે. (૧) શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ, (૨) સર્વનિર્ણયપ્રકરણ અને (૩) ભાગવતાર્થ પ્રકરણ. શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણને જ ગીતાર્થપ્રકરણ પણ કહેવામાં આવે છે. યદ્યપિ ભાગવતાર્થ પ્રકરણની પેઠે ગીતાર્થ કે શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં ભગવદ્ ગીતાની આનુપૂર્વી કે તત્પ્રતિપાદ્ય સર્વજ પદાર્થોનો વિચાર દષ્ટિગોચર થતો નથી; તથાપિ એકં શાસ્ત્રં દેવકીપુત્રગીતમ્ એ ન્યાયે અત્ર પણ શાસ્ત્રશબ્દ ગીતાનો વાચક છે, એમ સ્વીકારાય તો ગીતોક્ત પ્રમેય (પ્રમાણ દ્વારા પ્રતિપાદ્ય પદાર્થ શ્રીકૃષ્ણ) અને શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણોક્ત પ્રમેયમાં એકવાક્યતા છે; આથી જ શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણને ગીતાર્થ પ્રકરણનું નામ આપવામાં આવ્યું હશે. વિશેષ વિસ્તાર સાથે આ વિષયનો વિચાર હવે પછી થશે જ. સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં શાસ્ત્રોનું તાત્પર્ય અને તત્પ્રમાણ સાથે તદુક્ત પ્રમેયના સ્વરૂપનો નિર્ધાર કરવામાં આવ્યો છે. તૃતીય ભાગવતાર્થ પ્રકરણમાં ભાગવતના જે સાતપ્રકારના અર્થો છે અથવા સપ્ત અર્થોનો-શાસ્ત્રાર્થ, સ્કન્ધાર્થ, પ્રકરણાર્થ, અધ્યાયાર્થ, વાક્યાર્થ, પદાર્થ અને અસરાર્થનો સમઘા અર્થ કરીને સર્વનો અવિરોધ સિદ્ધ કરી જાણે તો મુક્તિ થાય એમ કહેવામાં આવ્યું છે, તે પૈકી પ્રથમ ચાર અર્થોનો સમાવેશ થાય છે.

યદ્યપિ આ રીતે ત્રણ મહાપ્રકરણોમાં તત્ત્વદીપનિબંધ પરિપૂર્ણ થાય છે, તથાપિ વાસ્તવિક રીતે તો વેદાર્થનું પ્રતિપાદન કરનારો આ એક મહાનિબંધ-ગ્રંથ છે. અથવા તો વેદાર્થના નવનીતસમા શ્રીમદ્ભાગવતના અર્થનો નિર્ણય કરનારો જ આ મહાનિબંધ ગ્રંથ છે, તે વસ્તુ ભાગવતાર્થ નિબંધમાં છે અને તદુપોદ્બલકત્વે પ્રથમ અને દ્વિતીય પ્રકરણો છે. પ્રથમ પ્રકરણમાં-શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં ભાગવતાર્થ પ્રકરણોક્ત તત્ત્વોનો ઉપોદ્ઘાત અને દ્વિતીયમાં ભગવતોક્ત પ્રમેય સાધન માટે પ્રમાણપ્રમાણ્ય નિર્ણય અને તત્ત્વચાસ્રનો ભાગવત સાથે સમન્વય કરવા માટે તે તે શાસ્ત્રોક્ત પ્રમેયના વસ્તુસ્વરૂપનો નિર્ણય છે. શ્રીમદ્ભાગવતોક્ત પ્રમેયનો નિર્ણય એટલે જ વેદાર્થનું નિરૂપણ કે વેદાર્થનો તત્ત્વનિર્ધાર. વેદ અને શ્રીમદ્ ભાગવત ભિન્ન પદાર્થ છે. વેદ શબ્દરૂપ છે તો ભાગવત અર્થરૂપ છે. વેદ પ્રમાણરૂપ છે તો ભાગવત પ્રમેયરૂપ છે. વેદ જો ઈશ્વરાખ્ય પરમતત્ત્વનો નિર્ણય કરે છે તો ભાગવત તેનું સ્વરૂપ અને સામર્થ્ય લીલાગાન દ્વારા દેખાડી આપે છે. વેદ શ્રીકૃષ્ણનું શ્રીઅંગ છે તો ભાગવત આત્મારૂપે વિલસે છે. પ્રથમ દીપ છે તો દ્વિતીય પ્રકાશ છે. કિંબહુના એકનું અસ્તિત્વ જ બીજાની ઉપર નિર્ભર છે; છતાં સાદ્યના પ્રકૃતિ-પુરુષની પેઠે અન્ધપડ્ગુ નથી. વેદનું તત્ત્વ ભાગવત વિના જાણી શકાય નહિ.

ભાગવતનો આરંભ જ વેદ વિના નથી. વેદ ન હોય તો ભાગવત કયા પ્રમેયનો પ્રકાશ કરે ? અને જો ભાગવત ન હોય તો વેદ કયા રસાખ્ય પરમતત્ત્વના પ્રતિપાદનમાં પ્રમાણરૂપ બને ? તત્ત્વાર્થદીપનિબંધનો પાયો વેદ છે અને શિખર ભાગવત છે. શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણ વેદ શરીરનું પ્રતિપાદન કરે છે, સર્વનિર્ણય પ્રકરણ અદ્વ્યગત્યદ્વ્યોનું પ્રતિપાદન કરે છે અને ભાગવતાર્થપ્રકરણ પરમકાષ્ઠાપત્ર રસાખ્ય વસ્તુત્વે શ્રીકૃષ્ણની લીલાનું વર્ણન કરે છે. આથી નિબંધની સમાપ્તિમાં શ્રીમદ્ભગવાદાર્થગુ સ્પષ્ટપણે જણાવે છે કે :-

શ્રીમદ્ભાગવતં સમસ્તનિગમન્યાયૈકતત્ત્વાત્મકં

નાનામ્નાન્તિતમઃ કપાટપિહિતં સન્તુષ્ટયે સર્વથા ।

નાભૂદિત્યવગત્ય નિશ્ચિતપદૈરુદ્ધીસદીપાકૃતિં

શ્રીમદ્ભાગવતપ્રદીપમધુના ચક્રે મુદા વલ્લભઃ ॥

યથા ભાગવતસ્યાર્થો હૃદિસ્થાચ્યુતનોદનાત્ ।

તથા નિરૂપિતઃ, સદ્ધિઃ ક્ષમા કાર્યા, મમોપરિ ॥

યુક્તં વા યદિ વાડ્યુક્તં મયા યદ્યન્નિરૂપિતમ્ ।

તત્સર્વં કૃષ્ણચરણે વાક્પુષ્પં વિનિવેદિતમ્ ॥

આ ઉપરથી આચાર્યચરણ એમ સ્પષ્ટ પણે સાબિત કરી આપે છે કે શ્રીમદ્ ભાગવતને હૃદયકમળમાં વિરાજતા શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુની પ્રેરણાથી જ જાણી શકાય. તેમાં યુક્તિનો પ્રસરનથી જો પ્રભુ હૃદયમાં પધારે તો જ નિજરૂપનો પ્રકાશ કરે.

### શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણ કે ગીતાર્થ પ્રકરણ ?

પ્રથમ જણાવ્યું તેમ શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણને જ ગીતાર્થ પ્રકરણ પણ કહે છે. સર્વ જ વાઙ્મયમાં ગીતા શાસ્ત્ર રૂપે વિલસે છે. શાસ્ત્ર શબ્દ પ્રમાણ પદવાચ્ય છે. પ્રમાણ એટલે અનધિગતાર્થ ગત્-અજ્ઞાતાર્થજ્ઞાપક. શાસ્ત્ર શબ્દની નિરુક્તિ યચ્છાસ્તિ વઃ ક્લેશરિપૂનશેષાન્ સંત્રાયતે દુર્ગતિતો ભવાદ્ય એમ પણ આપવામાં આવે છે. કિંતુ શાસ્ત્ર શબ્દ શાસનમાં શકત હોવાથી અને તાદૃશ શાસનશક્યતાવચ્છેદકત્વે જે પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ તેનો સમ્યક્ પ્રકારે પ્રભુસમ્મિતવચન દ્વારા બોધ કરાવી શકે. અતએવ શાસ્ત્રશબ્દથી ઉપરિનિર્દિષ્ટ ‘તમારા સકલ ક્લેશરિપુને શાસન કરે અને તમને દુર્ગતિ તથા સંસારથી તારે’ એ અર્થ વિશેષ પ્રતિકૂલ ન હોવા છતાં શબ્દશક્તિનો વિચાર કરતાં આદરણી તો નથી જ. નાગાર્જુનનું તાત્પર્ય તેણે જે ઉત્તરાર્થમાં પ્રકટ કર્યું છે.- તચ્છાસનાત્રાણગુણાદ્ય

શાસ્ત્રમેતદ્વયં ચાન્યમતેષુ નાસ્તિ આ વાક્યથી તે એમ કહેવા ઇચ્છે છે કે વેદાદિ શાસ્ત્રો પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ જ કરાવે પણ તમને કલેશથી છોડાવે નહિ અને સંસારથી કે દુર્ગતિથી તારે નહિ, માત્ર બોદ્ધમતજ તેવી શક્તિ ધરાવે છે. કિન્તુ શબ્દ શક્તિનો વિચાર કરતાં જણાય છે કે શાસન એટલે રાજજ્ઞાપત્ પ્રવર્તના. કિન્તુ કલેશરિપૂનશેષાન્ શાસ્ત્રિ અત્ર શાસ્ ધાતુનો અર્થ દાદક થાય છે. શાસ્ત્ર કોઈને દાદકાન કરે જ નહિ. તે તો માત્ર પ્રેરણા કરી શકે. અતએવ શાસ્ત્રશબ્દની ઇતરવ્યાખ્યા યોજવી જોઈએ શ્રીમાન કુમારિલભઙ્ઙ કહે છે કે-

પ્રવૃત્તિર્વા નિવૃત્તિર્વા નિત્યેન કૃતકેન વા ।

પુંસાં યેનોપદિશ્યેત તચ્છાસ્ત્રમભિધીયતે ॥

(શ્લો. વા. શબ્દપરિચ્છેદ ૪)

અપોરુષેય શબ્દ-વેદવડે કે તન્મૂલક પોરુષેય શબ્દપ્રમાણ વડે પુરુષોની પ્રવૃત્તિ કે નિવૃત્તિ ઉપદેશાય તે શાસ્ત્ર. અર્થાત્ ચતુર્દશ કે અષ્ટાદશ વિદ્યાસ્થાન શાસ્ત્રપદવાચ્ય છે. વળી

ચોદના ચોપદેશશ્ચ શાસ્ત્રમેવેત્યુદાહૃતમ્ ।

(શ્લો. વા. શબ્દ પરિચ્છેદ ૧૨)

ચોદના-પ્રવૃત્તિ નિવૃત્તિ અને ઉપદેશ જેમાં હોય તે શાસ્ત્ર જ છે. શબ્દસ્વામી જણાવે છે કે -

શાસ્ત્રં શબ્દવિજ્ઞાનાદસન્નિકૃષ્ટેર્થે વિજ્ઞાનમ્ ।

(શાબરભાષ્ય ૧-૧-૫)

શબ્દશક્તિના વિજ્ઞાનથી પરોક્ષપદાર્થોનું-ધર્માધર્મનું વિજ્ઞાન કરાવે તે શાસ્ત્ર. આ રીતે શાસ્ત્રશબ્દની વ્યાખ્યા કરવામાં આવે તો વિશિષ્ટાર્થપ્રતિપાદનસમર્થ શાસ્ત્રમુચ્યતે (તત્ત્વસંગ્રહ પૃ.૮) કમલશીલની વ્યાખ્યામાંયે કાંઈ અર્થ નથી. વાસ્તવિક રીતે તો અપ્રાપ્તે શાસ્ત્રમર્થવત્ એ ન્યાયે અજ્ઞાતાર્થજ્ઞાપક શાસ્ત્ર છે. કિન્તુ તે પણ કાન્તાસન્મિત કે સુહૃત્સન્મિત શબ્દ દ્વારા તો નહિ જ. પ્રભુસન્મિત વાક્ય શાસ્ત્રીતિ શાસ્ત્રમ્ એ વ્યુત્પત્તિ મુજબ વેદ જ શાસ્ત્ર છે.

અહિંયા શાસ્ત્ર શબ્દ એકં શાસ્ત્રં દેવકીપુત્રગીતમ્ ઇત્યાદિ વાક્યોક્ત શાસ્ત્ર શબ્દ ઘોતક છે. આથી જ શાસ્ત્રાર્થો ગીતાર્થઃ એમ કહી પ્રકાશકાર ગીતાર્થનો પર્યાયવાચક શાસ્ત્રાર્થ છે એમ સૂચન કરે છે. અત્ર શાસ્ત્ર પ્રવૃત્તિ અર્જુનની શક્તિથી થાય છે. શક્તિદ્વારા પણ શાસ્ત્રપ્રવૃત્તિ માનવામાં આવી છે.

હવે વિચારવાનું એ રહે છે કે શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં ગીતાર્થનો સમાવેશ કેમ

થયો ? શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણમાં ગીતોક્ત સર્વજ વિષયોનો સમાવેશ કરવાના ઉદ્દેશથી નિબંધની પ્રવૃત્તિથી કિન્તુ ગીતામાં જેટલા વિશેષવિવેચ્ય વિષયો જણાયા અને જે વિષયોનો સમાવેશ તન્ત્રાન્તરીય નિર્ણયોમાં કરવો યોગ્ય ન લાગ્યો (સર્વનિર્ણયપ્રકરણમાં જેમનો સમાવેશ થઈ શકે તેમ ન લાગ્યું) તેટલા જ વિષયોનો વિચાર શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણના નિબંધમાં થયો છે. એવા વિષયોનું તુલનાત્મક વિવેચન અમે પ્રકૃતપ્રકરણની સમાપ્તિમાં સ્વતંત્ર રીતે કરીશું. આ સ્થળે તો માત્ર તેમનો નામનિર્દેશ કરીને જ તત્ત્વદીપનિબંધના શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણનું વિવેચન કરવા પૂરતી પ્રવૃત્તિ છે. અહિંયાં આટલું ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ કે તત્ત્વાર્થદીપ એ નિબંધ છે, નહિ કે વ્યાખ્યા. નિબંધમાં તેટલા જ વિષયોનો સમાવેશ થઈ શકે છે કે જેની પર લેખકને સ્વતંત્ર મતપ્રકાશની વિશેષ જરૂર જણાય; જ્યારે વ્યાખ્યામાં મૂલના સર્વ જ વિષયોનો સમાવેશ થઈ શકે. આ વસ્તુ ધ્યાનમાં લીધા પછી જ શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણને ગીતાર્થ કહેવામાં જે સ્વાસ્થ્ય છે તે સહજ સમજી શકાય તેમ છે. શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં નીચે જણાવેલા શાસ્ત્રોક્ત વિષયોનો સમાવેશ કરવામાં આવ્યો છે :-

વિષય	શ્લોક
૧. જડસ્વરૂપપ્રતિપાદન	૨૩
૨. અવિદ્યાનું સ્વરૂપ	૨૪
૩. બ્રહ્મ વ્યાપક છે છતાં સાકાર છે	૨૫
૪. ચેતન અને જડની વિસ્ફુલિંગવત્ સૃષ્ટિ	૨૮
૫. જડ, જીવ અને અન્તરાત્મા	૩૦
૬. વિદ્યા અને અવિદ્યા માયાવિનિર્મિત હોવા છતાં ભગવાનની શક્તિ છે.	૩૧
૭. પંચપર્વા અવિદ્યા અને જીવન્મુક્તનું સ્વરૂપ	૩૩
૮. બ્રહ્મભાવથી લય થાય છે.	૩૫
૯. બ્રહ્મભાવ થવાનો પ્રકાર	૩૬
૧૦. નાનાવિદ્ય સૃષ્ટિપ્રકાર	૩૭
૧૧. માયાસૃષ્ટિ	૩૮
૧૨. વિદ્યાદિ સૃષ્ટિ પ્રકાર	૩૯
૧૩. ભગવદ્ભજનની સિદ્ધિ માટે તત્ત્વમસ્યાદિ વાક્યો	૪૧
૧૪. ભક્તિનું લક્ષણ	૪૨



૧૫.	ભગવત્સ્વરૂપ પ્રતિપાદન અને શ્રુતિયોનો સમન્વય	૪૩-૪૪
૧૬.	પગ્યપર્વા વિદ્યા	૪૫-૪૬
૧૭.	ભક્તિનું સામાન્યતા: નિરૂપણ	૪૭-૪૮
૧૮.	બ્રહ્માનન્દમાં પ્રવિષ્ટને ક્યું ફલ પ્રાપ્ત થાય ?	૫૦-૫૧
૧૯.	ગુપ્તસ્વરૂપ	૫૩
૨૦.	ગુપ્તની વ્યાપકતા શી રીતે ?	૫૪
૨૧.	પ્રકાશક ચૈતન્ય	૫૫
૨૨.	આભાસ-પ્રતિબિम्બવાદનું ખણ્ડન	૫૬-૫૮
૨૩.	મતાન્તરનિરાસ	૫૪-૬૦
૨૪.	તત્ત્વમસ્યાદિ વાક્યનું સ્વાસ્થ્ય	૬૧
૨૫.	વિદ્યાની પ્રાપ્તિનો પ્રકાર	૬૩
૨૬.	ગુપ્તની સર્વજ્ઞતા શી રીતે ?	૬૪
૨૭.	બ્રહ્મસ્વરૂપ નિર્ણય	૬૫
૨૮.	સજાતીય-વિજાતીય-સ્વગત ભેદવર્જિત બ્રહ્મસ્વરૂપ	૬૫
૨૯.	બ્રહ્મ જ જગતનું સમવાયી કારણ છે	૫૭-૭૧
૩૦.	અવતારરૂપે આવિર્ભાવ તિરોભાવ	૭૨-૭૪
૩૧.	વ્યોમવદ્બ્રહ્મ	૭૫
૩૨.	યેષમ્બ્ય નેર્ઘૃણ્ય દોષનો પરિહાર	૭૬-૭૭
૩૩.	મતાન્તર પરિહાર	૭૮-૮૨
૩૪.	સાંખ્યમત	૮૩-૧૦૦
૩૫.	પ્રેમરૂપે ભગવદ્ ભજન	૧૦૧-૧૦૩

ઉપર જણાવ્યા મુજબ ગીતોક્ત ભગભગ સર્વ જ વિવેચ્ય વિષયોનો સમાવેશ શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણમાં થઈ જાય છે. સાંખ્યોક્ત તત્ત્વો, યોગ, જ્ઞાન, અક્ષર, કાલ, કર્મ સ્વભાવ વગેરે પદાર્થોનો સમ્બન્ધ ઈતર તંત્રો સાથે પણ હોવાથી તેનો વિચાર સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં કર્યો છે.

### તત્ત્વદીપનિબન્ધના શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણનું મૂલ

યદપિ શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ એટલે જ ગીતાર્થ એમ નિર્ણય કરવામાં આવ્યો છે. તથાપિ શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજીએ શાસ્ત્રાર્થપ્રમાણમાં વેદવાક્યો, રામાયણ અને પાગ્યરાત્ર શાસ્ત્રને અનુસરતો આ સ્વતન્ત્ર જ નિબન્ધ રચ્યો છે અને તેમાં ગીતાર્થનો પણ સમાવેશ કર્યો છે. ગીતાર્થ મુખ્ય વિવેચ્ય વિષય છે. કિન્તુ પોતે જણાવેલો સિદ્ધાન્ત નિમિલ વેદવાક્યો, રામાયણ અને પાગ્યરાત્રથી અવિરુદ્ધ છે એમ સ્પષ્ટપણે ઉપસંહારમાં જણાવે છે:-

અર્થોઽયમેવ નિચિત્તૈરપિ વેદવાક્યૈ રામાયણૈઃ સહિતભારતપદ્ધરાત્રૈઃ ।

અન્યૈશ્ચ શાસ્ત્રવચનૈઃ સહ તત્ત્વસૂત્રૈર્નિર્ણયતે સહૃદયં હરિણા સદૈવ ॥

આ ઉપરથી સમજી શકાય છે કે ગીતાર્થના વ્યાજે વેદવાક્ય, રામાયણ, ભારત, પાગ્યરાત્ર, અન્યપણ શાસ્ત્રવચનો અને તત્ત્વસૂત્રોને અનુસરતોજ સિદ્ધાન્ત પ્રકટ કર્યો છે. આથી જ શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણને સ્વતન્ત્રરીતે “ગીતાર્થપ્રકરણ” એવું નામ ન આપતાં ગીતોક્ત પદાર્થોનું વિવેચન ઉપર જણાવેલા શાસ્ત્રાધારે કરેલું હોવાથી તે પ્રકરણનું નામ “શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ” જ ચુકિતસજ્ગત છે. “શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ” એ નામથી જ સર્વ સચ્છાસ્ત્રો, નિબન્ધનું મૂલ છે એમ પણ સૂચન થાય છે.

“શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ”માં પ્રભુના પ્રમાણબલનો આશ્રય કર્યો છે; જ્યારે “સર્વનિર્ણયપ્રકરણ”માં પ્રમેયબલનો આશ્રય છે. અત્ર પ્રમાણ અને પ્રમેય શબ્દો પણ એક પ્રકારના વિશિષ્ટ અર્થનું ધોતન કરે છે. પ્રમાણશબ્દ પ્રમા-જ્ઞાનનું કરણ સૂચવે છે. અને પ્રમેયશબ્દ પ્રમાણસિદ્ધ વસ્તુનું સૂચન કરે છે. પ્રમાણ શાસ્ત્ર છે અને પ્રમેય શાસ્ત્રસિદ્ધ પદાર્થ છે. શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાન્તથી ઉપર જણાવેલો અર્થ સર્વથા અવિરુદ્ધ છે, છતાં પ્રમાણ અને પ્રમેય શબ્દો સ્વતન્ત્ર રીતે ભગવત્સ્વરૂપનું પણ સૂચન કરે છે. પ્રમિતિ: પ્રમાણમ્ એમ જ્યારે અર્થ કરવામાં આવે ત્યારે પ્રમિતિરૂપા સમ્પિત્ ભગવત્સ્વરૂપ છે. તે રીતે પ્રમાણશબ્દ લેવાય તો સાક્ષાત્કારિ પ્રમાણમ્ એમ સાક્ષાત્કારિત્વરૂપ-ભગવાન્ પ્રમાણપદવાચ્ય છે. તાદશ પ્રમાણથી ઉત્પન્ન થતી હાનોપાદાનાપેક્ષાદિ બુદ્ધિ તેનું ફલ છે. એ રીતે જ પ્રમેય શબ્દ ભગવત્સામર્થ્યનો બોધક છે. આ સમ્બન્ધી વિચાર પ્રસ્થાનરત્નાકરાદિમાં છે જ અને તે ઉપરની કિરણાવલી નામની મારી ટીકામાં તેનો વિપુલ વિસ્તાર પણ છે જ; તથાપિ પ્રકરણને અનુસરતો વિશેષ વિચાર પ્રમાણ્ય નિર્ણયમાં કરવામાં આવશે.

તેમજ પ્રમેય શબ્દનું વિશેષ વિવેચન પ્રમેય હરિરેવૈકમ્ ઇત્યાદિ વાક્યોનું સ્વારસ્ય સમજાવતાં કરવામાં આવશે.

### અધિકારીનિર્ણય

તત્ત્વાર્થદીપનિબંધનો અમુક ભાગ જ પ્રમાણ છે અને અન્ય ભાગ યેષ્ઠાવોને આદરણીય નથી એમ વાણીથી કે કૃતિથી અસફૂત પ્રતિપાદન કરનારો એક વર્ગ સમ્પ્રદાયમાં અસ્તિત્વ ધરાવે છે. વાસ્તવિક રીતે તો દયાનન્દાદિ મતો જેમ વેદનું પ્રામાણ્ય સ્વીકારે છે, છતાં તેમના મતમાં વેદનો અનાદર થતો સ્પષ્ટપણે દષ્ટિગોચર થાય છે; તદ્વત્ પુષ્ટિમાર્ગમાંયે શ્રીમદ્વેદભાષ્યાર્થજીની વાણી જ અમને માન્ય છે એમ વારંવાર ઘોષ કરીને પણ તેઓ શ્રીમાનના સિદ્ધાન્તોનો જાણે કે અજાણે (જાણીને-પશ્ચિમની સંસ્કૃતિની છાપ પડવાથી અને અજાણે-શાસ્ત્રમર્મ સમજવાની અક્ષમતા હોવાથી) અનાદર થતો જ દષ્ટિપથ થાય છે. જો નિરપેક્ષબુદ્ધિથી વિચાર કરવામાં આવે તો નિબંધમાં જે પ્રકારના ભગવન્માર્ગનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે, તે પ્રકારનો અધિકારી પુષ્ટિમાર્ગીય મહાભાગ્યવાન યેષ્ઠાવ વિના અન્ય કોઈ હોઈ શકે જ નહિ. આવા યેષ્ઠાવને તત્ત્વાર્થદીપનિબંધ પણ અક્ષરશઃ માન્ય હોવો જ જોઈએ. જો માન્ય ન હોય તો તેવો યેષ્ઠાવ પોતે શ્રીમદ્વેદભાષ્યાર્થજીને અનુસરે છે એમ કહી શકાય નહિ. એમ પ્રતિપદોક્ત વચનોથી સિદ્ધ થાય છે. પક્ષપાતરૂપી દર્વીકરે દષ્ટ એવો જ કોઈ જીવ આ વસ્તુ જોઈ શકે નહિ; તેમાં પણ ભગવદિચ્છાને જ પ્રતિબંધકત્વે સ્વીકારવી જોઈએ. અન્યથા સુબોધિન્યાદિક ગ્રંથોનું દિવાનિશ મનન કરનારા અને શ્રીવાગધીશની વાણી વિના અન્ય વાણીથી દૂર રહેનારા મહામાન્ય પણિડતો પણ નિબંધોક્ત નિર્ણયોની અવગણના કરે જ નહિ. આ વસ્તુ, સર્વનિર્ણયપ્રકરણના વિવેચનમાં સ્મૃતિપ્રકરણ અને ભક્તિપ્રકરણનું સ્વારસ્ય દષ્ટિપથ કર્યા વિના સમજી શકાય તેમ નથી. માટે વિદ્વાનોએ શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણના અધિકારીનિર્ણયવિભાગ ઉપરાંત સ્મૃતિપ્રકરણ અને ભક્તિપ્રકરણ ઉપર પ્રગટ કરેલા વિચારોની પણ પરીક્ષા કરવી એમ અમે સાગ્રહ વિજ્ઞાપના કરીશું. “તાપાચ્છેદાદ્ય નિકષાત્સુવર્ણમિવ પષિડતૈઃ । પરીક્ષ્ય મદ્ર્વો ગ્રાહ્યં સ્વબુદ્ધ્યા ન તુ ગૌરવાત્” એમ હું પણ સ્પષ્ટપણે જણાવું છું.

પ્રકૃતમનુસારામઃ - શ્રીમદ્વેદભાષ્યાર્થજી નમો ભગવતે ઇત્યાદિ મઙ્ગલશ્લોકમાં જ અનુબંધયતુષ્ટયનું નિરૂપણ કરે છે એમ પ્રથમ જ કહેવામાં આવ્યું છે. તત્ર પરમકાષ્ઠાપત્ર પ્રભુની લિપ્સાવાળા જીવનો જ અધિકાર, નિબંધમાં જણાવેલા

સિદ્ધાન્તોનું જ્ઞાન મેળવવામાં અને તદનુસાર વર્તન કરવામાં છે, એમ સ્પષ્ટ જ છે. તદુપરાન્ત દ્વિતીયકારિકામાં જ અધિકારીના સ્વરૂપનો સ્પષ્ટ તથા પૃથક્ ઉલ્લેખ કર્યો છે:-

સાત્ત્વિકા ભગવદ્ભક્તા યે મુક્તાવધિકારિણઃ ।

ભવાન્તસમ્ભવા દૈવાત્તેષામર્થે નિરુપ્યતે ॥

ચિત્તના સાત્ત્વિક પરિણામરૂપે જે સ્વભાવ, તત્પ્રયુક્ત પ્રકૃષ્ટકૃતિ અર્થાત્ દેવયજન, તદઅક્ષયા પણ અધિક અલોકિક કૃતિ કરનારા; તેવા પણ કેવલ અનિષિદ્ધ યોગાદિપરાયણાન્તઃકરણવાળા નહિ, પ્રત્યુત, ભગવત્સેવકો (અર્થાત્ સમાધિદશાથી યે અધિક માનસીપર્યન્ત ધ્યાન ધારણા અને સમાધિ એ ત્રણેનું નિયમન કરી ચિત્તસ્થૈર્યદ્વારા રસાનુભવ કરનારા);- જ્ઞાનમાર્ગીય મુક્તિના સમ્પૂર્ણ અધિકારી (અર્થાત્ જ્યાં આગળ જ્ઞાન માર્ગની પરિસમાપ્તિ થાય ત્યાંથી જ પુષ્ટિમાર્ગનો આરંભ થાય છે) અને ભગવદિચ્છાથી તેમને અન્તિમ જન્મ-ભગવદ્સભોગની યોગ્યતાવાળું જન્મ-પ્રાપ્ત થયું હોય, તે અહિંયાં અધિકારી છે. એવા મહાભાગ્યવાન યેષ્ઠાવ માટે વેદાર્થના તત્ત્વરૂપ પ્રમેયો - પદાર્થોનું નિરૂપણ પ્રસ્તુત તત્ત્વાર્થદીપનિબંધમાં છે. આ ઉપરથી સહજ સમજી શકાય તેમ છે કે નિબંધોક્ત પ્રકાર અને નિર્ણય પ્રત્યેક યેષ્ઠાવને અક્ષરશઃ માન્ય હોવો જ જોઈએ. શ્રીમહાપ્રભુજીએ, તત્ત્વાર્થદીપનિબંધમાં શાસ્ત્રીય પદ્ધતિનો સર્વાંગે સ્વીકાર શી રીતે કરવો, શાબ્દબોધને શાસ્ત્રસમન્વય કેમ થાય ઇત્યાદિ પ્રકારો સમ્યક રીતે અને સમ્પૂર્ણતયા નિજેચ્છા હોવાથી શ્રીમદ્વેદભાષ્ય, શ્રીસુબોધિનીજી અને પ્રકરણગ્રંથોનું સ્વારસ્ય સમજાવી આપવામાં નિબંધોક્ત પ્રક્રિયા જ સર્વત્રેષ્ઠ છે અને તેનું અનુસરણ કરવું એ સર્વજ યેષ્ઠાવોનું પરમકર્તવ્ય છે, તત્રાપિ શાસ્ત્રીય વિચારસરણિનું અનુસરણ કરનારને તો નિબંધ વિના છૂટકો જ નથી. કિન્તુ પં. ગઢ્ડાલાજી પ્રભૃતિના નિર્ણયો અશાસ્ત્રીય છે એમ દેખાડી આપવા માટે નિબંધને એક બાજુએ મૂકાય છે તે સર્વથા અયોગ્ય છે. આર્યસમાજિસ્ટો જેમ કોઈ વાક્ય કે વાક્યાંશનો સમ્બંધ જાણવાની દરકાર રાખ્યા વિના યથેમાં વાચં ઇત્યાદિ શ્રુતિમાંથી શૂદ્ધને પણ વેદાધ્યયનાધિકાર શોધી કાઢે અને ન તસ્ય પ્રતિમા ઇત્યાદિમાંથી મૂર્તિપૂજાનું ખણ્ડન દેખાડી આપે તેમ ભાષ્ય - સુબોધિન્યાદિ ગ્રંથોનો કોઈ વાક્યાંશ લઈને નિબંધોક્ત પ્રકારથી વિરુદ્ધ મતનું પુષ્ટિમાર્ગીયમતત્વે સમર્થન થાય તે અયોગ્ય છે.

પ્રકૃતમનુસારામ :- ભગવન્માર્ગનો અધિકારી જીવ કેવો હોવો જોઈએ તે વસ્તુ શ્રીમદ્વાચાર્યચરણ દ્વિતીય કારિકામાં કેટલા ખુલાસા સાથે સમજાવે છે તે આપણે

જોયું. આપણા ભક્તગકાર શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી મહારાજ જણાવે છે કે ભગવત્સેવકા ન તુ રૂપાન્તરસેવકાઃ, સેવાપરાઃ, તનુજવિત્તજસેવાકર્તારો વૈષ્ણવા इत्यर्थः જેઓ ભગવત્સેવક છે, નહિ કે પ્રભુથી ઈતર સ્વરૂપોની સેવા કરનારા, સેવાપર-એટલે સેવામાં પરાયણ રહેનારા, તનુજા અને વિત્તજા સેવા કરનારા, યેષાંવો જ નિબન્ધોક્ત વસ્તુના અધિકારી છે. એવા અધિકારીઓ શુદ્ધ બ્રહ્મના ઉપાસકો પણ હોઈ શકે તેમનાથી છુટા પાડીને નિબન્ધોક્ત વસ્તુના અધિકારીનો નિર્ણય કરવા માટે શ્રીમદ્વેદાનંદભાગ્યાર્યજી જ પ્રકાશમાં લખે છે કે તત્રાપિ યે નિષ્કામાઃ આ પ્રકારના અધિકારીઓમાં પણ જે નિષ્કામ હોય તે જ નિબન્ધોક્ત વસ્તુના અધિકારી છે. નિષ્કામ યેષાંવો જ મુક્તિના અધિકારી છે એમ શ્રુતિ અને ભાગવતના પ્રમાણોથી સિદ્ધ કરીને શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી જણાવે છે. કે “તથાચ નિષ્કામકેવલવૈષ્ણવાઃસન્તો યે પાપમીરવો ભગવન્તં સેવન્તે તેષામપિ કર્ણધારરૂપગુર્વભાવેન ફલવિલમ્પ્ત ઇતિ તદભાવાય કાદાચિત્કામ્યાસક્તિનિવારણેન વાદ્યર્થમયમુપાય ઇતિ નિષ્કર્ષઃ” જેઓ નિષ્કામ છે, કેવલ યેષાંવ છે અને પાપથી ભય ધરાવનારા છે અને પ્રભુને સેવે છે તેમને પણ કર્ણધારરૂપ ગુરુ ન મળે તો ફલવિલમ્પ્ત થાય-તેમ ન બને અને કોઈકવાર પણ ભરતાદિવત્ અન્યાસક્તિ થાય તો તેવી અન્યાસક્તિનું નિવારણ કરીને દૂર થાય તે માટે આ ઉપાય છે - આ તત્ત્વદીપ નિબન્ધની રચના છે.

આ ઉપરથી સ્પષ્ટપણે સમજી શકાય છે કે તત્ત્વાર્થદીપનિબન્ધોક્ત વસ્તુ અને તત્રત્ય નિર્ણય કેવલ શુદ્ધ યેષાંવો માટે જ છે. નિબન્ધનો અક્ષરે અક્ષર સુબોધિન્યાદિવત્ યેષાંવોને માન્ય હોવો જ જોઈએ; એટલું જ નહિ પણ સુબોધિન્યુક્ત પદાર્થોનું તત્ત્વ પણ નિબન્ધોક્ત પ્રક્રિયાને અનુસરીને જ જો જાણવામાં આવે તો જ શ્રીમદ્વેદાનંદભાગ્યાર્યજીનું હાર્દ ખરી રીતે સમજી શકાય. આ વાત સર્વનિર્ણયપ્રકરણ અને ભાગવતાર્થપ્રકરણનો સાર જાણ્યા પછી વિશેષ દૃઢ થશે.

જે લોકો પ્રકાશ અને આપણાભક્તગની પંક્તિઓનું સ્વાસ્થ્ય જાણ્યા વિના કે જાણીને પણ નિબન્ધોક્તનિર્ણયની વિરુદ્ધ ચઢાતઢા લખે છે, બાલકો પાસે લખાવે છે અને પોતે સ્થાપેલા મહાલોમાં વહે છે તેઓ જો શ્રીમદ્વેદાનંદભાગ્યાર્યજીનો નામોદ્દેશ કર્યા વિના તેમ કરતા હોય તો તેમને ઘન્યવાદ આપવો ઘટે અને તેમના સ્વતન્ત્ર (?) ભક્તિમાર્ગને કુતૂહલપૂર્ણ દષ્ટિએ નિહાળી શકાય. પરંતુ જો શ્રીમદ્વેદાનંદભાગ્યાર્યજીની છત્રછાયા નીચે તેમ કરતા હોય, તો તેઓ આચાર્યચરણને

અન્યાય કરે છે. આવો અન્યાય પણ જો કોઈ દ્વેષ્ટાઓ તરફથી થાય તો જુદી વાત છે, પણ પોતાના પરમ આરાધ્યદેવ શ્રીમદ્વેદાનંદભાગ્યાર્યજી છે એમ જણાવીને દધિયિ ત્રાષિની પેઠે નિજ અડગપ્રત્યક્ષોને પણ સમ્પ્રદાયના ઉત્કર્ષ માટે અર્પણ કરવા જેટલી તેચારી બતાવીને તેમને અન્યાય કરે તો તે અદમ્ય અપરાધ ગણાય. જો એમણે પ્રથમ કારિકાના આપણાભક્તગની મુચ્યન્ત ઇતિથી આરમ્ભીને પ્રવત્સ્યન્ત ઇતિ સુધીની પંક્તિઓનો જ વિચાર કર્યો હોય અને તેનો સમન્વય સામ્પ્રદાયિક સદાચારો સાથે કરવાનું ધૈર્ય સેવ્યું હોય તે આદરણીય ગણી શકાય.

### તત્ત્વાર્થદીપનિબન્ધનું પ્રામાણ્ય

આર્યોનો મુદ્રાલેખ છે કે જે વેદમૂલક વાઙ્મય હોય તે સર્વ જ પ્રમાણ છે. તદ્વિરુદ્ધ અપ્રમાણ હોવાથી અનુપાદેય છે. આ પ્રકારની આજસુધીની આર્યમર્યાદાનું અનુસરણ શ્રીમહાપ્રભુજી પણ કરે છે. યદ્યપિ યેષાંવોને શ્રીમહાપ્રભુજીની વાણી કરતાં અધિક પ્રમાણભૂત વસ્તુ અન્ય કંઈ જ નથી. (યેષાંવોને શ્રીમહાપ્રભુજી વાગધિષ્ઠાતૃત્વતા છે એમાં લેશમાત્ર પણ સન્દેહ નથી, એટલું જ નહિ પણ વસ્તુતઃ કૃષ્ણ એવ એમ પણ સર્વાંશે યેષાંવો સ્વીકારે છે. તથાપિ મદુક્તં પ્રમાણમ્ એમ, અથવા “હું આમ માનું છું” એમ, આજકાલના વિચારકોની પેઠે શ્રીમહાપ્રભુજી કદી પણ કહેતા નથી.) પ્રત્યુત નિજવાણીની સર્વાંશે વેદમૂલકતા સિદ્ધ કરી આપે છે. આપત્રી સ્પષ્ટપણે જાહેર કરે છે કે જે વસ્તુ વેદમૂલક ન હોય, તે સર્વથા અપ્રમાણ છે. અમને કે અન્યપણ યેષાંવને જ નહિ કિન્તુ આર્યાવર્તમાં જન્મેલા પ્રત્યેક શ્રદ્ધાવાન્ વિચારકને શ્રીમહાપ્રભુજીની વાણીમાં અપ્રામાણ્યબુદ્ધિ ન જ હોઈ શકે. કિંમ્બહુના, કદાચ વેદવિરુદ્ધ પણ કોઈ વસ્તુનું પ્રતિપાદન કરે અથવા તેનું આચરણ કરે કે કરવાનું કહે તો ઈશ્વરોદિત્વાત્ તેમ માનવામાં કે આચરવામાં કોઈ પણ ખંચાય નહિ, કે શાસ્ત્રદષ્ટિયા બાધ પણ પ્રાપ્ત ન થાય; તથાપિ પ્રાચીન આર્યમર્યાદાનું સમ્પૂર્ણ રક્ષણ કરવા માટે શ્રીમહાપ્રભુજી સર્વત્ર જ નિજ વાણીમાં વેદમૂલકતા બતાવી આપે છે. તત્ત્વાર્થદીપનિબન્ધનું ચે પ્રામાણ્ય સ્વીકારવાનું કહેતાં પહેલાં આચાર્યચરણ જણાવે છે કે-

ભગવચ્છાસ્ત્રમાજ્ઞાય વિચાર્ય ચ પુનઃ પુનઃ ।

x x x x x

इत्याकलय्य सततं शास्त्रार्थः सर्वनिर्णयः ।

श्रीभागवतरूपं च त्रयं वच्मि यथामति ॥

(શા. પ્ર. ૩ થી ૫)

આ ઉપરથી સમજી શકાય છે કે ભગવદ્દશાસ્ત્ર-ભાગવત, ગીતા અને પંચરાત્ર-નું સ્વતઃ જ્ઞાન મેળવીને અને વારંવાર વિચારીને - દેવકીપુત્રે ગાયેલી ગીતા એ જ એક શાસ્ત્ર છે, દેવકીપુત્ર શ્રીકૃષ્ણ એ જ એક દેવ છે, તેનાં નામ એ જ મંત્ર છે અને તેની સેવા એ જ કર્મ છે, એમ સારી પેઠે સતત વિચારીને - મધ્યમાં વિરોધિજ્ઞાનનો નિરાસ કરીને - શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ, સર્વનિર્ણયપ્રકરણ અને ભાગવતાર્થપ્રકરણનું પ્રતિપાદન ઉક્ત તત્ત્વાર્થદીપનિબંધમાં થયું છે. આ રીતે સમ્પૂર્ણનિબંધ વેદમૂલક હોવાથી પ્રમાણ છે.

અંતે પણ નિખિલવેદવાક્યો, રામાયણ અને મહાભારતસહિત પંચરાત્રો અને તત્ત્વસૂત્રોસહિત શાસ્ત્રવચનો વડે ઉક્ત નિબંધનું નિબંધન કર્યું છે એમ ઉપસંહારોક્ત શ્લોકથી જણાવ્યું છે. તત્ત્વાર્થદીપનિબંધમાં કરેલા શાસ્ત્રનિર્ણયો પણ ગમે તેવા પંક્તિને ક્યાં નથી પણ સહૃદય પ્રભુએ જ કર્યા છે. કારણ કે કૃત્યસ્યા હૃદયં લોકે નાન્યો મદ્વેદકશ્ચન ઇત્યાદિ એકાદશસ્કન્ધોક્ત વાક્યો ઉપરથી જણાય છે કે વાણીના પતિ પ્રભુ વિના વેદનું હૃદય અન્ય કોઈ સમજી શકે તેમ નથી. આથી જ ઉપર જણાવેલાં શાસ્ત્રવચનો પ્રભુની વિભૂતિઓ દ્વારા પ્રકટ થયા છે. તે તે શાસ્ત્રોમાં તત્ત્વાર્થદીપનિબંધમાં જણાવેલા જ પદાર્થોનું નિરૂપણ છે. અતએવ નિબંધ વેદમૂલક હોવાથી જ પ્રમાણ છે. શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી કહે છે માટે તત્ત્વદીપનિબંધ પ્રમાણ છે એમ નથી, પણ વેદમૂલક હોવાથી જ પ્રમાણ છે એમ આપશ્રી કિમકિમ ઘોષ કરીને કહે છે. આ વાત ખાસ ધ્યાનમાં રાખવા લાયક છે. એજ રીતે પોતે રચેલા અન્ય ગ્રંથોનું પણ પ્રામાણ્ય તે તે સ્થળે જણાવે છે.

### પ્રામાણ્યનિર્ણય

તત્ત્વાર્થદીપનિબંધોક્ત પ્રમેયોનું સ્વરૂપ વેદાનુકૂલ હોવાથી અથવા તો એમ કહો કે યેયાસદર્શનાનુસાર હોવાથી શ્રીમહાપ્રભુજીએ પ્રત્યેક વિષયનો પ્રમાણ, પ્રમેય, સાધન અને ફલભેદે વિશદ વિચાર કર્યો છે. તથાપિ જ્યારે આપણે શ્રીમહાપ્રભુજીના વાક્યોનું પ્રામાણ્ય સ્વીકારતા પહેલાં તે વાક્યો વેદાનુરોધી છે એમ સર્વતઃ વિચારપૂર્વક સ્વીકારીને જ પ્રકૃત વિચારમાં પ્રવૃત્ત થયા છીએ; ત્યારે સૌથી પ્રથમ સૂક્ષ્મરીતે વિચાર કરવો જોઈએ કે શ્રીમહાપ્રભુજીના મતમાં વેદાદિનું પ્રામાણ્ય કેટલું અને કેવી રીતે સ્વીકારાયું છે. સતિ કુહ્યે ચિત્રમ્ એ ન્યાયે જ્યાં સુધી શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજીની દષ્ટિએ પ્રામાણ્યનિર્ણય ન થાય અને સર્વપ્રમાણમૂર્ધન્યત્વે વેદ જ પ્રમાણ છે એમ સિદ્ધ ન થાય, ત્યાં સુધી આપશ્રીનું મંતવ્ય સર્વથા

વેદાનુકૂલ હોવાથી પ્રમાણ છે એમ કહેવામાં કંઈ પણ અર્થ સરે તેમ નથી. પ્રત્યક્ષાદિથી વિરુદ્ધ હોવા છતાં કેવલ વેદમાં કહ્યું છે માટે જ અમુક પદાર્થને અમુક રીતે જ સ્વીકારવો એમ કહેવાનું પ્રયોજન શું ? જે વસ્તુ પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ ન થઈ શકે, અનુમાનથી કલ્પી શકાય તેમ ન હોય, ઉપમાનથી સાદૃશ્યજ્ઞાન ન થતું હોય અર્થાપત્તિથી વેગળે હોય, ઐતિહ્યનો જ્યાં પ્રવેશ ન હોય કે યોગ્યતાની ઉપલબ્ધિ કે અનુપલબ્ધિનો પ્રસર ન હોય ત્યાં શબ્દને જ પ્રમાણાત્મે સ્વીકારવાનું કારણ શું ? તેમાં જે ઈતર આસજન કથિત શબ્દને પ્રમાણ ન માનતા કેવલ વેદ ઉપર જ સર્વ પ્રકારે પ્રામાણ્યાવલમ્બન કરવાનું પ્રયોજન શું ? ઇત્યાદિ પ્રામાણ્ય નિર્ણય ક્યાં પછી જ તત્ત્વાર્થદીપનિબંધોક્ત વસ્તુના વિચારવામાં પ્રવૃત્ત થઈશું.

ન્યાયદર્શનના વાત્સ્યાયન ભાષ્યની પ્રસ્તાવનામાં (૧-૧-૧) પ્રમાતા યેનાર્થ પ્રમિણોતિ તત્ (પ્રમાણમ્) એમ વ્યુત્પત્તિ કરીને કરણાર્થક પ્રમાણ શબ્દ સ્વીકારી નિર્ણય કરે છે. અર્થાત્ જે વડે કરીને જ્ઞાન થાય તે પ્રમાણ કહેવાય. પ્રમાણનો સ્વભાવ એવો છે કે વિદ્યમાન પદાર્થનો પ્રકાશ કરનાર વસ્તુ ન હોવા છતાં પણ તેનો પ્રકાશ કરે છે. (વાત્સ્યાયન ભાષ્ય ૧-૧-૧ પ્રસ્તાવના) પ્રમાણનું લક્ષણ પ્રમાણત્વ. પ્રમાણત્વ એટલે તે પ્રકારના ધર્મયુક્ત પદાર્થમાં (વિષય-વિષયિત્વ સમ્બન્ધે, વિશેષણ-વિશેષ્યત્વ સમ્બન્ધે, આધારાધેયત્વ સમ્બન્ધે કે ગમે તે સમ્બન્ધે પણ; કિન્તુ મુખ્યત્વે વિષય-વિષયિત્વ સમ્બન્ધે જ.) તે પ્રકારના ધર્મરૂપે પ્રકર્ષ વિશિષ્ટ-જ્ઞાનનું કરણત્વ. તદ્વતિ તત્ત્વકારત્વરૂપપ્રકર્ષ વિશિષ્ટજ્ઞાનકરણત્વમ્ (ગૌતમસૂત્ર વૃત્તિ ૧-૧-૩)

અથવા “પ્રમાણ” શબ્દની વિશદ વ્યાખ્યા કરવી હોય તો અનુભવત્વ-વ્યાપ્યજાત્યવચ્છિન્નપ્રમાવૃત્તિકાર્યતાનિરૂપિતકારણતાશાલિત્વે સતિ વ્યાપારવત્ત્વમ્ (તર્કપ્રકાશિકા) અનુભવમાં (સર્વજ યથાર્થ અનુભવોમાં) કાર્યકારણભાવનો બોધ કરાવનાર કરણ-વ્યાપાર-એટલે જ પ્રમાણ એમ નિષ્કર્ષ સમજવો.

અથવા “પ્રમાણ” એટલે ન જાણેલા પદાર્થનો અનુભવ કરાવવામાં જે કારણત્વે ઉપસ્થિત થાય તે (અનધિગતાર્થકાનુભવકારણત્વમ્ કુસુમાંજલિ દીકા અને તર્કપ્રકાશિકા શિતિકાદી). વર્ધમાનોપાધ્યાય એજ અર્થને પરિષ્કૃત-વિશદ-કરીને એવી વ્યાખ્યા કરે છે કે- સ્વસમાનાધિકરણસ્વાવ્યવહિતપૂર્વવર્તિસ્વસમાનાકાર નિશ્ચયવિષયકેતરતદ્વિશેષ્યક તત્ત્વકારકાનુભવકારણત્વમ્ પરંતુ આ પ્રકારની વ્યાખ્યાઓ અવિરુદ્ધ હોવા છતાં શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાન્તમાં સ્વીકૃતે તો નથી જ. યદ્યપિ અનધિગતાર્થગન્તૃત્વં પ્રમાણત્વમ્ એવું મિમાંસકોક્ત પ્રમાણલક્ષણ સમ્પ્રદાયમાં પણ

અનેકત્ર સ્વીકારેલું જોવામાં આવે છે, તથાપિ તે લક્ષણ સર્વથા શુદ્ધાદ્વેતસિદ્ધાન્તને અનુકૂલ છે એમ કહી શકાય નહિ. પ્રમાણલક્ષણો પૈકી અનધિગતાર્થગત્ત્વમ્ એ લક્ષણ શુદ્ધાદ્વેતસિદ્ધાન્તથી વિશેષ વિરુદ્ધ નથી; તેથી જ સામ્પ્રદાયિક ગ્રંથોમાં તેનો ઉલ્લેખ મળી આવે છે. વાસ્તવિક રીતે તો પ્રમાણ-શબ્દને ભાવ-વ્યુત્પન્ન સ્વીકારીએ તો અબાધિતજ્ઞાન કે બાધયોગ્યવ્યતિરિક્તજ્ઞાન પ્રમાણમ્ એજ લક્ષણ સ્વીકારવું પડશે; અને જો કરણવ્યુત્પન્ન સ્વીકારીએ તો અબાધિતજ્ઞાનજનકત્વમ્ અથવા બાધયોગ્યવ્યતિરિક્તજ્ઞાનજનકત્વમ્ પ્રમાણત્વમ્ એજ લક્ષણ નિર્દુષ્ટ કહેવાય. આ વિષયનો સ્પષ્ટ વિચાર પાડેલેન્દ્ર ગો. શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી મહારાજે પ્રસ્થાનરત્નાકર માં કર્યો છે જ, તથાપિ પ્રસ્તુત વિષયને ઉપયોગી દિગ્માત્રદર્શન અત્રાપિ આવશ્યક છે.

આબાધિતજ્ઞાન-પ્રમા-ભગવદ્દીપાની પેઠે દર્શવિધ છે. તૃતીયસ્કન્ધના ચતુર્થાધ્યાયમાં અથ તે તદ્વજ્ઞાતાઃ આ પ્રથમ શ્લોકના શ્રીસુબોધિનીજીમાં જ્ઞાનની અનન્તતા જણાવીને તેની ભગવદ્વૃત્તા સિદ્ધ કરી આપી છે. સત્ય જ્ઞાનમનન્તં બ્રહ્મ આ તૈત્તિરીય શ્રુતિમાં અબાધિત (સત્યસ્વરૂપ) જ્ઞાનરૂપ અનન્તતાનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. તે (અબાધિત જ્ઞાન અથવા તો પ્રમા) અનન્ત હોવા છતાં ભગવદ્દીપાની પેઠે તેનું દર્શન નિરૂપણ કરવું શક્ય છે. (૧) આશ્રયરૂપ, (૨) મુખ્ય, (૩) અવિકૃત, (૪) સર્વોપાસ્ય, (૫) સર્વાત્મભૂત (૬-૮) પ્રમાતાને વિષે અન્તઃકરણત્વે ચતુર્ધા અને (૧૦) પ્રમાતાને વિષે ઈન્દ્રિયત્વે જ્ઞાનના છે. દર્શવિધત્વનું વિસ્તૃત વિવરણ તૃતીયસ્કન્ધ સુબોધિનીજી તત્ત્વકાશ અને પ્રસ્થાનરત્નાકરમાં છે. અમે પણ “પ્રમાણ્યવાદ” મથાળાવાળા લેખમાં વિચાર કરીશું, તેથી, અત્ર વિસ્તાર ભયથી, અને ઇતરત્ર વક્ષ્યમાણ હોવાથી, આટલેથી જ વિરામ પામીએ તો તે અચુક નથી.

તત્ત્વાર્થદીપનિબન્ધમાં અલૌકિક એવા અનધિગત પદાર્થોનું વિવેચન કરવા માટે શબ્દરૂપ વેદનું જ પ્રમાણ સાધવાનું છે. અતએવ શ્રીમદાચાર્યચરણ, સર્વનિરપેક્ષ વેદનું પ્રમાણ સ્વીકારતા આજ્ઞા કરે છે કે શબ્દ એવ પ્રમાણમ્, તત્રાપ્યલૌકિકમેવ, તત્ત્વતઃ સિદ્ધભાવ- પ્રમાણં વેદાઃ, સર્વ એવ કાણ્ડદ્વયસ્થિતાઃ, અર્થવાદાદિરૂપા અપિ । (પ્રકાશ શ્લોક. ૭)

આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે તન્ત્રાન્તરયત્ શબ્દત્વેન વેદનું પ્રમાણ સ્વીકારવાનું નથી પ્રત્યુત અલૌકિક જ્ઞાપક શબ્દત્વેન. પૂર્વમીમાંસામાં ઔત્પત્તિક સૂત્રમાં તર્કવાદના આરંભમાં જ તેનો નિર્ણય કરેલો છે. આ પૂર્વમીમાંસોક્ત નિર્ણય અને તત્રત્ય શબ્દસ્વામીના ભાષ્યનો આધાર લઈને શ્રીમત્પુરુષોત્તમચરણ વેદનું પ્રમાણ આપણાભક્ષ્યમાં સાધી આપે છે.

પ્રસ્થાનરત્નાકરમાં પણ -

તન્મૂર્દ્ધન્યો વેદ એવ હિ ॥

અર્થેન નિત્યસમ્બન્ધાત્તજ્ઞાનાવ્યભિચારતઃ ।

લોકાનધિગતાર્થસ્ય જ્ઞાપકત્વાન્ન લોકતઃ ॥

તદર્થાવગતેર્બાધસ્તેન મૂર્દ્ધન્યતાઽસ્ય વૈ ॥

ઈત્યાદિ કારિકા વડે વેદનું સર્વપ્રમાણ મૂર્દ્ધન્ય પ્રમાણ સ્વીકારે છે.

બાધયોગ્યવ્યતિરિક્ત જ્ઞાનને ઉત્પન્ન કરી શકે તેવું સત્ત્વ, યોગાદિથીયે હોઈ શકે, છતાં વેદનું જ સર્વપ્રમાણ મૂર્દ્ધન્ય પ્રમાણ સ્વીકારવામાં શો લાભ ? એમ શંકા કરીને યોગાદિ પણ વેદમૂલક હોવાથી તેમ બની શકે. જો વેદમૂલક ન હોય તો અપ્રમાણ ઠરે. વિદૂરકાષ્ઠાય મુહુઃ કુયોગિનામ્ ઇત્યાદિ ભાગવતીય વાક્યોમાં કુયોગિની નિન્દા શ્રવણ થાય છે. યોગીઓ-ઋષિઓને પણ પરસ્પર વિપ્રતિપત્તિ થતી દેખાય છે, આથી વેદ જ પ્રમાણ છે. વેદ આશોપદેશરૂપ છે. આમ એટલે ચથાસ્થિત અર્થ કહેનાર. તે આમ પણ લૌકિક અને અલૌકિક ભેદ બે પ્રકારનો છે. અલૌકિક આમ ઋષિઓથી આરંભીને ઇશ્વર પર્યન્ત છે. તેમના આત્મત્વમાં ઉત્તરોત્તર આધિક્ય હોવાથી પરમ આત્મત્વ ઇશ્વરમાં જ પર્યવસાન પામે છે. તે ઇશ્વરના ઉપદેશરૂપે વેદ અનપેક્ષ્ય પ્રમાણ છે. નિઃશ્વસિત હોવાથી ભગવદ્વૃત્ત છે. નિત્ય હોવાથી સર્વપ્રમાણ મૂર્દ્ધન્ય છે.

યદપિ મતાન્તરમાંયે આ પ્રકારે જ કે થોડા ફેરફાર સાથે વેદનું પ્રમાણ સર્વ મૂર્દ્ધન્ય છે, એમ સ્વીકારવામાં આવ્યું છે; તથાપિ કોઈના મતમાં અન્તતો ગત્વા વેદ પણ માયિક બની જાય છે, તો કોઈના મતમાં વેદમાં સવિશેષવિષયત્વ છે, કોઈના મતમાં અર્થવદાદિનું પ્રમાણ વિધેયના ઉપોદ્બલકત્વે છે, સ્વાર્થમાં પ્રમાણ નથી; જ્યારે શ્રીમદ્દાપ્તભુજ વેદના અક્ષરે અક્ષરનું પ્રમાણ સ્વીકારે છે. પછી કુમારિલભક્ષની દલીલો સૌથી ચઢીયાતી હોય, ઉદયન વેદને અનિત્ય માની પણ ઇશ્વરસિદ્ધિ કરી આપે અને વેદરક્ષાનું માન શંકરાચાર્યજી ખાટી જાય કે પૂર્વોત્તરમીમાંસાનું એક સાધવા માટે રામાનુજાચાર્યજી આકાશપાતાલ એક કરે વેદાઃ પ્રમાણમ્ એમ ડિમડિમ નાદ કરનાર અને તેનું અક્ષરશઃ પાલન કરનાર, જે ઘાતુ શબ્દો-નો ઉપદેશમાં જે રીતે ઉપયોગ થયો હોય તેવો જ અર્થ સ્વીકારનાર, જહત્સ્વાર્થ લક્ષણનો ત્યાગ કરનાર, અર્થવાદાદિ (આદિશબ્દથી મન્ત્ર નામયેય નિષેધ)નું ચે સ્વાર્થમાં પ્રમાણ સ્વીકારનાર, પૂર્વોત્તરકાલક પ્રતિપાદ્ય રસાત્મક આનન્દેકવિગ્રહ પૂર્ણપુરુષોત્તમ જ છે એમ સિદ્ધ કરી આપવું અને અસિદ્ધોત્તરદિ-

સાધ્યસાધન સમેત-ભગવદ્રૂપ છે એમ સિદ્ધ કરીને તાદશ કૃતિ કરી બતાવનાર, યૈદિક ધર્મોનું સ્વસમ્પ્રદાયમાં વાસ્તવિક સ્વરૂપજ્ઞાનપુરઃસર આધાવધિ અવિચ્છિન્ન પાલન ઇત્યાદિ કાર્યો શ્રીવલ્લભાચાર્યજીએ કર્યા છે; કોઈ ઇતરે કર્યા નથી. હવે પછી કરી શકશે તેમાં સન્દેહ છે.

પ્રકૃતમાં એ વેદનું નિરપેક્ષ પ્રામાણ્ય સ્વીકારીને, સન્દેહ નિવૃત્ત્યર્થ શ્રીકૃષ્ણવાક્યો (ગીતાજી કે જેમાં યૈદિક તત્ત્વોનું જ રહસ્ય સમજાવ્યું છે), વ્યાસસૂત્રો (જેમિની સૂત્રો પણ ઉભયમાં યૈદિક વાક્યોનો જ વિચાર છે.) અને શ્રીમદ્ ભાગવત (જે પ્રભુની રસાત્મકતા સિદ્ધ કરી આપે છે અને નિત્યલીલાનો બોધ કરાવે છે)નું પ્રામાણ્ય સ્વીકાર્યું છે. વાસ્તવિક રીતે તો વેદને જ અક્ષરશઃ પ્રમાણત્વે સ્વીકારવામાં આવ્યો છે. ગમે તેમ ઉચ્છૃંખલ વૃત્તિથી વેદના અર્થોનો વિપર્યય ન થાય. તદર્થ શંકાની નિવૃત્તિ અન્ય ત્રણ પરમ આસોપદેશરૂપ પ્રમાણોથી કરવી. અર્થાત્ જ અલૌકિકજ્ઞાપકપરમાસોપદેશ જ પ્રામાણ્યકક્ષામાં અધિરૂઢ થાય છે, પ્રત્યક્ષાદિમાં બાધપ્રસક્તિ થાય છે, આ વિષયોનો વિચાર તન્ત્રાન્તરમાં છે. અમે પણ પ્રામાણ્યવાદ શીર્ષક લેખમાં તદ્વિચારાર્થે પ્રયાસ આદર્યો છે.

સ્મૃતિઓ અને પુરાણોની પણ એકવાક્યતા ઉપરિતન પ્રમાણથી કરી શકાય છે. અર્થાત્ વેદાનુકૂલ સર્વ જ વાઙ્મય પ્રમાણ છે અને તદ્વિરુદ્ધ અપ્રમાણ છે. માત્ર વેદાનુકૂલ છે કે નહિ તેની પરીક્ષા ગીતા-વ્યાસસૂત્ર-ભાગવતથી કરી લેવી. મોહકશાસ્ત્રો ભગવન્માર્ગ સાધક નથી.

### પરિભાષા

વેદાન્તમાં બ્રહ્મ, સ્મૃતિઓમાં પરમાત્મા અને ભાગવતમાં ભગવાન્ શબ્દથી પરમત્વનો બોધ કરાવ્યો છે, તેથી શ્રીમદાચાર્યચરણ તે તે પ્રકારના ત્રિવિધ વિચારમાં બ્રહ્મ, પરમાત્મા અને ભગવાન્ શબ્દનો જ પ્રયોગ કરે છે.

દુર્ગા, ગણપતિ, શિવ ઇત્યાદિની ઉપાસનાના પ્રકારો પણ શાસ્ત્રોમાં મળે છે, તે સર્વ પ્રભુના જ જુદાં જુદાં રૂપો છે. મૂલરૂપ તો શ્રીકૃષ્ણ જ છે માટે શ્રીકૃષ્ણનું જ સેવન કરવું. જ્ઞાનમાં સાત્ત્વિકી મુક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે કે જીવન્મુક્તિ પણ પ્રાપ્ત થાય ? પરન્તુ જ્ઞાની હોવા છતાં જો શ્રીકૃષ્ણને ભજે તો તેથી અધિક પર કોઈ નથી.

### ત્રિવિધ નિષ્ઠા

જ્ઞાનનિષ્ઠા ત્યારે જાણવી કે જ્યારે સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત થાય, કર્મનિષ્ઠા ત્યારે સમજવી કે જ્યારે ચિત્તપ્રસાદ થાય અને ભક્તિનિષ્ઠા ત્યારે કહી શકાય કે જ્યારે

આનન્દેકવિગ્રહ શ્રીકૃષ્ણ પ્રસન્ન થાય. આ પ્રકારે શુદ્ધ બ્રહ્મવાદનું પ્રતિપાદન કરે તે જ બ્રહ્મવાદી કહેવાય. આ પ્રકારે શુદ્ધ યૈદિકમતને જાણ્યા વિના મતાન્તરમાં શુદ્ધ ભાગવતજનને મોહ ન થાય તદર્થ શ્રીમદ્ભાગવતજી નિબન્ધમાં સર્વ જ યૈદિક તત્ત્વોનું નિરૂપણ કરે છે. આ રીતે પચીશ શ્લોકમાં ઉપોદ્ઘાતરૂપે આપશ્યક વસ્તુનો વિચાર કરવામાં આવ્યો છે.

### જગત્નું સ્વરૂપ

જ્યાં સુધી જડ, જીવ અને અન્તર્યામીનો બોધ ન થાય ત્યાં સુધી રસાત્મક પ્રભુની અભિવ્યક્તિ થતી નથી. અતએવ પ્રસન્ન પ્રાપ્ત જગત્નું સ્વરૂપ છવીશમાં શ્લોકથી આરંભીને કરે છે. પ્રપંચ ભગવાનનું કાર્ય છે. તે પ્રાકૃત - પ્રકૃતિનું કાર્ય - નથી, પરમાણુ જન્ય નથી, વિવર્તાત્મા-મિથ્યા-નથી કે અદષ્ટાદિક્ષારા પણ ઉત્પન્ન થયો નથી; તે અસત્ની સત્તા નથી કિંતુ પ્રભુનું કાર્ય છે, પરમકાષ્ઠાપત્ર વસ્તુની કૃતિથી સાધ્ય છે. તેવો પ્રપંચ જ ભગવદ્રૂપ છે. તેમ ન હોય તો અસત્ની સત્તાનું પ્રતિપાદન થાય. પરન્તુ તેનું ખડન યૈનાશિકપ્રક્રિયાના પ્રકરણમાં આવી જાય છે. માયા પ્રભુની એક સર્વભવનરૂપા શક્તિ છે, તે પ્રભુમાં જ ૦ કરે છે. તે માયાવડે પ્રભુએ સ્વાત્મરૂપ પ્રપંચને પ્રકટ કર્યો છે. અત્ર પ્રપંચ શબ્દ ૦૦ દ્વાચક છે, સંસારવાચક નથી. પ્રભુની એક શક્તિ અવિદ્યા પણ છે. તે અવિદ્યાવડે જીવનો સંસાર કહેવાય છે. જીવને અહંતા મમતા બંધાય છે. તે જ સંસાર છે. સંસાર કહેવાય છે, તે ઉત્પન્ન થતો નથી. જીવને ગુહાં પ્રવિષ્ઠાવાત્માનૌ હિ તદર્શનાત્ (વ્યા. સૂ. ૧-૨-૧૧) ઇત્યાદિન્યાયે ભગવદિચ્છયા ભગવદ્ગુણોનો તિરોભાવ થતાં અવિદ્યાસમ્બન્ધ થાય છે. તેથી તેને અહંમત્ત્વ બુદ્ધિ થતાં સંસાર કહેવાય છે. સંસાર અવિદ્યાના સમ્બન્ધને લીધે હોવાથી તે મિથ્યા છે; પણ પ્રપંચ તો ભગવત્કાર્ય હોવાથી - અરે, માયાશક્તિ વડે ભગવાન્ જ પ્રપંચરૂપ થયેલા હોવાથી તે સત્ય જ છે. સ વૈ નૈવ રમે ઇત્યાદિ વાક્યો પ્રપંચનાનો વિસ્તારનું કે આવિર્ભાવનું કારણ સૂચવે છે. મુકતાવસ્થામાં સંસારનો લય થાય છે, પણ પ્રપંચ લય થતો નથી. શ્રીકૃષ્ણની આત્મરતિને વિષે લય થતો હોવાથી, તે લય સર્વસુખાવહ છે.)

### જીવનું સ્વરૂપ

શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણના ત્રીસમા અને એકત્રીશમાં શ્લોકમાં જીવનું સ્વરૂપ દર્શાવ્યું છે. વહુ સ્યાં પ્રજાયેય ઇત્યાદિ શ્રુતિસિદ્ધ ભગવદિચ્છાથી અગ્નિમાંથી જેમ

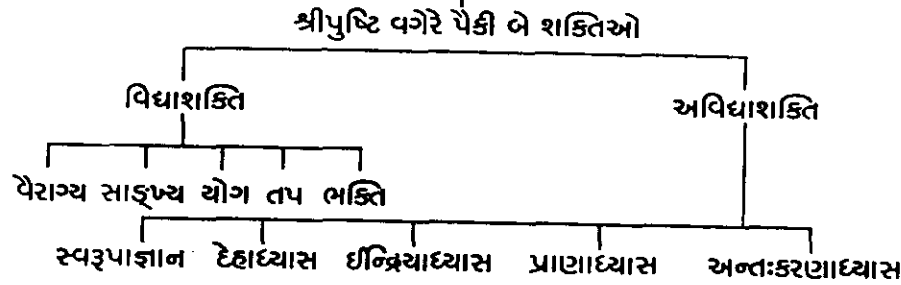
વિસ્ફુર્લિંગ - તણાખાં-પ્રકટ થાય, તેમ આકાશવદ્ વ્યાપક અને માયાંશવેષ્ટિત બ્રહ્મ સર્વતઃ શ્રીહસ્ત, ચરણારવિન્દ, શ્રીમસ્તક અને નેત્રચુક્ત હોવા છતાં, એ અનન્તમૂર્તિ બ્રહ્મ અવિભક્ત સ્વરૂપને પણ ઈચ્છાશક્તિથી વિભક્તિમત્ બનાવીને અંશરૂપે જીવોને પ્રકટ કરે છે. સૃષ્ટિની આદિમાં સર્વ જીવો વિસ્ફુર્લિંગન્યાયે જ પ્રકટ થયા છે. તેમાં કારણત્વે બ્રહ્મની ઈચ્છા જ છે.

(પ્રભુના ચિદંશથી જીવ પ્રકટ થયા, સદંશથી જડ અને આનન્દાંશથી અન્તર્યામી, આ રીતે સત્, ચિત્ અને આનન્દાંશથી જડ, જીવ અને અન્તર્યામીના પ્રાકટ્યનો ક્રમ જણાવ્યો છે.)

### વિદ્યા અને અવિદ્યા

વિદ્યા અને અવિદ્યા એ બંને પ્રભુની શક્તિઓ જ છે, એ બંને માયાને સ્વાધીન છે. તેથી જ વિદ્યા અને અવિદ્યા એ બંને જીવમાં જ હોય છે. કારણ કે જીવને જ દુઃખિત્વ અને અનીશિતા છે. અવિદ્યાવડે જીવ બદ્ધ થાય છે અને સંસારને પ્રાપ્ત થાય છે, જ્યારે વિદ્યાથી ભગવત્સાક્ષાત્કાર થતાં પ્રભુમાં પ્રવેશ થાય છે. વિદ્યા અને અવિદ્યાના ભેદ નીચે મુજબ પાડી શકાય.

### શ્રીકૃષ્ણ



અવિદ્યા અને વિદ્યાનું સ્વરૂપ જાણ્યું હોય તો અવિદ્યાનો વિદ્યાવડે નાશ કરી શકાય. વિદ્યા વડે અવિદ્યાનો નાશ થતાં જીવનુક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે. દેહેન્દ્રિય પ્રાણાન્તઃકરણનો અધ્યાસ નિવૃત્ત થતાં સ્વસ્વરૂપનું જ્ઞાન માત્ર થાય છે, નહિ કે દેહેન્દ્રિયાદિકનો લય. જ્યારે આસન્ન્ય પ્રાણની ઉપાસના કરવામાં આવે કે ભગવત્સેવામાં થાય ત્યારે તે તે ઈન્દ્રિયોની દેવતારૂપ તે તે ઈન્દ્રિયો થઈ જાય છે. અને પોતાને પણ બ્રહ્મભાવ થતાં લય થાય છે. જ્યારે આનન્દાંશનો પ્રકાશ થાય

ત્યારે બ્રહ્મભાવ પ્રાપ્ત થાય છે. એવા ભક્તને સાયુજ્ય થાય- અલક, કોસ્તુભાદિ રૂપે સ્થિતિ થાય, અથવા અક્ષરસાયુજ્ય પણ થાય. આનન્દાંશના પ્રકાશમાં હરિસેવા જ સાધન છે. (જો પ્રભુને બ્રહ્મભાવ કે સાયુજ્યના દાનની ઈચ્છા હોય તો જ આપે. અન્યથા જીવ સંઘાતમાં ગમન કરે.)

આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે જડ જીવાત્મક સૃષ્ટિ પ્રભુ પોતે જ ઉત્પન્ન કરે છે. તે જ આ સૃષ્ટિનું અભિન્નનિમિત્તોપાદાનકારણ છે.

### પ્રકારાન્તરે સૃષ્ટિક્રમ

યદ્યપિ નિરુપાધિક પરબ્રહ્મ જ સર્વનું એકમાત્ર કારણ છે તથાપિ સાક્ષાત્ પરમ્પરાદિભેદે પ્રકારાન્તરે પણ સૃષ્ટિક્રમ છે જ. (૧) કદાચિત્ સાક્ષાત્ પ્રભુ સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરે, (૨) કદાચિત્ પુરુષદ્વારા સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરે, (૩) કોઈક વેળા આત્માથી આકાશાદિકમે સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરે, (૪) કોઈક વેળા પ્રભુ પોતે જ સર્વ સૃષ્ટિરૂપે પ્રકટ થાય, અને (૫) કોઈકવાર ઈન્દ્રજાલની પેઠે સર્વ માયાથી પણ સર્જે. પ્રભુ અચિન્ત્ય અને અનન્તશક્તિ ધરાવે છે, તે ગમે તે પ્રકારે સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરે તો પણ સર્વ જ પ્રકારો ઉત્પન્ન થાય અને આથી જ સૃષ્ટિના શ્રુતિઓમાં અનેક પ્રકારો વર્ણવ્યા છે. એ તો પ્રભુનું જ માહાત્મ્ય છે. તે માહાત્મ્યનું શ્રુતિઓ યથાકથંચિત્ તેમનાથી જેમ બન્યું તેમ વર્ણવ્યું, વસ્તુતઃ તેથીયે અધિક માહાત્મ્ય પ્રભુમાં હોઈ શકે. પ્રભુનું ભજન સિદ્ધ થાય તે માટે તત્ત્વમસિ ઈત્યાદિ વાક્યો પણ પ્રવૃત્ત થાય છે.

### ભક્તિનું સ્વરૂપલક્ષણ

આથી જ (પંચરાત્રાદિમાં “માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વક સુદઢ અને સર્વથી અધિક પ્રભુમાં સ્નેહ હોય તે જ ભક્તિ કહેવાય અને તેથી જ (ભક્તિથી જ) મુક્તિ છે. બીજી રીતે નથી એમ વર્ણવ્યું છે.) કેવલેન હિ ભાવેન ગોપ્યો ગાવઃ યગ્ના મૃગાઃ ઈત્યાદિ શ્રીમદ્ભાગવતોક્ત વાક્યમાં “ભાવ” શબ્દનો અર્થ ભક્તિ જ થાય છે. ભાવ એટલે દેવાદિ. વિષયિણી રતિ. રતિ શબ્દનો અર્થ છે સ્નેહ અને આથી જ સા પરાનુરક્તિરીક્ષરે ઈત્યાદિ શાસ્ત્રોમાં શાણ્ડિત્યાદિ મહર્ષિઓ પ્રભુમાં નિરતિશય સ્નેહને જ “ભક્તિ” એ નામથી ઓળખાવે છે. સ્નેહ માહાત્મ્યજ્ઞાનવિના સમ્ભવતો નથી. માહાત્મ્ય એટલે મહિમા કે મોટાપણું લેવું કેવલ લોકમાં પ્રચલિત અર્થ જ લેવામાં આવે અને તેનો ઉડો વિચાર જો ન થાય તો સોપધિપ્રેમ પણ ભક્તિશેષ્ઠથી ઓળખાશે. વાસ્તવિક રીતે તો નિરુપાધિ સ્નેહ જ ભક્તિ છે. “માહાત્મ્યજ્ઞાન” શબ્દનો ઉડો

વિચાર કરતાં એમ ફલિત થાય છે, કે મહાન્=આત્મા, તેનો જ ભાવ=એતદાત્મ્યમિદં ઇત્યાદિ શ્રુતિસિદ્ધ તાદાત્મ્યપ્રકાર તે માહાત્મ્ય, તેનું જ્ઞાન તે માહાત્મ્યજ્ઞાન, તત્ત્વપૂર્વક જે સ્નેહ તે ભક્તિ. આ પ્રકારે વિચાર કરતાં નિરુપાધિ પ્રેમ જ ફલિત થાય છે. અત્ર આ વિષય ઉપર વિસ્તાર કરવો એ પ્રસંગને અનુકૂલ નથી. જિજ્ઞાસુઓએ હરિચયગ્રંથ દ્વારા ઇત્યાદિ ગ્રંથોમાંથી જોઈ લેવો. પ્રસંગાનુસાર અમે પણ કોઈવાર વિજ્ઞા યેષ્ણવો સમક્ષ અમારા વિચારો રજુ કરીશું.

માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વસ્તુ ઇત્યાદિ કારિકાનો ઉપસેપ કરીને શ્રીમદાચાર્યચરણે તત્ત્વદીપ નિબંધમાં એમ નિર્ણય કરી આપ્યો છે કે કાર્યાદિનિરૂપક અને આત્મનિરૂપક એમ સર્વ જ પ્રકારની શ્રુતિઓનું તાત્પર્ય ભક્તિમાં જ છે.

### સર્વ શ્રુતિઓની એકવાક્યતા

માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વસ્તુ પર્યંતની પિસ્તાળીશ કારિકાઓનો વિચાર કરતાં કેટલીક શ્રુતિઓની એકવાક્યતા સાધી શકાય તેમ છે. પરંતુ ઉપાસ્ય નિરૂપિકા શ્રુતિઓનું તાત્પર્ય ભક્તિમાં ન હોવાથી સર્વશ્રુતિઓની એકવાક્યતા સાધી શકાય તેમ નથી, એ શંકાનો ઉદય ન થાય તે માટે પ્રભુના પૃથક્ પૃથક્ સ્વરૂપોનો સંગ્રહ કરતા બે શ્લોકો શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં જ ઉપલબ્ધ થાય છે, તે નીચે મુજબ છે-

પદ્માત્મકઃ સ ભગવાન્ દ્વિષડાત્મકોઽભૂત્પદ્મદ્વયીશતસહસ્રપરામિતશ્ચ ।

एकः समोऽप्यखिलदोषसमुज्जितोऽपि सर्वत्र पूर्णगुणकोऽपि बहुषमोऽभूत् ॥૪૩॥

નિર્દોષપૂર્ણગુણવિગ્રહ આત્મતન્ત્રો નિશ્ચેતનાત્મકશરીરગુણૈશ્ચ હીનઃ ।

आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा ॥૪૪॥

(પ્રભુ એક, સમ, અખિલ દોષરહિત અને સર્વત્ર જ પૂર્ણ ગુણવાળાહોવા છતાં પણ શ્રુતિમાં પચ્ચાત્મક, દ્વાદશાત્મક, દશાત્મક અને અસંખ્ય રૂપવાળા છે એમ વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. તેમને અનેક ઉપમાઓ આપવામાં આવેલી હોવાથી તેવા પણ થયા - (થાય છે કે હોઈ શકે). પ્રભુ, નિર્દોષ એવા સમ્પૂર્ણ ગુણો જેમાં વિદ્યમાન છે એવું શરીર ધારણ કરનાર છે, સ્વતન્ત્ર છે, અચેતનશરીર અને તેના ગુણોથી રહિત છે (અર્થાત્ અલોકિક આનન્દમય શ્રીઅંગવાળા છે), આનન્દમાત્ર કરપાદમુખોદરાદિ છે અને સર્વત્ર જ જડ, જીવ અને અન્તર્યામી એવા ભેદથી પણ રહિત છે - કારણ કે તે સર્વનું જ કારણ પ્રભુ પોતે જ છે.)

આ સંગ્રહ વાક્યો ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે પ્રભુ આવા બીજા શ્લોકમાં કહેલા અલોકિક આકારવાળા હોવાથી સર્વ જ આકારનિરૂપિકા શ્રુતિઓ આ પ્રકારના જ આકારનું નિરૂપણ કરે છે. આ રીતે સર્વશ્રુતિઓની એકવાક્યતા થઈ શકે તેમ છે.

શ્રુતિઓમાં જણાવેલા પ્રભુના આકાર અને તે સર્વની એકવાક્યતા જો કે શ્રીમદ્દુભાષ્ય અને સુબોધિન્યાદિના અભ્યાસીને અજ્ઞાત નથી. તથાપિ સર્વસામાન્યને તેનું જ્ઞાન સુગમ થાય તદર્થ નીચેનું કોષ્ટક મૂક્યું છે. તે ઉપરથી શ્રુતિઓની એકવાક્યતા સમજી શકાશે.

પચ્ચાત્મકત્વ	૧ (૧) અગ્નિહોત્ર, (૨) દર્શ, પૂર્ણમાસ, (૩) ચાતુર્માસ્ય, (૪) પશુ અને (૫) સોમ	એક પ્રકાર
	૨ (૧) દેશ, (૨) કાલ, (૩) દ્રવ્ય, (૪) કર્તૃ અને (૫) મન્ત્રાત્મક.	સાધનત્વે દ્વિતીય પ્રકાર
	૩ (૧) ઋક્, (૨) યજુષ્, (૩) સામ, (૪) બ્રાહ્મણ અને (૫) ઉપનિષદરૂપે.	વેદત્વે તૃતીય પ્રકાર
	૪ (૧) પ્રાણ, (૨) અપાન, (૩) વ્યાન, (૪) ઉદાન અને (૫) સમાન એમ પંચ પ્રાણાત્મકત્વે.	ઉપનિષદુક્ત પ્રકારે
	૫ (૧) પૃથ્વી, (૨) જલ, (૩) તેજ, (૪) વાયુ અને (૫) આકાશ એમ પંચમહાભૂતત્વે.	સૃષ્ટિપ્રકારના વાક્યોના બલથી
	૬ (૧) શબ્દ, (૨) સ્પર્શ, (૩) રૂપ, (૪) રસ અને (૫) ગન્ધ એમ પંચતન્માત્રાત્મકત્વે.	તૃતીયસ્કન્ધોક્ત પ્રકારે
	૭ (૧) ગાર્હપત્ય, (૨) દક્ષિણાગ્નિ, (૩) આહવનીય, (૪) રમાર્ત અને (૫) સભ્ય અગ્નિત્વે અથવા અથ હ્ય એતાનેવં પંચાગ્નીન્ વેદ ઇત્યાદિ શ્રુત્યુક્ત પ્રકારે.	પૂર્વકાણ્ડોક્ત પ્રકારે
	૮ દેહમાં (૧) ધ્યાનાર્થ પ્રાદેશમાત્ર, (૨) આત્મચાર્ય અંગુષ્ઠમાત્ર, (૩) કર્મફલનિયામકત્વે જીવના સ્વામીરૂપે, (૪) સુખ દાનાર્થે સર્વદેહસ્થિત આનન્દરૂપે અને (૫) ભુક્ષુદિસ્થ યૈશ્વાનર એમ પાંચ પ્રકારે.	ઉત્તર કાણ્ડોક્ત પ્રકારે
દ્વિષડાત્મકત્વ	૧ દ્વાદશ સૂર્યાત્મકત્વે, (૧) ઘાતા, (૨) વિપસ્વાન, (૩) અર્યમન, (૪) પૂષન, (૫) ત્વષ્ટ, (૬) સવિતૃ, (૭) ભગ, (૮) વિદ્યાતૃ, (૯) વરુણ, (૧૦) મિત્ર, (૧૧) યક અને (૧૨) ઉરુકમ.	ક્રમશઃ શ્રીમદ્ભાગવત દ્વિતીય સ્કન્ધોક્ત, કાઠકોક્ત, છાંદોગ્યોક્ત પ્રકારે, છાંદોગ્ય અને જાનાલોક્ત પ્રકારે



	૨ દ્વાદશમાસ (ચૈત્રાદિ માસ પ્રસિદ્ધ છે.) (૩) દ્વાદશાભિરૂપે (૪) અહીનાત્મક.	દ્વાદશાભિરૂપયિત્ પુરાણાદિમાં પ્રસિદ્ધ છે. અહીન- સોમયાત્રની આપૃત્તિરૂપ છે.
પંચદશી	૧ પૂર્વદિ દિગ્દાત્મ, ૨ જ્ઞાનકર્મેન્દ્રિયાત્મક, ૩ લીલાત્મક, ૪ અપતારાત્મક ઇત્યાદિ.	સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ છે.
શત-સહસ્ત્ર પરામિતત્વ	અમિતવિભૂતિરૂપત્વે એકત્વ, સમત્વ, અખિલદોષવિવર્જિતત્વ અને પૂર્ણગુણવિગ્રહત્વ.	

\* ઉપર જણાવેલા ત્રણ પ્રકારોમાં એકત્વ, સમત્વ, અખિલદોષવિવર્જિતત્વ અને સર્વત્ર પૂર્ણ ગુણ વિગ્રહત્વ એમ ચાર ભેદ મેળવીએ તો સમઘા રૂપ થાય.

ઉપરના કોષ્ટક મુજબ સમઘા ભગવત્સ્વરૂપનું જ વર્ણન છે. સર્વશ્રુતિઓનો સાર પ્રભુમાં હોવાથી એકવાક્યતા થઈ શકે છે.

### નિષ્કર્ષ

નિર્દોષ પૂર્ણગુણવિગ્રહ પ્રભુ છે, તે આત્મતન્ત્ર, સ્વતન્ત્ર છે, જડ શરીરથી હીન છે અને આનન્દમાત્ર કરપાદમુખોદરાદિ અલોકિક શ્રીઅંગવાળા છે. તેમ જ ત્રિવિધ ભેદ (જડ, જીવ અને અન્તર્યામી) થી પણ વિવર્જિત છે. આ રીતે ભગવત્સ્વરૂપનો નિર્ણય સંગ્રહસ્લોકથી કરીને સર્વ શાસ્ત્રોનો સમન્વય પ્રભુમાં કર્યો છે. એ પ્રકારના જ્ઞાનથી અવિધાની નિવૃત્તિ થતાં કેવલ્યની પ્રાપ્તિ થાય છે.

### પ્રેમભક્તિનું ફલ

બ્રહ્માનન્દે પ્રવિષ્ઠાનામ્ ઇત્યાદિ કારિકાથી પ્રારંભ કરીને પ્રેમાત્મિકા ભક્તિનું ફલ દર્શાવ્યું છે. જ્યારે ભાગવતશાસ્ત્રમાં વિશ્વાસ થાય ત્યારે તે પ્રકારની ભક્તિનું ફલ પ્રાપ્ત થાય જેનો બ્રહ્માનન્દમાં પ્રવેશ થયો હોય તેને સંઘાતના પરિત્યાગપૂર્વક બ્રહ્મમાં લય થતા સ્વરૂપાનન્દ કે સ્વરૂપ પડે આનન્દાનુભવ થાય. કિન્તુ બ્રજભક્તતુલ્ય મહાભાગવત્ ભક્તોને સર્વેન્દ્રિયો અને અન્તઃકરણદ્વારા પણ આનન્દાનુભવ થાય છે. આથી જ ભગવદ્ભક્તોને જીવન્મુક્તિની અપેક્ષાએ ગ્રહસ્થાશ્રમ જ વિશેષ ફલદાયક નિવડે છે. ભક્તિમાર્ગીય સાધન અને ફલ એ બન્ને ઉત્કૃષ્ટ હોવા છતાં તેમાં સર્વનો પ્રવેશ થતો નથી તેનું કારણ એ છે કે ભગવદ્દાસ્યવિરિક્ત શાસ્ત્રો જીવને મોહ પમાડનારા હોવાથી તેમના

અવલોકનથી જીવને મોહ ઉત્પન્ન થતાં બુદ્ધિમાં કલ્મશ - મલિનતા ઉત્પન્ન કરે છે.

### જીવત્સ્વરૂપનિર્ણય

જીવત્સ્વારાગ્રમાત્રઃ ઇત્યાદિ કારિકાથી આરંભીને ચિત્સ્વરૂપનો વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. કાંગરના અગ્રભાગ જેવડો જીવ છે, ગન્ધની પેઠે ચૈતન્ય પણ પ્રસરણશીલ હોવાથી તે શરીર વ્યાપી છે. જ્યારે ભગવદાવેશ થાય, ત્યારે વ્યાપકત્વાદિ ભગવદ્ભોનું પણ શ્રવણ થાય છે. આનન્દાંશની અભિવ્યક્તિ થતાં તેમાં કોટિબ્રહ્માણ્ડોની પ્રતીતિ પણ થાય છે. પ્રકાશક હોવાથી જ્યોતિઃપદનો પણ પ્રયોગ થયેલો દેખાય છે. તે કાંઈ પ્રાકૃત ઇન્દ્રિયોથી ગ્રાહ્ય નથી. યોગથી કે દિવ્ય-ભગવદ્ દષ્ટિથી તે પ્રકાશે છે. આ રીતે તેમાં આભાસ કે પ્રતિબિમ્બની કલ્પના કરી છે. શાંકરો જેમ મિથ્યાત્વ માટે આભાસ અને પ્રતિબિમ્બથી કલ્પના કરે છે તે પ્રકારની કલ્પના અયોગ્ય છે. (જુઓ આપરણભંગ) વાસ્તવિક પ્રતિબિમ્બત્વનો નિર્ણય આનન્દાંશતિરોધાનાત્ ઇત્યાદિ કારિકામાં છે. ત્યાં પરમતપરિહારપૂર્વક સંમ્પૂર્ણ વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. યુક્તિઓનો વિચાર જીવહાનિ ઇત્યાદિ કારિકામાં છે. તત્ત્વમસિ ઇત્યાદિ મહાવાક્યોનો વિચાર કરવા માટે તત્ત્વમસ્યાદિવાક્યસ્ય ઇત્યાદિ કારિકા પ્રવૃત્ત થાય છે. ત્યાં સંમ્પૂર્ણ યુક્તિઓના નિરસનપૂર્વક નિર્ણય કર્યો છે. ઉપક્રમ અને ઉપસંહારનો વિચાર કર્યા વિના કોઈપણ વાક્યનો તાત્પર્યાર્થ કળી શકાતો નથી. અતએવ આ કારિકામાં ઉપક્રમ અને ઉપસંહારની એકવાક્યતામાંનો પણ વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. અવિકૃત પરિણામવાદને અનુસરી જીવની અંશત્વે બ્રહ્મરૂપતા આ મહાવાક્યમાં છે એવો નિષ્કૃષ્ટાર્થ ઉપલબ્ધ થાય છે. આ ઉપદેશ વાક્ય છે. તત્ત્વમસિ વાક્યની પણ આવૃત્તિસ્સકૃદુપદેશાત્ ઇત્યાદિ વ્યાસસૂત્રાનુરોધે આપૃત્તિ હોવાથી ઐતદાત્મ્યમિદં સર્વમ્ આ શ્રુતિમાં ભાગત્યાગલક્ષણાની જરૂર પડતી નથી. કિન્તુ તદંશે બ્રહ્મરૂપતા સ્વીકારવી પડે છે. તેમ ચિદંશનો નિર્ણય કરવામાં પણ ભાગત્યાગલક્ષણાની જરૂર નથી. વળી અતત્ત્વમસિ એમ પદચ્છેદ કરવો પણ અયોગ્ય છે. કારણ કે તેવો પદચ્છેદ યૈદિક હોવાથી તેથી વિધાજનનની શક્તિનો લોપ થાય છે. બ્રહ્મ સર્વરૂપ હોવાથી જડજીવના પૃથક્કરણપૂર્વક સર્વની બ્રહ્મતાનું નિરૂપણ ત્યાં છે. અલોકિક વેદનું પ્રમેય પણ અલોકિક જ હોય, તેથી તેમાં લોકિક યુક્તિઓનો પ્રવેશ એ સર્વથા અયોગ્ય છે. અલોકિક પ્રમેયનો લાભ તો તપથી, યૈદિકમુક્તિથી કે પ્રભુકૃપાથી જ થાય. તેથી વિધાની પ્રાપ્તિ થતાં કોઈકવાર કાલવિશેષમાં જીવને યથાર્થજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે. કેં બ્રહ્મ ચં બ્રહ્મ ઇત્યાદિ વાક્યોનું

તાત્પર્ય આધુનિક જીવોને પ્રાપ્ત થતું નથી. સર્વજ્ઞત્વરૂપ લિંગ કે અલૌકિક તેજના ઉપદેશમાત્રથી બોધ થતો નથી, અને તેથી જ મુક્તિ પણ થતી નથી. અતએવ સ્વતન્ત્ર ભક્તિની પ્રાપ્તિ માટે કે સાયુજ્યાદિની પ્રાપ્તિ માટે ભજનની જ ખાસ આવશ્યકતા છે.

### બ્રહ્મસ્વરૂપનિર્ણય

સચ્ચિદાનન્દરૂપં તુ બ્રહ્મ વ્યાપકમવ્યયમ્ ઇત્યાદિ કારિકાથી પ્રારંભીને કર્તા સ્વતંત્ર એવ સ્યાત્સગુણત્વે વિરુદ્ધ્યતે સુધીની કારિકાઓથી જડ અને જીવના સ્વરૂપનો નિર્ણય કર્યા પછી ક્રમપ્રાપ્ત બ્રહ્મસ્વરૂપનો નિર્ણય કરવામાં આવ્યો છે. સચ્ચિદાનન્દસ્વરૂપ બ્રહ્મ છે, વ્યાપક છે, અવ્યય છે, સ્વતન્ત્ર છે, સર્વશક્તિ છે, સર્વજ્ઞ છે, પ્રાકૃતગુણવર્જિત છે, તેમાં જાતીય - વિજાતીય અને સ્વગત (જડ, જીવ અને અન્તર્યામી) ના દ્વૈતની પ્રસક્તિ નથી, ઇત્યાદિ અપરિમિત ગુણોથી યુક્ત છે, સૃષ્ટિ-સ્થિતિ-પ્રલયકર્તૃરૂપ ગુણથી પણ યુક્ત છે, સર્વાધાર છે, માયાને વશમાં રાખનાર છે, આનન્દાકાર છે, અક્ષરથી ઉત્તમ-પર છે, પ્રપંચમાં સર્વે પદાર્થોથી પણ વિલક્ષણ છે, જગત્નું સમવાયિ અને નિમિત્તકારણ પણ તે જ છે. પ્રપંચમાં રમણ કરે છે. નિજસ્વરૂપમાં રમણ કરતી વેળા પ્રપંચને સંકેલી લે છે, સર્વવિભક્તિ અને સર્વપ્રકારોનો અર્થ ભગવાન જ છે, પ્રકૃતિ, પુરુષ અને કાલરૂપ પણ તે જ છે. અન્તર્યામિ બ્રાહ્મણોક્ત સ્વરૂપ પણ તે જ છે, આ રીતે શ્રુતિમાં પ્રાપ્ત થતા સર્વ વાદોને અનવસર થાય છે તે સર્વની એકવાક્યતા થાય છે. અર્થાત્ જ સર્વવાદાનવસરરૂપ પણ પ્રભુ જ છે અને નાના વાદને અનુરોધિ પણ તે જ છે. અનન્તમૂર્તિ છે, કૂટસ્થ ચલ જ છે, સર્વવિરુદ્ધ ધર્માશ્રય છે, લૌકિક યુક્તિઓથી અગોચર છે. અવતારાદિરૂપે આવિર્ભાવથી અને અવતાર સમાસિરૂપ તિરોભાવથી સર્વને નટવત્ મોહ પમાડી શકે છે. ઇન્દ્રિયોના સામર્થ્યથી તે વશ છે પણ સ્વેચ્છાથી તે દૃશ્ય પણ છે જ. જ્યારે શુદ્ધસત્ત્વ આનન્દરૂપમાં ફલિત થાય છે નીલમેઘરૂપે પ્રકાશે છે. ચારે યુગોમાં જુદા જુદા રૂપે પ્રકટ થાય છે. કાલાદિ પણ તેમાં પ્રતિબિંબિત થાય છે અથવા મેઘાદિથી રહિત આકાશમાં નિલિમાની પ્રતીતિ થાય છે. રૂપ પદાર્થનું ગ્રહણ કરનાર ચક્ષુ આકાશમાં રૂપ ન હોવાથી દૂર જઈને ત્યાંથી પાછું ફરતાં નીલરૂપ જ જુએ છે, કિન્તુ ચક્ષુ તે પ્રકારના રૂપને સ્પર્શ કરતું નથી, તેમ બ્રહ્મ સ્વસ્વરૂપે જ છે (ચક્ષુ પણ સ્વકનીનિકાને જ આકાશમાંથી પરાવૃત્ત થતા જુએ છે.) પ્રભુ આત્મ રૂપે જ- સ્વસ્વરૂપે જ સૃષ્ટિને ઉત્પન્ન કરે છે તેથી

યેષમ્બ અને નેર્ઘૃણ્ય દોષ પણ લાગુ પડતો નથી. (યેષમ્બ એટલે વિષમતા અને નેર્ઘૃણ્ય એટલે નિર્દયતા). અથવા પ્રભુ કર્મસાપેક્ષ હોવાથી યેષમ્બ નેર્ઘૃણ્યદોષથી પ્રસક્તિ થતી નથી. એ પ્રભુ જ જગત્કર્તા છે, છતાં સગુણ નથી. જે ગુણાભિમાની દેવો છે તે તેના અંશો હોવાથી સગુણ છે. પ્રભુ સ્વતન્ત્ર કર્તા છે. જો તે સગુણ હોય - ગુણને સ્વાધીન રહેનાર હોય - તો તેની સ્વતન્ત્રતાનો વિરોધ થાય.

### પરમતનિરાકરણ

આ રીતે બ્રહ્મસ્વરૂપનો નિર્ણય કરીને કેચિદત્રાતિવિમલપ્રજ્ઞાઃ ઇત્યાદિ કારિકાથી આરંભીને પરમતની સમીક્ષા કરવામાં આવી છે. કેટલાક મહાબુદ્ધિમાનો (?) શ્રુતિઓના ખરા અર્થનો બાધ કરીને પરબ્રહ્મ જગતનું કારણ નથી એમ પ્રતિપાદન કરે છે. જે અનાદિ અવિદ્યાથી બદ્ધ થયેલું બ્રહ્મ છે તે જ જગતનું કારણ છે. ચૈતન્યમાત્રનિષ્કાવિદ્યાથી જીવ પોતાને સંસારી માને છે. આ પ્રકારના વાક્યો બોલીને પ્રતારણા કરનારાઓની તો શ્રુતિને જ શરણ માનનારા યેદિકોએ ઉપેક્ષા જ કરવી. કારણ કે જ્યાં શ્રુતિ અને સ્મૃતિનો વિરોધ હોય, તે મત યેદિકોને અગ્રાહ્ય છે. કલિયુગમાં તેનો મુખ્યત્વે આદર કરનારાઓને ખાસ કરીને તમસ્ જ ફલ છે.

જો એમ કહેવાતું હોય, કે જ્ઞાનથી અજ્ઞાનનો નાશ કરવા માટે એ લોકો આમ જગત્કારણતાનો નિષેધ કરી તે અનાદિ અવિદ્યા માને છે, તો તે પણ યોગ્ય નથી. કારણ કે જો વિદ્યા અને અવિદ્યાના સ્વરૂપનું જ જ્ઞાન થાય તો પણ અવિદ્યાની નિવૃત્તિ થઈ જાય છે. તે માટે જગત્ને અસત્ય ઠોકી બેસાડવાની જરૂર રહેતી નથી.

પુરાણોમાં જ્યાં જ્યાં જગત્ને માથિક કહેવામાં આવે છે, તે એન્દ્રજાલિકપક્ષનું નિરૂપણ કરવા માટે મતાન્તરનો જ ઉપન્યાસ છે. શ્રુતિમાં તો તેની વાત સરખી નથી. વાચારમ્ભણં વિકારો નામધેયં મૃત્તિકેત્યેવ સત્યમ્ ઇત્યાદિ શ્રુતિઓ અને તદન્યત્વમારમ્ભણશબ્દાદિભ્યઃ ઇત્યાદિ સૂત્રોનો અર્થ મિથ્યા કરી શકાય નહિ. કારણ કે જગત્ને અસત્ય કહેનારાઓની અપેક્ષાએ વ્યાસ અને શ્રુતિવાક્યોનું ગૌરવ વિશેષ છે.

જો એમ કલ્પના કરવામાં આવે કે જ્ઞાન કરાવવા માટે સત્યત્વ પ્રતિપાદન સૃષ્ટ્યાદિકારિણી શ્રુતિ અર્થવાદ છે, તો એ યુક્તિ પણ અયુક્ત છે. કારણ કે જેમ પૂર્વકાણ્ડમાં વિધિવાક્ય અને અર્થવાદવાક્યની એકવાક્યતા થઈ શકે છે, તેમ સૃષ્ટ્યાદિવાક્યોની સાથે મહાવાક્યોની એકવાક્યતા થઈ શકે તેમ નથી. વેદાન્તમાં માહાત્મ્યજ્ઞાનનો ઉપયોગ છે, નહિ કે વિધિનો. તેથી વેદાન્તમાં પૂર્વકાણ્ડની પેઠે

વિધિકલ્પના જ અશક્ય થતાં અર્થવાદની કલ્પના પણ અશક્ય થઈ જાય છે.

એકવાક્યતા માટે અધ્યારોપાપવાદથી પણ કામ ચાલે તેમ નથી. કારણ કે શાખાબતાવ્યા પછી ચન્દ્રનું દર્શન થતાં જેમ શાખા છુટી જાય છે, તેમ બ્રહ્મજ્ઞાન થતાં કાંઈ સૃષ્ટિ છુટી જતી નથી. તેમ દષ્ટાન્ત યેષમ્ય પણ પ્રાપ્ત જ છે. કારણ કે જગત્નો અનુવાદ કરી કાર્યત્વની સિદ્ધિ કરે છે અને પછી જો કાર્યત્વનો જ નિષેધ કરે તો કાર્યતો વિધમાન જ રહે છે અને કોઈ અન્ય તેનો કર્તા ન હોવાથી શ્રુતિ બાધિતવિષય થાય. અને પ્રતારણાપત્તિ પણ પ્રાપ્ત થાય. જો એમ કહેવાય કે વેદ પણ સંસારમધ્યપાતી હોવાથી ભ્રાન્તિકલ્પિત છે. તો એતો મહા સાહસ જ કહેવાય. અને તેમ થતાં પારમ્પર્ય અનુપપન્ન થાય અને વૈધર્મ્યાદિ નસ્વપ્નાદિવૈત્ ઇત્યાદિ સૂત્રનો બાધ પ્રાપ્ત થાય. જો એમ કહેવામાં આવે કે એન્દ્રજાલિકપક્ષમાં આશ્રય લઈને અમે તેમ કહીએ છીએ તો તે પણ અનુપપન્ન છે. કારણ કે ત્યાંએ નઠ્ઠાં કર્તૃત્વ તો વિધમાન જ છે. દર્શનન્યાય શ્રુતિથી જગત્ મિથ્યા નથી એમ સિદ્ધ જ છે.

વળી માયાવાદનો આશ્રય લેવાથી જ્યારે સર્વ જ મિથ્યા છે, તો મુક્તિનો ચે નાશ થશે. જેમ સ્વપ્નદષ્ટ ગજ મિથ્યા હોવાથી સ્વપ્નમાં મેળવેલો ગજ સ્વપ્ન નષ્ટ થતા નષ્ટ થાય છે, તેમ મિથ્યા જગત્માં સ્થિતિ કરીને મેળવેલી મુક્તિ પણ મિથ્યા ઠરે. માયાદિનું કર્તૃત્વ શ્રુતિ અને સૂત્રથી પણ વિરુદ્ધ જ છે.

જ્યાં જ્યાં અકર્તૃત્વનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, ત્યાં મહાત્મ્યજ્ઞાન કરાવવા માટે જ તેમ કહ્યું છે, અને પ્રભુ વિરુદ્ધ ધર્માશ્રય છે, એમ સિદ્ધ કરી આપવા માટે કહ્યું છે. આથી જો આપણે ચુક્તિવડે બંને પક્ષોમાંથી એકનોયે બાધ કરીએ તો તેમ કરવું યોગ્ય તો ન જ કહેવાય.

પુરાણોમાં માયિકત્વનું વર્ણન છે, તેનું તાત્પર્ય યેરાગ્ય માટે છે. આ ઉપરથી એમ સાબિત થાય છે કે જગત્ને અવિધમાત્ર કહેવાનું પ્રયોજન દેવેતર સૃષ્ટિને મોહન જ છે. ગીતાગ્રંથમાં પણ અસત્યમપ્રતિષ્ઠં તે ઇત્યાદિ વાક્યોમાં તે કાર્યદેવેતર સમ્પત્તિવાળા જીવોનું જ છે એમ સ્પષ્ટ જણાવ્યું છે.

જ્યારે અખણ્ડ-અક્ષેતનું ભાન થાય ત્યારે સર્વ જગત્ બ્રહ્માકારત્વે જ દેખાય છે. જ્ઞાનથી વિકલ્પબુદ્ધિનો બાધ થાય છે નહિ કે વસ્તુસ્વરૂપનો. બ્રહ્મ જ જગતનું ઉપાદાન કારણ હોવાથી જગત્ બ્રહ્મથી ભિન્ન છે એમ કહેવું પણ અયુક્ત જ છે. તેમ કરવા જતાં વાચારમ્ભણં ઇત્યાદિ શ્રુતિનો બાધ થશે. જ્યારે જગત્ વાચારમ્ભણમાત્ર જ છે તો પછી વાદ કોની જોડે કરવાનો હોય ?

સાદ્બ્ય શાસ્ત્રના અનેક પ્રકાર છે. તેમાં સત્પુરુષોને તો તે જ સાદ્બ્ય પ્રમાણ છે કે જેમાં અઙ્કાવીશ તત્ત્વોનું સ્વરૂપ પ્રભુ જ છે.

સ્વભાવવાદ, પ્રકૃતિવાદ, પરમાણુવાદ વગેરે અન્ય સર્વ વાદોનું નિરાકરણ વ્યાસ સૂત્રોમાં છે જ.

ચિત્ત-વૃત્તિ-નિરોધરૂપ યોગની ભગવાનનું ધ્યાન કરવા માટે જરૂર હોવાથી અઙ્ગત્વે તે આવશ્યક છે અને તે પ્રામાણિક પણ છે. પરંતુ જે સ્વતન્ત્રતા ફલસાદક યોગ છે એમ માનનારા છે, તે સિદ્ધિ અને જ્ઞાનમાં હેતુરૂપ યોગનું નિરૂપણ કરતા હોવાથી અને અન્ય ઈન્દ્રિયાદિનું સાધન કરતા હોવાથી તેવા સર્વ જ મતો અપ્રામાણિક છે. તેનું નિરાકરણ પણ વ્યાસ સૂત્રોમાં છે જ.

### નિષ્કૃષ્ટાર્થ અને શાસ્ત્રાર્થોપસંહાર

(૧) યેરાગ્ય, (૨) જ્ઞાન, (૩) યોગ (૪) પ્રેમ (૫) તપ ઇત્યાદિ ગમે તે પ્રકારના કોઈપણ એક જ સાધનથી પ્રભુને ભજે તો સિદ્ધિ-મોક્ષની પ્રાપ્તિ-થાય. જ્ઞાનમાર્ગમાં જગતના લયના ઘણા પ્રકારો જણાવ્યા છે. તે સર્વ જ કોઈ પણ પ્રકરણને અનુસરનારા ન હોવાથી મનઃશુદ્ધિ માટે જ છે એમ સમજવું. ઉત્પત્તિપ્રકારે લયનો પ્રકાર સાદ્બ્યમાં આવ્યો છે. ઇન્દ્રિયોનો તે તે દેવતામાં લયપ્રકાર દેવતાત્વભાવના માટે છે. આ પ્રકારનો દેવતાત્વનો આધાયક હોવાથી ખરી રીતે તો પ્રભુની સેવામાં રૂપાન્તરનો આપાદક પ્રાપ્ત જ છે. એ લય પણ ઉત્પત્તિ જ છે.

જ્યારે દૃઢ - અક્ષેતજ્ઞાન થાય ત્યારે યેરાગ્ય પ્રાપ્ત થતાં ગૃહાદિની આસક્તિ છૂટી જાય છે- સંસાર નિવૃત્તિ થાય છે. અને તેથી જ વાગાદિનો મન વગેરેમાં લય જણાવ્યો છે. ભાવના માત્રથી લયપ્રકારો ભાવ્ય છે, સ્વરૂપતઃ (સર્વાત્મનો) લય થતો નથી. યેરાગ્ય માટે જ ક્વચિત્ જગતને પણ મનોમાત્ર કહે છે.

મતાન્તરમાં પ્રવેશેલા પુરુષો પણ ભક્તિમાર્ગને અનુસરીને પ્રભુનું ભજન કરે છે, અને ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે જાણે છે ત્યારે જ મોક્ષ મળે છે. ભક્તિમાર્ગથી વિરુદ્ધાચરણ કરે તો ઐકાન્તિક ફલની પ્રાપ્તિ કદી પણ થતી નથી.

આ રીતે સર્વ પ્રકારનો નિશ્ચય કરીને, સર્વ પદાર્થો પ્રભુની પાસેથી જ ઉત્પન્ન થાય છે અને પ્રભુ જ સર્વમય છે, એમ ગોણમુખ્યજ્ઞાનયુક્ત જીવ સ્નેહવડે શ્રવણાદિ પ્રકારે પ્રભુને ભજે, એ જ ઉત્તમ ભક્તિમાર્ગ છે. શાસ્ત્રાર્થનું જ્ઞાન ન હોય અને પ્રેમયુક્ત થઈને પ્રભુને ભજે તે મધ્યમાધિકારી કહેવાય. અથવા શાસ્ત્રાર્થનું જ્ઞાન હોય પણ પ્રેમ ન હોય છતાં ભજન કરે તો પણ તે મધ્યમાધિકારી કહેવાય. અથવા

એવો અધિકારી હીનાધિકારી પણ હોય. પરંતુ જ્યારે જ્ઞાન અને પ્રેમ એ ઉભયનો અભાવ હોય, ત્યારે આચરેલા શ્રવણાદિક પાપનાશક હોવાથી ધર્મરૂપ થાય છે. જો તપ અને યેરાગ્યથી યુક્ત શ્રવણાદિક હોય તો જન્માન્તરમાં “बहूनां जन्मनामन्ते” ઇત્યાદિ ગીતોક્ત પ્રકારે તેને જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતાં તે જ્ઞાન ફલરૂપ પણ નિવડે છે. યોગસહિત જો ભજન કરાય તો તેથી પ્રેમની પ્રાપ્તિ થતાં તે જીવ પ્રભુની સ્તુતિ કરી ઘન્ય થાય. આવા ભક્તોને પ્રમેયબલથી પ્રભુ કૃપા કરીને સિદ્ધિ (મોક્ષ)નું દાન કરે તો પણ શક્ય છે. કિન્તુ પ્રમેય બલવિના તેમને સિદ્ધિ નથી એ તો નિર્વિવાદ છે.

આ રીતે શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં સર્વ પ્રમાણવાક્યોની એકવાક્યતા સિદ્ધ થાય છે. જેમણે આ રીતે એકવાક્યતા સાધી નથી તેમને વિષે વાક્યાભાસવા માત્ર છે. આ પ્રકારની એકવાક્યતા સંપૂર્ણ વેદ, રામાયણ સહિત મહાભારત અને પંચરાત્રો તથા અન્ય પણ શાસ્ત્રવચનો અને તત્ત્વસૂત્રો વડે નિર્ણય કરીને કરાઈ છે. આ સિદ્ધાન્તનિર્ણય સહદય (દયાલુ) હરિએ જ કર્યો છે. તે પણ કાદાચિત્ક નથી, કિન્તુ સર્વદા એ જ નિર્ણય છે. રામાયણાદિનું બહુત્વ પ્રતિકલ્પમાં એ જ નિર્ણય છે એમ જણાવે છે.

શ્રીમદ્વેદાનર શ્રીમહાપ્રભુજીએ એ રીતે લગભગ એકસોને ચાર કારિકાઓ વડે સંપૂર્ણ ગીતાનો-શાસ્ત્રનો સાર પ્રથમ શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં નિરૂપ્યો છે.

### શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણનો નિષ્કર્ષ

શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં એકસો ચાર કારિકાઓ છે. પ્રથમ પાંચ શ્લોકમાં મહાચરણપૂર્વક અનુબન્ધ ચતુષ્ટય છે. છઠ્ઠી કારિકાથી આરંભીને ચોદમી કારિકા સુધી પરિભાષાપૂર્વક પ્રમાણાદિનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. પંદરમીથી બાવીશમી કારિકા સુધી મોહકશાસ્ત્રોનો નિરાસ કરીને સ્વપ્રવૃત્તિનું સમર્થન કર્યું છે. ત્રેવીશમીથી બેતાલીશમી કારિકા સુધી જડસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરીને સૃષ્ટિનું નિરૂપણ કર્યું. તે પછીની બે કારિકાઓમાં શ્રુતિઓની એકવાક્યતાનું સાધન કર્યું. પીસતાલીશમી કારિકાથી આરંભીને બાવનમી કારિકા સુધી ભક્તિનું સમર્થન કરવામાં આવ્યું. ત્રેપનથી ચોસઠ સુધી જીવસ્વરૂપનો નિર્ણય છે. પાંસઠથી સિત્તોતેર સુધી બ્રહ્મસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કર્યું. અઢોતેરથી ચોરાણું સુધી અસન્મતનો (મતાન્તરનો) નિરાસ કરીને પંચાણ્ડી એકસોત્રણ સુધી સાંખ્યયોગાદિના સાધનોનું પ્રતિપાદન કર્યું અને છેલ્લા શ્લોકથી સર્વ શાસ્ત્રોને અનુકૂલ આ શાસ્ત્રાર્થ છે એમ જણાવી ઉપસંહાર કર્યો.

દેવી જીવોના ઉદ્ધાર માટે પ્રકટ થયેલા શ્રી મહાપ્રભુજીએ નિબન્ધ શા માટે રચ્યો ? અને તેમાં શુ પ્રતિપાદન કર્યું, તે જાણવા માટે આપણે તેમના મૂલ ગ્રન્થમાં જ પ્રવેશ કરવો રહ્યો. તે વિના તત્ત્વપ્રતિપાદનવસ્તુનું વાસ્તવિક જ્ઞાન થઈ શકે નહિ, તદર્થ અમે અહીં “તત્ત્વાર્થ દીપ નિબન્ધ” નો પ્રકાશને અનુસરીને અનુવાદ પણ રજુ કરીએ છીએ. જ્યાં આવશ્યક લાગ્યું, ત્યાં આવરણ ભડ્ગ અને બીજી ટીકાઓનો આશય લઈને તેમ જ પૂર્વપક્ષોમાં ઈતર શાસ્ત્રનાં તત્ત્વોને સમજાવવા માટે તે તે શાસ્ત્રોના મૌલિક ગ્રન્થોનો પણ આશય મૂકી વિસ્તાર કર્યો છે. મૂલકારિકા, પ્રકાશ, આવરણભડ્ગ, અન્ય ટીકાઓ અને તન્ત્રાન્તરીય વિષયો સ્પષ્ટપણે પૃથક્ત્વે કળી શકાય તેવી પદ્ધતિ સ્વીકારી છે.

રસાત્મક પરમકાષ્ઠાપત્ર આનન્દેકસ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સર્વોદ્ધારપ્રયત્ન - આત્મા છે. જે વ્યાપારથી, જે ક્રિયાથી સર્વનો ઉદ્ધાર થાય એવા સર્વવ્યાપક શ્રીકૃષ્ણ પુરુષોત્તમ સદાનન્દરૂપે પ્રકટ થાય છે. પ્રભુ સર્વોદ્ધાર - પ્રયત્ન-આત્મા છે, એમ સિદ્ધ કરવા માટે વ્યાસજીએ સર્વને અત્યન્ત સુખદાયક શ્રીમદ્ભાગવત પ્રકટ કર્યું. શ્રીમદ્ભાગવત પણ સર્વને સુખદાયક છે, એમ જેથી સિદ્ધ થાય તે માટે વાણીની અધિષ્ઠાતૃ દેવતા અગ્નિએ શ્રીમદ્ભાગવત ઉપર “તત્ત્વાર્થદીપ” કર્યો.

ટીકાકારો જણાવે છે કે શ્રીમદ્ભાગવતને યથાર્થતયા જાણ્યું હોય તો જ તે ઉદ્ધાર કરી શકે. દીપ જેમ વસ્તુ પ્રકાશક છે, તેમ આ “તત્ત્વાર્થદીપ” ભાગવતપ્રકાશક છે. આથી જ તે ઉપર શ્રીમહાપ્રભુજીએ પ્રકાશ નામની ટીકા કરી. વચ્ચે આવરણ હોય તો પ્રકાશથીયે પદાર્થજ્ઞાન ન થાય, તે માટે પણિડતપુરન્દર શ્રીમદ્ પુરુષોત્તમજી મહારાજ આવરણભડ્ કરે છે. પદ પદાર્થની સક્રાંતિ વિના વાક્યાવબોધ થવો અશક્ય છે. માટે તે તે પદાર્થની તે તે રીતે યોજના કરવી આવશ્યક છે. તદર્થ લાલુભટ્ટજીની પ્રવૃત્તિ યોજનારૂપે છે. તાત્પર્યાવબોધ સરળતાથી થઈ શકે, તદર્થ દીપ્પણની પણ જરૂર રહે, આ કાર્ય શ્રીકલ્યાણરાયજીએ કર્યું છે. માટે સ્નેહ અને પાત્ર બંને સારાં જોઈએ. તે આપણને ભારતમાર્તણ્ડ પૂરા પાડે છે. રીતે ટીકાઓની અન્વર્થતા ધ્યાનમાં લીધા પછી તે તે ટીકાઓનો વિષય સમજી શકાય તેમ છે. અર્થાત્ જ આવરણભડ્ગ પ્રકાશસ્થિત પ્રત્યેક પદાર્થને સારી પેઠે દેખાડી શકે. યોજના પ્રકાશસ્થિત પદાર્થોનો ઉપયોગ દેખાડે. દીપ્પણી તેની નોંધ લે, અને સત્સ્નેહભાજન તેનું ઉપબૃહણ કરવામાં મદદ કરે તે યોગ્ય જ છે. હવે આપણે મૂલ ગ્રન્થમાં પ્રવેશ કરીએ -

શ્રીભાગવતના તત્ત્વાર્થને પ્રકટ કરતાં પ્રથમ શાસ્ત્રાર્થના - પ્રમાણરૂપ પ્રભુના

સ્વરૂપનો બોધ કરાવતું મણ્ડલાચરણ કરે છે.

નમો ભગવતે તસ્મૈ કૃષ્ણાયદ્વિતકર્મણે ।

રૂપનામવિભેદેન જગત્ ક્રીડતિ યો યતઃ ॥૧॥

જે રૂપ અને નામના વિભેદે જગત્ રૂપ છે, જે રૂપ અને નામના વિભેદે ક્રીડા કરે છે, અને જેથી - જેમાંથી - (અભિન્નનિમિત્તોપાદાનત્વે) રૂપ નામના વિભેદે જગત્ છે એવા અદ્ભુતકર્મા, લોકવેદપ્રસિદ્ધ ભગવાન્ કૃષ્ણને નમસ્કાર હો.

મનુષ્યમાત્ર ભગવાનને નમન કરવું એ પોતાનું કર્તવ્ય માને છે. તેથી અધિક કંઈ પણ કરવા માટે શક્તિમાન્ થતો નથી. ઉપરના વાક્યમાં એમ સિદ્ધ થાય છે, કે મનુષ્ય ઈશ્વરને નમન જ કરી શકે છે. એટલા માટે સર્વથી પહેલાં નમઃ પદનો પ્રયોગ કરેલો છે. નમન કરવાને યોગ્ય સર્વશ્રેષ્ઠ વસ્તુ બતાવવા માટે મૂલમાં ભગવતે શબ્દનો પ્રયોગ છે. અહીં ભગવાન શબ્દ શ્રીપુરુષોત્તમના અર્થમાં વાપરવામાં આવ્યો છે. તસ્મૈ પદનો પ્રયોગ એટલા માટે જ છે, કે શ્રીપુરુષોત્તમ લોકમાં અને વેદમાં પ્રસિદ્ધ છે. મતમતાન્તરોને લીધે પ્રસિદ્ધ શ્રીપુરુષોત્તમ વિષે બીજા કોઈપણ પ્રકારની કલ્પના મનમાં ન આવે અને જો આવે તો તેની નિવૃત્તિને માટે મૂલમાં કૃષ્ણાય પદ મુકવામાં આવ્યું છે. “અદ્વિતકર્મણે” તે જ પૂર્ણપુરુષોત્તમ પ્રભુ, સમ્પૂર્ણ જગત્નો ઉદ્ધાર કરવાને માટે પૂર્ણપણે પ્રકટ થાય છે, ત્યારે જ પુરુષોત્તમ કૃષ્ણ એવું અભિધાન કહેવાય છે. જગતમાં અવતરીને પણ સમ્પૂર્ણ સાધનોના અનધિકારી રહે, તો તેમનું અવતરવું શા કામનું ? એટલા જ માટે ઉપર વિલિખિત વાક્ય તેમને માટે ચરિતાર્થ બને છે. જે વસ્તુ અસાધ્ય છે, તેને પણ ક્ષણવારમાં સાધ્ય બનાવી મૂકે છે. તેથી જ અદ્ભુત કર્મ કરનાર એવા શ્રીકૃષ્ણને નમસ્કાર છે. તેટલા માટે જ અદ્ભુત શબ્દનો પ્રયોગ કરેલો છે.

તે જ પૂર્ણપુરુષોત્તમ શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુ ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારના રૂપો પણ ધારણ કરે છે, અને ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારના નામોને પણ શોભાવે છે, આટલા બધાં રૂપો અને નામો શાથી થયાં ? ઉપરના ચરણમાં “અદ્વિતકર્મણે” એ પદ મૂક્યું છે તે અહીં પણ સાધારણતઃ ચરિતાર્થ બને છે. કારણ કે અદ્ભુત પ્રકારના કર્મો કર્યા, વિવિધ પ્રકારની લીલાઓ પણ કરી, તેથી તેમના રૂપ અને નામ જુદાં જુદાં પડ્યા. તે પ્રભુ રૂપ અને નામની ભિન્નતાથી ક્રીડા કરે છે, રૂપ અને નામની ભિન્નતાથી જગત્ રૂપ છે, તથા જેના ભેદથી જગત્ સર્જાયું છે, જગત્માં સ્વતન્ત્ર બની ક્રીડા કરે છે, ક્રીડા કરવા છતાં પણ માયામાં લપટાતા નથી, એટલા માટે યતઃ પદનો પ્રયોગ કરે છે. એવા શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુને નમન કરવામાં આવે છે. ઉપર્યુક્ત

ભગવત્સ્વરૂપાત્મક અને લીલાત્મક સંસેપનું જ્ઞાન થાય ત્યારે જ મુમુક્ષુ, મુક્તિને સાધન બનાવવા સમર્થ બને છે.

સાત્ત્વિકા ભગવદ્વક્તા યે મુક્તાવધિકારિણઃ ।

ભવાન્તસમ્ભવા દૈવાત્તેષામર્થે નિરુપ્યતે ॥૨॥

જે સત્ત્વગુણાશ્રિત ભગવદ્ભક્તો મુક્તિના અધિકારી છે અને પૂર્વ જન્મોપાર્જિત કર્મસંયોગાનુકૂલે જેમનો છેલ્લો જ જન્મ છે, તેઓને માટે નિરૂપણ કરવામાં આવે છે.

જેઓ સ્વભાવ અને પ્રકૃતિને અનુકૂળ કૃત્યો કરતાં પણ અધિક, વિહિત અને અલૌકિક કૃત્યો કરે છે, તે “સાત્ત્વિક” કહેવાય છે. તેવા સાત્ત્વિક મનુષ્યોમાં પણ અહર્નિશ ભગવાનની સેવા કરવામાં તત્પર હોય તે જ અધિકારી છે. અને તેવા ભગવદ્ભક્તોમાં પણ ભક્તિથી કોઈ ફલની ઈચ્છા રાખતો ન હોય, તે જ મુક્તિનો અધિકારી છે. તેવા નિઃસ્પૃહી ભગવદ્ભક્તોમાં પણ ઈશ્વરની ઈચ્છાથી જેઓનો આ છેલ્લો જન્મ છે, તેવા ભગવદ્ભક્તોનો જન્મ નિર્ઘર્ષ ન થાય, તેમના શરીરનો યોગ્ય વિનિયોગ થાય, કોઈપણ મતમતાન્તરો તેમને પ્રતિબંધ ન કરતાં મુક્તિ સાધ્ય કરે, તેટલા માટે આ ગ્રંથ રચવામાં આવે છે.

ભગવદ્દશાસ્ત્રમાજ્ઞાય વિચાર્ય ચ પુનઃ પુનઃ ।

યદુક્તં હરિણાપશ્રાત્સન્દેહ વિનિવૃત્તયે ॥૩॥

સમ્પૂર્ણ ભગવદ્દશાસ્ત્રને જાણી લીધા બાદ અને વારંવાર મનન કરીને બધા સંદેહોની નિવૃત્તિને માટે ભગવાન્ હરિએ જે વચનામૃતો કહેલાં છે, તે પણ જાણીને - વિચારીને આ ગ્રંથ કર્યો છે.

“ભગવદ્દશાસ્ત્ર” કહેવાથી ભાગવત, ગીતા, પંચરાત્ર વિગેરેનો સમાવેશ થાય છે. માટે આટલા ગ્રંથોનો વિચાર કર્યા સિવાય પૂર્ણ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતું નથી. અને તે બધું જ્ઞાન ભગવાનની કૃપા વિના થતું નથી. સાધારણ રીતે જ્ઞાન થયું હોય, તે પ્રમાણભૂત મનાતું નથી, માટે સર્વશઃ જાણ્યા બાદ પણ તેના ઉપર મનન કરવું આવશ્યક છે. સેંકડો વખત બુદ્ધિનું ઘર્ષણ કરીને નિશ્ચય કર્યો હોય તો પણ તે કદાચિત્ અપ્રમાણ બનવાનો સંભવ રહે છે. એટલા માટે જ યદુક્તમ્ એ પ્રયોગ કરેલો છે. દરેક સંકટોમાંથી બચાવનાર તથા પુરુષોત્તમ ક્ષેત્રમાં રહેલા શ્રીભગવાને, દરેકમોહક શાસ્ત્રોની ઉત્પત્તિ કર્યા બાદ જે “નિર્ઘારકથન” કથ્યું છે, તે જાણીને (આગળ કહેવામાં આવશે એ રીતે આ ગ્રંથની રચના કરી છે.)

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेकं देवो देवकीपुत्र एव ।

मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥૪॥

દેવકી પુત્ર શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને જે ગાન કર્યું છે, તે જ (ગીતા) એક શાસ્ત્ર છે, અને તે જ પ્રભુ એક દેવ છે, અને તેમનાં જુદાં જુદાં નામો તે જ એક સર્વોત્તમ મન્ત્ર છે. અને તે જ દેવની સેવા એક સર્વોત્તમ કર્મ છે.

“શ્રીકૃષ્ણ ભગવાને કરેલું ગાન” એ જ ગીતા છે. અને ગીતામાં પણ જે વચનામૃતો ભગવાનનાં છે, તે જ ભગવદ્ધાસ્ત્ર છે. વેદના અર્થનો નિર્ણય ગીતામાં જણાવેલા પ્રમેયને જ અનુકૂલ કરવો. તે શાસ્ત્ર અને વેદના મૂલભૂત ભગવાન શ્રીકૃષ્ણ હોવાથી તે જ એક સર્વોત્તમ દેવ છે. દરેક સમયમાં પ્રભુનું સ્મરણ રહે, તેમાં સાધનરૂપે તેમના નામો છે તે જ મન્ત્ર છે, એમ જાણીને સેવા કરવી, શ્રીકૃષ્ણને મનુષ્ય તરીકે ન માનતાં દેવ તરીકે જ માનવા. અને દેવ છે તેમ જાણીને જ સેવા કરવી. શાસ્ત્રો દ્વારા પ્રભુનું જ્ઞાન થયા બાદ મન, વાણી અને દેહ વડે પ્રભુને સેવવા એ કર્તવ્ય છે. અહીં અધ્યાયિકા પરમ્પરાથી જાણી લેવી.

इत्याकलय्य सततं शास्त्रार्थः सर्वनिर्णयः ।

श्रीभागवतरूपं च त्रयं वच्मि यथामति ॥૫॥

આ પ્રમાણે નિરંતર મનન કરીને, શાસ્ત્રાર્થ, સર્વનિર્ણય અને ભાગવતરૂપ એ ત્રણે પ્રકરણોનું નિરૂપણ કરું છું.

નિરંતર બીજા જ્ઞાનોનો અનુભવ લીધા વગર આ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરીને, લોકોને સ્પષ્ટ સમજાવી શકાય, તેવા હેતુથી, આ તત્ત્વદીપ નિબંધમાં ત્રણ પ્રકરણો રચું છું. “શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ” એટલે “ગીતાર્થપ્રકરણ” દરેક જ્ઞાનાદિનો નિર્ણય એજ સર્વનિર્ણય. એ નિર્ણય બીજા સર્વનિર્ણય નામના પ્રકરણમાં આવે છે. એ બીજું પ્રકરણ અસમ્ભાવના અને વિપરીત નિવૃત્તિને માટે છે. શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ સંક્ષેપમાં હોવાથી તેના વિસ્તારને માટે ભાગવતાર્થપ્રકરણ એ ત્રીજું પ્રકરણ છે. આ પ્રકરણમાં ભાગવતનો સંપૂર્ણ પ્રકાશ કરવામાં આવશે. વચ્ચે જ શબ્દ એટલા માટે મૂકેલો છે કે, બંને મીમાંસા ઉપરના ભાષ્ય, પ્રકરણો અને ભાગવતટીકા એ ગ્રંથોનો પણ સંગ્રહ કરવાનો છે. આ ત્રણે પ્રકરણો ઉપદેશન્યાયવડે હું કરું છું.

वेदान्ते च स्मृतौ ब्रह्मलिङ्गं भागवते तथा ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्धते ॥

त्रितये त्रितयं वाच्यं क्रमेणैव मयाऽत्र हि ॥૬॥

ઉપનિષદોમાં ઈશ્વરને “બ્રહ્મ” શબ્દથી ઓળખવામાં આવે છે. સ્મૃતિઓમાં ઈશ્વરને પરમાત્મા કહેલા છે અને ભાગવતમાં ભગવાન કહેલા છે. હું પણ આ ત્રણે પ્રકરણોમાં અનુક્રમે ત્રણે નામો વાપરીશ.

ઉપર લખેલ દોઢ શ્લોકથી પરિભાષાનો નિર્ણય કરવામાં આવે છે. શાસ્ત્ર વડે જાણેલ વસ્તુનું જ્ઞાન થાય તેને માટે બ્રહ્મ વગેરે શબ્દો વાપરવામાં આવે છે. સર્વોત્તમ વસ્તુ જણાવવાને માટે હું પણ તે તે પ્રકરણોમાં તે તે નામ વાપરીશ. નામો ભિન્ન છે. અર્થ તો એક જ છે.

वेदाः श्रीकृष्णावाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।

समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥૭॥

વેદો, ગીતામાં ઉચ્ચારેલાં શ્રીકૃષ્ણના વચનામૃતો, વ્યાસસૂત્રો અને વ્યાસજીની સમાધિભાષા એ ચાર પ્રમાણ છે.

આ તત્ત્વદીપનિબંધમાં પ્રથમ પરિભાષાનો નિર્ણય કરીને આ શ્લોકથી પ્રમાણ કહેવામાં આવે છે. અલૌકિક જ્ઞાપક અને સ્વતઃ સિદ્ધ વેદ જ પ્રમાણ છે. શ્રીકૃષ્ણના વચનામૃતો પણ વેદરૂપ જ છે. વ્યાસસૂત્રોની સાથે જેમિનિસૂત્રો સમજવા માટે મૂલમાં જ શબ્દ લખેલો છે. અને એવ શબ્દ તે બતાવે છે કે, જેટલે દરજ્જે વ્યાસસૂત્રોની જેમિનિસૂત્રો વિરોધી ન હોય, તેટલે દરજ્જે તે સૂત્રોનો અંગીકાર કરવામાં આવે છે. જે ભાષા લૌકિક રીતિનું વર્ણન કરતી નથી, તે જ સમાધિભાષા કહેવાય છે. અને વ્યાસજીની સમાધિભાષા તે જ ભાગવત છે. શ્રીમદ્ભાગવતમાં “અથોષસ્યુપવૃત્તાયામ્” પ્રભાત થવા આવ્યું હતું, આ શ્લોક લૌકિક રીતિ બતાવે છે. તેથી તે પ્રમાણભૂત નથી. જે સમાધિમાં અનુભવ કરી નિરૂપણ કરેલું તે સમાધિભાષા છે. જેમ કે - “શ્રુતં દ્વેષાયનમુચ્ચાત્” દ્વેષાયનના મુખથી સાંભળેલું. આ વાક્ય પરમત કહેવાય છે. સમાધિભાષાને અનુસરતી લૌકિક અને પરમત ભાષા હોય તો તે પ્રમાણ છે અને તેથી વિરુદ્ધ હોય તે અપ્રમાણ છે. ઉપર બતાવેલાં ચારે પ્રમાણ જ્યારે એક વાક્યતાને પામે, ત્યારે યથાર્થજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે.

उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम् ।

अविरुद्धं तु यत्त्वस्य प्रमाणं तच्च नान्यथा ॥

एतद्विरुद्धं यत्सर्वं न तन्मानं कथञ्चन ॥૮॥

પૂર્વ પ્રમાણના સન્દેહની નિવૃત્તિ કરનાર ઉત્તર પ્રમાણ છે. આ ચારે પ્રમાણોથી જે વિરુદ્ધ નથી, તે પ્રમાણ છે. અને આ ચારે પ્રમાણોથી જે વિરુદ્ધ હોય, તે કોઈપણ રીતે પ્રમાણ થઈ શકતું નથી.

જો એક પ્રમાણથી જ પ્રયોજન સિદ્ધ થઈ શકે છે, તો ચાર પ્રમાણો જુદા જુદા કરવાની શી જરૂર છે ? ઉત્તર એવો છે કે, કોઈપણ પ્રકારનો સંદેહ એક પ્રમાણથી દૂર ન થાય, તો તેના પછીના પ્રમાણથી તે સંદેહને દૂર કરી શકે છે. જેમ

શ્રુતિમાં કહ્યું છે કે, “અપાણિપાદો જવનો ગ્રહીતા” પરમાત્માને હાથ તથા પગ નથી, છતાં પણ શીઘ્રગતિવાળાને ગ્રહણ કરનારા છે. આ વાક્યમાં જરૂર સંદેહ થાય કે બ્રહ્મ કાં તો હાથ, પગ વગરનું જ છે અથવા તો પ્રાકૃત હાથ, પગનો નિષેધ છે. જ્યારે આવો સંદેહ થાય ત્યારે પ્રમાણાન્તર પણ સ્વીકારવું પડે અને તે પણ એ જ કે, ગીતાગ્રંથમાં ઉચ્ચારેલું છે.- “સર્વતઃ પાણિપાદાન્તમ્” બ્રહ્મ દરેક ઠેકાણે હાથ, પગવાળું છે. આ વાક્યથી સંદેહ જરૂર દૂર થાય છે. અને તેથી સિદ્ધ થાય છે કે, બ્રહ્મ એ પ્રાકૃત હાથ, પગ વગરનું જ છે. વળી પણ “નિત્યઃ સર્વગતઃ સ્થાનુઃ” “મમૈવાંશો જીવલોકે” વગેરે વાક્યોથી ઉત્પન્ન થતા સંદેહોનું નિવારણ- “ઉત્ક્રાન્તિ ગત્યાગતીનામ્” ઇત્યાદિ સૂત્રો વડે થાય છે. તેમ જ “જન્માદ્યસ્ય યતઃ” ઇત્યાદિ સૂત્રોનો સંદેહ, અન્યથા અને વ્યતિરેક વડે ભાગવતથી જ દૂર થાય છે. આ ચાર પ્રમાણથી જેટલે દરજ્જે મનુનાં વાક્યો સંવાદી હોય, તેટલે દરજ્જે તે મંદગામી પ્રમાણ છે. વિરોધી હોય તો તે પ્રમાણ નથી.

અથવા સર્વરૂપત્વાનામલીલાવિભેદતઃ ।

વિરુદ્ધાંશપરિત્યાગાત્પ્રમાણં સર્વમેવ હિ ॥૧૧॥

અથવા નામલીલાના વિભેદને લીધે બ્રહ્મનું સર્વરૂપત્વ છે. એ કારણથી વિરુદ્ધ અંશના ત્યાગથી સર્વશાસ્ત્ર માત્ર પ્રમાણ છે.

જ્યારે પૂર્ણજ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય, ત્યારે સર્વે શાસ્ત્રો બ્રહ્મરૂપ ભાસે છે. તે વખતે તે શાસ્ત્રો પ્રમાણ છે. કારણ કે તે બધાં ભગવદ્વાચક દેખાય છે. પણ જ્યાં સુધી પૂર્ણ જ્ઞાનોદય ન થયો હોય, ત્યાં સુધી ઉપર કહેલાં ચાર પ્રમાણ માનવાં. પૂર્ણજ્ઞાન થયા બાદ વાણી માત્ર પ્રમાણ છે. કેમકે તે વખતે શબ્દનો અર્થ ભગવદ્રૂપ ભાસે છે. જેવી રીતે આ વિશ્વમાં સંસારીને રૂપ જુદાં જુદાં દેખાય છે, પણ જ્ઞાનીજનને ભગવદ્રૂપ લાગે છે. તેમ જ નામલીલામાં જે ભેદ છે, તે સંસારીને જ ભાસે છે. પૂર્ણજ્ઞાનવાળાને તો ભગવાન્ના અલૌકિક પ્રકારના સામર્થ્યથી અથવા ભગવાન્ના સર્વરૂપત્વ વડે અવિરોધ ભાસે છે. એ રીતે વિરુદ્ધાંશનો પ્રકાર બે રીતે કરેલો છે, માટે જ્ઞાનીને અવિરોધ ભાસે છે, તે યુક્ત જ છે.

દ્વાપરાદૌ તુ ધર્મસ્ય દ્વિપરાત્વાદ્વયં પ્રમા ।

વિરુદ્ધવચનાનાં ચ નિર્ણયાનાં તથૈવ ચ ॥૧૦॥

દ્વાપરના આદિ ભાગમાં ધર્મના બે પ્રકાર હતા, એક તો શ્રીત અને બીજો સ્માર્ત. તે પરસ્પર વિરુદ્ધ વચનોના મધ્યે બંને પ્રકારનાં વચનો પ્રમાણ છે, તેમ નિર્ણયો પણ પ્રમાણ છે.

વિરુદ્ધ વચનોનો અવિરોધ જણાવવા માટે સ્મૃતિનું દષ્ટાન્ત કહે છે. જેમ સ્મૃતિમાં પરસ્પર વિરુદ્ધ વચનો સ્મૃતિઓના વ્યાખ્યાનકારોએ અવિરોધ પ્રકારથી નિર્ણય કરેલો છે, તેમજ પરસ્પર વિરુદ્ધ નિર્ણયોનો પણ ચેષ્ટાવ સ્માર્તાદિ ભેદવડે અવિરોધ સમજવો.

યજ્ઞરૂપો હરિઃ પૂર્વકાણ્ડે બ્રહ્મતનુઃ પરે ।

અવતારી હરિઃ કૃષ્ણઃ શ્રીભાગવત ઈર્યતે ॥૧૧॥

વેદના પૂર્વકાણ્ડમાં (કર્મકાણ્ડમાં) ક્રિયાશક્તિ વિશિષ્ટ યજ્ઞરૂપ હરિ અને જ્ઞાનકાણ્ડમાં જ્ઞાનશક્તિ વિશિષ્ટ બ્રહ્મરૂપ હરિ છે અને ક્રિયાથી તથા જ્ઞાનથી વિશિષ્ટ અવતારી શ્રી હરિ કૃષ્ણનું શ્રીમદ્ભાગવતમાં નિરૂપણ કરાય છે.

યઃ સર્વજ્ઞ સર્વશક્તિઃ એ શ્રુતિવાક્યથી એમ જણાય છે કે, ભગવાન જ્ઞાન અને ક્રિયાયુક્ત દરેક પ્રમાણના વિષય છે. જે વખતે ભગવાન ક્રિયામાં પ્રવેશ કરે છે, ત્યારે એ યજ્ઞાત્મા ક્રિયારૂપ પૂર્વકાણ્ડનો વિષય છે એમ સમજવું. અને જ્યારે જ્ઞાનમાં પ્રવેશ કરે છે ત્યારે જ્ઞાનાત્મા બ્રહ્મરૂપ ભગવાન ઉત્તરકાણ્ડનો વિષય છે એમ સમજવું. પૂર્વમીમાંસા અને ઉત્તરમીમાંસામાં, સંહિતા અને બ્રાહ્મણ ભાગમાં એકે એક ધર્મનું વિશિષ્ટ રૂપ નિરૂપણ કરેલું છે અને ક્રિયા તથા જ્ઞાન ઉભયવિશિષ્ટ. ભગવાનનું સ્પષ્ટપણું શ્રીમદ્ભાગવત તથા ગીતામાં કરેલું છે. આથી વિષય એક જ છે, છતાં કોટિ બે થાય છે. મૂલમાં “તનુ” શબ્દ સાકાર બ્રહ્મનું પ્રતિપાદન કરવા વાપરેલો છે.

સૂર્યાદિરૂપધૃગ્ બ્રહ્મકાણ્ડે જ્ઞાનાન્નમીર્યતે ।

પુરાણેષ્વપિ સર્વેષુ તત્તદ્રૂપો હરિસ્તથા ॥૧૨॥

સૂર્ય વગેરેના રૂપો ધારણ કરનાર હરિ બ્રહ્મકાણ્ડમાં જ્ઞાનનું અંગ કહેવાય છે અને તે જ પ્રકારે દરેક પુરાણોમાં પણ જે જે નામો લખ્યાં છે, તે તે રૂપ હરિ છે.

વેદ અને પુરાણોમાં જે જે દેવતાઓનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, તે તે દેવતાં જ્ઞાનના અડ્ડગભૂત છે. બ્રહ્મકાણ્ડમાં જ્ઞાનની સિદ્ધિને માટે તે તે દેવની ઉપાસનાનું વર્ણન નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. તે ઉપાસના પણ જ્ઞાનનું અડ્ડગ હોવાથી ભિન્નવાક્યતા થતી નથી અને તે જ્ઞાન ચિત્તની શુદ્ધિ દ્વારા જ થાય છે. એમ માયાવાદીઓનો મત છે. વસ્તુતઃ માહાત્મ્ય પ્રતિપાદનથી ભક્તિ દ્વારા જ્ઞાન થાય છે. એટલે ભગવાનનું માહાત્મ્ય જાણવાથી ભક્તિ થાય છે અને ભક્તિ દ્વારા ભગવાન પ્રસન્ન થઈ જ્ઞાન આપે છે. પુરાણમાં કહેલા દુર્ગા, ગણેશપતિ આદિ દેવતા વિશિષ્ટ દેવતાનું અડ્ડગ છે અને તે તે રૂપ હરિ પોતે જ છે. સાધન અને ફલરૂપ

એક જ હોવાથી દરેક પ્રમાણની એકવાક્યતા નિઃસંદેહ સિદ્ધ થાય છે.

भजनं सर्वरूपेषु फलसिद्ध्यै तथापि तु ।

आदिमूर्तिः कृष्ण एव सेव्यः सायुज्यकाम्यया ॥૧૩॥

કોઈપણ પ્રકારની ફલસિદ્ધિની ઇચ્છા હોય તો, ભગવાનના દરેક રૂપોનું ભજન કરવું. પણ પરબ્રહ્મને વિષે સાયુજ્યની કામનાને માટે આદિ મૂર્તિ કૃષ્ણ એ જ સેવવા લાયક છે.

જ્ઞાનમાર્ગમાં વિષય અને ફલમાં કોઈપણ પ્રકારની વિશિષ્ટતા નથી, કેમકે દરેક રૂપોને પૂર્ણજ્ઞાનથી ઉપાસના કરી શકીએ છીએ. ભક્તિમાર્ગમાં તેવી રીતે નથી. કારણ કે ભગવાને જેમ જગત્ પોતાની લીલાને માટે કર્યું છે તેમ પ્રાપ્તિને માટે ભક્તિમાર્ગ જુદો કર્યો છે. બીજાં બધાં રૂપ મૂળ રૂપની વિભૂતિ છે, એ વાત ગીતાગ્રંથના ૧૦ મા અધ્યાયથી સિદ્ધ થાય છે. વિભૂતિરૂપમાં સાધન અને ફલ નિયમથી કહેલાં છે. (અર્થાત્ વિભૂતિની ઉપાસનાથી ભગવાને જે જે વિભૂતિઓમાં જેટલું જેટલું સામર્થ્ય મૂકેલું છે, તે પ્રમાણે તે તે વિભૂતિઓ આપે છે. પણ પૂર્ણ ફલદાન તો હરિનું પૂર્ણ રૂપ જ આપે છે.) એ કારણથી પૂર્ણ ફલને માટે મૂળ રૂપનું જ ભજન કરવું ઇષ્ટ છે. બ્રહ્મને જાણનારા પુરુષો પરને - પુરુષોત્તમને પ્રાપ્ત કરે છે. આમાં મુખ્ય સાયુજ્યનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. એ મુખ્ય સાયુજ્યને માટે આદિમૂર્તિ શ્રીકૃષ્ણનું બહાર ભજન કરવું આવશ્યક છે. હૃદયમાં સ્થાપન કરેલા બ્રહ્મને જાણવું એ જ્ઞાન માર્ગનું સાધન છે અને બહિર્ભજન એ ભક્તિમાર્ગીય સાધન છે.

निर्गुणा मुक्तिरस्माद्धि सगुणा सादन्यसेवया ।

ज्ञानेऽपि सात्त्विकी मुक्तिर्जीवन्मुक्तिरथापि वा ॥

ज्ञानी चेद्भજते कृष्णं तस्मान्नास्त्यधिकः परः ॥૧૪॥

આદિમૂર્તિ શ્રીકૃષ્ણની ઉપાસનાથી નિર્ગુણ મુક્તિ નિશ્ચય થાય છે અને બીજા દેવતાઓની સેવાથી સગુણ મુક્તિ થાય છે. જ્ઞાનપડે પણ સાત્ત્વિકી અથવા જીવન્મુક્તિ થાય છે અને તે પણ આજીવન સગુણ જ રહે છે. જ્ઞાની પુરુષ જો શ્રીકૃષ્ણની ઉપાસના કરે તો તેનાથી બીજો કોઈ અધિક નથી.

નિર્ગુણ કૃષ્ણની સાથે સાયુજ્ય થવાથી નિર્ગુણ મુક્તિ થાય છે. અને સગુણ દેવતાઓની સાથે સાયુજ્ય થવાથી સગુણ મુક્તિ થાય છે, ભગવાન્ સિવાય બધા દેવતાઓ કાલ પર્યંત સગુણ જ છે. કાલ પણ ગુણાનુરોધી હોવાથી પ્રાયઃ સગુણ જ છે. અક્ષર અને જ્ઞાન માર્ગનું એકય હોવાથી, જ્ઞાન સત્પગુણથી ઉદ્ભવે છે,

તેથી જ્ઞાનમાર્ગ પણ સગુણ છે. એટલા માટે જ્ઞાની પુરુષો સંસારથી ભય પામી યેરાગ્ય ગ્રહણ કરે છે. આ પ્રમાણે જ્ઞાનમાર્ગમાં પ્રવૃત્ત થયેલાનું જેમ સગુણાત્મ્ય છે, તેમ જેણે જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું છે, તેને પણ સગુણાત્મ્ય છે. કારણ કે “સમાસેનૈવ કૌન્તેય” એ વાક્યમાં જણાવે છે કે, બ્રહ્મભાવ થયા પછી ભક્તિનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે, પછી ગુણાતીતમાં પ્રવેશ થાય છે. જો ભક્તિ ન થાય તો કેવલ જીવન્મુક્ત સનકાદિકોની માફક સગુણ રહે છે. જ્ઞાન અને ભક્તિનો મુકાબલો કરવાને માટે ભગવાને ગીતાગ્રંથમાં કહ્યું છે કે-“સર્વભૂતહિતેરતાઃ” જે જ્ઞાનમાર્ગીઓ અક્ષરની ઉપાસના કરે છે, તે ભક્તિમાર્ગના ઉપદેશ દ્વારા સર્વ પ્રાણિમાત્રનું હિત કરે તો, નિર્ગુણ એવા મને પ્રાપ્ત થાય છે. તેઓ પહેલાં જ્ઞાનમાર્ગમાં પ્રવૃત્ત થઈ, તે નિષ્ઠા છોડી દઈ, કૃષ્ણસેવાને માટે ચત્ન કરે તો તે મહાન છે. જ્ઞાનમાર્ગનો વિષય અક્ષર નિર્ગુણ છે. તો પણ તે માર્ગ તો સગુણ જ છે. એ રીતે ભક્તિમાર્ગનો ઉત્કર્ષ છે. ક્રિયાશક્તિ અને ઈન્દ્રિયોનો જ્ઞાનમાર્ગમાં લય કરવાથી તેઓ ફલ રહિત થાય છે. અતઃ, પ્રત્યેક મનુષ્યે શ્રીકૃષ્ણ જ સેવવા યોગ્ય છે.

बुद्धावतारे त्वधुना हरौ तद्वशगाः सुराः ।

नानामतानि विप्रेषु भूत्वा कुर्वन्ति मोहनम् ॥

यथाकथञ्चित्कृष्णस्य भजनं वारयन्ति हि ॥૧૫॥

હમણાં આ હરિના બુદ્ધાવતારમાં તો બધા દેવતાઓ તેમને આધીન થવાથી બ્રાહ્મણોને વિષે અવતાર ધારણ કરી ઘણી પ્રકારના મતમતાન્તરો પ્રવર્તાવી મોહ ઉત્પન્ન કરે છે. કોઈપણ પ્રકારે શ્રીકૃષ્ણના ભજનને અટકાવે છે.

ભક્તિમાર્ગ સર્વોત્તમ હોવા છતાં પણ લોકો તેમાં કેમ પ્રવૃત્ત થતાં નથી ? સ્વભાવથી જ કલિકાળ સર્વોત્કૃષ્ટ છે. નાના સાધનો પડે પણ મોટા ફલને આપનારો નીવડે છે. એટલા માટે આસુરોને વ્યામોહ ઉત્પન્ન કરાવવા માટે ભગવાને બોદ્ધાવતાર ગ્રહણ કર્યો અને દરેક પ્રમાણોના મૂલભૂત વેદને દૂષિત કરાવ્યો. ત્યારબાદ પુરાણાદિ માર્ગ દૂષિત કરવાને માટે તે ભગવાનને આધીન રહેલા દેવતાઓ પણ બ્રાહ્મણોની બુદ્ધિનો નાશ કરવાને બ્રાહ્મણોને વિષે જ અવતર્યા અને તેઓને મોહ ઉત્પન્ન કરાવવા માટે નાના પ્રકારોના મતમતાન્તરો પ્રવર્તાવ્યાં. જેમકે કણાદન્યાય અને માયાવાદાદિરૂપ વાક્યાતુર્યયુક્ત ગ્રંથો રચ્યા અને તે ગ્રંથો દ્વારા પુરાણાદિ ગ્રંથોને દૂષિત કર્યા. તે શાસ્ત્રોમાં મુક્તિરૂપ ફળ બતાવેલું હોવાથી તે મોહ ઉત્પન્ન કરનાર નથી, એમ ન સમજવું. કારણ કે યૈદિક અને પુરાણમાર્ગ દશ્યમાન હોવા છતાં, અને તે જ માર્ગવડે, તેઓ ઋષિત્વ અને દેવત્વને પ્રાપ્ત





શકાય ? આવી શંકાઓ દૂર કરવાને માટે કહેવામાં આવે છે કે, “તત્ત્વમસિ” ઇત્યાદિ વાક્યોથી અપરોક્ષ ઉત્પન્ન થાય છે, એમ અજ્ઞાનીઓને મોહ કરવાને માટે તે શાસ્ત્રોમાં કહેલું છે, પણ તે જ્ઞાન નથી, કારણ કે જ્ઞાન થયું હોય તો સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત થાય. “યસ્મિન્ વિદિતે સર્વમિદં વિદિતમ્” એ શ્રુતિથી જણાય છે કે, બ્રહ્મને જાણવાથી આ નામરૂપાત્મક બધું જાણવામાં આવે છે. અપરોક્ષ જ્ઞાન થવાથી અલૌકિક તેજની પ્રાપ્તિ થાય છે, પણ તત્ત્વમસ્યાદિ વાક્યના ઉપદેશ માત્રથી સર્વજ્ઞપણાની કે અલૌકિક તેજની પ્રાપ્તિ થતી નથી, તેથી તે ઉપદેશથી અપરોક્ષ જ્ઞાન થતું નથી એ સ્પષ્ટ છે. શાસ્ત્રોક્ત રીતિથી કમો પણ ફલ આપતા નથી. કારણ કે “યજ્” ઘાતુ ભગવત્પૂજાર્થક છે. એટલે માયાવાદાદિ શાસ્ત્રોમાં યજન અથવા યજ્ઞોને અજ્ઞાન કલ્પિત કહેલાં છે. અને તેથી યજ્ઞોની ભાવના પણ અનિત્ય અને મિથ્યા ઠરે છે. શ્રુતિમાં કહેલા પ્રકારથી પદાર્થજ્ઞાનનો તેમાં નિરાસ કરેલો છે. એટલે શ્રુતિમાં યજ્ઞનાં સાધન અને યજ્ઞને બ્રહ્મરૂપ કહેલાં છે. તેને તે શાસ્ત્રમાં અજ્ઞાનકલ્પિત કહેલાં છે. હેતુથી યજ્ઞાદિ કરવાથી વધારે તૃષ્ણાવાળા થવાય છે, પણ ચિત્તની પ્રસન્નતા થતી નથી. ભક્તિમાર્ગ જ્ઞાનાડ્ઝ હોવાથી શાસ્ત્રો પણ તેનો ઉપદેશ કરે છે. અને જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતાં સુધી જ ભક્તિ કરવી, એમ કહે છે. જેની ભક્તિ કરવાની છે. તે ભગવાનને તે શાસ્ત્રોમાં ભાવનાથી કલ્પિત થયેલા કહે છે. વળી ભગવાનને માટે ભગવાનની સેવા કહેલી નથી, માટે ભગવાન તેથી પ્રસન્ન થતા નથી, જો તે શાસ્ત્રમાં ખરી ભક્તિનો ઉપદેશ હોય તો તે ભક્તિથી ભગવાન પ્રસન્ન થાય. પણ તે શાસ્ત્રમાં કહેલા પ્રકાર વ્યર્થ છે. અને તેમાં જ્ઞાન કે ભક્તિ નથી. તેમ કર્મ પણ નથી. પણ માત્ર આભાસ છે. કદાચ મૂલ ફલ પ્રાપ્ત ન થાય, તો ગોણ ફલ તો પ્રાપ્ત થશે ? આ શડ્કાનું સમાધાન એવું છે, કે પૂર્ણ સ્થિતિ વગર જ્ઞાન, કર્મ કે ભક્તિનું ફલ થતું નથી. જેમ નદી તરવાને માટે પ્રવૃત્ત થયેલા પુરૂષને સામા કિનારાથી માત્ર એક હાથ છેડેના જળમાં ડુબવાથી પરગમનનું ફલ પ્રાપ્ત થતું નથી, તેવી રીતે તેવા આભાસથી જ્ઞાનનું ફલ સર્વજ્ઞતા, કર્મનું ફલ ચિત્તની પ્રસન્નતા, અને ભક્તિનું ફલ ભગવાનની પ્રસન્નતા સંપાદન કરવાનો પ્રસંગ નથી. કોઈક વખત એવી શંકા ઉદ્ભવે કે, આગળ ઉપર નિષ્ઠા થશે ? તો ખુલાસો એટલો જ છે કે, ઉપર કહેલી નિષ્ઠાઓ વેદમાં કહેલા સાધનથી જ થાય છે. પણ પ્રતિષ્ઠાને માટે વ્યાખ્યાન કરવાથી, કે મનના તરંગોથી થતી નથી. અનુષ્ઠાનો કર્યાથી ફલ પણ ક્યારે પ્રાપ્ત થાય ? જ્યારે શાસ્ત્ર પદ્ધતિથી કાર્યરંભ થયો હોય ત્યારે. અન્યથા આરંભાભાસ કહેવાય છે. ગીતામાં પણ કહ્યું છે કે - પૂર્વાભ્યાસનું

ફલ જન્માન્તરે પણ મલવાનો સંભવ નથી. કારણ કે યથોક્ત સાધન સહિત માર્ગફલ આપનારા થાય છે. નહિ તો પ્રકરણના ભેદો વડે જ્ઞાન, કર્મ અને ભક્તિ એ ત્રણેનું પ્રતિપાદન ઘટે નહિ, કારણ કે એ ત્રણેના અધિકારી ખુદા ખુદા છે.

સ્વાધિકારાનુસારેણ માર્ગસ્ત્રેધા ફલાય હિ ।

અધુના હ્યધિકારસ્તુ સર્વં એવ ગતાઃ કલૌ ॥

કૃષ્ણશ્ચેત્ સેવ્યતે ભક્ત્યા કલિસ્તસ્ય ફલાય હિ ॥૧૧॥

દરેક મનુષ્યોને પોતાના અધિકાર પ્રમાણે ત્રણ પ્રકારના માર્ગો ફળ આપનારા થાય છે. પણ આ કલિયુગમાં દરેક અધિકારો જતાં રહેલા હોવાથી શ્રીકૃષ્ણની સેવા કરવામાં આવે તો કલિયુગ જરૂર ફલ આપનાર બને છે.

જ્ઞાનના અધિકારી એ ગણાય છે કે, જેને યૌગ્ય હોય. વળી જે કામનાવાળા છે, તેઓને કર્મને વિષે યૌગ્ય નથી. તેમને કર્મોને વિષે અધિકાર છે. કોઈપણ પ્રકારે યૌગ્ય અથવા આસક્તિ નથી, અને ભગવત્કથામાં શ્રદ્ધા છે. તેઓને ભક્તિયોગ સિદ્ધિ આપે છે; અને તેથી તેઓ ભક્તિમાર્ગના અધિકારી છે. આ અધિકારોનું પણ સાધન સિવાય સંપાદન થતું નથી. આ કલિયુગમાં તો સાધન તથા સંપાદિ નહિ રહેવાથી દરેક અધિકારો શક્તિને પામ્યા છે. તો પછી ભક્તિમાર્ગને વિષે પણ તેમ જ કેમ ન હોય ? તે માટે કહે છે કે, ભગવાન શ્રીકૃષ્ણ દરેકની મુક્તિને માટે અવતરેલા છે. તેથી અધિકારના અભાવે પણ પ્રમેય બળથી ફલ થશે, પણ સેવાને વિષે સ્થિતિ થવી દુર્લભ છે. આ સેવા ભક્તિથી કરવાની છે. વિહિતસાધનથી કરવાની નથી, કારણ કે વિહિતસાધનને કાળ બાધક છે અને ભક્તિમાં કાળ અનુકૂલ છે.

સર્વેષાં વેદવાક્યાનાં ભગવદ્વચસામપિ ।

શ્રૌતોઽર્થો હ્યયમેવ સ્યાદન્યઃ કલ્પ્યો મતાન્તરૈઃ ॥૨૦॥

વેદ, ગીતા, અને શ્રુતિનો મુખ્ય અર્થ તો ઉપર ૧૭ થી ૧૯ શ્લોક સુધી કહી ગયાં તે જ છે. બાકી બીજા અર્થો તો મતાન્તરોથી કલ્પિત છે.

હવે દરેક પ્રમાણોની એકવાક્યતા કહેવામાં આવે છે. દરેક પ્રમાણોની એકવાક્યતા કરી શબ્દના વાચ્યાર્થથી આ સડ્સેપથી કહેલો અર્થ સિદ્ધ થાય છે. બીજા અર્થ મતાન્તરને અનુસાર સ્વબુદ્ધિ કલ્પિત છે, પણ તે શબ્દોનો ખરો અર્થ બતાવતા નથી.

કૃષ્ણવાક્યાનુસારેણ શાસ્ત્રાર્થ યે વદન્તિ હિ ।

તે હિ ભાગવતાઃ પ્રોક્તાઃ શુદ્ધાસ્તે બ્રહ્મવાદિનઃ ॥૨૧॥

ગીતાગ્રંથમાં ઉચ્ચારેલા શ્રીકૃષ્ણ ભગવાનના વાક્યોને અનુસરી જેઓ વેદનો અર્થ કહે છે, તેઓ જ શુદ્ધ, બ્રહ્મવાદી, અને ભગવદ્ભક્તો છે.

વીશમા શ્લોકમાં વેદ અને ભગવદ્વાક્ય બંને કહેવામાં આવ્યા છે. જો એકલા વેદથી જ શાસ્ત્રાર્થ સિદ્ધ થતો હોય, તો પ્રમાણાન્તરની આવશ્યકતા નથી. આવી રીતે જો કહેવામાં આવે તો, ઉત્તર એ છે કે, જો વેદાર્થમાં જ્યારે સન્દેહ થાય, ત્યારે તે ભગવદ્વાક્યથી દૂર કરી શકાય છે. આવી રીતે શ્રીકૃષ્ણના વચનાનુસારે નિઃસન્દેહ વેદાર્થવક્તાઓ ભાગવત એટલે ભગવદ્ભક્તો છે. અને તેઓ યથોક્ત કર્મના જ્ઞાનથી શુદ્ધ કર્મ કરનારા, અને વેદમાં કહેલા બ્રહ્મસ્વરૂપનો સ્વીકાર કરવાથી તેઓ જ જ્ઞાની અથવા શુદ્ધ બ્રહ્મવાદી છે, એમ જાણવું.

एतन्तमतमविज्ञाय सात्त्विका अपि वै हरिम् ॥

मतान्तरैर्न सेवन्ते तदर्थं ह्येष उद्यमः ॥૨૨॥

આ મતને પણ ન જાણવાથી સાત્ત્વિકપુરુષો પણ મતાન્તરમાં ગુંચાઈને ભગવાનને સેવતા નથી, એ પ્રમાણે ન થાય તેટલા માટે મારો આ પ્રયાસ છે.

કોઈ એવી રીતે પ્રશ્ન કરે કે, વેદ અને ગીતા તો આરંભથી જ વિદ્યમાન છે, તો આ ગ્રંથ રચવાનું પ્રયોજન શું ? પ્રત્યુત્તર એજ છે કે, સાત્ત્વિક પુરુષો ભગવદ્ભક્તિમાં મુખ્ય અધિકારી છે, બીજાં મોહક શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન જ તેમને ભજનમાં નડતરૂપ થાય છે. પણ એમનો સ્વભાવ તો ભજનમાં જ પ્રવૃત્ત હોય છે. તેથી સિદ્ધાન્તથી મતાન્તરનું નિરાકરણ કરીને તેમની ભજનમાં પ્રવૃત્તિ કરાવવાને માટે આ ગ્રંથ રચવાનો આશય છે.

प्रपञ्चो भगवत्कार्यस्तद्रूपो माययाऽभवत् ।

तच्छक्त्याऽविद्यया त्वस्य जीवसंसार उच्यते ॥૨૩॥

પ્રપંચ-જગત્ ભગવત્કાર્ય છે. પ્રભુ માયા વડે જગદ્રૂપ બન્યા, પ્રભુની અવિદ્યાશક્તિ વડે જીવને સંસાર પ્રાપ્ત થાય - અહંતા મમતાવાળો જીવ બને.

નિજ પ્રવૃત્તિનું ઉપપાદન કરી બાધક શાસ્ત્રોની નિવૃત્તિને માટે શાસ્ત્રનો આરંભ કરે છે. કોઈક સિદ્ધાન્તી પ્રપંચને મિથ્યા કહીને શુદ્ધ ભજનનું વારણ કહે છે. ત્યારે બીજા જીવને વ્યાપક કહીને. એટલા માટે જગતનું મિથ્યાત્વ અને જીવનું વ્યાપકત્વ એ બંનેનું નિવારણ કરવા માટે જીવ અને જડનાં સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવું આવશ્યક છે. આ પ્રપંચ પ્રકૃતિજન્ય નથી, પરમાણુજન્ય પણ નથી, વિવર્ત પણ નથી, અદષ્ટદ્વારા ઉત્પન્ન પણ થયો નથી, અસત્ની સત્તારૂપે પણ નથી, પણ ભગવત્કાર્ય હોઈ પરમકાષ્ઠાપત્ર વસ્તુ શ્રીકૃષ્ણની કૃતિથી જ સાધ્ય છે. કાર્યરૂપ હોવા છતાં પણ તે ભગવદ્રૂપ જ છે. જો તેમ ન હોય તો અસત્ની સત્તા થાય. અસત્ની સત્તા હવે પછી આવનારા યૌનાશિકપ્રક્રિયાના નિરાકરણમાં નિરાકૃત થશે.

આ જ સિદ્ધાન્ત યૈદિક છે. યેષ્ણવોને સાધન માટે વિશેષમાં એમ પણ કહેવાનું છે કે, પ્રભુ માયાશક્તિ વડે જગદ્રૂપ થયા. માયા, પ્રભુની સર્વરૂપે થવાના સામર્થ્યવાળી એક શક્તિ છે કે જે પ્રભુના સ્વરૂપમાં રહે છે. જેમ પુરુષનું કર્મ કરવામાં સામર્થ્ય છે, તેમ માયા શક્તિ સર્વ રૂપે થવામાં સામર્થ્યવાળી છે. તેથી નિજ સામર્થ્ય વડે અન્યને ઉપજીવન રૂપથી સ્વાત્મરૂપ પ્રપંચ પ્રભુએ કર્યો એમ સાબિત થાય છે. અહીં કેટલાક લોકો સંસાર અને પ્રપંચનો ભેદ જાણતા ન હોવાથી મોહ પામે છે. તે મોહ દૂર કરવા માટે સંસારને પ્રપંચનો ભેદ જણાવવા અવિદ્યા શક્તિનું વર્ણન છે. અવિદ્યા પણ પ્રભુની એક શક્તિ છે કે, જેની ગણના પ્રભુની મુખ્ય બાર શક્તિઓમાં છે. “શ્રિયા પુષ્ટ્યા ગિરા કાન્ત્યા” ઇત્યાદિ વાક્યમાં તે ગણાવી છે. “સ વૈ નૈવ રમે” ઇત્યાદિ વાક્યમાં રમણને માટે જ પ્રપંચરૂપે પ્રભુનો આવિર્ભાવ કહ્યો છે. વિચિત્રતા વિના રમણ સંભવી શકે નહિ, તેથી પ્રભુની આ અવિદ્યા શક્તિવડે જીવનો સંસાર કહેવાય છે. નહિ કે ઉત્પન્ન થાય છે. કારણ કે સંસાર અભિમાનરૂપે છે. તેથી જ અસદ્રૂપે જ તેની ગણના છે. અજ્ઞાન, ભ્રમ, અસત્, ઇત્યાદિ શબ્દો અહંતા મમતા રૂપ સંસારમાં જ પ્રવર્તે છે, નહિ કે પ્રપંચમાં. પ્રપંચ બ્રહ્માત્મ છે આથી એમ સાબિત થાય છે કે, વાસ્તવિક રીતે રમણને માટે પ્રપંચ રૂપે પ્રભુનો આવિર્ભાવ હોવાથી, પ્રભુ, તદન્તઃપાતિ પુરુષરૂપે તત્કૃત સાધનરૂપે અને તત્કલરૂપે આવિર્ભાવ પામી કીડા કરે છે. તેથી હું આ કર્મનો કર્તા છું, આ કર્મથી ઉત્પન્ન થનારું ફલ મારું છે, હું એનો ભોક્તા છું એ પ્રકારનાં જ્ઞાન, પોતે, પોતાની ક્રિયા તેના ફલ એ સર્વ જ બ્રહ્મરૂપ નથી એવું જ્ઞાન થતાં, બ્રહ્મરૂપે છે એમ માનવું. તેથી અહંતા મમતાત્મક સંસાર અવિદ્યાવડે કરાય છે, તત્ત્વજ્ઞાન થતાં નિવૃત્તિ પામે છે. પ્રપંચ બ્રહ્માત્મક હોવાથી નિવૃત્તિ પામતો નથી.

પ્રપંચ-ઘટાદિપદાર્થ- નો મુદ્ગરાદિવડે તિરોભાવ થાય તેમ તત્ત્વજ્ઞાનાત્મક જ્ઞાનથી સંસારનો તિરોભાવ થાય એમ પણ કહી શકાય ? અવિદ્યાને હેતુ માની સંસારને અસત્ય કહેવાની જરૂર નથી. કારણ તે પણ સંસાર મધ્યપાતી હોવાથી બ્રહ્માત્મક કેમ ન હોય ? સંસારને નિત્યતા પ્રાપ્ત થતાં મુક્તિનો ઉચ્છેદ થશે એવી શંકાને પણ અહિં સ્થાન નથી. જે સમયે જે પુરુષમાં સંસાર રૂપે આવિર્ભાવ થાય તે સમયે તે પુરુષનું સંસારિત્વ કહેવાય, મુક્તિરૂપે આવિર્ભાવ થાય તો મુક્તત્વ પણ કહેવાય. જેમ કાચો ઘડો શ્યામ હોય અને પકવ્યા પછી તે જ રાતો હોય અને તે તે રીતે તેનો વ્યવહાર પણ થાય, કારણ કે તે તે રૂપનો આવિર્ભાવ થાય છે. તેમ અહિં પણ માની લેવું. અવિદ્યાથી બન્ધન થાય છે. એમ શ્રુતિમાં પ્રસિદ્ધ

હોવાથી ઉપર મુજબ કહી શકાય નહિ, એમ પણ નથી, કારણ કે તેમ માનતાં દાદઠ ઘટાદિમાં પણ તેમ જ માનવું પડે. એ રીતે શુદ્ધ બ્રહ્મવાદ સત્કાર્યવાદના મતમાં સિદ્ધ થતાં અને અન્યની અણુ માત્ર પણ પ્રાપ્તિ થતાં માયા પક્ષ કેમ ન થાય ?

ન જ થાય. શ્રુતિથી જ પ્રપચ્ચની બ્રહ્મતા કહેવાય છે. પ્રપચ્ચ નિત્ય હોવાથી આવિર્ભાવ તિરોભાવ કહેવાય છે. આવિર્ભાવ, તિરોભાવ પણ વિદ્યમાન વસ્તુનો હોય, નહિ કે અવિદ્યમાન અને અસદ્વસ્તુનો. સત્ની અસત્તા નથી. અને અસત્ની સત્તા નથી. એ રીતે સંસાર અવિદ્યામૂલક છે, એમ શ્રુતિ કહે છે. શ્રુતિ પ્રપચ્ચની પેઠે તેની બ્રહ્મરૂપતા કહેતી નથી. પ્રપચ્ચરૂપે આવિર્ભાવ જણાવીને અવિદ્યાવડે સંસાર કહે છે અને વિદ્યાવડે તેનો અભાવ પણ કહે છે. આથી સંસારને પ્રપચ્ચથી જુદો અવશ્ય માનવો જોઈએ. તેમ માનતાં સંસાર અસત્ છે તેમ સિદ્ધ થાય છે. જે એમ કહેવામાં આવ્યું કે દાદઠ, મુદ્ગરાદિમાં પણ સમાનતા અને અવિદ્યા વિદ્યાકૃત બન્ધ મોક્ષમાં પણ સમાનતા થશે. ત્યાં અમે એમ કહીશું કે ભલે થાય, જો સંસાર પ્રપચ્ચમધ્યપાતી હોય તો પણ તેમ નથી. કારણ કે બંનેના કારણો જુદાં જુદાં છે. આ શાસ્ત્રમાં ચુક્તિથી સિદ્ધ થનારી વાત કહેવાની નથી પણ શ્રુતિથી સિદ્ધ થનારી વાત કહેવામાં આવે છે.

સંસારસ્ય લયો મુક્તૌ ન પ્રપચ્ચસ્ય કર્હિચિત્ ।

કૃષ્ણસ્યાડડત્મરતૌ તસ્ય લયઃ સર્વ સુખાવહઃ ॥૨૪॥

જીવન્મુક્તિમાં સંસારનો લય થાય પણ પ્રપચ્ચનો લય કદીયે ન થાય, કૃષ્ણાની આત્મરતિમાં એનો (પ્રપચ્ચનો) લય થાય તે સર્વ રીતે સુખાવહ છે.

સંસારનું સ્વરૂપ જ્ઞાન પર્યન્ત રહે છે. ઉત્પત્તિ અને પ્રલયના પ્રકાર ભિન્ન હોવાથી સંસાર અને પ્રપચ્ચનો ભેદ છે.

અહિયાં એમ શંકા થાય છે કે, જો પ્રપચ્ચનો લય ન થાય અને પ્રપચ્ચને સત્ય માનવામાં આવે તો તેનો લય કદી પણ ન જ થઈ શકે, તેનું સમાધાન એમ છે કે, -પ્રભુ જયારે નિજસ્વરૂપમાં કીડા કરવાની ઈચ્છા કરે છે ત્યારે પ્રપચ્ચના સ્વરૂપને નિજસ્વરૂપમાં રમાડી રમણ કરે છે. તે જીવ અને બ્રહ્મનો મુક્તિપ્રકાર નથી, પણ જીવને સુખાર્થે જ પ્રપચ્ચનો પ્રલય કરે છે. જેમ કે રાત્રી.

એ રીતે ભગવદિચ્છાનું પ્રપચ્ચજનન અને પ્રલયમાં કારણત્વ દેખાડી જીવોની ઉત્પત્તિપૂર્વક મોક્ષનું નિરૂપણ કરે છે.

પદ્મપર્વા ત્વવિદ્યા હિ જીવગા માયયા કૃતા ।

જીવમાં સ્થિત અવિદ્યા માયાથી ઉત્પન્ન થયેલી પચ્ચપર્વા છે.

સંસારમાં કારણ રૂપે રહેતી જે અવિદ્યા તે પચ્ચપર્વા છે. તેથી તેનો સર્વ અંશનો નિરાશ કરે તો તેનું નિરાકરણ થશે. તે માટે ભગવદ્ભજન કરવું જોઈએ. ભગવદ્ભજનમાં તે બાધક ન થાય તે માટે તે (અવિદ્યા)નું પ્રથમ નિરૂપણ કર્યું છે. અવિદ્યા જીવ પ્રત્યે જ ગમન કરે છે; નહિ કે પ્રભુના અન્ય અંશ પ્રત્યે. અવિદ્યા દુર્બલ પણ છે, કારણ કે માયાથી કરાયેલી છે.

આકાશવદ્ વ્યાપકં હિ બ્રહ્માયાંશવેદિતમ્ ।

સર્વતઃ પાણિપાદાન્તં સર્વતોડક્ષિશિરોમુખમ્ ॥૨૫॥

સર્વતઃ શ્રુતિમલ્લોકે સર્વમાવૃત્ય તિષ્ઠતિ ।

અનન્તમૂર્તિ તદ્બ્રહ્મ હ્યવિમક્તં વિમક્તિમત્ ॥૨૬॥

બ્રહ્મ આકાશની પેઠે વ્યાપક છે અને માયાંશથી વેષ્ટિત છે. સર્વત્ર કરચરણાદિમાન અને નેત્ર, શિર, અને મુખવાળું સર્વત્ર કર્ણવાળું છે. આ જગતમાં તે સર્વને વ્યાપીને રહે છે. તે અનન્ત મૂર્તિ છે, અવિભક્ત છે, અને વિભાગવાળું પણ છે.

જીવના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવા માટે બ્રહ્મની પાસેથી અગ્નિમાંથી તણાખા નીકળે તેમ જીવનો ઉદ્ભવ કહેવા માટે કારણભૂત બ્રહ્મના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન બે સ્લોકમાં કરે છે. આકાશની પેઠે વ્યાપક છે. આ દષ્ટાન્ત લોકદષ્ટિએ છે. બ્રહ્મનું વ્યાપકત્વ તે બૃહદ્ હોવાથી છે. જો બૃહદ્ ન માને તો બ્રહ્મશબ્દનો પ્રયોગ જ અયોગ્ય ઠરે. આત્મરમણ પછી પ્રભુ તિરોહિતની પેઠે દેખાય છે, તે કાર્ય માયા વડે થાય, તેથી તે માયારૂપ નિજ અંશથી વેષ્ટિત છે. બ્રહ્મનું સ્વરૂપ “સર્વતઃ પાણિપાદાન્તમ્” એ ગીતાવાક્યથી કહ્યું. સર્વત્ર પ્રદેશે પાણયઃ પાદાઃ અન્તાશ્ચ યસ્ય એમ વ્યુત્પત્તિ કરવી. ગતિ અને કૃતિલક્ષણ, ક્રિયા નિજેચ્છાથી સર્વત્ર છે. તેથી જ પરિચ્છેદનું અવભાન થાય છે. “સર્વતોડક્ષિશિરોમુખં” એ પદ જ્ઞાનનું અને ભોગનું નિરૂપણ કરવા માટે છે.

નામપ્રપચ્ચનું નિરૂપણ કરવા માટે સર્વતઃ શ્રુતિમલ્લોકે ઇત્યાદિ વાક્ય છે. સર્વતઃ શ્રુતિમાન પદનો અર્થ સર્વતઃ સાંભળે છે એમ છે. એવા બ્રહ્મનો પરિચ્છેદ ન હોઈ શકે તે માટે “સર્વમાવૃત્ય તિષ્ઠતિ” એ પદ છે. આ ધર્મો પ્રપચ્ચની ઉત્પત્તિ પછી સ્પષ્ટ થાય છે. તથાપિ પ્રથમથી કહેવાનું કારણ પ્રપચ્ચનું નિત્યત્વ દેખાડવા માટે છે.

સર્વત્ર પરિચ્છેદનું પ્રયોજન પ્રભુ અનન્તમૂર્તિ છે એ જ છે. જો પ્રભુને અનન્તમૂર્તિ માને તો ખાદ્યશઃ થાય તેનું વારણ કરવા અવિભક્ત પદ છે. એટલે અનન્ત મૂર્તિ હોવા છતાં પણ પરસ્પર વિભેદ નથી. કેવળ ઈચ્છા વડે જ તાવન્માત્ર

પ્રકટનને માટે જ વિભક્તિમત્ છે. એ પ્રકારે સ્વરૂપનું વર્ણન કરી સૃષ્ટિનું વર્ણન કરવા નીચેની કારિકામાં જણાવે છે કે -

बहु स्यां प्रजायेयेति वीक्षा तस्य ह्यभूत्सती ।  
तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांशयेतनाः ॥२७॥  
सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारास्तदिच्छया ।  
विस्फुलिङ्गा इवाग्रेस्तु सदंशेन जडा अपि ॥२८॥  
आनंदांशस्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरुपिणः ।

પ્રભુની ઇચ્છાથી જ બ્રહ્મભૂત અંશો ચેતનરૂપે સૃષ્ટિની પહેલાં નિરાકાર પ્રકટ થયા. અગ્નિમાંથી જેમ તણાખા નીકળે તેમ પ્રભુના સત્ અંશ વડે જડ પદાર્થો પણ પ્રકટ થયા અને આનંદાંશ સ્વરૂપે સર્વના અન્તર્યામી પણ ઉત્પન્ન થયા.

ઇચ્છામાત્રે-પ્રભુમાંથી જ બ્રહ્મરૂપે જીવ પ્રકટ થયાં, નહિ કે યોગબલથી. એ જીવો સાકાર એટલે સૂક્ષ્મ પરિચ્છેદવાળા અને ચેતન ચિત્પ્રધાન છે. સર્વજીવો એટલે અસંખ્યાત જીવો. સૃષ્ટિની પહેલાં એટલે પ્રથમ સૃષ્ટિમાં તે પછી તે સાકાર અને ભગવદ્રૂપ જીવો પણ ભગવાનની ઉચ્ચ નીચ ભાવવાળી ઇચ્છા વડે પ્રકટ થયાં. એટલે નિરાકાર થયાં. “હન્ત તિરોસાનિ” ઇત્યાદિ શ્રુતિથી અહિં નિરાકારના પ્રમાણત્વે સ્વીકારવામાં આવે છે.

પ્રભુમાંથી જડ, જીવ અને અન્તર્યામી શી રીતે પ્રકટ થયાં; તેમાં દષ્ટાંત કહે છે. જેમ અગ્નિમાંથી તણાખા ઉત્પન્ન થાય તેમ ચિદંશમાંથી જીવ ઉત્પન્ન થયાં. યથાગ્નેઃ ક્ષુદ્રા વિસ્ફુલિંગાઃ સ્વેચ્છયા ઘરન્તિ” ઇત્યાદિ શ્રુતિ તેનું વર્ણન કરે છે. એ જ રીતે સદંશમાંથી જડનો ઉદ્ગમ થયો, કારણ કે જડમાં સત્નું પ્રાધાન્ય દેખાય છે. આનંદાંશ સ્વરૂપે અન્તર્યામીનો ઉદ્ગમ છે. જેમ જીવ અનેક છે, તેમ અન્તર્યામી પણ અનેક છે. એકેક હૃદયમાં જીવ અને અન્તર્યામી હંસરૂપે પ્રવેશે છે. જો કે ભેદ તો જીવનોયે નથી, તો અન્તર્યામીમાં ક્યાંથી હોય ? અંશાંશી ભાવે ભેદ તો છે જ. તેથી અનેક જીવ અને અનેક અન્તર્યામી માનતાં કોઈપણ પ્રકારનો દોષ આવતો નથી. સત્ ચિત્, અને આનંદ એ જ જડ જીવ અને અન્તર્યામી ત્રણ પ્રકારનો વ્યવહાર છે.

सच्चिदानन्दरूपेषु पूर्वयोरन्यलीनता ॥२९॥  
अतएव निराकारौ पूर्ववानन्दलोपतः ।  
जड़ो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधामतः ॥३०॥

સત્, ચિત્ અને આનંદના સ્વરૂપોમાંથી પહેલા બેમાં અન્ય લીન હોય તેથી આનંદનો લોપ થતાં જડ અને જીવ નિરાકાર છે. જડ, જીવ અને અન્તરાત્મા એમ ત્રણ પ્રકારનો વ્યવહાર છે.

સત્માં ચિત્ અને આનંદના ધર્મોનો તિરોભાવ છે. ચિત્માં આનંદનો તિરોભાવ છે. તેથી જ સત્ અને ચિત્ નિરાકાર છે. તેમાં ચતુર્ભુજત્યાદિ જે ભગવદાકાર તેનો લોપ છે. એટલે કે નિરાકાર શબ્દનો અર્થ ભગવદાકાર વિનાનું. એમ ભગવદંશત્વે સાધર્મ્ય અને સ્વરૂપાદિ યેધર્મ્યનું પ્રતિપાદન કર્યું. (સામાન્ય યેજાત્ય અને સાધર્મ્ય યેધર્મ્ય બન્ને એક જ છે.) એ રીતે સ્વરૂપમાં યેજાત્ય કહીને નામથી પણ યેજાત્ય કહ્યું છે-જડ, જીવ અને અન્તરાત્મા જ ભગવત્વે હોવા છતાં, જડાદિ પદનો પ્રયોગ વ્યવહારનો માટે છે. એમ ત્રૈવિદ્ય પ્રતિપાદન કરીને ચિદંશરૂપ જીવોને સંસાર કેમ પ્રાપ્ત થાય, તેનો પ્રકાર કહે છે -

विद्याऽविद्ये हरेः शक्ती माययैव विनिर्मिते ।

ते जीवस्यैव नान्यस्य दुःखित्वं चाप्यनीशता ॥३१॥

વિદ્યા અને અવિદ્યા પ્રભુની શક્તિઓ છે. માયાથી નિર્મિત થયેલી છે. અને તે જીવને જ છે અન્યને નહિ. તેથી તેને વિષે દુઃખિત્વ, અને અનીશત્વ છે.

મોક્ષ પણ એક પ્રકારનો સ્વર્ગ છે. તેથી વિદ્યાનું પણ નિરૂપણ થયું. નિજ સ્વરૂપનો લાભ વિદ્યાથી થાય છે ને દેહના સ્વરૂપનો ભ્રમ અવિદ્યાથી થાય છે. કદાચ કોઈ એમ માની બેસે કે, વિદ્યા અને અવિદ્યા જીવના ધર્મો છે, તો તેની નિવૃત્તિને માટે તે બન્ને પ્રભુની જ શક્તિઓ છે એમ કહ્યું. તેથી ભગવદિચ્છા વડે જ વિદ્યા અને અવિદ્યાનો આવિર્ભાવ, તિરોભાવ થયા કરે છે. એ બન્ને માયાને આધીન રહેલી છે. તેથી જ ગીતાજીમાં પ્રભુએ કહ્યું કે -

मामेव प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते

મને શરણે આવનાર મારી માયાને તરે. આ વાક્યથી એમ પણ સિદ્ધ થાય છે કે, ભક્તિ હોય તો અવિદ્યાદિની નિવૃત્તિ થાય છે, તેમ વિદ્યાની પણ નિવૃત્તિ થાય છે. જો વિદ્યાની નિવૃત્તિ ન થાય તો નિત્ય મુક્તતા પણ ન થઈ શકે. તે વિદ્યા અને અવિદ્યા પ્રભુના જીવસ્વરૂપે થયેલા અંશને જ છે, નહિ કે જડાંશને, કે અન્તર્યામીને. તેથી જ જડાંશ અને અન્તર્યામીને દુઃખિત્વ અને અનીશત્વ નથી પણ જીવને જ છે.

हवे अविधाना पञ्चपर्वो कहे છે -

स्वरूपाज्ञानमेकं हि पर्व देहेन्द्रियासवः ।

अन्तःकरणमेषां हि चतुर्दाश्यास उच्यते ॥३२॥

पञ्चपर्व त्वविद्येयं यद्वद्धો याति संसृतिम् ॥

(૧) સ્વરૂપનું અજ્ઞાન અને (૨) દેહ (૩) ઇન્દ્રિય (૪) પ્રાણ (૫) અન્તઃકરણ એ ચારેના અધ્યાસો એમ પાંચ અવિદ્યાના પર્વ છે. (અવિદ્યાની ગાંઠો)

છે. જેથી બંધાએલો જીવ સંસારને પ્રાપ્ત થાય છે.

અન્તઃકરણાધ્યાસ, પ્રાણાધ્યાસ, ઇન્દ્રિયાધ્યાસ, દેહાધ્યાસ અને સ્વરૂપનું વિસ્મરણ એમ અવિધાના પાંચ પર્વો છે. એ રીતે અવિધા સમ્પૂર્ણ થતાં અન્ય ધર્મોથી બંધાએલો જીવ જન્મ મરણને પ્રાપ્ત થાય છે.

વિદ્યાયાઽવિદ્યાનાશે તુ જીવો મુક્તો ભવિષ્યતિ ॥૩૩॥

દેહેન્દ્રિયાસવઃ સર્વે નિરધ્યસ્તા ભવન્તિ હિ ।

અવિધાનું નિરૂપણ કરી વિધાનું નિરૂપણ કરે છે - વિધાવડે અવિધાનો નાશ થતાં દેહ, ઇન્દ્રિય, પ્રાણ, એ સર્વે, અધ્યાસ વિનાના થાય અને તેથી જીવ મુક્ત બને.

નિદ્રાની પેઠે અવિધાનો અપગમ થતાં જીવને જન્મ મરણ પ્રાપ્ત થતાં નથી. ત્યારે તેમને દેહાદિકનો વિલય પણ થતો નથી.

તથાપિ ન પ્રલીયન્તે જીવન્મુક્તગતાઃ સ્ફુટમ્ ॥૩૪॥

જીવમુક્ત થાય તો પણ દેહેન્દ્રિયાદિકનો લય થતો નથી; કારણ જીવન્મુક્તાવસ્થા એ જ પ્રકારની છે.

અધ્યાસ જ જાય છે. સ્વરૂપ જતું નથી. કારણ કે તે પ્રપન્થ મધ્યપાતી છે. જો એમ શંકા કરવામાં આવે કે દેહાદિકનો અધ્યાસ નીકળી જાય, તો સ્થિતિ જ હોઈ શકે નહિ. તો તેનો ઉત્તર આ કારિકા આપે છે. જીવન્મુક્તની પોતાની બુદ્ધિથી દેહાદિકનું પ્રતિભાન થતાં પણ સર્વની બુદ્ધિથી તેમ ભાન થતું નથી. દેહાદિકની સ્થિતિમાં સુખપ્રતિબુદ્ધિ ન્યાયથી (ઉદ્યતા માણસને જ્ઞાન ન હોય, પણ જાગે ત્યારે જ્ઞાન થાય એ ન્યાયે) કદાચિત્ ફરીથી પણ અધ્યાસ થવા સમ્ભવ રહે તેથી જીવન્મુક્તના દેહાદિકના લયનો પ્રકાર પણ કહે છે -

આસન્યસ્ય હરેર્વાપિ સેવયા દેવભાવતઃ ।

ઇન્દ્રિયાણાં તથા સ્વસ્મિન્ બ્રહ્મભાવાભ્યો ભવેત્ ॥૩૫॥

આસન્ય-પ્રાણની કે પ્રભુની સેવાથી ઇન્દ્રિયોને દેવ ભાવ પ્રાપ્ત થતાં દેહાદિકનો લય થાય અને પોતાને બ્રહ્મભાવ પ્રાપ્ત થતાં પણ તેમ ભાવ થાય.

આસન્યની સેવામાં ઇન્દ્રિયોને દેવતાત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. તેમાં પ્રમાણ “સ વાચમેવ પ્રથમામત્યમુચ્યતે” ઇત્યાદિ શ્રુતિ છે. તે પ્રસિદ્ધ આસન્ય પ્રાણ પ્રથમ વાણીને જ ઉદ્ગાતાઓને વિષે ધારણ કરે છે. એટલે કે એ વાણી જ મૃત્યુને ઓળંગીને મુક્ત થાય ત્યારે અગ્નિ રૂપે બની પ્રાણને મૃત્યુમાંથી મુક્ત કરે અને પ્રકાશે છે. પ્રભુની સેવાથી સર્વ જ થાય છે એમ ભગવદ્ગણેશ કહે છે. પ્રભુનું મુખ

અગ્નિ છે. પોતાની વાગીન્દ્રિય અગ્નિરૂપ બને તો ભગવત્મુખત્વને પ્રાપ્ત થાય. એ રીતે સર્વ ઇન્દ્રિયોમાં આર્દિદેવિકત્વ થતાં સદ્ધાતનો લય થાય છે. જો જીવ ભાવસ્થિત રહે તો કદાચિત્ બીજા સદ્ધાતનું પણ સમ્પાદન કરે એવી શક્તિની નિવૃત્તિને માટે બ્રહ્મભાવ પદ મૂક્યું છે.

હવે બ્રહ્મભાવનો પ્રકાર કહે છે -

આનન્દાંશપ્રકાશાદિ બ્રહ્મભાવો ભવિષ્યતિ ।

સાયુજ્યં ચાન્યથા તસ્મિન્નુભયં હરિસેવયા ॥

આનન્દાંશના પ્રકાશ થવાથી બ્રહ્મભાવ થાય. વળી પણ સાયુજ્ય અને બ્રહ્મભાવ શ્રીભગવદ્ગણેશની સેવાવડે કરીને પણ પ્રાપ્ત થાય છે.

જેવી રીતે તિરોહિતનો આવિર્ભાવ થવાથી બ્રહ્મભાવ થાય છે. તેવી રીતે જડમાં પણ થાય છે. આ પ્રમાણે બનવામાં માત્ર ભગવદ્દિશ્ણ જ પ્રયોજિકા છે. ભગવદ્દિશ્ણ અનિશ્ચિત હોવાથી સાયુજ્ય પણ પ્રાપ્ત થાય છે. અથવા સદ્ધાતમાં જાય છે. સાયુજ્ય અને બ્રહ્મભાવ સેવાવડે જ પ્રાપ્ત થાય છે. બીજાની સેવાથી નહિ.

एवं कदाचिद् भगवान् साक्षात् सर्वं करोत्यजः ॥૩૬॥

કદાચિત્ પુરુષદ્વારા કદાચિત્ પુનરન્યથા ।

કદાચિત્ સર્વમાત્મેવ ભવતીહ જનાર્દનઃ ॥૩૭॥

આવી રીતે અજ એવા ભગવાન કોઈ વખત પ્રત્યક્ષથી જ સર્વોત્પત્તિ કરે છે. કોઈ વખત પુરુષ દ્વારા ઉત્પત્તિ કરાવે છે, ફરીથી કોઈક વેળા તે પણ ઉત્પત્તિ કરે છે, કોઈ સમયે ભગવાન જનાર્દનને દરેક વસ્તુઓ આત્મવત્ થાય છે.

વેદમાં સાક્ષાત્ અને પરમ્પરા ભેદે સૃષ્ટિના પ્રકારો અનેક રીતે કહેલા છે. તેથી સર્વ પ્રકારોનો સદ્ગ્રહ કરવાને માટે કહે છે કે-કોઈક વખતે પુરુષ દ્વારા સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન થાય છે. પુરાણમાં પુરુષ દ્વારા સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ પ્રસિદ્ધ છે. પુરુષાદિકનું કારત્વ માત્ર છે. કોઈક વખતે અન્યથા એટલે ચતુર્મૂર્તિ પ્રકારે સૃષ્ટિ થાય છે. તે પ્રકાર પન્થરાત્રમાં પ્રસિદ્ધ છે.-આવરણ-ભણકાર કહે છે કે, વાસુદેવ સ્વરૂપ ભગવાન સર્વનું કારણ છે. તેમાંથી સદ્કર્ષણરૂપે જીવ ઉત્પન્ન થાય છે, પ્રદ્યુમ્નરૂપે મન ઉત્પન્ન થાય છે અને અનિરુદ્ધરૂપે અહંકાર ઉત્પન્ન થાય છે. પુરુષવિદ્ય બ્રાહ્મણમાં પુષ્ટિસૃષ્ટિનો પ્રકાર છે, તે જણાવવા માટે કહે છે કે, પ્રભુ કોઈક વખત સર્વ જ આત્મરૂપે પ્રકટ થાય છે. એમ શ્રુતિ, પુરાણો અને તન્ત્રની સૃષ્ટિ કહી બ્રહ્મરૂપે આત્માને જ જાણ્યો ઇત્યાદિ શ્રુતિથી સાક્ષાત્ પ્રપન્થરૂપનું જ નિરૂપણ

કર્તુ. જ્યારે લીલાથી, જીવોનો કલેશ પ્રભુ સહન કરી શકતા નથી, ત્યારે આત્મસૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરે છે, આ પક્ષમાં આનંદાંશનો તિરોભાવ નથી.

મહેન્દ્રજાલવત્ સર્વ કદાચિન્માયયાઽસૃજત્ ।

તદા જ્ઞાનાદયઃ સર્વે વાર્તામાત્રં ન વસ્તુતઃ ॥૩૮॥

કોઈક વખતે ઇન્દ્રજાલની પેઠે કેવળ માયાથી પ્રભુ સર્વે સર્જે છે ત્યારે જ્ઞાનાદિક વાર્તામાત્ર જ રહે છે. વસ્તુતઃ હોતાં નથી.

સ્વપ્નાદિ સૃષ્ટિનો સફળ કરવા આપણે કાર્ય કરવું છે. માયાથી જે સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન થાય છે તે કેવળ માયાથી જ છે. તેમાં પ્રભુ પ્રવેશ પણ કરતાં નથી. તે સૃષ્ટિમાં કોઈપણ પ્રકારનો પુરુષાર્થ પણ નથી. જ્ઞાનાદિક છે પણ તે કહેવા પૂરતાં જ છે. ફલ સાધક નથી. હવે યૈદિકી સૃષ્ટિ કહે છે.

વિયદાદિ જગત્ સૃષ્ટ્વા તદાવિશ્ય દ્વિરુપતઃ ।

જીવાન્તર્યામિ ભેદેન ક્રીડતિ સ્મ હરિઃ ક્વચિત્ ॥૩૯॥

આકાશાદિક પદાર્થોને સરજીને જીવ અને અન્તર્યામિભેદે બે પ્રકારે તેમાં પ્રવેશ કરીને પ્રભુ તેમાં ક્રીડા કરે છે.

આકાશને સરજીને તેના દ્વારા વાયુને સર્જ્યો, ઇત્યાદિ દ્વારા વેદાદિ સૃષ્ટિ છે. આ પક્ષમાં જડની પ્રથમની પેઠે જ વ્યવસ્થા સમજવી. એટલે જડમાં સદંશનો આવિર્ભાવ હોય અને ચિદંશ તથા આનંદાંશનો તિરોભાવ હોય. જીવાન્તર્યામિભેદે ભિન્ન ભિન્ન પ્રકાર છે. પુરા કલ્પમાં જીવ અને અન્તર્યામીનો પ્રવેશ અને આ કલ્પમાં પ્રવિષ્ટનો જીવાન્તર્યામિભાવ છે. એ રીતે છ ભેદ કહી ષડ્ગુણોશ્ચર્યસમ્પન્ન પ્રભુની આ લીલા છે એમ જણાયું.

એક જ અનેક પ્રકારની સૃષ્ટિ કેમ ઉત્પન્ન કરે ? તેના જવાબમાં કહે છે કે -

અવિન્ત્યાનન્તશક્તેસ્તદ્ યદેતદુપપદ્યતે ।

અત એવ શ્રુતૌ ભેદાઃ સૃદેરુક્તા હ્યનેકથા ॥૪૦॥

અચિન્ત્ય અને અનન્તશક્તિવાળા પ્રભુમાં સર્વ જ યોગ્ય ગણાય છે આથી જ શ્રુતિમાં સૃષ્ટિના અનેક પ્રકારો કહ્યાં છે.

પ્રભુની અચિન્ત્ય અને અનન્ત શક્તિઓ છે. તેથી એ સર્વ ઉપપન્ન થાય છે. આ મત શ્રુતિને પણ માન્ય છે. એનું તાત્પર્ય એમ છે કે શ્રુતિમાં સૃષ્ટિના દજારો પ્રકારો જુદાં જુદાં પ્રકરણોમાં કહેલા છે.

અનેકથા સૃષ્ટિકથનનું પ્રયોજન કહે છે કે -

યથાકથાન્નિન્માહાત્મ્યં તસ્ય સર્વત્ર વર્ણ્યતે ।

મજનસ્યૈવ સિદ્ધયર્થ તત્ત્વમસ્યાદિકં તથા ॥૪૧॥

વેદમાં સર્વત્ર કોઈપણ રીતે પ્રભુનું માહાત્મ્ય વર્ણવાય છે. ભજનની સિદ્ધિને માટે તત્ત્વમસ્યાદિ વાક્યો પણ છે.

વેદો ભગવન્માત્રનું જ પ્રતિપાદન કરનારા છે. પ્રભુની સ્તુતિ કરે છે. તેથી સૃષ્ટિના ભેદ જુદી જુદી રીતે થયા છે. વાસ્તવિક રીતે સૃષ્ટિકર્તૃત્વ હોવા છતાં ભગવાનનું કંઈ માહાત્મ્ય નથી. કોઈ મહારાજાધિરાજને ચાલવાનું જ્ઞાન હોય તો શું તે જ્ઞાન જ્ઞાનની ગણતરીમાં આવે ! તેમ ભગવાન સૃષ્ટિ ઉત્પન્ન કરે તેમાં કશું માહાત્મ્ય નથી. તે તો તેમનો સ્વભાવ જ છે. તથાપિ લોકપ્રતીતિ માટે તે માહાત્મ્ય થાય તેમ યથાકથાચિત્ વર્ણન છે. માહાત્મ્યજ્ઞાનનો ઉપયોગ ભક્તિની સિદ્ધિ માટે જ છે. ભક્તિના બે અંશ છે. તે બન્નેનું નિરૂપણ થાય તે રીતે વર્ણન છે. બીજો અંશ તત્ત્વમસ્યાદિ વાક્યો દ્વારા છે.

ભક્તિનું સ્વરૂપ કહે છે -

માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વસ્તુ સુદઢઃ સર્વતોઽધિકઃ ।

સ્નેહો ભક્તિરિતિ પ્રોક્તસ્તયા મુક્તિર્ન ચાન્યથા ॥૪૨॥

માહાત્મ્યજ્ઞાન પૂર્વક સુદઢ અને સર્વથી અધિક જે સ્નેહ તે ભક્તિ કહેવાય છે. તેથી જ મુક્તિ છે. બીજી રીતે મુક્તિ નથી.

સ્નેહ ભક્તિ છે. દેવાદિવિષયિણી જે રતિ તે ભાવ કહેવાય છે. રતિ એટલે સ્નેહ દેવત્વ એટલે માહાત્મ્ય. તે જ્યારે આત્મત્વે જ્ઞાત થાય, ત્યારે થાય છે. તેથી ભજનને માટે જ આત્મત્વેનું તેનું નિરૂપણ એ જ માહાત્મ્ય છે. જો એમ ન હોય તો એક જ બ્રહ્મપ્રકરણમાં બે વાક્ય હોવાથી વ્યર્થ થાય. બ્રહ્મસ્વરૂપના જ્ઞાનથી જ પુરુષાર્થની સિદ્ધિ છે. તેમાં શાબ્દ જ્ઞાન કંઈ પ્રયોજક નથી. જો શાબ્દ જ્ઞાન પ્રયોજક બને તો અત્યારના લોકોમાં પણ ભક્તિનો પ્રાદુર્ભાવ થાય. તેમ કંઈ દેખાતું નથી, સાક્ષાત્કાર તો બ્રહ્મને આધીન છે. જ્યારે બ્રહ્મ પ્રસન્ન હોય ત્યારે આવિર્ભાવ પામે તો લોકની પ્રીતિ થતાં તેનું જ્ઞાન થાય.

શ્રુતિ પુરુષના પર્યવસાન સુધી જ કથન કરે છે, તેથી સ્વરૂપજ્ઞાન કરાવીને તે પુરુષાર્થ છે એમ કહીને તેનો આવિર્ભાવ થતાં ફલ સિદ્ધ થાય છે. તેથી આવિર્ભાવને માટે પ્રેમસેવાનું નિરૂપણ કરી અવજ્ઞાદિ દોષનો અભાવ થવા માટે માહાત્મ્ય છે. તેમ જ સુદઢ સ્નેહને માટે આત્મત્વ પણ છે. તત્ત્વમસ્યાદિ વાક્યમાં શાસ્ત્ર પર્યવસાન કેવી રીતે થાય તે હવે પછી કહેવામાં આવશે.

એ રીતે કેટલીએક શ્રુતિઓની એકવાક્યતા કહીને સર્વશ્રુતિઓની

એકવાક્યતા કહેવા માટે ભગવાનના રૂપોના સંગ્રહ શ્લોક કહેવામાં આવે છે -

પદ્માત્મકઃ સ ભગવાન્ દ્વિષડાત્મકોઽભૂત્ પદ્મદ્વયી શતસહસ્ત્રપરામિતશ્ચ ।

एकः समोऽप्यखिल दोष समुज्झितोऽपि सर्वत्र पूर्णगुणकोऽपि बहूपमोऽभूत् ॥૪૩॥

નિર્દોષપૂર્ણગુણવિગ્રહ આત્મતંત્રો નિશ્ચેતનાત્મકશરીરગુણૈશ્ચ હીનઃ ।

आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः सर्वत्र च त्रिविध भेदविवर्जितात्मा ॥૪૪॥

ભગવાન પચ્યાત્મક છે, દ્વિષડાત્મક (દ્વાદશાત્મક) છે, દશાત્મક છે. શતસહસ્ત્ર પરામિત છે, એક છે, સમ છે. સર્વદોષવિનાના છે, સર્વત્ર પૂર્ણ ગુણવાળા અને બહુ ઉપમાવાળા થયાં. નિર્દોષ એવા અને પૂર્ણગુણવાળા એવા શ્રીઅક્ષાને ધારણ કરનાર છે, આત્મતંત્ર છે, નિશ્ચેતનાત્મક-જડાત્મક, શરીર અને ગુણોથી હીન છે, આનંદમાત્રકરપાદમુખોદરાદિ છે, સર્વત્ર ત્રિવિધભેદ-જડ-જીવાન્તર્યામિ ભેદથી વિવર્જિત આત્મરૂપે છે.

ભગવાન અગ્નિહોત્રાદિ પચ્યાત્મક છે. અગ્નિહોત્રાદિકના સાધન (૧) દેશ (૨) કાલ (૩) દ્રવ્ય (૪) કર્તા (૫) મન્ત્ર. ત્રિવિધ-મન્ત્ર બ્રાહ્મણ ઉપનિષદાત્મક છે. પચ્યપ્રાણાવ્યૂહ અને પચ્યમહાભૂતાત્મક પણ છે. એથી પચ્યાત્મક કહેનારી શ્રુતિઓની એકવાક્યતા સિદ્ધ થાય છે. તે જ રીતે આગળ પણ સમજી લેવું. દેહમાં ભગવાન પ્રપચ્યાત્મક છે. ધ્યાનને માટે પ્રાદેશમાત્ર છે. આશ્રયને માટે અડગુષ્ઠમાત્ર છે. સ્વામિત્વ માટે નેત્રસ્થિત છે. ફલને માટે સર્વ દેહસ્થિત છે. આનંદમય યૈશ્વાપર મસ્તકમાં પ્રતિષ્ઠિત છે. તે સર્વાર્થ છે. તેમજ પચ્યકોશાત્મક પણ ઉપાસનાને માટે છે.

આટલાથી પણ સર્વ શ્રુતિઓની એકવાક્યતા ન હોવાથી કહે છે કે તે દ્વિષડાત્મક છે.

દ્વાદશ સૂર્યાત્મક, દ્વાદશ માસાત્મક, દ્વાદશાકગ પુરુષાત્મક, દ્વાદશ અગ્નિરૂપે, અહીનાત્મક છે, એ જ રીતે દ્વાદશત્વના પ્રકારો જાણી લેવા.

તેથી પણ બીજો પ્રકાર કહે છે - દશદિશાઓરૂપે છે. દશ દિગ્પાલરૂપે છે. દશ ઇન્દ્રિયાત્મક છે. દશવિધ લીલાત્મક છે. એ જ રીતે દશાત્મકના બીજા ભેદો અવતારાદિરૂપે સમજી લેવા.

તેથી પણ પૂર્તિ ન થતી હોવાથી અધિક કહે છે. એ શતસહસ્ત્રપરામિત છે. ઉપર જણાવેલા ચાર ભેદો એકબીજાથી અધિક છે. અમિત, અસંખ્યાત્મક અને વિભૂતિરૂપ છે એમ જાણવું. એવા પ્રભુના સાત પ્રકારે રૂપ ભેદો કહ્યા. તેમાં ભગવાન ભિન્ન ભિન્ન છે એવી શંકાની નિવૃત્તિને માટે કહે છે કે - ભગવાન એક અને સમજ

છે. પ્રભુ યોગીની પેઠે સર્વ રૂપમાં એક જ છે. પ્રાદેશમાત્ર અને અક્ષુષ્ટમાત્ર ન્યૂનાધિક હોવા છતાં પણ સમાન જ છે. કોઈક ઠેકાણે જુદી રીતે પ્રતીતિ થતી હોવા છતાં સર્વ દોષથી વિવર્જિત છે. એશ્વર્યાદિકનું તારતમ્ય હોવા છતાં સર્વત્ર પૂર્ણગુણવાળા છે. એશ્વર્યાદિ ગુણો સર્વ રૂપમાં પૂર્ણ છે. જો એમ હોય તો વિલક્ષણતા શી ? એ શંકાની નિવૃત્તિને માટે કહે છે કે - તે બહુ ઉપમાવાળા થયા. નરની પેઠે, પ્રાદેશની પેઠે, શાન્તની પેઠે, કૂરની પેઠે.

એ રીતે વિભૂતિરૂપ સિદ્ધ કરી સ્વરૂપ સિદ્ધ કરે છે. જેવું મૂળ હોય તેવું જ સર્વ જ જાણવું. પ્રભુના ગુણો શાન્તિજ્ઞાનાદિક છે. તે લોકમાં દોષસહિત દેખાવા છતાં મહાન્ એવા પ્રભુના હોવાથી નિર્દોષ છે. જેમ કોઈ ઠેકાણે જ્ઞાન છે પણ સંઘની નિવૃત્તિ નથી. તપ છે તો ક્રોધ પણ છે. ધર્મ છે તો દયા નથી. તેમ ભગવાનમાં નથી. કિન્તુ સર્વગુણો નિર્દોષ, પૂર્ણ, ને સ્વરૂપવાળા છે. વિગ્રહ એટલે સ્વરૂપ. પરસ્પર વિરુદ્ધ લોકદૃષ્ટિથી દેખાય છે. વાસ્તવિક રીતે વિરુદ્ધ નથી.

ગુણાધીનત્વની શંકા નિવૃત્ત કરવા માટે આત્મતંત્રપદ મૂક્યું છે. પ્રભુ સ્વતંત્ર છે. દેહેન્દ્રિયાદિમાં કાર્યત્વની પ્રતીતિ હોવા છતાં લોકની પેઠે જડાત્મક દેહેન્દ્રિયાદિક તેના નથી એટલું જ નહિ પણ મૂલમાં જ ચ શબ્દ છે. તે પરથી એમ પણ સમજાય છે કે જડના ધર્મોથી પણ હીન છે. આકારની પ્રતીતિ આનંદમાત્ર કરપાદમુખોદરાદિ એમ થાય છે. બ્રહ્મવાદમાં આનંદ જ આકારસમ છે. આથી લોકોમાં પણ સર્વાન્તરાનંદમયનું નિરૂપણ છે.

એ પરમકાષ્ટાપન્ન વસ્તુ સર્વાત્મક છે. સર્વત્ર જડ, જીવ, અન્તર્યામિને વિષે પૂર્ણ ત્રિવિધભેદ વિના અનુસ્યૂત છે. સર્વનું કારણ હોવાથી કારણતાનું નિરૂપણ અહીં કર્યું.

હવે એના નિરૂપણનું પ્રયોજન કહે છે -

तस्य ज्ञानाद्धि कैवल्यमविद्याविनिवृत्तिः ॥

તેના જ્ઞાનથી અવિદ્યાની નિવૃત્તિ થતાં કેવલ્યની પ્રાપ્તિ થાય.

ગુણોપસંહાર ન્યાયે ઉપર જણાવેલા બે શ્લોકમાં કહેલા ધર્મથી યુક્ત બ્રહ્મને જાણે ત્યારે બ્રહ્મવિત્ થાય. ત્યારે કેવલ્ય એટલે સદ્ધાતથી પૃથગભાવને અથવા મોક્ષને મેળવે. તેમાં પ્રત્યક્ષ દ્વારરૂપે અવિદ્યાની નિવૃત્તિ છે. એટલે કે ઉપર જણાવેલું જ્ઞાન અવિદ્યાને નિવૃત્ત કરતું મોક્ષ પ્રાપ્ત કરાવે છે. તે જ્ઞાન પરીક્ષરૂપ છે.

હવે વિદ્યાના પચ્ય પર્વને તેનાં સાધનો કહે છે -

वैराग्यं साङ्ख्ययोगौ च तपोभक्तिश्च केशवे ॥૪૫॥



યેરાગ્ય, સાંખ્ય, યોગ, તપ અને પ્રભુમાં ભક્તિ (એ પાંચ વિધાના પર્વ છે.)

યેરાગ્ય એટલે વિષયમાં તૃષ્ણા ન હોવી એ પ્રથમ પર્વ છે. તે પછી નિત્ય અને અનિત્યના વિવેકપૂર્વક સર્વપરિત્યાગ, તે પછી એકાન્તમાં અષ્ટાઙ્ગ યોગ, પછી વિચારપૂર્વક આલોચન એટલે તપ અથવા એકાગ્ર સ્થિતિ એટલે તપ, તે પછી નિરંતર ભાવનાથી પ્રભુ પ્રત્યે પરમ પ્રેમ.

એ રીતે સાધન સમ્પત્તિ થતાં, પગ્યપર્વા વિધા સમ્પાદન થાય છે, કે જેવડે કરીને જેને સાક્ષાત્કાર થયો હોય તે પ્રભુમાં પ્રવેશે એમ કહે છે -

પદ્મપર્વેતિ વિદ્યેયં યથા વિદ્વાન્ હરિં વિશેત્ ॥

સત્ત્વસૃષ્ટિપ્રવૃત્તાનાં દેવાનાં મુક્તિયોગ્યતા ॥૪૬॥

આ પગ્યપર્વા વિધા છે કે જે વડે જ્ઞાની પ્રભુમાં પ્રવેશે છે. સત્ત્વ સૃષ્ટિમાં પ્રવૃત્ત થયેલા જીવોને દેવીની યોગ્યતા પ્રાપ્ત થાય છે.

અહીં સ્વરૂપ યોગ્યતા રૂપી અધિકાર જણાવ્યો. જે સાત્ત્વિક જીવો દેવી સમ્પત્તિમાં પ્રકટ થયા છે અને વિધિ ઉપર જ આધાર ધરાવનારા છે, તેમને મુક્તિ પ્રાપ્ત થશે, અન્યને નહિ.

એ જ પ્રકારે મુક્તિ છે. બીજે પ્રકારે નહિ એમ કહેવા દેશાદિ છ પદાર્થો તેના અઙ્ગ છે અને તેથી મુક્તિ થાય એમ કહે છે -

તીર્થાદાવપિ યા મુક્તિઃ કદાચિત્ કસ્યચિદ્ભવેત્ ।

કૃષ્ણપ્રસાદયુક્તસ્ય નાઽન્યસ્યેતિ વિનિશ્ચઃ ॥૪૭॥

સેવકં કૃપયા કૃષ્ણઃ કદાચિન્મોષયેત્કવચિત્ ।

તન્મૂલત્વાત્સ્તુતિસ્તસ્ય ક્ષેત્રસ્ય વિનિરૂપ્યતે ॥૪૮॥

તીર્થાદિકને વિષે પણ જે મુક્તિ મળે છે, તે કોઈક વખત કોઈકને જ મળે છે અને તે પણ જેના ઉપર પ્રભુની કૃપા હોય તેને જ મળે છે. બીજાને નહિ એમ નિશ્ચય છે. પ્રભુ કૃપાથી નિજ સેવકને કદાચિત્ કોઈપણ સ્થલે મુક્ત કરે જ. તીર્થો પ્રભુનું અંગ હોવાથી તે તે ક્ષેત્રોની સ્તુતિનું નિરૂપણ છે.

કાશ્યાદિક તીર્થોમાં મુક્તિ પ્રસિદ્ધ છે. ત્યાં અન્તે તારક બ્રહ્મનો ઉપદેશ થાય છે. તે અલોકિકોપદેશ મુક્તિમાં સાધક છે. તેથી દોષ નથી. કારણ કે કોઈક જ વ્યક્તિ કદાચિત્ મરણ સમયે કાશી જાય અને મુક્તિ થાય. એ ઉપદેશ સર્વને થતો નથી. જે ભગવદ્કૃપાથી યુક્ત હોય તેને જ મુક્તિ થાય. જેનાથી તીર્થાદિકનું માહાત્મ્ય વધે. અજામિલ નામથી તર્યો. આથી જ પ્રભુની પ્રસન્નતા મેળવવા માટે પ્રેમપર્યંતના કર્તવ્યો છે. જેને ભગવત્પ્રેમ ન હોય તેને તીર્થમાં મૃત્યુ જ પ્રાપ્ત ન

થાય. જે તીર્થમાં મૃત્યુ પામે તેને પૂર્વની સાધન સમ્પત્તિ સિદ્ધ છે. વાસનાને અનુસરી ભગવદિચ્છાએ પ્રાકૃતત્વ પ્રાપ્ત થાય તેથી કંઈ દોષ નથી. ત્યારે તીર્થાદિકનો ઉપયોગ ક્યાં ? એવી શંકાની નિવૃત્તિ માટે શ્રી મહાપ્રભુજી જણાવે છે કે, જે ભગવત્સેવક હોય તે જ તીર્થમાં મુક્ત થાય. તેમાં જે કૃપાથી જ તેને મુક્ત કરે, અને તેમાં જે કૃષ્ણ જ મુક્ત કરે. એ રીતે કર્તા, સાધન અને વ્યાપાર કહ્યાં, હવે દેશકાલ જણાવવા માટે કદાચિત્ અને કવચિત્ શબ્દો છે. આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે. દેશકાલની પ્રશંસા પણ જણાવી. સ્તુતિ કરાયેલાં તીર્થો ભગવાનનું અંગ હોવાથી દેવોએ કરેલા વિધ્નોનો નાશ કરે છે. તેથી તેઓ લોકપ્રવૃત્તિ માટે મુક્તિસાધક છે એમ કહ્યું. આથી તીર્થોમાં રહી શુદ્ધ કાલમાં સાધનો કરે.

આથી કેવલ તીર્થાદિકના આશ્રયનો પરિત્યાગ કરી જે રીતે પ્રભુમાં સ્નેહ થાય તેવો યત્ન કરવો એમ કહે છે -

તત્માત્સર્વ પરિત્યજ્ય દૃઢ વિશ્વાસતો હરિમ્ ॥

મજેત્ શ્રવણાદિભ્યો યદ્વિઘાતો વિમુચ્યતે ॥૪૯॥

તેથી સર્વનો પરિત્યાગ કરીને દૃઢ વિશ્વાસથી શ્રવણાદિકથી પ્રભુને ભજે કે જેથી જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતાં મુક્તિ થાય,

પ્રભુને ભજે છતાં મોક્ષ પ્રાપ્તિ ન થાય એવી શંકાનો પરિત્યાગ કરીને દૃઢ વિશ્વાસથી શ્રવણાદિ સાધનો વડે પ્રભુનું ભજન કરે તેથી મુક્ત થાય છે. એમ કહ્યું હવે કેમૂતિક ન્યાયે પ્રેમ લક્ષણા ભક્તિનું ફલ કહે છે -

બ્રહ્માનન્દે પ્રવિષ્ઠાનામાત્મનૈવ સુખપ્રભા ।

સંજ્ઞાતસ્ય વિલીનત્વાદ્બ્રહ્માનાં તુ વિશેષતઃ ॥૫૦॥

સર્વેન્દ્રિયૈસ્તથાચાન્તઃકરણૈરાત્મનાઽપિ હિ ।

બ્રહ્મભાવાન્તુ ભક્તાનાં ગૃહ એવ વિશિષ્યતે ॥૫૧॥

બ્રહ્માનન્દમાં પ્રવિષ્ટ એવા જીવોને આત્મા વડે સુખનું જ્ઞાન થાય છે. (આત્મસુખરૂપ જ્ઞાન થાય છે.) કારણ કે તેમના સંજ્ઞાતનો લય થઈ ગયેલો હોય છે. ખાસ કરીને ભક્તોની સર્વ ઇન્દ્રિયો, અન્તઃકરણ અને આત્માને પણ બ્રહ્મભાવ પ્રાપ્ત થયેલો હોય છે; તેથી તેમનો ગૃહસ્થાશ્રમ પણ શ્રેષ્ઠ હોય છે.

ભક્તિ સાધન છે અને મોક્ષ સાધ્ય છે. તથાપિ સાધનદશા જ ઉત્તમ છે. કારણ કે જે મુક્ત થાય છે તે સંજ્ઞાતનો પરિત્યાગ કરી બ્રહ્મમાં લય પામે છે, અથવા બ્રહ્મભાવને પ્રાપ્ત થાય છે, તેને સ્વરૂપાનન્દનો અનુભવ થાય છે અથવા તો સ્વરૂપ વડે આનન્દનો અનુભવ થાય છે. શ્રીમદ્ ગોપીજનોના જેવા સ્વતન્ત્ર

ભક્તોને સર્વ ઈન્દ્રિયો, અન્તઃકરણો અને સ્વરૂપ વડે આનન્દનો અનુભવ થાય છે. આથી જ ભક્તોને જીવન્મુક્તિ કરતાં ભગવદ્કૃપાસહિત ગૃહસ્થાશ્રમ શ્રેષ્ઠ છે.

જો એમ જ છે, તો, સાધન અને ફલ એ બન્ને ઉત્કૃષ્ટ હોવાથી સર્વ કોઈ ભક્તિમાર્ગમાં કેમ પ્રવેશે નહિ ? આ શંકાની નિવૃત્તિ માટે કહે છે -

મોહાર્થશાસ્ત્રકલિલં યદા બુદ્ધેર્વિભિદ્યતે ।

તદા ભગવતે શાસ્ત્રે વિશ્વાસસ્તેન સત્કલમ્ ॥૫૨॥

મોહને માટે શાસ્ત્રરૂપી કચરો છે, તે જ્યારે બુદ્ધિથી દૂર થાય, ત્યારે ભગવદ્શાસ્ત્રમાં વિશ્વાસ થાય અને તેથી સત્કલ પણ પ્રાપ્ત થાય.

ભગવદ્શાસ્ત્ર સિવાયના બીજા અસદ્શાસ્ત્રો જીવને મોહ પમાડવાને માટે જ છે. કલિકાલમાં તેમનું જ પ્રામાણ્ય સ્વીકારાય છે. તેથી તે શાસ્ત્રો જોવાથી બુદ્ધિમાં મલીનતા ઉત્પન્ન થાય છે. જ્યારે ભગવદ્કૃપાથી તે દૂર થાય ત્યારે ભગવદ્શાસ્ત્રોમાં વિશ્વાસ થાય, એમ જે કહ્યું છે, તે સર્વથા સત્ય છે. આથી, એ રીતે જે વર્તે છે, તે સત્ય ફલ પ્રાપ્ત કરે છે.

એ રીતે સત્પ્રકરણનું નિરૂપણ કરીને હવે ચિત્પ્રકરણનો આરંભ કરે છે -

જીવસ્ત્વારાગ્રમાત્રો ગન્ધવદ્વ્યતિરેકવાન્ ।

વ્યાપકત્વશ્રુતિસ્તસ્ય ભગવત્ત્વેન યુજ્યતે ॥૫૩॥

જીવ આરાગ્ર (ડાંગરની અણી) જેવડો જ છે. છતાં તે ગન્ધની પેઠે પ્રસરણશીલ છે. તે વ્યાપક છે, એમ જે શ્રુતિ કહે છે તે ભગવત્ત્વે (ભગવદાવેશથી) યુક્ત છે.

મૂળમાં તુ શબ્દ છે તે અહીંથી પ્રકરણ જુદું પડે છે એમ જણાવે છે. પહેલાં, જીવનું પ્રમાણ કહે છે. જીવ આરાગ્રમાત્ર છે. આરાગ્રમાત્રો હાપરોડપિ દષ્ટઃ ઇત્યાદિ શ્રુતિ તેમાં પણ છે. ગ્રીહિનો-ડાંગરનો-અગ્રભાગ. જો જીવ આટલો જ હોય તો સર્વદેહવ્યાપી ચૈતન્યની ઉપલબ્ધિ શી રીતે થાય ? આ શંકાની નિવૃત્તિ માટે કહે છે કે - તે ગન્ધની પેઠે પ્રસરણશીલ છે - વ્યતિરેકવાળો છે. વિશેષે જે અતિરેક પામે તે વ્યતિરેક એટલે દ્રવ્યની અપેક્ષાએ અધિક દેશવાળો. જેમ કે ગન્ધ પુષ્પ કરતાં અધિકદેશમાં વ્યાપે છે; તેમ ચૈતન્યગુણ સર્વદેહવ્યાપી છે; એમ અર્થ જાણવો. ગન્ધવાળા કમળાદિકની પેઠે સ્થૂળગુણથી યુક્ત છે. અન્યથા, અનુપપત્તિથી-જો જીવ સર્વ દેહમાં વ્યાપીને રહેતો ન હોય તો મારા માથામાં વેદના છે અને હાથમાં સુખ છે, એવી પ્રતીતિ ન થાય, તેથી-દેહના જેવડા પરિણામવાળો જીવ છે, એમ શંકા ન થઈ શકે; કારણ કે વૈદિક શાસ્ત્રમાં શ્રુતિ કહે તે જ વ્યવસ્થા મનમાં આવે છે, દેહ

કરતાં ન્હાનું પરિણામ માનતાં અનિત્યત્વ પણ થતું નથી; કારણ કે જેમ પ્રાદેશમાત્ર ભગવાન્ હંસાકૃતિ છે, તેમ જીવ આરાગ્રમાત્ર હંસાકૃતિ છે. “નિત્યઃ સર્વગતઃ સ્થાનુઃ” આ ગીતાજીના વાક્યથી જીવને વ્યાપક માની શકાય, એવી શડ્કા થતાં જણાવે છે કે - વ્યાપકત્વનું પ્રતિપાદન કરનારા વાક્યો ભગવદાવેશ થતાં ભગવદ્ધર્મો-વ્યાપકત્વાદિક તેમાં શ્રુત થાય છે. નહિ કે જીવ વ્યાપક છે.

વેદમાં બ્રહ્મવિદ્ બ્રહ્મૈવ ભવતિ બ્રહ્મને જાણનાર બ્રહ્મ જ થાય છે, એમ કહ્યું છે, તેથી જીવનું આરાગ્રમાત્રત્વ વાસ્તવિક નથી એવી શડ્કા થાય તો કહે છે કે -

આનન્દાંશભિવ્યક્તૌ તુ તત્ર બ્રહ્માણ્ડકોટયઃ ।

પ્રતીયેન્ પરિચ્છેદો વ્યાપકત્વં ચ તસ્ય તત્ ॥૫૪॥

જીવમાં આનન્દાંશની અભિવ્યક્તિ થતાં, તેમાં કરોડો બ્રહ્માણ્ડો પ્રતીત થાય છે. એ જ એનો પરિચ્છેદ છે. એ જ એનું વ્યાપકત્વ છે.

જીવનું બ્રહ્મત્વ હોવા છતાં અધિક પરિમાણતા થતી નથી. આણુ હોવા છતાં પણ બ્રહ્મ વ્યાપક છે. જેમ શ્રીકૃષ્ણ યશોદાજીના કોડે ખેલે, છતાં, તે સર્વ જગત્નો આધાર છે. તેમ જો જીવના એ આનન્દાંશનું પ્રાકટ્ય થાય, તો તેમાંથી કરોડો બ્રહ્માણ્ડો થાય. આથી પરિચ્છેદ હોવા છતાં વ્યાપકત્વની સિદ્ધિ તો છે જ; તેથી વ્યાપકત્વ માનવા માટે અધિક પરિમાણની જરૂર નથી. એ જ એનો પરિચ્છેદ છે અને એ જ એનું વ્યાપકત્વ પણ છે. અલૌકિક ધર્મોને વિષે પ્રમાણને જ અનુસરવું યોગ્ય છે; નહિ કે લૌકિક યુક્તિને. આથી જ વ્યાપકત્વ હોવા છતાં આરાગ્રમાત્રત્વમાં દોષ નથી.

હવે જીવના બીજા ધર્મો કહે છે -

પ્રકાશકં તદ્દૈતન્યં તેજોવત્તેન ભાસતે ।

ન પ્રાકૃતેન્દ્રિયૈર્ગ્રાહ્યં ન પ્રકાશ્યં ચ કેનચિત્ ॥

યોગેન ભગદ્દૃષ્ટા દિવ્યયા વા પ્રકાશતે ॥૫૫-૫૬॥

જીવનો ચૈતન્યગુણ પ્રકાશક છે અને જીવના ચૈતન્યગુણને લીધે જ જીવને તેજોવત્ (તેજોમય) કહેવામાં આવે છે. જીવનું ગ્રહણ પ્રાકૃત ઈન્દ્રિયોથી થઈ શકતું નથી; તેમ જ બીજા કોઈ પ્રકાશથી તે પ્રકાશતું પણ નથી. તે યોગથી, ભગવદ્ દષ્ટિથી કે દિવ્ય દષ્ટિથી પ્રકાશે છે.

તે તે રૂપ પ્રકાશક જ છે. અથવા તેનો ચૈતન્યગુણ જાતે જ પ્રકાશક છે; તેથી તેજોવત્ ભાસે છે. તેથી જયોતિશબ્દનો પ્રયોગ છે. વૃત્તસ્ય દેહાન્નિક્રાન્તમાત્મજ્યોતિઃ પૃથ્વાસુરના દેહમાંથી નીકળેલું આત્મસ્વરૂપ જ્યોતિઃ તેમ

જ શિશુપાલના દેહમાંથી નિકળેલું જ્યોતિઃ, ઇત્યાદિ જે જ્યોતિઃ શબ્દ છે તે પ્રકાશક ચૈતન્યવાચક છે. અહિં તેજઃ કિંવા જ્યોતિઃ શબ્દથી તૃતીય મહાભૂતની વિકૃતિ લેવાની નથી. કારણ કે એ ત્રીજું મહાભૂત પણ બ્રહ્મની વિકૃતિ છે. આથી જ રૂપત્વાદિકની પણ આશંકા ન થઈ શકે. એ જ્યોતિ-ચૈતન્ય, લોક-પ્રમાણથી પ્રત્યક્ષ નથી, તે માટે “ન પ્રાકૃતેન્દ્રિયેર્ગ્રાહ્યં” ઇત્યાદિ વાક્ય કહ્યું છે. એ ચૈતન્યરૂપ જ્યોતિને રૂપ ન હોવાથી સન્નિકર્ષ-ઇન્દ્રિય અને પદાર્થનો સંયોગ. “યન્ન સ્પૃશન્તિ ન વિદુઃ” ઇત્યાદિ વાક્યો તેમાં પ્રમાણ છે. એ જ્યોતિઃ અન્યથી પ્રકાશ્ય પણ નથી. જેમ સૂર્ય વડે પ્રકાશિત ઘટ ચક્ષુરિન્દ્રિયથી ગ્રહણ કરી શકાય છે, તેમ ઇન્દ્રિયના ગ્રહણ માટે બીજું પ્રકાશક નથી. હવે અહિં એમ શંકા થાય છે કે, પશ્યતાં સર્વલોકાનાં ઇત્યાદિ વાક્યમાં શિશુપાલના દેહમાંથી નિકળેલ જ્યોતિઃ સર્વ લોકોનાં જોતાં પ્રભુમાં લીન થયું. ઇત્યાદિ વાક્ય કેમ ઉપપન્ન થઈ શકે ? આ શંકાના પરિહાર માટે યોગેન ઇત્યાદિ વાક્ય છે. એ જ્યોતિનું દર્શન ત્રણ પ્રકારે છે. (૧) યોગ વડે જ. એટલે કે યોગવડે સાધિત મન એને જુએ છે. (૨) ભગવદ્ દષ્ટિ તો ભગવાનને જ જુએ છે. (૩) દિવ્યદષ્ટિ-જ્ઞાનદષ્ટિ વડે પણ તે દેખાય છે. બીજી રીતે તેનું દર્શન થઈ શકતું નથી.

આભાસપ્રતિબિम्બત્વમેવં તસ્ય ન ચાડન્યથા ।

આનન્દાંશતિરોધાનાત્ તત્તદ્વત્તેન ભાસતે ॥૫૭॥

આભાસતા અને પ્રતિબિમ્બતાનું પ્રતિપાદન કરનાર શ્રુતિઓનું એ જ તાત્પર્ય છે. બીજું નથી. આનન્દાંશના તિરોધાનથી ગ્રુપત્વ ભાસે છે. તેથી આનન્દાંશનો આવિર્ભાવ થતાં બ્રહ્મવત્ ભાસે છે.

એ રીતે સ્વમતમાં ગ્રુપના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરીને હવે “एकधा दशधा चैव दृश्यते चलचन्द्रवत्” આ શ્રુતિને ધ્યાનમાં લઈ કેટલાંક લોકો એમ માને છે કે, ગ્રુપ એ બ્રહ્મનું પ્રતિબિમ્બ અથવા આભાસ છે. એ મતનું નિરાકરણ કરવામાં આવે છે. ઉપરોક્ત ઉચ્ચારણ બ્રહ્મને સિદ્ધ કરે છે, ગ્રુપને સિદ્ધ કરતું નથી. એનો વાક્યાર્થ એમ છે કે, જેવી રીતે પાણીમાં ચન્દ્રનું પ્રતિબિમ્બ ઘણેરૂં દેખાય છે. તેમ એકજ બ્રહ્મ અનેકરૂં જણાય છે. અહિં દષ્ટાન્તનો અર્થ એકનું અનેકત્વ જણાવવું તે જ છે. પ્રતિબિમ્બ નથી. શ્રીમદ્ભાગવતના સપ્તમસ્કન્ધના પ્રહ્લાદગુણા પ્રતિમુખસ્ય યથા મુખશ્રીઃ એ વાક્યમાં પણ એવો જ અર્થ રહેલો છે. પ્રતિબિમ્બમાં રૂપસ્પર્શાદિયુક્ત પદાર્થનું રૂપમાત્ર જણાય છે, અથવા ક્રિયા પણ જણાય છે. પરન્તુ ધર્મનો સ્પર્શ જણાતો નથી. જો ધર્મનો સ્પર્શ થાય તો જલનો

ચન્દ્ર સ્વધર્મનો ત્યાગ કરીને પ્રતિબિમ્બના ધર્મને સ્વીકારે. શાસ્ત્રમાં ગ્રુપને કોઈ વાક્યમાં આભાસ અથવા પ્રતિબિમ્બ કહેલો છે; એનું કારણ એ જ છે કે, આનન્દાંશ તિરોહિત થવાથી ગ્રુપરૂપ થાય છે અને આવિર્ભૂત થએલા આનન્દાંશથી ગ્રુપ બ્રહ્મવત્ જણાય છે. ગ્રુપમાં બે અંશ (સત્ અને ચિત્) વિદ્યમાન હોવાથી કેવળસદંશની સ્ફૂર્તિથી ગ્રુપ બ્રહ્મના આભાસરૂપ છે. ચિદંશ અને સદંશની સ્ફૂર્તિથી તે પ્રતિબિમ્બ કહેવાય છે. અને ત્રણે અંશની સ્ફૂર્તિથી ગ્રુપનું બ્રહ્મત્વ કહેવાય છે. પણ ગ્રુપ લૌકિક આભાસ અથવા પ્રતિબિમ્બરૂપ નથી. જો હોય તો, ગ્રુપસ્વરૂપ મિથ્યા થઈ જાય. તેથી માયાવાદી સિવાય બીજા બધા મતવાળા ગ્રુપને સત્ય જ માને છે. મિથ્યાવાદ યુક્તિબાધિત હોવાથી દૂષિત છે.

માયાવજનિકાચ્છન્નં નાન્યથા પ્રતિબિમ્બતે ।

તત્ર વૃત્તેર્દ્વા સુવર્ણા શ્રુતેરપિ વિરુદ્ધયતે ॥

ગુહાં પ્રવિષ્ઠાવિત્યુક્તેર્ભગવદ્વચનાદપિ ॥૫૮॥

બ્રહ્મ માયારૂપી પ્રતિબિમ્બથી ઢંકાયેલું હોવાથી તેનું પ્રતિબિમ્બ હોઈ શકે નહિ. જો એમ ન હોત તો પ્રતિબિમ્બ થાત. બ્રહ્મ વ્યાપક હોવાથી તેમ જ દ્વા સુવર્ણા શ્રુતિથી અને ગુહાં પ્રવિષ્ઠાવાત્માનો હિ તદ્દર્શનાત્ આ સૂત્રથી ગ્રુપ અને ઇશ્વરની સ્થિતિ એક સ્થળે હોવાથી પ્રતિબિમ્બમાં વિરોધ પ્રાપ્ત થાય છે. તેમજ ભગવદ્ગીતાથીયે વિરોધ છે.

પ્રતિબિમ્બની સિદ્ધિને માટે વ્યવધાનની કલ્પના કરવી જોઈએ. તે વ્યવધાન માયાદિક જ છે. માયાવચ્છિન્ન બ્રહ્મનું પ્રતિબિમ્બ પડતું નથી. જેમ દર્પણાદિકની સામે પડેલો હોય તો પુરુષનું પ્રતિબિમ્બ પડતું નથી. આ સિવાય બીજાં દૂષણો પણ છે જ. જે જેમાં વ્યાપીને રહે છે તેનું તેમાં પ્રતિબિમ્બ પડતું નથી. ઉપર રહેલું અને ભ્રાન્તિથી પ્રતીત થતું આકાશનું પ્રતિબિમ્બ પડે છે. વાસ્તવિક રીતે તો પ્રભામણ્ડલનું જ રૂપથી પ્રતિબિમ્બ છે. તેવી જ રીતે આકાશમાં ભ્રાન્તિથી દેખાતું નીલરૂપ છે. તેનુંયે ગન્ધર્વનગરની પેઠે વસ્તુસામર્થ્યથી પ્રતિબિમ્બ પડે છે. પણ દર્પણની રેખાનું જેમ સર્વથા પ્રતિબિમ્બ પડતું નથી. જેમ જગત્ને વ્યાપીને રહેલા બ્રહ્મનુંયે પ્રતિબિમ્બ પડતું નથી. વળી, દ્વા સુવર્ણા સયુજા સચ્ચાયા સમાનં વૃક્ષં પરિષ્વજાતે । તયોરન્યઃ પિપ્પલં સ્વાદ્વત્યનશ્રનન્યો અભિચાકશીતિ બે પક્ષીઓ સાથે રહેનારા અને એક જ વૃક્ષ ઉપર બેઠેલા છે. તે બેમાંથી એક સ્વાદયુક્ત ફલને ખાય છે અને બીજો ખાતો નથી છતાં પ્રકાશે છે. આ શ્રુતિમાં ગ્રુપ કર્મના ફલનું ભક્ષણ કરનારો (કર્મફળને ભોગવનારો) છે એમ જણાવ્યું છે; ત્યારે જો પ્રતિબિમ્બ

માનવામાં આવે તો જે ક્રિયા બિમ્બ કરે તે જ પ્રતિબિમ્બમાં થતી હોવાથી એકની ક્રિયા એજ ઇતરની ક્રિયા હોવી જોઈએ, પણ એ પ્રત્યક્ષથી વિરુદ્ધ છે. આથી જ પ્રતિબિમ્બની કલ્પના શ્રુતિથી વિરુદ્ધ છે. એ જ રીતે ન્યાય (વ્યાસસૂત્ર)થીયે વિરુદ્ધ છે. ગુહાં પ્રવિષ્ટમાત્માનો હિ તદ્દર્શનાત્ આ સૂત્રમાં જીવ અને ઇશ્વર એ બન્નેની એક જ હૃદયગુહામાં સ્થિતિ જણાવી છે, તેમ જ મમૈર્વાંશો જીવલોકે અને ઉત્ક્રામન્તં સ્થિતંવાપિ ઇત્યાદિ ગીતાવાક્યથીયે વિરુદ્ધ છે. એ રીતે પ્રતિબિમ્બકલ્પના શ્રુતિ, સૂત્ર અને સ્મૃતિ એ ત્રણેથી અને પ્રત્યક્ષથીયે વિરુદ્ધ છે. (વિસ્તાર માટે આપરણભડગ અને વિદ્વન્મહાશય જુઓ.)

એ રીતે પ્રમાણથી પ્રતિબિમ્બવાદમાં બાધ જણાવીને યુક્તિઓથી ચે બાધ દેખાડે છે -

જીવહાનિસ્તદા મુક્તિર્જીવન્મુક્તિર્વિરુદ્ધયતે ।

લિઙ્ગસ્ય વિદ્યમાનત્વાદવિદ્યાયાં તતોઽપિ હિ ॥૫૧॥

ત્યારે, (જો જીવને પ્રતિબિમ્બ માનીએ ત્યારે) જીવસ્વરૂપનો નાશ એ જ મુક્તિ કહેવાશે. લિઙ્ગશરીર વિદ્યમાન હોવાથી જીવન્મુક્તિ વિરુદ્ધ થશે. જો અવિદ્યામાં પ્રતિબિમ્બ છે એમ કહેવાય તો પણ એ જ બાધ કાયમ રહે છે.

પ્રતિબિમ્બપક્ષમાં જીવસ્વરૂપની હાનિ એ જ મુક્તિ થશે. તેથી આત્મહાનિ થતાં પુરુષાર્થનો ભંગ થાય અને મોક્ષ પુરુષાર્થ બની શકે નહિ. અથવા જીવની અશક્તતા સિદ્ધ થતાં આસુર બ્રહ્મવિદ્યામાં પ્રવેશ થાય. તેમ જ લિઙ્ગ વિદ્યમાન હોવાથી જીવન્મુક્તિ પણ ઘટે નહિ. પ્રતિબિમ્બ ક્યાં પડે છે, એવો પ્રશ્ન ઉદ્ભવતાં અન્તઃકરણ કે અવિદ્યામાં પ્રતિબિમ્બ પડે છે એમ કહી શકાય. પણ એ બન્ને અશુદ્ધ હોવાથી તેમાં પ્રતિબિમ્બ સિદ્ધ થઈ શકતું નથી. છતાં પણ એમ માનીએ કે પ્રતિબિમ્બ પડે છે, તો લિઙ્ગપક્ષમાં ઉપાધિ વિદ્યમાન હોવાથી સંસાર જ પ્રાપ્ત થાય અથવા પરમ મુક્તિ પ્રાપ્ત થાય. પણ જીવન્મુક્તિ તો કોઈ રીતે સમ્ભવી શકે નહિ. તેથી અવિદ્યામાં પ્રતિબિમ્બ વિરુદ્ધ જ છે.

હવે જો એમ કહેવામાં આવે કે જીવન્મુક્ત એ મુક્ત જ છે, તો તેમાંયે દોષ દેખાડે છે.

અધિષ્ઠાતુર્વિનષ્ટત્વાન્ન દેહઃ સ્પન્દિતું ક્ષમઃ ।

પ્રારબ્ધમાત્રશેષત્વે સુષુપ્તસ્યેવ ન વ્રજેત્ ॥૬૦॥

જેમ સુતેલા પુરુષનો દેહ (અવિદ્યા અથવા લિઙ્ગશરીરના લયને લીધે) પ્રારબ્ધમાત્રથી ચાલતો નથી, તેમ જીવન્મુક્તિમાં અધિષ્ઠાતા (લિઙ્ગશરીર અથવા

અવિદ્યા)ના નાશને લીધે દેહ ચાલવાને માટે શક્તિમાન થતો નથી.

વાદી એમ કહે કે જીવન્મુક્ત મુક્ત જ છે, ત્યાં કહે છે કે જો જીવને પ્રતિબિમ્બ માનીએ તો અધિષ્ઠાતા (લિઙ્ગશરીર કે અવિદ્યા)નો નાશ થવાથી સ્થૂલ દેહ ચાલી શકવાને સમર્થ થતો નથી, પણ મુક્ત પુરુષને ગતિ, કૃત્યાદિ જોવામાં આવે છે. કદાપિ વાદી એમ શંકા કરે કે પ્રારબ્ધમાત્રથી દેહ રહે છે, કેમકે દૈવાદુષેતમુત-દૈવવશાદપેતમ્ પ્રારબ્ધ કર્મથી કોઈ વખત દેહ વસ્ત્રાદિયુક્ત હોય છે, અને કોઈ વખત વસ્ત્ર વગરનો હોય છે, એ વાક્યમાં પ્રારબ્ધ બતાવેલું છે, તેના ઉત્તરમાં કહે છે કે તે વખતે અધિષ્ઠાતા વિદ્યમાન હોય છે, પણ મુક્ત પુરુષને તેનું (લિઙ્ગશરીરનું) અનુસન્ધાન હોતું નથી. પ્રારબ્ધ દેહની વિદ્યમાનતા જ સમ્પાદન કરી શકે છે, પણ અધિક ભોજનાદિ કાર્ય સમ્પાદન કરી શકાતું નથી. સુષુપ્તિમાં લિઙ્ગશરીરના લયથી તે પ્રમાણે જણાય છે, માટે જીવ આભાસ કે પ્રતિબિમ્બ નથી.

તત્ત્વમસ્યાદિવાક્યસ્ય શોધિતસ્યાપિ યુક્તિઃ તઃ ।

ન વિદ્યાજનને શક્તિરન્યાર્થ તદ્દ કીર્તિતમ્ ॥

બ્રહ્મણઃ સર્વરૂપત્ત્વમવયુજ્ય નિરૂપિતમ્ ॥૬૧॥

યુક્તિમાત્રથી શોધિત તત્ત્વમસ્યાદિ વાક્યથી વિદ્યા ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિ નથી, પણ તે વાક્ય અન્ય પ્રયોજનને માટે જ કહેલું છે, એટલે વાક્યથી જડ અને જીવનું પૃથક્ નિરૂપણ કરીને બ્રહ્મનું સર્વરૂપત્વ નિરૂપણ કરેલું છે.

જીવબ્રહ્મના એક્યની અન્યથા અનુપપત્તિથી તત્ત્વમસ્યાદિ વાક્યાનુસાર બિમ્બને પ્રતિબિમ્બનું એક્ય ઘટે છે, માટે બિમ્બપ્રતિબિમ્બત્વકલ્પના કરાય છે, એ શંકાનો અનુદય કરવાને માટે કહે છે કે તત્ત્વમસિ એ વાક્ય મહાવાક્ય નથી. આ વાક્ય છાન્દોગ્યોપનિષદમાં શ્વેતકેતુ ઉપાખ્યાનને વિષે છે. તેમાં અપિ વા તમાદેશમપ્રાક્ષો યેનાડશ્રુતં શ્રુતં ભવતિ ઇત્યાદિ વાક્યના ઉપક્રમમાં એક વિજ્ઞાનથી સર્વવિજ્ઞાન થાય છે એમ કહેલું છે, તે જો એક જ સર્વ નામરૂપાત્મક હોય તો સમ્ભવે છે. જેમ સોનાના ખણડ (કટકા), સોનાના ઘાટ, બધું સોનું છે. એ પ્રકારે સોનાના જ્ઞાનથી તેનું જ્ઞાન થાય છે, અને તેને માટે જ (એક જ્ઞાનથી સર્વ વિજ્ઞાનને માટે) સદેવ સૌમ્યથી આરમ્ભી ‘‘ૐતદાત્મ્યમિદં સર્વમ્ તત્ત્વત્વમ્ સ આત્મા તત્ત્વમસિ’’ એ પ્રમાણેનું સમ્પૂર્ણ મહાવાક્ય છે. એ સઘળા વાક્યથી સર્વ જડ વસ્તુનું બ્રહ્માત્મકત્વ કહેલું છે, અને તત્ સત્ય એ વાક્યથી જડગત (નશ્વરાદિ) દોષોનો પરિહાર કરેલો છે, અને પૂર્વ અને ઉત્તર, જડ અને જીવનું સદાત્મકત્વ

હોવામાં સ આત્મા તે આત્મા છે એમ મધ્યમાં હેતુ બતાવેલો છે. આ પ્રકારે જડનું સદાત્મકત્વ કહીને તત્ત્વમસિ એટલા વાક્યથી જીવનું પણ શ્રુતિ સદાત્મકત્વ કહે છે. આ ઉપદેશ છે, એ વાત આવૃત્તિરસકૃપદેશાત્ એ સૂત્રથી સિદ્ધ થાય છે. એતદાત્મ્યમ્ એ વાક્યમાં જેમ સદંશમાં ભાગત્યાગ લક્ષણા નથી, તેમ ચિદંશમાં પણ ભાગત્યાગ લક્ષણા નથી એમ જાણવું. શ્વેતકેતુ ભગવદવતાર છે એમ પણ જાણવું નહિ, તે ભગવદવતાર છે એમ કહીએ તો પૂર્વે સ્તબ્ધત્વ આદિ દોષ કહેલા છે તેનો વિરોધ આવે. સમગ્ર વાક્ય બ્રહ્મવાક્ય હોવાથી તેનો તત્ત્વમસિ એટલો એક દેશ જીવબ્રહ્મના એક્યનો બોધ કરાવતો નથી. બોધ કરાવે છે એમ કહેવાથી વાક્યભેદ થાય, અને ઉપક્રમનો વિરોધ આવે. કેટલાક તત્ત્વસ્યંથી આરમ્ભીને આઠ પદનું મહાવાક્ય કહે છે, માટે એ કહેવું પણ ઉપર પ્રમાણે દૂષિત છે.

અતત્ત્વમસિ એ પ્રકારનો અર્થ તો યેદિકને સમ્મત નથી. આ વાક્ય અન્ય પ્રયોજનને માટે કહેવાથી તેમાં વિદ્યા ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિ નથી. જડ અને જીવને પૃથક્ બતાવીને સર્વ બ્રહ્મ છે એ પ્રકારે કહેવાને માટે જીવની બ્રહ્મરૂપતાનું નિરૂપણ કરેલું છે. ત્યાં વાદી એમ કહે કે ભલે વાક્યભેદ હો, તેમ હોવાથી એટલું જ વાક્ય જીવની બ્રહ્મતાનો બોધ કરે છે. જીવની બ્રહ્મતા સાક્ષાત્ નહિ ઘટવાથી ભાગત્યાગલક્ષણાથી અખણ્ડ વાક્યાર્થનો બોધ કરે છે. ત્યાં કહે છે કે બહુ સારું કર્યું કે બુદ્ધિમાન પુરુષમાં બગલાને બાંધવાનો પ્રયાસ માગ્યો. ઉપદેશનું કલ શું એનો વિચાર કરવો જોઈએ. એ વાક્ય વડે થયેલ બ્રહ્મભાવથી અધિક ધર્મ થઈ શકતો નથી. દેહાદિભેદબોધક સાધ્વ્યાદિસ્મૃતિથી દોષ નિરાકરણનો સમ્ભવ હોવાથી પ્રકરણભેદનો પણ અંગીકાર કરીને મહાવાક્યથી ઉપદેશનો પ્રયાસ વ્યર્થ છે.

અલૌકિકં તત્ત્વમેયં ન યુક્ત્યા પ્રતિપદ્યતે ।

તપસા વેદયુક્ત્યા ચ પ્રસાદાત્પરમાત્મનઃ ॥૬૨॥

વિદ્યાં પ્રાપ્નોત્યુરુક્લેશઃ ક્લયિત્ સત્યયુગે પુમાન્ ।

સર્વજ્ઞત્વં ચ તસ્યેહં લિઙ્ગં તેજોપ્યલૌકિકમ્ ॥૬૩॥

તત્પ્રાપ્તાવપિ નો મુક્તિર્જાગ્રત્સ્વપ્નવદુદ્ભવઃ ।

અવિદ્યાવિદ્યયોસ્તસ્માદ્વજનં સર્વથા મતમ્ ॥૬૪॥

તે પ્રમેય અલૌકિક છે. તે લૌકિકશક્તિથી જાણી શકાતું નથી. પણ તપ વેદાનુકૂલયુક્તિ તથા પરમાત્માના પ્રસાદ થકી જાણી શકાય છે. પુરુષ ઘણા કલેશથી કોઈ દેશમાં સત્યયુગમાં વિદ્યા પ્રાપ્ત કરે છે.

અને તેનું (વિદ્યાનું) ચિન્હ સર્વજ્ઞત્વ અને અલૌકિક તેજ છે. તે પ્રાપ્ત થવાથી

પણ મુક્તિ થતી નથી. જેમ જાગ્રત્ અને સ્વપ્નનો પરસ્પર ઉદ્ભવ થાય છે, તેમ વિદ્યા અને અવિદ્યાનો ઉદ્ભવ થાય છે, માટે મુક્તિને સાર્વ પ્રકારે ભજન માનેલું છે.

વાદી જો એમ કહે કે, એમ ન હોય તો શ્રુતિ અભેદનો કેમ ઉપદેશ કરે છે ? એ શંકાના નિરાસને માટે કહે છે કે લૌકિકવસ્તુ લૌકિકયુક્તિથી જાણાય છે. બ્રહ્મ તો યેદિક છે, તેથી વેદપ્રતિપાદિત બ્રહ્મનું જ્ઞાન શબ્દના સાધારણ પ્રકારથી થતું નથી, પરંતુ તે જાણવાને માટે બીજું સાધન છે. તે સાધનમાં પ્રથમ તપ છે અને બીજું સાધન વેદયુક્તિ છે અને ભગવત્પ્રસાદ એ મુખ્ય કારણ છે, તપ અને વેદાનુકૂલયુક્તિથી પણ ભગવત્પ્રસન્નતા વગર પ્રમેય (બ્રહ્મ) જાણી શકાતું નથી. કોઈ દેશમાં સત્યયુગમાં પચ્યાઙ્ગસમ્પત્તિ પ્રાપ્ત થાય ત્યારે વાક્યાર્થજ્ઞાનથી વિદ્યા પ્રાપ્ત થાય છે. એમ ન હોય તો કેં બ્રહ્મ, ચં બ્રહ્મ એ ઉપાખ્યાનમાં ઉપદેશમાત્રથી બોધ કેમ થાય અને હાલના પુરુષોને તેથી કેમ બોધ થતો નથી ? એથી સિદ્ધ થાય છે કે પાંચે અંગ (જેનું વર્ણન પાછળ શ્લોક ૪૫ માં કરેલું છે.) હોય તો જ વાક્યથી જ્ઞાન થાય છે. આ વખતના પુરુષને પણ જ્ઞાન થાય છે એમ વાદી કહે તો તેના ઉત્તરમાં કહેવામાં આવે છે કે જ્ઞાન થયાનાં બે ચિહ્ન છે, તેમાંનું એક પોતાને જાણાય છે અને બીજું બીજાઓને જાણાય છે. એ બે ચિહ્ન સર્વજ્ઞત્વ અને અલૌકિક તેજ છે. સર્વજ્ઞત્વ પોતાને જ માલમ પડે છે અને અલૌકિક તેજ બીજાઓને માલમ પડે છે.

વળી વાદી એમ કહે કે વાક્યાર્થજ્ઞાનમાં જ ભક્તિનો ઉપદેશ કહ્યો, તેથી શાસ્ત્રપર્યવસાન વિદ્યામાં છે, પણ ભક્તિમાં નથી. એના ખુલાસામાં કહે છે કે ઉપનિષદ્ વાક્ય વડે મહાવાક્યાર્થરૂપ વિદ્યા પ્રાપ્ત કરવાથી પણ બ્રહ્મભાવ કે, સાયુજ્ય થતું નથી, કેમ કે જેમ જાગરણ અને સ્વપ્ન પરસ્પર કાલે કરીને આવિર્ભાવ અને તિરોભાવને પામે છે, તેમ જ વિદ્યા અને અવિદ્યા બન્ને એકબીજાનું મર્દન કરે છે. વિદ્યાના ઉપમર્દનથી ફરીથી અવિદ્યાનો આવિર્ભાવ થાય છે, માટે ભગવદ્ભજનને અભાવે વિદ્યાને માટે કરેલો પ્રયાસ વ્યર્થ છે. તે કારણથી સ્વતંત્રભક્તિ અથવા સાયુજ્યને માટે સર્વ પ્રકારે ભજન માનેલું છે.

સંધિદાનન્દરૂપં તુ બ્રહ્મ વ્યાપકમવ્યયમ્ ।

સર્વશક્તિ સ્વતંત્રં ચ સર્વજ્ઞં ગુણવર્જિતમ્ ॥૬૫॥

બ્રહ્મ સચ્ચિદાનન્દરૂપ, વ્યાપક, નાશરહિત, સર્વશક્તિમાન, સ્વતંત્ર, સર્વજ્ઞ, પ્રાકૃત ગુણરહિત છે.

એ પ્રકારે જીવપ્રકરણ સમાપ્ત કરીને હવે બ્રહ્મપ્રકરણનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે. બ્રહ્મ એ શબ્દ જ્ઞાનક્રિયા ઉભયવિશિષ્ટને પરબ્રહ્મને બતાવનારો છે. (તે અક્ષરવાચક નથી પણ પુરુષોત્તમવાચક છે.) સર્વ ગુણોનું એક બ્રહ્મને વિષે નિયમન હોવાથી બ્રહ્મપદનો અર્થ વ્યાપક થાય છે. અવિનાશી વા અરેડ્યમાત્માઽનુચ્છિત્તિર્ધર્મા ઇત્યાદિ. (અરે ભેત્રેયી ! નિશ્ચય આ આત્મા અવિનાશી અને નાશ નહિ થાય એવા ધર્મવાળો છે) આ શ્રુતિથી બ્રહ્મ અવ્યય છે. આમાં સ્વરૂપ અને ધર્મ બન્નેનું શ્રુતિમાં અવિનાશીપણું કહેલું છે. યઃ સર્વજ્ઞઃ સર્વશક્તિઃ એ શ્રુતિથી બ્રહ્મ સર્વજ્ઞ અને સર્વશક્તિવાળું છે. જો બ્રહ્મ ધર્મ વગરનું હોય તો સર્વને અનુપાસ્ય, અપ્રાપ્ય અને અફલ થાય. બ્રહ્મ પૂર્ણજ્ઞાન ક્રિયાશક્તિયુક્ત હોવાથી સ્વતન્ત્ર છે. ય કાર વડે સર્વસ્ય વશી સર્વસ્યેશાનઃ એ શ્રુતિથી બ્રહ્મ સર્વને વશ કરે છે. તે પ્રાકૃત ગુણથી રહિત છે. એ પ્રકારે બ્રહ્મના છ ધર્મ, ૧ એશ્વર્ય, ૨ વીર્ય, ૩ યશ, ૪ શ્રી, ૫ જ્ઞાન, અને ૬ યૌગ્ય ગુણનું વર્ણન કર્યું.

સજાતીયવિજાતીયસ્વગતદ્વૈતવર્જિતમ્ ।

સત્યાદિગુણસાહસ્રૈર્યુક્તમૌત્પત્તિકૈઃ સદા ॥૬૬॥

સર્વાધારં વશ્યમાયમાનન્દાકારમુત્તમમ્ ।

પ્રાપ્તિકપદાર્થાનાં સર્વેષાં તદ્વિલક્ષણમ્ ॥૬૭॥

તે બ્રહ્મ સજાતીય, વિજાતીય, સ્વગત ભેદરહિત છે, અને નિત્ય સ્વાભાવિક સત્યાદિ હજારો ગુણથી યુક્ત છે.

સર્વના આધારભૂત, માયાને વશ રાખનાર, આનન્દાકાર, ઉત્તમ અને પ્રાપ્તિયુક્ત પદાર્થોના ગુણથી વિલક્ષણ છે.

વ્યાપક એટલે દેશ, કાળ અને વસ્તુથી અપરિચ્છિન્ન. જેનું વસ્તુપરિચ્છેદત્વ હોય તેનું વ્યાપકત્વ સમ્ભવતું નથી, માટે ત્રણ પરિચ્છેદનો નિષેધ કરવામાં આવે છે. સજાતીય જીવ, વિજાતીય જડ અને સ્વગત અન્તર્યામી એ ત્રણેને વિષે ભગવાન અનુસ્યૂત છે અને એ ત્રણ રૂપ પોતે જ થાય છે, તેથી તે વડે થતા ભેદથી રહિત છે. આ ઠેકાણે એ ત્રણેને વિષે અવતારની પેઠે બુદ્ધિ કરવી. આ પ્રકારે ભગવત્વ પ્રતિપાદન કરીને તન્ત્રમાં કહેલાં ભગવાનના ગુણો કહેવામાં આવે છે. સત્યં શૌષ્ઠં ઇત્યાદિ સ્તોકોમાં ભગવાનના સત્યાદિગુણોનું બોધન કરેલું છે. તે ગુણો સ્વાભાવિક છે અને સૃષ્ટિ પ્રલયાદિકમાં પણ વિદ્યમાન જ રહે છે. પૂર્વે કહેલા સત્યાદિ ગુણ યૌદિક છે, એમ બતાવવાને માટે ફરીથી શ્રુતિમાં કહેલા સત્યાદિ ગુણ યૌદિક છે, એમ બતાવવાને માટે ફરીથી શ્રુતિમાં કહેલા ગુણોનું સંક્ષેપથી વર્ણન કરવામાં આવે છે.

સેતુર્વિધરણઃ એ શ્રુતિથી બ્રહ્મ સર્વના આધારભૂત છે.

ગીતામાં બ્રહ્મને માયાનો સમ્બન્ધ કહેલો છે, તેથી બ્રહ્મ માયાને આધીન થાય એ શંકા દૂર કરવાને માટે મૂળમાં વશ્યમાયમ્ કહેલું છે. એ વાક્યથી બ્રહ્મને આધીન માયા છે એમ બતાવેલું છે. બ્રહ્મ સાકાર એટલે આનન્દાકાર અને અક્ષરથી ઉત્તમ છે. કારણના ધર્મો જ કાર્યમાં હોય છે, તો પણ કાર્યગત ગુણોમાં અન્યથા પ્રતીતિ થાય છે, તેની વ્યાવૃત્તિ (ભિન્નતા)ને માટે કહે છે કે પ્રાપ્તિયુક્ત સર્વ પદાર્થથી બ્રહ્મ વિલક્ષણ છે.

જગતઃ સમવાયિ સ્યાત્તદેવ ચ નિમિત્તકમ્ ।

કદાચિદ્રમતે સ્વસ્મિન્ પ્રપન્નેઽપિ ક્વચિત્ સુખમ્ ॥૬૮॥

તે જ બ્રહ્મ જગતનું સમવાયિ કારણ છે અને તે જ નિમિત્તકારણ છે. એ બ્રહ્મ કોઈ વખત પોતાના સ્વરૂપમાં રમે છે અને કોઈ વખત સુખથી પ્રપન્નમાં રમે છે.

આ પ્રકારે બ્રહ્મના ધર્મને કહીને તેનું કાર્ય કહે છે. સર્વ કાર્યરૂપ જગતનું બ્રહ્મ જ સમવાયિકારણ છે. ગાર્ગિબ્રાહ્મણમાં બ્રહ્મને વિષે સર્વ ઓતપ્રોત પ્રસિદ્ધ છે અને સર્વનું નિમિત્તકારણ પણ એ બ્રહ્મ જ કહેલું છે, તેમ જ કર્તા પણ બ્રહ્મ છે. પ્રપન્નના નિર્માણનું એ કારણ છે કે જે વખતે પ્રપન્નમાં રમણની ઇચ્છા થાય, તે વખતે બ્રહ્મ પ્રપન્નનો વિસ્તાર કરે છે અને પોતાને વિષે રમણની ઇચ્છા થાય ત્યારે પ્રપન્નને પોતાને વિષે લીન કરે છે.

યત્ર યેન યતો યસ્ય યસ્મૈ યદ્યદ્યથા યદા ।

સ્યાદિદં ભગવાન્ સાક્ષાત્ પ્રધાનપુરુષેશ્વરઃ ॥૬૯॥

જેને વિષે, જે વડે, જેના થકી, જે સમ્બન્ધી, જેને અર્થે અને જે જે પ્રકારે જ્યારે થાય છે, ત્યારે તે સર્વ પ્રધાન પુરુષના નિયન્તા સાક્ષાત્ ભગવાન છે.

કાર્યાદિભાવ કોઈ અન્ય પદાર્થ છે, એમ શંકા થાય ત્યાં બ્રહ્મના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે. સાતે વિભક્તિના પ્રકારનો અર્થ ભગવાન જ છે. પ્રકૃતિ, પુરુષ અને કાળ પણ તે જ છે.

યઃ સર્વત્રેવ સન્તિષ્ઠન્તરઃ સંસ્પૃશોત્ર તત્ ।

શરીરં તં હિ વેદેત્યં યોઽનુવિશ્ય પ્રકાશતે ॥

સર્વવાદાનવસરં નાનાવાદાનુરોધિ તત્ ॥૭૦॥

અનન્તમૂર્તિં તદ્વદ્ય કૂટસ્થં ચલમેવ ચ ।

વિરુદ્ધસર્વધર્માણામાશ્રયં યુક્ત્યગોચરમ્ ॥૭૧॥

જે બ્રહ્મ સર્વને વિષે અન્દર સ્થિતિ કરતાં છતાં પણ સર્વ કાર્યને પોતાના

મધ્યમાં સ્થાપન કરે છે, તો પણ તે કાર્યને પોતે સ્પર્શ કરતા નથી. બ્રહ્મ સર્વને પોતાના શરીરરૂપ માની તેમાં પ્રવેશ કરીને પ્રકાશે છે, પણ શરીર એ પ્રકારે તેને જાણતું નથી. તે બ્રહ્મ કોઈપણ વાદનો વિષય નથી અને તે સર્વ વાદને અનુસરે છે. તે બ્રહ્મ અનન્તમૂર્તિ છે, કૂટસ્થ અને ચલ છે, તે સર્વ વિરુદ્ધધર્મોનો આશ્રય છે અને યુક્તિનો અવિષય છે.

એ પ્રકારે પૂર્વસ્થિતિ કહીને પછીની સ્થિતિ કહેવામાં આવે છે. બ્રહ્મ સર્વ પદાર્થમાં પોતે સ્થિતિ કરે છે, અને તેને પોતાના મધ્યમાં સ્થાપન કરે છે. એ પ્રમાણે આધાર અને વિદેયભાવ પોતે થાય છે, તોપણ કોઈ પદાર્થને પોતે સ્પર્શ કરતું નથી. કદાપિ એમ શંકા થાય કે તે પ્રમાણે અજ્ઞાનથી એમ થાય છે, તો તે શંકા દૂર કરવાને કહે છે કે, બ્રહ્મ સર્વ પદાર્થને પોતાના શરીરત્વે માને છે, તેથી સર્વ તેને જ્ઞાપક થાય છે, તોપણ તેને બ્રહ્મ સ્પર્શ કરતું નથી. ત્યારે એમ શંકા થાય કે ભગવાન આનંદનિધિ હોવાથી શરીર તેનો સ્પર્શ કરે, ત્યાં કહે છે કે, જે બ્રહ્મ શરીરમાં પ્રવેશ કરીને પ્રકાશે છે તેને શરીર જાણતું નથી. શ્રુતિમાં પણ કહેલું છે કે - યઃ પૃથિવ્યાં તિષ્ઠન્પૃથિવીમન્તરો યમયતિ યસ્ય પૃથિવી શરીરં યં પૃથિવી ન સ આત્મા અન્તર્યામ્યમૃતઃ

જે પરમેશ્વર પૃથ્વીમાં સ્થિતિ કરતા પૃથ્વી થકી ભિન્ન છે, જેનું પૃથ્વી શરીર છે, તેને પૃથ્વી જાણતી નથી (બૃહદારણ્યક.) શ્રુત્યાદિભેદે વિષયનું જુદા જુદા પ્રકારનું પ્રતિપાદન હોવાથી. અન્યોન્ય વિરોધ વડે તેમને વિષે કાંઈ પણ પ્રમાણ થશે નહિ, એશંકાના ખુલાસામાં કહે છે કે, સર્વભવન સામર્થ્ય વડે બ્રહ્મ વિરૂદ્ધ ધર્માશ્રય હોવાથી શ્રુતિઓમાં જુદાં જુદાં વાક્યની એકવાક્યતા નિરૂપણ કરેલી છે. વાદીનાં વાક્યો બ્રહ્મના જુદા જુદા અંશને પ્રતિપાદન કરનારાં નથી, કેમ કે વાદીના હૃદયનો અભિપ્રાય તેવો નથી, માટે સર્વવાદ સ્વભ્રાન્તિકલ્પિત હોવાથી વસ્તુ સ્પર્શ નહિ કરવાને લીધે, બ્રહ્મ, તે વાદનો વિષય થતું નથી. કદાપિ એમ શંકા કરે કે વાદીનું હૃદય જે પ્રમાણે હોય તે પ્રમાણે સરસ્વતીરૂપ વાક્યની એકવાક્યતા કેમ ન થાય ? એ શંકા દૂર કરવાને માટે કહે છે કે, નાના પ્રકારના વાદને અનુસરનારું પણ બ્રહ્મ જ છે. એક એક વાદ બ્રહ્મના એક એક ધર્મ પ્રતિપાદક એક એક વાક્યનું અંગ છે. એ પ્રકારે ભગવાન સર્વ વાદોને અનુસરે છે.

બ્રહ્મને વિષે વિરૂદ્ધ ધર્મો છે, તે જણાવવાને માટે કહે છે કે બ્રહ્મ અનન્તમૂર્તિ છે. વ્યાપકત્વ એકત્વ બતાવે છે, અને અનન્તમૂર્તિ બહુત્વ બતાવે છે. આ પ્રકારે પરસ્પરવિરુદ્ધ ગુણ કહીને વિરુદ્ધ ક્રિયા કહે છે. બ્રહ્મ કૂટસ્થ (સ્થિર) છે, અને

ચલાયમાન (ગતિ વાળું) પણ છે. મૂલમાં એવકાર છે તે સગુણાદિભેદને જણાવે છે, તેમજ ચક્રારથી નહિ કહેલા વિરુદ્ધ ધર્મો સમજી લેવા. વાક્યની પેઠે બ્રહ્મમાં પણ વિરોધની શંકા થાય તેના સમાધાનને માટે સ્પષ્ટ કહે છે કે જેમ પૃથ્વી સહજવિરુદ્ધ જીવોનો (ઉંદર-બિલાડી વગેરેનો) આધાર છે, તેમ બ્રહ્મ સર્વ વિરુદ્ધધર્મોનો આધાર છે. પૃથ્વીમાં જે વિરુદ્ધધર્મોનો આધાર જણાય છે, તે કારણનો એટલે બ્રહ્મનો જ છે. વિશેષ વડે લોકિકયુક્તિનાં વિષય બ્રહ્મ નથી, કેમ કે તે લોકિક યુક્તિથી જાણાતું નથી.

આવિર્ભાવતિરોભાવૈર્મોહનં બહુરૂપતઃ ॥

इन्द्रियाणां तु सामर्थ्याददृश्यं स्वेच्छया तु तत् ॥૭૨॥

આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ વડે બહુરૂપથી બ્રહ્મ મોહ ઉત્પન્ન કરે છે તે ઇન્દ્રિયોના સામર્થ્યથી અદ્રશ્ય જ છે, અને પોતાની ઇચ્છાથી દ્રશ્ય પણ છે.

કોઈ એમ શંકા કરે કે અવતારને વિષે શ્રુતિ બ્રહ્મત્વ કહે છે. અવતાર જેમ લોકિક પ્રમાણનો વિષય થાય છે તેમ બ્રહ્મ લોકિકયુક્તિનો પણ વિષય થાય. આ શંકાના ખુલાસામાં કહે છે કે આવિર્ભાવ એટલે અવતાર. અર્થાત્ મત્સ્યાદિરૂપ વડે પ્રાકટ્ય થયું તે. તિરોભાવ એટલે અવતારની સમાપ્તિ. આવિર્ભાવ બહુ પ્રકારના છે. કોઈ વખત ભગવાન સ્થાવર થકી પ્રકટ થાય છે, કોઈ વખત જડ્ગમ થકી પ્રકટ થાય છે, અને કોઈ વખત સ્થાવર જડ્ગમ સિવાય સ્વતઃપ્રકટ થાય છે. આ બધા પ્રકાર નટની પેઠે મોહ કરનારા છે, તેથી ભગવાન લોકિકયુક્તિનો વિષય થતા નથી, કેમ કે કોઈ પણ લોકિક મત્સ્ય એક દિવસમાં સો યોજન વધી શકતો નથી, તેમ લોકિક વરાહ સાણવારમાં પર્વતસમાન રૂપવાળો થઈ શકતો નથી, માટે બ્રહ્મને લોકિકયુક્તિનું વિષયત્વ કહેવું એ ભ્રાન્તિ છે. કદાપિ એમ શંકા કરવામાં આવે તો. કૃષ્ણાદિ અવતારો સર્વ મનુષ્યોએ દીઠેલા છે, તો તેથી બ્રહ્મ લોકિક પ્રમાણનો વિષય થયું, એ શંકાની નિવૃત્તિને માટે કહે છે કે, યક્ષ પોતાના સામર્થ્ય વડે ભગવાનને જોઈ શકતું નથી પણ મને સર્વ જુઓ એવી ભગવાનની ઇચ્છા થાય ત્યારે જોઈ શકે છે.

आनन्दरूपे शुद्धस्य सत्त्वस्य फलनं यदा ।

तदा मरकतश्याममाविर्भावे प्रकाशते ॥૭૩॥

આનન્દરૂપ બ્રહ્મને વિષે જ્યારે શુદ્ધ સત્ત્વનું ફલન (પ્રભા પડવી) થાય છે ત્યારે આવિર્ભાવમાં એટલે અવતારમાં મરકત (મણિ)ના સરખું શ્યામ બ્રહ્મ પ્રકાશે છે.

કોઈ શક્તિ કરે કે રૂપવાળું દ્રવ્ય ચક્ષુનો વિષય છે. તો બ્રહ્મ મહત્ અને અદ્ભુત રૂપવાળું હોવાથી ચક્ષુનો વિષય કેમ ન થાય ? ત્યાં કહે છે કે બ્રહ્મને વિષે આનન્દજ રૂપસ્થાનીય છે. તેને વિષે (એ આનન્દને વિષે) ભગવાન્ના આસનત્વપડે સ્ફુરિત થયેલા દેવતારૂપ શુદ્ધ સત્ત્વનું પ્રતિફલન (પ્રતિબિમ્બ) થવાથી એ આનન્દ નીલમેઘના જેવો જણાય છે. જેમ સ્ફટિક શ્વેત પાષાણરૂપ હોવા છતાં પણ જ્વાલુકુસુમનું રક્તપણું ગ્રહણ કરીને પાષાણ થકી પોતાનું જુદું રૂપ દેખાડે છે, તેમ બ્રહ્મ પણ જગત્ને વિષે પ્રકટ હોવા છતાં સત્ત્વગુણની શ્યામતા ગ્રહણ કરીને પોતાનું બ્રહ્મત્વ જણાવે છે. સત્ત્વ, રજ અને તમોગુણની શ્યામ, રક્ત, અને શ્વેતતાનો વિષ્ણુ, બ્રહ્મા અને શિવના વર્ણથી નિર્ણય થાય છે.

ચતુર્યુગેષુ ચ તથા નાનારૂપવદેવ તત્ ॥

ઉપાધિકાલરૂપં હિ તાદૃશં પ્રતિબિમ્બતે ॥૭૪॥

જે રીતે ગુણાવતારમાં બ્રહ્મનાં જુદાં જુદાં રૂપ છે, તે રીતે ચાર યુગમાં પણ બ્રહ્મ જુદા જુદા રૂપવાળું જ જણાય છે, કારણ કે જુદા જુદા રૂપવાળું ઉપાધિરૂપ કાળનું સ્વરૂપ બ્રહ્મમાં પ્રતિબિમ્બિત થાય છે.

કૃતયુગમાં બ્રહ્મ શુકલવર્ણનું અને ચતુર્બાહુવાળું જણાય છે. તેમ જણાવવામાં કારણ એ છે કે સત્યાદિયુગાભિમાની દેવતાનું રૂપ બ્રહ્મમાં પ્રતિબિમ્બિત થાય છે, તેથી કાળભેદને લીધે રૂપનો ભેદ થાય છે, અર્થાત્ સત્યયુગમાં કાળનું રૂપ શ્વેત હોય છે, તે કારણથી સત્યયુગમાં બ્રહ્મનું રૂપ શ્વેત જણાય છે. તેમજ ત્રેતામાં કાલનો વર્ણ રક્ત, દ્વાપરમાં શ્યામ, અને કલિયુગમાં કૃષ્ણ હોય છે, તેથી બ્રહ્મનું રૂપ તે તે યુગમાં તે તે વર્ણનું ભજનારને પ્રતીત થાય છે.

અથવા શૂન્યવદ્ ગાઢં વ્યોમવદ્ બ્રહ્મ તાદૃશમ્ ॥

પ્રકાશતે લોકદૃષ્ટ્યા નાઽન્યથા દૃક્ સ્પૃશેત્ પરમ્ ॥૭૫॥

અનપગાહ્ય બ્રહ્મ શૂન્ય અને આકાશની પેઠે લોક દૃષ્ટિથી નીલ પ્રકાશિત થાય છે, બીજે પ્રકારે દૃષ્ટિ પરબ્રહ્મને સ્પર્શ કરી શકતી નથી.

મેઘાદિરહિત આકાશદેશમાં નીલત્વ પ્રતીત થાય છે. ચક્ષુ રૂપવાળા દ્રવ્યને ગ્રહણ કરે છે અને દ્રવ્ય ન હોવાથી દૂર જઈ નીલવર્ણ જેવું જુએ છે, તેટલાથી આકાશ કે અન્ધકારમાં રૂપ છે એમ સમજવું નહિ. તેવી રીતે બ્રહ્મ પણ ગમ્ભીરતા વડે લોકદૃષ્ટિથી નીલ જેવું પ્રતીત થાય છે. પૂર્વ પક્ષ કરતાં આ પક્ષ શ્રેષ્ઠ છે, કેમ કે ઇન્દ્રિયો બહારગમન કરનાર છે, તેથી પરમાત્માને ચક્ષુ સ્પર્શ કરી શકતું નથી. જો ચક્ષુ સ્પર્શ કરી શકે તો બ્રહ્મનું પરત્વ ઘટે નહિ.

આત્મસૃષ્ટેર્ન વૈષમ્યં નૈર્ઘ્ણ્યં ચાપિ વિદ્યતે ।

પક્ષાન્તરેડપિ કર્મ સ્યાન્નિયતં તત્પુનર્બુદ્ધત્ ॥૭૬॥

બ્રહ્મના સ્વરૂપનીજ સૃષ્ટિ હોવાથી સૃષ્ટિ રચવાથી બ્રહ્મમાં યેષમ્ય નેર્ઘ્ણ્યદોષ પણ આવતો નથી. મતાન્તરમાં કર્મનો સ્વીકાર કરવામાં આવે છે, પણ કર્મના સ્વરૂપનો વિચાર કરીએ તો કર્મ પણ બ્રહ્મ જ છે.

આ પ્રકારે લોકિકદોષનો પરિહાર કરી સૃષ્ટિ કરવાથી વિષમતા અને નિર્દયપણું પ્રાપ્ત થાય તેનો પરિહાર કરે છે. સ આત્માનં સ્વયમકુરુત એ શ્રુતિમાં પોતાના સ્વરૂપથી સૃષ્ટિ હોવાથી જગત્માં નાના પ્રકારના દેહોને ઉત્પન્ન કરતા છતાં પણ ભગવાન્ પોતે વિષમ થતા નથી, તેમ ફૂર કર્મ કરવા છતાં પણ નિર્દય થતા નથી. મૂલમાં ચકાર થકી બીજા દોષનો પણ પરિહાર સમજી લેવો. મતાન્તરમાં યેષમ્ય નેર્ઘ્ણ્યનો પરિહાર કરવા માટે કર્મનો સ્વીકાર કરવામાં આવે છે. કર્મના સ્વરૂપનો જો વિચાર કરીએ તો, કર્મ બ્રહ્મ થકી અભિન્ન છે, તેથી તેનો તે દોષ કાયમ રહે છે. કર્મને બ્રહ્મના સ્વરૂપ થકી ભિન્ન ગણીએ તો બ્રહ્મ કર્માદીન થવાથી અસ્વતન્ત્ર થાય છે. કર્મને આદીન જ જો સુખ દુઃખ થતું હોય તો ઇશ્વરકારણતા સમ્ભવે નહિ, અને ગીતાગ્રમાં સુખં દુઃખં ભવોઽભાવો ભયં શ્ચાભયમેવ ચ એ શ્લોકથી કહ્યું છે કે સુખ દુઃખ વગેરે મારા થકી જ થાય છે, એ કહેવું સમ્ભવે નહિ. બ્રહ્મ લોકિક નહિ હોવાથી લોકની પેઠે તેમાં દૂષણ સ્થાપવું યુક્ત નથી. માટે આત્મસૃષ્ટિથી જ વિષમતા અને નિર્દયતાનો પરિહાર થાય છે. વૈષમ્યનૈર્ઘ્ણ્યે ન સાપેક્ષત્વાત્ એ સૂત્ર તો લોકબુદ્ધિ અનુસારે છે, એમ ન હોય તો ફલમત્ત ઉપપત્તેઃ ફલ ઇશ્વર થકી જ ઘટે છે, એ અધિકરણનો વિરોધ આવે.

સ એવ હિ જગત્કર્તા તથાપિ સગુણો ન હિ ॥

ગુણાભિમાનિનો યે વૈ તદંશાઃ સગુણાઃ સ્મૃતાઃ ।

કર્તા સ્વતન્ત્ર એવ સ્યાત્સગુણત્વે વિરુદ્ધયતે ॥૭૭॥

તે જ ભગવાન્ જગત્કર્તા છે તો પણ તે સગુણ નથી. જે દેવતાઓ ગુણાભિમાની કહેલા છે તે ભગવાન્ના અંશ છે, અને તેઓ સગુણ કહેવાય છે. કર્તા સ્વતન્ત્ર જ થાય છે. સ્વતન્ત્રતામાં સગુણત્વ વિરુદ્ધ છે.

વાદી એમ કહે છે કે ઇશ્વર ગુણને આદીન હોવાથી કર્માનુસારે જ કર્તા હોઈ શકે એ શક્તિનો નિરાસ કરવાને માટે કહે છે કે ઉચ્ચ નીચ સ્વભાવવાળા જગત્ને જે ઉત્પન્ન કરે છે તે જગત્કર્તા છે, પણ સગુણ નથી. કર્તા (ભગવાન્) સગુણ નથી એ સિદ્ધ કરવાને માટે ગુણનું લક્ષણ કહેવામાં આવે છે. ગુણ અભિમાનને



ઉત્પન્ન કરે છે. જેને દેહ ઇન્દ્રિય વગેરેનું અભિમાન ન હોય પણ ગુણનું અભિમાન હોય તોપણ તે સગુણ કહેવાય છે. ગુણો સૃષ્ટિના તેના પાલનના અને લયના હેતુભૂત છે. તે ગુણો અધિષ્ઠાતા દેવતા વગર કાર્ય કરી શકતા નથી, તેથી અધિષ્ઠાતા દેવતાઓ સગુણ કહેવાય છે, અને તે દેવતાઓ ભગવાનના અંશ છે એમ સ્મૃતિપુરાણથી સિદ્ધ થાય છે. નિયન્તા મૂલ કર્તા ભગવાન સગુણ નથી, કારણ કે કર્તા સ્વતન્ત્ર જ હોઈ શકે.

કેચિદત્રાતિવિમલપ્રજ્ઞાઃ શ્રૌતાર્થબાધનમ્ ।

કૃત્વા જગત્કારણતાં દૂષયન્તિ હરૌ પરે ॥૭૮॥

જેની નિર્મલબુદ્ધિ જતી રહેલી છે એવા કેટલાક પુરુષો શબ્દનાં મુખ્ય અર્થનો બાધ કરીને પરબ્રહ્મને વિષે જગત્ની કારણતા દૂષિત કરે છે.

આ પ્રકારે, પોતાનો મત સ્થાપન કરીને પરમતનું નિરાકરણ કરવાને માટે ભગવાનને સગુણ માનનારા પુરુષોનો ઉપહાસ કરે છે. શ્રુતિ એ મુખ્ય અથવા અભિધાવૃત્તિથી પ્રકરણાનુસારે જે અર્થ પ્રતિપાદન કરાય તેજ શ્રુત્યર્થ છે, તેમાં સદેવ સૌમ્યેદમગ્ર આસીત્, બ્રહ્મ વિદાપ્નોતિ પરમ્ ભૃગુર્વે વારુણિઃ, ઇત્યાદિ સન્દિગ્ધ બ્રહ્મપ્રકરણને વિષે કેવલ બ્રહ્મનું જ જગત્ કારણત્વ પ્રતિપાદન કરેલું છે, અને તેની પેઠે બીજાં સન્દિગ્ધ વાક્યોમાં વ્યાસે સૂત્રથી નિર્ણય કરી તેમાં પણ કેવલ બ્રહ્મનું જગત્કારણત્વ પ્રતિપાદન કરેલું છે, પરંતુ જેના થકી નિર્મલબુદ્ધિ જતી રહેલી છે એવા કેટલાક (દોઢાહ્યા) પુરુષો વાક્યાભાસ, અને ચુક્યાભાસને આગળ કરીને શ્રુતિ અને સૂત્રનો બાધ કરી બ્રહ્મની જગત્કારણતા દૂષિત કરે છે. જે બ્રહ્મ, શ્રુતિ, સૂત્રમાં જગત્ના કારણરૂપ કહેલું છે તે પુરુષોત્તમ છે.

અનાદ્યવિદ્યાયા વદ્દં બ્રહ્મ તત્કિલ કારણમ્ ।

સ્વાવિદ્યાયા સંસરતિ મુક્તિઃ કલ્પિતવાક્યતઃ ॥૭૯॥

અનાદિ અવિદ્યાથી બંધાયેલું બ્રહ્મ જગત્નું કારણ છે, અને તે બ્રહ્મ પોતાની અવિદ્યાથી સંસારને પામે છે. કલ્પિત વાક્યો થકી તેઓ મુક્તિ માને છે. આ પ્રમાણે તેઓ સર્વને અલીક માને છે.

હું અજ્ઞ હું એવા અનુભવથી સિદ્ધ થતી ભાવરૂપ અનાદિ અવિદ્યા છે, તેનાથી બંધાયેલું ચૈતન્ય તેના અધ્યાસ થકી જગત્નું કારણ છે, કારણ કે કારણ કાર્યાનુરૂપ હોવું જોઈએ. કાર્ય જડરૂપ જગત્ હેય અને તુચ્છ સ્વરૂપવાળું છે, માટે તેનું કારણ પણ તેવું જ હોવું જોઈએ. આવી રીતના ચુક્યાભાસો માયાવાદીઓ કરે છે. સિદ્ધાન્ત એવો છે કે સત્યં ચાડનૃતં ષ સત્યમભવત્, સ આત્માનં સ્વયમકુરુત, પ્રજાયેય

ઉપરની શ્રુતિઓ કાર્યરૂપ જગત્નું બ્રહ્મત્વ નિઃસન્દિગ્ધ રીતે પ્રતિપાદન કરે છે. બ્રહ્મવિત્ પુરુષોના હૃદયમાં કોઈ વખત જગત્ હેય (ત્યાગ કરવા લાયક) અથવા તુચ્છ છે એવી પ્રતીતિ થતી નથી. પુરુષને પોતાના અડ્ડગમાં પૃથક્ ભાન થવાથી તેવી તુચ્છ પ્રતીતિ થાય છે, અર્થાત્ જગત્ને બ્રહ્મ થકી જુદું જાણવાથી તેવી પ્રતીતિ થાય છે, પરંતુ શ્રુતિમાં બ્રહ્મ જગત્ થકી અભિન્ન છે એમ ન હોય તો બીજાદિકનું બ્રહ્મત્વ કથન મૂલ દષ્ટાન્તથી બાધિત થાય, એમ થવાથી સર્વ સન્માર્ગનો નાશ થાય. તેઓના વાક્યાભાસો શ્રુતિના એક દેશમાંથી ગ્રહણ કરેલા છે. એ વાક્યો નીચે મુજબ છે :-

ઇન્દ્રો માયાભિઃ પુરુરૂપ ઈયતે, અમૃતાપિધાનાઃ, વાચારમ્ભણં વિકારઃ, માયાં તુ પ્રકૃતિં વિદ્યાત્

તેઓને પદાર્થમાત્ર માયા છે. પરંતુ વાક્યના વિરોધથી તે વાક્યાભાસો વાક્યાર્થમાં યથાર્થ સમ્ભવતા નથી, માટે યથાર્થ અર્થમાં શ્રુતિમાં માયાશબ્દથી કોઈ ઠેકાણે ઇન્દ્રિયોની વૃત્તિ કહેલી છે. કોઈ ઠેકાણે માયાને પ્રથમ અથવા સૂક્ષ્મકાર્ય કહેલું છે. અનૂતશબ્દથી દેહે-ઇન્દ્રિયાદિક કહેલું છે, પણ આ ઠેકાણે આ વાક્યોમાં સ્વપ્નાદિના દષ્ટાન્તથી જગત્નું મિથ્યાત્વ કહેવું શક્ય નથી. મિથ્યા દષ્ટિ નાસ્તિકતા છે. અસુરો જગત્ માયા છે એમ કહે છે. અસત્યમપ્રતિષ્ઠં તેજગદાહુરનીશ્વરં આસુર પુરુષો જગતને પ્રતિષ્ઠા વગરનું, અને ઇશ્વરરહિત કહે છે. એ વાક્યોથી જગત્ના મિથ્યાત્વનો બાધ થાય છે. જગત્ના સત્યત્વને બતાવનાર હજારો વાક્યો છે. સ સમૂતં સ ભવ્યમ્, હરિરેવ જગત્, એ વાક્યો જગત્નું બ્રહ્મત્વ કહે છે.

જેઓ પોતાના ચિત્તના દોષથી જગત્ દુષ્ટ છે એમ જુએ છે, તેઓના સમાધિરહિત હૃદયમાં અવિદ્યાવાદ, શાસ્ત્રબાધિત હોવા છતાં, પ્રતીત થાય છે. તેઓના મતમાં બંધ અને મોક્ષ એવા છે કે ચૈતન્યનિષ્ઠ મલ, આપરણ અને વિક્ષેપરૂપ અનાદિ અવિદ્યાથી આત્માને સંસાર છે, અને કલ્પિત ગુરુના વાક્યથકી તેનો મોક્ષ છે.

एवं प्रतारणाशास्त्रं सर्वमाहात्म्यनाशकम् ।

उपेक्ष्यं भगवद्भक्तैः श्रुतिस्मृतिविरोधतः ॥

कलौ तदादरो मुख्यः फलं वै मुख्यतस्तप्तम् ॥૮૦॥

આ પ્રકારે સર્વ માહાત્મ્ય નાશ કરનારૂં પ્રતારણા શાસ્ત્ર શ્રુતિ અને સ્મૃતિ થકી વિરુદ્ધ હોવાથી ભગવદ્ભક્તોએ ઉપેક્ષા કરવા યોગ્ય છે. કલિયુગમાં તેનો આદર મુખ્ય છે, અને ભગવદ્દેવેમુખ્ય થકી ભાવિક્ષલ નરક છે.

કોઈ એમ કહે કે માયાવાદને અનુસરતો ઉપર કહ્યા પ્રમાણે શાસ્ત્રાર્થ હોય તો એમાં શો દોષ છે ? એ પ્રશ્નના જવાબમાં કહે છે કે, જેમ મનુષ્યો ભગવદ્ભિમુખ થાય તેમ તેમાં ઉપાય રચેલો છે, અને તેમાં કાંઈ જાણવા યોગ્ય વસ્તુ નથી. સર્વેશ્વર, સર્વકર્તા, સર્વ કારણના કારણરૂપ ઇત્યાદિ વચનોમાં જે ભગવન્માહાત્મ્યનું પ્રતિપાદન કરેલું છે તેનો તે શાસ્ત્રાર્થ નાશ કરે છે, માટે એ શાસ્ત્રાર્થ બધો લખી અને તેનું ખણ્ડન કર્યું એ યોગ્ય નથી, કારણ કે અસત્ ભાવનાવડે પોતાની બુદ્ધિનો નાશ થાય છે. ભક્તિમાર્ગમાં તે પ્રતારણા શાસ્ત્ર વિરુદ્ધ છે. માટે ભગવદ્ભક્તોએ તેની અત્યંત ઉપેક્ષા કરવી, તેમજ, આનન્દાદૈવ ચલ્વિમાનિ ભૂતાનિ જાયન્તે, અહં સર્વસ્ય જગતઃ પ્રભવઃ પ્રલયસ્તથા

ઇત્યાદિ હજારો શ્રુતિ સ્મૃતિ વાક્યોથી માયાવાદ વિરુદ્ધ છે. જે શ્રુતિ સ્મૃતિ થકી વિરુદ્ધ હોય તેમાં લોકોનો આદર કેમ થાય ? એ શંકાના સમાધાનમાં કહે છે કે, કલિયુગમાં પુરુષો ભગવદ્ભિમુખ હોવાથી તેમાં તેઓનો આદર થાય છે, અને તે થકી ભાવિક્લ તમ (નરક) છે.

જ્ઞાનનાશયત્વસિદ્ધયર્થ યદેતદ્વિનિરૂપિતમ્ ।

તદન્યથૈવ સંસિદ્ધં વિદ્યાવિદ્યાનિરૂપણૈઃ ॥૮૧॥

અવિદ્યાનું જ્ઞાનનાશયત્વ સિદ્ધ કરવાને માટે જગત્નું માયિકત્વ નિરૂપણ કરેલું છે, (એ કહેવું યોગ્ય નથી, કેમ કે) વિદ્યા અને અવિદ્યાના નિરૂપણથી જગત્ના માયિકત્વ વગર પણ તે (અવિદ્યાનું જ્ઞાનનાશયત્વ) સિદ્ધ થાય છે.

કદાપિ એમ કહેવામાં આવે કે આત્મજ્ઞાન થકી મોક્ષ સિદ્ધ થાય છે, અને જ્ઞાન, અજ્ઞાનનું નાશક હોવાથી, સત્કાર્ય અવિદ્યાનો નાશ કરવાને માટે જગત્નું માયિકત્વ પ્રતિપાદન કરાય છે. એ શંકા દૂર કરવાને માટે કહેવામાં આવે છે કે જગત્ના માયિકત્વ વિના પણ તે સિદ્ધ થઈ શકે છે. બ્રહ્મવિદ્યામાં પ્રપચ્ચનો વિલય અપેક્ષિત નથી, તેમ હોય તો પ્રલયની પેઠે તેમાં સર્વનો અનાદર થાય. આત્મજ્ઞાનથી અજ્ઞાન દૂર થાય છે એ વાત વિદ્યા અને અવિદ્યાને નિરૂપણ કરનાર સાધનશાસ્ત્રથી સિદ્ધ થાય છે. તેથી તેને માટે પ્રપચ્ચનો લય કહેવો યોગ્ય નથી. આ ઠેકાણે વિદ્યાં ચાવિદ્યાં ચ એ શ્રુતિ પ્રમાણભૂત છે હૃદયમાં પ્રકાશમાન ભગવાન્ મોક્ષ આપે, તેમાં પ્રપચ્ચલય કરવાનું કાંઈ પણ પ્રયોજન નથી.

યન્માયિકત્વકથનં પુરાણેષુ પ્રદશ્યતે ।

તદેન્દ્રજાલપક્ષેણ મતાન્તરમિતિ ધ્રુવમ્ ॥

નાસ્તિ શ્રુતિષુ તદ્વાર્તા દશ્યમાનાસુ કુત્રચિત્ ॥૮૨॥

પુરાણોમાં જે માયિકત્વ કથન દેખાય છે તે સૃષ્ટિભેદમાં ઇન્દ્રજાલપક્ષથી મતાન્તર છે એમ સમજવું દશ્યમાન શ્રુતિમાં કોઈ ઠેકાણે જગત્નું માયિકત્વ નથી.

પુરાણમાં પ્રપચ્ચનું માયિકત્વ સંભળાય છે. વિદ્ધિ માયા મનોમયમ્, ત્વય્યુદ્ધવાશ્રયતિ ઇત્યાદિ વાક્યોમાં જગત્નું માયિકત્વ પ્રતીત થવાથી બુદ્ધિસૌકર્યને માટે અડ્ગીકાર કરવો જોઈએ, આ શંકાના ખુલાસામાં કહે છે કે, પૂર્વે સૃષ્ટિના ભેદ નિરૂપણ કર્યા, તેમાં ઐન્દ્રજાલપક્ષનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. એ જ પક્ષ પુરાણમાં યેરાગ્યને માટે નિરૂપણ કરાય છે, પણ તે કથન વસ્તુ નિરૂપક નથી, કેમ કે તે મતાન્તર છે, અને અસુરને વ્યામોહ જનક છે. પુરાણ ભગવદ્ધીલાપ્રતિપાદક હોવાથી ભગવચ્ચરિત્રની પેઠે તે દેવોને મોહ ઉત્પન્ન કરે છે.

જો જ્ઞાન અથવા કર્મને માટે જગત્નું માયિકત્વ શ્રુતિસમ્મત હોય તો બેમાંથી એક કાણમાં કોઈ ઠેકાણે કહ્યું હોત. પેદની ૧૧ શાખાઓ હાલમાં ઉપલબ્ધ છે તેમાં કોઈ સ્થળે જગત્નું માયિકત્વ દેખાતું નથી.

વાચારમ્ભણવાક્યાનિ તદનન્યત્વબોધનાત્ ।

ન મિથ્યાત્વાય કલ્પ્યન્તે જગતો વ્યાસગૌરવાત્ ॥૮૩॥

(છાન્દોગ્યમાં કહેલાં) વાચારમ્ભણ વાક્યો બ્રહ્મથકી અભિન્નબોધ કરે છે, તેથી તે જગત્નું મિથ્યાત્વ પ્રતિપાદન કરતાં નથી. વ્યાસનું ગૌરવ હોવાથી બ્રહ્મ થકી જગત્ને અભિન્ન માનવું એ યોગ્ય છે.

કદાપિ એમ શંકા થાય કે સામવેદના છાન્દોગ્ય ઉપનિષદ્માં જ્ઞાનકાણ્ડમાં વાચારમ્ભણવાક્ય જગત્નું મિથ્યાત્વ પ્રતિપાદન કરે છે, ત્યાં કહે છે કે, એ વાક્યો જગત્નું મિથ્યાત્વ પ્રતિપાદન કરતાં નથી, પણ જગત્નું બ્રહ્મ થકી અભિન્નત્વ પ્રતિપાદન કરે છે. તેના ઉપક્રમમાં યથૈકેન મૃત્પિણ્ડેન એ દષ્ટાન્ત એક વિજ્ઞાનથી સર્વ વિજ્ઞાનની પ્રતિજ્ઞા છે, અને દષ્ટાન્તમાં કાર્ય અને કારણ બન્નેનું પ્રત્યક્ષત્વ છે. દાર્ષ્ટાન્તિકમાં કાર્ય પ્રત્યક્ષ છે, અને કારણ શ્રુતિ સિદ્ધ છે. કારણતાનો પ્રકાર પણ શ્રુતિસિદ્ધ છે, તેમાં કાર્ય અને કારણનો અભેદ બોધન કરવાને યોગ્ય છે. નહિ તો એક વિજ્ઞાનથી સર્વ વિજ્ઞાન પ્રકારભેદના અજ્ઞાન થકી ન થાય માટે કાર્યપ્રકાર વ્યવહારને માટે વાણીથી ઘટપટ એ પ્રકારે સંકેત કરેલા છે, પણ તે રૂપવડે તેનું વસ્તુત્વ નથી. તેમ હોય તો એક વિજ્ઞાનથી સર્વ વિજ્ઞાન ન થાય. સત્યતા તો કારણત્વવડે માટે કાર્યોનું કારણ થકી અનન્યત્વશ્રુતિ વડે બોધન મિથ્યાત્વ પ્રતિપાદન કરાતું નથી. જો એમ હોત તો શુક્તિ રજતનું જ દષ્ટાન્ત કહેત. ગોડવાર્તિકમાં કહ્યા પ્રમાણે ભ્રમો અનન્ત હોવાથી સાદશ્યભ્રમ પણ સમ્ભવતો

નથી. માટે વાચારમ્ભણવાક્યો મિથ્યાત્વ પ્રતિપાદન કરતાં નથી. તેવી જ રીતે સૂત્રકાર તદનન્યત્વમારમ્ભણશબ્દાદિભ્યઃ એ સૂત્રથી બ્રહ્મ થકી જગત્નું અભિન્નત્વ જ કહે છે. ત્યાં કોઈ એમ શંકા કરે કે વ્યાસ મહાન્ છે તેમ શંકરાદિ મહાન્ છે, તો શંકરમત થકી વિરોધનિર્ણય કેમ થઈ શકે ? ત્યાં કહે છે કે વ્યાસ અમારા ગુરુ છે, વ્યાસના અભિપ્રાયથી વિરુદ્ધ અમે અંગીકાર કરતા નથી.

જ્ઞાનાર્થમર્થવાદશ્ચેષ્ટુતિઃ સૃષ્ટ્યાદિરુપિણી ।

અનફીકરણાદ્યુક્તં વિધિમાહાત્મ્યયોર્ન તત્ ॥૮૪॥

સૃષ્ટ્યાદિને નિરૂપણ કરનારી શ્રુતિ જ્ઞાનને માટે અર્થવાદ છે એમ કહે તો, વિધિ ને માહાત્મ્યને વિષે તેનો અંગીકાર નહિ કરવાથી તે કહેવું સમ્ભવિત નથી.

કદાપિ એમ શંકા કરે કે સર્વનો વિચાર મહાન્ છે, તેમાં સૂત્રને વિષે કહેલા અથવા નહિ કહેલા, અથવા બેવાર કહેલા વિચારનું પણ વક્તવ્ય હોવાથી, ઉપર કહ્યા પ્રમાણે કેમ નિર્ણય થઈ શકે ? સૃષ્ટ્યાદિવાક્યો અર્થવાદરૂપ છે, તે વાક્યોનું સ્તુતિત્વ મુખ્ય છે. સૃષ્ટ્યાદિવાક્યોને વિષે તાત્પર્યનો અભાવ હોવાથી જ્ઞાનનું જ ફલ સાધકત્વ છે, માટે ક્રિયાની પેઠે જ્ઞાનનું પણ અર્થવાદવાક્યને વિષે પ્રયોજન નહિ હોવાથી કાર્યની અપેક્ષાએ વસ્તુસ્વરૂપના જ્ઞાનમાં વિવર્તનું જ પ્રયોજકત્વ હોવાથી જગત્નું મિથ્યાત્વ સ્વીકારવું એ યોગ્ય છે. આ શંકાનો નિરાસ કરવાને માટે કહે છે કે :- મિથ્યાવાદીના મતમાં સૃષ્ટ્યાદિવાક્યોની સાથે મહાવાક્યની એકાર્થતા હોય તો તેમ સમ્ભવે છે. પણ એકવાક્યતા થતી નથી. બન્ને કાણ્ડનો વિચાર કરતાં પૂર્વકાણ્ડમાં અર્થવાદોની વિધિની સાથે એકવાક્યતા થાય છે, તેમ ઉત્તરકાણ્ડમાં પણ બ્રહ્મવાદિના મતમાં સૃષ્ટ્યાદિવાક્યોની માહાત્મ્યજ્ઞાનની સાથે એકવાક્યતા થાય છે. અન્યના મતમાં તો વેદાન્તને વિષે માહાત્મ્યજ્ઞાનનો ઉપયોગ નથી, તેમ વિધિનો પણ ઉપયોગ નથી, માટે એકવાક્યતાના અભાવથી ઉપર કહેલો અર્થ સ્વીકારી શકાતો નથી.

અપવાદાર્થમેવૈતદારોપો વસ્તુતો ન હિ ।

દૃઢપ્રતીતિસિદ્ધ્યર્થમિતિચેત્તન્ન યુજ્યતે ॥૮૫॥

બ્રહ્મની દૃઢ પ્રતીતિ સિદ્ધ થવાને માટે સૃષ્ટિકર્તૃત્વાદિકનો આરોપ અપવાદને માટે છે, પણ વસ્તુત્વે બ્રહ્મમાં સૃષ્ટિકર્તૃત્વ નથી (એવું માયાવાદીનું કહેવું છે) તે ઘટતું નથી.

વાદી કહે છે કે એકવાક્યતામાં અધ્યારોપ અપવાદ સમ્ભવે છે. પૂર્વ શ્રુતિથી પ્રથમ જગજ્જનન કહીને બ્રહ્મને વિષે કર્તૃત્વ ભોક્તૃત્વ પ્રતિપાદન કરીને તદ્દ્વારા શાખારુન્ધતિ ન્યાયથી સોપાનિક બ્રહ્મમાં બુદ્ધિ સિદ્ધ થાય છે. પછી પૂર્વે કહેલું

ત્યાગ કરીને કર્તૃત્વાદિરહિત બ્રહ્મનો પશ્ચાદ્ બોધ કરાય છે, માટે કર્તૃત્વાદિકનો આરોપ અપવાદને માટે છે, અને તેનું પ્રયોજન બ્રહ્મને વિષે દૃઢ પ્રતીતિ સિદ્ધ થવી એ છે પણ વસ્તુતા થકી બ્રહ્મને વિષે કર્તૃત્વ નથી. આ વાદીનું કહેવું યુક્ત નથી.

મુખ્યાર્થબાધનં નાસ્તિ કાર્યદર્શનતઃ શ્રુતેઃ ।

એન્દ્રજાલિકપક્ષેડપિ તત્કર્તૃત્વં નટે યથા ॥૮૬॥

કાર્યના પ્રત્યક્ષ દર્શન થકી શ્રુતિના મુખ્ય અર્થનો બાધ નથી. એન્દ્રજાલિકપક્ષમાં પણ નટની પેઠે તેનું જ (બ્રહ્મનું) કર્તૃત્વ છે.

અપવાદને માટે જગત્નું કહેવું હોય તો જગત્ની સત્ય પ્રતીતિ થવી ન જોઈએ. જગત્પ્રતીતિ વેદસિદ્ધ નથી, કે પ્રથમ વેદ તેનો બોધ કરે અને પછી તેનો નિષેધ કરે. પણ જગત્પ્રતીતિ લોકસિદ્ધ જ છે. તેમ હોવાથી વેદ જગત્ના કર્તાનું જ પર્ણ કરે છે. જગત્નો અનુભવ કરીને, તેનું કર્તૃત્વબોધન કરીને જો નિષેધ કરે તો, કાર્ય વિધમાન હોવાથી અને બીજો કર્તા નહિ હોવાને લીધે, જગત્નો નિષેધ કરનારી શ્રુતિ બાધિતવિષયા થાય. અન્યથા અનુપપત્તિ સર્વ કરતાં બલવાન છે, અર્થાત્ જો બ્રહ્મ કર્તા ન હોય તો જગત્ની પ્રતીતિ હોવી ન જોઈએ. વેદ પણ બ્રાન્તિકલ્પિત છે એમ માયાવાદી કહે છે એ મોટું સાહસ છે, કેમકે તેનો કોઈ અસ્મદાદિ કર્તા નથી. જો તેમ હોય તો પારમ્પર્ય ઘટે નહિ. વૈધર્મ્યાદિ ન સ્વપ્નાદિવત્ એ વ્યાસસૂત્રનો પણ વિરોધ આવે છે, કેમકે તે સૂત્રમાં કહેલું છે કે જગત્ સ્વપ્નાદિથી ભિન્ન ધર્મવાળું હોવાથી સ્વપ્નાદિ જેવું નથી, માટે પ્રપચ્યપ્રતીતિનું વિધમાનત્વ હોવાથી શ્રુતિના મુખ્યાર્થનો બાધ થતો નથી, તો પણ કદાપિ માયાસહિતનું કર્તૃત્વ અંગીકાર કરો તો તમારા મતમાં પ્રપચ્યનું માયિકત્વ સમ્ભવે, તેમાં લૌકિક માયાવી પુરુષોનાં દષ્ટાન્ત ગ્રહણ કરો તો તેનું કર્તૃત્વ પણ નટને વિષે છે જ, તેમ એન્દ્રજાલિક પક્ષમાં પણ બ્રહ્મને વિષે જ કર્તૃત્વ ઘટે છે. એ પ્રકારે પ્રત્યક્ષ પ્રતીતિથી, તેમ જ વ્યાસસૂત્ર અને શ્રુતિવડે જગત્નું મિથ્યાત્વ સમ્ભવતું નથી.

મુક્તિસ્તદાતિનષ્ટા સ્યાત્સ્વપ્નદૃષ્ટગજેશ્વિવ ।

માયાદીનાં ચ કર્તૃત્વં શ્રુતિસૂત્રૈર્વિવાદ્યતે ॥૮૭॥

જો જગત્ને માયિક માનીએ, તો સ્વપ્નમાં દીઠેલા હાથીની પેઠે મુક્તિ અત્યન્ત નષ્ટ થાય છે, માયા અથવા જીવનું કર્તૃત્વ શ્રુતિ અને સૂત્રથી નિષેધ કરાયલું છે. (અર્થાત્ આ જગત્ માયાએ કરેલું નથી તેમ જીવે કરેલું નથી એમ શ્રુતિ કહે છે.)

સમગ્ર જગતનું જો કલ્પિતપણું માનીએ તો તેમાં રહેલાં મનુષ્યાદિકનો મુક્તિને માટે પ્રયાસ કરવો વ્યર્થ થાય છે. માયામાં પ્રતીત થતાં પારેવાં (કબુતર) કોઈ દહાડો છુટતાં નથી, તેમ જ સ્વપ્નમાં દીઠેલા હાથી છોડી શકાતા નથી, માટે સમગ્ર જગતના સાક્ષી ભગવાન જ એમની માયામાંથી મુક્ત થાય. પણ મનુષ્ય ભગવાનની માયાથી કલ્પાયેલું હોવાથી તેમાંથી મુક્ત થાય નહિ, અને તેમ હોવાથી પારલોકિક પ્રયાસ કરવો વ્યર્થ થાય. માયાવાદમાં બે પક્ષ છે. એક પક્ષમાં નટની પેઠે અજ્ઞાત બ્રહ્મ જગતનું કારણ કહેલું છે, અને બીજા પક્ષમાં જીવની અજ્ઞાનતાને જગતનું કારણ કહેલું છે. બીજા પક્ષમાં જો જીવને અજ્ઞાનકલ્પિત જગત હોય તો તે કહેવું માત્ર પ્રતારણા છે. તેમાં પણ મુક્તિને માટે પ્રયાસ કરેલો વ્યર્થ થાય છે, ગુરુ વિગેરેના દૂષણ થકી માયાવાદ પુરુષાર્થમાં પોતાની પ્રવૃત્તિનો વિઘાતક છે, માટે સર્વને વ્યામોહ કરનાર તે વાદ મન્તવ્ય નથી. વાદી કહે છે કે આ જગતને કરનાર માયા છે, અથવા માયાથી ઉપહિત જીવ છે. ઇશ્વર બિમ્બરૂપ છે કથમસતઃ સઙ્ગાયેત, સ ઈક્ષાં ચક્રે, ઈક્ષતેર્નાશબ્દમ્, કામાદ્ય નાનુમાનાપેક્ષા, નૈતરોડ્નુપપત્તેઃ, ઉપર કહેલી શ્રુતિ અને સૂત્રથી પ્રકૃતિ અને જીવના કર્તૃત્વનો નિષેધ કરાય છે.

અકર્તૃત્વં ચ યત્તસ્ય માહાત્મ્યજ્ઞાપનાય હિ ।

વિરુદ્ધધર્મબોધાય ન યુક્ત્યૈકસ્ય વારણમ્ ॥૮૮॥

બ્રહ્મનું અકર્તૃત્વ જે કહ્યું છે તે બ્રહ્મના વિરુદ્ધધર્મના બોધને માટે માહાત્મ્ય જણાવવાને સારું છે. માટે યુક્તિથી એકનું વારણ કરવું એ યોગ્ય નથી.

અસ્થૂલાદિ વાક્યથી બ્રહ્મને વિષે કર્તૃત્વનો નિષેધ થાય છે. તેમ જ નિરન્જનશ્રુતિ પણ બ્રહ્મને વિષે નિષ્ક્રિય કહે છે તેમ જ અર્ક્ત્તામોક્તા ચ એ શ્રુતિ તથા અહંકાર વિમૂઢાત્મા કર્તાહમિતિ મન્યતે એ ગીતાવાક્ય પણ બ્રહ્મને નિષ્ક્રિય જણાવે છે, અને ઉપરના ગીતાવાક્યથી કર્તૃત્વબ્રાન્તિથી છે એમ કહે છે, માટે અમે બ્રહ્મના કર્તૃત્વનો અડ્ગીકાર કરતા નથી એમ વાદી કહે છે. એ શંકા દૂર કરવાને માટે કહે છે કે બ્રહ્મને વિષે અલોકિક કર્તૃત્વ છે, અને જે અકર્તૃત્વ કહેલું છે તે લોકિક કર્તૃત્વ નિષેધને માટે છે. નહિ તો અહં સર્વસ્ય જગતઃ પ્રભવઃ પ્રલયસ્તથા એમાં કહેલું કર્તૃત્વના વિરુદ્ધ થાય, માટે કોઈએ કહેલું છે કે અનામપુરુષનું કહેવું પ્રમાણ નથી, અને અજાપુરુષની કોઈ ઠેકાણો આસતા નથી. જેને અદૃશ્યનું જ્ઞાન હોય તે સર્વજ્ઞ કહેવાય છે. એ કારણથી માહાત્મ્ય જણાવવાને માટે જ અકર્તૃત્વકથન છે. શ્રુતિમાં કહેલું છે કે પુરુષ એવં સર્વમ્, ઉતાડ્મૃતત્વસ્યેશાનઃ, એતાવાનસ્ય મહિમા આ શ્રુતિઓમાં સર્વ પુરુષરૂપ કહેલું છે, અને મોક્ષનું નિયામકત્વ કહેલું છે. એ

શ્રુતિઓમાં જગદ્રૂપત્વ અને મોક્ષનું નિયામકત્વ એ જેમ મહિમારૂપ છે, તેમ અકર્તૃત્વ પણ મહિમારૂપ છે. જેમાં પરસ્પર વિરુદ્ધ ધર્મબોધન કરાય એ જ મહાજ્ઞ છે. માટે બન્ને ધર્મો સત્ય છે. એમ ન હોય તો નટની પેઠે એક ધર્મ હોય તો માહાત્મ્ય સિદ્ધ થાય નહિ, માટે યુક્તિથી એક ધર્મનો બાધ કરવો એ યુક્ત નથી.

માયિકત્વં પુરાણેષુ વૈરાગ્યાર્થમુદીર્યતે ।

તસ્માદવિદ્યામાત્રત્વકથનં મોહનાય હિ ॥૮૯॥

પુરાણમાં જગતનું માયિકત્વ વૈરાગ્યને માટે કહેવાય છે, માટે જગતને અવિદ્યામાત્રનું કાર્ય કહેવું એ મોહ કરવાને માટે છે.

પુરાણ મિત્રતુલ્ય હોવાથી, લોકરીતિથી બોધ કરતાં કોઈ વખત જગતનું માયિકત્વ કહે છે. પુરાણનો આવા પ્રકારનો બોધ લોકિક આસક્તિની નિવૃત્તિને માટે છે. બીજાં પ્રકરણોના અનુસારથી તે પ્રકારે નિશ્ચય થાય છે, માટે એકદેશી મતથી જગતને માયિક કહેવું તે પ્રતારણા છે.

અસત્યમપ્રતિષ્ઠં તે જગદાહુરનીશ્વરમ્ ।

અપરસ્પરસમ્ભૂતં કિમન્યત્કામહૈતુકમ્ ॥૯૦॥

તે આસુર પુરુષો જગતને અસત્ય, અપ્રતિષ્ઠ (રજ્જુમાં સર્પની પેઠે), અનીશ્વર, સ્ત્રી પુરુષના સંયોગથી થયેલું અને કામ પ્રયોજનવાળું કહે છે, બીજું શું છે ?

આ વિષયમાં સમ્મતિરૂપ ભગવદ્વાક્ય કહેવામાં આવે છે. જગતનું મિથ્યાત્વ અને અસત્યત્વ અથવા માયિકત્વનો બોધ કરવો, એ આસુરમત છે એમ ભગવદ્વાક્યથી નિશ્ચય થાય છે.

અખણ્ડાદ્વૈતમાને તુ સર્વં વ્રહ્મૈવ નાન્યથા ।

જ્ઞાનાદ્વિકલ્પબુદ્ધિસ્તુ વાધ્યતે ન સ્વરૂપતઃ ॥૯૧॥

અખણ્ડ અદ્વૈતભાનમાં તો સર્વ બ્રહ્મ જ છે, પણ ભેદ જ્ઞાન નથી. જ્ઞાન થકી ભેદબુદ્ધિનો બાધ થાય છે, પણ સ્વરૂપ થકી પ્રપચ્ચનો બાધ થતો નથી.

બ્રહ્માવાદમાં પણ વાચારમ્ભણ વાક્યાનુસાર ભેદોનું અસત્યત્વ અંગીકાર કરવું જોઈએ. આ શંકાના સમાધાનમાં કહે છે. વેદાન્તના બોધનના બે પ્રકાર છે. બહુ સ્થાં પ્રજાણેય એ વાક્યાનુસારે ઉચ્ચનીચત્વને ભગવાન જ પ્રાપ્ત થયેલ છે. એ પ્રકારથી વિકલ્પબુદ્ધિમાં પણ બ્રહ્મજ્ઞાન વિરુદ્ધ નથી. બીજા પ્રકારમાં વિકારો વાણીથી જ આરબ્ધ છે. એ પ્રકારે કાર્યાશિનો અનાદર કરીને વસ્તુસ્વરૂપના વિચારથી, આવિર્ભાવ તિરોભાવ પૃથક્ કરીને, જગત્ સન્માત્ર છે એમ ઉપનિષદો બોધ કરે છે, તેથી પ્રથમ પક્ષ તો નિઃસન્દિગ્ધ છે. બીજા પક્ષમાં પણ દૂષણ

નથી, કેમકે સત્તામાત્ર જગત્ કહેવાય છે તેથી તેનું મિથ્યાત્વ નથી. જ્યારે અખણ્ડ અદ્વૈતભાવ થાય છે ત્યારે સર્વ બ્રહ્મસ્વરૂપે આ જગત્ને ગ્રહણ કરે છે. (જેમ સુપાર્ણનો ગ્રાહક સુપાર્ણના ઘાટને ગ્રહણ કરે તેમ) તે વખતે અવાન્તરવિકલ્પ (ભેદ) વિષયિણી બુદ્ધિનો બાધ થાય છે, પણ વસ્તુસ્વરૂપનો બાધ થતો નથી.

મિત્રત્વં નૈવ યુજ્યેત બ્રહ્મોપાદનતઃ ક્વચિત્ ।

વાચારમ્ભણમાત્રત્વાદ્દેદઃ કેનોપજાયતે ॥૧૨॥

કોઈ સ્થળે બ્રહ્મોપાદન થકી મિત્રત્વ સમ્ભવતું નથી. ભેદ વાચારમ્ભણમાત્ર હોવાથી કોનાથી ઉત્પન્ન થાય ?

પ્રત્યક્ષ દેખાવા થકી ઘટપટનું અદ્વૈત સિદ્ધ થતું નથી, માટે દ્વૈત અંગીકાર કરવું જોઈએ. એ શંકાના નિરાસને માટે કહે છે કે કુણ્ડલ અને કડાનું એક ઉપાદન હોવાથી બેનો ભેદ સર્વ પ્રકારે સમ્ભવતો નથી. ધર્મરૂપત્વ કહીએ તો એક વસ્તુના બે ધર્મ છે, કેમકે એ બન્નેના ઉપાદાનનો અભેદ છે, માટે ભેદ યુક્તિસહ નથી. અજ્ઞાની પુરુષનું પ્રત્યક્ષ તો અભેદમાં છે, પણ દ્વિચન્દ્રની પેઠે તે ભેદ ગ્રહણ કરે છે. મહત્પુરુષનું પ્રત્યક્ષ, ભેદ ગ્રહણ કરતું નથી, માટે શ્રુતિ પ્રમાણાનુસારે પદાર્થોનું વાચારમ્ભણમાત્ર જાણી, સર્વને વિષે બ્રહ્મભાવ થવાથી ભેદ કોઈપણ સાધનથી ઉત્પન્ન થતો નથી, માટે ભેદાનુસાર બ્રહ્મવાદનું નિરાકરણ કરવું નહિ.

સાદ્વ્યો બહુવિધઃ પ્રોક્તસ્તત્રૈકઃ સત્ત્વમાણકઃ ।

અદ્વિવિશતિતત્ત્વાનાં સ્વરૂપં યત્ર વૈ હરિઃ ॥૧૩॥

સાદ્વ્ય બહુ પ્રકારનો કહેલો છે, તેઓના મધ્યે એક સાદ્વ્ય સત્પુરુષોને પ્રમાણ ગણવા યોગ્ય છે. તે સાદ્વ્યમાં ૨૮ તત્ત્વોનું સ્વરૂપ હરિ છે.

આ પ્રકારે માયાવાદનું નિરાકરણ કરીને સાદ્વ્યનું નિરાકરણ કરવાને માટે કહે છે. બ્રહ્મવાદમાં પ્રથમ ઉત્પન્ન થયેલા પદાર્થોનું પ્રકાશન અથવા તેમની ગણના થકી સાદ્વ્ય કહેવાય છે. તે મત બ્રહ્મવાદમાં જ પ્રવેશ કરે છે. જે મતો વેદ થકી સ્વતન્ત્ર છે તે અપ્રમાણિક છે. જેમાં અઙ્કાવીશ તત્ત્વોનું સ્વરૂપ હરિ છે તે સાદ્વ્ય સત્પુરુષને પ્રમાણસિદ્ધ છે.

અન્યે સૂત્રે નિષિધ્યન્તે યોગોડ્વ્યેકઃ સદાડ્ઢતઃ ।

યસ્મિન્ ધ્યાનં ભગવતો નિર્બીજોડ્વ્યાત્મબોધનઃ ॥૧૪॥

બીજાં સાદ્વ્યોનો વ્યાસસૂત્રમાં નિષેધ કરેલો છે. જે યોગમાં ભગવદ્ધ્યાન છે, અથવા જે નિર્બીજ છતાં આત્મબોધક છે તે એક યોગ સત્પુરુષને આદર કરવા યોગ્ય છે.

અન્યેષાં ચાનુપલબ્ધેઃ એ સૂત્રમાં બીજા સાદ્વ્યનો નિષેધ કરેલો છે. મહત્ત્વ કે પ્રકૃતિ જગત્માં પ્રતીત થતાં નથી. વળી નિત્ય અને નિરવયવ પ્રકૃતિ કેમ પરિણામ પામે ? માટે સ્વભાવવાદમાં જ પ્રકૃતિવાદ પણ પ્રવેશ કરે છે. એ પ્રકારે બીજું દૂષણ ભાષ્યમાં વિસ્તાર થકી કહેલું છે.

ચિત્તની વૃત્તિનો નિરોધ એ યોગ છે. તે ભગવદ્ધ્યાનને માટે ભક્તિનું અડ્ગ છે. તે યોગ પ્રામાણિક છે. જે સ્વતન્ત્રતાવડે ફલસાધક કહેલો છે, તથા જે સ્વતન્ત્રતાથી જ સિદ્ધિનો હેતુ જ્ઞાનાત્મા યોગ છે, તેમ જ બીજા દેહ, ઇન્દ્રિયોના સાધક છે, તેઓનો સૂત્રમાં નિષેધ કરાયલો છે. ભગવદ્ધ્યાનના અભાવમાં પણ જે યોગ આત્મજ્ઞાનના અડ્ગભૂત છે તે પ્રામાણિક છે. એતેન યોગઃ પ્રત્યુક્તઃ એ સૂત્રમાં વ્યાસે બીજા યોગોનું નિરાકરણ કરેલું છે.

વૈરાગ્યજ્ઞાનયોગૈશ્ચ પ્રેમ્ણા ચ તપસા તથા ।

એકેનાપિ દૃઢેનેશં મજન્ સિદ્ધિમવાપ્નુયાત્ ॥૧૫॥

યૈરાગ્ય, જ્ઞાન, યોગ, તપ અને પ્રેમ આ પાંચ અડ્ગ સહિત ભગવાનને ભજવાથી પુરુષ ફલ પામે છે, અથવા એ પાંચમાંના એક પણ દૃઢ અડ્ગથી ભજે તો પણ સિદ્ધિ પામે છે.

એ પ્રકારે પરમત નિરાકરણપૂર્વક પોતાના મતનું (બ્રહ્મવાદનું) સ્થાપન કરીને નિરૂપણ કરેલા વાદનો ભક્તિમાં ઉપયોગ કહે છે. પાંચ અડ્ગયુક્ત પુરુષે ભગવાનને ભજવા જોઈએ. તેમાં પ્રથમ અડ્ગ યૈરાગ્ય છે. જો યૈરાગ્ય ન હોય તો ભગવાનના આવેશના અભાવે ભજનની સિદ્ધિ થાય નહિ. બીજું અડ્ગ જ્ઞાન છે. તેથી સર્વ પદાર્થોનું તથા ભગવાનનું ચથાર્થ સ્વરૂપ જાણી શકાય છે. તેના અભાવથી નિશ્ચયના અભાવને લીધે ભજનમાં પ્રવૃત્તિ થાય નહિ. યોગ પણ ભજનનું અડ્ગ છે. યોગ વગર મનનું ચાગ્યત્વ થવાથી ભજન થતું નથી. તેમ જ પ્રેમ પણ ભજનનું અડ્ગ છે. તેના વગર ભજન સ્વતઃપુરુષાર્થરૂપ થતું નથી. તેમ ભજનનાનંદની અભિવ્યક્તિ પ્રેમ વગર થતી નથી. તેમ જ તપ પણ ભજનનું એક અડ્ગ છે. તપના અભાવે દેહાદિકમાં રમણ થકી ભજન સિદ્ધ થતું નથી. તપવડે દેહ, ઇન્દ્રિયાદિકનો મલ નિકલી જાય છે. એ પાંચે અડ્ગ એક સાથે હોવાં દુર્લભ છે, માટે ગોણપક્ષ કહેવામાં આવે છે. એક પણ દૃઢ અડ્ગથી સમર્થ શ્રીકૃષ્ણને ભજે તો ભજનાર મોક્ષ પામે છે.

જ્ઞાને લયપ્રકારા હિ જગતો બહુધોદિતાઃ ।

મનસઃ શુદ્ધિસિદ્ધયર્થમેકઃ સાદ્વ્યાનુલોમતઃ ॥૧૬॥

મનની શુદ્ધિને માટે જગતના લયના પ્રકાર જ્ઞાનમાં ઘણા કહેલા છે, અને એક સાઙ્ખ્યાનુસારે કહેલો છે.

એ રીતે ઉત્પત્તિપ્રકારથી પરમતનું નિરાકરણ કરી સ્વમત સ્થાપન કરવામાં આવ્યો. દ્રવ્ય, કાલ અને ગુણથી ત્રણ પ્રકારે જ જગતનો પ્રલય થાય છે, તેથી પ્રલયના પ્રકારથી પણ પરમતનું નિરાકરણ કરવાને માટે કહે છે. જ્ઞાનમાર્ગમાં જગતના લયના પ્રકાર ઘણા કહેલા છે. તે બધા પ્રકરણના અભાવને લીધે મનની શુદ્ધિને માટે જાણવા. પ્રલય મુખ્યત્વે કરીને ત્રણ પ્રકારનો છે. કાળથી નિત્ય પ્રલય છે. સંકર્ષણમુખાગ્નિરૂપ દ્રવ્યથી ભૈમિતિક પ્રલય થાય છે, અને ગુણથી પ્રાકૃતિક પ્રલય થાય છે. તે ત્રણ પ્રકારાન્તરને પામેલા, ભાવનાથી સાધિત, -આત્યન્તિક શબ્દવાચ્ય થાય છે. પરંતુ આત્યન્તિકપ્રલય પૃથક્ નથી. અહંતા મમતા નાશ થવાથી જ વિષયોના નાશનો ઉપચાર થાય છે, તેથી આત્યન્તિકપ્રલયની જુદી કલ્પના કરવામાં પ્રમાણનો અભાવ છે. ભાવનાથી લયનું ફલ મનની શુદ્ધિ છે. તેમ સાઙ્ખ્યાનુસારે જે પ્રલય બતાવેલો છે, તે પણ પ્રાકૃતિક હોઈ મનની શુદ્ધિ માટે છે. જે લય મનની શુદ્ધિને માટે છે તેને આત્યન્તિક લય કહેવામાં આવે છે.

इन्द्रियाणां देवतात्वभावनाप्रापणे तथा ।

गोविन्दासन्यसेवातः प्रापणं नान्यथा भवेत् ॥૧૭॥

તે જ પ્રકારે ઇન્દ્રિયો, દેવતાત્વભાવનાથી દેવભાવ પમાડવામાં લય થાય છે. ગોવિન્દની સેવા અથવા પ્રાણની ઉપાસના થકી ઇન્દ્રિયોનું દેવતાત્વ થાય છે. બીજે પ્રકારે થતું નથી.

હવે લયનો બીજો પ્રકાર કહેવામાં આવે છે. વાચમગ્નૌ સવક્તવ્યમ્ (ભાગ. ૭-૧૨-૨૬) વક્તવ્યસહિત વાણીનો અગ્નિમાં લય કરવો. એ પ્રકારે ઇન્દ્રિયોનું દેવતાત્વ કરવાથી લય થાય છે. તેનો પ્રકાર એવો છે કે, ગોવિન્દની સેવા અથવા પ્રાણની ઉપાસનાવડે ઇન્દ્રિયોનું દેવતાત્વ થાય છે. આ લય રૂપાન્તરને સમ્પાદન કાર્યરૂપ છે, તેથી ઉત્પત્તિરૂપ જ છે. પણ લય નથી.

अद्वयात्मदृढज्ञानाद्वैराग्यं गृहमोक्षकम् ।

वागादिविलयाः सर्वे तदर्थं मनआदिषु ॥૧૮॥

અદ્વયાત્માના દૃઢ જ્ઞાનથી ઘરને છોડાવનારું વૈરાગ્ય થાય છે, તેને માટે મનાદિકમાં વાગાદિ ઇન્દ્રિયોના લયો છે.

વાચં જુહાવ મનસિ ઇત્યાદિ વાક્યથી દેહાદિ સંઘાતના લયની ભાવનાથી અદ્વય આત્મજ્ઞાન દૃઢ થાય છે, અને તેથી વૈરાગ્ય થાય છે. રાગાભાવનો સંન્યાસમાં

ઉપયોગ છે, માટે તે સ્થળે કારણમાં લય કહ્યો નથી.

भावनामात्रतो भाव्या न हि सर्वात्मना लयः ।

मनोमात्रत्वकथनं तदर्थं जगतः क्वचित् ॥૧૯॥

તમામ લયો ભાવનામાત્રથી ભાવ્ય છે, પરંતુ સર્વ પ્રકારે પ્રપચ્ચનો લય નથી. વૈરાગ્યને માટે કોઈ ઠેકાણે જગત્ અથવા દેહનું મનોમાત્રત્વ કહેલું છે. એ પ્રકારે ત્રણ લયનું વર્ણન કરી તેઓનો પ્રકૃત ઉપયોગ કહે છે. સંસાર અને પ્રપચ્ચનું જુદાપણું બતાવવામાં આવે છે. આ બધા લયો ભાવનામાત્રથી વૈરાગ્યને માટે કરવા યોગ્ય છે. પણ સર્વ પ્રકારે કાલાદિકવડે જે પ્રપચ્ચનો લય થાય છે, તે ઉપર કહેલા ત્રણ પ્રકારે જ થાય છે. તેમ મનોમાત્રમિમં ગૃહીત્વા એ વાક્યમાં દેહનું મનોમાત્રત્વકથન છે તે પણ વૈરાગ્યને માટે જ છે.

भक्तिमार्गानुसारेण मतान्तरगता नराः ।

भजन्ति बोधयन्तत्येवमविरुद्धं न बाध्यते ॥

नैकान्तिकं फलं तेषां विरुद्धाचरणात्क्वचित् ॥૧૦૦॥

મતાન્તરમાં રહેલા પુરુષો ભક્તિમાર્ગાનુસારે ભજન કરે છે, અને તેને અનુસારે જ પદાર્થોનો બોધ કરે છે. એ પ્રકારે અવિરુદ્ધભજન બાધિત થતું નથી, પણ તેઓને સ્વમતાનુસારે ભક્તિમાર્ગથી વિરુદ્ધ આચરણ વડે સિદ્ધ, ફલ (મોક્ષ) થતું નથી.

એ પ્રકારે મતાન્તરનું નિરાકરણ કરીને, તે મતાન્તરોમાં ફલનો અભાવ છે એમ કહે છે. કોઈને એમ શંકા થાય કે ગમે તે માર્ગમાં સ્થિતિ કરીને ભગવદ્ભજન થાય તો ફલ થાય છે, એમ થવાથી બ્રહ્મવાદનો ભક્તિમાર્ગમાં ઉપયોગ થાય નહિ. આ હેતુને લીધે બ્રહ્મવાદ વિરુદ્ધ માર્ગમાં વર્તનારાઓને ભગવદ્ભજનમાં પણ ફલનો અભાવ કહે છે. માયાવાદાદિના મતમાં શ્રીકૃષ્ણાદિ વ્યવહારસિદ્ધ હોવાથી તે બ્રહ્મ થવાને માટે યોગ્ય નથી, (કેમકે માયાવાદીઓ ઇશ્વરને પણ પરમાર્થ સત્ય માનતા નથી.) વળી તેઓ ઇશ્વરને સદાનંદ ચિત્સ્વરૂપ કહે છે, પણ તેઓના મતમાં તે પ્રકારે પદાર્થસિદ્ધિના અભાવને લીધે તેઓ ભક્તિમાર્ગાનુસારે જ એમ કહે છે એમ સમજવું. જ્યારે તેઓ જીવ ઇશ્વર વગેરે પદાર્થો વિષે ભક્તિમાર્ગાનુસાર બોલે, ત્યારે તેઓનો શાસ્ત્રજ્ઞાપતિ સિદ્ધાન્ત જણાય છે, તોપણ તેટલાથી મોક્ષ થતો નથી. કોઈ પુરુષને ભક્તિના અતિશયવડે નામમાત્રથી માયાવાદિત્વ હોય, પણ સ્વમતનો પક્ષપાત ન હોય, તો બિલ્વમડ્ગલાદિકની પેઠે મોક્ષ થાય છે. પરંતુ ભક્તિમાર્ગ વિરુદ્ધ આચરણ હોય એટલે ભગવાનને સ્વાજ્ઞાનકલ્પિત ઘારતો હોય તો, ભક્તિ કરવાં છતાં પણ મોક્ષ થતો નથી.

एवं सर्वं ततः सर्वं स इति ज्ञानयोगतः ।

यः सेवते हरिं प्रेम्णा श्रवणादिभिरुत्तमः ॥१०१॥

પ્રેમાભાવે મધ્યમઃ સ્યાજ્ઞાનાભાવે તથાદિમઃ ।

ઉમયોરપ્યભાવે તુ પાપનાશસ્તતો ભવેત્ ॥૧૦૨॥

એ પ્રકારે ભગવાન થકી સર્વ છે, અને એ ભગવાન આ સર્વરૂપ છે, એ પ્રકારના જ્ઞાનયોગ થકી, પ્રેમસહિત, શ્રવણાદિ સાધનથી, શ્રીહરિને ભજે તે ઉત્તમ ભક્ત કહેવાય. પ્રેમના અભાવથી જ્ઞાનસહિત ભજન કરે તો મધ્યમ કહેવાય, અને જ્ઞાનરહિત પ્રેમથી ભજન કરે તો આદિમ અથવા હીન કહેવાય. જ્ઞાન અને પ્રેમ બન્ને ન હોય તો તે શ્રવણાદિક થકી પાપનો નાશ થાય છે, અથવા ધર્મ થાય છે.

એ પ્રકારે પરમતનું નિરાકરણ કરીને બ્રહ્મવાદમાં જે પ્રકારથી ભજન થાય છે તે પ્રકારે સફળ કરીને કહે છે. સર્વ નામરૂપાત્મક ભગવાન થકી જ છે, અને ભગવાન જ સર્વ નામરૂપાત્મક છે. આવાં બે પ્રકારનાં વૈદિકજ્ઞાન છે, તેમાં પ્રથમ જ્ઞાન ગોણ છે, અને બીજું મુખ્ય છે. જ્ઞાનસહિત પ્રેમવડે શ્રવણાદિ સાધનથી જો ભગવાનને ભજવામાં આવે તો તે ભક્તિમાર્ગમાં ઉત્તમ છે. શાસ્ત્રાર્થ જ્ઞાનના અભાવમાં પણ પ્રેમથી ભજન કરે તો મધ્યમ છે, તેમ જ પ્રેમના અભાવમાં જ્ઞાનથી ભજન કરે તો તે પણ મધ્યમ છે. ઉત્કટ પ્રેમ ન હોય તો તે હીન છે, પ્રેમ અને જ્ઞાન બન્ને ન હોય તો શ્રવણાદિ પાપનાશક છે અથવા તેથી ધર્મ થાય છે, પણ તે ભક્તિમાર્ગ કહેવાતો નથી.

तपोवैराग्ययोगे तु ज्ञानं तस्य फलिष्यति ।

યોગયોગે તથા પ્રેમ સ્તુતિમાત્રં તત્તોડન્યથા ॥૧૦૩॥

તપ અને વૈરાગ્યના યોગ વડે શ્રવણાદિથી જ્ઞાન સિદ્ધ થાય છે, અને યોગ વડે શ્રવણાદિથી પ્રેમ સિદ્ધ થાય છે. પુરાણાદિમાં તપ, વૈરાગ્ય વગેરે અડ્ગ સિવાય શ્રવણાદિકનું પરમ પુરુષાર્થરૂપ જે ફલ કહ્યું છે તે સ્તુતિમાત્ર છે.

તપ અને વૈરાગ્યસહિત શ્રવણાદિક હોય, અથવા એ બેમાંથી એકસહિત હોય, તો જન્માન્તરમાં જ્ઞાન થશે એમ જાણવું. ગીતાગ્રમાં બહુનાં જન્મનામ્ એ વાક્યથી કહ્યું છે કે, ઘણા જન્મને અન્તે જ્ઞાનવાન મને પામે છે, અર્થાત્ તપથી અથવા વૈરાગ્યથી ઘણે કાળે જ્ઞાન થાય, અને જ્ઞાનથી ઘણે કાળે ભગવાનની પ્રાપ્તિ થાય.

યોગસહિત ભજન કરવામાં આવે તો પ્રેમ ઉત્પન્ન થાય છે. તેમાં તપ અને વૈરાગ્ય સહિત કરેલા ભજનવાળો પુરુષ મધ્યમ અધિકારી છે, અને યોગસહિત ભજન કરનાર ઉત્તમ અધિકારી છે. માર્ગના અડ્ગને અભાવે કેવળ શ્રવણાદિકનું

પરમપુરુષાર્થત્વ (ફલત્વ) પુરાણોમાં કહેલું છે, તે સ્તુતિરૂપ છે. કોઈ આપણે ઘેર આવે તેને આપણે કહીએ કે મને ઘન્ય છે કે આપ પદાર્થ, તેવી રીતે સ્તુતિવાક્યો સમજવાં. પ્રમેયબલથી અડ્ગરહિત શ્રવણ કરનારાને ફલ થવાનું હોય તો ભલે થાય.

अर्थोऽयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यैरामायणैः सहितभारतपञ्चरात्रैः ।

અન્યૈશ્ચ શાસ્ત્રવચનૈઃ સહ તત્ત્વસૂત્રૈર્નિર્ણયતે સહૃદયં હરિણા સદૈવ ॥૧૦૪॥

સમગ્ર વેદ વાક્યથી, રામાયણથી, ભારત, પંચરાત્ર, બીજાં શાસ્ત્રોનાં વચનથી અને વ્યાસસૂત્રથી જે અર્થ નિશ્ચય થયેલો છે તે જ અર્થ હૃદયસહિત શ્રીહરિએ સદાસર્વદા (ગીતાગ્રમાં) નિર્ણય કરેલો છે.

સર્વ પ્રમાણોની આ ગ્રંથમાં એકવાક્યતા છે. બ્રહ્મવાદ સિવાયના મતાન્તરોમાં વાક્યાભાસ છે. સર્વકલ્પમાં રામાયણ પણ એ જ અર્થને પ્રતિપાદન કરે છે, માટે બહુરામાયણ કહેલાં છે. ભારત અને પંચરાત્ર ચરિત્રપ્રતિપાદક હોવાથી રામાયણનાં અડ્ગ છે. બીજા પુરાણ શાસ્ત્રો અને વ્યાસસૂત્ર, આ બધાં શાસ્ત્રો પ્રેમસહિત જ્ઞાન કરવું જોઈએ એમ નિર્ણય કરે છે. એમ ન હોય તો ચોંદ વિધાનું સરસ્વતીરૂપત્વ હોવાથી સહૃદય એકનિષ્ઠતા થાય નહિ. સરસ્વતીનો અભિપ્રાય એક જ ભગવાનને વિષે હોવો જોઈએ. કોઈ કદાચિત્ અન્યથા કહે તો તે શડ્કાના નિરાકરણને માટે કહે છે કે, સરસ્વતીના પોષક ભગવાને સદા સર્વદા આ જ અર્થનો નિર્ણય કરેલો છે, અર્થાત્ પોષ્યનું હૃદય પોષક જાણે, બીજો જાણે નહિ.

प्रमाणबलमाश्रित्य शास्त्रार्थो विनिरूपितः ।

પ્રમેયબલમાશ્રિત્ય સર્વનિર્ણય ઉચ્યતે ॥

પ્રમાણબલનો આશ્રય કરીને શાસ્ત્રાર્થનું નિરૂપણ કર્યું, હવે પ્રમેય બલના આશ્રયથી સર્વનિર્ણય કહેવાય છે.

આ રીતે શાસ્ત્રાર્થનું નિરૂપણ કર્યું. શાસ્ત્રાર્થના અધિકારી સાત્ત્વિકાદિગુણવાળા ભગવદ્ભક્તો છે. આ અધિકારીઓ પ્રમાણબલવાળા હોવાથી શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણમાં પ્રમાણબલનો આશ્રય કર્યો છે. કેવલશબ્દબલનો વિચાર શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણમાં છે. પ્રમેયબલ એટલે અર્થબલનો આશ્રય લઈને સર્વનિર્ણયપ્રકરણ કહેશે. પ્રમેયબલ એટલે સકલવેદાદિથી વેદ એવા પ્રભુનું બલ. પ્રભુ સર્વસમર્થ હોવા છતાં તે તે રૂપે પ્રતિનિયત તત્ત્વાર્થકર્તૃત્વરૂપ બલ અથવા પ્રમેયોનું બલપ્રમેય એટલે શાસ્ત્રાનુગૃહીત ચક્ષુરાદિજન્ય પ્રમાણિષયાર્થ, તેનું બલ એટલે તત્ત્વાર્થજનન સામર્થ્યનું અપધારણ કરીને, સર્વનિર્ણય, સર્વ પદાર્થોનો

નિર્ણય-સ્વરૂપયાથાત્મ્ય કહેવાય છે. સર્વપદાર્થ બ્રહ્માત્મક હોવાથી એકબીજાથી યેશિષ્ટય નથી, તથાપિ જે પદાર્થ જે માટે અને જે પ્રકારનો છે, તે સર્વ સપરિકર વિવેચાય છે, એમ જાણવું. એ રીતે શબ્દબલનો વિચાર કરીને શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણનું વિવેચન કરીને સ્વતઃપ્રામાણ્યાદિવાદીઓને અસમ્ભાવનાદિરહિત પ્રથમ પ્રકરણ પૂર્ણ કર્યું. હવે અર્થબલના વિચારથી પરતઃપ્રામાણ્યવાદીઓને અસમ્ભાવના અને વિપરીતભાવનાનો ઉદય થતાં તેમને માટે સર્વનિર્ણય પ્રકરણ કહેવાય છે.

એ રીતે અહીં તત્વાર્થદીપનિબંધનું શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણ પૂર્ણ થાય છે.



## તત્વાર્થદીપનિબંધ

### પ્રકરણ વિભાગ અને તત્પ્રતિપાદ્ય વસ્તુ

#### સર્વનિર્ણયપ્રકરણ

લેખક : શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રી, મી.શા.વે.વિ. M.R.A.S.

“વિદ્વદ્भिः सर्वथा श्राव्यं ते हि सन्मार्गरक्षकाः”

(શ્રીમદ્ભગવાદગીતા)

“कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी”

(મુદ્રાલેખોઽયં વિદુષામ)

પ્રમાણબલમાશ્રિત્ય શાસ્ત્રાર્થો વિનિરૂપિતઃ ।

પ્રમેયબલમાશ્રિત્ય સર્વનિર્ણય ઉચ્યતે ॥

પ્રમાણેન પ્રમેયેણ ફલતઃ સાધનેન ચ ।

સર્વનિર્ણય વોધાય દ્વિતીયા પ્રક્રિયોચ્યતે ॥

#### ઉપક્રમ

શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણ પછી દ્વિતીય પ્રકરણ-સર્વનિર્ણય પ્રકરણનો પ્રારંભ થાય છે. સર્વનિર્ણય એટલે -પ્રમાણ, પ્રમેય, ફલ અને સાધનોનો નિર્ણય. વાસ્તવિક રીતે તો પ્રમાણ બલનો આશ્રય કરીને શાસ્ત્રાર્થનું નિરૂપણ થયું અને પ્રમેય બલનો આશ્રય કરીને જ સર્વનિર્ણયનું નિરૂપણ છે. પરંતુ સર્વનિર્ણયમાં યે પ્રમાણાદિ ચતુષ્ટયનો સપરિકર વિચાર હોવાથી કથન અચુકત તો નથી જ. પ્રમાણ બલ અને પ્રમેય બલ એ બન્ને શબ્દો સમ્પ્રદાયમાં ઘણા પરિચિત થયેલા છે. સામ્પ્રદાયિકો ઘણીવાર શાસ્ત્રીય મર્યાદા અને અશાસ્ત્રીય વ્યવહાર માટે આવા શબ્દોનો પ્રયોગ કરતા જણાઈ આવે છે. તેનું કારણ યથાર્થજ્ઞાનનો અભાવ છે, કિન્તુ ગ્રંથોમાં પ્રતિપદોક્ત વાક્યોમાં એવા શબ્દોના પ્રયોગો આવે છે, તે તત્ત્વપ્રકરણાનુરોધે ઊંડા અર્થના બોધક છે. તેનું તાત્પર્ય સમજવા માટે નિબંધના પ્રમાણ અને પ્રમેય પ્રકરણનો તથા શ્રીસુબોધિનીજીનો ઊંડો અભ્યાસ કરવાની જરૂર છે. અત્ર પ્રમાણ બલનો અર્થ વેદાદિ ભાગવતાન્ત પ્રમાણોનું બલ-અવિરોધે નિશ્ચિત તાત્પર્ય અને પ્રમેય બલ એટલે સકલ વેદાદિથી વેધ પ્રભુનું બલસર્વસમર્થ



હોવા છતાં તે તે રૂપે પ્રતિનિયત તે તે કાર્ય કરવાપણું. અથવા પ્રમેય એટલે શાસ્ત્રસિદ્ધ યક્ષુરાદિ જન્ય પ્રમાવિષયક પદાર્થોનું બલ-તત્ત્વકાર્ય જનનસામર્થ્યનું અવધારણ કરીને પદાર્થોનો નિર્ણય-સ્વરૂપનું યાથાતથ્ય નિરૂપણ - સર્વ પદાર્થો બ્રહ્માત્મક હોવા છતાં જે પદાર્થોનું જે પ્રકારે યાથાર્થ્ય હોય, તે સર્વ-સપરિકર-નો નિર્ણય, તે સર્વનિર્ણય-આ ઉપરથી એમ ફલિતાર્થ ગ્રહણ કરી શકાય કે-સ્વતઃપ્રમાણવાદિઓને-અસંભાવના રહિત જ્ઞાનવાનને - જે પ્રકારના અર્થની પાદાર્થસ્વરૂપની જરૂર છે, તેનું નિરૂપણ સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં છે. અને પરતઃ પ્રમાણવાદિઓને - અસંભાવના અને વિપરીત ભાવનાવાળા પુરુષોને - પણ જે પ્રકારે પદાર્થની યથાર્થતા-અસંભાવના અને વિપરીત ભાવનાની નિવૃત્તિપૂર્વક આવશ્યક છે, તે પ્રકરણનો નિર્ણય સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં છે.

### પૂર્વપ્રકરણની સાથે સંજ્ઞાતિ

શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં એતન્મતમવિજ્ઞાય સાત્ત્વિકા અપિ વૈ હરિમ્ । મતાન્તરૈર્ન સેવન્તે તદર્થ હોષ ઉદયમઃ આ કારિકાપડે શુદ્ધ બ્રહ્મવાદના અજ્ઞાનથી સાત્ત્વિક જીવોને પણ મતાન્તરથી ભ્રમ ઉત્પન્ન થતો હોવાથી પ્રભુનું ભજન કરતા નથી. તે જીવોને યથાર્થ વસ્તુનું ભાન થાય તે માટે પોતાનો આ ઉદય છે. એમ પ્રતિજ્ઞા કરેલી હોવાથી, તે પ્રતિજ્ઞાને સિદ્ધ કરવા માટે પ્રપન્નો ભગવત્કાર્યઃ ઇત્યાદિ કારિકાથી આરંભીને જડ, જીવ અને અન્તર્યામીનું સ્વરૂપ અને તે તે સર્વનું ભગવદંશત્વ તથા ભગવત્સ્વરૂપત્વનું પ્રતિપાદન કર્યું, તેમ જ પ્રભુ જ પરમ ફલરૂપ છે એમ પ્રતિપાદન કરીને ભગવદ્ભજન જ જીવનું મુખ્ય કર્તવ્ય છે, તે જ જીવનનું પરમ ફલ અને અવાન્તર સાધન પણ છે એમ સર્વ શ્રુતિઓ અને ગીતા, વ્યાસસૂત્રો તથા ભાગવતનો સિદ્ધાન્ત છે; તેના જ અવિરોધે સર્વ પદાર્થો-સર્વ અભિધ્યેયોનું તાત્પર્ય ગ્રહણ કરવું એમ પ્રતિપાદન કર્યું.

આ સર્વ જ - શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણોક્ત નિર્ણય હીનાધિકારી અને મધ્યમાધિકારીને ત્યારે જ સ્થિર થાય કે જ્યારે પ્રમાણોની પૂર્વાપર સંજ્ઞાતિ સાથે કે ઉપપત્તિપૂર્વક નિરૂપણ કરવામાં આવે. કારણ કે અસંભાવના અને વિપરીત ભાવનાની નિવૃત્તિ શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાત્રથી જ થઈ શકે તેમ નથી. તદર્થ તો સર્વ પદાર્થોના યથાર્થ સ્વરૂપનો વિસ્તાર સાથે નિર્ણય કરવો પરમ આવશ્યક છે.

શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં જડ, જીવ અને અન્તર્યામી એ ત્રણે ભગવદંશ છે, ભગવાન્થી અભિન્ન છે, એમ જે પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે, તે કેવલ શ્રુત્યાદિ

પદાર્થોના બલથી સિદ્ધ કરી શકાય તેમ છે. શ્રુતિ-શબ્દ પ્રમાણમાં જ્યારે પ્રત્યક્ષાદિનો બાધ આવતો હોય, ત્યારે મનદ અને મધ્યમાધિકારીને તદુક્ત પ્રકાર રુચિકર તો ન જ થાય. કારણ કે પ્રથમથી સિદ્ધ ઘોડો હજારો શબ્દપ્રમાણના બલથી પણ કોઈથી ગાય છે, એમ સિદ્ધ કરી શકાશે નહિ.

વળી, આસ્તિકોને જો કે શ્રુત્યાદિ પ્રમાણનો નિર્ધાર જ માન્ય છે, તથાપિ તદર્થ સર્વજ્ઞ એવા સ્મૃતિકારોના નિર્ણયો જ ગ્રાહ્ય હોય છે. શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં પ્રતિપાદિત વસ્તુ જો તેથી વિરુદ્ધ હોય તો અપેક્ષિક ઠરે. તેમ પ્રત્યક્ષાદિથી વિરુદ્ધ પ્રતિપાદન કરવાથી અસંભાવના અને સ્મૃતિકારોથી વિરુદ્ધ પ્રતિપાદન કર્યું હોય તો વિપરીત ભાવના ઉત્પન્ન થાય. એમ ઉભય પ્રકારની ભાવનાની નિવૃત્તિને માટે સવિસ્તર સર્વ પદાર્થોનો નિર્ણય કરવો અત્યંત આવશ્યક છે.

### યથાર્થ જ્ઞાન કેમ થાય ?

પ્રમાણ, પ્રમેય, ફલ અને સાધનનું નિરૂપણ કે તદનુકૂલ યુક્તિથી જ્ઞાનાદિમાર્ગ, પ્રાપ્તિયક પદાર્થ અને પ્રમાણાદિના સ્વરૂપનો યથાર્થ બોધ થાય છે, તેથી અસંભાવના અને વિપરીતભાવનાની નિવૃત્તિ પણ થાય. તેથી હીનાધિકારી અને મધ્યમાધિકારીના હૃદયમાં શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણોક્ત સિદ્ધાન્ત સ્થિર થાય. એજ શાસ્ત્રાર્થપ્રકરણની સફલતા છે.

જો હીનાધિકારી અને મધ્યમાધિકારી માટે જ આટલો મહાન્ પ્રયાસ હોય તો આ શાસ્ત્રમાં શ્રીમહાપ્રભુજીના ઉદ્યોગમાં ઉત્તમાધિકારીને શું મળે ? શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં જે અર્થનું નિરૂપણ થયું, તે ઉત્પત્તિ પ્રકારે થયું અને તેનું જ નિરૂપણ સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં ઉપપત્તિ પ્રકારે કરવાનું છે. આથી ઉત્તમાધિકારીને પણ શ્રીમહાપ્રભુજીનો ઉદય લાભકારક તો છે જ.

### પ્રમાણાદિની સંબંધ ઘટના

પ્રમાણ, પ્રમેય, સાધન અને ફલ એ ચારે - યથાસંભવ સર્વ અડ્ડેપાડ્ડો સમેત - પ્રતિપાદ્ય છે. તે સર્વ જ જ્ઞાનાદિમાર્ગ અને યાજ્ઞાદિ પદાર્થોનો બોધ કરાવવામાં કારણત્વે પણ પ્રાપ્ત જ છે અને તે પ્રકારે એ કારણતા જ્ઞાન પણ અસંભાવના અને વિપરીતભાવનાની નિવૃત્તિ કરે છે. આ પ્રકારે એક બીજા સાથે ઉપજીવ્ય ઉપજીવક સંબંધ ધરાવે છે. પ્રમાણાદિ ચારેનું નિરૂપણ વ્યાસસૂત્રોને પણ અનુકૂલ જ છે. યદ્યપિ વ્યાસસૂત્રોમાં તેનું નિરૂપણ છે, તથાપિ ઉપર જણાવ્યા મુજબ અસંભાવના અને વિપરીતભાવનાનો ઉદય થાય તો તેની નિવૃત્તિ માટે

પ્રમાણાદિના બલાબલનો પણ વિચાર કરવો આવશ્યક અને પ્રસન્ન પ્રાપ્ત જ છે.

બલાબલના વિચારથી વેદાદિની બલિષ્ઠતા સિદ્ધ થઈ જાય તો પણ એક શંકા રહી જાય છે. તે એ કે જો જડ, જીવ અને અન્તર્યામી એ ત્રણે ભગવદંશ જ છે, તો પછી તેમને વિષે તારતમ્ય પણ ન હોય. કિન્તુ તારતમ્ય તો સ્પષ્ટ જ છે. અને જો સર્વ જ બ્રહ્મથી અભિન્ન હોય, તો બ્રહ્મમાં વિશેષતા શું છે ? જડ, જીવાદિની ઉપાસનાથી જ કેમ નિઃશ્વેચસની પ્રાપ્તિ ન થાય ? આ શંકાની નિવૃત્તિ માટે પણ હેતુપૂર્વક સર્વના સ્વરૂપનો નિર્ણય કરવો આવશ્યક હોવાથી પ્રમેય પ્રકરણ પણ આવશ્યક છે. પ્રમેય પ્રકરણથી તારતમ્યનું જ્ઞાન થયા પછી પણ વેદમાં કહેલા અનેક સાધનો વિદ્યમાન હોવા છતાં ભક્તિ જ શા માટે આવશ્યક છે? ભક્તિમાં યેશિષ્ઠ્ય શું છે ? એ શંકા બાકી રહી જાય છે. તેની નિવૃત્તિ માટે સર્વ સાધનોનું ફલતઃ અને સુખદુઃખ સાધ્ય તથા તારતમ્ય જણાવવું આવશ્યક હોવાથી ફલપ્રકરણ પણ સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં અનિવાર્ય છે. ફલપ્રકરણથી ફલતઃ અને સુખસાધ્ય ભક્તિ જ શ્રેષ્ઠ છે, એમ જાણી લીધા પછી પણ જો વેદોક્ત મર્યાદિક સાધનોથી જ ફલ પ્રાપ્ત થતું હોય અને ભક્તિથી પણ તેજ પ્રકારનું ફલ મળતું હોય તો ભક્તિમાં યેશિષ્ઠ્ય કાંઈ પણ નથી એમ સિદ્ધ થાય છે, તેથી ફલતઃ ભક્તિનું યેશિષ્ઠ્ય નિરૂપણ કરવાને માટે સાધન પ્રકરણનો સમાવેશ સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં કર્યો છે. આ રીતે પ્રમાણ, પ્રમેય, ફલ અને સાધન એમ અવાન્તર ચાર પ્રકરણો વડે શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં જણાવેલો સિદ્ધાન્ત દઢ થાય છે. તેમ થતાં સર્વનિર્ણયોક્ત વસ્તુનો પણ ચથાર્થ રીતે બોધ થાય છે.

### સર્વનિર્ણયાલંભ

સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં સૌથી પ્રથમ, પ્રમાણપ્રકરણ જ અવાન્તર પ્રકરણત્વે ઉપસ્થિત થતું હોવાથી અને વેદ જ પ્રમાણ હોવાથી વેદાર્થનો જ નિર્ણય અને તત્પ્રતિપાદ્ય પ્રમેયનું દિગ્દર્શન આવશ્યક છે. તેમ જ સર્વનિર્ણયાખ્ય મહાપ્રકરણનો આરંભ કરવાનો હોવાથી શિષ્ટાચાર પ્રાપ્ત મહાચરણ પણ કર્તવ્ય હોવાથી વેદાર્થરૂપ અને વેદોદિત પ્રમેયરૂપ (પૂર્વકાણ્ડોક્ત પ્રમેયરૂપ) હરિની સ્તુતિ અને પ્રમેય નિર્દેશ પ્રથમ અને દ્વિતીય કારિકામાં કર્યો છે.

પદ્માત્મકં દ્વિરૂપં ચ સાધનૈર્બહુરૂપકમ્ ।

સ્વાનન્દદાયકં કૃષ્ણં બ્રહ્મરૂપં પરં સ્તુમઃ ॥

અગ્નિહોત્રં તથા દર્શપૂર્ણમાસઃ પશુસ્તથા ।

ઘાતુર્માસ્યાનિ સોમશ્ચ ક્રમાત્ પદ્મવિધો હરિઃ ॥

પ્રભુ અગ્નિહોત્રાદિ પગ્યાત્મક છે. પ્રકૃતિ વિકૃતિરૂપે દ્વિરૂપ છે. એ બંને પણ સાધનો વડે બહુરૂપ છે તે કેવલ ધર્મરૂપે જ ફલ આપતા નથી; કિન્તુ, નિજાનન્દનું દાન પણ કરે છે, એવા બ્રહ્મરૂપ શ્રીકૃષ્ણાખ્ય પરતત્ત્વની સ્તુતિ પ્રથમ કારિકામાં કરી છે. દ્વિતીય કારિકામાં પગ્યાત્મક પ્રમેયનો નિર્દેશ કર્યો છે. પ્રથમ મહાલવાક્યમાં પૂર્વકાણ્ડનો અર્થ સમાવિષ્ટ થાય છે અને ઉત્તરાર્ધમાં ઉત્તરકાણ્ડનો અર્થ છે.

### વેદાર્થનિરૂપણ

પૂર્વકાણ્ડમાં કહેલા અગ્નિહોત્ર દર્શપોર્ણમાસ, પશુ, ઘાતુર્માસ્ય અને સોમ એ પાંચે પ્રભુનું જ સ્વરૂપ છે તેના સાધનો પ્રયાગાદિ અને જુદું વિગેરે પાત્રો પણ પ્રભુનું જ સ્વરૂપ છે. નિત્યકર્મો પ્રાકૃત-પ્રકૃતિરૂપ છે. અને કામ્યકર્મો વૈકૃત-વિકૃતિરૂપ છે. જેમાં સકલ અકગોનો ઉપદેશ હોય તે પ્રકૃતિયાગ કહેવાય, અને જેમાં અકોનો અતિદેશ કરાતો હોય તે વિકૃતયાગ કહેવાય. નિત્યકર્મ ન કરે તો પ્રત્યવાય પ્રાપ્ત થાય છે. બ્રહ્મજ્ઞાનયુક્ત પુરુષને યજ્ઞરૂપ હરિનું સેવન કરવાથી ભગવદાનન્દરૂપ ફલની પ્રાપ્તિ થાય છે. ભગવદાનન્દની અભિવ્યક્તિ થાય ત્યારે, અર્થાત્ પગ્યાત્મક યજ્ઞરૂપ હરિ અને બ્રહ્મ એ છયેની અભિવ્યક્તિ થયે ફલ પ્રાપ્ત થાય છે. આ વૈદિક મર્યાદા હોવાથી મર્યાદાને અનુરૂપ કમમુક્તિની પ્રાપ્તિ થાય. જો બ્રહ્મજ્ઞાન ન હોય તો પગ્યાત્મ યજ્ઞરૂપ હરિ સ્વર્ગ-આત્મસુખનું દાન કરે છે. (કારણ કે યદેવ વિદ્યાયા કરોતિ ઈત્યાદિ શ્રુતિ બ્રહ્મજ્ઞાની કર્મ કરે તો તે કર્મ વીર્યવત્તર થાય છે એમ ઉપદેશ કરે છે.)

સ્વર્ગ બે પ્રકારનું છે. એક લોકાત્મક અને બીજું આત્મસુખાત્મક. જે દુઃખથી ભેદાયું નથી અને જેની પ્રાપ્તિથી પણ દુઃખ નથી તે આત્મસુખાત્મક સ્વર્ગ છે. અને જે ઈર્ષ્યાદિથી યુક્ત છે અને પુણ્યશીલ થતાં પુનઃ દુઃખ થવાના સંભવથી યુક્ત છે તે લોકાત્મક સ્વર્ગ છે, ઉપર જણાવેલા છયે રૂપ ધરનાર (પગ્યાત્મક યજ્ઞરૂપ અને બ્રહ્મતનુ) પ્રભુનું મનન છે, તે આત્મસુખરૂપ ફલનું જ દાન કરે છે. જ્યારે સત્પણુ પ્રવૃદ્ધ થાય ત્યારે સ્વર્ગસુખ-આત્મસુખરૂપ સ્વર્ગ પણ પ્રાપ્ત થાય. આ પ્રકારનું ફલ મેળવવાની કામના ન હોય તો પણ તે પ્રાપ્ત થાય છે. અથવા નિત્યકર્મથી તેની પ્રાપ્તિ થાય છે. કારણ કે નિત્યકર્મ - ન કરે તો પ્રત્યવાયજનક છે, કરે તો અમુક જ પ્રકારનું ફલ પ્રાપ્ત થાય એવો નિયમ નથી, તેથી તે આત્મસુખ અર્પે છે. યજ્ઞરૂપ હરિ-યાગાદિથી ઈચ્છિત ફલનું પણ દાન કરે છે.

જો આત્મસુખની જ પ્રાપ્તિ થતી હોય તો શિષ્ટ સ્વર્ગ શબ્દ શા માટે વાપર્યો ? કારણ કે લોકાત્મક સ્વર્ગ અત્યંત પ્રસિદ્ધ હોવાથી અને સુખના સાધનોથી યુક્ત પણ હોવાથી તેની પ્રાપ્તિ સર્વને ઈષ્ટ હોય છે, તેથી બાલાનુશાસનાર્થ, તથા રુચિ ઉત્પન્ન કરવા માટે શિષ્ટ સ્વર્ગ શબ્દ વાપર્યો છે; જેથી સર્વની પ્રવૃત્તિ થાય. વાસ્તવિક રીતે તો નિષ્કામ કર્મથી સ્વર્ગની પ્રાપ્તિ થાય છે, એટલે આત્મસુખની પ્રાપ્તિ થાય છે; એજ અર્થ યુક્ત છે. પશુબંધયાગ સર્વ લોકોને મેળવે છે અંતે ચાતુર્માસ્ય યાગ કરનારને અસત્ય ફલ તે મળે છે. અસત્ય ફલ આત્મસુખ વિના બીજું શું હોઈ શકે ? એ જ નિત્યકર્મનું ફલ છે.

વિકૃતિયાગ પણ હરિનું રૂપ છે. કિન્તુ વિકૃતિયાગથી કિચિત્ વિકૃત ફલ પ્રાપ્ત થાય છે. કારણ કે તેમાં સાધન પણ કિચિત્ અન્યથા થાય છે. તે વિકૃતિ પણ વેદોક્ત હોવાથી ફલદાન તો કરે જ. જો વિકૃતિ યાગથી પણ શાશ્વતિક ફલ-આત્મસુખરૂપ ફલની પ્રાપ્તિ થતી હોય, તો નિત્યકર્મમાં પ્રવૃત્તિ જ થાય, અને વિકૃતિયાગ કામ્ય હોવાથી અને તેમાં પશુ પુત્રાદિની પણ આવશ્યકતા હોવાથી નિત્ય કે કામ્ય કર્મ તેમના અભાવે સિદ્ધ થતાં નથી. વેદમાં નિત્યકર્મના અડ્ગત્વે પણ - અપ્રપ્રણયનાદિમાં-પશુ ઇત્યાદિ ફલની પ્રાપ્તિ જ જણાવી છે. એક જ કર્મથી અનેક ફલ તો મળે જ નહિ, તેથી પશુપુત્રાદિની પ્રાપ્તિ માટે કર્મની આવૃત્તિ કરવી પડે. નિત્ય કર્મો નિરડ્ગ હોય કે યથાશક્તિ અડ્ગવાળા હોય તો પણ આત્મસુખ ફળ આપે જ. પરંતુ તે જ અગ્નિહોત્રાદિ નિત્ય કર્મો જ્યારે કામ્ય બને ત્યારે સાડ્ગ કર્મ જ પશુપુત્રાદિ ઐહિક ફળ પણ આપે. જેમ ધ્યાનાદિથી મૂર્તિને વિષે પરમાત્માની અભિવ્યક્તિ થાય, તેમ અગ્ન્યાધાનાદિ ક્રિયાથી યજ્ઞરૂપ પ્રભુની પણ અભિવ્યક્તિ થાય. જ્યારે અભિવ્યક્તિમાં કામ્ય કર્મો હોય ત્યારે તે સાડ્ગકર્મો ફળ અર્પે અને જ્યારે તદભિવ્યક્તિમાં કામ્યરૂપ ફલાભિકાંક્ષા ન હોય ત્યારે નિરડ્ગ પણ આત્મસુખ અર્પે.

### બે જ પુરુષાર્થો છે

આ ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે, કે પુરુષાર્થ બે જ છે. એક દુઃખાભાવ અને બીજો સુખ. સુખ સ્વર્ગાદિ પદવડે વેદમાં જણાવ્યું છે. મોક્ષ દુઃખાભાવ પદ વડે લક્ષિત છે. એ બંનેનું અડ્ગ ધર્મ છે. આત્મચિન્તન પણ ધર્મ જ છે. ધર્મનું સાધન અર્થ છે. યાગ ધર્મરૂપ છે, કામનું સાધન છે. અર્થાત્ જ અર્થ અને કામ પણ અડ્ગ છે. સાધનરૂપ હરિ અને ફળ રૂપ પણ હરિ જ છે. એમ વેદમાં નિરૂપણ

કર્યું છે. એ યજ્ઞરૂપ હરિની પુરુષાર્થ સ્વરૂપે અભિવ્યક્તિ થતાં જ સર્વ પુરુષાર્થો સિદ્ધ થાય છે.

### વેદનું પ્રયોજન, ત્રિવિધ જીવ અને ફલ નિર્ણય

પ્રભુનું રૂપ પ્રપગ્યાવિચિત્ર છે. જીવ અંશરૂપ છે. અત્પ એવા જીવોને ભ્રમ થાય છે, તેની નિવૃત્તિ માટે, અન્તઃકરણના પ્રસાદાર્થે પ્રભુએ વેદને પ્રકટ કર્યો. વેદનું આ પ્રકારનું સ્વરૂપ સાત્ત્વિક જીવો જ જાણી શકે. જીવ ત્રણ પ્રકારના છે. દેવ, દાનવ અને માનવ, તે સર્વે વેદવિદ્ થયા, ત્યારે સ્વભાવ અને ગુણને અનુસરીને વેદાર્થ કરવા લાગ્યા. તેમની પ્રકૃતિના યૈચિત્ર્યથી શ્રુતિઓનો અર્થ પણ અનેક રીતે થયો, ઉપક્રમાદિ પ્રકરણાર્થરૂપ ભાવના અજ્ઞાનથી કેવલ વાક્યાર્થને અનુસરીને કેટલાકે વેદનો અર્થ કેવલ કર્મ જ છે એમ કર્યો. લોકપ્રતીત અર્થ જ વેદ કહે છે એમ પણ કેટલાકે નિશ્ચય કર્યો. ભગવાન્ સર્વ ગુણના અધિષ્ઠાતા છે. સર્વ માર્ગોને પ્રવર્તાવે છે તેથી તે કર્મમાર્ગને પણ પ્રવર્તાવે - તેને પણ અનુસરે, એમ પણ કેટલાકે નિર્ણય કર્યો. યાગ ભગવાન્નો અંશ હોવાથી સર્વ જ કામનાઓની પૂર્તિ કરે છે. પરંતુ અહિંયા આટલું તો ખાસ ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ કે જો સર્વ કામ - શુભાશુભ સર્વ જ પ્રભુ, યાગદ્વારા આપે, તો વેદમાં કામનાનો નિષેધ ન કરે અથવા તો કામના હેય હોવાથી કામ્યકર્મો નિત્ય નથી જ. જો યથોક્ત અયથા-જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું હોય તો અપુનર્જન્મ-મોક્ષ મળે. અન્યથા પુનર્જન્મ પણ થાય જ. અર્ચિરાદિ માર્ગ અને ધૂમાદિ માર્ગ દ્વારા, અથવા જ્ઞાનનું ફલ મળે. કિન્તુ તે સર્વ જ યેરાગ્યાર્થ છે. એમ પગ્યાગ્નિવિદ્યાના પ્રકારોમાં વર્ણવ્યું છે. જુઓ વ્યાસ સૂત્રનો તૃતીયાધ્યાય.

### શાખાભેદનું કારણ

સર્વનિર્ણય પ્રકરણમાં પ્રમાણરૂપ પદાર્થનો નિર્ણય સૌથી પ્રથમ કરવાનો હોવાથી વેદાર્થની રૂપરેખા જણાવીને વેદમાં જે શાખાભેદો અને પાઠભેદો વગેરે મળી આવે છે તેનો પણ નિર્ણય કરવો આવશ્યક હોવાથી ચોવીસમી કારિકાથી આરંભીને બત્રીસમી કારિકા સુધી શાખાભેદનો નિર્ણય છે. ઇતર તન્ત્રકારોએ પણ એ જ પ્રકારના વિચારો દર્શાવ્યા છે. તેમના મનથી વિશેષ યેલક્ષણ કાંઈ નથી. તેથી આપશ્રીએ તેનો નિર્ણય પણ સંક્ષેપમાં જ કર્યો છે. ઇતર તન્ત્રોથી જેવું વેશિષ્ટય તત્ત્વદીપનિબંધમાં છે, તેવું જ શાખાભેદના માટે પણ છવીસમી દોઢ શ્લોકની - કારિકામાં પ્રદર્શિત કર્યું છે. અને બત્રીસમી દોઢ શ્લોકની કારિકામાં કર્મ

તથા બ્રહ્મરૂપ પ્રભુના શ્રીઅંગના છ પ્રકારો પ્રદર્શિત કર્યા છે. ચોવીસમી કારિકામાં શાખાભેદ કર્મભેદ થતો નથી. કિન્તુ સર્વશાખાપ્રત્યય એક કર્મ જ છે. આ જ સિદ્ધાન્ત પૂર્વમીમાંસામાં દ્વિતીયાધ્યાયના ચતુર્થપાદના અન્તિમ અધિકરણ દ્વારા જેમિનિ મહર્ષિએ પ્રતિપાદિત કર્યો છે તેમ જ વેદોશ્વેકે સન્નિકર્ષ પુરુષાઘ્યા: આ પ્રથમાધ્યાયના અષ્ટમાધિકરણમાં ચે કાઠકાદિ સમાખ્યા ઉપરથી વેદમાં કૃતકત્વ નથી એમ સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે. ઉભય અધિકરણોનો સૂક્ષ્મ વિચાર કરવાથી આપણે એ જ નિશ્ચય ઉપર આવી શકીશું કે કાઠકાદિ સમાખ્યાને લીધે વેદિક કર્મમાં ભેદ નથી. કિન્તુ તે તે સમાખ્યા તે તે શાખાના મુખ્ય અધ્યેતાઓનો જ પરિચય કરાવે છે. સ્વાધ્યાયવિધિ સમગ્ર વેદાધ્યયનનો બોધ કરાવે છે. ત્યાં પણ ઋગ્વેદાદિ એકેકશાખાધ્યયન જ નિષ્કૃષ્ટાર્થ છે. એક જ વેદવૃક્ષની અનેક શાખાઓ છે આથી જ શ્રીમાન્ કુમારિભટ્ટ તન્ત્રવાર્તિકમાં કહે છે કે-

एकस्य वेदवृक्षस्य किञ्चित्कर्मफलश्रयात् ।

एवं शाखा प्रसिद्ध्यन्ति बहुशाखैकवृक्षवत् ॥

એક શાખાધ્યયન માટે પણ તન્ત્રવાર્તિકકાર જણાવે છે કે-

स्वाध्यायग्रहणेनैका शाखा हि परिगृह्यते ।

एकार्थानां विकल्पश्च कर्मैकत्वे भविष्यति ॥

यथैवाकृतिः प्रतिव्यक्ति समवैति, तथैव स्वाध्यायत्वमेकैकસङ્ગ્યાં શાખાયाम્ । 'સ્વાધ્યાયોઽધ્યેતવ્યઃ' इति कर्मावबोधनं प्रत्युपादीयमानत्वाद्वि-क्षितैकसङ्ग्यैका शाखाऽधेतव्या । नन्वेवं वेदान्तरस्याप्यध्ययनं न प्रसज्यते । न । वचनान्तरेण प्रति प्रसवात् ।

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ પણે સમજી શકાય છે, કે પ્રત્યેક વેદની એકેક શાખાનું અધ્યયન જ સ્વાધ્યાયવિધિબોધિત છે. આ સંપૂર્ણ અધિકરણનું તાત્પર્ય શ્રીમદ્વલ્લભાધીશ અર્ધશ્લોકમાં જણાવે છે.

बहुप्रकारमेकं हि कर्म वेदे प्रकाश्यते ।

અહીં, સિદ્ધાન્ત તો પૂર્વમીમાંસોક્ત જ છે, કિન્તુ યૈશિષ્ઠમાત્ર એટલું જ છે, કે શ્રીમહાપ્રભુજી સર્વશાખાઓમાં જણાવેલા કર્મનો અભેદ સ્વીકારીને તેમની ભગવદ્વપતા સાધી આપે છે અને ઈતરત્ર તેવા સ્પષ્ટ પચનો પ્રાપ્ત થતાં નથી. યદ્યપિ કર્મશ્રત્વવાદમાં ચે ફલોત્પાદિકા શક્તિ કર્મમાં જ છે એમ સ્પષ્ટ જોવામાં આવે છે અને અન્તતો ગત્વા તેઓ પણ કર્મરૂપ બ્રહ્મને-ક્રિયાશક્તિપ્રધાન કર્મ બ્રહ્મને સ્વીકારે છે; જ્યારે શ્રીમહાપ્રભુજી અનેક શાખાગત કર્મ એક જ હોવા

ઉપરાન્ત તે ભગવત્સ્વરૂપ છે એમ જણાવે છે. ભગવન્મૂર્તિતાસિદ્ધયૈ તે સર્વે પૂર્વજૈર્ઘૃતાઃ આ ચોવીસમી કારિકા સકલ વેદાર્થ અને અનેક પ્રકારનાં કર્મોનું સ્પષ્ટ ભગવત્સ્વરૂપત્વ સિદ્ધ કરી આપે છે.

આવરણભઙ્ગકાર શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી મહારાજ પણ ઉક્ત કારિકાઓનું સ્વાસ્થ્ય જણાવતા દ્વિતીયાધ્યાયના ચતુર્થ પાદનું દ્વિતીય અધિકરણ ટાંકીને તન્ત્રવાર્તિકોક્ત જ સમાધાન સ્વીકારી લે છે. એટલું જ નહિ પણ શાખાન્તરાધિકરણ ના તન્ત્રવાર્તિકની આનુપૂર્વથી જ ગુણપ્રધાનનો પણ વિચાર કરે છે. यदि प्रतिशाखं तन्त्रवेदः स्यात्तत एकमूलाभावाददित एवारभ्य भिद्यमानत्वात्समस्तकर्माख्यपुष्प-फलान्तरत्वाद्भक्षान्तरयद्वेदान्तराण्येवोच्येरेत्, न शाखान्तराणि आ तन्त्रवातिकना अभिप्राये ज निजव्याख्यामां यथा वृक्षे यावन्ति पुष्पफलपत्राणि शाखाभेदेन तत्र तत्र भवन्ति, तथात्र वेदस्यकृत्स्नं गुणकाण्डं तत्र शाखाभेदेन वर्तत इति सादृश्येन तस्य तस्य भागस्य शाखात्वव्यपदेशात् इत्यादि पङ्क्तिमां व्यक्त કરે છે.

શાખાભેદ હોવા છતાં ઈતર શાખાગત અઙ્ગકલાપ ગ્રહણ કરી શકાય છે, એમ મીમાંસારાદ્ધાન્ત હોવાથી નિખિલ વેદ એકમૂળવાળા વૃક્ષની જેમ વૃક્ષત્વે ગ્રહણ કરાય છે અને શાખાઓ શાખાત્વે. પુરાણોમાં શાખાભેદના કારણે જણાવ્યા છે તે સર્વનો સઙ્ગ્રહ કરીને વિશેષતઃ શ્રીમદ્ભાગવતના પ્રથમસ્કન્ધના ચતુર્થાધ્યાયનો સઙ્ગ્રહ કરીને, કિંમબુના ભાગવતના જ શબ્દોમાં શ્રીમહાપ્રભુજી શાખાભેદનું કારણ જણાવે છે.

अल्पज्ञत्वादाधुनिकाः पाठज्ञानाक्षमा द्विजाः ।

मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥

द्वापरान्ते हरिव्यासस्तदर्थं प्रथमं पृथक् ।

चातुर्होत्रविभागेन व्यस्तवान् वेदरूपतः ॥

शाखाभेदास्तु तच्छिष्यैस्तेनैव प्रेरितैः कृताः ॥

શ્રીમદ્ભાગવતના પ્રથમસ્કન્ધના ચતુર્થાધ્યાયમાં દ્વાપરે સમનુપ્રાપ્તે આ ચતુર્દશ શ્લોકથી આરંભીને ત્રેવીસમાં શ્લોક સુધી વેદનો વ્યાસ અને શાખાભેદનું વર્ણન આવે છે. ત એનમૃષયો વેદં સ્વં સ્વં વ્યસ્યન્નનેકઘા । શિષ્યૈઃ પ્રશિષ્યૈસ્તચ્છિષ્યૈર્વેદાસ્તે શાખિનોઽભવન્ આ ભગવતોક્ત નિર્ણય જ શ્રીમહાપ્રભુજીને સંમત છે. શાખાભેદનું પ્રશસ્ત વર્ણન ચરણવ્યૂહમાં ઉપલબ્ધ છે. ચરણવ્યૂહમાં ઋગ્વેદની શાકલાદિક દશ શાખાઓ બતાવી છે. યજુર્વેદની મેત્રાચણ વગેરે છયાંતી શાખાઓ છે. સામવેદની રાણાચન વિગેરે સહસ્ત્ર શાખાઓ છે અને અથર્વવેદની

પિપ્પલાદ પ્રભૃતિ નવ શાખાઓ છે. તેમાંથી કેટલીક શાખાઓના અધ્યેતા મળતા નથી તેનું કારણ વિદ્વાનો એમ જણાવે છે કે - અનદ્યાયમાં અધ્યયન કરનારા ઈન્દ્રના વજ્રથી નાશ પામ્યા. યદ્યપિ તે તે શાખાઓના અધ્યેતા નાશ પામ્યા છે. તથાપિ શાખાઓનો નાશ નથી, એતદ્વિષયક વિચાર ઇતરત્ર સવિસ્તર થયો છે, પ્રકૃતમાં તેનો વિચાર અનાવશ્યક હોવાથી અને વિસ્તારના ભયથી યથાવકાશ અમે પણ અમરા વિચારો ઇતર નિબંધમાં જણાવીશું.

હવે એક શઙ્કા બાકી રહી જાય છે, તે એવી કે - વેદનો વ્યાસ કયો તત્પૂર્વે સમગ્ર વેદ એક જ હતો; ત્યારે સર્વ શાખાઓનો પણ સમાવેશ તેમાં જ થયેલો હતો. તે સમયે દર્શપોર્ણમાસાદિ સર્વ કર્મો અત્યારે જેમ ભિન્ન ભિન્ન શાખાઓમાંથી પ્રાપ્ત થાય છે, તે જ પ્રકારે પ્રાપ્ત થતાં હશે, અને તેમ થતાં એક જ કર્મના અનેક પ્રકારો અને એક જ કર્મનો પ્રકાર અનેકત્ર પણ મળી આવતો હશે; તો પછી વેદમાં પુનરુક્તિ દોષ કેમ નહિ ? અને કયું કર્મ કયા પાઠને અનુસરીને કરવું ?

પુનરુક્તિ દોષના પરિહાર માટે તત્ત્વદીપનિબંધમાં વિચાર કરવામાં આવ્યો નથી. આ કલ્પના વેદાર્થના મહાન્ દષ્ટાઓથી અજ્ઞાત હતી, એમ કહી શકાય નહિ. શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી મહારાજ ન ચૈવં પ્રતિપત્રેક્યાપાતેન પુનરુક્તતાપત્તિઃ, તસ્યા અનન્તરૂપબોધનાર્થત્વાત્, રૂપાદ્યભેદેન તથાનિશ્ચયાત્ ઇત્યાદિ વાક્યોવડે તેનો નિરાસ કરે છે. શ્રીમહાપ્રભુજીએ ઉક્ત શઙ્કાનો નિરાસ કયો નહિ તેનું કારણ એ જ હોઈ શકે, કે શાખાન્તરાધિકરણનું જ તાત્પર્યં બહુપ્રકારમેકં હિ કર્મ ઇત્યાદિ કારિકામાં દર્શાવેલું હોવાથી ઉક્ત શઙ્કાનું સમાધાન પણ એજ અધિકરણના અદ્વિવચનં વા શ્રુતિસંયોગાત્ અને વાક્યાસમવાયાત્ આ બે સૂત્રોમાં આવેલું હોવાથી તે વિષયનો સમાવેશ અત્ર કયો નથી. શ્રીમહાપ્રભુજી પૂર્વોત્તરમીમાંસાને પ્રમાણત્વે સ્વીકારે છે. અત્યારે કેટલીક પાર્ટીઓ પડી ગઈ છે. કોઈ પાર્ટી શ્રીમહાપ્રભુજીના વાક્યોમાં અર્થાન્તરની કલ્પના કરે છે, એમ કદાચિત્ શ્રીમહાપ્રભુજી જાણતા હોત તો પ્રત્યેક વિવાદાસ્પદ વિષયોનો અને ધર્મશાસ્ત્રોનો પણ સ્વતન્ત્ર નિર્ણય લખત અથવા શ્રીમહાપ્રભુજી તો સર્વજ્ઞ હોવાથી પાછળથી વીસમી સદીના વિદ્વાનો એવા થશે એમ જાણતા હોવા છતાં-એ આસુરવિદ્યોપજીવી જનોને અને કલહપ્રિય વિદ્વાનોને નિજ ચરણારવિન્દથી સુદૂર રાખવા માટે જ તેમ કર્યું હશે. વસ્તુતત્ત્વના બુલુત્સુઓ તો શ્રીમહાપ્રભુજીના વાક્યોમાં સર્વશાસ્ત્રનો અવિરોધ જ જુએ છે.

અથવા સર્વશાખાઓ જ્યારે વ્યસ્ત ન હતી, ત્યારે પણ પ્રભુની અનન્તમૂર્તિતાથી અનન્ત કર્મસ્વરૂપો જણાવે, તેથી કાંઈ પુનરુક્તિ દોષ આવતો

નથી. શ્રીમહાપ્રભુજીનો અભિપ્રાય તો એજ છે. શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી પણ શબરોક્ત કે કુમારિલોકત યુક્તિની અપેક્ષાએ અનન્ત મૂર્તિતાની સિદ્ધિમાં જ દોષપરિહાર જુએ છે. તથાપિ શબરસ્વામીની અને કુમારિલની યુક્તિ હેય તો નથી એમ કોઈ પણ સહૃદય વ્યક્તિ સ્વીકારશે જ. એક જ વેદમાં અનેક વ્યક્તિઓ કહેતાં હોય તેમ વર્ણન કરવામાં આવ્યું હોય તો અનેક પુરુષોએ પોતપોતાના શબ્દોમાં કહેલું કર્મ અનેકત્ર પ્રાપ્ત થાય જ. પણ તેથી કાંઈ પુનરુક્તિ દોષ પ્રાપ્ત થતો નથી. તેમજ અધિકારી ભેદ પણ માનવાનો છે. અધિકારીભેદે પણ પુનરુક્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી. ઐચ્છિકવિકલ્પની અપેક્ષાએ અધિકારી ભેદ જ માનવો યોગ્ય જ છે, એમ શ્રીપુરુષોત્તમજીનો અભિપ્રાય છે.

હવે માત્ર વિચાર કરવાનો એ રહે છે કે એક જ કર્મ અનેકત્ર પઠિત હોવાથી કયા પાઠને અનુસરીને તે કર્મ થઈ શકે ? જ્યારે વેદનો વ્યાસ થયો ન હતો ત્યારે તો ઐચ્છિકવિકલ્પ હતો. અર્થાત્ ઇચ્છાનુસાર ગમે તે પ્રકારનો પાઠ સ્વીકારીને કર્મ કરવાનું હતું. જ્યારે વેદનો વ્યાસ થયો અને શાખાભેદ પણ થયો ત્યારે નિયત પાઠને અનુસરીને જ કર્મ કરવાનું હોવાથી તે તે શાખાઓમાં જે વિકલ્પો પ્રાપ્ત થતાં હોય તે ઐચ્છિક નહિ પણ નિયત જ લેવાના છે. કારણ કે વ્રીહિભિર્યજેત યવૈર્વા વિકલ્પ અષ્ટદોષદુષ્ટ હોય છે. ઇત્યાદિ વિકલ્પમાં વ્રીહિના પ્રયોગમાં (૧) પ્રતીતયવના પ્રમાણનો પરિત્યાગ (૨) અપ્રતીત પ્રમાણનું પરિકલ્પન (૩) પ્રયોગાન્તરમાં ઉપાદીયમાન યવ હોવાથી પરિત્યક્ત યવના પ્રમાણનું ઉજ્જીવન અને (૪) સ્વીકૃત યવના અપ્રમાણની હાનિ એમ ચાર દોષ યવગત અને એ જ પ્રકારના ચાર દોષ વ્રીહિને વિષે પણ હોય જ. અર્થાત્ જ અષ્ટદોષદુષ્ટ વિકલ્પ છે. અભિયુક્તોક્તિ પણ જણાવે છે:-

પ્રમાણત્વાપ્રમાણત્વપરિત્યાગપ્રકલ્પને ।

પ્રત્યુજીવનહાનિભ્યાં પ્રત્યેકમદ્દોષતા ॥

શ્રીપુરુષોત્તમજી મહારાજ પણ ઉપર જણાવેલા અષ્ટદોષો ઐચ્છિક વિકલ્પમાં છે, એમ સ્વીકારે છે. પરન્તુ શ્રીમહાપ્રભુજી સ્પષ્ટ શબ્દોમાં ઐચ્છિક વિકલ્પ જ જણાવે છે, તેનું શું ? એવો પ્રશ્ન સહજ ખડો થાય છે, તેનું સમાધાન શ્રીમત્પુરુષોત્તમજી મહારાજ એમ પણ આપે છે, કે અધિકારીભેદમાં પણ જ્યાં ઐચ્છિક વિકલ્પ પ્રાપ્ત થતો હોય ત્યાં અષ્ટદોષદુષ્ટ વિકલ્પની અપેક્ષાએ અધિકાર ભેદની કલ્પના યદ્યપિ યોગ્ય છે, પરન્તુ તેથી ચે વિશેષ તો એ છે કે ભગવન્મૂર્તિત્વ

જ પ્રત્યેકમાં સ્વીકારવું. અર્થાત્ પ્રભુ અનન્તરૂપ છે તેથી કર્મ પણ અનન્તરૂપ છે. કર્મ પણ ભગવદ્રૂપ તો છે જ ને ?

વેદના વ્યાસમાં અને શાખાભેદમાં ભગવાન્ વેદવ્યાસની કૃપાલુતા પણ શ્રીમહાપ્રભુજીએ જણાવી છે.

### ઉત્તરકાણ્ડાર્થ

જેમ કર્મમાં અનેક પ્રકારના ભેદ ઋષિઓએ જણાવ્યા છે, તેમ બ્રહ્મના ભેદો પણ છે જ. અહિંયા ભેદ શબ્દનો અર્થ પ્રકાર કે અનેકરૂપતા લેવાનો છે. જો પૂર્વકાણ્ડથી જ ઉત્તરકાણ્ડની ગતાર્થતા માની લેવાય તો ઉત્તરકાણ્ડનો ઉચ્છેદ પ્રાપ્ત થાય. અતએવ સ્વાધ્યાય વિધિથી ઉત્તરકાણ્ડનું પણ ચથાર્થ બોધ સુધી અધ્યયન આવશ્યક છે. ભગવાન્ વેદવ્યાસે જ ઉત્તરકાણ્ડનો પૃથક્ નિર્ણય કર્યો છે. આથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ઉભય કાણ્ડોનું ગાયત્ર્યેકત્વ અને પ્રયોજનૈકત્વ નથી. સ્વાધ્યાયવિધિથી ઉભય કાણ્ડોનું અધ્યયન થાય તદર્થ એકત્ર માનવાના છે. નિર્ણય એકત્ર માનવાનો નથી. ઉભય કાણ્ડોનો પ્રતિપાદ્યવિષય-કર્મ અને બ્રહ્મ એમ નિરાણો હોવા છતાં એ એક બીજાને અંશતઃ ઉપકારક પણ છે. આધિભૌતિક યજ્ઞથી ચિત્તશુદ્ધિ થાય અને વેદાન્તથી જીવસ્વરૂપનું વિજ્ઞાન થાય. કિન્તુ મુખ્ય પુરુષાર્થની સિદ્ધિ માટે પૂર્વમીમાંસારૂપે અને ઉત્તરમીમાંસારૂપે પૃથક્ પૃથક્ નિર્ણય છે.

આ ઉપરથી એમ સ્પષ્ટતયા સિદ્ધ થાય છે કે પૂર્વકાણ્ડનું પ્રમેય યજ્ઞતનું શ્રીહરિ છે અને ઉત્તરકાણ્ડનું પ્રમેય જ્ઞાનરૂપ શ્રીહરિ છે.

મન્દ અને મધ્યમાધિકારી માટે પૂર્વોત્તરમીમાંસાના નિર્ણયો સંદેહરાહિત્યાર્થે આવશ્યક છે. પરન્તુ ઉત્તમાધિકારીને તેનું પ્રયોજન શું ? એવો પ્રશ્ન જો ઉપસ્થિત થાય તો તેનું સમાધાન ત્રણ કારિકાવડે કર્યું છે, તેમાં દ્રાઢ્ય જ પ્રયોજન છે.

સમસ્તવેદ ભગવદ્રૂપ છે તેમાં વેદરૂપ શ્રીહરિનું શ્રીમસ્તક ઉત્તરકાણ્ડ કે જ્ઞાનકાણ્ડ છે અને પગ્યાત્મયજ્ઞ હોવાથી બંને શ્રીહસ્ત, બંને ચરણારવિન્દ અને મધ્યભાગ અને પૂર્વકાણ્ડરૂપ પ્રભુના અડ્ગો છે. પ્રભુ અનન્તમૂર્તિ હોવાથી તેમણે જ (કે તેથી જ) અનન્ત શાખાઓ કહી છે.

આ રીતે પ્રમાણ પ્રકરણમાં સૌથી પ્રથમ વેદાર્થનો અને તદ્ગત કર્મ તથા બ્રહ્મનો વિવેક બત્રીસ કારિકાઓ વડે દર્શાવ્યો. હવે શ્રીકૃષ્ણવાક્ય કે જેને સૌત્રભાષામાં સ્મૃતિ પણ કહે છે - તે સ્મૃતિનો વિવેક પણ આવશ્યક હોવાથી, સ્મૃતિનું સ્વરૂપ અને તત્પ્રામાણ્યાદિનો નિર્ણય તૈત્રીસમી કારિકાથી આરંભે છે.

### સ્મૃતિનો નિર્ણય

સ્મૃતિર્વહ્નિવિધા પ્રોક્તા આ તૈત્રીસમી કારિકાથી પ્રારંભ કરીને બ્રહ્મપ્રકરણં સ્માર્ત કલ્પસૂત્રવેદવિદ્મ હિ । પુરાણમૂલકં વાડપિ હ્યશ્રમાચારતોદિતમ્ આ કારિકા સુધી ચોદ કારિકાઓમાં સ્માર્ત વિધાનોનો નિર્ણય કરવામાં આવ્યો છે.

તત્ત્વાર્થદીપનિબન્ધના આચાર કે વર્ણાશ્રમના પ્રકરણ ઉપર, સ્મૃતિનિર્ણયના પ્રકરણ ઉપર કે ભક્તિ પ્રકરણ ઉપર કાંઈ પણ લખવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે અત્યારની પરિસ્થિતિ આંખ આગળ ખડી થતાં આજના યૌવન સમાજમાં પરમ્પરાપ્રાપ્ત અધ્યયનનો અભાવ થઈ જવાથી, સામ્પ્રદાયિક પૈડોતોમાં લગભગ પચાસ વર્ષ જેટલા લાંબા સમયથી ચાલતો આવેલો મતભેદ હોવાથી અને પાશ્ચાત્યશિક્ષા-દીક્ષા-દીક્ષિતોની મીમાંસાવિરુદ્ધ વિચારપદ્ધતિથી ઘણો ખળભળાટ થઈ જાય છે. અને તેથી જ કોઈપણ તટસ્થ વિચારકને સ્વતન્ત્ર રીતે વિચાર કરવાનો પ્રસંગ જ પ્રાપ્ત થતો નથી. તેમ જ જો કોઈ તટસ્થ વ્યક્તિ વિચારનો શ્રમ લે તો તેની ઉપર અનેક પ્રકારની જવાબદારીઓ આવી પડતી હોવાથી આ પ્રકરણનો આવશ્યકતાથી અતિ ઘણો વિસ્તાર કરવો આવશ્યક થઈ પડે છે. ઈતરત્ર આટલા વિષયનો એકત્ર સમાવેશ પણ અશક્ય છે; તેથી વિસ્તારનો ભય રાખ્યા વિના સ્મૃતિ પ્રામાણ્ય નિર્ણય માટે સંપૂર્ણ વિચાર પ્રકટ કરવાની છૂટ લીધી છે.

શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યચરણ જેમ વૈદિક તત્ત્વોનો નિર્ણય કેવલ શ્રુતિબલથી જ કરે છે, શ્રુત્યર્થમાં યુક્તિ કે ખેંચતાણને સ્વત્પ પણ સ્થાન આપતા નથી; સન્દિગ્ધ વિષયોનો નિર્ણય જો સર્વથા લક્ષણોનો આશ્રય લીધા વિના અસંભવિત ભાસતો હોય કે વાદિઓની યુક્તિઓનો જવાબ આપવાનો હોય, ત્યારે પણ શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતા, વ્યાસ સૂત્ર અને શ્રીમદ્ ભાગવતના નિર્ણયોને જ અનુસરે છે તેમ સ્માર્ત નિર્ણયમાં પણ ઉપર જણાવેલી પદ્ધતિનું જ અનુસરણ કરે છે; તથાપિ તે નિર્ણયો પૂર્વમીમાંસાથી વિરુદ્ધ ન હોવા જોઈએ તેની સંપૂર્ણ કાળજી રાખે છે.

અનેક પ્રકારની સ્મૃતિઓ ઉપલબ્ધ થાય છે. તેમાં પરસ્પર વિરુદ્ધ જેવા દેખાઈ આવતા અનેક નિર્ણયો છે. વેદમાં તો શાખાભેદ હોવાથી કદાચ તેવો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય પણ તે સમયે વેદનો વ્યાસ કરનાર શ્રીમાન્ વ્યાસજી જ નિર્ણાયક હોય છે; જ્યારે સ્મૃતિઓના નિર્ણયો માટે વ્યાસે પણ મોન સ્વીકાર્યું છે અને તે વેદવત્ ભગવત્કૃત કે ભગવન્નિઃશ્વાસાત્મક અથવા તો ભગવદ્રૂપ પણ નથી. અતઃ સ્મૃતિઓના પ્રમાણ્યનો વાદ અનેકત્ર ઉપસ્થિત થાય છે. આપણા દુર્દેવને લીધે

કહો, કે કાલબલે કહો ધર્મશાસ્ત્રનો ઊંડો અભ્યાસ કરનારા વિદ્વાનોનો ભારતવર્ષમાં ઘણો ખરો અભાવ થઈ ગયો છે. ધર્મશાસ્ત્રો નિબંધ ગ્રંથોમાં જ અટવાયા કરે છે. અને તે નિબંધ ગ્રંથો પણ અપરિપક્વવ્યુત્પત્તિવાલાં વિદ્વાનોના હાથનું રમકડું બની ગયાં છે, તેથી જ્યારે ત્યારે ધાર્મિક આચારો માટે કલહ ઉપસ્થિત થતો જોવામાં આવે છે. પરિણામે ધર્મશાસ્ત્રોમાં શ્રદ્ધા ધરાવનારા વ્યક્તિઓને પણ મોહ થયા વિના રહેતો નથી. જો કે શ્રીમાન્ કુમારિલ ભટ્ટ અને પ્રભાકર મિશ્ર જેવા મહા સમર્થ વિદ્વાનોએ દૂરદર્શિતા વાપરીને હજાર વર્ષ પહેલાં જ સ્મૃતિઓનો પણ નિર્ણય કરી જ રાખ્યો છે; તો પણ અલ્પવ્યુત્પન્ન કે અવ્યુત્પન્ન વ્યક્તિઓને સર્વથા તે ઉપકારક નથી. અતઃ જો શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજીએ દેખાડેલી દિશા પ્રત્યે ગમન કરવામાં આવે તો તે રાજમાર્ગ એવો તો સરલ છે કે તેનું અનુસરણ કરનાર કદી પણ ક્યાંયે ભૂલો પડવાનો જ નથી. માત્ર એકવાર શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજીએ દેખાડેલી દિશાને બરાબર ઓળખી લેવી જોઈએ. આપણું મંદ ભાગ્ય છે કે આપણે એ રાજમાર્ગનો પણ પરિચય મેળવ્યો નથી અને આપણા માર્ગદર્શકો તે પ્રત્યે ધ્યાન આપતા નથી. તેમ જ જે વ્યક્તિ એ માર્ગના ભોમિયા છે અથવા હોવાનો દાવો કરે છે, તેઓ વ્યક્તિગત ચડસાચડસીને લીધે જોતા હોવા છતાં પણ જોતા નથી અને જનસમાજને પણ ઉંધે રસ્તે દોરવાનું પાપ કરે છે.

### સ્મૃતિઓનું સ્વરૂપ

શ્રીમદ્ વલ્લભાચાર્યજી સ્પષ્ટ શબ્દોમાં જણાવે છે, કે સ્મૃતિઓ વેદ મૂલક હોવાથી શાખાભેદને લીધે અને ક્વચિત્ દેશ ભેદે આચારભેદને લીધે ભિન્ન ભિન્ન છે. સ્મૃતિ એટલે ઋષિઓનાં પૂર્વ સ્મરણો. સ્મરણનું મૂળ અનુભવ હોય છે. અનુભવ અધિકારી ભેદે અનેક પ્રકારનો હોઈ શકે. પૂર્વ કલ્પમાં ઋષિઓનો જેવો આચાર હતો અથવા જેવો લોકવ્યવહાર હતો, તેમાંયે દેશ ભેદથી જેવો દેશાચાર હતો, તેનું સ્મરણ કરીને ઋષિઓએ સ્મૃતિઓ રચી છે. જે ઋષિને જેવા આચાર અને વ્યવહારનું સ્મરણ થયું તેવો આચાર અને વ્યવહાર તેમણે તે તે સ્મૃતિઓમાં મૂક્યો. યોગબલથી નિત્યાનુમેય વેદનું સ્મરણ કરીને જે મુજબ ધર્મનું આચરણ કરવાનું કહ્યું છે તે મુજબ ધર્મનું આચરણ અવશ્ય કરવું જોઈએ. ધર્મચરણથી લોકમાં પ્રકર્ષ પૂર્વક સ્થિતિ થાય છે, લોકને અનુસરતી જીવિકા પ્રાપ્ત કરી શકાય છે વ્યવહાર સાચવી શકાય છે અને વિશુદ્ધતા પણ પ્રાપ્ત થાય છે. વિશુદ્ધતા પ્રાપ્ત થતાં વેદાર્થમાં તેનો ઉપયોગ થાય છે. ઋષિઓએ વેદનું યોગબળે અનુમાન કરીને અને સ્મરણ કરીને ધર્મશાસ્ત્રો રચેલાં હોવાથી અનુમિત

શ્રુતિ, સ્મૃતિઓનું મૂળ છે. જે શાખાઓની અત્યારે ઉપલબ્ધિ નથી તે શાખાઓનો આધાર સ્મૃતિઓને છે. એમ કહેવામાં આવે તો વ્યાસાદિકને ઉત્સન્ન કે અનુપલબ્ધ શાખાઓનું પણ જ્ઞાન હોવાથી તેમની સ્મૃતિઓ માટે ઉત્સન્ન શાખાનુમિતશ્રુતિની કલ્પના અવાસ્તવિક ઠરે. અને વેદમાં પણ સ્મૃતિત્વ જ પ્રાપ્ત થાય. કારણ કે શિવાદ્યાઋષિપર્યન્તાઃ સ્માર્તરોડસ્ય ન કારકાઃ ઈત્યાદિ વાક્યોમાં શિવથી આરંભીને ઋષિ સુધી બધાંયે વેદનું સ્મરણ કરનારા છે, કોઈ પણ વેદને રચનારો નથી એમ કહેવામાં આવ્યું છે, તે ઉપરથી વેદ પણ ઋષિઓનાં સંસ્મરણો જ હોવાથી સ્મૃતિ કદામાં આવી પડશે.

આ દલીલનું સમાધાન શ્રી મહાપ્રભુજી એમ કરે છે કે - યદ્યપિ વ્યાસાદિને તદ્વિષયક જ્ઞાન છે, તથા તેઓ વેદિક શબ્દોમાં ધર્મનું પ્રતિપાદન કરતા નથી, પ્રત્યુત વેદના અર્થનું સ્મરણ કરીને જ કરે છે, અતએવ સ્મૃતિથી વેદ અનુમેય થયો, તેવો નિત્યાનુમેય વેદ, સ્મૃતિનું મૂળ છે. શિવાદિ ઋષિ પર્યન્ત વેદનું સ્મરણ કરનારા છે કિન્તુ તેઓ શબ્દ રાશિનું સ્મરણ કરતા હોવાથી તાદશ આનુપૂર્વી ચુકત વેદ એ વેદ જ છે સ્મૃતિ નથી.

સ્મૃતિ નિત્યાનુમેયવેદમૂલક હોવાથી ધર્મમાં પ્રમાણ છે. યદ્યપિ ચોદનાલક્ષણોડર્થો ધર્મઃ ઈત્યાદિ સૌત્ર લક્ષણથી જ્યાં વેદબોધિત ચોદના હોય તે જ ધર્મ કહેવાય. મન્યાદિસ્મૃતિમાં તેમ નથી તેથી તે અપ્રમાણ ઠરે એમ શકાને સ્થાન રહે છે; તથાપિ યત્કિન્મનુરવદત્તમ્દેષજમ્ ઈત્યાદિ શ્રુતિઓ જ મન્યાદિ સ્મૃતિનું પ્રામાણ્ય કહે છે તેથી મન્યાદિના પ્રામાણ્યમાં ક્ષતિ આવતી નથી. મહર્ષિ જેમિનિ પણ ધર્મસ્ય શબ્દમૂલકત્વાદશબ્દમનપેક્ષ્યં સ્યાત્ ધર્મમાં શબ્દ-વેદ જ પ્રમાણ હોવાથી અશબ્દ-જે વેદ નથી, તે પ્રમાણ પણ નથી એમ પૂર્વ પક્ષનું ઉત્થાન કરીને અપિ વા કર્તૃસામાન્યાત્પ્રમાણમનુમાનં સ્યાત્ આ સિદ્ધાન્ત સૂત્રવડે વેદનું અનુમાન કરવાનું સૂચન કરે છે.

યદ્યપિ કલ્પસૂત્રાધિકરણમાં કલ્પસૂત્રો અને મન્યાદિ સ્મૃતિઓ વેદ નથી, એમ પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે; તથાપિ તેનું પ્રમાણ્ય તો અક્ષુણ્ણ જ રહે છે. સ્મૃતિ જાતે વેદ નથી કિન્તુ વેદાર્થનું સ્મરણ છે. આ ઉપરથી સ્મૃતિનું લક્ષણ અનુભવજ્ઞાનવિશેષઃ એમ કરી શકાય. કિન્તુ અનુભવથી ઉત્પન્ન થનારો જ્ઞાનવિશેષ પણ કોઈ પ્રમાણને અનુસરીને થતા અનુભવની અપેક્ષા ધરાવે. સ્મૃતિનું સાધન અનુભવ છે, તે કાંઈ વેદાધીન નથી; કારણ કે તેવા વાક્યો મળી આવતા નથી. એમ જો શંકા થાય તો કદાચ ઉત્સન્ન શાખાઓ તેનું મૂળ હશે. એમ સમાધાન

આપી શકાય. પરંતુ તે પ્રકારનું સમાધાન પણ યોગ્ય નથી કારણ કે સર્વ જ સ્મૃતિઓને સમાધાન આપી ન શકાય, કારણ કે સર્વ જ સ્મૃતિઓને તે પ્રકારનું ઉત્સન્નશાખામૂલકત્વ પ્રાપ્ત થતું હોવાથી અમુક સ્મૃતિ પ્રમાણ છે અને અમુક સ્મૃતિ પ્રમાણ નથી એમ કહી શકાય નહિ. અને બોલ્લોના વાક્યો માટે પણ તેવી કલ્પના સુકર હોવાથી શાક્યની સ્મૃતિમાં - કે ઉપદેશમાં-ઉત્સન્ન શાખા મૂલકતા પ્રાપ્ત થતાં પ્રમાણ્યાપત્તિ આવે.

વળી, જો મન્યાદિ સ્મૃતિકારોએ ઉત્સન્નશાખાના વિધિ વાક્યો જોયાં હોય, તો તે તે શાખાઓને ઉત્સન્ન શાખા ન કહી શકાય. પ્રત્યક્ષવેદમૂલક મન્યાદિ સ્મૃતિઓ છે એમ સાબિત થાય. જેમ મન્યાદિએ ધર્માધર્મનો નિર્ણય કરવાનો પરિશ્રમ કર્યો તેમ મૂળ વાક્યો પણ લખી શકાય તેમ હતાં તે શા માટે ન લખ્યાં ?

येन यत्नेन मन्वाद्यैरात्मवाक्यं प्रपाठितम् ।

कस्मात्तेनैव यत्नेन मूलवाक्यं न पाठितम् ॥

જો મન્યાદિએ તે વાક્યો જોયાં જ ન હોય, કેવલ અનુમાન ઉપર જ આધાર હોય, તો તેવા અનુભવમાં ભ્રાન્તિ થવાનો પણ સમ્ભવ છે. તેમ થતાં સ્વાખ્નિક અનુભવની સ્મૃતિમાં પણ પ્રમાણ્ય પ્રસક્તિ થાય. અર્થાત્ જ અદષ્ટવેદમૂલક અનુભવને સ્વખ્નાદિમૂલક ભાવનાદિમૂલક અથવા તો જનતાને છેતરવા માટે (જેમ આજનો સુધારક વર્ગ માને છે તેમ) જ મન્યાદિ સ્મૃતિનું પ્રણયન થયું એમ કહી શકાય. આજનો (વીસમી સદીનો) જનસમાજ ઉપર જણાવેલા કુતર્કો કરશે જ એમ સંભવિત કલ્પનાના આધારે હિન્દુ ધર્મશાસ્ત્રોના રક્ષકો શ્રીમાન્ કુમારિલ ભટ્ટ, પ્રભાકર મિશ્ર, શંકર આદિ ધર્મ અને આત્મવિધાના ઉપદેશકો અને ભગવાન્ શ્રીમદ્ભાગવદીશે તે તે પ્રસંગમાં આજનો જ જન સમાજ નહિ પણ કદાચ ત્રીસમી સદીનો (આજના સુધારકો પણ જેમનાથી અભડાય તેવો નાસ્તિક) પણ જનસમાજ કોઈ પણ પ્રકારનો કુતર્ક કરીને હિન્દુ ધર્મશાસ્ત્રો ઉપર હલો ન કરે, અથવા તેવા કુત્સિત આક્રમણોથી હિન્દુ ધર્મશાસ્ત્રોની અવિચલતા કાયમ રહે તદર્થે હજારો વર્ષ પૂર્વે થઈ ગયેલા વ્યાસશિષ્ય શ્રીમાન્ જૈમિનિમહર્ષિ અને તદ્ભાષ્યકાર તથા તેનું વિવરણ કરનારા ઉપર જણાવેલા આચાર્યોએ તેવા સર્વજ સંભવિત કુતર્કોને પૂર્વપક્ષ કોટીમાં મૂકીને જડબાતોડ જવાબો આપ્યા છે. જ્યાં સુધી આજનો કહેવાતો સુધારક સમાજ ધર્મ શાસ્ત્રોના વિચારકોની નિખિલ યુક્તિઓની સામે ન્યાયસિદ્ધ દલીલો રજુ કરતો નથી પણ કિશ્કિયાનીટીએ ટેખાડેલી જ દલીલો રજુ કરે છે; ત્યાં સુધી તેનો પ્રયાસ જલ મંથનવત્ છે કારણ કે તે દલીલો દત્તોત્તર જ

છે એમ કોઈ પણ વિચારવાન્ વ્યક્તિ સમજી શકે તેમ છે.

સ્મૃત્યધિકરણમાં અને તે પછીના અધિકરણોમાં ધર્મશાસ્ત્રોના પ્રામાણ્યનો ઘણા જ વિસ્તાર સાથે વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. જો તે સર્વ જ વાક્યોનો પ્રકૃત લેખમાં ઉપયોગ થાય તો એક મોટો ગ્રંથ બની જાય. જો કે આ વસ્તુનો વિસ્તૃત ઉદાપોહ કરવાની અમે સંપૂર્ણ આવશ્યકતા સ્વીકારીએ છીએ, કિન્તુ પ્રકૃત લેખ તેનો વિષય ન હોવાથી અનિચ્છાએ પણ લેખનીને કાબુમાં રાખવી પડે છે. જો ભગવદિચ્છાએ સ્વાસ્થ્ય અનુકુલ રહેશે તો કોઈ પણ સમયે ધર્મશાસ્ત્રો માટે લખવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે જ. અત્યારે તો કહેવાતા સુધારકોની પંક્તિમાં બેસવાની ઈચ્છા ધરાવતા પુષ્ટિમાર્ગાનુયાયી આર્યભાષાના વિદ્વાનો જેમને પ્રચ્છન્ન સુધારક પણ કહી શકાય તેમને પ્રકૃત લેખ અંશતઃ પણ ઉપયુક્ત થાય, તેમ જ ધર્મજ્ઞાસુજનો એવા વર્તમાનપત્રપંડિતોનું પ્રામાણ્ય સ્વીકાર કરનારાઓના કોલાહલનો ભોગ ન બને, તદર્થે શ્રીમદ્વેદભાષ્યાર્થજી તત્ત્વદીપનિબંધમાં જેટલી દલીલો રજુ કરે છે તેને જ અનુકુલ ભાષ્ટ અને પ્રાભાકર સમ્પ્રદાયની દલીલોનું અવલોકન કરીને શ્રીમદ્ભાગવતજીનો નિર્ણય રજુ કરીશું.

સ્મૃતિશબ્દ સદાચાર અને વેદાતિરિક્ત ધર્મસ્થાનોનો પણ ઉપલક્ષક છે.

पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।

वेदाः स्थानानि विधानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

ઉપરના શ્લોકમાં ભગવાન્ યાજ્ઞવલ્કયે ધર્મના ચતુર્દશ સ્થાનોની ગણના કરી છે. તેમ જ ધર્મશાસ્ત્રોનું પ્રવચન કરનારાઓની સંખ્યા પણ પરિગણિત છે જ.

જો સ્મૃતિનું મૂળ જ શોધવાનું હોય તો પ્રત્યક્ષાદિ પડે સ્મૃતિના મૂળનું જ્ઞાન થવું અસંભવિત છે. સ્મૃત્યધિકરણના પૂર્વપક્ષ સૂત્રનું જ વિવરણ કરતા આચાર્ય મત જણાવે છે કે:

पारतन्त्र्यात्स्वतो नैषां प्रमाणत्वावधारणा ।

अप्रामाण्यविकल्पस्तु द्रढिम्नैव विहन्यते ॥

पूर्वविज्ञानविषयं विज्ञानं स्मृतिरुच्यते ।

पूर्वज्ञानाद्धिना तस्याः प्रामाण्यं नावधार्यते ॥

○ ○ ○

પ્રત્યક્ષાનુપલબ્ધે ચ શબ્દે સદ્ભાવકલ્પના ।

ધર્માસ્તિત્વપ્રમાણાદિ વિપ્રકૃષ્ટતરા ભવેત્ ॥

○ ○ ○



નવાઽનુમાનમપ્યસ્મિન્નહકાશ્રુતિકલ્પને ।  
નહિ સ્મૃતિસ્તયા વ્યાપ્તા દષ્ટાઽન્યદ્વાઽનુમાપકમ્ ॥

○ ○ ○

નવાઽઽગમેન તદ્વોધો નિત્યેન કૃતકેન વા ।  
વિઘ્નમ્બકૃતકે નાસ્તિ નિત્યેનૈવોપપદ્યતે ॥

○ ○ ○

ન ચ વિજ્ઞાયતે વાસ્ય હીદૃશં તૈર્નિરૂપિતમ્ ।  
અર્થવાદિરૂપાદિ પશ્યામો ભ્રામ્યતો બહૂન્ ॥

યદિ હોતદેકાન્તેન ગમ્યતે યથાવિધિ વાક્યાન્યેવ મન્વાદિભિરુપલબ્ધાનીતિ ।  
તતઃ કાઽપિ કલ્પના સ્યાદદ્યત્વેઽપ્યન્યપરાર્થવાદાદિવચનેભ્યોઽપિ ભ્રામ્યન્તઃ પુરુષા  
દૃશ્યન્તે । તેન તેષ્વપ્યાશઙ્કા ભવતિ । મૃતસાક્ષિકવ્યવહારાદ્ય પ્રલીનશાખા-  
મૂલત્વકલ્પનાયાં યસ્મૈ યદ્રોચતે સ તત્ પ્રમાણી કુર્યાત્ । તસ્માન્નાગમેનાપિ  
મૂલોપબ્ધે : ॥

ઉપમાનં ત્વદદેઽર્થે સદૃશં ચાનિરૂપિતે ।  
નૈવેદ્યમિતિ તેનાપિ ન મૂલશ્રુતિસાધનમ્ ॥

○ ○ ○

અર્થાપત્યાપિ યત્કિન્નમૂલમિત્યવગમ્યતે ।  
તદ્યાપ્રમાણપક્ષેઽપિ ભ્રાન્ત્યાદિ ન વિરુદ્ધયતે ॥

○ ○ ○

યો યો ગ્રહીતા જાત્યન્ધઃ સ સ્વયં નોપલબ્ધવાન્ ।  
સ્વાત્તન્ત્ર્યેનાગૃહીતે ચ પ્રામાણ્યં નાવતિષ્ઠતે ॥

○ ○ ○

યેન યત્નેન મન્વાદૈરાત્માવાક્યં પ્રપાદિતમ્ ।  
કસ્માત્તેનૈવ તન્મૂલં ચોદના ન સમર્પિતા ॥

ન ચ મન્વાદિવચનાદ્વેદમૂલત્વં નિશ્ચિનુમઃ । તે હિ નિર્મૂલમપિ  
વિપ્રલમ્બાદિહેતોરુક્ત્યા લોકં વજ્રયિતુમેવં વદેયુઃ । તસ્માદપ્રમાણમ્ ॥

આ પૂર્વપક્ષોમાં આજના સુધારકને પણ જે આક્ષેપોની કલ્પના ન થઈ શકે  
તેવા આક્ષેપો કરીને નીચે મુજબ સિદ્ધાન્તે કહ્યો છે:-

સર્વથા તાવન્મન્વાદિપ્રણીતાઃ સન્તિ બન્ધનાઃ સ્મૃતયઃ, શેષાણિ ચ  
વિદ્યાસ્થાનાનિ, સ્વાર્થં પ્રતિપાદાકાન્યુપલભ્યન્તે । મન્વાદીનાં ચાપ્રત્યક્ષત્વાત્તદ્વિ-

જ્ઞાનમૂલમદૃષ્ટં કિન્નિદવશ્યં કલ્પનીયમ્ । તત્ર ચ-

ભ્રાન્તેરનુભવાદ્વાપિ પુંવાક્યાદ્વિપ્રલમ્બનાત્ ।

દષ્ટાનુગુણ્યસાધ્યત્વાદ્યોદનૈવ લઘીયસી ।

સર્વત્ર જ અદૃષ્ટની કલ્પનામાં તેવી કલ્પના કરવી કે જેથી દૃષ્ટનો અવરોધ  
ન થાય અને બીજું પણ કોઈ અદૃષ્ટ ન માનવું પડે. જો મન્વાદિ વાક્યો  
ભ્રાન્તિપરિકલ્પિત છે, એમ માનવામાં આવે, તો સરઘાસ્ટ્ર ન કહી શકાય અને  
સર્વલોક તેનું જે પ્રકારે પ્રામાણ્ય સ્વીકારે છે, તેમાંય બાધ ઉપસ્થિત થાય, આ  
રીતે દૃષ્ટમાં મહાવિપ્રતિપત્તિ છે. આજના જનસમાજે પણ મન્વાદિની ભ્રાન્તિનું  
અનુસરણ કર્યું, તેમાં કોઈ પણ અદૃષ્ટ પદાર્થની કલ્પના કરવી પડે. મન્વાદિની  
ભ્રાન્તિના પરિહારનો ઉપન્યાસ પણ દૃષ્ટ કલ્પનાએ ન થાય. અતએવ અનેક  
અદૃષ્ટ કલ્પના અનાયાસે પ્રાપ્ત થાય છે. અનુભવમાં પણ તેવા જ અનુભવનો  
સમાવેશ થાય કે જે દૃષ્ટનો બાધ ન કરે અને અનેક અદૃષ્ટની કલ્પનામાં પ્રવૃત્ત ન  
કરે. ઇદાનીંતન સર્વ પુરુષજાતિથી વિપરીત સામર્થ્યની કલ્પનાનું નિરાકરણ કુમારિતે  
સર્વજ્ઞવાદના પ્રકરણમાં કર્યું છે અને પુરુષ વાક્યપરકનું અન્ધપરંપરાયડે નિરાકરણ  
કર્યું જ છે. વેદનો વિપ્રલમ્બ પણ માની શકાય નહિ. વિપ્રતિપ્તિ અને પ્રયોજનમાં  
પણ ભ્રાન્તિની કલ્પના થતાં આટલા લાંબા ગાળા સુધી તેનું અનુવર્તન કરવું પડે  
ઈત્યાદિ કલ્પનાનો આશ્રય અપ્રમાણિક છે. જે દૃઢ પ્રત્યય ઉત્પન્ન થયેલો છે તેનું  
નિરાકરણ કરે તો દૃષ્ટવિરોધ પ્રાપ્ત થાય. આ બધા કારણો એમ સૂચન કરે છે કે  
વેદબોધિત વિધિવાક્યોને અનુસરતી જ સ્મૃતિઓ છે.

શાક્ય કે મ્તેચ્છાદિને જે સ્મરણ થતું હોય તે પ્રમાણ નથી. કારણ કે તેમાં  
વેદબોધિત વિધિવાક્યોનો સર્વથા અભાવ છે.

આ ઉપરથી એમ સ્પષ્ટ રીતે સમજી શકાય છે કે જે સ્મરણમાં વેદબોધિત  
ચોદના હોય તેવા અર્થનું પ્રતિપાદન કરતું સ્મરણ જ સ્મૃતિ છે.

જો નોદના જ મૂળ હોય તો તેવી નોદનાઓનો જ ઉદ્દેષ કેમ ન કર્યો ? આ  
શંકાનું સમાધાન પણ સાંભળો.

શાખાનાં વિપ્રકીર્ણત્વાત્પુરુષાણાં પ્રમાદતઃ ।

નાનાપ્રકરણસ્થત્વાત્સ્મૃતેર્મૂલં ન દૃશ્યતે ॥

શાખાઓ જુદી જુદી રીતે વેરાયેલી છે. પુરુષો બધી એ શાખાઓનું અપવાદ  
કરી શકતા નથી. અને જે શાખાઓનું અધ્યયન કરે છે, તેમાંયે જુદા જુદા પ્રકરણોમાં  
જુદા જુદા વાક્યો મળી આવતા હોવાથી સ્મૃતિમાં કયા વેદ વાક્યો મૂળરૂપે છે, તે

આપણે જોઈ શકતા નથી. આપણે જે વસ્તુ ન જોઈ શકતા હોઈએ તે મન્યાદિ જેવા અતીન્દ્રિય પદાર્થોના દષ્ટાઓને પણ અગમ્ય હોય એ સંભવે નહિ.

સર્વશાખાધ્યયન થતું નથી, તેમાં અધ્યેતાઓનો દોષ છે, એમ કોઈ દોઢ ડાહ્યો સુધારક જ તરત જ બોલી ઉઠશે, એમ પણ કુમારિલભટ્ટ જાણતા હતા જ. કુમારિલ કહે છે કે ભાઈ સુધારક ! ધીરો થા, જે વાક્યો અધ્યેતાને વેદાધ્યયનમાં પ્રવૃત્ત કરે છે. તેનો વિચારી જો. સ્વાધ્યાયોઽધ્યેતવ્યઃ આ વિધિવાક્યનું સ્વારસ્ય વેદાધ્યયનમાં પ્રવૃત્તિ કરાવે છે. તેનો અર્થ સ્વ - પરમ્પરાપ્રાપ્ત-અધ્યાય-શાખાનું અધ્યયન જ ઉક્ત શ્રુતિ વાક્યથી બોધિત થાય છે. ચારે વેદનું અધ્યયન પણ જ્યાં કહેવામાં આવ્યું છે, ત્યાં પણ સ્વશાખાધ્યયનપૂર્વક વેદાન્તરની એકેક શાખાનું અધ્યયન જ દર્શાવ્યું છે. અતઃ તેમાં અધ્યેતાનો દોષ નથી. વેદાધ્યયન અદષ્ટોત્પાદનાર્થે પણ છે જ એ ભૂલી જવાનું નથી. અપેદ્ય અધ્યયન અને તેનું જ અર્થજ્ઞાન નિષિદ્ધ છે.

બીજી દલીલ એવી પણ કરવામાં આવી હતી કે મન્યાદિએ વેદ વાક્યો કેમ ન લખ્યાં ? જો મન્યાદિએ વેદ વાક્યોનો સંગ્રહ કરીને લખ્યો હોત તો કોઈ એક વાક્ય કોઈ એક શાખામાંથી આપે અને કોઈ ઈતરમાંથી તેમ થતાં બધાં વાક્યોનો સંગ્રહ એકત્ર મળી આવવાથી વેદાધ્યયનમાં પ્રવૃત્તિ ન થાત - ધર્મજ્ઞાનાર્થે તાવન્માત્ર અધ્યયન જ રહેત. તેમ થતાં સંપૂર્ણ શાખાધ્યયન ન થવાથી વેદોચ્છેદ પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાત તેમ જ તાવન્માત્ર અધ્યયન પણ અપેદ્ય હોવાથી સ્વાધ્યાય-યોઽધ્યેતવ્યઃ ઇત્યાદિ અધ્યયન વિધિપ્રોક્ત અધ્યયન ન કહી શકાત.

જો નિત્યાનુમેયશ્રુતિમૂલકતાની કલ્પના કરવામાં આવે તો અનુમાન શી રીતે થાય ? હેતુ વિના અનુમાનનો સંભવ નથી. મન્યાદિએ પણ સ્મૃત્યન્તર ઉપરથી અનુમાન કર્યું કહેવાય, તો અનવસ્થા થતાં અન્ધપરમ્પરા પ્રાપ્ત થાય. જો શ્રુત્યુક્ત હેતુ (લિંગ) ગ્રહણ કરાય તો, જે નોદનાનો કદી પણ ઉચ્ચાર થતો નથી તેવી નોદનાનું સર્વપુરુષોને પ્રત્યક્ષ થાય તેમ પ્રસાર ન હોવાથી તેના અસ્તિત્વને માનીને તે ઉપરથી અનુમાન જ દુર્લભ છે અને તેમ થતાં સ્મૃતિને પણ વળ્લ્યાદૌહિત્ર તુલ્યતા પ્રાપ્ત થાય. લિંગ (હેતુ) પણ નિત્યાનુમેય એવું શ્રોત હોવાથી નિત્ય ઠરે, તેમ કરવા જતાં જે નિત્ય જ અનુચ્ચરિત હોય તેવી શ્રુતિમાં અનુમાન કારણત્વે અવિદ્ધતાપત્તિ પ્રાપ્ત થાય. અર્થાત્ હેતુ અને સાધ્ય એક જ વસ્તુ બની જાય. આથી જ કુમારિલના મતમાં વિદ્યમાન શાખા જ સ્મૃતિનું મૂળ છે. તેની અનુપલબ્ધિમાં વાર્તિકકારે શાખાનાં વિપ્રકીર્ણત્વાત્ ઇત્યાદિ હેતુ દર્શાવ્યા છે. તેનો

વિચાર ઉપર કરવામાં આવ્યો છે જ. શ્રીમાન્ જાણકેવ કહે છે કે - શિષ્ટાનામદ્યાવા-દવિગીતપરમ્પરયા જ્યોતિષોમાદિષ્વિવાહકાલજ્ઞમક્ષણાદિષ્વપિ ધર્મત્વેનાધર્મત્વેન ચ પરિગ્રહાન્મન્વાદીનાં ત્રૈવર્ણિકત્વેન વેદદર્શનસમ્ભવાદ્ધ તન્મૂલત્વમેવ યુક્તમ્ । +++ શ્રુતિશ્ચ પ્રત્યક્ષપઠિતૈવ તન્મૂલમ્ । ++++ અતો મૂલશ્રુત્યુપસ્થાપકતયૈવ ધર્માધર્મપ્રયોજકત્વં સ્મૃતીનામિતિ સિદ્ધમ્ । પ્રભાવલિકાર સૌત્ર અનુમાન શબ્દોનો અર્થ અર્થાપતિ જણાવે છે.

સ્મૃતિપ્રામાણ્યની પેઠે જ શ્રુતિસ્મૃતિનો વિરોધ પ્રાપ્ત થતો હોય ત્યાં કેમ નિર્ણય કરવો શિષ્ટાચારનું પ્રામાણ્ય કેટલું અને કેવી રીતે સ્વીકારવું ઇત્યાદિ વિચાર પણ કુમારિલ પ્રભૃતિએ ઘણા જ વિસ્તાર સાથે કર્યો છે.

### શ્રીમહાપ્રભુજી શું કહે છે ?

અહીં સુધીનો, જે લોકોને સ્મૃતિપ્રામાણ્યમાં શંકા છે તેમના માટેનો નિર્ણય થયો. તેમાં શ્રીમહાપ્રભુજી અને કુમારિલ પ્રભાકરાદિના મન્તવ્યો થોડોક મતભેદ બાદ કરતાં લગભગ સરખા જ છે. જે મતભેદ છે તે પણ પ્રામાણ્ય વિષયક મતભેદ નથી. સર્વ જ આચાર્યો સ્મૃતિનું પ્રામાણ્ય સમાન રીતે સ્વીકારે છે. જેમ વેદના શબ્દોમાં કોઈથી એક માત્રા જેટલો પણ ફેરફાર કરી શકાતો નથી તેમ સ્મૃતિમાં પણ કોઈથી ફેરફાર કરી શકાય જ નહિ. ધર્મ સ્થિર પદાર્થ છે. તેમાં ફેર પાડી શકાય નહિ. તેમજ ધર્મના નિર્ણયો પણ ત્રિકાલાબાધિત સત્ય છે. નવીન ધર્મનિર્ણય થઈ શકે જ નહિ. જો ધર્મ કોઈવાર વનિતા જેવા ક્ષણભંગમાં નવાં રૂપો ધારણ કરનારો પદાર્થ હોય તો તેમાં ગમે તેવા અને તેટલા ફેરફારો ગમે તે વ્યક્તિ કરી શકે કરાવી શકે. એ વસ્તુ ભિન્ન છે કે કયા અધિકારીને માટે કેટલા અંશમાં ધર્માચરણ શ્રેયસ્કર છે તેના પણ નિર્ણયો છે જ-

હવે આપણે પુષ્ટિમાર્ગની જ વાત કરીએ જે લોકો એમ કહે છે કે પુષ્ટિમાર્ગમાં ધર્મશાસ્ત્રીય અને શિષ્ટાચાર પ્રાપ્ત આચારોને સ્થાન નથી તે વાત પ્રમાણની કસોટી ઉપર રાત્યસાબિત થાય છે કે નહિ એમ તો મર્યાદાપુરુષોત્તમના સામર્થ્યથી સંપૂર્ણ સેના ઉદયિને ઓળંગી ગઈ પણ કોઈએ ગામ્ભીર્યનો અનુભવ કર્યો નહિ. તેમજ કોલેજોમાં કરાતાં વ્યાખ્યાનોની જેમ મોટી મોટી નોંધો સાથે બાહ્યપરીક્ષણ ઘણા વિદ્વાનોએ કર્યું. પણ જ્યાં સુધી ગ્રન્થ ગ્રન્થિનો ઉકેલ ન થાય ત્યાં સુધી શાસ્ત્રનું ચે ગામ્ભીર્ય સમગ્ર શકાતું નથી. એવા અસ્પૃષ્ટશાસ્ત્રમર્મવ્યક્તિઓ જો પોતાની કયાશનો અનુભવ કરે તો દુઃઘટન બાળકો પાસે કોલાહલ કરાવીને જન સમાજને

વિરુદ્ધ સિદ્ધાન્ત સમજાવવાનું પાપ કરતા અચકાય. તેમ જ ઘરને ખુણે વાક્યાતુર્ય વાપરી ભાવુક ભક્તોને છેતરવાની બાલિશતા પણ ન કરી શકે. અધર્મને ધર્માચરણ કહેવું, એકવાર અમુક જાતિયોને પ્રાત્ય માની ઉચિત સિદ્ધાન્ત રક્ષણ કરવા પ્રવૃત્ત થવું અને બ્રાહ્મણાત્વ રક્ષણ કરવાનું કહેવું એ તો ચોખી છેતરપિંડી જ છે. જન સમાજ ધર્માચરણ વિમુખ છે માટે કિંચિત્ અધર્મને ધર્મ માની લેવાનું કહેવું. એ પણ અવિચાર પૂર્ણ પ્રવૃત્તિ જ કહેવાય.

હવે આપણે જોઈશું કે સ્મૃતિપ્રામાણ્ય માટે શ્રીમહાપ્રભુશું આજ્ઞા કરે છે શ્રીમહાપ્રભુશું તો સ્પષ્ટ શબ્દોમાં સ્મૃતિપ્રોક્ત ધર્માચરણથી વિશુદ્ધતા જણાવે છે. ચિત્તશુદ્ધ્યર્થ ધર્માચરણ આવશ્યક છે. આચાર પણ સ્મૃતિને અનુકૂળ જ હોવો જોઈએ. અન્યથા અવેધતા પ્રાપ્ત થતાં ધર્મને ઉપયોગી આચાર ન કહેવા. કેવલ ચિત્તશુદ્ધિ માટે જ સ્મૃતિપ્રોક્ત આચાર અને ધર્માનુષ્ઠાનથી, કિંતુ ધર્મને ઉપકારક પણ છે. શ્રીમહાપ્રભુશું સ્પષ્ટ શબ્દોમાં આજ્ઞા કરી છે કે - ગૃહાદિરિવ દેહસ્ય ધર્માસ્યા પ્રકૃતિઃ સ્મૃતિઃ દેહને જેમ ગૃહાદિ ઉપકારક છે તેમ ધર્મને સ્મૃતિ ઉપકારક છે, શ્રુતિ અને સ્મૃતિનો સમવાય થાય ત્યારે જ ધર્મ પુષ્ટ બને અન્યથા નહિ. સ્મૃતિપ્રોક્ત ધર્મ બે પ્રકારના છે (૧) વેદ મૂલક અને વિશુદ્ધિ ફલક, (૨) પુરાણાચારમૂલક અને પ્રવૃત્તિફલક.

શ્રીમહાપ્રભુશું પૂર્વ-ઋષિઓના આચારથી પ્રવૃત્ત થયેલી સ્મૃતિ અને વેદ મૂલક સ્મૃતિઓનું પ્રામાણ્ય અશુભ રાખે છે. આચાર, લોક વ્યવહાર, અને નિત્યાનુમેયવેદ એ સ્મૃતિઓનું મૂળ છે. આચાર-શિષ્ટાચાર-નું પ્રામાણ્ય વૈસર્જનાધિકરણ ન્યાયે સ્વીકાર્યું છે. વૈસર્જનાધિકરણ નો અન્તર્ભાવિ શિષ્ટાકો-વાધિકરણમાં થાય છે. શબરસ્વામી હેતુદર્શનાદ્ય સૂત્રને વિકલ્પે અધિકરણાન્તર માને છે જે વૈસર્જનાધિકરણ.

(અપૂર્ણ)



## રાસ અને રસશાસ્ત્ર

લેખક : શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રી, મી.શા.વે.વિ. M.R.A.S.

રસાનાં સમૂહો રાસઃ એમ રાસ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ શાસ્ત્રકારો કરે છે, જેમાં સકલ રસોનો સમાવેશ થતો હોય, અથવા જેમાં સકલ રસનો સમૂહ હોય તે રાસ કહેવાય, રસશાસ્ત્રના વાસ્તવિક જ્ઞાન વિના રાસનું ચથાર્થ સ્વરૂપ સમજી શકાય નહિ, જો કે શ્રીમદ્ભાગવતના બધા જ ટીકાકારો અને તત્સમ્બન્ધી વિચાર કરનારા વિદ્વાનો એક સ્વરથી રાસની નિર્દોષતા સ્વીકારે છે. તથાપિ જડવાદ વડે જડીકૃત જગતીતલમાં આજનો યુવકસમાજ કેવળ શાસ્ત્રીય દલીલોને સ્વીકારતો ન હોવાથી તેમ જ તર્કની શાસ્ત્રસિદ્ધ પરિપાટી સાથે તેણે છૂટાછેડા કરેલા હોવાથી રાસનું નિર્દુષ્ટત્વ તે સમજી શકે તેમ નથી.

અત્યારે રસ શબ્દ કેવળ શૃંગાર માટે વપરાતો લૌકિક સાહિત્યમાં વિશેષ ભાગે દષ્ટિગોચર થાય છે; અને તે પણ હાડયામના પૂતળાઓના લૌકિકપ્રેમની ગાથાઓમાં જ સ્વીકારાય છે. કેટલાક વિદ્વાનોનો મત તેથી વિરુદ્ધ છે, તે મારી જાણબહાર નથી. તથાપિ તેવા ચોગ્યતમ વિદ્વાનોના મતનો અનાદર કરીને આજનો નવશિક્ષિત વર્ગ તેથી વિરુદ્ધ જ વર્તી રહ્યો છે. પરંતુ તેમાં તેનો દોષ નથી. વાસ્તવિક રીતે તો તે વર્ગ રસશાસ્ત્રનું સ્વરૂપ જાણતો હોય, તો ઘણો લાભ થાય.

રસ શબ્દનો અર્થ બ્રહ્માનન્દ સદશ લોકોત્તર આનંદ થાય છે. અર્થાત્ લૌકિક વિષયો-શબ્દ, સ્પર્શાદિથી થતું સુખ લોકોત્તર ન હોવાથી તેને રસ તો ન જ કહી શકાય, તેથી જ શાસ્ત્રકારો રસનું વર્ણન કરતા કહે છે કે જ્યારે સત્ત્વગુણો ઉદ્ગ્રેક થાય અને અખણ્ડ-સ્વપ્રકાશ-આન્તરસ્પર્શ શૂન્ય લોકોત્તર, આનન્દનો અનુભવ થાય ત્યારે, તેને રસ કહી શકાય. આ રસાસ્વાદ બ્રહ્માનન્દના જેવો જ છે. અત એવ રસો વૈ સઃ ઈત્યાદિ શ્રુતિઓ પરાત્પરતત્ત્વ-પૂર્ણપુરુષોત્તમને રસત્વે વર્ણવે છે.

આ લોકોત્તર આનન્દરૂપ રસનો આસ્વાદ કોઈક જ ભાગ્યવાન અધિકારી સ્વાકારવાન-અભિત્રરૂપે લઈ શકે. અર્થાત્ જ્યારે રસાનુભવ થાય છે, ત્યારે એવી તો તદ્દીનતા પ્રાપ્ત થાય છે, કે રસ અને અનુભવ કરનાર અભિત્રતાને પ્રાપ્ત થઈને ઈતર સર્વ વિષયોનું ભાન ભૂલી જાય છે. આ લોકોત્તર આન્તરિન્દ્રિયોદ્ધારાજ વેધ છે. બાહ્ય ઈન્દ્રિયોનું તેના આસ્વાદનમાં પ્રયોજન નથી. ભાગ્યવાન ભક્તોએ આ પ્રકારનો અનેકવાર રસાનુભવ કર્યો છે, અને તદ્દીનતા પ્રાપ્ત કરી પરમતત્ત્વ મેળવ્યું છે, જ્યાં

સુધી સાત્ત્વિકભાવનો ઉદય થતો નથી ત્યાં સુધી રસાનુભવ પણ થતો નથી. રસના અનુભવ માટે ભાવોદય આવશ્યક છે, એટલું જ નહિ પણ રસોદયમાં ભાવોદય જ કારણને સ્થિતિ કહે છે. આથી જ શાસ્ત્રકારો વિભાવાદિને રસનું કારણ કહે છે. વિભાવાદિથી વ્યંજિત થતો સ્થાયી ભાવ જ રસ છે. ભાવ એક પ્રકારની હૃદયની લાગણી છે. ભાવ જ્યારે વિભાવાદિથી અનુનીયમાન હોઈ સ્થાયિત્વ પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે જ તે રસ કહેવાય છે, ભાવ એટલે હૃદયગત અવસ્થા વિશેષનું ભાગ કરાવનાર એક પ્રકારનો માનસવિકાર નિર્વેદાદિ તેત્રીશ પ્રકારના વ્યભિચારી ભાવો અને રત્યાદિ નવ પ્રકારના સ્થાયી ભાવો આ સર્વ જ ભાવ કહેવાય છે. છતાં પણ દેવાદિવિષયક રત્તિનો જ બોધ ભાવશબ્દ કરાવે છે.

આ પ્રકારના ભાવથી પ્રેરિત લોકોત્તર આનન્દ પ્રાપ્ત કરનારા પરમભાગ્યવાન ભક્તોમાં સૌથી પ્રથમ અને ઉચ્ચતર સ્થાન શ્રીમદ્ગોપીજનોનું છે,

પ્રભુનું સ્વરૂપ રસાત્મક છે. અર્થાત્ જ અવિનાશી અને લોકોત્તર આનન્દનું દાન પ્રભુ જ કરી શકે.

આ સ્થળે પ્રસંગ પ્રાપ્ત ઈશ્વરસિદ્ધિ માટે પણ જો બે ચાર શબ્દો લખાય તો વિષયાન્તર હોવા છતાં અયોગ્ય તો નહિ લેખાય. અત્યારે કેટલાયે વિદ્વાનો છાતી હોકીને એમ કહેવા તૈયાર છે, કે દુનિયામાં ઈશ્વરનામનો કોઈ પદાર્થ અસ્તિત્વ ધરાવતો નથી. જેમને પરમપ્રમાણરૂપ વેદમાં સન્દેહ છે, અથવા વેદનું પ્રામાણ્ય અનેક પ્રકારે સિદ્ધ થયેલું હોવા છતાં દુરાગ્રહવશાત્ સ્વીકારવું જ નથી તેમ કુસુમાંજત્યાદિપ્રોક્ત અનુમાનો સુધી બુદ્ધિ દોડાવવી નથી. તેમને વિશેષ તો શું કહી શકાય ? આ પ્રકારના પુરુષો તો પોતાને વિદ્વાન માનતા હોય અને તેઓ વિષય ગ્રહણ કરી શકે અને તેને ધારણ કરે તો તેમને માત્ર બે શબ્દો જ કહેવાય તેવા છે. તે એ કે આપે જે સુખ સ્વ, ચંદન, વનિતા વસ્ત્રાદિમાં જોયું હોય તે નશ્વર અને અવાસ્તવિક છે. પરંતુ તે જ પ્રકારનું અવિનાશી-ચિરસ્થાયી અને વાસ્તવિક જે સુખ છે તે જ ઈશ્વર છે. આ વિષય અનુભવેક ગમ્ય છે. તથાપિ સ્વ ચંદનાદિના દૃષ્ટાન્ત ઉપરથી તે સમજી શકાય તેમ છે. અનુભવ કરી જુઓ અને જો તેવો અનુભવ થાય તો જ ઈશ્વરનું અસ્તિત્વ સ્વીકારો. ઘણીવાર આપણે શાંત ચિત્તે જો કોઈ કાવ્યાદિ દ્વારા પ્રકૃતિપર્યવેશણાદિ દ્વારા ભાવ જાગૃત થતાં અત્યંત ચમત્કારિક સુખનો અનુભવ કરીએ છીએ. જો આ સુખ સ્થાયિત્વ પ્રાપ્ત કરે છે તો અલૌકિક રસાનુભવ પણ થાય અને ઈશ્વર સાક્ષાત્કાર પણ થાય જ. નૈયાયિકોની દલીલમાં, યોગીના યોગમાં, જ્ઞાનીના જ્ઞાનમાં કે સાધકની કોઈપણ પ્રકારની સાધનામાં જે શક્તિ નથી તે

રસશાસ્ત્રપ્રોક્ત રસના સ્વરૂપ જ્ઞાનમાં છે. જો યથાર્થ રીતે રસનું સ્વરૂપ જાણ્યું હોય તો તેને કાંઈ પણ જાણવાનું રહેતું નથી. આથી જ રસ નામનો લોકોત્તર પદાર્થ ઈશ્વર-પરાત્પરતત્ત્વ કે પૂર્ણબ્રહ્મ કહેવાય છે. રસો વૈ સઃ ઈત્યાદિ શ્રુતિઓનું એ જ તાત્પર્ય છે. રસાત્મક સ્વરૂપને જાણ્યા પછી કાંઈપણ જાણવાનું રહેતું નથી. આથી જ શ્રુતિ પણ કહે છે કે આનન્દં બ્રહ્મણો વિદ્વાન્ ન વિભેતિ કંદાચન (કુતશ્ચન પણ પાઠ છે.) બ્રહ્મનો-રસાત્મક કે આનન્દમય પરમત્ત્વનો આનન્દ જાણનાર કયાંયે અને કોઈપણ કાળે ભય પામતો નથી. યથાર્થ સ્વરૂપ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતાં ભય રહેતો નથી, એમ પ્રત્યેક વિચારવાનું પુરુષનો અનુભવ જ છે. અસ્તુ,

હવે હું પ્રાકૃત વિષય તરફ વળીશ. રસ લોકોત્તર પદાર્થ છે, લોકોત્તર પદાર્થ એક જ હોઈ શકે, રસાત્મક-રસઘન તો પ્રભુ જ છે, તો પછી રસાનાં સમૂહો રસઃ એમ કેમ કહેવાય ?

યદ્યપિ રસ એક જ છે અને તે ભગવત્સ્વરૂપથી ભિન્ન નથી જ તથાપિ તે લોકોત્તર પરમતત્ત્વરૂપ રસના અનુભવના જે પ્રકારો છે તેને લોકમાં રસ કહે છે અને તે શૃંગારાદિ છે. મુખ્ય રસ તો શૃંગાર જ છે. અન્ય સર્વ રસોનો સમાવેશ શાસ્ત્રકારોએ શૃંગારમાં જ કરેલો છે. તેથી જ મુખ્ય શૃંગાર રસરૂપ પ્રભુ છે એમ ભક્તો કહે છે. અનુભવીઓમાં શિરોમણિરૂપે જે મહાનુભાવો છે તે તો પ્રભુને શૃંગારકલ્પદ્રુમ કહીને જ પ્રભુને ઓળખાવે છે.

યદ્યપિ રસનું લક્ષણ વિભાદિથી અનુનીયમાન લોકોત્તર આનન્દ થાય છે, તથાપિ જુદા જુદા ગ્રન્થકારો જુદો જુદો અભિપ્રાય ધરાવે છે, તે ભૂલવા જેવું નથી.

(૧) અભિનવગુપ્તાચાર્ય કહે છે કે - સમુચિત-લલિત વિચારો વડે સુન્દર બનેલા કાવ્ય વડે ઉદ્ભવેલા, સહૃદયપુરુષમાં પ્રવેશ પામેલા, સહૃદયપુરુષના ભાવો સાથે રહેલા ભાવના વિશેષની મહિમા વડે રમણીય અલૌકિક જે કવિના ભાવ, અનુભાવ, વ્યભિચારીભાવ ઈત્યાદિ શબ્દ પ્રયોગો વડે ઓળખાતા, આલમ્બન રૂપ ઉદ્દીપન કારણોવડે અને ચિન્તા અશ્રુપાતાદિ સહકારી ભાવો વડે જે એક સાથે પ્રાદુર્ભાવ પામે, અલૌકિક ચેષ્ટાઓ વડે, જે તત્કાલ આનન્દાંશના અજ્ઞાનરૂપ આવરણને દૂર કરે અને પ્રમાતાની અલ્પજ્ઞતા વગેરેને દૂર કરીને જે સ્વપ્રકાશથી વાસ્તવિક નિજસ્વરૂપાનન્દની સાથે અનુભવાય, અને પૂર્વે રહેલી વાસનાનો નિરાસ કરે છે, ઈત્યાદિ જ રસ છે.

(૨) મમ્મટાચાર્ય કહે છે કે:- વિભાવાદિ વડે જે ભાવ અભિવ્યક્ત થાય તે (રત્યાદિ) સ્થાયી ભાવ રસ કહેવાય.

ઉપરના બંને મતોનું તાત્પર્ય એ છે કે અજ્ઞાનરૂપ આવરણથી રહિત જે ચૈતન્ય છે. તેની સાથે રહેલો રત્યાદિ સ્થાયી ભાવનો રસ શબ્દથી વ્યવહાર થાય છે.

(૩) ભટ નાયક કહે છે કે : રસનો સંબંધ આત્મા સાથે છે. આત્માથી પૃથક્ રસની પ્રતીતિ થતી નથી. દશ્ય કે શ્રવ્ય કાવ્યાદિ દ્વારા જે ભાવો ઉદ્ભવે તેનું આત્મા સાથેનું તાદાત્મ્ય રસ કહેવાય.

અર્થાત્ અભિધા શક્તિ વડે જે પદાર્થો જણાવ્યા હોય, તેમાં ભાવકત્વ અથવા ભાવના હોય છે. આ ભાવના વિરોધી પદાર્થોને ખસેડી મૂકે છે, અને તેથી જ (દશ્ય કે શ્રવ્ય) કાવ્યોક્ત ભાવો આપણી સમક્ષ ખડાં થયા છે. તે પછી ભોગકૃત્વ નામક ક્રિયા ઉદ્ભવે છે, કે જે વડે રસનો અનુભવ કરી શકાય છે. રસાસ્વાદ કરાય છે. ભોગકૃત્વ વડે તમોગુણ અને રજોગુણની વૃત્તિઓ લય પામે છે અને સત્વગુણની અભિવૃદ્ધિ થાય છે, જેથી આપણે ચૈતન્યમાં સ્થિત આનંદને મેળવી શકીએ છીએ. અન્ય (સાંસારિક કાર્યોને ભૂલી જઈએ છીએ.) આ પ્રકારનો આનંદાનુભવ જ રસ છે.

(૪) નવીન વિદ્વાનો કહે છે કે :- જેમ છીપમાં ચાંદીનો આભાસ થાય તેમ દુષ્યતત્વાદિ ધર્મો વડે આત્મામાં તે તે દષ્ટ કે શ્રુત ભાવોનો આભાસ થાય છે, ત્યારે સદસદ્વિલક્ષણ રત્યાદિ વૃત્તિઓ ઉદ્ભવે છે, અને તે વૃત્તિઓ આત્મચૈતન્ય દ્વારા પ્રકાશિત થાય છે. આ પ્રકારની ચિત્તવૃત્તિઓને રસ કહી શકાય.

(૫) કોઈક વિદ્વાનો એમ પણ કહે છે કે વ્યંજના અને અનિર્વચનીય ખ્યાતિ માનવાની જરૂર નથી. અર્થાત્ રસ વ્યંગ્ય પણ નથી અને અનિર્વચનીય પણ નથી; કિન્તુ રત્યાદિથી મુક્ત વ્યક્તિની સાથે અભેદરૂપ મનઃકલ્પિત જ્ઞાન જ રસ છે.

આ મતમાં રસ એક પ્રકારનો ભ્રમ છે. રત્યાદિનો આસ્વાદ લોક પ્રસિદ્ધ હોવાથી આ મતમાં તેને રસાસ્વાદ પણ કહે છે. પરંતુ વાસ્તવિક રીતે તો આ મતમાં રસનો આસ્વાદ સ્વીકારેલો નથી જ.

(૬) ભટ્ટ લોહટાદિ વિદ્વાનોનું મનતપ્ત્ય છે કે દુષ્યન્તાદિમાં સ્થિતિ કરતા જે રત્યાદિ ભાવ છે તેજ રસ છે.

(૭) શ્રીશુકક પ્રભૃતિ વિદ્વાનો એમ પણ માને છે કે રસ તો અનુભેય હોય છે. આસ્વાદ્ય હોતા નથી.

(૮) કોઈક વિદ્વાનો એમ પણ કહે છે કે (૧) વિભાવ, (૨) અનુભાવ અને (૩) સંચારી ભાવનો એકત્ર સમાવેશ થાય ત્યારે તે રસ કહેવાય.

(૯) કેટલાક વિદ્વાનો વિભાવાદિમાં જે વિશેષ ચમત્કારિક હોય તે રસ કહેવાય.

(૧૦) થોડાક વિદ્વાનો કહે છે કે વારંવાર ચિન્તન કરાયલો વિભાવ જ રસ છે.

(૧૧) એક વર્ગ વારંવાર ચિન્તન કરાયેલા અનુભાવને જ રસ કહેનારો પણ છે.

(૧૨) જ્યારે બીજો વર્ગ વારંવાર ચિન્તન કરાયલો વ્યભિચારી ભાવ જ રસત્વને પ્રાપ્ત થાય છે, એમ પણ કહે છે. શાસ્ત્રકારોમાં આ પ્રકારે પરસ્પર વિભિન્ન મતો પ્રચલિત છે અને તે તે મતમાં તેમનો આગ્રહ પણ દષ્ટિગોચર થાય છે. લગભગ બધાજ મતોમાં જુદી જુદી દલીલો પણ રજૂ કરેલી છે અને નિજમતનું નિર્દુષ્ટત્વ જણાવ્યું છે. પરંતુ તે સર્વની સમીક્ષા રસગંગાધરમાં શ્રીમાન્ પંડિતરાજ જગન્નાથે કહી જણાવ્યું છે કે- વિભાવ, અનુભાવ અને વ્યભિચારી ભાવના સંમિલનથી જ રસની અભિવ્યક્તિ થાય છે. જુદા જુદા મતો હોવા છતાં પણ પ્રત્યેકને માનવું જ પડે છે કે રસથી એક પ્રકારના અલૌકિક આનંદનો અનુભવ થાય છે. આ પ્રકારે પરમાનંદની પ્રતિતી કરાવનાર જે રસ છે તે જ પ્રભુ છે અને શ્રુતિઓ તેને રસો વૈ સઃ કહીને ઓળખાવે છે. આ રસાત્મક પ્રભુની પ્રાપ્તિ પણ રસમાર્ગે જ થઈ શકે. તેથી જ શ્રુતિએ કહ્યું કે રસઃ હ્રવાયં લઙ્ઘ્યાનન્દીભવતિ. ભક્ત રસને મેળવીને જ આનંદી થાય છે. પરમાનંદ પ્રાપ્ત કરે છે. પરમાનંદની પ્રાપ્તિથી અતિરિક્ત અન્ય કોઈ પણ પ્રકારનું ફલ પરમ ફલ તો નજ કહી શકાય.

હવે રસ શાસ્ત્રોક્ત રસના ભેદ અને તેમના સ્વરૂપો જાણી લેવાય તો રસના સમૂહાત્મક રાસનું એ ચથાર્થ સ્વરૂપ સહજમાં સમજી શકાશે.

(૧) શૃંગાર (૨) કરુણ (૩) શાન્ત (૪) રૌદ્ર (૫) વીર (૬) અદ્ભુત (૭) હાસ્ય (૮) ભયાનક અને (૯) બીભત્સ એમ નવ પ્રકારના રસ છે.

આ નવે રસોના સ્થાયીભાવો પણ અનુક્રમે (૧) રતિ (૨) શોક (૩) નિર્વેદ (૪) ક્રોધ (૫) ઉત્સાહ (૬) વિસ્મય (૭) હાસ (૮) ભય અને (૯) જુગુપ્સા હોય છે.

આ નવે તે તે પ્રકારના રસવર્ણનની સમાપ્તિ સુધી સ્થિર રહેતા હોવાથી એમને સ્થાયીભાવ કહે છે.

આથી અતિરિક્ત ભક્તિ પણ રસ છે. ભક્તિનું રસત્વસિદ્ધ કરનારા ગ્રંથો રસસમ્પ્રદાયમાં ભક્તિરસત્વવાદ અને ભક્તિમાર્ત્તવાદ છે. ઈતર સમ્પ્રદાયમાંયે ભક્તિરસપ્રધાન ગ્રંથો અસ્તિત્વ ધરાવે છે. પ્રકૃત લેખમાં ભક્તિ રસ છે કે નહિ તે વિષયના વિવાદને સ્થાન ન હોવાથી ભક્તિને રસ માનીને જ આગળ ચાલીશું.

અવસર પ્રાપ્ત થતાં સ્વતંત્ર લેખ દ્વારા કોઈકવાર ભક્તિના રસત્વ સમ્બન્ધી ચર્ચા કરીશું.

હવે એ તપાસવાનું બાકી રહી જાય છે, કે રાસને રસનો સમૂહ માનવામાં આવે તો તેમાં કેટલા રસોનું વર્ણન ઉપલબ્ધ થાય છે. કારણ કે આપાતતઃ દષ્ટિક્ષેપ કરતાં તો રાસમાં કેવલ શૃંગાર રસનું જ વર્ણન પ્રાપ્ત થાય છે. છતાં જ્યારે રસના સમૂહરૂપે રાસને ગ્રહણ કરવાનો હોય ત્યારે તો ઈતર પણ રસોની સમીક્ષા પ્રાપ્ત જ છે.

રસશાસ્ત્ર માં પ્રધાન રસ શૃંગાર જ છે, એમ અનેક વિદ્વાનોએ સ્વીકાર્યું છે. અરે એટલું જ નહિ પણ અન્ય પણ રસોનો અન્તર્ભાવિ શૃંગાર રસમાં જ કરવામાં આવતો દેખા દે છે. છતાંપણ રસનાં સમૂહો રાસઃ આ વાક્યોનો અભિપ્રાય અન્ય રસોનો અન્તર્ભાવિ શૃંગાર રસમાં કરીને તેને સમૂહાત્મકત્વે ગ્રહણ કરવામાં તો નથી જ. કારણ કે અન્તર્ભાવિત પદાર્થનું ગ્રહણ સમૂહાત્મકત્વે થતું દષ્ટિગોચર નથી. અર્થાત્ જુદા જુદા રસોની ઉપલબ્ધિ રાસમાં છે; અને તેથી જ રાસને રસનો સમૂહ કહ્યો છે.

ભિન્નભિન્ન રસોની ઉપલબ્ધિ રાસમાં કરાવતાં પહેલાં તે તે રસનું સ્વરૂપજ્ઞાન પણ આવશ્યક છે. કારણ કે જો સ્વરૂપજ્ઞાન ન હોય તો તત્સમૂહનું જ્ઞાન પણ થાય નહિ. તદુપલબ્ધિનું ચે ભાન રહે નહિ.

(૧) શૃંગાર-શૃંગાર રસ બે પ્રકારનો છે. સંયોગ અને વિપ્રયોગ. સંયોગકાલમાં જે રતિ (પ્રીતિ) તે સંયોગ શૃંગાર અને વિપ્રયોગકાલમાં જે રતિ હોય તે વિપ્રયોગ શૃંગાર કહેવાય. સંયોગ કે વિપ્રયોગ એ કાંઈ શરીરના સમાનાધિકરણ કે (એક સાથે રહેવું) કે યૈયધિકરણ (જુદાં જુદાં હોવું) નો વિષય નથી. ધારો કે કોઈ નાયક અને નાયિકા એક તત્પ ઉપર સ્થિતિ કરતા હોય તો પણ જો તેમનામાં ઈર્ષ્યાદિ વિદ્યમાન હોય તો તેને સંયોગશૃંગાર તો ન જ કહેવાય. અર્થાત્ સંયોગ અને વિપ્રયોગ એ બંને અન્તઃકરણની વૃત્તિ ઉપર આધાર રાખે છે. હું સંયુક્ત છું કે વિયુક્ત છું એ તાદૃશ ભાન જ સંયોગ કે વિપ્રયોગ હોઈ શકે.

શૃંગારમાં સ્ત્રી અને પુરૂષ આલમ્બન જ્યોત્સ્ના (ચન્દ્રિકા) વસન્ત વગેરે ઉદ્દીપન પરસ્પર અભિલાષા અનુભાવ અને હર્ષાદિ વ્યભિચારી (સંચારી) ભાવ હોય છે.

(૨) કરૂણ-જ્યારે આશાનો ઉચ્છેદ થાય, ઈષ્ટ વસ્તુનો નાશ થાય, અશ્રુપાતાદિ થાય, મ્લાનતા પ્રાપ્ત થાય ત્યારે (તે પરિસ્થિતિમાં) કરૂણ રસનો અનુભવ થાય છે. અર્થાત્ જેમાં આશાચ્છેદ ઉદ્દીપન હોય, ઈષ્ટનો વિનાશ આલમ્બન હોય,

અશ્રુપાત અનુભાવ હોય અને મ્લાનતા કે જડતા વગેરે હોય ત્યારે શોક સ્થાયી ભાવને પ્રાપ્ત થઈ કરૂણ રસનો અનુભવ કરાવે છે.

(૩) શાન્ત-દ્વૈત આલમ્બન હોય, પ્રબોધ બ્રહ્મસાક્ષાત્કાર ઉદ્દીપન હોય, ઓદાસીન્ય અનુભાવ હોય અને નિર્વેદ સ્થાયીભાવ હોય ત્યારે શાન્તરસ ઉદ્ભવે.

(૪) રોદ્ર-જેમાં અપરાધી આલમ્બન હોય, તેનો ઉત્ક્રુષ્ટ ઉદ્દીપન હોય, નિષ્કુર વાક્યોનું ઉચ્ચારણ અનુભાવ હોય અને ઉગ્રતા સંચારી ભાવ હોય, ક્રોધ સ્થાયી ભાવ હોય તે રોદ્ર રસ કહેવાય.

(૫) વીર-જ્યાં પ્રભાવ ઉદ્દીપન હોય, સ્થૈર્ય અનુભાવ હોય, ગર્વ સંચારી ભાવ હોય, અને ઉત્સાહ સ્થાયીભાવ હોય તે વીરરસ કહેવાય. વીરરસના અનેક ભેદ છે.

(૬) અદ્ભુત-માયિકત્વ ઉદ્દીપન હોય, રોમાંચ અનુભાવ હોય, મોહાદિ વ્યભિચારી ભાવ હોય અને વિસ્મય સ્થાયીભાવ હોય ત્યારે અદ્ભુત રસ થાય.

(૭) હાસ્ય-યૈરુપ્ય ઉદ્દીપન હોય, પ્રકુલ્લમુખ અનુભાવ હોય, આકારની ગુપ્તિ સંચારી ભાવ હોય અને હાસ સ્થાયીભાવ હોય તો તેને હાસ્ય રસ કહી શકાય.

(૮) ભયાનક-જેમાં ભયંકર વસ્તુનું દર્શન ઉદ્દીપન હોય, કમ્પન અનુભાવ હોય, મોહાદિક સંચારીભાવ હોય અને ભય સ્થાયીભાવ હોય તે ભયાનક રસ છે.

(૯) બીભત્સ-અરમ્ય દર્શન ઉદ્દીપન હોય, તેથી ઉત્પન્ન થતું અવયવોનું કમ્પન અનુભાવ હોય, અવહિત્થા (આકાર ગુપ્તિ) વ્યભિચારીભાવ હોય અને જુગુપ્સા સ્થાયીભાવ હોય તો બીભત્સ રસ થાય.

આ નવે રસ લૌકિક અને અલૌકિક ભેદે બે પ્રકારના છે. અલૌકિક રસ પણ ત્રણ પ્રકારનો હોય (૧) સ્વાપ્ન (૨) માનોરથ અને (૩) ઓપનાયિકર (કાવ્ય કે નાટકમાં અનુભવાતો.)

રસનું સ્વરૂપ આપાતતઃ પ્રાપ્ત થતું હોય તથાપિ અનુચિત વિભાવ આલમ્બનાદિક પ્રાપ્ત થતાં હોય તો તે રસ નહિ પણ રસાભાસ છે. યથોક્ત ભાવોદય થતાંજ રસોદય થાય છે એમ રસશાસ્ત્રવેત્તાઓનો ઉદ્દેશ છે.

જો સૂક્ષ્મેક્ષિકાએ રાસનું નિરીક્ષણ કરવામાં આવે તો સર્વના રસ રાસમાં પ્રાપ્ત થાય. શ્રી સુબોધિનીજીમાં અને ટીકા ગ્રન્થોમાં અનેક સ્થળે તે તે પ્રકારનો નિર્દેશ પણ કરવામાં આવ્યો છે. પરંતુ તે સામાન્યતઃ સમજાય તેવું નથી. તેનું પાર્થક્ય આવશ્યક છે. જ્યાં સુધી રસ પ્રણાલીને અનુસરી સમીક્ષક બુદ્ધિથી પૃથક્કરણ ન થાય ત્યાં સુધી સામાન્ય જનસમાજને તો શું પણ પડિતપ્રકાણકોને ય તેનું ભાન

થાય નહિ, આથી જ આજ સુધીના લગભગ સર્વ જ પાંડિતો રાસમાં કેવલ શૃંગારજ જુએ છે. તેમાં તેમનો દોષ નથી. કારણ કે રાસમાં પ્રાધાન્ય તો શૃંગારનું જ છે. અને રાસ શબ્દનો બીજો રૂઢ અર્થ સ્ત્રીઓનું મણ્ડલાકારે નૃત્ય પણ છેજ. રાસ પંચાધ્યાયીમાં તે પણ મળી આવે છે. બૃહદ્ ગુજરાતમાં અત્યારે સ્ત્રીઓ મણ્ડલાકારે જે ગરબા ગાય છે કે રાસડા લે છે તે એક પ્રકારે રાસનું જ વિકૃત સ્વરૂપ છે.

શ્રીમદ્ભાગવતના તામસ ફલ પ્રકરણમાં રાસનું સમ્પૂર્ણ વર્ણન ઉપલબ્ધ થાય છે. ત્યાં શૃંગારાદિ રસો પણ ઓતપ્રત દષ્ટિપંથ થાય છે. શ્રીમદ્ગોપેશ્વરજી રશ્મિમાં શૃંગારનું વર્ણન કરતા જણાવે છે કે:-

યદ્યપિ શૃંગાર એટલે કામ તો તૃતીય પુરુષાર્થરૂપ હોવાથી તૃતીય શાસ્ત્રમાં જ સમ્ભવે તેનું ચતુર્થશાસ્ત્રમાં (મોક્ષ શાસ્ત્રમાં) વર્ણન અપ્રાસંગિક જેવું છે - મોક્ષશાસ્ત્રમાં કામશાસ્ત્રનું પ્રતિપાદન કરવું અયોગ્ય છે. “ભગવાનેવ હિ ફલમ્” પ્રભુ જ ફલરૂપ છે. આ સ્થળે ફલ શબ્દના જ પર્યાય સાયુજય-આનન્દ-મોક્ષ-અમૃત વગેરે શબ્દો છે. સાયુજ્યં કૃષ્ણદેવેન શીઘ્રમેવ ધ્રુવં ફલમ્ પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણની સાથે સહયોગ એજ વહેલું અને ધ્રુવ ફલ છે. ભગવત્સેવોપયોગી દેહની પ્રાપ્તિ થાય એજ અભીષ્ટ હોવાથી શ્રીમદ્ બ્રજસુન્દરીઓને શૃંગાર જ મનોરથાન્તર્યે પ્રાપ્ત છે, કે જેની પ્રાપ્તિ માટે શ્રુતિઓ પણ તલસે છે.

શૃંગાર રસ-સ્વરૂપ, મરકતમણિના જેવો શ્યામ, સ્ત્રીપુંભાવાત્મક, ચતુર અને અનન્ય-પરતન્ત્ર-અન્યરસોના ઉપર આધાર ન રાખે તેવો રસતંત્ર છે. તે ગાઢ હોવાથી જલની પેઠે શ્યામ છે, વ્યાપક હોવાથી આકાશની પેઠે નીલ છે, અને આનન્દરૂપ હોવાથી બ્રહ્મની પેઠે પરાત્પર શ્રીકૃષ્ણની પેઠે શ્યામ છે.

શૃંગ એટલે ભાવાંકુર અર્થાત્ ભાવાંકુરમાં સ્થિત જે રસરૂપ છે. આનન્દરૂપ છે. કોહ્યોવાન્યાત્ કઃપ્રાન્યાત્ યદેષ આકાશ આનન્દો નસ્યાત્ ઇત્યાદિ શ્રુતિઓ જે આનન્દનું વર્ણન કરે છે તેજ વાસ્તવિક શૃંગાર રસરૂપ છે. બાહ્ય વિષયોમાંથી જ્યારે મન વ્યાવૃત્ત થાય ત્યારે જ્ઞાનસુખાત્મક રત્યાદિ સ્વતઃજ પ્રકાશે છે. જ્ઞાનવડે પ્રાપ્ત થતા વિભાવાદિક તે સમયે તેવા ઉત્તમોત્તમ શૃંગારના વિષયો સમજવા આ પ્રકારે જ્યારે વિભાવાદિથી અનુનીયમાન રસનો બહિઃપ્રાદુર્ભાવ થાય ત્યારે ભાગ્યવાન્ ભક્તો તદાસ્વાદન સુખ પણ મેળવી શકે.

રાસ પંચાધ્યાયીમાં રસોદ્બોધક સામગ્રીનું વર્ણન પ્રથમ શ્લોકથી જ આરંભાય છે. ભગવાનપિ તા રાત્રીઃ થી આરંભીને વામદશાં મનોહરમ્ સુધીના વાક્યો રસોદ્બોધક સામગ્રીનું વર્ણન કરે છે. જ્યારે ઉદ્બોધક સામગ્રી પ્રાપ્ત થાય ત્યારે જ ઔત્સુક્ય

થાય. અંગવર્ધન ગીત શ્રવણ કરીને વૃજભક્તોમાં કેવા પ્રકારનું ઔત્સુક્ય પ્રાદુર્ભૂત થયું તેનું અત્યંત સુંદર વર્ણન દુહન્યઃ થી આરંભીને નાન્યવર્તન્ત મોહિતાઃ સુધીના વાક્યોમાં કરવામાં આવ્યું છે.

યદ્યપિ રસશાસ્ત્રની દષ્ટિએ આ વાક્યોમાં ઔત્સુક્ય જ માનવાનું છે. તથાપિ આ સ્થળે એ ભૂલવાનું નથી કે પ્રભુએ સર્વાત્મભાવનું જ્ઞાપન કરાવવા માટે જ આ પ્રકાર ગોઠવ્યો છે. (જુઓ શ્રી ગુસાંઈજીનું વ્યાખ્યાન)

ઔત્સુક્ય પ્રાપ્ત થતાં જ જો રસદાન થાય તો સંચારીભાવની અનુપસ્થિતિમાં અને આલંબનાદિના વિરહમાં રસાભાવ થવાનો પણ સંભવ રહે, તેથી પૂર્ણરસોદ્બોધન કરાવવા માટે પ્રતારણાત્મક વાક્યો પ્રભુ ઉચ્ચારે છે. તા દૃષ્ટવાન્તિકમાયાતાઃ ઇત્યાદિ શ્રી સુબોધિનીકાર આજ્ઞા કરે છે કે દ્વઢીકર્તુમેવ સમ્યક્ મોહનાર્થજ નિષેધવાક્યાન્યુક્તવાન્ શ્રી ગોપીજનોના ઔત્સુક્યને દઢ કરવા માટે સારી પેઠે મોહનાર્થ નિષેધ વાક્યો કહ્યા.

યદ્યપિ નિષેધ વાક્યોનો ઉચ્ચાર પ્રભુએ કર્યો છે, તથાપિ તેમાં નિગૂઢાશય તો રસોદ્બોધન જ છે. અન્યથા દૃષ વનં કુસુમિતં ઇત્યાદિ વાક્યોને તેમાં સમાવેશ થાય નહિ. શ્રીમાન લાલુભક્તજી જણાવે છે કે અત્યારે ઉદ્દીપન સામગ્રી સિદ્ધ થયેલી છે, મારું દર્શન પણ થયું. પૂર્વ સામગ્રી સર્વ જ સિદ્ધ છે. આ પ્રકારે પ્રભુના નિગૂઢાશય વાક્યોનો ભાવ અહીં સમજવો. જે ભક્તો લીલાસૃષ્ટિના છે અને પ્રભુ સાથે રમણ કરવા માટે જ અવતર્યા છે, તેવા જ ભક્તો પ્રત્યે પ્રભુના આ વાક્યો છે. આવા વાક્યો રસશાસ્ત્રની મર્યાદાને અનુસરતા જ હોવાથી તેમાં પ્રવંચના હોવા છતાં ઉદ્બોધક છે અને તેથી જ રસશાસ્ત્રવેત્તાઓ પ્રવંચનાત્મક વાક્યોનો એ રસમાં સમાવેશ કરે છે.

જો એમ ન હોત તો પ્રેષ્ટં પ્રિયતરમિવ પ્રતિભાષમાણમ્ ઇત્યાદિ વાક્યોમાં પ્રિયતરમિવ શબ્દ ન હોય. તેમ જ પ્રેષ્ટ શબ્દનો એ પ્રયોગ થાય નહિ. અગ્રિમ વાક્યોમાં પ્રભુની પ્રત્યેક દલીલને શ્રી વ્રજભક્તો પૂર્વપક્ષત્વે ગ્રહણ કરીને તેનું ખાંડન કરે છે. આ પ્રકારનો મધુરો વાકલહ રસશાસ્ત્રને અનુકૂલ જ છે. રાગ ભયનો પ્રતિપક્ષી છે. જ્યાં સ્વલ્પ પણ રાગ હોય ત્યાં ભય ન હોય. આથી જ નિર્ભય થઈને શ્રી વ્રજભક્તોએ પ્રભુના વાક્યોનો અખાંડનીય પ્રત્યુત્તર વાળ્યો. રસિકો માને છે કે શૃંગારમાં નાગરિક નામ કે એવા જ વાક્યો ઉચ્ચારવા કે જેમનું ખાંડન ચતુર નાથિકા એવું તો કરી શકે કે જેની સામે બીજી કોઈ દલીલ જ ન હોય. રસોદ્બોધન માટે જ પ્રભુએ ગોપીજનોને પાછા ફરવાનું કહ્યું. પાછા ફરવાનું જે ફરમાન અપાયું છે તે વાક્યથી

જ અપાયું છે, સ્વરૂપથી નહિ. વાક્યનું નિરાકરણ થઈ શકે અને તદર્થ જ આ સમારંભ પણ છે. તેમજ આ ભાવ પરીક્ષણ પણ છેજ. અભિયુક્તાન: સુદૃશો ભાવપરીક્ષાં યત્નતઃ કુર્યાત્ ઇત્યાદિ તૃતીય શાસ્ત્રોક્ત ન્યાયે ભાવ પરીક્ષણોપાય પ્રભુએ આદર્શો છે.

નાગરિક પદ્ધતિને અનુસરીને શ્રીગોપીજનોએ પણ તેવો જ જવાબ વાળ્યો છે. તેઓ કહે છે કે આપે અમને અહીં વનમાં બોલાવીને છેતર્યા છે. હવે આપ અમને પાછા ઘેર જવાનું કહો છો. પરંતુ પ્રભુ ! જ્યાં સુધી આપ હાસાવલોકન અને કલગીત દ્વારા હૃદયયાત્રિ (કામાત્રિ) ને છાંટો નહિ - શાંત ન કરો ત્યાં સુધી અમે પાછા ફરીશું નહિ. જેમ આપ અત્યારે અમને દુઃખી કરો છો, તેમ અમે પણ આપને દુઃખી કરીશું. વિરહજાગૃપ્તપ્રભુકદેહા ધ્યાનેન યામ પદયોઃ પદવીં સ્વસ્વેતે વિરહથી ઉત્પન્ન થયેલા અમારા દેહને નષ્ટ કરીને ધ્યાન કરીને આપના ચરણકમળમાં પ્રાપ્ત થઈશું. પ્રભુએ જેવી બિભીષિકા બતાવી તેવો જ સામો પડઘો શ્રીમદ્ગોપીજનોએ પણ પાડ્યો. આ સર્વ અનુભાવસ્થાનાપત્ર છે. સંચારી ભાવત્વે ઉદારહાસદ્વિજકુન્દદીધિતિ ઇત્યાદિને ગ્રહણ કરી શકાય. તે પછીનું વર્ણન પૂર્ણ શૃંગાર રસને જણાવે છે. બાહુપ્રસારપરિરમ્ભિ ઇત્યાદિ વાક્યોમાં આપણે પૂર્ણ શૃંગારરસ જોઈ શકીએ છીએ. આ સંયોગ શૃંગાર !

તે પછી વિપ્રયોગ શૃંગારનું વર્ણન અન્તર્હિતે ભગવતિ ઇત્યાદિ વાક્યોથી આરંભાય છે. વિપ્રયોગમાં પ્રેમીજનોની જે દશા થાય છે તેનું આબેહુલ વર્ણન શ્રીમદ્ ભાગવતની રાસપંચાદ્યાયીના દ્વિતીયાદ્યાયથી વિશેષ અને આકર્ષક વર્ણન બીજે પ્રાપ્ત નથી. વિરહમાં જે જે ભાવો ઉદ્ભવે છે, તે સર્વનું યથાક્રમ વર્ણન ત્યાં છે. જો પ્રત્યેકભાવનું દિગ્દર્શન આ સ્થળે કરાવવામાં આવે તો બહુ જ વિસ્તાર થઈ જાય. વિપ્રયોગમાં પ્રેમીનું નિજ પ્રિયજન સાથે તાદાત્મ્ય થાય છે. તેજ આપણે અસાવહં ઇત્યાદિ વાક્યોમાં જોઈ શકીએ છીએ. વિક્ષિપ્ત-મૂર્છા વગેરે સર્વ વિપ્રયોગની દશાઓ ત્યાં મોજુદ છે.

આ પછી કરૂણ રસપ્રધાન ગોપીગીત આરંભાય છે. ગોપીગીતના પદેપદમાં કરૂણ રસ ઓતપ્રોત છે. ત્વયિ ધૃતાસવઃ, નેહ કિં વધઃ, જલરુહાનનમ્ ચારુ દર્શય, ઇત્યાદિ વાક્યો કરૂણરસના ઉદ્દીપક છે. મધુરયાગિરા ઇત્યાદિ અનુભાવ છે અને ચલસિ યદ્વ્રજાત્ ઇત્યાદિ વાક્યો સંચારી ભાવનો બોધ કરાવે છે. અથવા સર્વત્ર ભિન્ન વાક્યોનો ભિન્ન ભિન્ન અર્થ કરવો હોય તો તેને વાક્યોમાં ભિન્ન ભિન્ન પદોને વિભાવાદિ સ્થાને પણ ઓળખાવી શકાય. સારાંશ સંપૂર્ણ ગોપીગીત કરૂણરસનો સાક્ષાત્કાર કરાવે છે.

શાન્તરસની કાંઈક ઝાંખી મજતોડનું મજન્યેકે ઇત્યાદિ વાક્યોમાં થશે. નપારયેડહં આ વાક્યો સાન્ત્વનાર્થે જ છે. તેમાંથી શાન્તરસ સ્ફૂટ થયા વિના રહેતો નથી.

વીરરસનો સાક્ષાત્કાર મહારાસ પછીના વાક્યોમાં થાય છે. રમે સ્વયં સ્વરતિસ્ર ગજેન્દ્રલોલઃ ચચાર મૃદ્ગપ્રમદાગણાવૃતઃ, આત્મન્યુવરુદ્ધસૌરતઃ આ વાક્યો વીરરસનો અપરોક્તવ્યે અનુભવ કરાવે છે. પ્રથમ વાક્યનો સમાવેશ યોગવીરના વર્ણનમાં થાય, દ્વિતીયવાક્ય સમ્પદ્વીરનું વર્ણન કરે છે અને તૃતીય વાક્ય કલાવીરતાનું ઘોતક છે.

આ સર્વલીલાજ પ્રભુના અદ્ભુત પરાક્રમનું વર્ણન કરતી હોવાથી તેમાં અદ્ભુત રસ પણ ઓતપ્રોત છે. તેનું પ્રમાણ કૃષ્ણવિક્રોદિતં વીક્ષ્યમુમુહુઃ સ્થેચરસ્ત્રિયઃ । કામાર્દિતાઃ શશાઙ્કશ્ચ સગણો વિસ્મિતોઽભવત્ આ વાક્ય પુરૂં પાડે છે. અથવા નાસૂયન્ સ્વલુ કૃષ્ણાયમોહિતાસ્તસ્ય માયયા મન્યમાનાઃ સ્વપાશ્ચ સ્થાન્ સ્વાન્ત્વાન્દારાન્ વ્રજૌકસઃ આ વાક્ય પણ સર્વત્ર અદ્ભુત રસના અસ્તિત્વને સ્વીકારવા માટે પૂરતું છે.

પ્રથમાધ્યાયમાં રજન્યેષા ઇત્યાદિ વાક્યોમાં ભયાનકત્વ પણ જણાવ્યું. વત્સોનું ક્રન્દન ઔપપત્યના સેવનમાં જુગુપ્સિતના ઇત્યાદિ ભયાનક રસની સામગ્રી આ વર્ણનમાં પ્રાપ્ત થાય છે.

હાસ્ય તો શૃંગાર રસમાં સંચારિત્વે સ્થિત જ છે.

રમ્યતર પ્રસંગમાં બિભત્સ રસનું વર્ણન અનુચિત હોવાથી આપણે પણ તેને શોધવાનો પ્રયાસ ન કરીએ અને પ્રભુના રમ્ય મહારાસનું ચિન્તન કરીએ તો કલ્યાણ થાય.

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धक्षणोद्दाम विलासहारैः ।

रमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

આ શ્લોકના દ્વિતીય વ્યાખ્યાનમાં શ્રીમત્પ્રભુચરણ આજ્ઞા કરે છે કે - પ્રકારનું સામ્ય હોવા છતાં પણ આ પ્રકારનો રસાનુભવ લક્ષ્મીજીને પણ થતો નથી..... રસનું સ્વરૂપ જ એનું વિલક્ષણ છે.... રસો વૈ સઃ ઇત્યાદિ શ્રુતિ જે રસાત્મક પ્રભુનું વર્ણન કરે છે તેજ આ સર્વ રસરૂપ છે અને રસ મધ્યપાતિ છે.

શ્રીમદ્પ્રભુજીની કૃપાથી સર્વને એ રસાત્મક પ્રભુના ચરણ કમળમાં દૃઢ આસક્તિ થાઓ એજ અભિલષિત છે.





## શ્રીમદ્વાચાર્યચરણની દષ્ટિએ ગીતાનું તાત્પર્ય

લેખક : શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રી, મી.શા.વે.વિ. M.R.A.S.

ગીતા સુગીતા કર્તવ્યા કિમન્યૈઃ શાસ્ત્રવિસ્તરૈઃ ।

યા સ્વયં પદ્મનાભસ્ય મુખપદ્માદ્વિનિઃસૃતા ॥

હિન્દુઓના શાસ્ત્રોમાં સર્વશ્રેષ્ઠ ધર્મ ગ્રંથ જો કોઈ હોય તો તે એક માત્ર ગીતા છે. ગીતાની ગરિષ્ઠતાનું ગાન હિન્દુઓ જ નહિ પણ બીજા ધર્મવાળાઓએ ગાય છે. કેટલાક એમ કહે છે કે બાયબલ ગીતામાંથી જ નિકળ્યું છે; અને કેટલાક તેની સરખામણી કુરાન સાથે કરે છે. કોઈ તેને જ્ઞાનનો ભંડાર કહે છે, કોઈ આર્ય સંસ્કૃતિના સુંદર બાગનું સુરમ્ય સુમન કહે છે, કોઈ અત્યંત તેજસ્વી અને નિર્મલ હીરો અને કોઈ સ્વકર્તવ્ય પર આરૂઢ કરનાર કર્મયોગ પણ કહે છે; અમે તેને આર્યોનું જીવન સર્વસ્વ કહીએ છીએ. ગીતાની ગુણગરિમા એક જ દષ્ટાંતથી સિદ્ધ થાય છે. મહાભારત અશ્વમેધપર્વનાં અધ્યાય ૧૬ માં વર્ણન આવે છે કે અર્જુને મહાભારતનું યુદ્ધ સમાપ્ત થયા પછી એકવાર પ્રભુને વિનંતી કરી કહ્યું કે પ્રભુ ! આપે મને જે ગીતાનો ઉપદેશ કર્યો હતો તેમાંથી કેટલોક ભાગ ભૂલી ગયો છું માટે કૃપા કરીને બીજીવાર ઉપદેશ કરો. અર્જુનની પ્રાર્થના સાંભળીને પ્રભુએ કહ્યું કે, તે સમયે મેં અત્યંત યોગયુક્ત અંતઃકરણ થઈ ઉપદેશ કર્યો હતો; પણ હવે તેવો ઉપદેશ થઈ શકે નહિ. જ્યારે કર્તુ અકર્તુ અન્યથા કર્તુ સમર્થ પ્રભુ જ ગીતાનો ઉપદેશ બીજીવાર કરવાની ના પાડે છે, ત્યારે એકવાર ઉપદેશાયલી ગીતાની ગુણગરિષ્ઠતા સ્વયમેવ સિદ્ધ છે. જે વસ્તુ બીજીવાર બની જ ન શકે તેનું મૂલ્ય કેટલું હોઈ શકે ? આ અમૂલ્ય પદાર્થને અમુક એક વસ્તુની ઉપમા આપવી જ અયોગ્ય છે. તે વસ્તુ નિરુપમ હોવાથી અવર્ણનીય છે. તેથી જ અમે તેને આર્યોનું જીવનસર્વસ્વ કહ્યું છે. કારણ કે ગીતાશાસ્ત્ર સર્વશાસ્ત્રો અને ઉપનિષદોનો સાર છે. સર્વોપનિષદો ગાવો દોઘા ગોપાલનન્દનઃ । પાર્થો વત્સઃ સુધીર્ઘોક્તા દુઘં ગીતામૃતં મહત્ ॥ સર્વ ઉપનિષદો રૂપી ગાય છે, દોહનાર ગોપાલનન્દન પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણ છે, પાર્થ-અર્જુન વત્સ છે અને દૂધ ગીતા રૂપી અમૃત છે. આ એક જ પ્રમાણ ગીતાની ઓળખાણ કરાવવા માટે પર્યાપ્ત છે.

આર્યાવર્તમાં જેટલા વાદ ચાલુ થયા અથવા થાય છે, તે સર્વ વાદપ્રવર્તકો ગીતાને મુખ્યત્વે માને છે. ગીતાને ન માનનાર પોતાને આર્ય તરીકે ઓળખાવી શકે

જ નહિ. શંકર, રામાનુજ વગેરે આચાર્યોએ તો આધ્યાત્મિક તત્ત્વ શોધવા માટે ગીતા પર ભાષ્યો લખ્યા અને તેનું પ્રામાણ્ય સ્વીકાર્યું. એ સર્વથા યુક્ત અને આદરણીય જ છે એટલું જ નહિ પણ કેટલાક જડવાદના આચાર્યો પણ ગીતાનું પ્રામાણ્ય સ્વીકારે છે કોઈ અત્યંત સ્પર્શની હિમાયત કરીને ગીતાનું પ્રમાણ આગળ ધરે છે અને કોઈ એવં પ્રવર્તિત ચક્ર નો અર્થ રેંટીઓ કરે છે. જો કે ગીતાનો એક શબ્દ સરખોયે તેમના પક્ષમાં નથી. છતાં તેઓ પણ ગીતાને સર્વશ્રેષ્ઠ માને છે તે જ તેની સર્વપ્રિયતા અને મહત્તાનું સૂચન કરે છે.

અમે તો એમ કહીશું કે ગીતામાં એક માત્ર શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાન્ત જ ઉપદેશાયલો છે. ગીતાની પરિપૂર્ણ સંગતિનું રહસ્ય સમજાય તો મતમતાંતર પેદા થવાનું કારણ જ ઊભું થાય નહિ. ગીતા મહાભારતના એક પર્વનો વિભાગ છે, અને કૃષ્ણાર્જુન સંવાદરૂપ છે, છતાં એકપણ ધર્મ રહસ્ય એવું નથી કે જે એમાંથી નીકળે નહિ; અને તેથી જ તે ઉપનિષદ - વેદ - કહેવાય છે. ડૉ. લોરિન્ડરે બહુ મહેનત કરી એક ગ્રંથ લખ્યો છે, તેમાં તેણે એમ જ સાબિત કરવા મંથન કર્યું છે કે ગીતા છે તે બાઈબલના ઉપરથી જ રચવામાં આવી છે, ને બધી શ્રીકૃષ્ણની વાત જ કાઈસ્ટની વાતનું રૂપાન્તર છે. કૃષ્ણ અને કાઈસ્ટ એ નામ પણ મળતા આવે છે. પણ ડૉ. ભાઈડારકરે આ મતની સારી પેઠે ખબર લીધી છે. યૂરોપિયન વિદ્વાનો જે એમ અડાવે છે કે બાઈબલમાંથી જ સર્વ દુનિયાના ધર્મગ્રંથો રચાયા છે તે તદ્દન અસત્ય છે. કેટલાક પાશ્ચાત્ય વિદ્વાનો પણ સ્વીકારે છે કે સમ્પૂર્ણ દુનિયાને જ્ઞાન આપવાનું પ્રથમ માન આર્યાવર્તને જ ઘટે છે. કાઈસ્ટથી હજારો વર્ષ પૂર્વે થયેલા મહર્ષિ પતંજલિના વ્યાકરણ મહાભાષ્યમાં કૃષ્ણનું નામ આવે. (કંસવધમાઘ્ટે) તો કાઈસ્ટ ઉપરથી કૃષ્ણ થવાનો સંભવ જ ક્યાં !! આટલા ઉપરથી જ ગીતાની મહત્તાનું સામાન્ય વાચક વર્ગને પણ જ્ઞાન થઈ શકશે. તેથી અમે અત્ર આ વિષય પર વધુ ઊંઘાપોહ કરવાની જરૂર જોતા નથી.

હવે આપણે વિચાર કરવાનો એટલો જ રહ્યો કે ગીતામાં મુખ્યત્વે કયા સિદ્ધાન્તો બતાવવામાં આવ્યા છે. કારણ કે ગીતાના જુદા જુદા ભાષ્યો અને સેંકડો ટીકાઓ\* જોવામાં આવે છે, અને તે સર્વ એકબીજાને મળતા નથી. તો ગીતાના સિદ્ધાન્તનો નિર્ણય શી રીતે કરી શકાય ? પ્રત્યેક આચાર્ય કે ટીકાકાર પોતાને જે સિદ્ધાન્ત ઈષ્ટ હોય તે જ સિદ્ધાન્ત ગીતામાંથી પ્રકટાવે છે. તો તેથી સત્ય સિદ્ધાન્ત કયો છે તેનો નિર્ણય કરવાનો બાકી રહી જાય છે. ભગવાન ભાષ્યકાર શ્રીમદ્

\* દુનિયાની દરેક ભાષામાં ગીતાનો તરજુમો થયો છે.

વદ્યભાષ્યાર્થજ્ઞએ પ્રમાણોનો નિર્ણય કરીને કહ્યું છે કે વેદ, ગીતા, બ્રહ્મસૂત્ર અને શ્રીમદ્ ભાગવત એમ ચાર પ્રમાણ છે, અને તેમાંથી ઉત્તરોત્તર પ્રમાણ બલવત્તર છે- તે પૂર્વ પ્રમાણના નિર્ણાયક છે. અર્થાત્ વેદમાં જે સ્થળે સંદેહ હોય ત્યાં ગીતાવડે તેનો નિર્ણય કરવો, ગીતાના સંદેહગ્રસ્ત વિષયનો નિર્ણય બ્રહ્મસૂત્ર વડે અને બ્રહ્મસૂત્રના સંદેહો શ્રીમદ્ ભાગવત વડે દૂર કરી શકાય. અર્થાત્ ગીતાનો અર્થ બ્રહ્મસૂત્ર અને શ્રીમદ્ ભાગવતથી અવિરુદ્ધ હોવો જોઈએ.

પ્રથમ આપણે સિદ્ધાન્તોની જ સમીક્ષા કરીશું, ત્યારબાદ ગીતાના પ્રત્યેક અધ્યાયનું તાત્પર્ય શું છે તે વિચારીશું. માટે સર્વથી પ્રથમ જગત્ના સ્વરૂપનો જ વિચાર કરવો. ગીતામાં શું કહ્યું છે, દીકાકારોનું મત શું છે અને તે શ્રુતિ-બ્રહ્મસૂત્ર અને સમાધિભાષાને કેટલું અનુસરે છે. અર્જુને જ્યારે પૂછ્યું કે આપ કહો છો કે સર્વત્ર હું છું અને મારામાંથી સર્વનો આવિર્ભાવ થાય છે. પણ તે કેવી રીતે સમજી શકાય ? માટે કૃપા કરીને મુખ્ય વિભૂતિઓનું વર્ણન કરો. અહીંથી પ્રારંભી દશમાધ્યાયની સમાપ્તિ સુધી પોતે સ્વવિભૂતિઓનું વર્ણન કર્યું છે, તેમાં પ્રથમ કહે છે કે : “નાસ્ત્યન્તો વિસ્તરસ્ય મે” મારા વિસ્તારનો અંત નથી. અને અંતે કહે છે કે :-

યદ્યદ્વિભૂતિમત્સત્ત્વં શ્રીમદ્ઝિજિતમેવ વા ।  
તત્તદેવાવગચ્છ ત્વં મમ તેજોઽશસમ્ભવમ્ ॥  
અથવા બહુનૈતેન કિં જ્ઞાતેન તવાર્જુન ।  
વિષ્ણુમિદં કૃત્ત્વમેકાંશેન સ્થિતો જગત્ ॥

જે જે વિભૂતિવાળું ચેતન અને અચેતનરૂપ વસ્તુમાત્ર શોભાવાળું કે સમૃદ્ધિવાળું છે, તે તે સર્વ મારા તેજના અંશમાંથી ઉત્પન્ન થયેલું છે એમ જાણ. અથવા આટલું જા માટે ? હું એક અંશવડે સર્વ જગત્માં વ્યાપી રહ્યો છું. મધ્યમાં સ્વવિભૂતિઓનું વર્ણન આવે છે. આ ઉપરથી એમ સમજવાનું છે કે અચિંત્યાનંત શક્તિમાન પ્રભુમાંથી જગત્નો આવિર્ભાવ છે, પોતે જ સર્વત્ર વ્યાપીને રહેલા છે.

પ્રભુના આવા દિવ્ય ઐશ્વર્યનું વર્ણન સાંભળીને અર્જુનને તે જોવાની તીવ્ર અભિલાષા થાય છે, અને તદર્થે પ્રભુને પ્રાર્થના કરે છે. તે વર્ણન એકાદશ અધ્યાયમાં આવે છે. પ્રભુએ આપેલી દિવ્ય દૃષ્ટિ વડે અર્જુન પ્રભુના સ્વરૂપમાં+ સંપૂર્ણ જગત્ને જુએ છે. અર્થાત્ જગત્નો આવિર્ભાવ જેમ પ્રભુમાંથી થાય છે તેમ તિરોભાવ

+ તત્રૈકસંથં જગત્ કૃત્ત્વં પ્રવિભક્તમેકધા ।  
અપશ્યદેવદેવસ્ય શરીરે પાણ્ડવસ્તદા ॥

અવસ્થામાં પણ જગત્ પ્રભુના સ્વરૂપમાં સ્થિત રહે છે અને આ જ સિદ્ધાન્ત વેદ, બ્રહ્મસૂત્ર તથા સમાધિભાષાને માન્ય છે. વેદમાં જગત્નું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે બતાવ્યું છે. પુરુષ એવં સર્વમ્, એતદાત્મ્યમિદં સર્વમ્, સન્મૂલાઃ સૌમ્યેમાઃ પ્રજાઃ સદાયતનાઃ સત્પ્રતિષ્ઠાનાઃ, આત્મા વા ઇદમગ્ર આસીત્, સદૈવ સૌમ્યેદમગ્ર આસીત્, સ આત્મા સ્વયમકુરુત, યતો વા ઇમાનિ ભૂતાની જાયન્તે, યેન જાતાનિ જીવન્તિ યત્પ્રયન્ત્યભિસંવિશન્તિ ॥ આ સર્વ શ્રુતિઓ જગત્નું બ્રહ્મમાંથી આવિર્ભાવ થવાપણું અને સત્યત્વ પ્રતિપાદન કરે છે. જન્માદ્યસ્યયતઃ શાસ્ત્રયોનિત્વાત્, તત્તુસમન્વયાત્ ઇત્યાદિ સૂત્રો બ્રહ્મમાંથી જગત્નો આવિર્ભાવ અને બ્રહ્મનું સમવાયિત્વ સિદ્ધ કરે છે. શ્રીમદ્ ભાગવતમાં જગત્નું સ્વરૂપ નીચે પ્રમાણે બતાવ્યું છે:-

ત્વય્યગ્ર આસીત્ત્વયિ મધ્ય આસીત્ત્વયન્ત આસીદિદમાત્મતન્ત્રે  
ત્વમાદિરન્તો જગતોઽસ્ય મધ્યં ઘટસ્ય મૃત્નેવ પરઃ પરસ્માત્ ॥ અષ્ટમસ્કન્ધઃ  
વિશ્વં હિ બ્રહ્મ તન્માત્રં સંસ્થિતં વિષ્ણુમાયયા ।

યથેદાનીં તથાચાગ્રે પશ્ચાદપ્યેતદિશમ્ ॥ તૃતીયસ્કન્ધઃ

યત્ર યેન યતો યસ્ય યસ્મૈ યદ્યદ્યથા યદા ।

સ્યાદિદં ભગવાન્ સાક્ષાત્ પ્રધાનપુરુષેશ્વરઃ ॥ દશમસ્કન્ધઃ

યથા હિરણ્યં બહુધા સમીયતે નૃભિઃ ક્રિયાભિર્વ્યવહારવર્ત્મસુ ।

એવં વચોભિર્ભગવાનધોક્ષજો વ્યાખ્યાયતે લૌકિક્યવૈદિકૈર્જનૈઃ ॥ દ્વાદશસ્કન્ધઃ

ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણે જગત્ બ્રહ્મકાર્ય છે અને તે બ્રહ્માભિત્ર હોવાથી સત્ય છે, એ જ સિદ્ધાન્ત સત્ય છે. ગીતાનું મર્મ પણ એ જ છે. ગીતામાં તો કોઈપણ સ્થળે જગત્ને મિથ્યા કહેવામાં આવ્યું જ નથી. આપણે શ્રુતિ, સૂત્ર અને શ્રીમદ્ભાગવતના પ્રમાણોની સાથે ગીતાના અભિપ્રાયની એક વાક્યતા કરી છે.

જેમ શંકરાદિ આચાર્યોએ ગીતા પર જુદા જુદા ભાષ્યો લખ્યા છે, તેમ શ્રીકૃષ્ણવદનયૈશ્વાનરનું પણ ભાષ્ય હતું. અત્યારે તે\* ઉપલબ્ધ નથી. તથાપિ નિબંધ શાસ્ત્રાર્થ પ્રકરણમાં મુખ્યત્વે ગીતાનો જ વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. તેમાં પ્રપક્ષો ભગવત્કાર્યઃ એ કારિકાથી પ્રારંભીને માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વસ્તુ સુધી જગત્ના સ્વરૂપનું વિવેચન કરવામાં આવ્યું છે.

કેટલાક લોકો જગત્ને મિથ્યા માને છે, પણ શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતા જગત્ને અસત્ય માનવાની યોગ્યતા ના પાડે છે. તેમજ શ્રુતિ, સૂત્ર અને શ્રીભાગવતમાંયે જગત્ને મિથ્યા માનવામાં આવ્યું નથી. જગત્નું મિથ્યાત્વ વેદાદિને સંમત નથી.

\* આ મત ભગચંદ્રાસ્ત્રનિષ્ણાત મગ્ગલાલ શાસ્ત્રીજીનું છે. જુઓ તત્ત્વદીપિકાની પ્રસ્તાવના

શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતામાં જગત્ને અસત્ય માનનારની આસુરી સંપત્તિ ગણના કરવામાં આવી છે.

અસત્યમ્ અપ્રતિષ્ઠન્તે જગદાહરનીશ્વરમ્ ।

આ ગીતા વાક્યનું સમર્થન વેદ, સૂત્ર અને ભાગવત પણ કરે છે, તે નીચેના પ્રમાણો ઉપરથી સમજી શકાશે.

સદૈવ સૈમ્યેદમગ્ર આસીદ્, યદિદં કિઞ્ચ તત્સત્યમ્ ઇત્યાદિ આ શ્રુતિઓમાં સત્યત્વનું જ પ્રતિપાદન કરેલું છે. તેમજ તદનન્યત્વમાર્મ્ભણશબ્દાદિભ્યઃ, ભાવે ચોપલબ્ધેઃ । સત્વાદ્યાવરસ્ય, અસદ્યદેશાન્નેતિ ચેત્ર ધર્માન્તરેણ વાક્યશેષાત્, યુક્તેઃ શબ્દાન્તરાદ્ય, પટવદ્ય આ દ્વિતિયાધ્યાયના બંને અધિકરણમાં પણ અસત્યત્વનો નિષેધ સ્પષ્ટ જોવામાં આવે છે. શ્રીમદ્ ભગવદ્ગીતામાં કહ્યું છે કે :-

નાસતો વિદ્યતે ભાવો નાભાવો વિદ્યતે સતઃ

અસત્ પદાર્થનો ભાવ હોય નહિ, અને સત્ પદાર્થનો અભાવ થાય નહિ. અર્જુનને વિશ્વરૂપનું દર્શન કરાવ્યું, સ્વવિભૂતિઓનું વર્ણન કર્યું, અનેક સ્થળે જગત્ના સ્વરૂપ વિષે વિવેચન કરીને અસત્યનો નિષેધ કર્યો છે. આ ઉપરથી ગીતાનો જગત્ના વિષયમાં અભિપ્રાય શું છે તે સહજ સમજી શકાય તેમ છે.

એજ પ્રમાણે જીવના સ્વરૂપ વિષે પણ ગીતામાં વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. ગીતામાં જીવને અવિદ્યાવચ્છિન્ન ચેતન્ય કહેવામાં આવ્યું નથી. તેમજ માયા વિશિષ્ટ બ્રહ્મનું અવિદ્યામાં પડતું પ્રતિબિંબ પણ માની શકાય તેમ નથી. ય एवं વેત્તિ હન્તારં, ન જાયતે મ્રિયતે વા, વેદા વિનાશિનં, વાસાંસિ જીર્ણાનિ, નૈનં છિન્વન્તિ, અચ્છેદ્યોયમદાહ્યોયં, તથા મમૈવાંશો જીવલોકે ઇત્યાદિ અનેક સ્થળે જીવના સ્વરૂપનો વિચાર કર્યો છે. તે સર્વની એક વાક્યતા કરતાં જીવનું અંશત્વ જ સિદ્ધ થાય છે. નિત્યો નિત્યાનાં ચેતનશ્ચેતનાનામ્, અંશો નાનાવ્યપદેશાદન્યથા ઘાપિદાશકિતવિત્ત્વમધીયત એકે, અણવશ્ચ વગેરે શ્રુતિ સૂત્રોમાં નિત્યત્વ, અંશત્વ, અને અણુપરિમાણત્વ સિદ્ધ કરેલું છે.

કેટલાક એમ કહે છે કે ગીતાનો પંદરમો અધ્યાય માયાવાદનું પ્રતિપાદન કરે છે, તે અસત્ય છે. અમે આ સ્થળે પ્રત્યેક અધ્યાયનો સંક્ષેપ શું છે તે તત્ત્વદીપિકાકાર તથા અમૃતરંગિણીકારના શબ્દોમાં પ્રકટ કરીએ છીએ.

પ્રભુએ પુષ્ટિમિશ્ર સ્વભક્ત અર્જુનને વિવેક યુક્ત સાંખ્ય શાસ્ત્રની બુદ્ધિએ ધર્મમાં યોજ્યો, તથાપિ તેમાં તેની રુચિ ચોંટી નહિ, તેથી પ્રભુએ ઘેર્યે યુક્ત યોગનો એશ્વર્યાદિગુણવાળા છ અધ્યાય વડે ઉપદેશ કર્યો. તો પણ અર્જુનને સંદેહગ્રસ્ત

જાણીને ભગવાન્ માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વક ભક્તિથી બાર અધ્યાય વડે સ્વધર્મમાં નિયોજે છે. આ અષ્ટાદશાધ્યાયમાં પ્રથમ છ અધ્યાય સૂત્રવત્ છે. દ્વિતીય છ અધ્યાય પૃત્તિવત્ અને તૃતીય છ અધ્યાય ભાષ્યવત્ સમજવા. પ્રથમ સાંખ્યમિશ્ર યોગનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે; તેનું કારણ એજ કે સ્વભક્ત અર્જુન પુષ્ટિમિશ્રભક્ત છે. પ્રભુ પોતે સાંખ્ય અને યોગ રૂપી મકરાકૃત કુંડલ ધારણ કરે છે, તેવા શ્રી મુખની ઉક્તિઓ જે અંતઃકરણને પ્રકાશે છે. પ્રભુએ પાંડવોનો કૃપા કરી અંગીકાર કર્યો છે, માટે જ શરણ માર્ગ વડે સેવા ધર્મનો બોધ કરવામાં આવ્યો છે.

૧- પ્રથમાધ્યાયમાં અર્જુનને દુઃખ પ્રકટ થતાં પૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થયું; તેથી સાંખ્ય યોગને સમજવાનો અધિકારી બને છે.

૨- દ્વિતિયાધ્યાયમાં સાંખ્યને યોગ વિધાના પર્વરૂપ હોવાથી ભગવાનના અલંકાર મકરાકૃત કુંડલ રૂપ છે. તેથી તે આત્મસ્વરૂપનું વિજ્ઞાન તથા બુદ્ધિની સ્થિરતાને ઉત્પન્ન કરે છે. ત્યાર પછી જીવ ભગવાનનો અંશ છે એમ સ્ફુરતાં ભગવાનનો આશ્રય કરવાનો આદર ઉત્પન્ન થાય છે. ભગવદાશ્રય થવાથી પ્રભુની આજ્ઞા એ જ ધર્મ અને તેનું પાલન કરવું તે જ કાર્ય મુખ્યત્વે રહે છે, માટે અર્જુને પ્રભુની આજ્ઞારૂપ ધર્મને મુખ્ય માની આગળ યુદ્ધાદિમાં પ્રવૃત્તિ કરેલી છે. કારણ કે પુષ્ટિમિશ્રભક્ત અર્જુનની રુચિ સાંખ્યજ્ઞાન માત્રમાં જ ન થાય, સાંખ્ય અને યોગમાં સ્વધર્મયુક્ત વચનનો ઉપદેશ હોવાથી અર્જુનના હૃદયમાં પુષ્ટિનો પ્રકાશ થાય છે.

૩- તૃતીયાધ્યાયમાં ધર્મનો નિર્ણય કરવામાં આવેલો છે. ધર્મના બે પ્રકાર છે. ત્યાગ અને અત્યાગ તેમાં ત્યાગથી અત્યાગ ઉત્તમ માનેલો છે. જ્યાં સુધી શરીર સંબંધ છે ત્યાં સુધી ત્યાગ કરવો અશક્ય હોવાથી ભગવદાજ્ઞા માન્ય કરી તદર્થે કૃતિ કર્યા કરવી એ ઉત્તમ છે.

૪- અધ્યાયમાં તૃતીયાધ્યાયમાં નિરૂપણ કરેલા યોગના ઉપદેશની પરંપરાનું વર્ણન પ્રભુ કરે છે. તેમાં પ્રથમ ઉપદેશ રવિને કરેલો છે અને ત્યાર પછી મનુને અને મનુએ ઇક્ષ્વાકુને કર્યો. આ ઉપરથી યોગ નિત્ય છે. એમ સિદ્ધ કરીને સર્વત્ર બ્રહ્મભાવે ફલાદિભાવનો ત્યાગ કરી યોગી ભગવદાશ્રય કર્યાથી જ વિદ્યા વડે અમૃતને પ્રાપ્ત કરે છે.

૫- અધ્યાયમાં, અર્જુન સાંખ્ય અને યોગની એક વાક્યતાએ સિદ્ધ થયેલું સ્વકર્તવ્ય ન સમજતાં પોતાના શ્રેયસ્ સંબંધી પ્રશ્ન કરે છે. અને પ્રભુ તેમજ સંન્યાસ અને કર્મયોગ બંને પણ શ્રેયસ્કર છે, એમ બોધ કરી સંન્યાસ યોગની ઉત્તમતા સિદ્ધ કરે છે.

૬- અધ્યાયમાં, સંન્યાસ ગ્રહણ કર્યા છતાં પણ જડવત્ આચરણ થાય છે અને ભક્તિની પ્રાપ્તિ થતી નથી તેથી ધ્યાનયોગનો ઉપદેશ કરવામાં આવ્યો છે. અર્થાત્ દાસ્યાત્મક સ્વયોગ વડે ભક્તિમાર્ગમાં ઉત્પન્ન થતાં ભ્રમનો નાશ કરીને ભક્તિમાર્ગ ઉપદેશ્યો છે.

૭- અધ્યાયમાં, પોતાના માહાત્મ્યનું જ્ઞાન કરાવવા અર્જુનને સ્વરૂપ જ્ઞાનનો ઉપદેશ કર્યો છે કારણકે શ્રીપુરુષોત્તમના માહાત્મ્યજ્ઞાન વિના ભક્તિ સ્ફુરતી નથી અને ભક્તિ એ જ ઉત્તમ સેવા છે. માટે પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનું વિજ્ઞાન આ અધ્યાયમાં કરવામાં આવ્યું છે.

૮- અધ્યાયમાં, બ્રહ્મકર્માદિ રૂપને જાણીને અર્જુન આધ્યાત્મિક, આધિભૌતિક અને આર્થિક કર્મની પૃચ્છા કરે છે. ભગવાન્ તેને એ ત્રિવિધ સ્વરૂપ અને વેદ યજ્ઞ તપ જ્ઞાન વગેરેના સ્વરૂપને સમજાવે છે. અને ભક્ત જીવોનો પુરુષોત્તમ સાથે સંયોગ થાય છે એમ બોધ કરે છે.

૯- અધ્યાયમાં, રાજવિદ્યા અને રાજગુહ્ય એવા સ્વઐશ્વર્યયુક્તયોગનું જ્ઞાન ભક્તિગર્ભિત હોવાથી મહાપતિતપાવન પરમાત્મા તેનો ઉપદેશ કરે છે.

૧૦- અધ્યાયમાં, પરિપૂર્ણ સચ્ચિદાનંદ બ્રહ્મરૂપ આ સર્વ જગત્ હોઈ તેમાં પ્રકાશતું સર્વ પણ ભગવાનની વિભૂતિ હોવાથી સર્વ ભગવન્મય છે એમ દર્શાવ્યું.

૧૧- અધ્યાયમાં, વિભૂતિઓનું શ્રવણ કરતાંની સાથે આ સર્વ વિશ્વ બ્રહ્મરૂપ છે. એમ જાણી તેને પ્રત્યક્ષ નિરીક્ષણ કરવાની અપેક્ષા અર્જુનને થાય છે. પ્રભુ દિવ્ય દષ્ટિનું દાન કરી તેને પોતાના દિવ્ય સ્વરૂપનું દર્શન કરાવે છે.

૧૨- અધ્યાયમાં, ભક્તિ પ્રમેય છે. અને પુરુષોત્તમ પણ પ્રમેયરૂપ હોવાથી પ્રમેય માર્ગથી જ પ્રભુનું સેવન કરી શકાય માટે સ્વરૂપનું તારતમ્ય વર્ણન કરેલું છે.

૧૩- અધ્યાયમાં, પ્રથમ દર્શાવેલા પ્રકારોથી જે પ્રભુનું અનન્ય મનથી સેવન કરે છે તે જ પ્રભુને પ્રીતિપાત્ર બની-કૃપાપાત્ર થઈ ઉદ્ધાર પ્રાપ્ત કરે છે એમ સ્પષ્ટ કર્યું છે.

૧૪- અધ્યાયમાં, પ્રપંચની વિચિત્રતા દર્શાવી બ્રહ્મનું અનાદિત્વ, ગુણાતીતત્વ દર્શાવી ગુણમયનો વિભાગ દર્શાવ્યો છે.

૧૫- અધ્યાયમાં, સ્વરૂપ જ્ઞાનથી રહિત ભક્તિ ઉપયોગી થતી નથી માટે પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનો વિચાર અહીં કરવામાં આવેલો છે. લોકોના હિતની અભિલાષાથી પ્રભુકૃપા કરી પુરુષોત્તમયોગમાં સર એટલે પ્રપંચથી અને અસર બ્રહ્મથી પણ ઉત્તમ પુરુષોત્તમ છે અને તે જ સેવનીય છે. એમ તાત્પર્ય પ્રકટ કર્યું છે.

૧૬- અધ્યાયમાં, દેવી સંપત્તિ અને આસુરી સંપત્તિનું લક્ષણ અને કાર્યસહિત નિરૂપણ કરે છે. દેવી અને આસુરી સંપત્તિનો વિવેક જાણ્યાથી દેવીના સંગથી મોક્ષ અને આસુરીના સંગથી બંધન, એમ સ્પષ્ટ બોધ કરવામાં આવ્યો છે.

૧૭- અધ્યાયમાં, શ્રદ્ધાની ત્રિવિધતા બતાવી નિર્ગુણ શ્રદ્ધા ઉત્તમ છે. શ્રદ્ધાયુક્ત કરેલાં પણ સગુણ કર્મ હોય તો તે નિષ્ફળ છે માટે નિર્ગુણ કર્મ કરવાં જોઈએ અને તે જ કર્મ સફળ છે એમ ઉપદેશ કર્યો છે.

૧૮- અધ્યાયમાં, સર્વ અધ્યાયોનો નિયોડાર્થ “સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ” સર્વ ધર્મના પરિત્યાગપૂર્વક મારો આશ્રય કર એવા તાત્પર્યરૂપ શરણનો ઉપદેશ કરે છે.

આ પ્રમાણે ગીતાનો સારાંશ પ્રભુમાં દૃઢ ભક્તિ, પ્રભુનો આશ્રય એજ મુખ્ય ફલરૂપ છે. સર્વોદ્ધારપ્રયત્નવાન્ ભગવાન્ અર્જુનને સંબોધી ગીતાનું નિગૂઢ તાત્પર્ય સર્વદા શ્રીકૃષ્ણચંદ્રના ચરણની સેવા કરવી એ જ છે એમ સ્વઆશય સ્પષ્ટપણે પ્રકટ કરે છે. આ પ્રમાણે ગીતાનો અર્થ જાણ્યાથી આચાર્યશ્રીના ચરણકમલમાં દૃઢવિશ્વાસપૂર્વક ભગવત્પ્રેમ પ્રાપ્ત થાય છે. અને તેથી અમે ગીતા તાત્પર્યરૂપ કુસુમાંજલિ શ્રીમદાચાર્યજીના ચરણકમળમાં સવિનય સમર્પણ કરીએ છીએ.



શ્રીમત્પુરુષોત્તમવદનવૈદ્યાનરશ્રીવલ્લભાચાર્યમહાપ્રભુપૂજ્યપ્રાદુર્ભાવિત  
શ્રીસુવોદિન્યા સમેતસ્ય શ્રીમન્નિગમકલ્પતરોઃ ફલરૂપસ્ય શ્રીમદ્ભાગવતસ્ય  
તામસફલપ્રકરણેઽષ્ટાવિંશોઽધ્યાયઃ ।

## શ્રીગોપીગીતમ્

અનુવાદક : શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રી, બી.શા.વે.વિ. M.R.A.S.

કારિકા:-

અષ્ટાવિંશે હરેર્ગાનં સ્વભાવાદપરાધતઃ ।  
કૃતાવજ્ઞા ગોપિકા હિ સ્તોત્રં ચક્રુરિતીર્યતે ॥૧॥  
एकोनविंशतिविधा गोप्यः स्वस्याधिकारतः ।  
एकोनविंशतिविधां स्तुतिं चक्रुर्हरः प्रियाम् ॥२॥  
રાજસી તામસી ચૈવ સાત્ત્વિકી નિર્ગુણા તથા ।  
एवं चतुर्विधा गोप्यः पतिमत्यो निरूपिताः ॥३॥  
તથૈવાનન્યપૂર્વાશ્ચ પ્રાર્થનામાહુરુત્તમામ્ ।  
गुणातीताः सात्त्विकीश्च तामसी राजसी तथा ॥४॥  
કૃષ્ણભાવનયા સિદ્ધા વિશેષેણાહ તાઃ શુકઃ ।  
अनन्यपूर्विका एव पुनस्तिस्त्रो मुदा जगुः ॥५॥  
સાત્ત્વિકી તામસી ચૈવ રાજસી ચેતિ વિશ્રુતાઃ ।  
सपूर्वाश्च ततस्तिस्त्रस्तामसी राजसी परा ॥६॥  
પુનસ્તા એવ ત્રિવિધા અટતીત્યાદિભિસ્ત્રિભિઃ ।  
राजसी तामसी चैव सात्त्विकीति विभेदतः ॥७॥  
અનન્યપૂર્વા દ્વિવિધા રાજસી સાત્ત્વિકી તથા ।  
तमसा तामसी तत्र नास्तीत्येकोनविंशतिः ॥८॥

અથવા પ્રાર્થનાદ્યાયાઃ સપ્તાન્તે દ્વિવિધા પુનઃ ।  
चतुर्थ्यस्तु समास्तत्र तत एकोनविंशतिः ॥९॥  
તત્તદ્વાક્યાનુસારેણ તાસાં ભાવો નિરૂપ્યતે ।  
अन्यथाऽनेकता स्तोत्रे प्रकारैर्नोपयुज्यते ॥१०॥

## કારિકાર્થ

આ અઠ્ઠાવીશમા અધ્યાયમાં (એકત્રીશમા<sup>૧</sup> અધ્યાયમાં) સ્વભાવથી<sup>૨</sup> અને (કે) અપરાધથી<sup>૩</sup> જેમણે પ્રભુની અવજ્ઞા કરી છે, એવા ગોપીજનોએ હરિની સ્તુતિરૂપ ગાન કર્યું.<sup>૧</sup> નિજ અધિકારથી ગોપીજનો ઓગણીસ પ્રકારના છે. (તેથી) તેઓએ, ઓગણીસ શ્લોકવડે ઓગણીસ પ્રકારની પ્રભુને પ્રિય એવી સ્તુતિ કરી. ૨ રાજસી<sup>૪</sup>, તામસી, સાત્ત્વિકી અને નિર્ગુણા એમ ચાર પ્રકારના ગોપીજનો અન્યપૂર્વા-શ્રુતિરૂપા છે. ૩ તેવા જ અનન્યપૂર્વા<sup>૫</sup> ગોપીજનોએ (કુમારીકાઓ) ઉત્તમ પ્રાર્થના કરી. (તે પછી) ગુણાતીતા, સાત્ત્વિકી, તામસી અને રાજસી છે. ૪ ફરીથી ત્રણ પ્રકારના અનન્યપૂર્વિકા ગોપીજનોએ શ્રીકૃષ્ણની ભાવના વડે સિદ્ધ થયેલાં, વિશેષે કરીને હર્ષથી ગાન કર્યું, એમ શુકદેવજી કહે છે. તે (ગોપીજનો) સાત્ત્વિકી, તામસી અને રાજસી છે. ૫<sup>૧/૨</sup> તે પછી અન્યપૂર્વા<sup>૬</sup> ત્રણ પ્રકારના ગોપીજનો, (કે, જે) તામસી અને પરા (સાત્ત્વિકી) છે. ૬ ફરીથી તે જ<sup>૭</sup> ગોપીજનોએ અટતિ યદ્વાન્ ઈત્યાદિ ત્રણ શ્લોકવડે, રાજસી, તામસી અને સાત્ત્વિકીભેદથી ગાન કર્યું. ૭ તે પછી અનન્યપૂર્વા<sup>૮</sup> ગોપીજનો (કે જે) રાજસી અને સાત્ત્વિકી જ છે, તેમણે ગાન કર્યું. તેમાં તામસતામસી નથી, તેથી ઓગણીસ જ પ્રકાર થાય છે. ૮ અથવા (બીજા પક્ષમાં) કુમારીકાઓની<sup>૯</sup> પ્રાર્થનાના સાત શ્લોક છે અને અંતમાં તેરમા અને ચોદમા શ્લોકમાં બે પ્રકારની પ્રાર્થના છે. બાકીના<sup>૧૦</sup> શ્લોક પ્રોઢ ગોપીજનોની

૧ પ્રક્ષિપ્ત ત્રણ અધ્યાય મેળવવાથી. ૨ વિરહાવસ્થાનો સ્વભાવજ ગાન કરવાનો છે એમ ટિપ્પણીકાર અર્થ કરે છે, પરંતુ જે હેતુવર્થક પંચમીને કૃતાવજ્ઞાઃ એ વિશેષણની સાથે અન્યિત કરવામાં આવતો માનસ્વભાવને લીધે એમ પણ અર્થ થાય. આ પ્રકારનો અર્થ કરવાથી દ્વિતીય હેતુ અપરાધતઃ એ પક્ષાન્તર પણ સમ્બંધ થાય છે. ૩ અન્ય ભક્તોની અપેક્ષાએ અમે અધિક છીએ, માટે પ્રભુ પ્રાર્થના કરે તો જ રસદાન કરીશું; એ પ્રકારના અપરાધને લીધે. ૪ શ્રુતિરૂપાઓ કે જે ગોપાલોની સ્ત્રીઓ છે, તે ચાર શ્લોકથી સ્તુતિ કરે છે. ૫ આ ત્રણ શ્લોક સમજવા. ૬ આ ત્રણ શ્લોક શ્રુતિરૂપાના છે. ૭ શ્રુતિરૂપા ગોપીજનો. ૮ અગ્નિકુમારરૂપા ગોપીજનો. ૯ કુમારીકાઓના સ્તુતિના શ્લોક ૧, ૨, ૩, ૫, ૬, ૭, ૮, ૧૩ અને ૧૪ એમ નવ શ્લોક જાણવા. ૧૦ પ્રોઢાઓની સ્તુતિના.

પ્રાર્થનાના છે. તેમાં ચોથો શ્લોક બંને પ્રકારના ગોપીજનોનો સમજવો. ૯ તે તે પ્રકારના વાક્યોને અનુસરીને તે તે પ્રકારનો ભાવ પ્રકટ થતો હોવાથી તે (સર્વપ્રકારના) ગોપીજનોના ભાવનું નિરૂપણ કરાય છે. જો એમ ન હોય તો (જો સર્વગોપીજનોનું સામટું સ્તોત્ર માનવામાં આવે તો) સ્તોત્રમાં અનેકત્વ આવતું હોવાથી (તે) સ્તોત્રમાં ઉપયોગી ન થાય. ૧૦

### શ્રીગોપ્ય ઉચ્ચ:

મૂ. જયતિ તેઽધિકં જન્મના વ્રજઃ શ્રયત ઇન્દિરા શશ્વદત્ર હિ ।

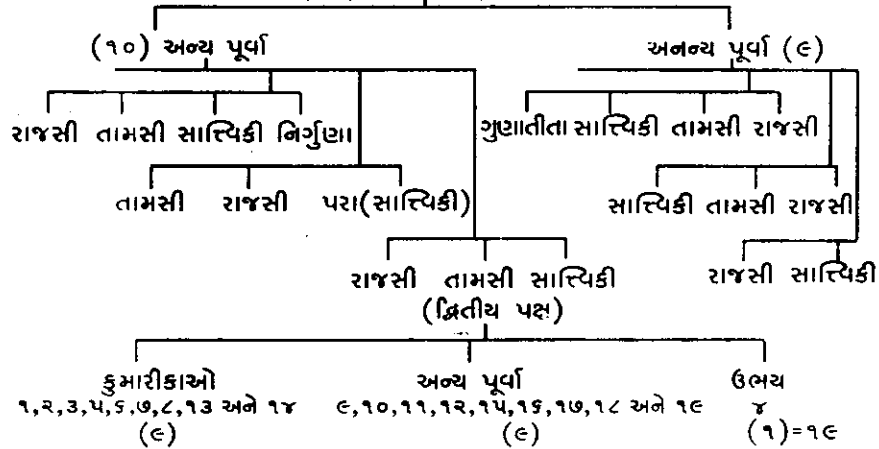
દયિતઃ દૃશ્યતાં દિક્ષુ તાવકાસ્ત્વયિ ધૃતાસવસ્ત્વાં વિચિન્વતે ॥૧૧॥

શબ્દાર્થ - આપના જન્મથી વ્રજ (યેકુંઠ કરતાં પણ) અધિક જય પામે છે. લક્ષ્મીજી પણ અહીં (વ્રજમાં) આશ્રય લે છે. હે પ્રિય, આપના (ગોપીજનો), આપને વિષે પ્રાણ ધારણ કરનારા (આપમાં પ્રાણ મૂકનારા) આપને દિશાઓમાં ખોળે છે, તેજુઓ.

શ્રીસુબોધિનીજી- અહીં ‘જય’ શબ્દ મંગલાર્થક છે. આ સ્તુતિ જેમ ફલ સિદ્ધ કરે, તેમ નિર્વિઘ્ન થાય. જો મંગલાર્થક ન હોય તો જયતિ એ ક્રિયાપદને પ્રથમ ગોઠવે નહિ. આપના અવતારથી સંપૂર્ણ વ્રજ કૃતાર્થ છે; પરંતુ અમેજ કૃતાર્થ થયા નથી. “અમે પણ જેમ કૃતાર્થ થઈએ, તેમ ચત્ન કરો” એમ કહેવા માટે

શ્લોક ૯, ૧૦, ૧૧, ૧૨, ૧૫, ૧૬, ૧૭, ૧૮ અને ૧૯ એમ નવ શ્લોક અને ચાર શ્લોક એ ઉભય પ્રકારની ગોપીઓના જાણવા,

(૧૯) ગોપીજન (પ્રથમપક્ષ)



આપના અવતારથી વ્રજનો સર્વ પ્રકારે ઉત્કર્ષ થયો છે, એમ કહ્યું. આપના જન્મથી વ્રજ અધિક (યેકુંઠ કરતાં પણ વિશેષ) જય પામે છે. “સર્વ પ્રકારે ઉત્કર્ષ વડે સ્થિતિ થાય, તે જય” કહેવાય. અધિક જય છે એટલે યેકુંઠ કરતાં પણ વિશેષ ઉત્કર્ષ છે. (કારણકે) ભગવાન આ પ્રકારની લીલા યેકુંઠમાં કરતા નથી. જો કે ભગવાનનો જન્મ મથુરામાં થયો, તો પણ મથુરા સર્વ પ્રકારે ઉત્કર્ષ પામી નથી, પણ વ્રજ જ ઉત્કર્ષ પામ્યું છે. ભગવાનના જન્મથી સર્વોત્કર્ષ થાય એમાં કાંઈપણ કારણ લોકમાં પ્રસિદ્ધ નથી. અનન્યત્વ<sup>૧</sup> એકત્વમાં કારણ નથી માટે તેવો હેતુ (સર્વોત્કર્ષમાં કારણ) પણ કહેવો જોઈએ-એ શંકાનું ઉત્તર આપવા માટે કહે છે-શ્રયત ઇન્દિરા શશ્વદત્ર હિ અહીં વ્રજમાં લક્ષ્મીજી સર્વદા આશ્રય લે છે. હીનભાવે કરીને (વ્રજનો) આશ્રય કરે છે. યેકુંઠમાં તો તે જ નિયત (નિશ્ચિત) ભાર્યા હોવાથી તેને સર્વદા આશ્રય લેવાનો હોય નહિ. પરંતુ-અહીં તો તેના (લક્ષ્મીજીના) જેવી અમે અનેક છીએ, તેથી મારો અવસર ક્યારે આવશે ? એમ વિચારીને નિરંતર આશ્રય કરે છે. લક્ષ્મીજીની સ્થિતિ હોવાથી લોકો ઉત્કર્ષ માને છે. વળી તે લક્ષ્મીજી ગોકુલનો આશ્રય કરે છે, એ યોગ્ય જ છે. કારણ કે તે પતિવ્રતા છે. જ્યાં પતિ પોતે જ ભક્તો ઉપર કૃપા દર્શાવવા અન્યને (ભક્તોને) વશ થઈને રહે છે, (આ પ્રકાર ઉલૂપલ બંધનલીલામાં છે.) ત્યાં તેની ભાર્યા પણ આશ્રય કરે તેમાં કાંઈપણ આશ્ચર્ય નથી. આપના જન્મથી વ્રજનો સર્વોત્કર્ષ સર્વ લોકોના હિત માટે છે. તેથી આપના રમણમાં કોઈપણ પ્રકારની ન્યૂનતા નથી. તેમજ લક્ષ્મીજીના મનમાં પણ ખેદ થતો નથી, કારણ કે અમે તો અંગીકૃત (નિજજન) છીએ. આ કારણથી અમારા જ માટે આપ પધારેલા છો, તેથી આપે આ (વ્રજ) જોવું જોઈએ. એકવાર આ ગોકુલને જુઓ. (અમે<sup>૨</sup> આપને ખોળીએ છીએ તે જુઓ.) આપે આગળ કહેવાતો વાક્યાર્થ કે કર્મ જોવાનું છે. આપના (ભક્તો) આપમાં પ્રાણધરીને આપને દિશાઓમાં ખોળે છે, તે જુઓ. પ્રભુ ગોપીજનોને જુએ, પણ વિરહથી પીડાતા ગોપીજનો પ્રભુને ન જોઈ શકે એ અનુચિત છે, એમ બોધ કરાવવા માટે જ આમ અનુચિત વાક્ય કહ્યું છે. (અર્થાત્ તમે અંતર્ધ્યાન પામ્યા છો તે અનુચિત છે.) બ્રહ્માદિક લોકો આપ વ્રજમાં અવતર્યા છો, વ્રજમાં બિરાજો છો, એમ જાણીને

૧. શબ્દમાં શબ્દત્વ ધર્મ હોવાથી શબ્દ નિત્ય છે. આ અનુમાનની પેઠે વ્રજ સર્વોત્કૃષ્ટ છે, ભગવત્જન્મ હોવાથી, આ અનુમાનમાં પણ અસાધારણ હેતુભાસ છે. ૨. યદ્યપિ આ કર્મણિ પ્રયોગ છે તથાપિ ગુર્જરભાષામાં તેવો વાક્યપ્રચાર ન હોવાથી કર્તરી પ્રયોગ જ ભાષાન્તરમાં શોભે છે.

અહીં આવે છે અને અમે પ્રજસ્થો જ આપને દિશાઓમાં ખોળીએ છીએ; આતો ઘણું જ અનુચિત છે.

પ્રજસ્થોમાં ભક્તિ નથી, જો હોત તો વિરહમાં મરી જાય. તેથી એ અભક્તો પ્રભુને જોતા નથી, એ યુક્ત જ છે. આ પ્રકારની શંકાનો પરિહાર કરવા કહે છે કે- (અમે ગોપીજનોએ) આપના માટે જ જેમણે પ્રાણ ધારણ કર્યા છે આપને તે અનુપયોગી છે એમ જ્યારે જાણશે ત્યારે જ તેનો ત્યાગ કરી દેશે. આથી જ પ્રાણને આશ્વાસન આપવા માટે આપને ખોળે છે, થોડો પણ વિલમ્બ થતાં પ્રાણ ચાલ્યા જશે જો એમ ન હોત તો અમે (આપના તિરોધાન પછી તરત જ) પ્રજમાં ચાલ્યા જાત. પ્રાતઃકાલે તો આપ આવશો જ, તેથી અત્યારે ખોળવા વ્યર્થ જ છે. “દિશાઓમાં ખોળનારા આપના છે. આપ હો તો અમે હોઈ શકીએ.” (આ વાક્યમાં ઘણી જ દીનતા બતાવી છે.) માટે એકવાર તો આપના જીવોને જુઓ, એમ પ્રાર્થના છે.

એમ એક ગોપીએ દર્શનની પ્રાર્થના કરી. વ્યક્તિ એ સંબોધનથી પતિ જો ન દેખાય તો સ્ત્રીનું જીવન અયુક્ત છે એમ પણ નિરૂપણ કર્યું. જો કે ભગવાન ગોપીજનોને જુએ તો તેમાં કોઈપણ પ્રકારનો પુરુષાર્થ સિદ્ધ થતો નથી, તો દીનતા જોઈને પોતે પ્રકટ થાય એ અભિપ્રાયથી (આ પ્રકારની) પ્રાર્થના છે. ૧.

આ પ્રકારે નિજદૈન્ય અને પ્રભુના અનોચિત્યનું નિરૂપણ કરવાથી તે ગોપીનું રાજસ્ત્વ નિરૂપ્યું. હવે તામસી ગોપી વધભાવની પ્રાર્થના કરવા માટે આપનું અદર્શન (ન દેખાવું) અમારા વધનું સાધન છે, એમ કહે છે-

શરદુદાશયે સાધુજાતસત્સરસિજોદરશ્રીમુષા દશા ।

સુરતનાથ તે શુલ્કદાસિકા વરદ નિઘ્નતો નેહ કિં વધઃ ॥૨॥

શબ્દાર્થ-હે સુરતનાથ, શરદ્ઋતુની પુષ્કરિણીમાં સારી રીતે ઉગેલા કમળના હૃદયમાં (અન્તર્ગર્ભમાં) રહેલી શોભાને ચોરનાર દષ્ટિવડે આપ અમને શુલ્કરૂપી (ભેટરૂપી) દાસિકાઓને અથવા ધર્મ દાસિકાઓને મારો છો. હે વરદ, (વરદાન દેનાર) શું આ વધ ન કહેવાય ?

**શ્રીસુબોધિનીજી-** શરદ્ઋતુનો જે આ ઉદાશય પુષ્કરિણી, (નાની તલાવડી) તેમાં સુંદરરીતે ઉગેલું જે કમળ, તેની અંદર રહેલી જે શ્રી-શોભા, તેને પણ ચોરાવનારી દષ્ટિ વડે; હે વરદ (વરદાન આપનાર), મારે છે; તે શું વધ નથી ? વધનો દોષ તો થાય છે જ. જે સાધનો વડે બીજાના પ્રાણ જાય છે, તેનું સમ્પાદન કરનાર ઘાતક (પણ) દોષનો ભાગી બને છે. આથી ભગવદ્દષ્ટિ સર્વનો ઘાત

કરનારી છે, એમ નિરૂપણ કર્યું. “આયુષને મનને દષ્ટિ સાથે મેળવ્યું” ઈત્યાદિ વચનો તેમાં પ્રમાણ છે. તેમ અમને પણ ઘણું કરીને આપ ફૂર દષ્ટિવડે જુઓ છો. જો એમ ન હોય તો પ્રાણબાધા કેમ થાય ? (આપનું) રૂપ તો આનન્દમય છે, તેથી આનન્દમય દષ્ટિવડે જીવાડો. પણ તેમ ન હોવાથી આપ અમારો ઘાત જ કરો છો. વળી, અમે વધને યોગ્ય છીએ. એમ પણ નથી. કારણ કે અમે તો દાસિકાઓ છીએ, કુત્સિત દાસીઓ છીએ સ્ત્રીઓ જો અપ્રયોજિકા હોય તો પણ હણાતી નથી. વળી અમે તો શુલ્કરૂપી (ભેટરૂપી) દાસિકાઓ છીએ; અને આપ સુરતનાથ છો. આપ સર્વ પુરુષાર્થ સાધક છો, તેથી અધિકારને અનુસરી આપના સંબોધનો પણ નિયત જ છે. જેમ ધર્મમાર્ગમાં હે ધર્મપાલક, હે બ્રહ્માણ્ય, હે યજ્ઞેશ્વર ઈત્યાદિ સમ્બોધનો છે. તે ધર્મ, અર્થ અને મોક્ષની ઈચ્છાવાળા ભક્તો બોલે છે. તેવી જ રીતે અમે સુરતનાથ કહીએ છીએ. સુરત એટલે સમ્ભોગ, જગત્માં જેટલો સમ્ભોગ છે, તે સર્વના આપ નાથ છો. આપની આજ્ઞા વિના જગત્માં સુરતની પ્રવૃત્તિ થતી નથી. આથી બ્રહ્માએ કે કામદેવે સુરતની લોકમાં પ્રવૃત્તિ કરવા માટે અમને ભેટરૂપી દાસિકાઓને આપી છે. શુલ્ક માર્ગ નિર્વાહક અને પ્રતિબંધનિવર્તક દ્રવ્ય છે. જો સુરત ભગવાનમાં નિરુદ્ધ (રોકાયેલું) રહે તો લોકમાં રસ હોય નહિ; તેથી અમારા દ્વારા આપની પાસેથી લોકમાં તેનો પ્રચાર થાય તે માટે અમે આવ્યા છીએ. તો કાર્ય તો દૂર જ રહ્યું; ઉલટું આપ અમને મારો છો. આમ થવાથી સર્વ જ કામશાસ્ત્ર વ્યર્થ થશે અને તૃતીય પુરુષાર્થ પણ સિદ્ધ થશે નહિ, આ કારણથી તે કાર્ય માટે અમને અહીં (બ્રહ્માજીએ કે કામદેવે) મોકલ્યા છે તે જ આપે કરવું જોઈએ. અથવા તે કાર્ય ગમે ત્યારે કરજો, પરંતુ અત્યારે તો પ્રકટ થઈને જીવડાવવા જ જોઈએ.

દષ્ટિ ઘાતુકા છે એમ શ્રીમુષા ઈત્યાદિ પદવડે સિદ્ધ કરે છે- જે ચોર હોય છે, તે ઘાતક પણ હોય છે. જેમ જેમ ચોરી કરવામાં નિપુણતા થાય છે તેમતેમ વિશેષ ઘાતક પણ થાય છે. તે માટે ઉદરશ્રીમુષા આ વિશેષણ મૂક્યું છે. તેમાં પણ જે દુર્ગ (જેલ કે કિલ્લા)માં ઉત્પન્ન થયેલા હોય છે તે અતિ નિપુણ હોય છે. તેમ અહીં સરસિજ=કમળ છે. તે પણ દુર્ગમાં જ રહે છે. તેમાં પણ જે સારી રીતે ઉત્પન્ન થયેલાં છે, તેમાં પણ પ્રકાશયુક્ત સમયમાં અને શીતાદિકના ઉપદ્રવથી રહિત સમયમાં, એમ દેશ કાળ અને સ્વરૂપાદિથી અશક્ય ચોર્ય પુરુષની પાસેથી તેના ઉદરમાં રહેલું સર્વસ્વ લઈ જનાર ગોપિકાઓનાં અન્તઃસ્થિત પ્રાણને પણ લઈ જશે એમાં શું આશ્ચર્ય છે ? ચોર્ય તો બલવાન વડે અપકીર્તિના અભાવ માટે

કરાય. પણ તેવું તો અહીં કાંઈ નથી, તેથી કહ્યું કે “શું આ વધ નથી” ?

અથવા આપના દર્શન વિના મરનારનો આ વધ નથી ? અમે સુરત માટે આવેલા છીએ; તે તો દૂર રહ્યું, વચમાં મરણ ઉપસ્થિત થયું છે. જો મરણ થાય તો સુરત પ્રકટ ન થાય, તેથી આપ પણ સુરતના નાથ ન થઈ શકો. અશ્વનું નિર્માણ કરવાને સમર્થ યોગી કંઈ અશ્વપતિ કહેવાતો નથી. જો તે અશ્વને પ્રકટ કરે તો જ અશ્વપતિ કહેવાય.

વળી અમારા વધમાં આશ્ચર્ય જ શું છે ? આપના દર્શન વિના લક્ષ્મીજી પણ રહેતાં નથી, તે કહે છે - જો ઉદરમાં રહેલી લક્ષ્મીને બહાર લાવે, તો અપુષ્ટ હોવાથી તે જ ક્ષણે આમગર્ભની પેઠે મરી જાય. જો કે તેના જીવ માટે કાલ, દ્રવ્ય, દેશ અને વસ્તુઓ અનેક છે, તો પણ આપના દર્શન વિના જીવે નહિ; તેમ અમે પણ આપના દર્શન વિના જીવી શકીએ નહિ.

વળી આપ તો સર્વને વરદાન આપો છો પણ અમને તો મારી નાંખો છો એ ઘણું જ આશ્ચર્ય છે. વરદાતા પ્રત્યક્ષ થાય છે.

અથવા અમે આપની અમૂલ્ય દાસિકાઓ ધર્મદાસિકાઓ છીએ, માટે હણવા યોગ્ય નથી જ. આ રીતે અનેક પ્રકારની ફૂરતાની ભાવનાથી કોઈ ગોપીઓ ભગવાનને ઠપકો દે છે.

અન્તઃસ્થિતો રસઃ પુષ્પો વહિશ્ચેન્ન વિનિર્ગતઃ ।

તદા પૂર્ણો નૈવ ભવેદિતિ વાગ્નિર્મસ્તથા ॥૨॥

અન્તર્ગત પુષ્પરસ જો બહાર ન નીકળે, તો તે અપૂર્ણ જ સમજવો. તેમ વાણી પણ સમજવી. ૨.

સાત્ત્વિક ગોપીજનો-આપે ઘણીવાર અમારું રક્ષણ કર્યું, અત્યારે પણ રક્ષણ કરો એમ કહે છે-

વિષજ્વલાપ્યયાદવ્યાલરાક્ષસાદ્વર્ષમારુતાદ્વૈદ્યુતાનલાત્ ।

વૃષમયાત્મજાદ્વિઘ્નતોભયાદ્વૃષભ તે વયં રક્ષિતા મુહુઃ ॥૩॥

શબ્દાર્થ-હે ઋષભ (શ્રેષ્ઠ) ઝેરવાળા જલપાનથી થયેલા મૃત્યુથી, કાલીય વગેરે સર્પથી, રાક્ષસોથી, વર્ષા તથા વાયુથી, વીજળી અને અગ્નિથી, વ્યોમાસુરથી, સર્વપ્રકારના ભયથી આપે અમોને બચાવ્યા છે (તેમ અત્યારે પણ બચાવો.)

**શ્રીસુબોધિનીજી-વિષજલ** એટલે કાલીયહૃદનું જલ. તે જલ પીને સર્વ જ બાળકો અને ગાયો મરી ગયાં હતાં, તેમને ફરીથી જીવડાવ્યા. **વ્યાલ** એટલે સર્પ કાલીય, સુદર્શન વગેરે. **રાક્ષસો** તૃણાવર્તાદિ (અહીં એકવદ્ભાવ સમાસ છે.) તેમની

પાસેથી પણ રક્ષણ કર્યું. **વર્ષમારુત-ઈન્દ્ર** કોપ કરીને વર્ષા કરી પવન વહેવડાવ્યો. ત્યાંજ વિદ્યુત્ એટલે વીજળી અને દાવાગ્નિ પણ હતા. (અહીં પણ એકવદ્ભાવ સમાસ છે.) **વૃષ** જે આ મયાસુરનો પુત્ર છે, જેને વ્યોમાસુર કહે છે, તેની પાસેથી પણ રક્ષણ કર્યું. ગોપીજન સર્વજ્ઞ હોવાથી તેમને ભૂતભવિષ્યનો નિર્બન્ધ નથી. (અર્થાત્ તે ભવિષ્યની વાર્તા પણ જાણે છે.) વધુ શું કહીએ આપે **વિશ્વતઃ** સર્વ પ્રકારના ભયથી અમારું રક્ષણ કર્યું. આ પ્રકારે વ્રજનું પાલન કરવામાં હેતુ કહે છે આપ ઋષભ છો-સર્વશ્રેષ્ઠ પતિ છો. ભર્તા તો પાલન કરે છે જ. આથી આપ સર્વદા (હંમેશાં) પાલક છો, તો અત્યારે પણ પાલન કરો. તે સર્વ **મારકો** (મારનારા) બાહ્ય હતા, અત્યારે તો વિપ્રયોગરૂપી મારક આન્તર છે, તેથી અત્યારે આપે સર્વથા પાલન કરવું જ જોઈએ. ૩

અન્ય ગોપીજનો વળી ભગવાનના મહાનુભાવત્વને જાણીને તેમના સ્વરૂપનું કીર્તન કરે છે. તેથી જ્ઞાનીઓને જેમ મોક્ષદાન કરે છે, તેમ અમને પણ અમારા અધિકારને ઉચિત એવો મોક્ષ પ્રભુ આપશે જ એમ સ્તુતિ કરે છે:-

ન ચ્ચલુ ગોપિકાનન્દનો ભવાનચિલદેહિનામન્તરાત્મદક્ ।

વિચ્ચનસાર્થિતો વિશ્વગુપ્તયે સચ્ચ ઉદયિવાન્ સાત્ત્વતાં કુલે ॥૪॥

શબ્દાર્થ - હે સખે, આપ કાંઈ યશોદાનન્દન જ નથી, પણ સર્વ દેહધારીઓના અન્તરાત્મના દષ્ટા (જોનારા) છો. બ્રહ્માજીની પ્રાર્થનાથી વિશ્વનું રક્ષણ કરવા માટે સાત્ત્વતકુલ (ચાદવકુલ કે જે વાસ્તવિક યેષ્ઠાવકુલ છે) માં પ્રકટ થયા છો.

**શ્રીસુબોધિનીજી-** ભગવાનને નન્દરાયજીના પુત્ર તરીકે સ્વીકારવામાં સર્વ ઉપાલમ્ભો (ઠપકા) યુક્ત થાય છે. પણ તે જ નથી, તેથી સર્વ ઉપાલમ્ભ અયુક્ત થઈ જાય છે. ખલુ અવ્યય નિશ્ચયાર્થક છે. આપનું પુરુષોત્તમત્વ કાંઈ અહીં તિરોહિત જેવું નથી. **ગોપિકા** એટલે શ્રીયશોદાજીના જ આપ પુત્ર છો એમ નથી. (અર્થાત્ પરબ્રહ્મ પૂર્ણપુરુષોત્તમ છો.) જો કેવલ શ્રીયશોદાનન્દન જ હો, તો જેમ તેમણે આપને વશ કર્યા અને જાણ્યા, તેમ અન્ય ગોપીજન પણ કરી શકે. કારણ કે તેમ થતાં આપ ગોકુલના સ્વામી-નન્દરાયજીના પુત્ર થાઓ; તેથી અમે પણ આપને વશ કરી શકીએ ને જાણી પણ શકીએ. વિદ્યા અને યોજિના સમ્બન્ધથી તુલ્યત્વ આવે છે. અર્થાત્ આપ પણ અમારા જેવા હો, તો અમે પણ આપના સ્વરૂપને જાણીને આપને વશ કરી શકીએ છીએ. તેમ જ આપ કાંઈ કેવલ યૈકુલ્લના અધિપતિ પુરુષોત્તમ છો, એમ પણ નથી. કિન્તુ આપ તો અખિલ દેહધારિઓના અને અમારા



પણ અન્તરાત્માને જોનારા દષ્ટા છો. જુઓ છો. જો અમારા હૃદયમાં તેવો ભાવ જુઓ તો પ્રસન્ન થાઓ. આથી અમારે આ વિષયમાં કશું કહેવાનું જ નથી. વળી આપ આવ્યા તો છો અમારા પાલન માટે, જો જાણો કે આ (ગોપીજન) નષ્ટ થઈ જાય છે (મરી જાય છે) તો પાલન કરો જ. અમે રક્ષણ માટે તો પ્રાર્થના કરી છે જ. આપ કંઈ સ્વેચ્છાથી જ પધાર્યા નથી, એમ કહે છે-**વિખસાઽવિખસ** એટલે બ્રહ્માજી. જે વિશેષે કરીને વેદના અર્થનો વિચાર કરે તે વિખનસ કહેવાય. અતએવ બ્રહ્માજીએ યૈખાનસમન કર્યું છે, કે જે ભગવદ્ભજન પ્રતિપાદક છે. તે જ મતને અનુસરી ભગવાન્ પૂજા ગ્રહણ કરે છે. વેંકટાદિ ઉપર (લક્ષ્મણબાલાજી વગેરે સ્થલમાં) તે જ રીતે પૂજા થાય છે. આથી સર્વની પૂજા પણ ગ્રહણ કરવા માટે બ્રહ્માજીએ આપની પ્રાર્થના કરી છે. અને વિશ્વનું-સર્વનું રક્ષણ કરવું એ તો મુખ્ય પ્રયોજન છે જ. આ રીતે આપ સર્વના અન્તરાત્મારૂપ છો, તેથી સર્વના સખા પણ છો જ. તેવા આપ, લોકમાં સખ્ય પ્રકટ કરવા માટે સાત્વતોના ચાદવોના કુલમાં ઉદય પામ્યા છો-પ્રકટ થયા છો. આ કાર્ય માટે જ આપ પધાર્યા છો. પ્રથમ પણ આપ સખા હોવાથી થયેચ્છ પ્રેરણા કરો છો. અત્યારે પધાર્યા તેમાં વળી વિશેષ કહેવું જોઈએ-તે આત્મનિવેદન છે. (અર્થાત્ અમે આત્માનું નિવેદન કરીએ છીએ.) આથી વધુ અમે શું કહી શકીએ ? આપને જેમ યોગ્ય લાગે તેમ કરો. જ

અન્ય ગોપીજનો કે જે સાત્વિકસાત્વિકી છે, અને રાજસપ્રધાનથી વિશિષ્ટ છે, તેઓ, ભગવાન્ માગ્યા વિના આપશે નહિ, એમ ધારીને પ્રભુના શ્રીહસ્તનો નિજ શિર સાથે સંબંધ માગે છે:-

વિરચિતાભયં વૃણિધુર્યં તે શરણમીયુષાં સંસૃતેર્ભયાત્ ।

કરસરોરુહં કાન્ત કામદં શિરસિ ઘેહિ નઃ શ્રીકરગ્રહમ્ ॥૫॥

શબ્દાર્થ-હે ચદ્દુકુલમાં શ્રેષ્ઠ, હે કાન્ત, આપનું કરકમલ, કે જે સંસારના ભયથી આપને શરણે આવે છે, તેમને અભયનું દાન કરનારું છે, જે શ્રીહસ્તે લક્ષ્મીનું પાણિગ્રહણ કર્યું, તે અમારા શિર ઉપર પધરાવો. ૫

**શ્રીસુબોધિનીજી**- હે સ્વામિન્, હૃદય ફાટે છે. માટે જે રીતે સર્વ અંગોમાં સુખ થાય તેમ અમારા મસ્તક ઉપર કરકમલ-શ્રીહસ્ત પધરાવો. કમલ તો શીતલ હોય છે. તેમાં પણ તે સરોવરમાં ઉત્પન્ન થયેલું હોવાથી વિશેષ શીતલ છે. તેમાં પણ અહીં તો આપનો જ શ્રીહસ્ત સરોવરના સ્થાનમાં અને કમલનાં સ્થાનમાં છે, તેથી તે ઘણો જ શીતલ છે. તેથી ઉદ્ધરણાદિથી રસાલતાનો નાશ નથી. કાન્ત આ સંબોધન છે. તેથી પ્રથમ શિર ઉપર શ્રીહસ્તસ્થાપના કરીને સ્વાધીન કરવાનું

ઘોતન કર્યું. (અર્થનો પ્રકાશ કર્યો) વળી આપનો શ્રીહસ્ત કેવલ તાપને જ દૂર કરે છે, એમ પણ નથી, કિન્તુ કામનું પણ દાન કરે છે. ઈચ્છિત કામને આપે છે.

ભગવાન્ પુરુષોત્તમ છે, અને યોગીઓને પણ ધ્યાન કરવા યોગ્ય છે, તે સ્ત્રીઓને કેમ સ્પર્શ કરે ? આ શંકાનું સમાધાન કરવા શ્રીકરગ્રહમ્ આ પદ કહે છે. જે શ્રીહસ્તવડે લક્ષ્મીજીના હસ્તનું ગ્રહણ કરાય છે, તે શ્રીહસ્ત અમારા મસ્તક ઉપર પધરાવો. આ ઉપરથી ભગવાન્ ગૃહસ્થ છે, એમ જણાવ્યું. જ્યાં લક્ષ્મીજીનો હાથ ઘરે છે, ત્યાં અમારા મસ્તકને ઘરવામાં શું થશે ? લક્ષ્મીજી વિવાહિતા સ્ત્રી છે, તેથી વિધિપૂર્વક તેમનો હાથ ઘરી શકાય, પણ તમારું ગ્રહણ કરવામાં હેતુ શો છે ? આ શંકાના સમાધાન માટે કહે છે કે - આપનો શ્રીહસ્ત સંસારના ભયથી શરણે આવનારને અભયનું દાન કરે છે. જેમ વિવાહમાં વિધિ છે, તેમ શરણાગતના પાલનમાં પણ વિધિ તો છે જ. વિવાહની અપેક્ષાએ શરણાગતની રક્ષા એ મહાન્ છે. તે સાધારણ ધર્મ છે અને આ વિશેષ ધર્મ છે. આ નિષિદ્ધ પ્રકાર છે, તે કેમ પાળી શકાય ? આ શંકાનો જવાબ આ વૃણિધુર્ય આ સંબોધનદ્વારા આપે છે. વૃણિયા-ચદ્દુકુલમાં ઉત્પન્ન થયેલો ઘણી સ્ત્રીવાળો અને ઘણા વંશનો કર્તા છે; તે વંશમાં પણ આપ ધુર્ય=શ્રેષ્ઠ છો. તેમાં પણ સ્ત્રીઓ સંસારના ભયથી આવી છે. સંસાર પોતે સ્વભાવથી દુષ્ટ નથી, કિન્તુ અસહ્ય દુઃખનું કારણ છે. આથી અમે પણ ઘણું દુઃખ પામીએ છીએ, માટે દષ્ટ કે અદષ્ટ દ્વારા આપ તે દુઃખના નિવર્તક છો. આથી ગોપીજનોની નિર્ભયતા પણ સૂચવી. કાન્ત એ સંબોધનથી આપ જ પતિ છો, માટે સ્ત્રીઓના વ્રતને અનુસરી વાંછિત કરો. ૫.

તે પછી તામસી કાંઈક વિલક્ષણતાથી ઘૃષ્ટતાવડે તે જ અર્થની પ્રાર્થના કરે છે-

વ્રજજનાર્તિહન્ વીર યોષિતાં નિજજનસ્મયધ્વંસનસ્મિત ।

ભજ સખે ભવત્કિન્કરીઃ સ્મ નો જલરુહાનનં ઘારુ દર્શય ॥૬॥

શબ્દાર્થ-હે વ્રજજનની આર્તિને હણનાર, હે સ્ત્રીઓના વીર, હે નિજજનના ગર્વનો ધ્વંસ કરતું સ્મિત કરનાર, હે સખે, અમને આપની દાસીઓને, આપ ભજો. અને આપના સુન્દર મુખકમલને દેખાડો. ૬.

**શ્રીસુબોધિનીજી**- હે ભગવાન્ આ ગોપીઓને બોલતા આવડતું નથી. હું તો નિર્ધારિત કહું છું. હે સખે, આ સંબોધન અપ્રતારણાર્થ છે. અમને ભજો એ હિતનો ઉપદેશ છે. આ પ્રકારનું ઘૃષ્ટતાયુક્ત અને નિષિદ્ધ કેમ કહો છો ? એ શંકા દૂર કરવા માટે કહે છે - અમે તો આપની દાસીઓ છીએ. “મને જે વ્યક્તિઓ જે

પ્રકારે શરણે આવે છે, તેમને હું તે પ્રકારે ભજું છું” આ તો આપની પ્રતિજ્ઞા છે. આથી અમે દાસીઓ આપને જે રીતે ભજીએ છીએ, તે રીતે આપ પણ અમને ભજો. અમે દાસીઓ છીએ તે અને આપની પ્રતિજ્ઞા એ બંને પ્રસિદ્ધ જ છે. અમારા ભજનમાં કેવલ આપની પ્રતિજ્ઞા એ એકજ હેતુ નથી, પણ બીજાંયે ઘણાં હેતુ છે. પ્રથમ તો આપના અવતારનું પ્રયોજન જ હેતુ છે. આપ વ્રજજનોની આર્તિને હણનારા છો. આથી વિશેષ હવે બીજી આર્તિ ન હોઈ શકે. આ પણ સામાન્ય પ્રયોજન છે. હવે વિશેષ પ્રયોજન કહે છે - આપ સ્ત્રીઓના વીર છો. આપ કૃષ્ણ છો, વીરપુરુષોએ અન્ય શૂરોને ખસેડવા જોઈએ, અને અન્યમાં રહેલા કામાદિકને પણ દૂર કરવા જોઈએ, તેમાંયે મુખ્યત્વે કામ છે. તે પણ ઘણી-જાતનો છે. અન્તર્બહિઃપદાર્થથી પૂર્ણ એવા આપે તેને પૂર્ણ કરી આશ્રયના ભાવ તોડે તેને નિવૃત્ત કરવો જોઈએ. લોકમાં બીજા વીરોની અપેક્ષાએ દાનવીરને જ વધારે કીર્તિવાળા હોય છે. આપ તો મહાવીર છો. અન્તઃસ્થિત આનંદવડે બ્રહ્મદેવ પણ અતિદરિદ્રીઓની ઈચ્છાને ન પૂરી શકે તેવી ઈચ્છાને પૂરનારા આપ જ છો. આ અર્થ તો સર્વના હિતનો છે. આથી જ (યોષિતાં વીર) સ્ત્રીઓના વીર એ સંબોધન છે. શ્રીકૃષ્ણથી અન્ય સર્વ અપૂર્ણકામવાળા હોવાથી તેઓ આ પ્રકારના સંબોધનને યોગ્ય નથી. માટે અવતારના સામાન્ય અને વિશેષ એમ બંને પ્રયોજનથી અમને ભજો.

જો કે આ સત્ય છે. તો પણ તમારા અભિમાન દોષથી હું તમને ભજતો નથી એમ શંકા થાય તો - આપ નિજજનોના ગર્વનો દવંસ, સ્મિત કરીને જ કરી શકો છો. નિજજન એટલે સેવકો, તેમનો જે સ્મય એટલે ગર્વ તેનો દવંશ=નાશ કરવા માટે જ જેનું સ્મિત છે. નિજજનોના ગર્વને દૂર કરવા માટે તેમનો ત્યાગ એ કાંઈ ઉપાય નથી. કિન્તુ તે માટે તો સ્મિત જ કરવું જોઈએ. સ્મિત એટલે મંદ હાસ. “હાસ એ જનને ઉન્માદ કરનારી માયા છે.” તેનું મંદત્વ એ ભક્તોનું પ્રવર્તન છે. માયાના મોહ વિના કોઈને પણ ગર્વ થતો નથી. માટે હાસ્ય=માયાનો સંકોચ એ જ સાધન છે. નિજજનોનોયે ધર્મ દુષ્ટ હોઈ શકે. ધર્મો દુષ્ટ હોતો નથી. જો એમ ન હોય તો નિજજન જ ન હોય. આ અલૌકિક ઉપાય છે. લોકિકમાં પણ આપના હાસ્યથી-માયાથી તેઓ પણ પોતાને મુખ્ય માને છે, તેથી તેમને ગર્વ થાય છે. જ્યારે હાસ્ય-માયાનો સંકોચ થાય છે ત્યારે ગર્વ નિવૃત્ત થાય છે. વળી અભિમાન તો દોષ છે. તે પણ ત્યાં સુધી જ રહે છે કે જ્યાં સુધી આપનું સ્મિત મુખારવિન્દ જોયું નથી. એવી કોઈપણ સ્ત્રી નથી કે જે આપના જેવા સુંદર

મુખારવિન્દને જોઈને પણ નિજ અભિમાનનું પાલન કરવા સમર્થ હોય.

અભિમાનના નાશનું સાધન આ પ્રકારે લોકમાં પ્રસિદ્ધ નથી તે કેમ તમે જાણ્યું ? આ શંકાનો જવાબ કહે છે - જલરુહ એટલે કમલ તેના જેવું આપનું મુખ છે, તે અમૃતસ્ત્રાવી છે. અમૃતનું પાન કર્યા પછી કોઈનો પણ દોષ રહી શકતો નથી. આ યુક્તિ (ઉપરની શંકાને દૂર કરવા) યોગ્ય જ છે. જો આ પ્રકારના સાધનમાં સંદેહ હોય તો એકવાર આપના મુખારવિન્દને દેખાડી, જુઓ કે કોઈનો પણ ગર્વ રહે છે કે નહિ. વળી અભિમાન તો મનનો ધર્મ છે અને આપનું મુખકમલ મનોહર છે, મનને હરણ કરનારું છે. ધર્મોનું હરણ કર્યા પછી ધર્મ રહી શકતો નથી. સખા સખીનું ભજન કરે તે પણ યોગ્ય જ છે. ૬.

ઉપરની ગોપીથી ઉત્તમ રાજસી ગોપી અન્ય પ્રકારે પ્રાર્થના કરે છે-

પ્રણતદેહિનાં પાપકર્ષણં તૃણચરાનુગં શ્રીનિકેતનમ્ ।

फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुक्षेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥૭॥

શબ્દાર્થ -પ્રણામ કરનારા દેહધારીઓના પાપનો નાશ કરનાર, ગાયોની પાછળ જનાર, લક્ષ્મીજીના નિવાસરૂપ, અને કાલીય સર્પની ફાળોપર ઘરેલું એવું આપનું ચરણ કમલ અમારા કુચ ઉપર ધરો, અને હૃદયમાં ચોરની પેઠે રહેલા કામનો નાશ કરો. ૭.

**શ્રીસુબોધિનીજી** - આપનું ચરણકમળ અમારા કુચપર ધરો, સ્થાપન કરો. તેનું પ્રયોજન કહે છે - હૃદયમાં ચોરની પેઠે સ્થિતિ કરતા કામનો નાશ કરો. અહીં કુચેષુ એ બહુવચન છે, તે સમુદાયના અભિપ્રાયથી છે. અથવા વિરહમાં ગોપીજનો પોતપોતાને ભિન્ન માને છે. શિર ઉપર શ્રીહસ્ત મૂકવાની પ્રાર્થનામાં પ્રભુને નિકટ બોલાવ્યા છે. તેથી ભજનની સાથે સંબંધ કહ્યો. આ પ્રાર્થનામાં વિપરીત રસ કહેવાય છે. અથવા તિર્યક્ બંધ-(કે જે બંધ વિશેષ છે,) તે કહે છે. તેથી હૃદયમાં રહેલો કામ જાય છે. સ્ત્રીઓના સમૂહમાં લીલાશયનમાં સર્વ બાજુ સ્થિત ગોપીજનોનો તેમ સંબંધ થાય છે એમ પણ કહી શકાય.

કુચ કર્કશ છે, અને ચરણારવિન્દ કોમલ છે, તેનું સ્થાપન શી રીતે થાય ? ત્યાં કહે છે કે અમારા કુચ કાલીયના ફાળથી પણ વધારે ફૂર તો નથી જ. તે કાલીયના ફાળ ઉપર જેમ ચરણનું સ્થાપન કરીને તેની અંદર રહેલો દોષ દૂર કર્યો તેમ અમારો પણ દોષ દૂર કરો. ચરણને કમલની ઉપમા છે, કમલ પ્રત્યક્ષ તાપહારક છે.

તો પણ સ્ત્રીઓના વક્ત્રસ્થલ ઉપર ચરણનું સ્થાપન અચુકત છે, આ

શંકાની નિવૃત્તિ માટે કહે છે- ચરણકમલ લક્ષ્મીજીનું નિવાસસ્થાન છે. લક્ષ્મીજી તેનો સ્પર્શ કરી શકે છે, તો અન્યમાં શું સંદેહ રહી જાય છે ?

તમે તો મૂઢ સ્ત્રીઓ છો, તમારું હિત અમારે શી રીતે કરવું ? આપનું ચરણારવિન્દ તો તૃણચર=ગાયોની પાછળ પણ તેનું હિત કરવા માટે જનારું છે, તે શું ભગવાનથી પ્રેરાયેલી હોવાથી ઘાસ છોડીને અમૃત ખાય છે ? તેમને તો તૃણ=ઘાસ જ અમૃત છે, તેમ અમારે પણ કામ જ અમૃત છે. આટલા કાર્યથી હે પરમ કૃપાલુ આપનો કોઈ પણ અર્થ ક્ષીણ થતો નથી.

તમે ઈન્દ્રિયોને જીતી નથી તેથી તમારી અંદર પાપ છે, તે નિકળી જશે ત્યાર પછી ચરણનું સ્થાપન કરીશ એમ જો કહો તો, આપનું ચરણારવિન્દ તો પ્રણામ કરનારના પાપને દૂર કરનારું છે. અમે પ્રકર્ષે કરીને નમ્ર છીએ. અમારા પાપને અમે અન્ય કોઈ પણ પ્રકારે નિવારી શક્તાં નથી. આપના ચરણના પ્રસાદથી જ નમ્ર થયેલાનું પાપ જાય છે. તેમાં પણ દેહીઓના પાપ તો પ્રણામથી જ જાય, પ્રકર્ષે કરીને અમે નમ્ર થયા છીએ એમ કહ્યું તે ઉપરતી ધર્મમાર્ગાદિનો પરિત્યાગ પણ કહ્યો દેહાભિમાન વિધમાન હોવાથી જ્ઞાનમાર્ગનો ચે પરિત્યાગ કહ્યો પ્રણામ કરનારની અધોગતિ નથી. માટે આપનું ચરણકમલ જ પાપનાશક છે. તેનું ચિન્તન કર્યું, તેને જોયું, તેને સ્પર્શ કર્યો અને આલિંગન પણ કર્યું. ૭.

આજ પદાર્થને તેથી પણ ઉત્તમ ગોપીજનો બીજા પ્રકારે પ્રાર્થે છે-

મૂં મધુરયા ગિરા વલ્ગુવાક્યયા વુધમનોજ્ઞયા પુષ્કરેક્ષણ ।

વિધિકરીરિમા વીર મુહ્યતીરધરસીધુનાપ્યાયયસ્વ નઃ ॥૮॥

શબ્દાર્થ-હે કમલનયન, હે વીર, મધુર, પ્રિયવાક્યવાળી, પંડિત પુરુષોને પણ આનંદ આપનારી વાણી વડે આપની આજ્ઞાકારિણી અને મોહ પામતી આ ગોપીઓને અધરામૃતનું પાન કરાવી જીવાડો. ૮.

હસ્તેન ચ સ્વરૂપેણ પદાચોપકૃતિર્મતા ।

મુખેન ચોપકારો હિ કર્તવ્ય ઇતિ તા જગુઃ ॥

પૂર્વોક્તમપિ સર્વં હિ યાવત્સ્પર્શં ન ભાષતે ।

તાવત્સરસતાં યાતિ ન કદાચિદિતિ સ્થિતિઃ ॥૨॥

શ્રીસુબોધિનીજી-શ્રીહસ્તવડે અને સ્વરૂપવડે ઉપકાર માન્યો, ત્યારે હવે મુખવડે પણ ઉપકાર કરો એમ તે (ગોપીઓ) ગાન કરવા લાગી. પૂર્વે કહેલું સર્વ જ્યાં સુધી સ્પષ્ટ રીતે ન કહે ત્યાં સુધી સુંદર સરસતા (રસમયતા) પણ કદી ન થાય.

હે સ્વામિનું, મધુર વાણી વડે મોહપામતી આ ગોપીઓનું રક્ષણ કરો. મોહ (મૂર્છા) એ મરણની પૂર્વ અવસ્થા છે. તે ગોપીજનના રક્ષણમાં હેતુ એ છે, કે તેઓ આપની આજ્ઞાકારિણી કે સેવાકારિણી દાસીઓ છે. એમના રક્ષણમાં આપનું અસામર્થ્ય તો નથી જ. કારણકે આપ વીર છો. શૂરતા તો આર્તજીવોની આર્તિનું નિવારણ કરવા માટે જ હોય. ઇમાઃ એ દર્શક સર્વનામ મૂકીને બતાવે છે કે “આ ગોપીજન” સણામાત્રના વિલંબથી પણ મરી જશે. વાણી માત્રથી મોહની નિવૃત્તિ કેમ થાય ? આ શંકાનો જવાબ આપવા માટે કહે છે કે - આપની વાણી મધુર છે. મોહ એ માયારૂપી હોય છે. તે આપના સચ્ચિદાનંદસ્વરૂપથી જ નિવૃત્ત થાય છે. તેમાં આપની વાણી આનંદરૂપ છે. મધુ એ અસાધારણ રસ છે, તેથી ચુકત હોય તે મધુર કહેવાય; તેવી આપની વાણી છે. વળી તેમાં વલ્ગુ એટલે મનોહર વાક્ય પણ છે. વાક્યમાં સત્ય અને પ્રિયનું પ્રતિપાદન હોય તો તે મનોહર થાય. આથી વાણીની સદ્સ્પતાનું પણ નિવારણ કર્યું. વળી તે વાણી બુદ્ધ-પંડિત-પુરુષોને પણ આલ્હાદ અર્પનારી છે. આથી તે વાણી જ્ઞાનરૂપ છે, એમ નિરૂપણ કર્યું. પંડિતો તો જ્ઞાન વડે જ રત થાય છે. મુખ ઉપર નયન-નેત્ર પણ છે તેનો પણ વ્યાપાર કરીને આપ મધુર અને આલ્હાદકારક વાણી બોલો એમ પુષ્કરેક્ષણ એ પદથી કહે છે. કમલની પેઠે પરતાપહારક આપનાં નેત્ર છે. વળી અધરામૃતના પાનવડે રક્ષણ કરો. આપ બોલો, જુઓ અને પાન કરાવો. મૂર્છિતની મૂર્છાનું નિવારણ કરવા માટે મહામંત્રો ભણાય છે. કમલાદિક શીતલ પદાર્થો મૂકાય છે અને સર્વથા અસાધ્ય હોય તો અમૃત પણ પીવડાવાય છે. અથવા અતિ ગોપ્યરસ પણ પીવડાવે છે. આ મૂર્છા કાંઈ અલ્પ સાધન વડે નિવારી શકાય નહિ માટે વીર સંબોધન મૂક્યું છે. આ ઉપરથી ગોપીજનની છેલ્લી અવસ્થાનું સૂચન કર્યું છે. પ્રથમ પ્રાર્થેલા અર્થો સ્મારક હોવાથી અધિક મૂર્છાના હેતુ થયા. ૮.

આ રીતે ચાર પદાર્થોની પ્રાર્થના કરી, તેનું દાન નથી થતું તેમાં પોતે જ હેતુ છે એમ શંકા કરીને તેનો પરિહાર કરે છે.-

મૂં તવ કથામૃતં તત્તજીવનં કવિભિરીડિતં કલ્મષાપહમ્ ।

શ્રવણમઙ્ગલં શ્રીમદાતતં ભુવિ ગૃણન્તિ તે ભૂરિદા જનાઃ ॥૯॥

શબ્દાર્થ-આપનું કથામૃત સંસારથી તપેલાનું જીવન છે. કવિઓએ વખાણ્યું છે, પાપનો નાશ કરનાર છે, શ્રવણને મંગલરૂપ છે, શ્રીવડે ચુકત છે, સર્વત્ર વ્યાપ્ત છે (તેવું) ઉદાર વ્યાસાદિ પૃથ્વી પર ગાન કરે છે. ૯.

શ્રીસુબોધિનીજી- આ સર્વ પ્રાર્થેલું ભક્તોને આપવું જોઈએ, નહિ કે અભક્તોને,

તમે તો વિરહમાં પણ જીવો છો, તેથી તમારું અભક્તત્વ સિદ્ધ થાય છે. ભગવાન તો સર્વથી નિરપેક્ષ છે. તમે જીવો તેથી ભગવાનને કાંઈ કામ નથી. જેની લક્ષ્મી જેવી કરોડો દાસીઓ છે. આથી “તમારામાં પ્રાણ મૂક્યા છે” ઇત્યાદિ (પ્રથમ સ્લોકમાં) કહેવું પણ અસંગત થાય છે. તેથી હવે જે પ્રાર્થના છે તે અસંગત જ છે, એમ શંકા કરીને તેનો પરિહાર કરે છે - આ જીવન કાંઈ અમારી કૃતિથી સાધ્ય નથી, કિન્તુ આપની કથા વિરહમાં અમારા પ્રાણના ગમનમાં પ્રતિબંધ કરે છે. જેવું આપનું સામર્થ્ય છે, તેવું કથાનું પણ છે. તે પણ ખડ્ગુણવાળી છે, મોક્ષરૂપી ફલનું દાન કરનારી છે અને પરમાનંદરૂપા છે; તે કહે છે - આપની કથા અમૃતના જેવી છે અમૃત એ ભગવદ્વસાત્મક છે. જે સર્વના મરણાદિની નિવૃત્તિ કરે તે અમૃત કહેવાય છે. આથી કથાનું મોક્ષનું દાન કરવાપણું અને પરમાનંદરૂપતા સિદ્ધ થાય છે. હવે (કથા ભગવદ્વરૂપ હોવાથી ભગવાનની પેઠે) તે પણ ખડ્ગુણ યુક્ત છે, એમ તવકથામૃતમ્<sup>૧</sup> ઇત્યાદિ છ પદ વડે કહે છે. જે સંસારમાં તમ થયેલા હોય છે, તેમનું જીવન કથાથી છે. અમૃત તાપનિવર્તક છે એ સિદ્ધ જ છે. યૈરાગ્ય કે ભગવાનનું જ્ઞાન તાપનિવર્તક હોય. જે સુધારી શકાય તે જ્ઞાનથી નાશ પામે છે, જે સુધારાય પણ નહિ તેનો પરિત્યાગથી નાશ થાય. માટે જ સુધારવામાં અશક્ત એવા સ્માર્તો પરિત્યાગનો જ બોધ કરે છે. આથી જ્ઞાન અને યૈરાગ્ય એ બંને તાપનાશક કહેવાય છે. આપાતતઃ (કોઈક રીતે) તાપનાશક તો જ્ઞાન છે પણ છે તે માટે કહે છે - કવિભીરીકિતં<sup>૨</sup> કવિઓ-સર્વજ શબ્દાર્થ રસિકજનો કે જે જ્ઞાની છે, તેમણે, જ્ઞાન કે યૈરાગ્યરૂપે વખાણ્યું છે. શબ્દાર્થ રસિકો તો સ્ત્રીઓને પણ વખાણે છે, તેથી આપાતતઃ તે ગુણ સ્ત્રીઓમાં પણ હોય, તેની નિવૃત્તિ માટે કલ્મષાપહં<sup>૩</sup> આ વિશેષણ મૂક્યું છે. આપની કથા કલ્મષ<sup>૪</sup> એટલે કે પાપને હણે છે. ધર્મસ્ય પાઠ સ્વીકારવામાં - અલોકિકનું સાધન જે વીર્ય છે તે વીર્ય તે મહાન્ હોવાથી ધર્મરૂપ જ થાય છે. અને જે ધર્મ્ય હોત તે પાપનું નિવારણ કરે જ. પૂર્વે કહેલા ધર્મથી વિશિષ્ટ પણ છે જ. કથા પણ તેવી છે, એ સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ છે. આપાતતઃ પ્રાયશ્ચિતાદિ પણ પાપનિવર્તક છે તેની નિવૃત્તિ માટે શ્રવણમહ્ગલં<sup>૫</sup> આ વિશેષણ છે. તેથી કીર્તિતુલ્ય છે, એ નિરૂપ્યું. તે પ્રાયશ્ચિતાદિ તો ગોમયલેપનાદિ અને ઉપવાસાત્મક હોવાથી સ્વરૂપથી પણ અમંગલ છે. ધોરાત્મા હોવાથી શ્રવણમાં પણ અમંગલ છે. અને આ તો ઉદારચરિત છે. સાંભળવાથી જ આનંદ ઉપજાવે છે એ અનુભવસિદ્ધ છે, તેથી આ શ્રવણ મંગલ છે. પુત્રજન્માદિ પણ

૧. આ પદ યૈરાગ્ય સૂચવે છે. ૨. આ પદમાં જ્ઞાન સૂચન છે. ૩. આ પદમાં વીર્ય છે. ૪. આ પદમાં વીર્યનું વર્ણન છે. ભગવાનના છ ગુણ દૈશ્વર્યસ્ય સમગ્રસ્ય વીર્યસ્ય યશસઃ શ્રિયઃ । જ્ઞાનવૈરાગ્યયોશ્ચૈવ ષણ્ણાં ભગ્ન ઇતીરણા આ સ્લોકમાં વર્ણવ્યા છે. ત્યાં કવચિત્ ધર્મસ્ય એવો પણ પાઠ છે. ૫ આ પદ યશ વાચક છે.

કિંચિત્ સામ્યથી શ્રવણમંગલ છે, એમ શંકા કરી નિવારણ કરવા શ્રીમદ્<sup>૧</sup> વિશેષણ છે. પુત્ર જન્માદિ ધનનો વ્યય કરે છે, નહિ કે ધનનું સાધન છે. કથામૃત તો લક્ષ્મીને પણ અપેક્ષિત જ છે. તેથી યુક્ત જ છે. તેથી શ્રોતા અને વક્તાને શ્રીની સિદ્ધિ થાય છે. રાજ્ય-પ્રાપ્તિનું શ્રવણ પણ તેવું જ હોય, તેની નિવૃત્તિ આત્મતં<sup>૨</sup> પદ મૂક્યું છે. સર્વતઃ વ્યાપ છે. રાજ્યાદિક તો પરિચ્છિન્ન છે. ભગવાનનું એશ્વર્ય તેવું નથી. સર્વને અન્તર અને બહિર્ સર્વથા વ્યાપ છે. વળી કથામૃત તો સર્વ લોકને વ્યાપીને રહે છે, નિજ સામર્થ્ય સર્વત્ર જ સંપન્ન કરે છે. તેથી સ્વરૂપથી અને ધર્મથી આપના જેવી જ આપની કથા છે; તે વડે કરીને અમે જીવીએ છીએ, નહિ કે પોતાની મેળે. આથી ઉત્કર્ષ પણ કહ્યો. આપ કદાચ મારશો પણ ખરા, પણ કથામૃત તો તે વેળા પણ જીવાડશે જ. ભગવાન સ્વતંત્ર છે, પણ કથામૃત પરતંત્ર છે. તેમાં આટલું વિશેષ છે. આપ તો અવતાર અવસ્થામાં બ્રહ્માદિકની પ્રાર્થનાથી પધારો છો. આવીને પણ તિરોહિત થાઓ છો. પણ કથા તો આવ્યા પછી તિરોહિત થતી નથી. માટે જ તે પ્રકારનું કથામૃત પૃથ્વીપર જે પ્રસિદ્ધ વ્યાસાદિક ગાય છે તે જ બહુ દાતાર હોય છે. વ્યાસાદિક ઘણું આપનારા છે અને અજન્મા પણ છે. કેવલ ભગવદ્વરૂપ છે. જનનાદિ દોષથી રહિત છે. પણ અમૃત તો વિરલ છે અને મરણ ઉપસ્થિત હોય ત્યારે જ મરણની નિવૃત્તિ કરનારું છે, નહિ કે કોઈ જગ્યાએ ભેગું થયેલું હોય અને રસ ઉત્પન્ન કરે, રસ<sup>૩</sup> અને પિંડની પેઠે આપમાં અને કથામાં ફેર છે. જો એમ ન હોત તો અમે પણ કથા માટે જ ચત્ન કર્યો હોત. પરંતુ વિરહમાં મરણના નિવર્તકત્વે તેનો ઉપયોગ છે, આથી ભગવત્વે તેનું સ્તવન કરાય છે. તે ભગવત્કથાના કહેનારાઓએ ઘણું આપ્યું, તેથી અમારું જીવન છે. આ સાત્ત્વિકી ગોપીનું વચન છે. ૮

તામસીનું વચન કહે છે-

મૂં પ્રહસિતં પ્રિય પ્રેમવીક્ષિતં વિહરણં ચ તે ધ્યાનમહ્ગલમ્ ।

રહસિ સંવિદો યા હૃદિસ્પૃશઃ કુહક નો મનઃ ક્ષોભયન્તિ હિ ॥૧૦॥

શબ્દાર્થ-હે પ્રિય, આપનું અત્યંત હાસ્ય, પ્રેમથી જોવું. ધ્યાન, મંગલ વિહાર, હૃદયને સ્પર્શ કરતી એકાન્તની સંકેતાત્મક વાણી (આ સર્વ) હે કપટી અમારા મનને ક્ષોભ પમાડે છે. ૧૦

શ્રીસુબોધિનીજી- જો કે કથાવડે સ્થિતિ થઈ શકે છે. પણ જો આપના ધર્મોએ ક્ષોભ ઉત્પન્ન ન કર્યો હોય તો જ. જેમ ભગવાનમાં છ ગુણ છે, તેમ છ વ્યામોહક ગુણો પણ છે જ. જો તે ન હોત તો કથાથી ચરિતાર્થતા થાત. એ

૧. આ પદમાં શ્રી ગુણ છે. ૨. આ પદ એશ્વર્ય સૂચક છે. ૩. કથા રસરૂપ છે અને રસના સમૂહરૂપ છે. મૂર્તિમાન્ રસ છે.

વ્યામોહક ગુણો માટે ભગવાન્ કપટલીલા પણ કરે છે, તેથી સ્વભાવદોષને લીધે ભગવાનમાં તેવી સ્ફૂર્તિ થાય છે. જેમ જવરવાળા માણસને અન્નમાં વિરસતાની પ્રતીતિ સ્વભાવદોષને લીધે થાય છે. તેથી જ કહે છે-આપનું અત્યંત હાસ્યાદિક અમારા મનને શોભ પમાડે છે. સ્વભાવથી જ ખિન્ન થયેલી ગોપીને તરછોડીને અન્યગોપી સાથે સ્થિતિ કરે છે, અને ત્યાંથી જો પાછા આવે તો અત્યંત દાસ્ય કરે છે, તેથી ઘણોજ શોભ ઉત્પન્ન પામે છે. પ્રિય આ સંબોધનથી આપના સંબંધનું સ્મરણ પણ શોભજનક છે, એમ સૂચન કર્યું. અત એવ જેમને આપનો સંબંધ નથી તેમને શોભ પણ થતો નથી. વળી આપનું પ્રેમથી જોવું પણ શોભ ઉત્પન્ન કરે છે. જો તેનું સ્મરણ કરે તો પણ શોભ થાય. આપ બીજાની તરફ પ્રેમથી જુઓ, વિશ્વાસ ઉત્પન્ન કરાવવા માટે જુઓ કે કપટરૂપે જુઓ તે સર્વ જ શોભજનક છે. જો એમ ન હોય તો કાર્યમાં વિસંપાદ (શોભ) ન થાય. આપનું પ્રેમથી જોવું આશાજનક પણ છે. આશાથી શ્રમ પણ થાય જ. વળી આપનો વિહાર પણ શોભજનક છે. વિહાર જે ત્રિભંગરૂપે વેણુનાદાદિવડે થાય છે, તે શોભ ઉત્પન્ન કરે છે. જે ભગવદીય રસ આકારથી બહાર સ્થપાય છે-તેથી વિશેષ હરણ જેથી થાય તેવા લલિત ત્રિભંગાદિસ્વરૂપ શોભજનક છે. તે સ્વરૂપનું અમે પૂર્વે ધ્યાન કર્યું, તે ધ્યાન જ આપના જેવું શુભ ફળ પ્રદાન કરે છે. તે પણ અત્યારે તો શોભજનક છે. કારણ કે તે તિરોહિત છે. બીજું માયાવડે પણ ભગવાન્ કહે છે, તેથી આ શ્લોકમાં મુખ્ય લીલાઓ જ કહી. આ પ્રકારે સ્વરૂપની સાથે સંબંધ ધરાવતા ચારે પદાર્થો શોભજનક છે એમ કહ્યું. હવે નામની સાથે સંબંધ ધરાવનારા બે કહે છે-એકાન્તમાં જ્ઞાનરૂપી જે ભગવાનની વાણી છે. જ્ઞાન જ કે જે શાસ્ત્રજનિત બન્ધાદિનું અભિજ્ઞાન કરાવનાર છે, તે વાણી પણ હૃદયને સ્પર્શ કરનારી હૃદયગામી સંકેતસ્વરૂપ છે. અથવા અમારે યોગ્ય બંધવિષયક વાણી, કેવલ નાયકના જ ગુણ નહિ. (તે પણ શોભ ઉત્પન્ન કરે છે) માટે આ રીતે સુખના હેતુરૂપી વાણીથી પણ આપ અમને દૂર કરો છો ત્યારે શોભ થાય છે. આ અર્થ સર્વના અનુભવથી સિદ્ધ છે એમ “હિ” એ અવ્યય કહે છે.

૧૦.

રાજસીનું વચન કહે છે-

મૂંઠલસિ વદ્વ્રજાઘારયન્ પશૂન્ નલિનસુન્દરં નાથ તે પદમ્ ।

શિલતૃણાઙ્કુરૈઃ સીદતીતિ નઃ કલિલતાં મનઃ કાન્ત ગચ્છતિ ॥૧૧॥

શબ્દાર્થ-હે નાથ, જ્યારે વ્રજમાંથી પશુઓને ચરાવતા ચાલો છો, ત્યારે આપનું કમલ કરતાં પણ સુકોમળ ચરણ, પાષાણ, તૃણ, દર્ભ વગેરેના અંકુરોથી હે કાન્ત,

કલેશ પામે છે, તેથી અમારા મનને ખેદ થાય છે. ૧૧.

**શ્રીસુબોધીની**- આપના વિષયમાં સામાન્ય રીતે પણ સ્નેહને લીધે અમને ખેદ થાય છે, પરંતુ આપને તો અમારા વિષયનું દુઃખ હોવા છતાં પણ ખેદબુદ્ધિ થતી નથી, એમ ન્યાયવિરોધની પેઠે કહે છે-જ્યારે વ્રજમાંથી પશુઓને ચરાવતા ચાલો છો, ત્યારે ચાલવામાં કમળ કરતાંયે વિશેષ સુંદર અને કોમળ, હે નાથ, આપનું ચરણ, માર્ગમાં રહેલા પાષાણ, તૃણ અને દર્ભના અંકુરો કે જે તામસ, સાત્ત્વિક અને રાજસ છે, તે વડે કરીને કલેશ પામે છે. અથવા શિલારૂપી જે તૃણ-કઠિન તૃણ તેના અતિ પુરુષ-તીક્ષ્ણ અંકુરો વડે કલેશ પામે છે. વાસ્તવિક રીતે તો કલેશ થતો જ નથી, તો પણ હે કાન્ત-હે પતિ-મન કલિલતાને-દુઃખને-પામે છે. જ્યારે વ્રજમાંથી પધારો છો- આ પદ પ્રાતઃકાલથી જ દુઃખનું સૂચન કરે છે. ચાલવાથી જ ખેદ થાય છે, માટે પ્રથમ તે જ કહ્યું. વાસ્તવિકરીતે તો આપના ચરણ અમારું સ્થાન મૂકીને ચાલતા જ નથી, તો પણ આપ જ ચલાવો છો. વળી વ્રજમાં રહેલી ગાયોને અરણ્યમાં લઈ જાઓ છો, તેમને ચરાવવામાં સીધે રસ્તે જવાતું નથી. માટે કુમાર્ગે પણ જવાય. પૃથ્વીના અનુગ્રહ માટે પાદુકા પણ ધારણ કરતા નથી, અને પાળવા યોગ્ય પશુનું ચર્મ પણ પહેરવા યોગ્ય હોતું નથી. આથી કમલ કરતાં પણ અધિક સુંદર અને કોમળ ચરણ કલેશ પામે છે. કમળ તો જલમાં રહેવાને યોગ્ય હોય કે જલથી પૂર્ણ સ્થલમાં. કમલથી પણ વિશેષ સુંદર ચરણ હોય તો તે લક્ષ્મીજીના હૃદયમાં, અમારા હૃદયમાં જ રહેવાને યોગ્ય છે. નાથ ? એ સંબોધનથી એમ સૂચવ્યું કે ગોચારણ માટે અન્ય ઘણા પુરુષોને આપ યોગ્ય શકો છો, છતાં આપ પોતે જ પધારો છો. વનમાં ત્રણ પ્રકારની ભૂમિ હોય છે. (૧) પર્યંત રૂપા, (૨) અરણ્ય રૂપા અને (૩) કચ્છ-તીર-રૂપા. તેમાં કમે કરીને એકેક એકેક સ્થળે હોય. અથવા ત્રણે પણ સાથે હોય. અવસીદતિ આ ક્રિયાપદનો અર્થ અવસાદ-ખેદ થાય. અવસાદ એટલે અશક્તિથી એકત્ર સ્થિતિ. જ્યારે ખેદથી એકત્ર સ્થિતિ (અમારી) હોય ત્યારે ચિન્તા થાય. અમારે પોતે જ ત્યાં (વનમાં) જઈને ચરણને હૃદયમાં સ્થાપવું. એમ ચિન્તા થાય. મનઃકાન્ત એમ પણ પદચ્છેદ થાય, ત્યારે આપ મનના કાન્ત-પતિ છો એમ અર્થ થાય. આપનું ચરણ મનમાં સ્થાપ્યું હોય તો પણ સ્થિતિ કરતું નથી. ૧૧.

આ પ્રકારે સાત પ્રકારની અનન્યપૂર્વા ગોપીઓનું નિરૂપણ કર્યું અને ચાર અન્યપૂર્વાનું. હવે અહીંથી જ તે જ (અન્યપૂર્વા) ગોપીઓનું નિરૂપણ થાય છે. તેમાં પ્રથમ રાજસ તામસીનું વચન છે. અન્યપૂર્વાગોપીઓ તો બહાર જઈને પ્રભુને જોવા માટે અસમર્થ હોય. માટે જ્યારે પ્રભુ સાયંકાલે પધારે છે, ત્યારે પ્રભુને જોઈને તેમના

મનમાં કામ ઉત્પન્ન થાય છે. ત્યારે બન્ધની પ્રાર્થના અને અધરામૃતની પ્રાર્થના રજોગુણ અને સત્ત્વગુણથી કરે છે. અનન્યપૂર્વા ગોપીઓને તો નિત્ય જ કામ હોય છે.

મૂ૦ દિનપરીક્ષયે નીકુન્તલૈર્વનરુહાનનં વિમૃદાવૃત્તમ્ ।

ઘનરજસ્વલં દર્શયન્ મુહુર્મનસિ નઃ સ્મરં વીર યચ્છસિ ॥૧૨॥

શબ્દાર્થ-હે વીર, સાચંકાલે, શ્યામ કેશ વડે ઢંકાયલું મુખ કમળ ધારણ કરતાં, અને ગોઘનની રજથી ઘુસરું-વારંવાર દર્શન કરાવતાં અમારા તનમાં કામને ઉત્પન્ન કરો છો. ૧૨.

**શ્રીસુબોધિનીજી**-દિનનો ક્ષય થતાં સાચંકાલે, ક્ષય કહેવાથી નિદાંમ આ ગોપીજનોને દ્વેષ છે એમ સૂચવ્યું. આ સમય રજોગુણનો અને કામનો પણ કાળ છે. નીલકુંતલ (શ્યામકેશ) ભ્રમરની પેઠે રસબોધક છે. જે મુખકમળનું લાવણ્યરૂપી અમૃતનું પાન કરે છે, તે ઉદ્બોધક હોય છે. માટે તે વડે (ઉદ્બોધક કેશ વડે) આવૃત-ઢંકાયલા મુખને ધારણ કરતાં - હે વીર, અમારા મનમાં સ્મર-કામ-ને મૂકો છો (આપો છો.) સાચંકાલે નીલ-શ્યામ-વર્ણવાળા કેશથી આવૃત ઢંકાયલું મુખ હોવાથી તેની પ્રભાથી વ્યાપ્ત થાય છે. તેથી કુપલય-નીલકમળ-ના જેવી કાંતિનો બોધ કરાવે છે. તેથી પ્રિયાજી-શ્રીસ્વામિની કે અન્ય પ્રેયસી મુખચંદ્રને જોઈને ઉત્તરોત્તર અધિક વિકાસ પામે છે; આથી પૂર્વે (પ્રિયાના દર્શન પૂર્વે) તેવું હોતું નથી, એમ પણ જણાવે છે. આથી પ્રિયની (કૃષ્ણાની) સર્વ ગોપીજનમાં આસક્તિ છે, એમ પણ સૂચન કર્યું. વનરુહાનનં આ પદમાં જલપદ છોડીને જલ અને વન એ ઉભય અર્થનો બોધ કરાવનાર વન પદ મૂક્યું. તેથી વનમાં જે અવસ્થા હતી તે અવસ્થાને ધારણ કરતું મુખ દેખાડો છો, (એમ પણ ઘવનિ નિકળે છે.) ઘન એટલે ગોઘન તે વડે રજસ્વલ ઘુસરું થઈ ગયેલું મુખ છે, તે મુખને વારંવાર દેખાડતા મધ્યમાં માર્ગમાં પધારતા-ઉભય (બંને બાજુથી) ગોપીઓને જુએ છે. આથી જ વારંવાર દેખાડો છો એમ કહ્યું. આગળ ચાલતાં પુનઃ પુનઃ વળીને જુઓ છો. એ પ્રકારે જોવું એ અમારી આપને અપેક્ષા છે, એમ સૂચવે છે, તેથી અમારા મનમાં કામ ઉત્પન્ન થાય છે. જો નિરંતર દર્શન હોય તો તેમાં જ રસનો આસ્વાદ હોવાથી કામને ઉત્પન્ન થવાનો અવસર ન આવે. માટે વારંવાર દેખાડવું એ કામામ્નિનું સંઘુસણ પ્રદીપ્ત કરવા જેવું થાય છે. તેમ કરીને તેની પૂર્તિ માટે કે તેના નિરાકરણ માટે યુદ્ધ અવશ્ય જ કરવું જોઈએ. તેનું સૂચન વીર એ સંબોધનથી કરે છે. ઘનથી ઘુસરું થયેલું હોવાથી એ મુખકમળ અમિત છે એમ પણ સૂચન કરે છે. એ અમની નિવૃત્તિ તો અમારા વડે જ થાય. આ તો વનમાં સર્વથા ભોગ્ય છે. આથી જ અમે

અહીં (વનમાં) આવ્યા છીએ. આથી તમે ઘેર જાઓ ઘેર રતિનું દાન કરીશ એ પક્ષની પણ નિવૃત્તિ કરી. ધારણ કરતું (વિમ્મત) એ વિશેષણ બળાત્કારે તમોગુણની અવસ્થાનું સ્થાપન કરે છે. જો પ્રભુ પાછા પધારતાં શ્રીયમુનાજીમાં મુખ ઘોઈ પધારે તો પ્રસન્ન મુખના દર્શનથી જ્ઞાન પણ થાય. ઘન સંબંધિ રજ કહેવાથી રજોગુણનો કામ જ છે. ક્રોધ નથી. જેમ પાત્ર ધરીને તેમાં રહેલું અન્ન ભોગ માટે અપાય છે, તેમ મુખ ધરીને તેમાંનો રસ કે જે કામાત્મા છે, તેનું મનમાં સ્થાપન થાય છે. એટલા માટે મુખનું ધારણ એ કામની ઉત્પત્તિમાં હેતુકારણ-રૂપે છે. માટે ભોગ માટે રસ આપ્યો છે, તો ભોગ કરવો. આ કામ આગંતુક છે, માટે એની પૂર્તિ અન્યથી થઈ શકે નહિ. ૧૨.

તેથી ઉત્તમા, અનન્ય ગોપીજનની પેઠે સ્તન ઉપર ચરણ ધારણ કરવાની પ્રાર્થના કરે છે:-

મૂ૦ પ્રણતકામદં પદ્મજાર્દિતં ધરણિમણ્ડનં ધ્યેયમાપદિ ।

ચરણપદ્મજં શન્તમં ચ તે રમણ નઃ સ્તનેષ્વર્પયાધિહન્ ॥૧૩॥

શબ્દાર્થ-હે રમણ, હે આર્તિ કરનાર, પ્રકર્ષે કરીને નમ્ર થયેલા (અનન્ય શરણાગત) ના મનોરથ પૂરનારું, બ્રહ્માજીએ જેનું પૂજન કર્યું છે એવું, પૃથ્વીના અલંકારરૂપ, આપત્તિમાં ધ્યાન કરવા યોગ્ય, કલ્યાણરૂપી, આપનું ચરણકમલ અમારા સ્તન ઉપર ધરો. ૧૩.

**શ્રીસુબોધિનીજી**-આ ગોપીજન અન્યપૂર્વા હોવાથી આ સ્લોકમાં પુનરુક્તિ નથી. પરંતુ પ્રથમની અપેક્ષાએ ચરણનું માહાત્મ્ય વિશેષ છે. આ તો ગુણનું સ્થાપન કરનાર છે. અને પ્રથમની પ્રાર્થના દોષની નિવૃત્તિ કરનાર છે. હે રમણ, હે રતિકર્તા, અમારા સ્તન ઉપર ચરણકમલ ધરો. તેનું પ્રયોજન કહે છે-આધિ એટલે માનસીવ્યથાને હણે છે. અહીં આર્તિહન્ એવો પણ પાઠ છે. ત્યાં આર્તિને હણે છે, એમ અર્થ કરવો. હૃદયનો તાપ કે જે ચિન્તારૂપી છે તેનું નિવારણ કરો. દવઉપકારવડે જ તાપ જશે. અમે હૃદયમાં ચરણને સ્થાપ્યું છે, તે બહાર નહિ આવી શકે, માટે આપે તેનું બહાર સ્થાપન કરવું, ચરણકમલમાં પણ ભગવાનના છ ગુણ છે તે કહે છે:- તેમાં પ્રથમ એશ્વર્ય છે. તે પ્રણતકામદં એ પદથી સૂચિત થાય છે. પ્રકર્ષે કરીને જે નત એટલે નમ્ર થયેલા છે, અનન્ય શરણાગત છે, તેમના કામ એટલે અભિલાષ-મનોરથ-ને આપનારું છે. એવો તો ઈશ્વર જ હોય. પ્રભુમાં રહેલો કામ સ્તબ્ધથી ગ્રહણ કરી શકાય નહિ માટે પ્રણત-નમેલા એમ કહ્યું છે. પદ્મમાંથી પ્રકટ થયેલા બ્રહ્માજી છે, તેમણે એ ચરણનું અર્ચન કર્યું છે. આથી ધર્મ

કે વીર્ય નામના ઐશ્વર્યનું નિરૂપણ કર્યું. બ્રહ્માજીની પ્રાર્થનાથી જ આપ અહીં પધાર્યા છો. પૃથ્વીના અલંકારરૂપ આપનું ચરણ છે. આથી કીર્તિ (ચશ) નામના ઐશ્વર્યનું નિરૂપણ કર્યું. અલંકારરૂપ કહેવાથી શ્રીગુણ પણ આવે જ. આપતિમાં ધ્યાન કરવા યોગ્ય હોવાથી શ્રીરૂપી-કે કીર્તિરૂપી ગુણનો બોધ કરાવ્યો. કમળની સમાન હોવાથી સ્વરૂપનો પણ ઉત્કર્ષ સૂચવ્યો. કલ્યાણરૂપ છે, તેથી તે જ્ઞાનગુણયુક્ત છે. આર્તિહન એ સંબોધનથી અને આપનું ચરણપટ્ટકજ આ સંબંધના નિરૂપણથી યેરાગ્ય ગુણથી યુક્ત છે એમ સૂચન કર્યું. રમણ કહેવાથી ઈષ્ટની પ્રાપ્તિ કરાવનાર આપ છો એમ કહ્યું. આર્તિહન કહેવાથી અનિષ્ટની નિવૃત્તિ કરાવો છો. અથવા જે લોકમાં પાંચ પ્રકારે ઉપકાર કરે તે અમારે વિષે એક જ ઉપકાર કરો, એમ પ્રાર્થના કરે છે. પ્રણામ નમ્ર થયેલી ગોપિકાઓને કામનું દાન કરે છે. “હે વીર અમારા મનમાં કામ મૂકે છે.” એ પાછલી પ્રાર્થનામાં કહ્યું અથવા પ્રકર્ષે કરીને નમ્ર થયેલામાં રહેલા કામનું ખાણ કરે છે. પદ્મજાર્ચિતં અહીં બ્રહ્માજીએ કે લક્ષ્મીજીએ પૂજેલું એવો પણ અર્થ કરી શકાય. ઐશ્વર્ય માટે કે કામ માટે તેમણે પૂજેલું છે. અથવા તેમના જેવું છે. જો તેમ ન હોય તો તેમનો ચરણકમલ જન્મ જ કેમ થાય ? ઘરણી-પૃથ્વી-પણ સ્ત્રી છે, તેથી તે જો અલંકારયુક્ત ન હોય તો કેમ ભોગવાય ? માટે તે ઉપર ચરણ સ્થાપન કર્યું. ભગવાનની અપેક્ષા એ પણ ચરણ મહાન છે. આપતિમાં ધ્યાન માત્રથી જ આપતિને દૂર કરે છે. જેમ આપનું ચરણકમલ આ સર્વને ઉપકાર કરનાર છે. તેમ અમારો પણ ઉપકાર કરે, એમ પ્રાર્થના છે. આથી સર્વ જ સુરતબંધનો આક્ષેપ કર્યો. ૧૩.

તે પછી તેથી ઉત્તમા પ્રાર્થના કરે છે:-

મૂં સુરતવર્ધનં શોકનાશનં સ્વરિતવેણુના સુહુ ચુચ્ચિતમ્ ।

इतररागविस्मरणं तृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥

શબ્દાર્થ-હે વીર, સુરતની વૃદ્ધિ કરનાર, શોકનો નાશ કરનાર સ્વરિતવેણુથી ચુંબિત મનુષ્યોના ઈતરરાગની વિસ્મૃતિ કરાવનાર આપનું અધરામૃત અમને (અધિકારીઓ કે અનધિકારીઓને) દાન કરો. ૧૪.

**શ્રીસુબોધિનીજી**-અધરામૃતનું દાન કરો. અહીં પણ અધરામૃત ગુણનું સ્થાપન કરનાર છે. આના ચાર જ ગુણો વિવક્ષિત છે. અહીં જ્ઞાન અને યેરાગ્યનો ઉપયોગ નથી. તેનું ઐશ્વર્ય કહે છે- સુરતવર્ધનં ગોપિકાઓમાં પરિચ્છિન્ન કામ અપરિચ્છિન્ન પ્રભુની સાથે જોડાય તો ક્લિષ્ઠ થાય. જેમ અન્ય રસ સુધાનું ઉદ્બોધન કરનાર હોય છે, તેમ આ રસ (અધરરસ) કામનો ઉદ્બોધ કરે છે. વળી આ અધરરસ કાંઈ એકલા કામને જ

પોષતો નથી, કિન્તુ સર્વ જ અન્તઃકરણના દોષનું પણ નિવારણ કરે છે. માટે તે શોકનો નાશ કરનાર અને જ્ઞાનયેરાગ્યથી મુક્ત છે, એમ પણ નિરૂપણ કર્યું. અને તે ઐશ્વર્યધર્મથી મુક્ત છે, એમ પણ નિરૂપ્યું. હવે તે ચશોરૂપી છે એમ કહે છે-સ્વરિત જે નાદયુક્ત વેણુ, તે પડે સુંદર પ્રકારે ચુંબન કરાયેલું આપનું અધરામૃત છે. ચશ તો નાદને જાણનાર હોય તે જ ગાન કરે. વેણુ\* પણ પરમભક્ત છે. તેણે માત્ર અધરનું ચુંબન જ કર્યું, પાન કર્યું નહિ. ઇતરરાગવિસ્મરણ આ પદ શ્રીરૂપ છે. શ્રી તો સર્વને વિસ્મરણ કરાવે-ભુલાવે. આથી અધર સ્વતઃ પુરુષાર્થરૂપ છે એમ પ્રમેયબલ પણ સૂચન કર્યું. પ્રથમ વિશેષણથી પ્રમાણબલ કહ્યું. શોકનાશનં આ પદ ફલબલનું કથન કરે છે. સુરતવર્ધનમ્ આ પદ સાધનબલ સૂચવે છે. એમ ચારે પ્રકારના પુરુષાર્થનું દાન કરનાર સ્વતઃ પુરુષાર્થપ્રદ અધર છે. મનુષ્યોને-એટલે અમને અધિકારીઓને અથવા દુર્લભ પુરુષાર્થવાળાઓને. જો કે આ અધરસુધા આપવા લાયક તો નથી જ તો પણ આપમાં વિતરણ-દાન આપવાનો -ગુણ હોવાથી આપી શકાય. વીર આ સંબોધનથી દાન વિના શૂરપણું સંભવતું નથી એમ કહ્યું. ૧૪.

એમ ત્રિવિધ ગોપીઓનું નિરૂપણ કરીને પુનઃ તામસી ત્રિવિધ ગોપીઓનું નિરૂપણ કરે છે. દેવની નિન્દા કરનારી સાત્ત્વિક તામસી ગોપીઓ છે, ભગવાનની નિન્દા કરનારી તામસ તામસી ગોપી છે. અને પોતાની જ નિન્દા કરનારી રાજસ તામસી છે.

મૂં અટતિ યદ્વાનન્હિકાનનં ત્રુટિર્યુગાયતે ત્વામપશ્યતામ્ ।

कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥

શબ્દાર્થ-દિવસે જે આપ વનમાં પધારો છો, ત્યારે આપનું દર્શન ન થતાં અમને ક્ષણ પણ યુગ સમાન ભાસે છે. ધુંધરવાળા કેશવાળું આપનું શ્રીમુખ નિરખતાં અમને નેત્રોની પાંપણો કરનારા બ્રહ્મા જ જડ જેવા લાગે છે. ૧૫.

**શ્રીસુબોધિનીજી**-આપ દિવસે જ્યારે વનમાં ફરો છો, ત્યારે દિવસની ત્રુટિ યુગસમાન ભાસે છે. તેમાં નિમિત્ત આપનું દર્શન થયું એ છે. અને જ્યારે જોઈએ છીએ ત્યારે ધુંધરવાળા કેશવાળું આપનું શ્રીમુખ જોતાં અમારા નેત્રને પાંપણો ઘડનાર બ્રહ્માજી જડ જેવા લાગે છે. દેવતાઓ અલૌકિક જોનારા હોય છે, તેમને જેમ બ્રહ્માજી પાંપણો ઘડતા નથી, તો દેવતાઓની અપેક્ષાએ પણ વિશિષ્ઠ અલૌકિક જોનારા અમે હોવાથી અમને પાંપણો ઘડી છે, તે અનુચિત છે. અનુચિત કરવાથી તે જડ છે. જેમ

\* વેણુ વંશરૂપી છે. વંશો હિ ભગવાન્ રુદ્રઃ એમ શ્રુતિ કહે છે. તેથી વંશ રુદ્રનું સ્વરૂપ હોવાથી અને રુદ્ર પોતે પરમ ભક્ત હોવાથી વેણુ પણ પરમ ભક્ત છે.

દેવો ઘણા સમય સુધી જીવે છે, તેમ અમે પણ ઘણા વખત સુધી જીવનારા છીએ. જો ગમન સાર્થક હોય, તો કાંઈપણ ચિંતા ન થાય. પણ દિવસમાં તો વનમાં જ આપ ફરો છો, વનમાં તો કોઈપણ પ્રકારનો પુરુષાર્થ હોતો નથી. અને અમારાથી તો બહાર પણ નિકળાતું નથી. આ રીતે આપે અમારે વિષે દેવત્વપણું તો સમ્પાદન કર્યું; પણ બ્રહ્મા મૂર્ખ છે, કે જેણે આવી યોગ્યતાવાળા અમારા નેત્રને પાંખો ઘડી. ૧૫.

એમની અપેક્ષાએ પણ દીન ગોપીઓ કહે છે-

મૂં પતિસુતાન્વયભ્રાતૃબાન્ધવાનતિવિલઙ્ઘ્યા તેઽન્યચ્યુતાગતાઃ ।

ગતિવિદસ્તવોક્ત્રીતમોહિતાઃ કિતવ યોષિતઃ કસ્તજેન્નિશિ ॥૧૬॥

શબ્દાર્થ-પતિ, સુત, વંશ, ભાઈ, બાન્ધવોને ઓળંગીને હે અચ્યુત, આપની પાસે અમે આવ્યા છીએ. આપ સર્વની ગતિને જાણો છો. આપના ગીતથી મોહિત થયેલી સ્ત્રીઓને હે કિતવ, (ધૂર્ત) આપના વિના રાત્રિમાં કોણ ત્યજે ? ૧૬.

**શ્રીસુબોધિનીજી**-હે અચ્યુત, સ્વતઃ કામનિવૃત્તિના ભયથી રહિત; પતિ, પુત્રો, વંશ, ભાઈઓ અને સંબંધિઓ કે જેઓ સર્વથા અનુકૂળનીય છે (જેમની મર્યાદાને ઓળંગી શકાય નહિ) તેમનું પણ ઉદ્ધંધન કરીને આપની પાસે અમે આવ્યા છીએ. આપ સર્વની રીતિને જાણો છો તેથી આપને ગતિવિદ્ કહે છે. સર્વ જેટલી ગતિનું સમ્પાદન કરે છે, તેટલી ગતિ આપ જ આપો છો. અથવા અમે ગતિને જાણનારા છીએ. તેમના ભજનમાં અને ભગવાનના ભજનમાં રહેલું તારતમ્ય જાણીએ છીએ. પણ અમે તો આપના ગીતથી મોહિત થયેલા છીએ. મોહ પમાડીને બોલાવીને ઉભયનો (લોકિક અને અલોકિકનો) ભંશ કરવા માટે રાત્રિમાં અરણ્યમાં સ્ત્રીઓને કોણ ત્યજે ? સ્ત્રીઓ તો સર્વદા અત્યાજ્ય છે. તેમાં પણ અરણ્યમાં તો નહિજ. અને તેમાં પણ રાત્રિને સમયે. જે માટે અમને બોલાવ્યા છે, તે પણ ન આપીને ત્યજો છો એ અભિપ્રાયથી કિતવ (ધૂર્ત) આ સમ્બોધન મૂક્યું છે. કિતવોની સાથે અમારો સંબંધ છે, માટે અમારો તેમને વિષે પ્રવેશ નથી. ૧૬.

તેમનાથી પણ જે ઉત્તમ છે તે પોતાની જ નિન્દા કરે છે :-

મૂં રહસિ સંવિદં હૃદયોદયં પ્રહસિતાનનં પ્રેમવીક્ષણમ્ ।

બૃહદુરઃ શ્રિયો વીક્ષ્ય ધામ તે મુહુરતિસ્પૃહં મુહ્યતે મનઃ ॥૧૭॥

શબ્દાર્થ-એકાંતમાં સંવિદ્ (જ્ઞાનયુક્ત વાર્તાલાપ) કામોદ્દીપક હાસ્યયુક્ત શ્રીમુખ, પ્રેમપૂર્વક કટાક્ષ, લક્ષ્મીજીના ધામરૂપ આપનું વિશાળ વક્ષઃસ્થલ એ સર્વનું વિશેષ દર્શન કરીને અતિશય સ્પૃહાવાળું અમારું મન વારંવાર મોહ પામે છે (મૂર્છિત થાય છે.) ૧૭.

શ્રીસુબોધિનીજી-અમારું મન અત્યંત સ્પૃહાવાળું થઈને મોહ પામે છે.

(મૂર્છિત થાય છે.) તેમાં ત્રણ \* ગુણ સાથે ત્રણ કારણ છે.

વાક્ય, હાસ્ય અને વક્ષઃસ્થલ (એ ત્રણે) કામાનન્દના અધિકારી છે.

એકાંતમાં જે સંવિદ્=સંકેત કે જ્ઞાન, પૂર્વવત્ કામનો ઉદય જેથી થાય તેવું દાસયુક્ત શ્રીમુખ, પ્રેમપૂર્વક જોવું અને લક્ષ્મીજીના ધામરૂપ વિશાળ વક્ષઃસ્થલ, (આ સર્વ અમારા મનને મોહ પમાડે છે-મૂર્છિત કરે છે.) આ સ્લોકમાં ભગવદ્રૂપને પણ ષડ્ગુણયુક્ત કહ્યું છે જેથી એકાંતમાં સંવિત થાય, એવા આપને; કામનો ઉદય જેથી થાય એવા, હાસ્યયુક્ત છે મુખ જેનું એવા પ્રેમપૂર્વક વીક્ષણ-જોવું છે જેનું એવા, (આપને) અને લક્ષ્મીજીના નિવાસરૂપ વિશાળ વક્ષઃસ્થલને જોઈને (અમારું મન મૂર્છિત થાય છે.) આથી ભગવદ્રૂપમાં પ્રમાણાદિ બલરૂપતા છે, એમ નિરૂપ્યું. વક્ષઃસ્થલમાં પોતાની સ્થિતિ થાય તે માટે યશ અને શ્રીનું નિરૂપણ કર્યું. મુખ દર્શનથી હાસ્ય યુક્તત્વ હોવાથી પૂર્વસ્થિતિનો અભાવ પણ છે. તેથી કામ છે. પ્રેમપૂર્વક જુએ છે તેથી કામ સ્થિર થાય છે. તે પછી પોતાની યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે. તે પછી ભોગ્યાતુર્ય પણ પ્રથમ વિશેષણથી જ કહ્યું. એ સર્વ સિદ્ધ થશે, એમ જાણીને અમારું મન મોહ પામે છે. કેવળ મોહ જ થાય છે, કારણ કે પદાર્થની પ્રાપ્તિ થઈ નથી ? વારંવાર મૂર્છા આવે છે તેથી જીવનને અને મરણના મધ્યની સ્થિતિ હોવાથી (જીવ પણ નથી અને મરણ પણ નથી, તેથી) અમારા જીવનને ઘિક્કાર છે. ૧૭.

અત્યાર સુધી મનોરથમાં આત્માનેવિષ્ટ થયેલા અન્યપૂર્વા ગોપીજન ફરીથી કાંઈક પ્રાર્થના કરે છે:-

મૂં વ્રજવનૌકસાં વ્યક્તિરઙ્ગ તે વૃજિનહન્ત્યલં વિશ્વમઙ્ગલમ્ ।

ત્યજ મનાક્ ચ નસ્ત્વત્સ્પૃહાત્મનાં સ્વજનહૃદ્વ્રજા યત્રિષૂદનમ્ ॥૧૮॥

શબ્દાર્થ-હે અંગ, આપની આ વ્યક્તિ પ્રજવાસીઓના પાપનો નાશ કરનારી છે, વિશ્વને મંગલરૂપ છે, નિજજનો (ગોપીજનો) ના હૃદયરોગનો જેથી નાશ થાય છે અને આપમાં સ્પૃહાવાળા અમારે વિષે, (તેને) સહજ પણ ઘરો. ૧૮.

**શ્રીસુબોધિનીજી**- આ આપની વ્યક્તિ પ્રજવાસીઓના પાપનો નાશ કરનારી છે. વિશ્વને માટે પણ મંગલરૂપ છે. વિશેષ કરીને અમારા જ દોષને નિવૃત્ત કરનારી છે. સર્વને ગુણાધાયક છે. માટે આ પ્રકારનું સ્વરૂપ જરા (સહજ) અમારે વિષે મૂકો (ઘરો.) એમ અવશ્ય મૂકવામાં હેતુ એ કે - અમે આપને વિષે જ સ્પૃહાવાળા છીએ. (અમારો આત્મા (અંતઃકરણ) આપને વિષે જ સ્પૃહાયુક્ત છે) શું મૂકવાનું છે ? આ શંકાનો જવાબ આપતાં કહે છે કે સ્વજન ગીપોજનોના હૃદયરોગ-કામરૂપી રોગ જે છે,

\*મધુરત્વ, વત્સુવાક્યત્વ અને બુદ્ધ મનોજ્ઞત્વ (મધુરચાગિરા આ સ્લોકમાં કહેલા) એ ત્રણ ગુણ છે.



તેનો નાશ આપના સ્વરૂપને પધરાવવાથી જ થાય. એ સ્વરૂપ કોઈકના પાપનો નાશ કરે છે. કોઈકને ફલદાન કરે છે. તેમ અમારા કામરૂપી હૃદયરોગનો નાશ કરે. ૧૮.

કોઈ રાજસ તામસી સખેદ કહે છે :-

મૂળ યત્તે સુજાતચરણામ્બુરુહં સ્તનેષુ ભીતાઃ શનૈઃ પ્રિય દધીમહિ કર્કશેષુ ।  
તેનાટવીમટસિ તદ્ વ્યથતે ન

કિંસ્વિત્કૂર્પાદિભિર્મમતિ ધીર્ભવદાયુષાં નઃ ॥૧૧॥

શબ્દાર્થ - હે પ્રિય, આપનું સુજાત ચરણકમલ, જે અમે ભયથી કર્કશ સ્તન ઉપર ધીમેથી ઘરીએ છીએ, આપ જ જેનું આયુષ્ય છે એવા અમારી બુદ્ધિમાં ભ્રમ પડે છે કે, આપ વનમાં પધારો છો તેથી કાંકરા વગેરેથી આપના ચરણકમલને કેટલો પરિશ્રમ પડતો હશે ? ૧૯.

**શ્રીસુબોધિની** - સુજાત-સુંદર રીતે પ્રકટ થયેલા જે ચરણકમલને અમે ભયથી (કે રખેને આપને પરિશ્રમ પડે) સ્તન ઉપર ધીમેથી ધરતા હતા. ધીમેથી ધારણ કરવાનું કારણ એ કે અમારા સ્તન કર્કશ છે. પ્રિય, સંબોધનથી સ્નેહયુક્ત થઈને ધારણ કરવાનું સૂચવ્યું. સુજાત કહેવાનું કારણ એ કે જેમ મોટું સુંદર રીતે ઉત્પન્ન થયેલું કમલ શીતલ, સુગંધી અને તાપનાશક હોય છે, તેમ આપનું ચરણકમલ પણ છે. માટે જ ધીમેથી સ્થાપન કર્યું. પ્રિય હોવાથી ઘૃષ્ટતાથી સ્થાપન છે. તે અતિ કોમલ ચરણ વડે અમને છોડીને અમારા જ દોષથી અત્યારે વનમાં ફરો છો. પોતે સુખથી રહીને અન્યને દુઃખ દઈ શકાય, તો દેવું; નહિ કે પોતે પણ પામીને અન્યને દુઃખી કરવા તેથી અને સંદેહ થાય છે કે આપના ચરણકમલે દુઃખ થાય છે કે નહિ. શું ચરણકમલને દુઃખ થતું નથી ? થાય છે જ. કાંકરા વગેરેથી તો દુઃખ થાય જ. કૂર્પ શબ્દથી વિષમ કાંકરા કહેવાય છે. તેથી તો દુઃખ થાય છે જ. અમારી બુદ્ધિને ભ્રમ થાય છે કે દુઃખ થતું નહિ હોય. જો દુઃખ થાય છે, એમ નિશ્ચય થાય તો બુદ્ધિ પણ શાંત જ થાય. આપ પાછા આવો છો ત્યારે સંદેહ થાય છે. અમારું તો આયુષ્ય જ આપ છે. ભગવદ્દીલા માટે જ જેમનું (ગોપીજનોનું) આયુષ્ય છે. પ્રથમ ખેદથી મનની પીડા કહી, પણ અત્યારે તો મૂર્છા છે, એમ નિરૂપ્યું તેથી આ અન્તસ્થિતિ છે. આ પ્રકારે સર્વ ગોપીજનોને મૂર્છા થઈ એમ જાણવું. પુનઃલીલામાં પ્રવેશ થતાં પ્રલાપ, પુનઃસ્વરૂપમાં સ્થિતિ થતાં ગાન છે. એમ સાધન અને પરીક્ષા જ્યાં સુધી થાય, ત્યાં સુધી તાપનું નિરૂપણ કર્યું.

એમ ગોપીગીતના શ્રીસુબોધિનીનો અઝાવીશમો અધ્યાય પૂર્ણ થયો.



## શ્રીમદ્ વિઠ્ઠલેશ્વર દીક્ષિત શ્રીગુસાંઈજી

લેખક : શ્રી હરિશંકર શાસ્ત્રી, મી.શા.વે.વિ. M.R.A.S.

### પ્રાદુર્ભાવ

શ્રીમદ્બાલપાષાણમતખણનતત્પરાત્મા ભગવદ્દનયેશ્વરનારાયણતાર જગદ્ગુરુ શ્રીવદ્ભાચાર્યવર્યના દ્વિતીય કુમાર શ્રીમદ્વિઠ્ઠલાવતાર શ્રીવિઠ્ઠલાવતારનો પ્રાદુર્ભાવ વિક્રમ સંવત ૧૫૭૨ ના માર્ગશીર્ષ કૃષ્ણ + નવમી શુક્રવારે ૨૧ ઘડી અને ૨૫ પલ સમયે ચરણાદિ (ચુનારગઢ કે ચરણાટ) માં થયો હતો. જે સમયે આ અલૌકિક તેજઃસંપન્ન બાલકનો પ્રાદુર્ભાવ થયો તે સમયે ગ્રહોની સ્થિતિ આ કુણ્ડલીમાં જણાવ્યા મુજબ હતી.

જન્મ કુંડલી

ગુ. ૩	૧
રા. ૪	૧૨
૨	૧૧
૫	૮
ચં. ૬	૧૦ કે.
૭	૯ બુ. ૨.
૮	૧૧
૯	૧૨

આ અલૌકિક બાલકના પ્રાદુર્ભાવના સંબંધમાં નીચેની વાર્તા પ્રસિદ્ધ છે.

### શ્રીવિઠ્ઠલાવતાર

શ્રીમદ્ વદ્ભાચાર્યજીના પિતા લક્ષ્મણ ભટ્ટજીનું સંવત ૧૫૪૬ માં કાશીમાં જ દેહાવસાન થયું, તે સમયે આપશ્રીનું વય ૧૧ વર્ષનું હતું. પિતાના અવસાન પછી થોડા જ સમયમાં આચાર્યચરણે માતાની સાથે દક્ષિણ યાત્રા કરી. માતાને + પોર્ણમાસાંત માસ પ્રમાણે પૌષકૃષ્ણ નવમી :- વર્ષ નેત્રાશ્વમૂત દ્વિજપતિગણિતે પૌષકૃષ્ણ નવમ્યાં હસ્તર્કે તૈતિલેઽહન્યધિકૃત મૃગુજે શોભને ગોવિલગ્ને । સ્નધસ્થેઽર્કે સઘાન્દે (કવિકૂજધનિષુ) દ્યુનગે સ્વાત્મજસ્થે સોમે જીવે ધનસ્થે નભસિ સહજગે વિઠ્ઠલઃ પ્રાદુરાસીત્ (વૃ. સ્તો. સ. સ.)

દક્ષિણમાં મૂકીને પૃથ્વીપરિક્રમા પૂર્ણ કરવા આગળ વધ્યા, ત્યારે માર્ગમાં પંઢરપુર આવતું હોવાથી શ્રીવિક્કલનાથજીના દર્શનાર્થે આપત્રી પધાર્યા. અને ત્યાં ભીમરથીના કાંઠા ઉપર એક સ્થાનમાં ભાગવતનું પાઠાચણ પણ કર્યું. આ સ્થલે આચાર્યચરણને ભગવદાજ્ઞા થઈ કે આપ બ્રહ્મચર્યાવસ્થાનો ત્યાગ કરીને ગૃહસ્થાશ્રમમાં પ્રવેશ કરો. આપને ઘેર ભગવદવતાર થશે. આ આજ્ઞા શ્રવણ કરીને આપત્રી આગળ વધ્યા. પ્રજ્યાત્રા કરીને કાશી પધાર્યા અને ગૃહસ્થાશ્રમમાં પ્રવેશ કર્યો.

કેટલાકો એમ પણ કહે છે કે દ્વિતીયયાત્રા કરી તે સમયે કૃષ્ણદેવ રાજાની સભામાં માયા મતમાતઙ્ગને એ વેદાન્તકલ્પદીપ શ્રીવલ્લભપ્રભુએ વિદ્યાર્થો અને મહાપ્રભુ કહેવાયા. ત્યારબાદ જ્યારે પંઢરપુર પધાર્યા ત્યારે ભગવદાજ્ઞા થઈ. ઉભય મતમાં પણ ભગવદાજ્ઞા થઈ એ નક્કી છે. કોઈપણ અવતાર, આચાર્ય કે ચમત્કારી પુરુષના સંબંધમાં પૂર્વાપરથી જે વાર્તા ઉતરી આવતી હોય તે જ વાર્તા વિશ્વસનીય મનાય છે અને શિષ્ટ લેખકો તથા વિચારકો એજ પ્રણાલિકાને અનુસરે છે. તેમ જ પ્રત્યેક સંપ્રદાયના અનુયાયીઓ પણ એમ જ માન્યતા ધરાવે છે.

### પૌરાણિક કથા

આધુનિક ઇતિહાસકારો આ રીતે પરમ્પરાથી ઉતરી આવેલી વાર્તાઓને જ અનુસરીને નિશ્ચય બાંધે છે. તેમ શ્રદ્ધાળુઓ પૌરાણિક કથાઓને પ્રમાણ માનીને આધુનિક બુદ્ધ, ઋષભદેવ, શંકર, રામાનુજ, મધ્વ, નિમ્બાર્ક, ચૈતન્ય ઇત્યાદિ આચાર્યો તેમ કણભુજ, અક્ષપાદ, વ્યાસ, કપિલ વિગેરેના સંબંધમાં શ્રદ્ધા ધરાવે છે. ઉભય માન્યતાઓ ચતુર્થ છે. શંકરાચાર્યનું શંકરાવતારત્વ, બુદ્ધનું ભગવદવતારત્વ આદિના વિષયમાં કિંવદન્તીઓ અને “અમુકસમયે અમુક કારણસર ભગવદવતાર અમુક રૂપ થશે” એવા પૌરાણિક વાક્યોનો જ આધાર લેવો પડે છે. પુરાણોમાં જે અવતારનું જે કાર્ય હોય તે પણ જણાવેલું જ હોય છે. જેમ બુદ્ધનો અવતાર આસુરી જીવોને મોહ પમાડીને વેદમાર્ગને દૂષિત કરવા માટે જ થયો હતો. તેથી બુદ્ધ ભગવાન પૂજ્ય હોવા છતાં નાસ્તિકમત પ્રચારક છે એમ સ્વીકારવું જ પડે છે. દેવગુરુ બૃહસ્પતિ પણ પૂજ્ય છે. તેમ છતાં તત્પ્રચારિત બૃહસ્પતિ દર્શન કે ચાર્વાક મતદેવોને મોહ પમાડવા પૂરતો જ હતો. તથાપિ તે નાસ્તિક મત છે. તેમજ પદ્મપુરાણાદિના વાક્યોથી શંકરાચાર્યજી સાક્ષાત્ શ્રીશંકરનો જ અવતાર છે. યદ્યપિ શંકરાચાર્યજીનો જન્મ પાશ્ચાત્ય ઇતિહાસકારોના મત મુજબ આઠમી સદી અને પોર્વાત્યોના મત મુજબ ઇ.સ. પૂર્વે થયેલો છે. અને પુરાણો તેથી પ્રાચીન છે, એમ આપણે આસ્તિકો માનીએ છીએ. તથાપિ પુરાણોમાં વસ્તુ સત્ય છે એમ માનનારે પ્રત્યેક આસ્તિક કલિમાં શંકરનો

અવતાર થશે અને તે બોદ્ધમતનું ખણ્ડન કરશે એવા વાક્યોને પણ પ્રમાણ માનવા જ નોંધવું. શંકરાવતાર શંકરાચાર્યનું અવતાર કાર્ય માયાવાદનો પ્રચાર છે. તેમ શ્રીમહાપ્રભુજી અને વિક્કલનાથજીનો અવતાર પણ કમશઃ યૈશ્વાનર અને શ્રીવિક્કલના છે, અને આ અવતારોનું કાર્ય માયાવાદનું ખણ્ડન કરીને દેવી સૃષ્ટિનો ઉદ્ધાર કરવો એ જ છે, એમ સ્વીકાર્યા વિના ચાલી શકે તેમ નથી. શ્રીમદ્વિક્કલનાથજીના વિષયમાં પૌરાણિક વાક્યો બ્રહ્માણ્ડ પુરાણના પ્રશ્ન ખણ્ડમાં યુગાવતારનો પ્રસંગ આવે છે; ત્યાં કાલયુગમાં કૃષ્ણો બુદ્ધો વિદુલેશઃ કલ્કિર્મ્લેચ્છનિકૃન્તનઃ ઇત્યાદિ વાક્યો ભગવાન અને બ્રહ્મદેવના સંવાદમાં આપેલા છે. આ સંવાદમાં કલિયુગમાં વિક્કલાવતાર થશે અને માયાવાદનું નિફળત તે કરશે ઇત્યાદિ વાક્યો મળી આવે છે. તદનુસાર શ્રીવિક્કલેશ્વર સાક્ષાત્ વિક્કલનાથાવતાર છે એમ માનવામાં લેશ પણ અનિષ્ટ થવાનો સંભવ નથી. તેમ છતાં જો પુષ્ટિમાર્ગના દ્રોહીઓ અમારા ઉપર દુરાગ્રહનો આક્ષેપ કરે, તો અમારે કહેવું નોંધવું કે શંકરાચાર્યના શંકરત્વમાં, બુદ્ધના ભગવદવતારત્વમાં, ઋષભાવતારમાં કે રામાનુજના શેષત્વમાં પણ એજ દોષ પ્રાપ્ત થશે, તેનો વિચાર તમારે જ કરવાનો છે. કોઈપણ તટસ્થ વિચારક અમારી દલીલને દુરાગ્રહ કહી શકશે નહિ.

### બીજું પ્રમાણ

તેમ છતાં જો પુરાણોને પ્રમાણ માનનારાઓને પણ અમારા નિર્દિષ્ટ વાક્યોમાં જ દુરાગ્રહની ગંધ આવતી હોય તો તુષ્યન્તુ દુર્જનન્યાય ને અનુસરીને અમે એમના સંતોષ માટે ઉપર જણાવેલા વાક્યો ઉપર ભાર ન મૂકીએ, તોયે, પરમ્પરા પ્રાપ્ત ઐતિહ્યના જ આધારે શ્રીવિક્કલેશ વિક્કલાવતાર છે, એમ સિદ્ધ કરી શકાય. અમે પૂછીએ છીએ કે શ્રીશંકરાચાર્યજી ઘણા જ અલ્પ સમયમાં સકલ શાસ્ત્ર પારંગત થયા અને બત્રીસ વર્ષમાં જ (જન્મથી બત્રીસ વર્ષ નહિ કે બત્રીસ વર્ષના પ્રચાર કાર્યથી) બોદ્ધમતનું ખણ્ડન કર્યું-એટલું જ નહિ પણ તાંત્રિકો શાકતો કાપાલિકો જેનો અને શેવો પર્યંતનું ખણ્ડન કર્યું, તેમજ પરકાય પ્રવેશાદિ અનેક ચમત્કારો બતાવ્યા તેમાં પરમ્પરા પ્રાપ્ત ઐતિહ્યવિના અન્ય શું પ્રમાણ છે ? જેમ શંકરાચાર્યજીનું શંકરત્વ પ્રતિપાદન કરનારી વાર્તાઓ પ્રમાણ છે, તેમ જ શ્રીવિક્કલેશ્વરનું વિક્કલાવતારત્વ પણ આવી જ વાર્તાઓના આધારે સિદ્ધ જ છે. તેમાં એ શ્રીશંકરાચાર્યના સમયનાં તત્ત્વચરિત્ર પ્રતિપાદક ઐતિહાસિક પ્રમાણો મહાન પ્રયાસ ચાલુ છે છતાં, અઘાવધિ સંતોષકારક રીતે મળી શક્યા નથી. પરંતુ શ્રીવિક્કલેશ્વરજીનાં સમકાલનાં તેવાં ઐતિહાસિક પ્રમાણ પુંજ પુષ્ટિસૃષ્ટિના શત્રુઓના હૃદયને સુબ્ધ કરે છે જ. જો તેમાં

તચ્છિધ્યાદિ પ્રણેતૃત્વે દોષોદ્ભાવના કરાય તો તાદ્શ દોષ સૃષ્ટિ આસેપકના મતમાં અસંભવિત નથી જ.

શ્રીચદુનાથ દિગ્વિજયમાં પણ ઉપર જણાવેલી વાર્તા શ્રીવિક્કલેશજીના ષષ્ઠપુત્ર શ્રીચદુનાથજીએ લખી છે. કોઈપણ મહત્ પુરુષનું જીવનચરિત્ર તેના અનુયાયીઓ લખે કે અન્ય તટસ્થ કોઈ લેખક લખે તેની અપેક્ષાએ તત્પુત્ર જ લખે તો તે અધિક વિશ્વસનીય મનાય છે. જ્યારે શ્રીચદુનાથજી પોતે જ નિજ પિતૃચરણના પ્રાકટ્યની વાર્તા ઉપર જણાવ્યા મુજબ લખે છે, ત્યારે તે વાર્તા અક્ષરશઃ સત્ય હોવાનો સંપૂર્ણ રીતે સંભવ છે. પરંતુ અત્યારે નવા જમાનાની હવા ખાધેલા પુષ્ટિમાર્ગીય વિદ્વાનો પણ અમુકગ્રંથ (ભગવત્પીઠાદિ) શ્રીમહાપ્રભુજી કૃત નથી. અમુક ગ્રંથ ચૈતન્ય મતની શ્રીગુસાંઈજી ઉપર છાયા પડી ત્યારે લખાયો અને અમુક પ્રક્ષેપ છે. એમ કહેવાની ઘૃષ્ટતા કસ્યા લાગ્યા છે. આ પ્રકારની ઘૃષ્ટતાને તેઓ નવી શોધના નામે ઓળખાવે છે. આ લોકો કહે છે કે ચદુનાથ દિગ્વિજયના નામે પ્રસિદ્ધ થયેલો ગ્રંથ જ શ્રીચદુનાથજીએ લખ્યો નથી કારણકે તેની ભાષા અમને ચદુનાથીય લાગતી નથી. દુનિયામાં આવી ઘણી શોધખોળો થયા કરે છે. પરંતુ કુટિલ નીતિમાં પારગામી પાશ્ચાત્યોની એ શોધનું પ્રયોજન શું છે, તે કોઈ તપાસતું નથી. અને તેવા અપરીક્ષિત સાધનોનો ઉપયોગ સચ્ચાસ્ત્રની સમીક્ષામાં કરે છે, આને આપણા દેશનું દુર્દૈવ જ કહેવું જોઈએ. મેગેસ્થીનીસના મતને માનનારા કહે છે કે ડાયાનિસાસ અને હીરા કલીસીસના વંશજોની જ હિન્દુ સૃષ્ટિ છે. આ ડાયાનિસાસ ને “દક્ષ” અને હીરા કલીસીસને “હરિ” ભાષા સાદૃશ્ય ઉપરથી કહે છે. તેમજ કાઈસ્ટ ઉપરથી કૃષ્ણ અને કૃષ્ણ ઉપરથી કાઈસ્ટ શબ્દના ઝઘડાઓ પણ ઘણા થયા અને અત્યારે પણ ચાલુ જ છે. આધુનિક ભાષા વિજ્ઞાન હિન્દીઓને ભ્રમજાળમાં નાંખવાનું એક સાધન માત્ર છે. પરદેશીય ઇતિહાસકારનું લક્ષ્યબિંદુ હિન્દીઓને પરાધીનતાના સૂત્રો ગોખાવા એજ રહેલું છે, એ ભૂલવું નહિ. એમના અનુમાનો કસોટી ઉપર ઉતારી શકાય તેવા નથી. ચદુનાથ દિગ્વિજયના નામથી ઓળખાતા ગ્રંથનાં વિષયમાં પણ એમ જ છે. આજ સુધી શ્રીચદુનાથજી કૃત અન્ય ગ્રંથ ઉપલબ્ધ થયો નથી, છતાં જ્યારે કહેવાતું હોય કે આ ભાષા શ્રીચદુનાથજીની ન હોઈ શકે; ત્યારે તો અમને હસવું જ આવે છે. દષ્ટાન્ત વિના અનુમાન કરી શકાતું જ નથી. કારણ કે તેમાં મુખ્ય વ્યાસિગ્રહ છે. અમે આ પાશ્ચાત્યવિદ્યા વિશારદ પંડિતોને તથા તદનુયાયીઓને પૂછીએ છીએ કે તમે આ વિષયમાં વ્યાસિગ્રહ કઈ રીતે કર્યો? જ્યારે કે તમને શ્રીચદુનાથનો અન્ય ગ્રંથ પણ ઉપલબ્ધ થયો નથી. જો એમ કહેવામાં આવતું હોય કે શ્રીગુસાંઈજીને અન્ય બાલકોની

ભાષા સાથે એમની ભાષા મળતી નથી. તો તેમ કહેવું પણ હાસ્યાસ્પદ જ છે. પ્રથમ તો તમે તેમાં કાંઈ પણ પ્રમાણ આપી શકતા નથી. અને બીજું એકબીજાની ભાષામાં સાદૃશ્ય હોવું જ જોઈએ એવો કોઈ પણ ભાષાશાસ્ત્રનો નિયમ નથી. પૂજ્ય મન્નલાલ શાસ્ત્રીજી મૂલસંસ્કૃત શબ્દોને જ ગુજરાતી પ્રત્યયો લગાડીને સુંદર ભાષા લખે છે, તેમ જો તત્સમકાલના અન્ય લેખકો ન લખે, તેથી તે લેખકો તત્સમકાલીન નથી. એમ કહેવાનું સાહસ કોઈ પંડિત તો ન જ કરી શકે.

આ ઉપરથી એમ સમજવાનું નથી, ચદુનાથ દિગ્વિજય ગ્રંથનું પ્રમાણ માનવા માટે અમે આગ્રહ કરીએ છે. જેને આ ગ્રંથનું પ્રામાણ્ય સ્વીકાર ન હોય તેણે શ્રીગુસાંઈજીના ચરિત્રપ્રતિપાદક નામરત્નાદિ સ્તોત્રો તથા ચરિત્ર ચિંતન, મધુસૂદન ભટ્ટ પ્રણીત વંશાનુચરિત્ર ઇત્યાદિ ગ્રંથો જોવા એ સર્વ ગ્રંથો શ્રીવિક્કલાવતારત્વે એક સ્વરે સ્વીકારે છે.

આટલા પ્રમાણો હોવા છતાં દુરાગ્રહદષ્ટ હૃદયો જો સર્વત્ર જ દુરાગ્રહ જોતા હોય અને ગીતાદિ સચ્ચાસ્ત્રોનું પ્રામાણ્ય સ્વીકારવામાં જેને સંકોચ થતો હોય તેમને તો દૂરથી જ નમસ્કાર છે. પરંતુ જેઓ ગીતાદિ સચ્ચાસ્ત્રોને પ્રમાણ માને છે, તેઓની સમક્ષ યદા યદાહિ ધર્મસ્ય અને આચાર્ય માં વિજાનીયાત્ ઇત્યાદિ ગીતા ભાગવતોક્ત પ્રમાણોને રજૂ કરી શકાય તેમ છે. આ વાક્યોથી આચાર્યત્વે પ્રકટ થયેલા શ્રીવિક્કલેશ ભગવદવતાર છે એમ તો તેઓને માનવું જ પડશે; તો પછી પાણ્ડુરંગ ક્ષેત્રમાં શ્રીમહાપ્રભુજીને ભગવત્સાક્ષાત્કાર થયો અને ભગવદાજ્ઞા થઈ આ વાર્તામાં તેઓને સંદેહ કરવાનું કારણ ઉર્વસ્થિત રહેતું નથી. આવા સાક્ષાત્કારો તુલસીદાસપ્રભૃતિને પણ થયા છે, તો યૈશ્વાનરાવતાર શ્રીમહાપ્રભુજીને અસંકૃત ભગવત્સાક્ષાત્કાર થાય અને આજ્ઞાઓ કરે તો તેમાં સંદેહ કરવા જેવું કાંઈ પણ નથી અર્થાત્ શ્રીવિક્કલેશ પ્રભુ સાક્ષાત્ શ્રીવિક્કલાવતાર જ છે, એમ સર્વ પ્રકારે સિદ્ધ જ છે.

### ચરણાદિ (ચરણાટ)

અમે પ્રથમ જણાવ્યું છે કે શ્રી વિક્કલનાથજીનું પ્રાકટ્ય ચરણાદિ ચરણાટ કે યુનારગઢમાં થયું હતું. આ સ્થલ મિર્જાપુર જિલ્લામાં મિર્જાપુર અને કાશીની મધ્યમાં શ્રીગંગાજીના પવિત્ર તટ ઉપર આવેલું છે. જલ અને સ્થલ ઉભય માર્ગે ચરણાટથી કાશી લગભગ વીશગાઉ છેટે છે. કેટલીકવાર રેલ્વેની અગવડતાને લીધે કે સૃષ્ટિ સૌંદર્ય જોવાની ઇચ્છાથી ઘણા યાત્રાળુઓ જલમાર્ગે પણ ચરણાટથી કાશીની મુસાફરી કરે છે. યુનારગઢ વિન્ધ્ય પર્વતની તળેટીમાં છે, અહિંયાં વિન્ધ્ય પર્વત ઉપર વામન ભગવાનના ચરણારવિંદનું ચિન્હ દષ્ટિપથ થતું હોવાથી આ

સ્થલનું નામ ચરણાદ્રિ પડ્યું. તેનું જ અપભ્રંશ ચરણાટ છે. ત્યાર પછી જ્યારે અહિયાં ઘણી લડાઈઓ થઈ ત્યારે ત્યાંના મજબૂત કિલ્લા ઉપરથી ચુનારગઢ કહેવાયું હોવું જોઈએ. પરંતુ અત્યારે તો ચુનારના જ નામથી તે પ્રસિદ્ધ છે. ચુનારગઢમાં અનેક રાજનૈતિક ઝઘડા થયા છે, તે ઇતિહાસમાં પ્રસિદ્ધ છે. લોદીવંશનો પ્રસિદ્ધ પાદશાહ સિકંદરના તાબામાં આ પ્રાંત તથા કિલ્લો શ્રીગુસાંઈજીના પ્રાકટ્ય સમયમાં હતો. ઇતિહાસકારો કહે છે કે સિકંદર લોદી ઘણો જ જુલ્મી અને ધર્માન્ધ મુસલમાન હતો. તેનો જુલ્મ હિન્દુઓ ઉપર જ હતો. મુસલમાનો સાથે તો ધર્મબંધુત્વે સોહાર્દ ધરાવતો હતો. એના જુલમથી તે સમયના હિન્દુઓ ઘણા પીડાતા હતા, અને સર્વત્ર ત્રાહિ ત્રાહિના પોકારો જ સાંભળતા હતા. એમ છતાં આ ધર્મઘ-મુસલમાન પાદશાહ શ્રીમહાપ્રભુજી ઉપર ઘણી જ શ્રદ્ધા ધરાવતો હતો. એની શ્રીમહાપ્રભુજી પ્રત્યેની ભક્તિનું જ્વલંત ઉદાહરણ શ્રીમહાપ્રભુજીનું ચિત્ર છે. સિકંદર લોદીના દરબારમાં ચિત્રકલા વિશારદ હોનહાર નામે એક ઇતિહાસ પ્રસિદ્ધ ચિતારો હતો. તેની પાસે શ્રીમહાપ્રભુજીનું ચિત્ર સિકંદરે તૈયાર કરાવ્યું હતું. તે આજે પણ કૃષ્ણગઢના કિલ્લામાં વિરાજે છે. એ સિકંદરની સત્તાનો લોપ શ્રીવિક્કલનાથજી પ્રાકટ્ય પછી એક વર્ષની અંદર થયો હતો. ત્યારબાદ ઈબ્રાહીમ લોદીના હાથમાં સત્તા આવી. શ્રીમહાપ્રભુજીએ લીલા પ્રવેશ કર્યો ત્યારે એ લોદીવંશનો ઉચ્છેદ થઈ ગયો હતો. સિકંદર લોદીના સમયમાં ભારતવર્ષમાં ઘણી જ અશાન્તિ હતી. પ્રયાગ અને કાશીમાં મુસલમાનો ઘણો જ અત્યાચાર કરતા હોવાથી શ્રીમહાપ્રભુજીએ કાશીસ્થ નિજ ગૃહોમાં રહેવાનું પસંદ કર્યું નહિ, તેથી કાશી પાસે ચરણાટ કે ચુનારમાં અને પ્રયાગ પાસે શ્રીચમુનાજીના સામે કાઠિ અલર્કપુર કે અડેલમાં નિવાસ રાખ્યો હતો. જે સમયે શ્રીમહાપ્રભુજીના ચુનારમાં રહેતા હતા તે સમયે જ શ્રીવિક્કલનાથજીનું પ્રાકટ્ય થયું હતું. શ્રી વિક્કલનાથજીના બાલ્યકાલમાં એ લોદીવંશનો ઉચ્છેદ થવાના કારણોને લીધે તથા મોગલ વંશની સત્તા સ્થાપવાના કારણોથી દેશમાં ઘણી જ અશાન્તિ રહી. તેથી આપશ્રીએ પણ નિજ પિતૃચરણની પેઠે ચુનાર અને અડેલમાં નિવાસ રાખ્યો. પરંતુ પાછળથી આ સ્થળોમાં હિન્દુઓ ઉપર ઘણા જ અત્યાચાર થતા હોવાથી જબલપુર પાસે ગઢામાં અને તે પછી ગોકુલમાં રહ્યા હતા. જે સમયે મોગલ સમ્રાટ અકબરની સત્તા બરોબર જામી ગઈ અને તે સમયે સર્વત્ર શાંતિ સ્થપાઈ ત્યારે શ્રીવિક્કલનાથજીની ઉત્તરાવસ્થા હતી. તેથી શ્રીમદ્ગોકુલમાં આપશ્રીએ ઉત્તરાવસ્થા ગાળવાનો નિશ્ચય કર્યો હતો, તે આપણે આગળ જાણીશું.

## બાલ્યકાલ અને સંસ્કારો

શ્રીમહાપ્રભુજી ચરણાદ્રિથી શ્રીવિક્કલનાથજીના પ્રાકટ્ય પછી અલ્પ સમયમાં જ અડેલ પધાર્યા હતા. પ્રયાગમાં ત્રિદંડ સન્યાસ લીધો ત્યાં સુધી અડેલમાં જ આપશ્રીની સ્થિતિ હતી. પશ્ચિમ પુરુષોત્તમ શર્મા ચતુર્વેદી સાહિત્યાચાર્યનું મત છે કે શ્રીવિક્કલનાથજીના નામકરણાદિ સંસ્કારો શ્રીમહાપ્રભુજીએ અડેલ પધારીને કર્યા. આ પંડિતજી પુષ્ટિમાર્ગના પ્રસિદ્ધ વિદ્વાન તરીકે પૂજાતા શ્રીયુત નન્દકિશોર શાસ્ત્રીજીના શિષ્ય હોઈ પંડિત રમાનાથજીની સલાના સભ્ય પણ છે. તેઓ પુષ્ટિમાર્ગના ઊંડા અભ્યાસી અને અનેક શાસ્ત્રવેત્તા તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. અમે નમ્રતાપૂર્વક પંડિતજીને પૂછીએ છીએ કે શ્રીમહાપ્રભુજીએ શ્રીવિક્કલનાથજીના નામકરણાદિ સંસ્કારો અડેલમાં કર્યા તેમાં પ્રમાણ શું છે? જે વલ્લભ વંશમાં આજ પર્યંત ગભાધાનાદિ સર્વ સંસ્કારો શાસ્ત્રોકત વિધિપૂર્વક યથાસમય થાય છે તે જ વંશમાં-અરે સાક્ષાત્ શ્રીવલ્લભાચાર્ય નિજ પુત્રનું નામકરણ અડેલ જઈને કરે જ નહિ. કારણકે નિષ્કમણ પણ એક સંસ્કાર છે. અને તે નામકરણ પછી જ થાય છે. નિષ્કમણની પૂર્વે ચરણાટ છોડીને જવાય નહિ અને નામકરણ વિના નિષ્કમણ પણ થાય નહિ, નામકરણ બારમે દિવસે થાય છે. દ્વાદશેઠ્ઠિ પિતા નામ કુર્યાત્ ઇત્યાદિ શાસ્ત્ર વચનો તેમાં પ્રમાણ છે. અત્યારે પણ વરહી નામનો પ્રસ્તાવ ગોસ્વામી વંશમાં થાય છે. શ્રીમહાપ્રભુજી ઉપર એવી કઈ જાતની ફરજ આવી પડી હતી કે જેથી તેમને નામકરણ સંસ્કાર માટે વખત ન મળ્યો, અને તરત જ ચુનાર છોડી જવું પડ્યું ? પ્રત્યુત ગોપાલદાસજી જેવા મહાનુભાવી ભક્તો નવાખ્યાનાદિમાં એ સંસ્કારો ચુનારમાં જ થવાનું વર્ણન કરે છે. મારા ધારવા મુજબ તો ઉક્ત પંડિતજીએ રમાનાથજીની સલાના સભ્ય હોવાથી (રમાનાથજીએ શ્રીમહાપ્રભુજીને ત્રણ લાલજી હોવાની, બ્રહ્મસંબંધ અક્ષર બ્રહ્મ સાથે થવાની અને વાદ કથાના પ્રણેતા યોગી ગોપેશ્વરજી છે એવી અવનવી શોધ ખોળ કરીને શ્રીગોકુલનાથજીએ સ્થાપેલી સંસ્થાને તેમજ પુષ્ટિમાર્ગને આભારી કર્યો તેવી રીતે) આ અવનવી શોધ કરી છે. પંડિત કરણનારાયણજી વગેરેએ એમનો ઉપકાર માનવો જોઈએ.

અમારી માન્યતા કહે છે કે શ્રીમહાપ્રભુજીએ જાતકર્માદિ સંસ્કારો ચુનારમાં જ કર્યા. અને થોડાક દિવસ ત્યાં રહીને અડેલ પધાર્યા. ચુનારથી એકદમ અડેલ પધારવાનું એવું એક પણ પ્રયોજન નથી કે જેની નોંધ લઈ શકાય. શ્રીમહાપ્રભુજીની માલિકીના ચાર ગૃહો હતા. (૧) કાશીમાં હનુમાન ઘાટ ઉપર, (૨) કાશીમાં જ પંચ

ગંગાઘાટ x ઉપર શ્રીબિન્દુ માધવની સમીપમાં, (૩) ચુનારમાં અને (૪) અડેલમાં, જે સમયે જ્યાં રહેવાની ઇચ્છા કે અનુકૂલતા હોય તે સમયે ત્યાં રહેવામાં ખાસ નોંધ લેવા લાયક પ્રયોજનની આવશ્યકતા પડતી નથી. કાશીમાં ઘણું કરીને બિન્દુ માધવ પાસે પંચગંગાઘાટ ઉપર કે પુરુષોત્તમઘાસના ગૃહમાં જતન વડ પાસે બિરાજતા. જે સમયે જ્યાં રહેવાની ઇચ્છા થતી તે સમયે ત્યાં રહેતા હતા. તેમાં કારણો શોધવા જેવું કંઈ નથી. ઉપરાંત કાશીના યેષ્ઠાવોમાં જનશ્રુતિ પ્રસિદ્ધ છે કે શ્રીમહાપ્રભુજી શ્રીવિક્કલનાથજીના પ્રાકટ્ય પછી ઓછામાં ઓછા ત્રણ વર્ષ પર્યંત ચરણાદ્રિમાં જ બિરાજ્યા હતા : જો આ જનશ્રુતિને પ્રમાણત્વે સ્વીકારીએ તો શ્રીવિક્કલનાથજીના જાતકર્માદિ ચોલાન્ત સંસ્કારો ચરણાદ્રિમાં જ થયા હતા એમ માનવું જોઈએ. આ જનશ્રુતિને પ્રમાણત્વે સ્વીકારવામાં કારણ એમ પણ જણાય છે કે જ્યારે શ્રીમહાપ્રભુજી ચરણાદ્રિમાં બિરાજતા હતા; ત્યારે શંકા પિશાચીથી અભિભૂત થયેલા અનેક પણ્ડિતો ચરણાટ આવતા અને તેથી સેવામાં તથા ગ્રંથ લેખન કાર્યમાં વિઘ્ન થતું, તે અટકાવવા શ્રીમહાપ્રભુજીએ પત્રાવલંબનગ્રંથ લખીને શ્રીવિશ્વનાથજીના મંદિરમાં ચોંટાડ્યો અને તત્રત્ય પંડિતોને સંબોધીને કહ્યું કે “મારું વક્તવ્ય સર્વ પંડિતોએ શ્રવણ કરવું, કારણ કે તેઓ સન્માર્ગના રક્ષક કહેવાય છે.” (વિક્કલિ: સર્વથા શ્રાવ્યં તે હિ સન્માર્ગરક્ષકા:) અને “હું પંડિતોને કહું છું કે મારા વક્તવ્યમાં કે મત્પ્રતિપાદિત શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાન્તમાં જેને શંકા હોય તેણે મને આવીને પૂછવું.” આ રીતે શુદ્ધાદ્વૈતના વિરોધીઓને શ્રીમહાપ્રભુજીએ પત્રાવલંબન દ્વારા પડકાર કર્યો હતો. આ કાર્ય માટે અનેકવાર કાશી પધારવું પડ્યું હશેજ. જો તે સમયે કાશીમાં કે ચરણાટમાં જ સહકુટુંબ સ્થિતિ હોય તો જ આ કાર્ય સહેલાઈથી થઈ શકે, અડેલથી કાશી લગભગ સો માઈલથીએ વધુ દૂર હોવાથી, ત્યાંથી આ કાર્ય માટે વારંવાર આવજાવ કરવામાં અનેક પ્રકારના વિઘ્ન થવાનો સંભવ હતો.

x આ ગૃહ આપત્રીના શ્વસુરનું હતું પરંતુ પાછળથી આપત્રીને તેનો કબજો મળ્યો. અહીંયાં ઘણા વખત સુધી બીરાજ્યા છે. આપત્રીએ અહિંયાં એક કૂવો ખોદાવ્યો, તે સંબંધમાં તત્રત્ય યેષ્ઠાવો કહે છે કે શૌચાદિથી નિર્વૃત્ત થયા પછી કટિસ્નાન કર્યા પહેલાં શ્રીગંગાજીને અડાય નહિ, તેથી સ્નાનાર્થે આ કૂવ ખોદાવ્યો હતો. આ સ્થલ અદ્યાપિ સુરક્ષિત છે, અને કાશીના યેષ્ઠાવોએ હાલમાં જ તેનો જીર્ણોદ્ધાર કર્યો છે પરંતુ હનુમાન ઘાટની બેઠક અત્યંત જીર્ણાવસ્થામાં છે. યેષ્ઠાવો પરિષદમાં બેઠકોનો જીર્ણોદ્ધાર કરવાનો ઠરાવ પસાર થયો છે છતાં તેના સ્વાર્થી સેક્રેટરીઓએ તે તરફ દુર્લક્ષ રાખીને પરિષદના દ્રવ્યનો ઇતરત્ર અનાવશ્યક અને પરિષદના ઠરાવોથી વિરુદ્ધ રીતે વ્યય કર્યો છે, તે જોઈને દરેક સહૃદય યેષ્ઠાવોને દુઃખ થયા વિના રહેશે નહિ.

પત્રાવલંબન ગ્રંથ શ્રીમદ્વિક્કલનાથજીનો પ્રાકટ્ય સમકાલીન છે. શ્રીવિક્કલનાથજીના પ્રાકટ્ય સમયે કે તત્પશ્ચાત્ સત્પર જ આ ગ્રંથ સિદ્ધ થયો. અને તે સમય દીર્ઘકાલ (ઓછામાં ઓછું એક વર્ષ કે તેથી વિશેષ) સુધી ચરણાદ્રિમાં સ્થિતિ અવશ્ય હતી જ. તેથી કાશીસ્થ યેષ્ઠાવોમાં પ્રસિદ્ધ થયેલી જનશ્રુતિ સર્વથા અપ્રમાણ છે એમ કોઈથી પણ કહી શકાય તેમ નથી. અર્થાત્ શ્રીવિક્કલનાથજીના પ્રાકટ્ય પછી લગભગ ત્રણ વર્ષ પર્યંત શ્રીમહાપ્રભુજી ચરણાદ્રિમાં બિરાજ્યા હતા. આ ઉપરથી આપત્રીના નામકર્માદિ સંસ્કારો પણ અડેલમાં નહિ પણ ચરણાટમાં જ થયા એ પણ સિદ્ધ જ છે.

શ્રીમદ્વિક્કલનાથજીનો ઉપનયન સંસ્કાર અમારા ધારવા મુજબ કાશીમાં થયો હોવો જોઈએ. કારણ કે શ્રીમહાપ્રભુજીના સગા સંબંધીઓ અને જ્ઞાતિજનોનો સર્વ વ્યવહાર કાશીમાં જ હતો. કાશીમાં કેદારઘાટથી શરૂ કરીને હનુમાનઘાટ સુધી તૈલંગ બ્રાહ્મણોની જ વસતી આવેલી છે અને કેટલાક બ્રાહ્મણાઘાટ, દુર્ગાઘાટ અને ઘાસીટોલા તરફ પણ રહે છે. કેદારઘાટ તરફ તો આ બ્રાહ્મણોનો એક મહત્ સમુદાય જ દષ્ટિગોચર થાય છે અને તેમાંના ઘણા જૂના વખતમાં આવેલા જણાય છે. આ લોકોના સંપર્કથી ત્યાંના દુકાનદારો અને મજૂરો પણ તેલુગુ તથા દ્રાવિડી ભાષાથી પરિચિત થઈ ગયેલા દષ્ટિપથ થાય છે. તાત્પર્ય એ કે કાશીમાં જે સ્થલે શ્રીમહાપ્રભુજીના પિતૃચરણ શ્રીલક્ષ્મણભટ્ટજીનું ગૃહ હતું તે ભાગમાં તૈલંગ અને દ્રાવિડી બ્રાહ્મણો જ વસે છે. આટલો મોટો સ્વજ્ઞાતિજનોનો તથા સગાસંબંધીઓનો સમૂહ હોવા છતાં ચરણાટ કે અડેલમાં શ્રીવિક્કલનાથજીનો ઉપનયન સંસ્કાર થાય એ સંભવિત નથી. તેમાં બીજું કારણ એ પણ છે કે શ્રીમહાપ્રભુજીનો વિવાહ કાશીમાં જ થયો હતો. તેમજ લક્ષ્મણભટ્ટજી કાશીવાસી જ બની ગયેલ હોવાથી એક પ્રકારે શ્રીમહાપ્રભુજીની પણ ખાસ કાશીના જ રહેવાસી તરીકે ગણના થતી હતી. અરે એટલું જ નહિ પણ અમે ભાર મૂકીને કહીએ છીએ કે જો કાશીમાં કોઈ આચાર્ય થયા હોય તો એક માત્ર શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી જ થયા હતા. યદ્યપિ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીનું પ્રાકટ્યસ્થલ ચંપારણ્ય છે, તથાપિ તત્પૂર્વે જ લક્ષ્મણભટ્ટજીએ નિજ આવાસ કાશીમાં સ્થાપ્યો હતો. અને શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની બાલ્ય, યૌવન અને વૃદ્ધાવસ્થા કાશીમાં જ કે કાશીવાસી તરીકે જ વ્યતીત થઈ હતી. તેમજ આપત્રીનો યૈવાહિક સંબંધ તથા તે પછી શ્રીગોપીનાથજી તથા શ્રીવિક્કલનાથજીનાયે સંબંધો કાશીમાં જ થયા હતા. આ ઉપરથી “શ્રીવલ્લભાચાર્યજી માટે કાશીએ મગરૂરી ધરાવવી જોઈએ.” એ શ્રીયુત મદનમોહન

માલવીયજીના શબ્દો અક્ષરશઃ સત્ય છે. શ્રીમહાપ્રભુજીનો કાશી સાથે આ પ્રકારનો સંબંધ હોવાથી તત્પુત્રનું ઉપનયન ઈતરત્ર થવાનો સંભવ જણાતો નથી. જો કોઈ વિદ્વાન પ્રામાણિક રીતે શ્રીવિક્કલનાથજીના ઉપનયનનું વર્ણન પૂરું પાડશે તો અમે અમારું મત બદલી શકીશું.

### વિદ્યાદ્યયન

સાંપ્રદાયિક ભાષા સાહિત્ય અને વાર્તાઓ ઉપરથી સિદ્ધ જ થયેલું છે કે શ્રીમહાપ્રભુજી નિજ ઉત્તરાવસ્થામાં ઘણું કરીને અડેલમાં જ બિરાજતા હતા. એટલે શ્રીગોપીનાથજી તથા શ્રીવિક્કલનાથજીનું પ્રારંભિક અધ્યયન સંપન્ન થયું હોવું જોઈએ. જ્યારે શ્રીમહાપ્રભુજીએ આસુરવ્યામોહલીલા કરી ત્યારે શ્રીગુસાંઈજી પંદર વર્ષના બાલક હતા. પ્રાચીન પરિપાટી મુજબ વિચાર કરવામાં આવે તો આટલો સમય એક અલૌકિક પ્રતિભાશાળી બાલકને યોગ્ય અધ્યાપકની દેખરેખ હેઠળ અધ્યયનથી પર્યાપ્ત છે. પાંચમા વર્ષથી અક્ષરારંભ કરીને પંદરમા વર્ષ સુધી વેદ વેદાંગ પૂર્ણ કરી શાસ્ત્રોમાં પ્રવેશ થઈ શકે છે. જો અલૌકિક દષ્ટિએ વિચારીએ તો જેમ શ્રીમહાપ્રભુજી (ચાર વેદ અરુ ષ્ઢશાસ્ત્ર પઢેં મહિના ચાર મેં) ચાર માસમાં વેદ વેદાંગ અને શાસ્ત્રોના પારંગત પંડિત થયા; તેમ આવા અલૌકિક પ્રતિભાસમ્પન્ન બાલક માટે શ્રીમહાપ્રભુજીની દષ્ટિ નીચે સંપૂર્ણ વિદ્યાભ્યાસ માટે દશ વર્ષ જેટલો લાંબો વખત ઓછો ન જ ગણાય.

સંપ્રદાયમાં એક ગાથા પ્રસિદ્ધ છે, કે શ્રીવિક્કલનાથજી બાલ્યાવસ્થામાં બહુ રમતિયાળ હતા. તેથી શ્રીમહાપ્રભુજીના મુખ્ય શિષ્ય દામોદરદાસ હરસાનીએ કહ્યું કે આ માર્ગ ખેલવા કૂદવાનો નથી, ત્યારથી શ્રીગુસાંઈજી ભણવા લાગ્યા. તેમજ બીજી વાર્તા એમ પણ પ્રસિદ્ધ થઈ છે કે શ્રીમહાપ્રભુજીએ દામોદરદાસ પ્રભૃતિને ભલામણ કરી હતી કે તમોએ શ્રીગોપીનાથજીને તથા શ્રીવિક્કલનાથજીને સંપ્રદાયનું રહસ્ય સમજાવવું. આ વાર્તા સત્ય હોવાનો સંભવ છે. શ્રીમહાપ્રભુજી પાસે શાસ્ત્રાધ્યયન કર્યું, પરંતુ સંપ્રદાયનો ફેલાવો તથા સેવા પ્રણાલિકા કે અન્ય વ્યાવહારિક જ્ઞાન એ દામોદરદાસજી કે પદ્મનાભદાસજી જેવા અનુભવી અને વિદ્વાનો પાસેથી આપત્રીએ મેળવ્યું હશે. નિજ વાર્તામાં લખ્યું છે કે શ્રીગુસાંઈજી મધુસૂદન સરસ્વતી પાસે<sup>x</sup> અધ્યયનાર્થ અડેલથી દરરોજ પ્રયાગ પધારતા. આ મધુસૂદન

X કોઈક પુસ્તકમાં માધવ સરસ્વતીનું નામ પણ લખ્યું છે. સદગત તેલીવાલા પણ માધવ સરસ્વતીનું જ નામ જણાવે છે. એ માધવ સરસ્વતી પણ શ્રીવિક્કલેશ્વર અને શ્રીમહાપ્રભુજીના સમયમાં જ થયા છે. મધુસૂદન સરસ્વતીના જ શિષ્ય માધવ સરસ્વતી હતા, એમ મધવ સંપ્રદાય આચાર્ય શ્રીયુત દામોદરલાલ ગોસ્વામી ભક્તિ રસાયનની પ્રસ્તાવનામાં લખે છે.

સરસ્વતી માયાવાદની ઢાલ રૂપે જે અદ્વૈતસિદ્ધિ નામે ગ્રંથ પ્રસિદ્ધ છે તેના કર્તા મધુસૂદન સરસ્વતી હોવા જોઈએ. મધુસૂદન સરસ્વતી અને શ્રીગુસાંઈજી શ્રીમહાપ્રભુજીના સમકાલીન પંડિત છે. અને તેઓ પ્રયાગ તથા કાશીમાં નિવાસ કરતા હતા. આ વાર્તા પણ અનેક ઇતિહાસકારોને માન્ય છે. તેઓ એક ઉત્તમ તાર્કિક તરીકે ખ્યાતિ પામેલા સન્યાસી હતા. માયાવાદને તર્કની દલીલોથી સિદ્ધ કરવા માટે અને દ્વૈત વાદીઓની દલીલોનું ખંડન કરવા માટે અદ્વૈતસિદ્ધિ એક ઉચ્ચ કક્ષાનો અદ્વિતીય ગ્રંથ મનાય છે. એ પંડિત પાસે કદાચિત્ શ્રીગુસાંઈજી ઘણીવાર પધારતા હશે. તે ઉપરથી જનશ્રુતિને આધારે આ વાર્તા લખાયેલી હોવી જોઈએ. અમારું મંતવ્યતો આથી વિરુદ્ધ જ છે. મધુસૂદન સરસ્વતી જેવા માયાવાદી પાસે અધ્યયનાર્થ શ્રીગુસાંઈજી પધારે અને તે પણ શ્રીમહાપ્રભુજીના સમયમાં એ અસંભવિત છે. કદાચ કોઈ અન્ય મધુસૂદન પંડિત હોય તો કહી શકાય નહિ. પરંતુ જ્યારે શ્રીમહાપ્રભુજીએ સ્વયં દશ વર્ષ જેટલા સમય સુધી ભણાવ્યા અને પદ્મનાભજી, ગદાધરજી પદ્મા રાવલ રાણા વ્યાસ જેમ અત્યંત પ્રસિદ્ધ પંડિતો મહાપ્રભુજીના સેવકો હતા, તેમની પાસે અધ્યયન ન કરતા એક માયાવાદી પાસે અધ્યયનાર્થ પધારે એ તર્કની કસોટી ઉપર ઉતરે તેમ નથી. વળી જેવો ગ્રંથ મધુસૂદન સરસ્વતીએ (અદ્વૈત સિદ્ધિ) લખ્યો, તેવો જે ગ્રંથ શ્રીગુસાંઈજીએ વિદ્વન્મંડન લખ્યો છે. અદ્વૈત સિદ્ધિનો પ્રારંભ ‘પક્ષતા’ ના શાસ્ત્રાર્થથી થાય છે, તેમ વિદ્વન્મંડનનોએ આરંભ ‘પક્ષતા’ના જ શાસ્ત્રાર્થથી થાય છે. (જુઓ સિદ્ધાંત શોભા) અદ્વૈત સિદ્ધિમાં જગતનું મિથ્યાત્વ સિદ્ધ કરવા માટે ઘણો પ્રયાસ કરવામાં આવ્યો છે, તેમ વિદ્વન્મંડનમાં જગતની સત્યતા બતાવવા માટે પ્રમાણોનું પૂર છે. અદ્વૈતસિદ્ધિમાં પ્રતિબિંબવાદનો વિસ્તાર છે, તો વિદ્વન્મંડનમાં જીવાણુત્પવાદનો વિસ્તાર અને પ્રતિબિંબવાદનું ખંડન છે. અદ્વૈત સિદ્ધિ ગ્રંથ જ રામાનુજ, (વિશેષતઃ મધ્ય અને અન્ય દ્વૈત વાદીઓ) વગેરેનું ખંડન કરવા જ રચાયો છે, તેમ વિદ્વન્મંડન ગ્રંથ પણ વાદીઓનું ખંડન (વિશેષતઃ માયાવાદનું ખંડન) અને સ્વમતનું પ્રતિપાદન કરવા જ રચાયો છે. આ ઉપરથી એમ માની શકાય છે, કે મધુસૂદન સરસ્વતી અને શ્રીવિક્કલેશ્વરજી પ્રયાગમાં ઘણીવાર ભેગા થયેલા હોવા જોઈએ, અને એક બીજાની પ્રતિસ્પર્ધામાં જ વિદ્વન્મંડન ગ્રંથનો પ્રાદુર્ભાવ થયો યદ્યપિ વિદ્વન્મંડન માટે એવી કિંવદન્તી સંભવાય છે, કે શ્રીગિરિધરજીએ માયાવાદનો પક્ષ લઈને પૂર્વપક્ષો કર્યા અને શ્રીગુસાંઈજીએ તેના ઉત્તરો આપ્યા તે વિદ્વન્મંડન ગ્રંથ છે.

માધવ સરસ્વતીના સત્પદાર્થી-દીકા વગેરે ઘણા ગ્રંથો છે. મધુસૂદન સરસ્વતી બંગાલના “કોટાલિપાડા” ગામના યૈદિક બ્રાહ્મણ રામચંદ્ર ભટ્ટાચાર્યના પંચજ પુરંદર મિશ્રના પુત્ર હતા. હરિરામ તર્કવાગીશ પાસે ન્યાયશાસ્ત્ર અને માધવ સરસ્વતી પાસે બ્રહ્મવિદ્યા શીખ્યા હતા. અને વિશ્વેશ્વર સરસ્વતી પાસેથી સન્યાસ દીક્ષા લીધી હતી.

અર્થાત્ પિતાપુત્રના શાસ્ત્રાર્થ રૂપ આ ગ્રંથ છે. પરંતુ આ વાર્તા અમારા મંતવ્યને ફેરવી શકે તેમ નથી. કારણકે અમારું કથન એમ નથી કે એક કાલાવચ્છેદે કરીને અદ્વૈત સિદ્ધિ અને વિદ્વન્મંડન રચાયા. વિદ્વન્મંડન શ્રીગુસાંઈજી લખતા હશે તે સમયે શ્રીગિરિધરજીએ કદાચ પૂર્વપક્ષો કર્યા હોય કે ઉમેરાવ્યા હોય અને તેનું સમાધાન શ્રીગુસાંઈજીએ કર્યું હોય તો તેથી મધુસૂદન સરસ્વતી સામેની સ્પર્ધા મટી જતી નથી. પ્રત્યુત ઉક્ત ગ્રંથને ઉત્તમ બનાવવા બંને પિતા પુત્રનો નિશ્ચય જ જણાઈ આવે છે.

દામોદરદાસાદિ પાસેથી જ્ઞાન મેળવ્યું તેથી આ સંપ્રદાયમાં યેષ્ઠાવોનું પ્રાધાન્ય છે, એમ કહેનારાઓ ભારે ભૂલ કરે છે. દામોદરદાસાદિ પાસેથી અમુક ગ્રંથ શ્રીગુસાંઈજી શીખ્યા એમ ઐતિહાસિક પુરાવો કોઈ આપી શકે તેમ નથી. જો સિદ્ધાંત મુક્તાવલી માટે કહેતા હોય તો તેમાંયે સમજફેર થાય છે. દામોદરદાસ પાસે એ ગ્રંથ ભણ્યા નથી. પણ તે ગ્રંથ દામોદરદાસ પાસે હતો તે તેમણે આપ્યો. નહિ કે ભણાવ્યા. અમે આગળ જણાવીશું કે શ્રીમહાપ્રભુજી પછી ઘણા સાંપ્રદાયિક ગ્રંથો ઈતસ્તતઃ ચાલ્યા ગયા. અને બધા ગ્રંથો શ્રીવિક્તલનાથજીને મળ્યા નહિ. તેવા જ સમયમાં આ ગ્રંથ દામોદરદાસ પાસે હોય અને તેમણે આપ્યો હોય તો સંભવે છે. તે ઉપરથી સેવકોનું પ્રાધાન્ય છે અને પંડિતોનું નથી ઈત્યાદિ ગપ્પા અપ્રમાણ જ હરે છે.

વળી એક ગાથા એમ પણ સંભળાય છે કે દામોદરદાસ પાસેથી શ્રાદ્ધની દક્ષિણામાં સામ્પ્રદાયિક જ્ઞાન શ્રીગુસાંઈજીએ મેળવ્યું, પરંતુ કોઈપણ વિચારશીલ વિદ્વાન આ ગાથાને પ્રમાણ માની શકશે નહિ. કારણ કે આચાર્યચરણે કે શ્રીગુસાંઈજીએ કોઈને ત્યાં પણ પૌરોહિત્ય કર્યું હોય એવો દાખલો મળતો નથી, અરે એટલું જ નહિ પણ સોમવતી પર્વ નિમિત્તે દુર્ગાવતી રાણીએ આપેલા ૧૦૮ ગામ શ્રીગુસાંઈજીએ સ્વીકાર્યા નથી એવો તદ્દન વિરુદ્ધ દાખલો ઇતિહાસમાં નોંધાયો છે. તેમજ આચાર્યકુલમાં અઘાવધિ દાન પ્રતિગ્રહ કરવાની પ્રણાલિકા દષ્ટિપથ થઈ નથી. વિશેષતઃ દામોદરદાસના પિતાનું શ્રાદ્ધ સરાવવા ગુસાંઈજી જાય અને તેની દક્ષિણામાં સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતોનું જ્ઞાન મેળવે એ વાર્તા તો તદ્દન અસંભવિત જ છે. કારણ કે શ્રીગુસાંઈજીએ પૌરોહિત્ય સ્વીકાર્યું જ નથી. જો દામોદરદાસજીને એક અલૌકિક પુરુષ માનવામાં આવે, તો તેવી અલૌકિકતા શ્રીગુસાંઈજીમાં અધિક હતી એમ પણ માનવું જ જોઈએ. વિશેષ અલૌકિક સામર્થ્ય ધરાવનારને સામ્પ્રદાયિક સિદ્ધાંતનું જ્ઞાન સ્વતઃ જ થઈ શકે. તેમાં સંદેહ કરનાર વ્યક્તિને દામોદરદાસજીની અલૌકિકતાનું પ્રતિપાદન કરવું અશક્ય થઈ પડશે. શ્રાદ્ધકર્મમાં એવી અલૌકિકતા નથી રહેલી કે જેને સંપત્ર કરવા માટે શ્રીગુસાંઈજીની જરૂર પડે અને તેની દક્ષિણા

પણ અલૌકિક સિદ્ધાંત જ્ઞાનાર્પણ હોઈ શકે. પ્રભુને અર્પણ કર્યા વિના કોઈપણ પદાર્થનો શ્રાદ્ધાદિમાં વિનિયોગ થઈ શકતો નથી, એ સાંપ્રદાયિક સિદ્ધાંત છે. (જુઓ સિદ્ધાંતરહસ્ય અને તેની ટીકાઓ) ભગવત્સેવા અલૌકિક કર્મ છે, તેવું શ્રાદ્ધાદિ અલૌકિક નથી. તેમાંયે “આ માર્ગ ખેલવાનો નથી પણ ભગવત્સેવા કરવાનો કે તાપ કલેશનો છે.” આ વાક્ય શ્રીગુસાંઈજીને કહેનાર દામોદરદાસજી ભગવત્સેવાતિરિક્તકાર્યમાં આપશ્રીને પ્રયોજે તે સર્વથા અશક્ય જ છે. તાત્પર્ય એ કે શ્રાદ્ધાદિ એવા અલૌકિક કર્મો નથી કે તદર્થ શ્રીગુસાંઈજીને પરાણે પૌરોહિત્યનો સ્વીકાર કરવો પડ્યો હોય. તેમજ દાન અને પ્રતિગ્રહમાં એ તારતમ્ય રહેલું છે. દામોદરદાસ ક્ષત્રિય છે, તે ભૂમિ, સુવર્ણ આદિનું દાન કરી શકે, નહિ કે વિદ્યાનું દાન. વિદ્યા દાન બ્રાહ્મણ કરે. વળી શ્રાદ્ધમાં વિદ્યા દાનનો આ પહેલો જ દાખલો છે, તેનું શાસ્ત્રીય ઉદ્બોધન દષ્ટિપથ થતું નથી. વળી શ્રીમહાપ્રભુજીએ જ્યારે ત્રિદંડ સન્યાસ લીધો ત્યારે શ્રીગુસાંઈજી પંદર વર્ષના હતા. પાંચમે વર્ષે જો અક્ષરારંભ થાય તો આચાર્ય ચરણની પાસે કે દષ્ટિ આગળ શ્રીગુસાંઈજીનું દશવર્ષ સુધી અધ્યયન થયું હતું. શ્રીગોપીનાથજી આપશ્રીથી પાંચ વર્ષે મોટા હોવાથી આચાર્યચરણના અનંતર શ્રીગોપીનાથજી પાસે પણ અધ્યયનનો સંભવ છે. નિજવાર્તાદિના આધારે મધુસૂદન પંડિતાદિની પાસે પણ અધ્યયન અસંભવિત નથી, આટલા સહેલુઓ શ્રીગુસાંઈજીના અધ્યયનમાં હોવા છતાં શ્રાદ્ધદક્ષિણા જેવો અસહેલુ ગ્રહણ કરવામાં આચાર્યકુલ પ્રત્યે તચ્છિષ્યોનું ગુરુત્વ સ્થાપન કરવાનો કુત્સિત પ્રયાસ દષ્ટિપથ થાય છે. વિદ્વાનો અને યેષ્ઠાવોને મારી હાથ જોડીને પ્રાર્થના છે કે મને દામોદરદાસજીની અલૌકિકતામાં લેશ પણ સંદેહ નથી. નારદોદ્ધવાદિવત્ અથવા તેથી એ યૈશિષ્ઠ્ય જો દામોદરદાસજીનું સ્વીકારવામાં આવે તો તેમ સ્વીકારવામાં હું મારું સૌભાગ્ય સમજું છું, તેમાં મારી લેશ માત્ર પણ ન્યૂનતા થશે નહિ. પરંતુ અત્યારે જે ભાષા ગ્રંથો પ્રચલિત છે, તે સુબોધિન્યાદિવત્ અક્ષરશઃ સત્ય જ છે, એમ માની શકાય નહિ. (જુઓ શ્રીધનશ્યામલાલજીના કેસમાં શ્રીગોકુલનાથજીની સાક્ષી) અનેક વંચક યેષ્ઠાવોએ ભાષા સાહિત્યમાં ફેરફાર કર્યો છે. એ ભાષા ગ્રંથોના જ આધારે દામોદરદાસજીનું ગુરુત્વ (જો આ શબ્દ ભારે પડતો હોય તો સહૃદય આચાર્યો, પંડિતો અને યેષ્ઠાવો મને ક્ષમા કરે.) સ્થાપન કરવાનો જ કુત્સિત પ્રયાસ કર્યો છે. આનું પરિણામ દામોદરદાસજી પુરુષોત્તમદાસજી ચાચા હરિવંશજી વગેરેને નામ મંત્રની દીક્ષા આપવાનો આધિકાર હતો, તેઓ ક્ષત્રિય હોવા છતાં નામ મંત્ર આપતા હતા, તો અત્યારે જેઓ પોતાને દામોદરદાસજીના જ અમર અવતારો માને છે (હું આવા યેષ્ઠાવોને મળ્યો છું, તેમના નામાદિ પ્રસિદ્ધ કરવાની જરૂર નથી. હું તો તેમને વંચકત્વે જ ઓળખી શકું) તેમને પણ નામ મંત્ર

કે બ્રહ્મસંબંધ દીક્ષા આપવાનો સ્વતઃસિદ્ધ અધિકાર છે જ, શ્રીમદાચાર્યચરણનો “મારા જ વંશજોને ગુરુ માનવા” એમ આગ્રહ હતો નહિ. અમે પણ ગોસ્વામી બાલકોને દામોદરદાસાદિપત્ સદુપદેશ આપી શકીએ છીએ ઇત્યાદિ રીત્યા આવેલું અનુભવાય છે. શત્રોરપિ ગુણા ગ્રાહ્યા દોષા વાચ્યા ગુરોરપિ (શત્રુનાએ ગુણ ગ્રહણ કરવા અને જો ગુરુ હોય તો તેનાયે દોષો તેને કહેવા) આ ન્યાયે સત્યની ખાતર દામોદરદાસજી પાસેથી શ્રીગુસાંઈજીએ જ્ઞાન મેળવ્યું એ વાર્તાનો પ્રતિષેધ કર્યા વિના રહી શકાતું નથી. અલબત્ત દામોદરદાસજી પ્રભૃતિ શ્રીમહાપ્રભુજીના લીલા પ્રવેશ પછી શ્રીગોપીનાથજી અને શ્રીગુસાંઈજીના અભિભાવકે હતા. પિતાના અંતરંગ સેવકો હોવાથી તેમનું માન એ બંને ભાઈઓ રાખતા હોય કે “આ માર્ગ ખેલવાનો નથી” ઇત્યાદિ વાક્યો દ્વારા યોગ્ય કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ અને અયોગ્યથી નિવૃત્તિ તેઓએ કરાવી હોય તો તે સર્વથા પ્રશંસનીય છે. આ વાર્તાનો કોઈપણ વિચારશીલ વ્યક્તિ નિષેધ કરી શકે જ નહિ. પરંતુ આટલા ઉપરથી જ યેષ્ઠાવો પાસેથી શીખ્યા. યેષ્ઠાવો ગુરુઓને પણ જ્ઞાન આપી શકે એવા અપસિદ્ધાંતોનો પ્રાદુર્ભાવ તો વંચક વિના અન્ય કોણ કરી શકે ?

### વિવાહ સંબંધ

શ્રીમદ્ વિક્ષેપશ્રીજીનું બે વાર લગ્ન થયું હતું. પ્રથમ વહુજીનું નામ શ્રીરુકમણિ વહુજી અને દ્વિતીયનું નામ શ્રીપદ્માવતી વહુજી હતું. શ્રીરુકમણિવહુજીના પિતા વિશ્વનાથ ભટ્ટ કાશીમાં રહેતા હતા. આપશ્રીના પ્રથમ વિવાહનું વર્ણન અમને મળ્યું નથી તથાપિ જનશ્રુતિ છે કે શ્રીમહાપ્રભુજીના અને તત્પૂર્વે ઘણા તૈલંગ બ્રાહ્મણો ઉત્તર દેશમાં આવેલા હતા. આ બ્રાહ્મણોમાં ઘણા પંડિતો હોવાથી તેમને ઉત્તર દેશના હિન્દુ રાજાઓએ આશ્રય આપ્યો હતો. તેમ જ લક્ષ્મણ ભટ્ટજી (શ્રીમહાપ્રભુજીના પિતા) જેવા વિદ્વાનો ખાસ કાશીવાસ કરવાના સદુદ્દેશથી કુટુંબ સહિત આ દેશમાં આવીને વસ્યા હતા અને કેટલાકો દુર્લિંકાદિને લીધે પણ આવ્યા હોય એમ સંભવે છે. મથુરા અને કાશી જેવા તીર્થયાત્રાના સ્થલોમાં આ બ્રાહ્મણોનો મોટો જથ્થો વસતો હોવાથી શ્રીમહાપ્રભુજીએ અને તે પછી શ્રીગોપીનાથજી તથા શ્રીવિક્ષલનાથજીએ તેમજ તદ્વંશજોએ એ જ બ્રાહ્મણોની સાથે સંબંધ બાંધ્યો હતો. તેમાંથી કેટલાક કુટુંબો તો ઘણા વર્ષો પૂર્વે (લગભગ ત્રણ ચાર શતકો પૂર્વે) પણ આવેલા હતાં. તે કુટુંબો અધાવધિ વિધમાન છે. ભારત માર્તંડ પંચનદી પંડિત ગઢુલાલજી અને પુરાણ માર્તંડ પંડિત પુરુષોત્તમજી ચક્રવર્તીના કુટુંબો આ દેશમાં ઘણા જૂના સમયમાં આવેલા છે. જે પંડિતોએ શ્રીમહાપ્રભુજી સાથે સંબંધ બાંધ્યો તેઓ આજે “ભટ્ટ” સંજ્ઞાથી ઓળખાય છે. આ ભટ્ટોમાં પાછળથી ગોકુલસ્થ, મથુરાસ્થ, સાગરસ્થ અને બિકાનેરી એ નામોથી તડો પડ્યા. તે પૈકી કેવલ

ગોકુલસ્થો જ શ્રીવલ્લભવંશની સાથે સંબંધ ધરાવે છે. ઇતરો કવચિત્ એકત્ર અને કવચિત્ ભિન્ન ભિન્ન પણ છે. અમારી જાણમાં આવ્યું છે કે આ ભટ્ટોમાં કેટલાક તો પંડિતરાજ જગન્નાથ (આવંશ રેહી સંજ્ઞાથી ઓળખાય છે, એમ અમને ભરતપુર રાજ્યના ઇન્સપેક્ટર ઓફ સ્કૂલ્સ મિ. પત્રાલાલજીએ કહ્યું છે)ના વંશજો, કોઈ અપ્પચ્ચ દીક્ષિતના વંશજો અને સમરપુર્ગવ દીક્ષિતના વંશજો પણ છે. તેમજ કેટલાક દ્રાવિડ બ્રાહ્મણો પણ એ મથુરાસ્થ કે સાગરસ્થ નામે ઓળખાતી જાતિમાં ભળી ગયા છે. તે પૈકી નેતૃ ઉપનામકો દ્રાવિડો છે, એમ બિલહરા નિવાસી પં. મુરલીધરજી તથા પં. લક્ષ્મણ શાસ્ત્રી (અચ્યાજી) કહેતા હતા. જેમ ગોકુલસ્થોનો આ દેશમાં જ સંબંધ હોવા છતાં પણ આજ સુધી તૈલંગ દેશ સાથે અવિચ્છિન્ન સમ્બન્ધ ચાલ્યો આવે છે. તેમ આ મથુરાસ્થોમાં દેખાતું નથી. હાલમાં જ સંપ્રદાયના અદ્વિતીય પંડિત શ્રીચુત બાલશાસ્ત્રીજીના કનિષ્ઠ ભ્રાતા પ્રોફેસર હરિકૃષ્ણ શાસ્ત્રીજીએ નિજ કન્યાનો સંબંધ તૈલંગ દેશમાં કર્યો છે. અમારા જાણવા મુજબ સાગરસ્થોમાં આ બાલશાસ્ત્રીજીના જ કુટુંબમાં તેલગુ ભાષાનો માતૃભાષાવત્ વ્યવહાર થાય છે. અન્ય તો નિજ માતૃભાષા તથા વેશનો જાણે ત્યાગ કરીને બેઠા હોય તેમ દેખાય છે. આ શાસ્ત્રી કુલને જાણે સરસ્વતી વરી હોય તેમ પણ દષ્ટિપથ થાય છે. આકુલમાં આબાલવૃદ્ધ વનિતા સર્વ જ સંસ્કૃત ભાષા ઉપર સારો કાબુ ધરાવે છે. અમારા પરિચયમાં ગોકુલસ્થ, મથુરાસ્થ કે સાગરસ્થ ભટ્ટ કુટુંબોમાં આ એક જ વિદ્વત્કુટુંબ આવ્યું છે. સાગરસ્થોમાં અન્ય વિદ્વાનો અને પ્રતિષ્ઠિતોની સંખ્યા ઘણી છે, તથાપિ વિદ્વત્કુટુંબ તો આ એક જ છે. આ કુટુંબે અન્ય કુટુંબોની પેઠે નિજ ઉપનામનો ત્યાગ કર્યો નથી. અધાવધિ તેઓ “પોતકૂચિવાડુ” એજ ઉપનામ ધારણ કરે છે.

આ “ભટ્ટ” સંજ્ઞક તૈલંગ અને દ્રાવિડી બ્રાહ્મણોની સાથે યૈવાહિક સંબંધ થયેલા જોવામાં આવે છે. દ્વિતીય વહુજી શ્રીપદ્માવતિજીના પિતા એજ આધુનિક સાગરસ્થ ભટ્ટના નામે ઓળખાતા બ્રાહ્મણો પૈકી હતા. આ બ્રાહ્મણો મધ્યપ્રાન્તોમાં આવેલા જબલપુરની પાસે ગઢા અને મંડલા તરફ રહેતા હતા. એમનું વર્ણન મહારાણી દુર્ગાવતીના પ્રસંગમાં કરવામાં આવશે.

આધુનિક ગોકુલસ્થ ભટ્ટો કહે છે કે શ્રીવિક્ષલનાથજીનું પ્રથમ લગ્ન અત્યારે “રેહી” ઉપનામથી જે કુટુંબ પ્રસિદ્ધ છે, તે જ કુટુંબમાં થયું હતું. જો આ વાર્તા સત્ય હોય અને તે “રેહી” + કુટુંબ જો જગન્નાથ પદિડતરાજના જ વંશજો હોય તો પ્રથમ વિવાહ કાશીમાં જ થયો એમ માની શકાય. કારણ કે પદિડતરાજના પૂર્વજો કાશીમાં + જો રેહી કુટુંબ પદિડતરાજ જગન્નાથનો જ વંશ હોય તો એમનું તૈલંગદેશીય ઉપનામ “વેગિનાડુ” હોવું જોઈએ, જો “વોગનાડુ” આ નામ વંશનું ન હોય જાતિનું હોય તો વેલનાડુ હોવું જોઈએ વેગિનાડુ નામની જાતિ પણ તે દેશમાં છે.



રહેતા હતા એમ કેટલાક પૂરાવા મળી આવે છે. પહિડતરાજના પિતા “પેરૂભટ્ટ” કાશીમાં રહેતા અને તેમણે મીમાંસક મૂર્ધન્ય શ્રીમાન્ ખલડદેવ પાસે પૂર્વ મીમાંસા શાસ્ત્ર શેષ શ્રીકૃષ્ણના પુત્ર વરિશ્વર પાસે વ્યાકરણ, મહેન્દ્ર પહિડત પાસે ન્યાયશાસ્ત્ર અને જ્ઞાનેન્દ્ર ભિક્ષુ પાસે વેદાન્તશાસ્ત્રનું અધ્યયન કર્યું હતું એમ પહિડતરાજ પોતે જ સ્વીકારે છે, પેરૂભટ્ટ તેલંગદેશના હતા, તે સ્વયં વિદ્યાધ્યનાર્થે કાશી આવ્યા હોય એમ જણાતું નથી. પ્રત્યુત તેઓ કાશી નિવાસી હતા એમ જ ઐતિહ્ય મળી આવે છે. પેરૂભટ્ટના પૂર્વજો કાશીમાં રહેતા હોય અને તેમનો શ્રીમહાપ્રભુજી સાથે ગાઢ સંબંધ થયો હોય એમ સંભવ છે. તેથી તે કુટુંબની કન્યા સાથે શ્રીમદ્વિક્ષલનાથજીનો વિવાહ થયો પણ અસંભવિત ન જ ગણાય. જગન્નાથ પહિડતરાજ પોતે જયપુરમાં રહેતા હતા. મહારાજ જયસિંહે અશ્વમેધ યજ્ઞ કર્યો તે સમયે દેશદેશાન્તરના ઘણા પહિડતોને બોલાવીને પોતાના રાજ્યમાં સન્માન પૂર્વક રાખ્યા હતા. તે પૈકી પહિડતરાજ પણ હોઈ શકે. તે સમયે ઘણા તેલંગ બ્રાહ્મણો જયપુરમાં આવીને રહ્યા હતા. તે પૈકી કેટલાક કુટુંબો અઘાવધિ ત્યાંજ X નિવસે છે. પરંતુ આ સંબંધ શ્રીમહાપ્રભુજીના સમયમાં થયેલો જણાતો નથી. યદુનાથ દિગ્વિજયમાં શ્રીગોપીનાથજીના લગ્નનો પ્રસંગ વર્ણવ્યો છે. પણ શ્રીવિક્ષલનાથજીના વિવાહનો પ્રસંગ શ્રીમહાપ્રભુજીના સમયમાં વર્ણવેલો ક્યાંયે દેખાતો નથી. મારી ધારણા છે કે શ્રીમહાપ્રભુજીએ શ્રીગોપીનાથજીનું લગ્ન કર્યું હશે. અને તે પછી શ્રીગોપીનાથજી દ્વારા શ્રીવિક્ષલનાથજીનો વિવાહોત્સવ ઉજવાયો હશે. જ્યારે શ્રીમહાપ્રભુજીએ આસુર વ્યામોહલીલા કરી ત્યારે શ્રીવિક્ષલનાથજી પંદર વર્ષના જ હતા. અને શ્રીગોપીનાથજી વીસ વર્ષના. પંદર વર્ષના બાલકનું લગ્ન તે સમયે સંભવિત પણ ન હતું. જો અમને આ વિષયમાં પ્રમાણ મળશે તો અમે પાછળથી જાહેર કરીશું. (શોધ ચાલુ છે.)

#### વંશ વિસ્તાર

શ્રીરૂક્મણી વહુજીથી છ બાળકો અને ચાર કન્યાઓનું પ્રાકટ્ય થયું. એ પુત્રોનું પ્રાકટ્ય ઘણું કરીને અડેલમાં થયું હશે. કદાચ કોઈનું પ્રાકટ્ય કાશીમાં પણ થયું હોય તો કહી શકાય નહિ. પરંતુ પાછળથી ઘણું કરીને શ્રીવિક્ષલનાથજી અડેલમાં જ બિરાજતા હોવાથી ત્યાં જ સર્વનું પ્રાકટ્ય થયું હોય એમ વિશેષ સંભવ છે.

X જયપુરમાં અશ્વમેધ યજ્ઞ થયો તેમાં ઘણા વિદ્વાનો દેશ દેશાન્તરના એકત્રિત થયા હતા. તેમાંયે ગુર્જર બ્રાહ્મણોનો સમૂહ ઘણો હતો. મહારાષ્ટ્ર કે તેલંગ બ્રાહ્મણોની સંખ્યા તેથી ઓછી હતી. અશ્વમેધમાં બ્રહ્માનું વરણ કરવા માટે વડોદરાના શ્રીત્રીય શ્રીગોડબ્રાહ્મણને બોલાવવામાં આવ્યા હતા. કરોળીના મારાશ્વસુરના પૂર્વજોનેજ એ માન મળ્યું હતું. આજે પણ એ કુટુંબ “બ્રહ્માજી” નામે જયપુરમાં પ્રસિદ્ધ જ છે. એટલું જ નહિ. પણ જે ભાગમાં એ બ્રહ્માજી રહેતા તે ભાગજ બ્રહ્મપુરી નામે પ્રસિદ્ધ થયો છે. પહિડત રમાનાથજી પણ જયપુરના કે આમેરના છે. એમના પૂર્વજો તેજ સમયે કે તે પછી જયપુર આવ્યા હશે.

- લેખક

શ્રીવિક્ષલનાથજીના સાતે બાળકોના નામ પ્રાકટ્ય સંવત, તિથિ અને તેમના વહુજી વિગેરેના નામ નીચેના કોષ્ટકમાં આપ્યા છે.

નામ*	સંવત માસ તિથિ	કયું ઘર અને અત્યારે ક્યાં સ્થિત છે	સેવા સ્વરૂપ	વહુજી	પ્રાકટ્ય સ્થાન
૧. શ્રીગિરધરજી	૧૫૯૭ કા.શુ.૧૨	પ્રથમ (કોટા)	શ્રીજી, શ્રીનવનીત પ્રિયજી અને શ્રી મથુરેશજી	શ્રીભામિની વહુજી	અડેલ
૨. શ્રીગોવિંદરાયજી	૧૫૯૯ કા.વ.૮	દ્વિતીય નાથદ્વારા	શ્રી વિક્ષલનાથજી	શ્રી રાણીવહુજી	"
૩. શ્રીબાળકૃષ્ણજી	૧૬૦૬ ભા.વ.૧૩	તૃતીય કાકરોલી	શ્રીક્ષરકાનાથજી	શ્રી કમલાવહુજી	"
૪ શ્રીગોકુલનાથજી (શ્રીવલ્લભજી)	૧૬૦૮ માર્ગ.શુ.૭	ચતુર્થ ગોકુલ	શ્રીગોકુલનાથજી	શ્રીપાર્વતીવહુજી +	"
૫ શ્રીરઘુનાથજી	૧૬૧૧ કા.શુ.૧૨	પંચમ કામવન	શ્રીગોકુલચંદ્રમાજી	શ્રી જાનકીવહુજી	"
૬ શ્રી યદુનાથજી	૧૬૧૫ ચૈ.શુ.૬	ષષ્ઠ =	=	શ્રી મહારાણી વહુજી	"
૭ શ્રીધનશ્યામજી	૧૬૨૮ કા.વ.૧૩	સપ્તમ કામવન	શ્રીમદનમોહનજી	શ્રી કૃષ્ણવતીજી અને શ્રીભાગીરથીજી	ગોકુલ

શ્રી વિક્ષલનાથજીના લીલા પ્રવેશ પ્રર્થેત થયેલા વંશ વિસ્તારનું કોષ્ટક સામા પૃષ્ઠ ઉપર છે.

\* આ કોષ્ટકમાં પ્રસિદ્ધ જ નામો આપ્યાં છે, પરંતુ શ્રીવિક્ષલનાથજી શાસ્ત્રના નિયમને અનુસરીને પુત્રોનું નામ લેતા ન હતા. તેથી પોતે અનુક્રમે નીચે જણાવેલા નામથી બોલાવતા હતા. (૧) ગોવર્ધન, (૨) રાજાજી, (૩) રાજવલોચન, (૪) શ્રીવલ્લભ, (૫) રામચંદ્ર, (૬) મહારાજજી અને (૭) પ્રાણવલ્લભ. આ રીતે બાળકો આપત્રીને કાકાજી કહીને સંબોધતા હતા.

+ પ્રાકટ્ય સંવત ૧૬૧૭ ચૈશાખ શુકલ પંચમી. અને વિવાહ સંવત ૧૬૨૪ જ્યેષ્ઠ કૃષ્ણ દ્વિતીયા. શ્રીગોકુલનાથજીના સેવકો આ વિવાહોત્સવને દિવસે ઘણા આનંદથી ઉત્સવ માને છે, અને ભરૂચીઓ કવચિત્ વરઘોડો પણ કાઢે છે.

= આ ગૃહ અને સેવ્ય સ્વરૂપ માટે સંપ્રદાયમાં ઘણા મતભેદો પ્રચલિત છે. વડોદરા, કાશી અને સુરતમાં તે તે ગૃહાધિશો અને તદનુયાયિયો નિજગૃહોમાં ષષ્ઠગૃહ અને સેવ્યત્વે કમરા: શ્રીકલ્યાણરાયજી, શ્રીમુકુન્દરાયજી અને શ્રીબાલકૃષ્ણજીને સ્વીકારે છે. અમો તો વડોદરાસ્થ ગો. શ્રીવલ્લભલાલજીને ષષ્ઠગૃહાધીશ તરીકે સ્વીકારીએ છીએ. જે ગૃહના જે માલિક હોય તેના સેવ્ય સ્વરૂપને જ ષષ્ઠસ્વરૂપત્વે સ્વીકારવા નોઈએ. વંશવિભેદ ગૃહવિભેદ છે, સ્વરૂપવિભેદ નથી અન્યથા શ્રીમથુરેશજી સોથી પ્રથમ પદ્મનાભજીના માથે વિરાજ્યા તેથી પદ્મનાભજીનું ગૃહ કહેવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે.

- લેખક



રૂપે આજ સુધી વહ્યા જ કરે છે. આ પ્રકારની સાહિત્ય સેવા અને દ્રવ્ય ત્યાગથી શ્રીમદ્વિક્કલનાથજીની દિવ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

### દેશાટન

શ્રીમદ્વિક્કલનાથજીએ શ્રીમહાપ્રભુજીના લીલાપ્રવેશ પછી જગન્નાથપુરી અને દ્વારકા સુધી પર્યટન કર્યું હતું. પૂર્વ સમુદ્ર અને પશ્ચિમ સમુદ્રની વચમાં અનેકવાર પ્રવાસ કર્યો હતો. ગુજરાત કાઠીયાવાડ ઉપર તો એઓશ્રીએ મહાન ઉપકાર કર્યો હતો. છ વાર શ્રીદ્વારકાદીશના દર્શન કર્યા. ઉત્તર હિંદુસ્થાનમાં મથુરાથી આગળ પ્રવાસ કર્યો હોય એમ જણાતું નથી. તથાપિ લાહોર અને કાબુલ સુધી પુષ્ટિમાર્ગીય યેષ્ઠાવો હતા એમ બસોબાવન યેષ્ઠાવોની વાર્તા ઉપરથી જણાય છે. આ ઉપરથી પુષ્ટિમાર્ગનો તે સમયે ક્યાં સુધી અને કેટલો ફેલાવો થયો હતો તેની કલ્પના કરી શકાય છે. પુષ્ટિમાર્ગની પ્રતિષ્ઠા શ્રીવિક્કલનાથજીએ વધારી હતી. તેનો આટલા થોડા વખતમાં દૂર દેશોમાં ફેલાવો થવાનાં બે મુખ્ય કારણો કલ્પી શકાય છે. પ્રથમ તો શ્રીમદ્વિક્કલનાથજી તે સમયમાં ઘણા જ ઉચ્ચકોટીના વિદ્વાન આચાર્ય તરીકે પંકાયેલા હતા. લૌકિક અલૌકિક ઉભયવિદ્ય કાર્યમાં નિજ દક્ષતાને સંપૂર્ણ રીતે તત્સામયિક જનસમાજ સમક્ષ રજૂ કરી શક્યા હતા. અને તેમ કરવાની કોઈપણ તકને જવા દીધી ન હતી. અને દ્વિતીય એ કે એઓશ્રીના અનુયાયીઓ તથા શિષ્યો ઘણા રાજા મહારાજાઓ, રાજમંત્રીઓ અમલદારો અને વિદ્વાનો તથા બાહોશ પુરુષો હતા. આ બંને કારણોને લીધે વિદ્યુદ્ભ્રમે પુષ્ટિમાર્ગનો પ્રચાર થયો હતો. તે એટલે સુધી કે તે સમયના દેશાધિપતિ મોગલ શહેનશાહ અકબર અને તેના જનાનખાનાની બીબીઓ સુદ્ધા શ્રીવિક્કલપાદપદ્મમાં નિષ્ઠાવાળાં થયા. આ સર્વ કાર્યમાં દેશાટન પણ એક મુખ્ય સાધન હતું. અકેલથી પહેલીવાર સંવત ૧૬૦૦ની સાલમાં અને બીજી વાર ૧૬૧૩ની સાલમાં પધાર્યા હતા. ગુજરાતમાં આપશ્રીની પ્રવૃત્તિઓ ખાસ કરીને ગોધરા અને ખંભાતમાં હતી. શ્રીચુત તેલીવાલા લખે છે કે “શ્રીગોપીનાથજી અને એમના લાલજી શ્રીપુરુષોત્તમજીએ લીલા કરી ત્યાર પછી શ્રીગુસાંઈજીએ પ્રવાસ શરૂ કર્યો \* શ્રીગોપીનાથજીએ પુરુષોત્તમ પુરી (જગન્નાથ પુરી)નો પ્રવાસ કર્યો, અને તે પછી શ્રીગિરિરાજજીમાં ગોપાલાનુષ્ઠાનાર્થે પધાર્યા. ત્યારબાદ થોડા જ સમયમાં લીલામાં પ્રવેશ કર્યો. એટલે શ્રીગોપીનાથજીએ લીલા પ્રવેશ કર્યો તે પછી

\* When Gopinatha and his son Purushottama passed away, Vitthales'wara seems to have begun his tours. (see s'ri Vitthales'wara and Anu Bhashya P. 2)

શ્રીવિક્કલનાથજીએ પ્રવાસનો આરંભ કર્યો એમ કહેવામાં કાંઈ પણ હાનિ નથી. પરંતુ તે પૂર્વે શ્રીપુરુષોત્તમજીએ લીલા પ્રવેશ કર્યો હોય એમ અમને જણાતું નથી. કારણ કે કૃષ્ણદાસ અધિકારીના વિષયમાં કહેવાય છે, કે શ્રીવિક્કલનાથજીને શ્રીનાથજીની સેવા ન કરવા દેવામાં મુખ્ય હેતુ એ હતો કે ગોપીનાથજીના વહુજીએ કૃષ્ણદાસને કહ્યું કે મારા લાલજી (શ્રીપુરુષોત્તમજી) માલિક છે, નહિ કે શ્રીવિક્કલનાથજી. તમે શ્રીમહાપ્રભુજીના સેવક છો તેથી તમારે અમારે પક્ષ લેવો જોઈએ. આ ઉપરથી કૃષ્ણદાસે શ્રીવિક્કલનાથજીને શ્રીજીની સેવા કરતા અટકાવ્યા. તે પછી છ માસ સુધી શ્રીવિક્કલનાથજી ચંદ્ર સરોવર ઉપર બિરાજ્યા અને વિજ્ઞાસિ ગ્રંથ લખ્યો. તે જ અરસામાં શ્રીવિક્કલનાથજીના જ્યેષ્ઠ પુત્ર શ્રીગિરિધરજી અને ચતુર્થ પુત્ર શ્રીગોકુલનાથજીએ આગરા જઈને બીરબલ અને ટોડરમલને કહીને કૃષ્ણદાસને ત્યાં બોલાવ્યો. અને કેટ કર્યો. આ વાત શ્રીવિક્કલનાથજીએ સાંભળી ત્યારે નિજ પુત્રોને ઠપકો દીધો, અને પરિણામે નિજ પિતાના સેવક કૃષ્ણદાસને બંધનથી મુક્ત કરાવ્યો. ત્યારે કૃષ્ણદાસે પરમકૃપાલ શ્રીવલ્લભનન્દન એ પદ ગાયું. આ ઝઘડામાં જ શ્રીગોપીનાથજીના વહુજી નિજ પુત્રને અને કેટલાક પુસ્તકો વગેરેને લઈને દક્ષિણમાં ચાલ્યા ગયા. જો આ વાર્તા સત્ય હોય તો આ ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે જે સમયે શ્રીગિરિધરજી અને શ્રીગોકુલનાથજી આ પ્રકારની ખટપટ કરવા જેવડા મોટી ઉંમરના હતા તે સમયે શ્રીપુરુષોત્તમજી વિદ્યમાન હતા. શ્રીગિરિધરજી અને શ્રીગોકુલનાથજીનું પ્રાકટ્ય અનુક્રમે સંવત ૧૫૯૭ અને ૧૬૦૮ માં થયું છે. શ્રીગોકુલનાથજીની આ ખટપટ વખતે ઓછામાં ઓછી વીસ કે અઠાર વર્ષની જ ઉંમર ધારીએ તો ૧૬૨૬ કે ૧૬૨૮માં તો શ્રીપુરુષોત્તમજી વિદ્યમાન હોવા જોઈએ. સદ્ગત તેલીવાલા સાંપ્રદાયિક ઇતિહાસના ઉંડા અભ્યાસી હતા. તેમનું મત પણ વિચારણીય છે, તેમજ આ વાર્તાયે વિચારણીય છે. ઉભય મતમાં લગભગ અઠ્ઠાવીશ વર્ષ જેટલું મહાન અંતર વિદ્યમાન છે. તેલીવાળા લખે છે કે સંવત ૧૫૯૦ થી ૧૬૦૦ સુધીના સમયમાં શ્રીગોપીનાથજી અને તેમના લાલજીએ \* લીલા કરી. અમે સમજી શકતા નથી કે તેલીવાલાના આ મતને ક્યો આધાર છે? જો કોઈ સહૃદય વિદ્વાન આ વિષયમાં ખુલાસો કરશે તો અમે તેમના ઉપકૃત થઈશું.

\* S'ri Gopinath and his son Purushottama seem to have passed away between 1590 and 1600

(S'ri Vitthales'wara and Anubhashya P. 1)

શ્રીવિક્કલનાથજીનો ગુજરાતનો પ્રવાસ સંવત ૧૬૦૦માં ૬ થયો હતો. તે સમયે આપશ્રી શ્રીદ્વારિકા દર્શનાર્થે પધાર્યા હતા. પહેલા ઈડર પધાર્યા. તે સમયે ઈડરમાં ભારમલજી + નું રાજ્ય હતું. આપશ્રીની સાથે શ્રીમહાપ્રભુજીના સેવકો તથા બીજા પરદેશીઓ ઘણાં હતાં. ચાચા હરિવંશજી પણ સાથે જ હતા. તે વખતે આપશ્રીનું વય ૨૮ અઠાવીશ વર્ષનું હતું. આપશ્રી દ્વારિકા યાત્રા કરીને ફરી ગુજરાતમાં પધાર્યા, ત્યારે વસુરી ગામમાં રાજા ભારમલ વગેરે ઘણા સેવક થયા અને રાજા પુંજાના મામાના ગામમાં કોઠારી જેત, રામા, ભીમા, એમને ઘેર પોતે પધાર્યા. એ બધાની ઉપર અનુગ્રહ કર્યો. તે વખતે કોઠારી હરજીવન છ વર્ષનો હતો ત્યારે તેની માએ તેને શ્રીવિક્કલનાથજીને ચરણો ઘસ્યો. શ્રીવિક્કલનાથજીએ કૃપા કરીને અષ્ટાક્ષર મંત્ર આપ્યો.

રાજા ભીમા રાય પુંજાના મામા કેમ ધાય તે જણાતું નથી.

પછી ત્યાંથી વડાલી \* ગામમાં (આ એક કસ્બો છે, ઈડરથી ઉત્તરમાં ૧૨ માઈલ દૂર છે.) પધાર્યા અને ત્યાંથી રાજનગર પધાર્યા. રાજનગરમાં (અમદાવાદ મોટું રાજધાનીનું શહેર હોવાથી) ભગત્વસેવામાં ઉપયોગી ધાય તેવી વસ્તુઓ લેવા પધાર્યા. તે વખતે આપ ઝવેરીની પોળમાં એક પરદેશીનું ઘર કે જે ઘર હરિહરશાલની શેરી વચ્ચે હતું, તેમાં આપ બે દિવસ બિરાજ્યાં. તે પછી સિકંદરપુરીમાં પાછલી પોળમાં પડુવા ગોપાલદાસ અને રામદાસ નામે બે ભાઈઓ રહેતા, તે આપના સેવક થયા, એમને ઘેર ત્રણ દિવસ બિરાજ્યા. (આ સમયે ગોપાલદાસ નવ વર્ષના હતા.) તે વખતે રાજનગરમાં થોડા સેવક થયા હતા. પછી આપશ્રી અડેલ પધાર્યા.

આ સમયે ભારમલજી ૧૬૦૧માં ગુજરી જવાથી તેમના પુત્ર પુંજાજી ગાદીએ

૬ગુજરાતના પ્રવાસનું સંપૂર્ણ વર્ણન રા. રા. વસંતરામભાઈએ પ્રકટ કરેલ ઇતિહાસ પરથી લીધું છે.

+ ઈ.સ. ૧૫૪૩ માં ભારમલજી ગુજરી ગયા. તે પછી તેમના કુંવર પુંજાજી ગાદીએ બેઠા. પુંજાજી પછી તેમનો દીકરો નારાયણદાસ ગાદીએ બેઠો. એ મોટો તપસ્વી હતો. પ્રથમ ગાયે ખાધા પછી ગોમથમાં આવેલા જવ માત્ર ખાઈને એ નિર્વાહ ચલાવતો ૧૫૨૦ થી ૧૫૪૩ સુધી ભારમલજીનું રાજ્ય હતું અને તે પછી પુંજાજીનું. મહીકાંઠા ડીરેક્ટરી ૫૧૩-૧૪.

રાય નારાયણદાસ પછી રાય ભાણ ગાદીએ બેઠો. રાય ભાણને સુરજમલ અને ભીમસિંહ નામે બે પુત્રો હતા. સુરજમલનો પુત્ર રાયમલ હતો. પરંતુ તે નાની ઉંમરનો હોવાથી ભીમસિંહ રાજ્ય કરતો. (મહીકાંઠા ડીરેક્ટરી)

\* આ વડાલી ગામ કશિકસ ગોત્રના શ્રીગોડ બ્રાહ્મણોને મળેલું. તેથી અમો વડાલીઆ પાઠક કહેવાઈએ છીએ.

આવ્યા હતા. વળી સંવત્ ૧૬૧૩માં આપશ્રી દ્વારિકાજી દર્શનાર્થે પધાર્યા. તે સમયે આખા ઈડર દેશને કૃતાર્થ કર્યો. તે પછી છાલા યેષ્ઠાવ સંઘા વાધાને ઘેર પધાર્યા. હરિવંશજી અને ભંડારી ચાંપા સાથે હતા. ત્યાં વચ્છા ભક્ત ગોપાલદાસ દર્શનાર્થે આવ્યા, તે પછી આપ અસારવામાં કોઠારી ભાઈલાલ હરજીવનને ઘેર પધાર્યા. બે દિવસ રહીને દ્વારિકા પધાર્યા. શ્રીમહાપ્રભુજીના ઘણા સેવકો સાથે હતા. રામદાસ, નાગજી, દવે મહાદેવ, ગદા તથા બીજા સેવકો પણ સાથે હતા. તે રીતે દ્વારિકા થઈને પાછા આપ અસારવા પધાર્યા. ત્યાં દાણલીલા ગ્રંથનું વ્યાખ્યાન આપશ્રીએ કર્યું. પંદર દિવસ અસારવા બિરાજ્યાં. બધા યેષ્ઠાવોને ખૂબ સુખ આપ્યું.

### શ્રી પુરુષોત્તમ ક્ષેત્રની યાત્રા\*

સંવત ૧૬૧૬માં માઘવદિ ૧૩ ને દિને પુરીમાં શ્રીજગન્નાથજીના દર્શનાર્થે પધાર્યા. તે સમયે તેમની સાથે તેમના વહુજી શ્રીરુકિમણીજી મોટા બેટીજી શોભાજી અને મોટાલાલજી શ્રીગિરિધરજી હતા, તેઓ ત્યાં લગભગ છ માસ બિરાજ્યા હતા. પુરીમાં રથોત્સવ જોયા પછી તેઓ પાછા અડેલ પધાર્યા, જ્યારે આપશ્રી પુરી પધાર્યા ત્યારે રાસા નામના સુથારને ભેગો લીધો હતો. તેને પોતાની સાથે તેડી જવાનું કારણ માત્ર શ્રીજગન્નાથનો રથ જોવાનું હતું. એમ કહેવાય છે કે શ્રીવિક્કલેશ્વરજી જ્યારે અડેલ પધાર્યા ત્યારે તેવા નમૂનાનો રથ આપશ્રીએ તૈયાર કરાવ્યો અને પોતાના ઠાકોરજીને અડેલમાં રથમાં બેસાડીને સવારી કાઢતા હતા. આ પ્રકારે રથોત્સવ દરવર્ષે ઉજવાતો હતો. જ્યારે પોતે ગઢા + પધાર્યા ત્યારે પણ એ ક્રમ ચાલુ હતો. જ્યારે આપશ્રી મથુરા પધાર્યા ત્યારે રથોત્સવ જાહેરમાં મુસલમાની કચાટને લીધે ઉજવાતો બંધ કર્યો. જગન્નાથપુરીમાં પોતાનો વાસ હતો, તે દરમ્યાન ચૈતન્યના અનુયાયીઓ આપશ્રીને મળ્યા હતા. એમ કહેવાય છે કે સ્વામિન્યષ્ટક, સ્વામિનીસ્તોત્ર વિગેરે બીજા નાના સ્તોત્રો તે વખતમાં રચ્યા છે. મિ.તેલીવાલા માને છે કે તે સમયે શ્રીવિક્કલેશ્વર પર ચૈતન્યના અનુયાયીઓની થોડી ઘણી અસર થઈ છે. કારણ કે શૃંગારનું વર્ણન શ્રીમહાપ્રભુજીએ કોઈ સ્થલે પણ કર્યું નથી. પરંતુ અણુભાષ્યની સમાપ્તિમાં શ્રીનવનીતપ્રિયજીની સ્તુતિ કરી છે. તે ઉપરથી સમજી શકાય છે કે પાછળથી ચૈતન્ય મતની અસર x નાબુદ કરે છે.

\* આ વાર્તા સદ્ગત તેલીવાલાના S'ri Vitthales'wara and Anubhashaya નિબંધ ઉપરથી લીધી છે. + ગઢાનું વર્ણન મહારાષ્ટ્રી દુર્ગાવતીના પ્રસંગમાં આવશે x જુઓ S'ri Vitthales'wara and Anubhashya P.4

### એક સમીક્ષા

પરંતુ અમને તો એમ લાગે છે કે સંવત ૧૬૧૬માં જ્યારે શ્રીવિક્કલનાથજી પુરી પધાર્યા ત્યારે શ્રીચદુનાથજી સાડાદશ માસના જ હતા તેમજ શ્રીરઘુનાથજી ચાર વર્ષના શ્રીગોકુલનાથજી સાત વર્ષના હતા. આટલા નાના બાલકને અડેલમાં મૂકીને શ્રીરુકિમણીવહુજી પુરીમાં છ માસ સુધી રહે તે સંભવિત નથી. સોથી મોટા શ્રીગિરિધરજી અને શોભા બેટીજી સાથે હતા. ત્યારે આ નાના બાલકની સંભાળ કોણ કરતું ? અને તેમાંયે ૧૦.૫ માસના નાના બાલકને અડેલમાં મૂકીને આટલી લાંબી મુસાફરી કોઈ પણ માતા ન જ કરી શકે. જો શ્રીરુકિમણી વહુજી સાથે પધાર્યા હોય તો બધા બાલકો પણ સાથે જ હોવા જોઈએ.

બીજું તેલીવાલા જણાવે છે કે સ્વામિની સ્તોત્રાદિ ગ્રંથો ઉપરથી જણાય છે કે શ્રીવિક્કલેશ્વરજી પર ચૈતન્યની અસર જગદીશમાં થઈ હશે. પરંતુ એ વિષયમાં અમને સંદેહ થાય છે. કારણ કે અમે ઉપર જે હકીકત જણાવી છે, તે એક ઐતિહાસિક ઘટનાનું વર્ણન છે. આ વર્ણન શ્રીવિક્કલેશ્વરના સમયમાં જ લખાયું છે. રા.રા. વસંતરામભાઈને એ વર્ણન પ્રાંતીજના મંદિરમાંથી જે પુસ્તક મળ્યું તેને આધારે લેવાયું છે. અને તેલીવાલાનું મંતવ્ય કેવલ અનુમાન ઉપર આધાર રાખે છે. સંવત ૧૬૧૩માં બીજીવાર જ્યારે શ્રીવિક્કલનાથજી ગુજરાત પધાર્યા ત્યારે અસારવામાં દાણાલીલા ગ્રંથનું વ્યાખ્યાન કર્યું એમ ઉપર જણાવેલું છે. આ દાણાલીલા ગ્રંથ શૃંગાર રસમણ્ડનનો જ ભાગ છે. સ્વામિન્યષ્ટક, સ્વામિનીસ્તોત્ર વિગેરેમાં જે પ્રકારનું વર્ણન છે, તે જ પ્રકારનું જ કિંબહુના તેથીએ ઉત્કટ શૃંગાર રસનું અને શ્રીસ્વામિન્યાદિનું વર્ણન આ ગ્રંથમાંયે મોજુદ છે. શ્રીવિક્કલેશ્વરે આ વ્યાખ્યાન કર્યું તે પૂર્વે આ ગ્રંથ રચાયો છે, એ તો સિદ્ધ જ છે. અર્થાત્ ૧૬૧૩ની પહેલાં આ ગ્રંથ રચાયો છે. ૧૬૧૬માં જગદીશ યાત્રાનું વર્ણન તેલીવાલા પોતે જ કરે છે. જો ચૈતન્યની અસર જગદીશમાં થઈ અને તે પછી શ્રીસ્વામિનીજી અને શ્રીકૃષ્ણના શૃંગારનું વર્ણન શ્રીવિક્કલેશ્વરે કર્યું એમ માનવામાં આવે તો તત્પૂર્વે ૧૬૧૩માં દાણાલીલાનું વ્યાખ્યાન કેમ સંભવે ? આ ઉપરથી અમે એમ સમજી શકીએ છીએ કે શ્રીવિક્કલેશ પર ચૈતન્યની કાંઈપણ અસર ન હતી. ગીત ગોવિંદાદિમાં જે પ્રકારે શ્રીરાધાકૃષ્ણનું વર્ણન છે, અને શ્રીસુબોધનીજીમાં તથા પુરાણાન્તરમાં જે વર્ણનો મળે છે, તેને જ આધારે સ્વામિનીસ્તોત્રાદિ ગ્રંથો રચાયા છે. આ ગ્રંથોમાંથી શ્રીમહાપ્રભુજીના મંતવ્યથી વિરુદ્ધ અને ચૈતન્યને અનુકૂલ એવું એકે પ્રમાણ

તેલીવાલાએ ટાંક્યું નથી. ચૈતન્ય મતમાં પણ આ પ્રકારની રાધા-કૃષ્ણની ભાવના અસ્તિત્વ ધરાવતી હોય, તો તે ઉપરથી એમ માની લેવાનું કાંઈપણ કારણ નથી કે તેવી ભાવનાઓ ધરાવનાર સર્વજ ચૈતન્યના મંતવ્યને અનુસરે છે. એમ તો ત્યારે જ કહેવાય કે આ પ્રકારનું તત્ત્વ ચૈતન્યે જ પ્રકટ કર્યું હોય; જેમ મહાપ્રભુજીએ પુષ્ટિમાર્ગ કર્યો. પરંતુ તેમ કહેવું કે સિદ્ધ કરવું ઘણું કઠિન છે. બ્રહ્મ યેવર્તાદિ પુરાણો અને ગીત ગોવિંદાદિ કાવ્યો ઉપરથી જણાય છે, કે આ ભાવનાઓ ઘણી પ્રાચીન છે. ચૈતન્ય સમકાલીન જ ભાવનાઓ નથી. તેથી તેલીવાલાએ જણાવેલા દ્વિતીય વિકલ્પનીએ અમારા પર અસર થતી નથી.

### ત્રણ વર્ષ અડેલમાં

શ્રીજગન્નાથજીના દર્શન કરીને પાછા આવ્યા, ત્યારથી ૧૬૧૮ સુધી લગભગ ત્રણ વર્ષ અડેલમાં જ બિરાજ્યાં. શ્રીજગન્નાથજીમાં જે પ્રકારે રથોત્સવ થાય છે, તે પ્રકારનો રથોત્સવ અહીંયાં કરવાની શરૂઆત કરી હતી. તે આ બરાબર ચાલુ હતી. દર વર્ષે તેવો ઉત્સવ થતો હતો.

### વિક્કલમણ્ડન ગ્રંથની રચના

પુરુષોત્તમ ક્ષેત્રથી પાછા પધાર્યા, તે પછી અડેલમાં જ રહીને વિક્કલમણ્ડન ગ્રંથ લખ્યો એમ સદ્ગત તેલીવાલા જણાવે છે. એમને સંવત ૧૬૧૮ ના વૈશાખ સુદિ ૧૨ ના દિવસે પૂર્ણ થયેલી વિક્કલમણ્ડનની પ્રત મળી હતી. તે ઉપરથી આ અનુમાન છે. ૧૬૧૬ થી ૧૬૧૮ સુધીમાં આ ગ્રંથ રચાયો છે, આ ગ્રંથની રચના તે સમયમાં થઈ હશે જ. કારણકે તે જ સમયે મધુસૂદન સરસ્વતીની અદ્વૈત સિદ્ધિ પણ પ્રસિદ્ધ થઈ હતી સંવત્ ૧૬૦૦ પછી અદ્વૈત સિદ્ધિ રચાઈ એમ ઘણા વિદ્વાનોનું માનવું છે. અદ્વૈત સિદ્ધિની સામે તેવો જ ગ્રંથ લખવાની તે સમયે ખાસ જરૂર હતી. તે જમાનો તર્કનો હતો. તેજ સમયે તત્ત્વચિન્તામણિ ઉપર રઘુનાથ ભટ્ટાચાર્યે દીધિતિ પ્રસિદ્ધ કરી હતી અને એમના જ શિષ્યો મથુરાનાથ અને જગદીશે અનુક્રમે માધુરી અને જગદીશી દીકાઓ તત્ત્વચિન્તામણિ અને દીધિતીની લખી હતી. તત્ત્વચિન્તામણિકાર ગંગેશોપાધ્યાયના પુત્ર વર્ધમાન પછી થોડા જ વખતમાં હરિમિશ્ર થયા. તેમના ભત્રિજા જયદેવે તત્ત્વચિન્તામણિ ઉપર આલોક લખ્યો. એમના જ સમકાલીન તત્ત્વચિન્તામણિના દીકાકાર વાસુદેવ સાર્વભૌમના ચાર ઉત્તમ શિષ્યો હતા. (૧) ચૈતન્ય જેઓ બંગાળના યેષ્ઠાવ સંપ્રદાયના થયા,

(૨) કૃષ્ણાનંદ જેઓ સ્વતંત્ર તાંત્રિક થયા, (૩) રઘુનંદન જેઓ ધર્મશાસ્ત્રી થયા, અને (૪) રઘુનાથ જેઓ અપૂર્વ નેયાધિક થયા. આ રઘુનાથ જ દીધિતિકાર છે. અર્થાત્ શ્રીવિક્કલેશ્વરના સમકાલીન પંડિતોમાં તાર્કિકોનો મોટો ભાગ હતો. કાશીમાં તે સમયે તર્કશાસ્ત્રની સારી પ્રતિષ્ઠા હતી. અને બંગાળા મિથિલા તથા બિહાર-ઓરિસામાં તો તેનું ઘર જ હતું. કાશીના પંડિતોનો બંગાળ, મિથિલા અને ઓરિસાના પંડિતો સાથે ઘણો સંપર્ક હતો. ચૈતન્ય અને રઘુનાથ ભટ્ટાચાર્ય તથા તરિછિષ્ય મથુરાનાથ અને જગદીશના સમયમાં તર્કશાસ્ત્ર ઉત્તરિના શિખર સુધી પહોંચી ગયું હતું તે દીધિતિ, જાગદીશી અને માથુરી વગેરે ગ્રંથો ઉપરથી જાણી શકાય છે. મહેન્દ્ર પંડિત પણ કાશીમાં તે સમયના અદ્વિતીય નેયાધિક કે તાર્કિક મોજૂદ હતા. તાર્કિક પદ્ધતિએ તે સમયે પૂર્વમીમાંસા, અને વેદાન્તના ગ્રંથો લખવાની શરૂઆત થઈ ગઈ હતી. તે જ પ્રણાલિકાને અનુસરીને મધુસૂદન સરસ્વતીએ અદ્વૈત સિદ્ધિ લખી. આ સર્વ ગ્રંથોને જોઈને શુદ્ધાદ્વૈત મતનો કોઈ વાદગ્રંથ લખવા વિઠ્ઠલનાથજીને ઈચ્છા થાય તે સ્વાભાવિક હતું. તર્કની કસોટી ઉપર કસેલો અને માયાવાદીની સામે મૂકી શકાય તેવો વાદ ગ્રંથ આ વિઠ્ઠલનાથજી જ છે. શ્રીપુરુષોત્તમ ક્ષેત્રની યાત્રા સમયે બંગાળી અને મૈથિલ તાર્કિકો સાથે શ્રીવિક્કલેશ્વરજીનો મેળાપ થયો હોવો જ જોઈએ. સામ્પ્રદાયિક વાદ ગ્રંથની ખોટ જણાઈ હોય એમ અનુમાન કરી શકાય છે અને તે ખોટ યાત્રા પૂર્ણ થતાં જ પૂર્ણ કરી હશે. વિઠ્ઠલનાથજી ગ્રંથ લખાવો તે સમયે શ્રીવિક્કલેશ્વરજીનું વય ૪૪ થી ૪૭ સુધીનું હોવું જોઈએ. અને પૂર્વપક્ષી શ્રીગિરિધરજીનું વય ૧૯ વર્ષનું જ હતું. સામ્પ્રદાયિકો કહે છે કે શ્રીગિરિધરજીએ માયાવાદનો પક્ષ લઈને પૂર્વ પક્ષો કર્યા અને શ્રીવિક્કલનાથજીએ તેનું સમાધાન કર્યું. આ વાર્તાને ટીકાકારો પણ પ્રમાણભૂત માને છે. આ વાર્તા ઉપરથી અમે એવા નિશ્ચય ઉપર આવીએ છીએ કે કદાચ અદ્વૈતસિદ્ધિ વગેરે ગ્રંથો જોઈને યુવાન શ્રીગિરિધરજીને સાંપ્રદાયિક વાદ ગ્રંથની આવશ્યકતા જણાઈ હશે. શ્રીવિક્કલેશ્વરજી પણ તેવો જ વિચાર તે સમયે કરતા હોય, અથવા નિજ પુત્રની ઈચ્છા પૂર્ણ કરવા વાદ ગ્રંથ લખવાનું સ્વીકાર્યું હોય, તો પિતૃચરણને ઉક્ત ગ્રંથમાં લેખનના કાર્યમાં મદદરૂપ થવા શ્રીગિરિધરજીએ વિઠ્ઠલનાથજીના ગ્રંથમાં પૂર્વપક્ષો કર્યા હશે કે ઉમેરાવ્યા હશે. આ ગ્રંથની સમીક્ષા અમે શુદ્ધાદ્વૈત સામ્પ્રદાયિક સાહિત્યના ઇતિહાસમાં કરવા ધારી છે. જો ભગવદિચ્છા અનુકૂલ હશે, તો વિઠ્ઠલનાથજીના સેવામાં અલ્પકાલમાં જ આ ગ્રંથ રજૂ કરી શકાશે.

જગદીશના દર્શન કરીને પદ્યાર્થ, તે પછી થોડા જ દિવસમાં (એકાદ બે

વર્ષમાં) શ્રીરુકિમણીવહુજી લીલાસ્થ થયા. અને પછી અચાનક ૧૬૧૯ માં મુસલમાનોનો ઉપદ્રવ શરૂ થયો. ત્યારે કુટુંબ સહિત અડેલથી ચાલ્યા, તે સોથી પ્રથમ ટીકડી પદ્યાર્થ. ત્યાંથી ખીરક પદ્યાર્થ અને ત્યાંથી બાંધવગઢ પદ્યાર્થ. આ બાંધવગઢ બુદેલખંડમાં આવ્યું છે. ત્યાંનો રાજા રામચંદ્ર હતો. શ્રીવિક્કલનાથજીના જ્યેષ્ઠ પુત્ર શ્રીગિરિધરજીના વહુજી શ્રીભામિનીવહુજીના સગાસંબંધીઓ એ રાજા સાથે સારો સંબંધ ધરાવતા હતા. અત્યારે પણ ઘણા તેલંગ ભટ્ટો બુદેલખંડમાં રહે છે. એ ટીકમ ગઢસ્થ કહેવાય છે. તથાપિ એમનો સમાવેશ સાગરસ્થોમાં જ થાય છે. આ ટીકમ ગઢસ્થ ભટ્ટોનો તે પ્રાંતના રાજાઓ સાથે અત્યારે પણ સારો સંબંધ છે. અત્યારે એમનો કોઈ ગોસ્વામી બાલક સાથે કન્યા લેવા આપવાનો કે ભોજનનો સંબંધ નથી તથા કવચિત્ ગોકુલસ્થ ભટ્ટોની સાથે તેઓ સંબંધ ધરાવે છે. શ્રીગિરિધરજીના સાસરીયાએ રાજારામચંદ્ર સાથે ઘણો જ સારો સંબંધ ધરાવતા હોવાથી એણે શ્રીવિક્કલનાથજીને ઘણું સન્માન આપ્યું અને પોતે સેવક થયો. ત્યાં ઘણા દિવસ સુધી રહ્યા. ત્યાં જ સંવત ૧૬૧૯માં શ્રીગિરિધરજીના મોટા લાલજી શ્રીમુરલીધરજીનું વિજયાદશમીને દિને પ્રાકટ્ય થયું એમ સદ્ગત તેલીવાળા કહે છે. પરંતુ અમને જે વંશાવલીઓ મળી છે તેમાં ૧૬૩૦માં શ્રીમુરલીધરજીનું પ્રાકટ્ય ગોકુલમાં જણાવ્યું છે. જો સદ્ગત તેલીવાળાએ મધુસૂદનભટ્ટ કૃત વંશાવલી ઉપરથી આ વર્ણન લીધું હોય તો તે સત્ય હોવાનો સંભવ છે. અમારી પાસે જે વંશાવલી છે, તે છાપેલા કલ્પવૃક્ષો અને પોરબંદરવાળા ભગવદીય પુરુષોત્તમદાસના સંગ્રહને આધારે જામનગરના યેષ્ઠાવભાઈ મણિલાલ ત્રિકમજી મોઢે લખી છે. પોરબંદરવાળા ભગવદીય પુરુષોત્તમદાસની પાસે જે વંશાવલી છે, તે ઘણી સારી અને પ્રમાણિક છે, એમ ઘણા યેષ્ઠાવભાઈ માન્યતા છે. તથાપિ મધુસૂદનભટ્ટ કૃત પદ્યાત્મક વંશાવલીનો હું તેથી વિશેષ પ્રમાણરૂપે સ્વીકાર કરું છું એ મધુસૂદન ભટ્ટ પંચનદી માધવ ભટ્ટના પુત્ર અને આત્રેય બાલકૃષ્ણભટ્ટના શિષ્ય ગોકુલ કે મહાપનમાં રહેતા હતા, એમ મહાકવિ મયૂરકૃત સૂર્યશતકની ટીકામાં તે પોતે જ લખે છે. આ ટીકા અમને જામનગરના પ્રશ્નોરાનાગર યેષ્ઠાવ શ્રીયુત્ કેશવલાલ શાસ્ત્રીજીની કૃપાથી પ્રાપ્ત થઈ છે. આ પુસ્તક સંવત ૧૭૧૭માં લખ્યું છે. અને તેલીવાળાને જે વંશાવલી મળી છે, તે પણ ભગભગ તે જ અરસામાં લખાયેલી છે, તે ઉપરથી સમજી શકાય છે કે ઉભય ગ્રંથના લેખક મધુસૂદન એક જ છે. આ વિઠ્ઠલનાથજી અને સજાતીય તેમજ નિકટના સંબંધી પંચ નદી કુલાવતંસ શ્રીમધુસૂદન ભટ્ટને જે સારી વંશાવલી અને સાચો ઇતિહાસ મળ્યો હશે તે અવ્યયે કદાચ ન મળ્યો હોય એમ પણ સંભવ તો

છે જ. તેથી મધુસૂદન ભટ્ટ કૃત પદ્યાત્મક વંશાવલીને હું વિશેષ રૂપે પ્રમાણ માની શકું.

રાજા રામચંદ્ર પાસે તાનસેન નામનો પ્રસિદ્ધ ગયેયો રહેતો હતો. પાછળથી બાદશાહના દબાણને લીધે તેને બાદશાહને સોંપી દેવાની ફરજ પડી હતી. એ તાનસેન અહીંયાં (બાંધવગઢમાં) શ્રીવિક્કલનાથજીના પરિચયમાં આવ્યો, એમ સદ્ગત તેલીવાલાએ લખ્યું છે. કદાચ એ તાનસેન રાજા રામચંદ્રના દરબારનો ગયેયો હશે, પરંતુ તે શ્રીવિક્કલનાથજીના પરિચયમાં ગોકુલમાં આવ્યો એમ તાનસેનની વાર્તા + ઉપરથી જ જણાય છે.

### શ્રીમતી દુર્ગાવતી મહારાણી

બાંધવગઢથી ગઢા-મંડલામાં મહાસતી, ભક્તશિરોમણી, વીરપત્ની, વીરમાતા રણરંગમાં પ્રાણાર્પણ કરનારી ઇતિહાસ પ્રસિદ્ધ શ્રીમતિ દુર્ગાવતી મહારાણીને ઘેર પધાર્યા; તે દરમ્યાન ઓડછા પણ પધાર્યા હતા. ત્યાં મધુકરશાહ નામે \*રાજા રાજ્ય કરતો હતો. મધુકરશાહની યેષ્ઠાવો પ્રત્યે રહેલી અડગ શ્રદ્ધા બસોબાવન યેષ્ઠાવોની વાર્તામાં વર્ણવેલી છે. કેટલાક એમ પણ કહે છે કે ગઢાથી પાછા પધારતા ઓડછા પધાર્યા હતા. આનો નિર્ણય કરવાનું સાધન અમારી પાસે નથી. પરંતુ એટલું તો નક્કી જ છે, કે આપત્રી ઓડછા પધાર્યા હતા. ત્યાં પણ સજાતીય તેલંગ બ્રાહ્મણોની રાજ્યમાં સારી પ્રતિષ્ઠા હતી અને કેટલાક અત્યારે પણ પ્રતિષ્ઠા સાથે રહે છે.

ગઢા જબલપુર પાસે નર્મદા નદીને કાંઠે આવેલું રમણીય એક ડુંગરી પર વસેલું ગામ છે. અત્યારે તો તે નામશેષ જ રહ્યું છે. પરંતુ ત્યાં જઈને કેટલાક ભ્રાવણો જોઈને એ રાજધાનીના શહેરની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે. જબલપુરથી નર્મદાના ભેંદાઘાટનું કે Marble Rockનું રમણીય દૃશ્ય જોવા જનારની દૃષ્ટિએ એ ભ્રાવણો પડ્યા પિના રહેતા નથી. મહારાણી દુર્ગાવતીએ ગઢાથી લગભગ એક માઈલ નર્મદા દૂર હોવાથી પ્રજાજનોને પાણીનું ઘણું દુઃખ હતું તે દૂર કરવા માટે બાવન તલાવ ખોદાવ્યા હતા. જે શહેરમાં બાવન તલાવ વિદ્યમાન હોય તે શહેરનું ઐશ્વર્ય

+ જુઓ બસો બાવન યેષ્ઠાવની વાર્તા યેષ્ઠાવ ૨૩૭.

\* સંવત ૧૬૩૫માં ઓડછા અને બુદેલખંડના શાસક મધુકરશાહ ઉપર ચઢાઈ કરવા માટે બાદશાહ અકબરે સાદિકખાંને મોકલ્યો હતો.

આ રાજાની વાર્તા બસોબાવનમાં છે. પૃ. ૨૪૫

કેટલું હશે તેની કલ્પના કોઈપણ વિચારશીલ વ્યક્તિ કરી શકે તેમ છે. અત્યારે પણ રાણી તલાવ નામથી આ સ્થલ ઓળખાય છે. મહારાણી દુર્ગાવતીના મહેલનું ભ્રાવણ એક ટેકરી પર છે. એ મહેલની અગાસી ઉપરથી બાવન તળાવોનું સુંદર દૃશ્ય જોઈ શકાય છે. અહીંયાં એક તલાવ પાસે શ્રીવિક્કલનાથજીની બેઠક છે. બેઠકથી મહારાણી દુર્ગાવતીની ટેકરી લગભગ એક માઈલ દૂર હશે, આ સ્થલે પ્રસંગવશાત્ એ પ્રાતઃ સ્મરણીયા મહારાણીનો ટૂંકો પરિચય આપવો અસ્થાને નહિ ગણાય. મધ્યપ્રાંતોનો કેટલોક ભાગ 'ગોંડવાણા' નામથી ઓળખાય છે. મધ્યપ્રાંતોમાં ગોંડ નામની એક ભિંષ જેવી જાતિ છે. આ લોકો ઘણું કરીને ડુંગરાળ પ્રદેશોમાં જ રહે છે. અત્યારે જે ભાગ છત્તીસગઢ કમિશ્નરી, રાયપુર કમિશ્નરી નર્મદા કમિશ્નરી અને જબલપુર કમિશ્નરીની વચ્ચે આવેલો છે તે ભાગ એ ગોંડ જાતિના શાસનમાં હતો. કેટલાકો કહે છે, કે એ ગોંડ જાતિ કે જે અત્યારે તદ્દન જંગલી જેવી સ્થિતિમાં છે, તે જાતિથી અતિરિક્ત ગોંડ જાતિના રાજાઓના તાબામાં આ ભાગ હતો, Indian Antiquary અને gazetteersમાં તથા રાય બહાદુર હીરાલાલ Extra Assistant Commissioner અને Rusal નામના એક યુરોપીયન અમલદારે મળીને લખેલા The Tribes and castes of the central provinces of india નામ પુસ્તકમાં આ ગોંડ જાતિ અને ગોંડવાણા રાજ્ય માટે તેમજ દુર્ગાવતી મહારાણીના વિષયમાં ઘણી જાણવા લાયક વાર્તાઓ મલી આવે છે. વિસ્તાર ભયથી ટૂંકુ વૃત્તાન્ત લખ્યું છે. રાયબહાદુર હીરાલાલ લખે છે કે એ ગોંડ રાજાઓ પોતાને રાજપૂત કે રાજગોંડના નામથી ઓળખાવતા હતા. તેમની રહેણી કરણીઅત્યારની ગોંડ જાતિ જેવી જંગલી ન હતી, પ્રત્યુત અન્ય રજપૂત રાજાઓના જેવી જ હતી. ગઢા-મંડલા (આ બંને જુદા જુદા સ્થલો છે, તથાપિ સંયુક્ત નામથી જ ઓળખાય છે)ના મહારાજા સંગ્રામ સિંહના પુત્ર દલપતિશાહ વેરે રાજકુમારી દુર્ગાવતીનો વિવાહ થયો હતો. આ વિવાહ રુકિમણી હરણનું સ્મરણ કરાવે છે. દલપતિશાહના સૌંદર્ય અને વીરતા પર દુર્ગાવતી મોહિત થઈ ગઈ હતી. તેનો જન્મ ચંદેલરાજા શાલિવાહનને ઘેર શુદ્ધ રાજપૂત વંશમાં થયો હતો. દુર્ગાવતીનો પિતા એ ગોંડ રાજા સંગ્રામ સિંહના કુલને પોતાની સમાન ઉચ્ચ કુલ માનતો ન હોવાથી સમાન ઉચ્ચ કુલમાં દુર્ગાવતીએ દલપતિશાહને પત્ર લખીને પાણિગ્રહણ કરવા સૂચિત કર્યું. દલપતિશાહે શાલિવાહન પર આક્રમણ કર્યું અને તેને પરાસ્ત કરીને દુર્ગાવતીને લઈને સિંગોલગઢ આવ્યો. ત્યાં જ દુર્ગાવતીનું વિધિપુરઃસર લગ્ન થયું અને દલપતિશાહે ગઢાથી રાજધાની ઉઠાવીને સિંગોલગઢમાં કાયમ કરી. દલપતિશાહના પિતા સંગ્રામ સિંહે ગોંડવાણા રાજ્યની ઘણી ઉન્નતિ કરી.

આ ગોંડ રાજાઓ કોઈ વેળા ગઢામાં અને કોઈ વેળા મંડલામાં રહેતા હતા. દલપતિ શાહ દુર્ગાવતી સાથે સિંગોલગઢમાં કે ચોરાગઢમાં રહેતો હતો. એ સિંગોલગઢ સાગર અને ગઢાની વચમાં ઉંચી ટેકરીઓ પર વસાવ્યું હતું. અને ચોરાગઢ અત્યારના નરસિંહપુર ગ્રામમાં છે. પરંતુ જ્યારે એ મહારાણીએ શ્રીવિક્કલનાથજીને પધરાવ્યાં હતા ત્યારે ગઢામાં જ રહેતા હતા. શ્રીવિક્કલનાથજી ૧૬૧૮માં ગઢે પધાર્યા હતા. ત્યાં મહારાણી દુર્ગાવતીના આશ્રિત ઘણા તૈલંગ બ્રાહ્મણો રહેતા હતા. દુર્ગાવતીને વીર નારાયણ નામનો એક પુત્ર અવતર્યો હતો. જ્યારે આ પુત્ર ત્રણ વર્ષનો હતો ત્યારે દલપતિશાહ હરિશરણ થયા હતા. ત્યાર પછી દુર્ગાવતી રાણી ઘણું કરીને ગઢામાં જ રહેતી હતી, અને વીરનારાયણના કારભારી તરીકે એ રાજ્યનું રક્ષણ કર્યું હતું. ઇતિહાસકારો કહે છે કે વિજયનગર નામનું હિંદુ સ્વતંત્ર રાજ્ય જ્યાં રાજા કૃષ્ણદેવની સભામાં મહાન આચાર્ય શ્રીવલ્લભાચાર્યજીએ વિજય મેળવી આચાર્ય પદ પ્રાપ્ત કર્યું હતું, તે રાજ્ય પછી આ મહારાણી દુર્ગાવતીનું જ સ્વતંત્ર હિંદુ રાજ્ય હતું. તેનો રાજ્ય કારભાર નિર્દોષ હતો. તેના રાજ્યમાં પ્રજા સુખી હતી. ઘણા બ્રાહ્મણોને એ હિંદુરાજ્યમાં આશ્રય મળ્યો હતો. સંવત ૧૮૨૧ (ઇ.સ. ૧૫૬૪)માં અકબર બાદશાહના સેનાપતિ આસફખાને એ રાણી દુર્ગાવતીના ગઢાપર ચઢાઈ કરી હતી. બાહોશ ઇતિહાસકારો કહે છે કે અકબરનો ઘેરો પોતાની મોટાઈનો બેવકુફી રીતે અંત લાવવો એ સિવાય બીજું કંઈ નથી. જ્યારે શ્રીવિક્કલેશ્વરજી પહેલીવાર ગઢા પધાર્યા ત્યારે રાણીતલાવ કે જમનીઆ તલાવ ઉપર ઉતારો રાખ્યો હતો. મહારાણી દુર્ગાવતી શ્રીવિક્કલેશ્વરજીની ઋષિઓને છાજતી વર્તણૂંક, ઉત્તમ વિદ્યા શ્રીકૃષ્ણ પ્રત્યે અખૂટ ભાવ જોઈને આપશ્રીના ઉતારે વારંવાર આવતી હતી. થોડા દિવસમાં જ રાણી ઘણા સંબંધમાં આવી ગઈ. અને તે બ્રહ્મસંબંધ લઈને ભગવત્સેવા કરવા લાગી. રાણી દુર્ગાવતી શ્રીવિક્કલનાથજીને દ્વિતીય લગ્ન કરવા માટે આગ્રહ કરવા લાગી. પ્રથમ તો આપશ્રીની ઈચ્છા દ્વિતીય લગ્ન કરવાની હતી જ નહિ. દુર્ગાવતીને આપશ્રીએ જણાવ્યું કે છ પુત્રો અને ચાર પુત્રીઓ હોવા છતાં દ્વિતીય લગ્ન કરવું અયોગ્ય છે. ભાવસિંધુ ગ્રંથમાં લખે છે કે દુર્ગાવતીએ શ્રીગિરિધરજી, શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીરઘુનાથજી દ્વારા પણ ઘણો આગ્રહ કર્યો, આખરે મહારાણી દુર્ગાવતીના દબાણથી શ્રીવિક્કલનાથજીએ કૃષ્ણરાય નામના તૈલંગ બ્રાહ્મણની કન્યા પદ્માવતી વેરે સંવત ૧૬૨૦ના વૈશાખ શુદ્ધ ત્રીજ (અક્ષય તૃતીય)ના દિને લગ્ન કર્યું. આ લગ્નમાં દુર્ગાવતીએ ઘણું દ્રવ્ય ખર્ચ્યું. ભાવસિંધુકાર જણાવે છે કે આ વિવાહોત્સવમાં આમ અઢળક દ્રવ્ય વ્યય કરવાનું કારણ એ હતું કે પ્રથમ સોમવતી પર્વણી (કેટલાકના મત

પ્રમાણે સૂર્યગ્રહણ) નિમિત્તે ૧૦૮ એકસો આઠ ગામ ભેટ કર્યા હતા. પરંતુ શ્રીવિક્કલનાથજીએ સ્વીકાર્યા નહિ. પ્રત્યુત સજાતીય તૈલંગ બ્રાહ્મણોને એ ગામ આપી દીધા. આ અપૂર્વ ત્યાગ જોઈને રાણીની શ્રદ્ધા ડિગ્ગુણિત થઈ, અને તેથી વિવાહોત્સવ નિમિત્તે ઘણું દ્રવ્ય ભેટ કર્યું. દુર્ગાવતીએ આપેલા એકસો આઠ ગામ શ્રીવિક્કલનાથજીએ સજાતીય તૈલંગ બ્રાહ્મણોને આપ્યા. તે પૈકી ઘણા કુટુંબો અત્યારે પણ એ ગામના જ ઉત્પત્તથી નિર્વાહ ચલાવે છે, આ કુટુંબો સાગરસ્થોમાં જ છે. જબલપુર વાળા દિવાન બહાદુર શેઠ જીવનદાસજીના કારભારી શ્રીચુત છોટેલાલ સાહેબ (રિટાયર્ડ એક્સટ્રા આસિસ્ટન્ટ કમિશ્નર)ની સાથે આ વિષયમાં વાર્તાલાપ થયો હતો. તેઓ કહે છે, અમારા કેટલાક કુટુંબોને દુર્ગાવતીએ સ્વતંત્ર દાન પણ આપ્યું હતું અને કેટલાક કુટુંબોને શ્રીવિક્કલેશ્વરે ગામ આપ્યા હતા. તે પૈકી કોઈક તો દુર્ભિક્ષાદિ અનેક કારણોને લીધે ઉજ્જડ થઈ ગયા, અને કેટલાક ઇનામદારોની ગેરવર્તણૂંકને લીધે વેચાઈ ગયા. તે પૈકી અમુક ગામો તો દિવાન બહાદુરે કે તેમનાં પૂર્વજોએ પણ ખરીદ્યા છે. અત્યારે એ સ્મરણ માત્ર છે. પ્રમાણરૂપે ગણી શકાય તેવા તો થોડાક જ ગામ મલી આવે છે. સંપ્રદાયના પ્રસિદ્ધ વિદ્વાન વયોપૂજ્ય પૂજ્ય બાળશાસ્ત્રીજી કહે છે કે તે ગ્રામોની પ્રશસ્તિઓ પણ અત્યારે મોજુદ છે, અને તે પૈકી થોડીક તો તેઓના સુપુત્ર પંડિત કણ્ઠમણિજી પાસે છે, ઘણો ઘણો પ્રયાસ કર્યો છતાં અમને એ પ્રશસ્તિઓ મલી નથી. પાઉડત કણ્ઠમણિજીને પ્રાર્થના કરીએ છીએ કે તેઓ આ પ્રશસ્તિઓ જાહેરમાં મૂકીને સામ્પ્રદાયિક ઇતિહાસ પર પ્રકાશ પાડશે.

### બ્રહ્મદાસનો ભાગ્યોદય

શ્રીવિક્કલનાથજી ગઢા-મંડલમાં બિરાજતા હતા તે દરમિયાન બ્રહ્મદાસ નામે બ્રાહ્મણ આપશ્રીની પાસે આવી પહોંચ્યો. તેને શ્રીવિક્કલેશ્વરજીએ પોતાનું પ્રસાદી વસ્ત્ર આપીને આશીર્વાદ આપ્યો, તે જ ક્ષણથી તેનો ભાગ્યોદય થયો. બ્રહ્મદાસનું દેવ સારું થતું ગયું અને મોગલ સમ્રાટ અકબર બાદશાહનો એક વિશ્વાસુ સલાહકાર થઈ પડ્યો, જે અત્યારે બીરબલ તરીકે ઓળખાય છે.

### ગઢા મણ્ડલાથી વિદાયગીરી

શ્રીવિક્કલનાથજીનું દ્વિતીય લગ્ન થયું, તે પછી મહારાણી દુર્ગાવતીએ પોતાના મહેલમાં પધરામણી કરી, તે સમયે ગઢાનગરને સારી રીતે શણગારવામાં આવ્યું હતું, છ બાલકો, ચાર બેટીજી અને શ્રીગિરિધરજી, શ્રીગોવિન્દરાયજી અને



શ્રીબાળકૃષ્ણજીના વહુજી સહિત નવપરિણીત યુગલ સ્વરૂપની પદ્મરામણી થઈ. રસ્તાઓ પુષ્પમાલા અને આમ્રપદ્મવૃક્ષો તથા ધ્વજા પતાકાથી સુશોભિત કર્યા હતા. શંખ, ભેરી વગેરે મંગલવાદ્યો વાગતા હતા અને રસ્તામાં ઠેરઠેર પુષ્પવૃષ્ટિ થતી હતી. જ્યારે શ્રીવિક્કલનાથજી દુર્ગાવતીના પ્રાસાદના સિંહદ્વાર સુધી પધાર્યા ત્યારે બ્રાહ્મણોએ વેદઘોષ કરીને સ્વાગત કર્યું. સિંહદ્વારથી દરબાર હોલ સુધી મખમલ પાથરી હતી. અને ચોખાની જગ્યાએ મોતી રાખ્યા હતા. અનેક પ્રકારના વસ્ત્ર આભૂષણો ભેટ કર્યા અને કપૂરની આરતી ઉતારી. ત્યાર પછી આનંદપૂર્વક જમનીયા તલાવ ઉપર પધાર્યા. કેટલાક દિવસ રહીને શ્રીવિક્કલનાથજીએ રાણીને જણાવ્યું કે મારો વિચાર મથુરામાં રહેવાનો થાય છે, તેથી હું અહીંયાં નહિ રહી શકું. પરંતુ રાણીના આગ્રહથી થોડા દિવસ રહેવું પડ્યું હતું. રાણીએ તો કાયમ ત્યાંજ રહેવા ઘણો આગ્રહ કર્યો, પરંતુ ગોકુલમાં રહીને અનેક જીવોનો ઉદ્ધાર કરવાનો હોવાથી આપશ્રીએ રાણીની માગણીનો સ્વીકાર કર્યો નહિ. રાણીએ પોતાના મંત્રીને મોકલીને મથુરાજીમાં છ બાલકો માટે છ મકાનો અને સાતમું શ્રીવિક્કલનાથજી માટે એમ સાત ઘર બંધાવ્યા. તે સ્થલ અત્યારે પણ મથુરામાં છતાં બજારની પશ્ચિમમાં સત્તઘરા નામથી ઓળખાય છે. શ્રીવિક્કલનાથજી ગઢા મહાલથી અડેલ પધાર્યા હતા. રાણી પોતાની સીમા સુધી વળાવવા આવી હતી. જ્યારે શ્રીવિક્કલનાથજી અડેલથી મથુરા પધાર્યા ત્યારે રાણી દુર્ગાવતીએ બંધાવેલા ગૃહમાં જ બિરાજ્યા. પરંતુ થોડા જ દિવસમાં જ સાંભળ્યું કે રાણી દુર્ગાવતીએ આસફજાન + સાથે યુદ્ધ કર્યું અને તેને એકવાર પરાજીત કર્યો. પરંતુ પાછળથી આંખમાં તીર વાગી ગયું, અને પ્રિયપુત્ર વીર નારાયણ રણરંગ ભૂમિપર વીરગતિને પ્રાપ્ત થયો; છતાં ઘણા વખત સુધી આ ઉભયવિદ્ય દુઃખને સહન કરીને હિન્દુ વીરરમણીને છાજે તે રીતે દુશ્મનોની સામે લડતી રહી. જેમ ઝાંસીની મહારાણીએ ઇ.સ. ૧૮૫૭ના બળવાના સમયે પોતાનું નામ સુવર્ણક્ષેત્રે અંકિત કરાવ્યું છે, તેમ ગઢાની દુર્ગાવતીનુંયે નામ તેથી ઘણા વખત પહેલાં જ ઇતિહાસમાં દેદીપ્યમાન રહ્યું છે. ઇતિહાસકારો લખે છે કે એ વીરરમણી રણરંગમાં ઉતરીને ચપલ સેનાના મુણ્ડોનું પોતાની કૃપાણ વડે છેદન કરતી તે વેળા, જાણે શત્રુઓના રૂઢિર વડે હોળી ખેલતી ન હોય તેમ રણચણ્ડી સમાન દેખાવા લાગી હતી. તે પુરુષ વેશમાં પાંચે વસ્ત્ર અને પાંચે શસ્ત્રથી સજ્જ થઈને એ રણરંગભૂમિમાં ઉતરેલી, સ્વર્ગની અપ્સરા જેવું લાવણ્ય

+ આ આસફજાન માણેકપુરનો સરદાર હતો. તેનો વિચાર દુર્ગાવતીને પકડીને અકબરના જનાનખાનામાં બેસાડવાનો હતો. જુઓ મધ્યપ્રદેશ કા ઇતિહાસ-

હોવા છતાં, જાણે કોઈ ફૂર કાતિલ ઘેટાં બકરાંઓને રેંસી નાંખતો ન હોય તેવી શુભ-નિશુભનો વધ કરનારી સાક્ષાત્ ચણ્ડીના સ્વરૂપમાં દર્શન દેતી હતી. આસફજાનના હુકમને અનુસરીને મુસલમાનો આગળ વધતા હતા, પરંતુ સૂર્ય સમાન તેજવાળી એ મહારાણીને શસ્ત્રાસ્ત્રથી સજ્જિત થયેલી જોઈને કાયર બનીને ઈતસ્તતઃ નાસી જતા હતા. ધર્મપરાયણ એ વીર હિન્દુ રમણી યુદ્ધમાં પીઠ બતાવનાર ઉપર શસ્ત્ર પ્રહાર કરતી ન હતી. તેણે પોતાની સેનાને સખ્ત હુકમ કર્યો હતો કે ધર્મનું ઉદ્ધંધન કરીને કોઈએ પણ શસ્ત્ર પ્રહાર કરવો નહિ, કાયરો ઉપર તીર ફેંકવા એ વીરનું કામ નથી. તેમ છતાં આસફજાન એક સ્ત્રીની સાથે યુદ્ધ કરવા તૈયાર થયો હતો એ તેને શરમાવા જેવું હતું. પરંતુ નિર્ભજ અને નીચ પ્રકૃતિના એ મુસલમાનને તેનું ભાન ન રહ્યું, એકવાર પરાજીત થઈને પણ ફરીને પુત્ર શોક અને આંખમાં તીર વાગી જવાથી પીડાતી ધર્મભીરુ દુર્ગાવતી પર દગાથી આક્રમણ કર્યું. મહારાણીનો ભૌતિક દેહ અત્યારે વિદ્યમાન નથી તથાપિ કીર્તિર્યસ્ય સ જીવતિ એ ન્યાયે તેનો કીર્તિદેહ અદ્યાપિ ઇતિહાસમાં દર્શન દે છે. ઘણા કવિઓ એ વીરરમણીનું ચશોગાન કરીને પોતાની જીવ્હાને પવિત્ર કરે છે, એ વીરરમણી પોતાના પુત્ર સહિત વીરગતિને પામી, ત્યાર પછી તેનો ખાસાનો જે હાથી હતો તેણે પણ તૂટા જલનો ત્યાગ કર્યો અને ત્રણ દિન અનશન કરી સતત અશ્રુધારા વહેવરાવીને નિવાપાંજલિ આપીને તે જ ગતિને પ્રાપ્ત થયો. મહારાણીની સાથે પશુ પણ સ્નેહ રાખતો. આસફજાને અત્યંત ફૂરતાથી એ ગઢા નગરને ખેદાનખેદાન કરી દીધું છે. ઘણા પુરાતત્ત્વવેત્તાઓ ભગ્નાવશેષોને જોવા આવે છે. મહારાણીની કીર્તિ શ્રવણ કરીને તથા એ તીર્થરૂપે ગણાતી રણભૂમિનું દર્શન કરીને રાણીના ગુણગાન કરતા પાછા ફરે છે. મુસલમાનોનો જુલ્મ એટલો બધો હતો કે આજે એ સ્થાન કેવલ નામશેષ જેવું થઈ ગયું છે. આ લડાઈ કરવાનું કારણ આસફજાને એ શોધી કાઢ્યું હતું કે મહારાણીનો માનીતો હાથી ગુરૂઘરને આપવા માટે સૂચન કર્યું હતું. એ હાથી અકબર બાદશાહને ભેટ આપવાની રાણીએ ના પાડી હતી. અને આ વાર્તા અકબરને જણાવવા પોતાના આધારદાસને મોકલ્યો હતો. આ વખતનો લાભ લઈને આસફજાને રણસ્તંભ રોપ્યો.

શ્રીવિક્કલનાથજી ગઢામાં લગભગ ત્રણ વર્ષ બિરાજ્યા હતા. ગઢાથી ૧૬૨૨માં પ્રયાગ પધાર્યા. ત્યાં થોડા સમય સુધી તેઓ ઘણા આનંદથી રહ્યા. ત્યાં સોમયાગ પણ કર્યો. મધુસૂદન ભક્ત લખે છે કે :-

ગઢાર્યાં+ પૂર્વમવસન્ વિઙ્ગલેશ્વરદીક્ષિતાઃ ।  
તેઽપિ પ્રયાગમાજગ્મુસ્તત્રોપદ્રવસમ્ભવે ॥  
યમુનાતીરમાશ્રિત્યં તત્ર બાસં પ્રચક્રિરે ।  
શ્રીકૃષ્ણસેવાનિરતાઃ સોમયાગવિધાયિનઃ ॥

ગઢામાં શ્રીવિઙ્ગલેશ્વર દીક્ષિત બિરાજતા હતા. ત્યાં ઉપદ્રવ થવાનો સંભવ જણાયો, તેથી પ્રયાગ પધાર્યા. ત્યાં શ્રીયમુનાજીના તીરપર શ્રીકૃષ્ણની સેવા કરતા બિરાજ્યા અને ત્યાંજ સોમયાગ કર્યો. આ ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે. શ્રીવિઙ્ગલનાથજી શ્રોતસ્માર્ત કર્મમાં શ્રદ્ધા ધરાવતા હતા. વિઙ્ગલેશ્વર પર્યંત સાત આઠ પેઢી સુધી બધાએ સોમયાગ થયા છે. શ્રીગોપીનાથજી દીક્ષિતજીએ પણ કારીરીયાગ કરીને વરસાદ વરસાવ્યો હતો એમ સંભળાય છે. દીક્ષિત શબ્દ જ શ્રીવિઙ્ગલનાથજીની શ્રોતસ્માર્ત કર્મમાં શ્રદ્ધાસૂચન કરે છે. આ કુલમાં આજસુધી વેદ અને વેદીનો ઉચ્છેદ થયો નથી. આજે પણ ચતુર્થપંચમ પીઠાધીશ્વર શ્રીવલ્લભલાલજી મહારાજ તથા સુદામાપુરીસ્થ શ્રીરણછોડલાલજી મહારાજ અભિનું સેવન કરે છે. અધાપિ કુલમર્યાદાનો લોપ થયો નથી. નિત્યલીલાસ્થ શ્રીદેવકીનંદનાચાર્યજીએ આજન્મ અગ્નિ લોપ થવા દીધો નથી એતો જગપ્રસિદ્ધ વાર્તા છે. પરંતુ અમને જણાવતા ખેદ થાય છે કે ધર્મશાસ્ત્રોમાં ખાસ કારણસર બતાવેલા વિકલ્પોનો આશ્રય લઈને કાયમને માટે વહુ બેટીને સ્વાધીન સાચં પ્રાતર્હોમ કરી દેવાય અને સ્થાલીપાક તો ઉપાધ્યાયજીની અનુકૂલતાએ કરાય. બને માસ સુધી સ્થાલીપાક ન થાય અને પછી જ્યારે પંડયાજી આવે ત્યારે પ્રાયશ્ચિત કરીને કરાય, એ સર્વ અગ્નિદેવની વિડંબના કરવા જેવું છે. આથી તો ન કરવું જ સારું છે. તથાપિ અત્યારે ઘણા પંડિતો બ્રાહ્મણાત્વનું અભિમાન ધરાવતા હોવા છતાં પંચમહાયજ્ઞ શું કહેવાય તે પણ જાણતા નથી. એવા પંડિતોના પરિચયમાં હું આવેલો છું. વેદના વિષયમાં મોટીમોટી વાતો કરે છે પણ કોણ જાણે કેટલીએ પેઢીઓથી તેઓ વેદ નારાયણનું વિસર્જન કરી બેઠા છે; છતાં વલ્લભવંશ જેવા પવિત્ર અને વેદને ઈશ્વર માનનારાઓની સામે ન છાજતા આક્ષેપો કરે છે. ધર્મશાસ્ત્રો કિમાડિમનાદ કરે છે કે 'यस्य वेदश्च वेदीच विच्छिद्येते त्रिपुरुषम् । स वै दुर्ब्राह्मणो ज्ञेयः' શ્રીમદ્વલ્લભવંશમાં આજસુધી વેદ અને વેદીનો વિચ્છેદ થયો નથી. આવા શુદ્ધ કુલપર આક્ષેપ કરવો સૂર્ય પર ઘૂળ ઉરાડવા જેવું છે.

+ સદ્ગત તેલીવાલાના S't Vitthalesh'wara and Anubhashya લેખના આધારે આ શ્લોક ટાંક્યા છે.

## મથુરા પધાર્યા

સંવત્ ૧૬૨૨ ભાદ્રપદ વદિ ત્રીજના દિને પ્રયાગથી શ્રીગોકુલ પધાર્યા જે સ્થળે આપશ્રીના મોટાભાઈ શ્રીગોપીનાથજી અને પિતૃચરણ શ્રીમહાપ્રભુજી બિરાજતા હતા તે સ્થળે જ બિરાજ્યા. તે પછી ૧૬૨૩ના કાર્તિક સુદિ ૧૧ના રોજ મથુરા પધાર્યા, અને રાણી દુર્ગાવતીએ બંધાવેલા ઘરમાં બિરાજ્યાં. સંવત્ ૧૬૨૩ થી ૧૬૨૯ સુધી એજ ગૃહમાં સહકુટુંબ બિરાજતા હતા.

## ગુજરાતમાં પધરામણી

+ સંવત ૧૬૨૦ ની સાલમાં શ્રીગુસાંઈજીએ પદ્માવતી વહુજી સાથે લગ્ન કર્યું. આ બીજીવારના લગ્ન કર્યા પછી ૧૬૨૧ ની વૈશાખ સુદિ બીજના રોજ શ્રીદ્વારિકાજી દર્શન માટે પધાર્યા, ત્યારે ગુજરાતમાં અસારવામાં ભાઈલાલ હરજીને ઘેર પધાર્યા, એમને ઘેર થોડા દિવસ બીરાજીને પછી આપશ્રીએ દ્વારકા તરફ પ્રયાણ કર્યું, ત્યાંથી આપશ્રી ઉતાવળા કરી અસારવામાં આષાઢ શુદિ બીજના રોજ પધાર્યા. કાંઈક આવશ્યક કાર્ય હતું. આ વખતે \*નારાયણદાસજીને 'રાજ' પદવી મળી હતી. એટલે તેઓ ઈંડરના રાજા થયા હતા. પછી જલાલપુર પધાર્યા બાઈ જમના, ભક્ત રામકૃષ્ણદાસ, જાલપદાસ એ બધા પર અનુગ્રહ કર્યો. તે પછી પાટણ પધાર્યા. ત્યાં મટુ, કીકા વગેરે ઘણા યૈષ્ઠાવોનો ઉદ્ધાર કર્યો. ત્યાર પછી પ્રભુ માટે ઉત્તમોત્તમ સામગ્રી લઈને પ્રસન્નતાથી ઘેર પધાર્યા, તે સમયે આ યૈષ્ઠાવો સાથે હતા. લક્ષ્મીદાસ, ગોપાલદાસ, ભીમજી, માધવદાસ, વેણીદાસ અને બીજા પણ યૈષ્ઠાવ હતા. ભગવદ્ વાર્તા પણ થતી. શ્રીવિઙ્ગલનાથજી ઘણીજ કૃપા કરતા.

+ આ સમયે મુજફ્ફરશાહ નામે (દ્વિતીય) મુસલમાન સરદાર ગુજરાતનો શાસક હતો. સં. ૧૬૩૯ માં રાજપીપળાના યુદ્ધમાં ભાગી ગયો હતો તે મુજફ્ફરશાહ તૃતીય પણ ગુજરાતનો શાસક હતો. જુઓ રાષ્ટ્રકૂટ ૧૬૧ અને ૧૮૧

\*રાવપુંજીજીનો પુત્ર નારાયણદાસજી હતો. તે સંવત્ ૧૬૩૦ ગુજરાતના મુખ્ય સુલતાન અજીઝકોકાની સામે બંડ થયું તેમાં સામેલ થયો. અકબર પાદશાહે જાતે આવી. આ બંડ સમાપ્ત્યું. અકબરે નારાયણદાસને પોતાનું આધિપત્ય કબૂલ કરાવીને ઈંડરની ગાદી. પાછી આપી ૨૦૦૦ પાચદલ અને ૫૦૦ ઘોડેસ્વાર સૈન્યનો સેનાધિપતિ બનાવ્યો. નારાયણદાસ પછી તેનો પુત્ર વીરમહેવ ગાદીએ આવ્યો. વીરમહેવે અમદાવાદ ઉપર ચઢાઈ કરેલી. એમની કન્યાનું લગ્ન મહારાણા પ્રતાપ વેરે થયું હતું. અને અકબર બાદશાહ સાથે યુદ્ધમાં એમણે મહારાણાને મદદ કરી હતી.

સંવત્ ૧૬૨૨ની સાલમાં શ્રીવિક્કલનાથજી શ્રીદ્વારિકાનાથજીના દર્શન કરવા પધાર્યા. તે વખતે સહાદરા ગામમાં (હાલ સાદરામાં) પધાર્યા, ત્યારે ભાઈલાલ કોઠારીને ત્યાં બોલાવીને કહ્યું કે અમે તુરંતમાં જ શ્રીદ્વારિકાજી થઈને અસારવા આવીશું. આમ આજ્ઞા કરીને આપશ્રી શ્રીદ્વારિકાજી પધાર્યા. થોડા જ દિવસમાં પાછા પધાર્યા. ત્યારે અસારવામાં જ બિરાજ્યા સત્ય સંકલ્પ પ્રભુએ પોતાનું વચન પાળ્યું. યેષ્ઠાવોને ઘણું જ સુખ આપ્યું, તે પછી પ્રસન્નતાથી ઘેર પધાર્યા.

સંવત્ ૧૬૨૭ ની સાલમાં વરસ બેસતાં જ શ્રીવિક્કલનાથજી દ્વારિકાજી દર્શનાર્થે પધાર્યા, તે સમયે આખો સોરઠ દેશ ઉજ્જડ થઈ ગયો હતો. ભયંકર દુકાળ પડ્યો હતો. શ્રીવિક્કલનાથજી ઘોળકાને રસ્તે પધાર્યા. પાંચ દિવસ ઘોળકામાં બિરાજ્યા હતા. સાથે ઘણા જ સેવકો હતા. ઉખાજી, શંકરજી, નાહીગામવાળા વિષ્ણુજી, રાવત ગોવિંદજી, મયાજી, કેશવદાસ જલભરા, પરમ શૂરવીર વીર પૂંજાજી+ આદિ બીજા ઘનુર્ધારી ઘણા હતા. તેમજ બોખાજી, રામદાસ, વસરામ, સવજી સાચોરા, વાણીયા માધવદાસ, ભીમજી, વેણીદાસ, ત્રવાડી પના, હરિવંશજી ચાંપા ભંડારી, શંકર અધિકારી, ખવાસ કાશી વગેરે બધા સેવકો સાથે હતા. જ્યારે પોતે નવાનગર (હાલનું જામનગર) પધાર્યા ત્યારે રાજા દર્શન કરવા આવ્યો. (અમારા ધારવા મુજબ તે સમયે નવાનગરના રાજા જામસતાજી હોવા જોઈએ.) ત્યારે તેણે વિનંતિ કરી કે “મહારાજ રસ્તો વિષમ (ભયંકર) છે. મારી મા શ્રીદ્વારિકાજી દર્શન કરવા માટે ગઈ હતી, પણ રસ્તામાં બહારવટીઆઓએ લૂંટી લીધી. આવ્યામાં રાજ કેવી રીતે પધારી શકશો ? ત્યારે શ્રીવિક્કલનાથજીએ આજ્ઞા કરી કે, અમે પ્રભુના બળથી પધારીશું, તમે કાંઈ ન કહો. પછી આપશ્રીતો ત્યાંથી દ્વારિકાજી પધાર્યા, ત્યારે પાંચસો કાબા (બહારવટીયા) આવી પહોંચ્યા, પણ તે વખતે એવો પ્રતાપ બતાવ્યો કે તેમનું કાંઈ ચાલ્યું નહિ. તેઓ બધાએ હારી થાકીને પાછા ફર્યા. શ્રીવિક્કલનાથજી આનંદ મંગલથી દ્વારિકાજી પધાર્યા. દ્વારિકાજીના થાણેદારની સ્ત્રી ગોરબાઈ યેષ્ઠાવ હતી. તેણે સત્કાર કર્યો. દ્વારિકાથી જ્યારે પાછા ફર્યા ત્યારે તે બાઈ નવાનગર સુધી પહોંચાડવા આવી હતી તે પછી શ્રીવિક્કલનાથજી રાજનગર પધાર્યા. ત્યારે કલ્યાણરાયે ઘણો સત્કાર કર્યો. તે પોતે અન્ય માર્ગથી હતો. ખંભાતમાં બીજા કેટલાક જીવોનો ઉદ્ધાર કર્યો. તેમનાં નામો- આચાર્ય મુરારિ, પરી, જીવા, પટેલ હાંસુ, શાહ સહજપાલ (દોશી), યેશ્ય દેવરાજ

+ આ પૂંજાજી ઘણું કરીને ઈંડર નરેશ હોવા જોઈએ.

વગેરે. તે સમે કલ્યાણરાયે કહ્યું, ગાય પોતાના વાછડાઓ માટે દૂધ આપે છે; પણ વચ્ચે કોઈ બીજા જ લોકો દોહી લે છે, તેવો પ્રકાર અત્યારે થયો. આ આજ્ઞાનો અભિપ્રાય એવો છે કે શ્રીજી પોતે તો ભગવત્કાર્ય માટે ખંભાત પધાર્યા હતા. પણ વચ્ચે ઉપર જણાવેલા જીવોનો એ અંગીકાર થયો. એવા પ્રભુ દયાળુ છે. ત્યાર પછી ખંભાતથી ઉત્તમોત્તમ વસ્તુઓ કર્પૂર, ચંદન, પદ્મ વસ્ત્ર વગેરે પદાર્થો લઈને ફરી રાજનગર પધાર્યા, તે પછી થોડાક દિવસ રહીને આનંદથી ઘેર પધાર્યા.

સંવત ૧૬૨૭ નું વર્ષ ઉતરતાં શ્રીવિક્કલનાથજી પોતાના મોટા લાલજી શ્રીગિરિધરજીને સાથે તેડીને દ્વારિકાજી દર્શન માટે પધાર્યા. તે સમયે પ્રથમ તો ઈંડર પધાર્યા, ત્યાંથી વીસનગર, વડનગર, મહેસાણા, ગોઝારીઆ, સિદ્ધપુર, બિન્દુ સરોવર શ્રીગદાધરરાયજીના દર્શન કરીને, સાવલી, ભદ્રેશ્વર, વણા તથા ભીલોડા આટલા દેશ પર આપે કૃપા કરી. તે પછી પ્રસન્નતાથી આપ અસારવા પધાર્યા ત્યાં ભાઈલાલ હરજી કોઠારીને ઘેર કેટલાક દિન સુધી બિરાજ્યા, પછી દ્વારિકા પધાર્યા. દ્વારિકાથી ફરી ગુજરાત પધાર્યા. ત્યારબાદ ખંભાત, ગત્રાડ, ગણસુલ, મહુધા, ઉમરેઠ, નડિઆદ, મહેમદાવાદ, અલીણા, x વાડાસીનોર, વીરપુર, લુણાવાડા પધાર્યા. તેમજ મહી નદીના તીરપર લીંબોદરા ગામમાં સૂર્ય ગ્રહણ કર્યું. બીજા કાર્યો હતા તેથી પાંચ દિવસ લીંબોદરામાં બિરાજ્યા. તે પછી રાજનગરની પાસે નલપુરા, કઢાસણ, અડાલજ, ઉંઆ, રસજ, મોઘોઢાસર, હરસોલ, પ્રાંતીજ, પીંઢારીઆ, સહાદરા આટલા ગામોમાં પધાર્યા. છાલા ગામમાં મેઘજી કરમસી નામના રાજપૂતનો અંગીકાર કર્યો. એવી જ રીતે બધાં ગામો કૃતાર્થ કર્યા. આ સમયે આપશ્રીની સાથે હરિવંશજી, શંકર અધિકારી, ખવાસ હરિદાસ સાહોદરા બ્રાહ્મણ હતા.

તે પછી સં. ૧૬૨૮ની સાલ બેઠી ત્યારે રાજનગરમાં પ્રશ્નોરાં કેશવજીનો અંગીકાર કર્યો. બાઈ લાછબાઈને ઘેર પધાર્યા. રાયપુરમાં રામદાસ વેણીદાસને ઘેર પધાર્યા. અને તેવી જ રીતે બધાને ખૂબ સુખ આપ્યું. ત્યારબાદ અતિ પ્રસન્નતાથી ઘરે પધાર્યા. આ પ્રકારે છ વાર ગુજરાતને પાવન કર્યું \*

### શ્રીનાથજીને સતઘરામાં પધરાવ્યા

સંવત ૧૬૨૩ માં જ્યારે શ્રીવિક્કલનાથજી ગુજરાત પધાર્યા, ત્યારે

x અલીણામાં બેઠક છે.

\* આ વર્ણન રા.રા. વસંતરામભાઈએ પ્રકટ કરેલા બડભાગી ગુજરાત ઉપરથી અક્ષરશઃ લીધું છે.

શ્રીગિરિધરજીએ શ્રીનાથજીનું સ્વરૂપ ગોવર્ધન પર્વત ઉપરથી લાવીને મથુરામાં સતઘરામાં પધરાવ્યું. સતઘરામાં શ્રીનાથજીની સેવા બે માસ અને એકવીશ દિવસ થઈ. મુસલમાની સત્તાના જુલામોની અસરને લીધે શ્રીવિક્કલનાથજીને આ રુચ્યું નહિ, અને તે કારણને લઈને મથુરા પધાર્યા પછી જાહેરમાં સ્થોત્સવ કરવો બંધ કર્યો. પિતૃચરણ શ્રીમહાપ્રભુજીએ પસંદ કરેલા ગોપાલપુરમાં જ શ્રીનાથજીને પધરાવાનું યોગ્ય લાગ્યું. ૧૬૨૩ માં ગુજરાત થઈને આપશ્રી મથુરા પાછા ફર્યા ત્યારે શ્રીનાથજીના સ્વરૂપને ફરીથી ગોપાલપુર ગોવર્ધન પર્વત પર પધરાવામાં આવ્યું. સંવત. ૧૬૨૪ ના વૈશાખ સુદિ ૧૪ ને દિને ત્યાં પધરાવ્યું.

### શ્રીમદ્ ગોકુલ પધાર્યા

શ્રીવિક્કલનાથજી મથુરા શહેર કરતાં ગોકુલની શાંત જગ્યામાં રહેવાનું વધારે પસંદ કરતા હતા. સંવત્ ૧૬૨૮ના ફાગણ વદિ ૭ ના રોજ શ્રીગોકુલમાં આપશ્રીએ કાયમનું રહેવાનું રાખ્યું. મધુસૂદન ભટ્ટ લખે છે કે :-

અથ તેષાં વ્રજે વાસં કર્તુમિચ્છામવત્ કિલ ।  
 ગોવર્ધનો ગિરિયત્ર શ્રીમદ્વન્દ્રાવનં તથા ॥  
 મથુરામિ, હરિયત્ર નિત્યં સન્નિહિતો વિભુઃ ।  
 તત આગત્ય મથુરાં કુટુમ્બસહિતા ઇહ ॥  
 કન્નિત્કાલં મુદાવાત્સુર્યમુના હરિસેવિનઃ ।  
 મથુરા નગરે વિલોક્યવાસં યવનાદિ પ્રસરેણ ભૂરિવાધમ્ ।  
 અથ વિઠ્ઠલદીક્ષિતા વિવિક્તં સ્થલમાત્મસ્થિતયેવ્યધાર્પણે ॥  
 કદાચિદ્મહેન્દ્રેણ પરમાત્મ વિનિર્ણયે ।  
 પૃષ્ઠાસ્તદીયસન્દેહાનપાકુર્યન્સદુક્તિમિઃ ॥  
 પ્રસન્નેનાથ તેનોઝ્યાઃ કિમપિ પ્રાર્થ્યતામિતઃ ।  
 તસ્યાગ્રહમથાલોક્ય હૃદિસમ્યગ્વિધાર્યથ ॥  
 આત્મનઃ સુખવાસાર્થં મહાવનસમીપતઃ ।  
 યમુનાતીરમાશ્રિત્ય સ્થલં રમ્યમયાચિષુઃ ॥  
 અથ સ્વાધિકૃતૈર્ભૂમેઃ પત્રં સંલેખ્ય ભૂપતિઃ ॥  
 સ્વનામમુદ્રાસહિતં દીક્ષિતેભ્યસ્તદાર્પયત્ ॥  
 તતો મૌહૂર્તિકાદિષ્ટે મુહૂર્તે વિધિપૂર્વકમ્ ।  
 ગ્રામં ગોકુલનામાનં સ્થલે તત્ર ન્યવાસયન્ ॥

અબ્દેઽષ્ટનેત્રાઙ્ગમહીપ્રમાણે (૧૬૨૮) તપસ્યમાસસ્ય તામિસ્રપક્ષે ।  
 દિને ૭ દિનેશસ્ય શુભેમુહૂર્તે શ્રીગોકુલગ્રામનિવાસ આસીત્ ॥  
 વૃત્તાન્તમિમમાકર્ણ્ય સજાતીયા દ્વિજોત્તમાઃ ।  
 કુટુમ્બસહિતાસ્તત્ર વાસાર્થં સમુપાગમન્ ॥  
 બ્રાહ્મણાઃ ક્ષત્રિયા વૈશ્યાઃ શૂદ્રાશ્ચ બહવસ્તતઃ ।  
 સ્વં સ્વં કુટુમ્બમાદાય નિવાસોત્ક્રાઃ સમાયયુઃ ॥  
 સમાગતેભ્યઃ સર્વેભ્યઃ નિવાસાય યથાપ્રથમ્ ।  
 સ્થાનાનિ દાપયામાસુર્વિઠ્ઠલેશ્વર દીક્ષિતાઃ ॥ +

તે પછી શ્રીવિક્કલનાથજીની વ્રજમાં નિવાસ કરવાની ઇચ્છા થઈ; કે જ્યાં શ્રીગોવર્ધન પર્વત છે, શ્રીમદ્ વૃન્દાવન છે અને જેમાં નિત્ય શ્રીહરિનું સાંનિધ્ય છે એવી મથુરા પણ છે. અડેલથી કુટુંબ સાથે મથુરા પધાર્યા, અને થોડાક વખત સુધી શ્રીચમુનાજી અને શ્રીહરિનું સેવન કરતા બિરાજ્યા પરંતુ મથુરા નગરમાં રહેવાથી ચવનાદિનો ઘણો ઉપદ્રવ થાય છે, એમ જોઈને સ્થિતિ કરવા માટે એકાંત સ્થળનો વિચાર કરવા લાગ્યા. કોઈ સમયે પૃથ્વીપતિ (બાદશાહ અકબર) એ પરમાત્માના નિર્ણય સંબંધી પ્રશ્ન કર્યો. ત્યારે તેના સર્વ સંદેહો સારી ઉક્તિઓ વડે શ્રીવિક્કલનાથજીએ દૂર કર્યા. તેણે પ્રસન્ન થઈને કાંઈ માંગવા પ્રાર્થના કરી. બાદશાહનો આગ્રહ જોઈને અને સારી પેઠે વિચાર કરીને પોતાને રહેવા લાયક મહાવનની પાસે શ્રીચમુનાજીના તીર પર એક રમણીય સ્થલ માંગી લીધું. ત્યારે બાદશાહે તે સ્થલ માટે પત્ર લખી આપ્યું અને તે ઉપર પોતાના નામની મહોર પણ કરી. ત્યાર પછી જોશીને સારું મુહૂર્ત પૂછીને વિધિપૂર્વક શ્રીગોકુલનામનું ગાત્ર વસાવ્યું. સંવત ૧૬૨૮ના ફાલ્ગુન કૃષ્ણ પક્ષ ૭ ના દિને શુભ મુહૂર્તમાં શ્રીગોકુલગામમાં નિવાસ કર્યો. આ વાર્તા સાંભળીને સજાતીય બ્રાહ્મણો પણ ત્યાં રહેવા માટે કુટુંબો સહિત આવ્યા. તેમજ અન્ય બ્રાહ્મણો ક્ષત્રિયો, વૈશ્યો અને શૂદ્રો પણ ત્યાં આવીને વસ્યા. આવેલા બધાઓને યથાયોગ્ય જગ્યાઓ શ્રીવિક્કલેશ્વરજીએ અપાવી.

+ સદગત તેલીવાલાના લેખ પરથી લીધું છે. આ સ્લોકમાં ૧૬૨૮ મધુસૂદન ભટ્ટજી ગોકુલવાસનો સંવત જણાવે છે. પરંતુ તેલીવાલા લખે છે :- Vitthales'wara some-how preferred the quiet place of Gokul to city life of Mathura and in the year 1629, on Falguna Krishna 7 he adopted Gokul as his permanent residence.

### શ્રીગોકુલનાથજીનો વિવાહ

મથુરાથી ગોકુલ પધારતા પહેલાં સંવત ૧૬૨૪ જ્યેષ્ઠ વદિ ૨ ને ગુરુવારે શ્રીવિક્કલનાથજીએ વેણાભદ્ર નામક મથુરાવાસી તૈલંગ બ્રાહ્મણની પાર્વતી નામની કન્યા વેરે શ્રીગોકુલનાથજીનો વિવાહ કર્યો હતો.

શ્રીમદ્ ગોકુલ વસાવ્યા પછી નિત્ય લીલામાં પ્રવેશ કર્યો ત્યાં સુધી શ્રીવિક્કલનાથજી સફુટુંબ ત્યાં જ બિરાજ્યા. શ્રીનાથજીની સેવા કરવા માટે ઘોડા ઉપર બેસીને ગોપાલપુર પણ પધારતા.

### ગોસ્વામી કે ગુસાંઈજી કહેવાયા

શ્રીવિક્કલનાથજીની સાથે બાદશાહ અકબરે તત્ત્વજ્ઞાન સંબંધી વાર્તાલાપ કર્યો હતો, અને તેને પૂર્ણ સંતોષ થયો ત્યારે તેણે શ્રીમદ્ ગોકુલ વસાવવા માટે જમીન આપી હતી. શ્રીમદ્ ગોકુલ તો ૧૬૨૮ માં જ વસાવ્યું. પરંતુ જે જમીનનો પટ્ટા કે ફરમાન પત્ર હીજરી ૯૮૫ જમાદીનારમાં કે સંવત ૧૬૩૪માં અર્પણ થયો હતો. આ ઉપરાંત બીજા ઘણા ફરમાનો અકબર બાદશાહ તરફથી મળ્યા હતા. તેમજ તેઓશ્રીના વંશજોને પણ તેવા બાદશાહી ફરમાનો પ્રાપ્ત થયા હતા. તે સર્વ શ્રીનાથદ્વારામાં સુરક્ષિત છે. સદ્ગત તેલીવાલાના પ્રયાસથી તે ફરમાનો મુંબઈની યેષ્ઠાવ પરિષદમાં વંચાયા હતા. અને તેનું ભાષાંતર કરવા માટે શ્રીચુત કૃષ્ણલાલ મોહનલાલ ઝવેરીને સોંપાયા છે. તેલીવાલાનો ગોલોકવાસ અચાનક થઈ જવાથી અઘાવધિ તે ફરમાનો જાહેર પ્રજાની જાણ બહાર રહ્યા છે. અમે આશા કરીએ છીએ કે હવે શ્રીચુત રણછોડદાસ પેટલાદીના પ્રયાસથી સત્ત્વર જ તે પ્રસિદ્ધ થશે.

સદ્ગત તેલીવાલાની કૃપાથી યેષ્ઠાવ પરિષદ પ્રસંગે અને તે પછી પણ બે ત્રણ વાર એ સનંદો વાંચવાની મને તક મળી છે. બાદશાહ અકબરે આપેલી સનંદો વારંવાર તેમના વારસો શાહજહાન અને શાહઆલમ વગેરેએ મંજૂર રાખી હતી.

ગોકુલ ગામની હંમેશ માટેની બિનશરતી સનંદ ઉપરાંત બાદશાહ અકબરની મા હમીદાબેગમે જતીપુર ગામ કે જ્યાં તે સમયે શ્રીનાથજી બિરાજતા હતા, તેની સનંદ આપી હતી. આ બંને સનંદો ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે કે અકબર બાદશાહ અને તેની માને શ્રીવિક્કલનાથજી માટે ઘણું જ માન હતું.

ત્રીજી સનંદ શ્રીવિક્કલનાથજીની ગાયો જેમાં ફરતી હતી તે ચરાઓના સંબંધમાં આપવામાં આવી હતી. તેમાં ખાલસા તથા જાગીરવાળી જમીનોમાં ગાયો ચરાવવાનો પૂરો હક્ક આપવામાં આવ્યો છે, આ ફરમાનમાં સ્પષ્ટ શબ્દોમાં લખ્યું છે કે જે કોઈ શ્રીવિક્કલનાથજીની ગાયોને રોકશે તેને રાજ્ય તરફથી સખ્તમાં સખ્ત

શિક્ષા કરવામાં આવશે. અકબરે એક ફરમાનમાં લખ્યું છે કે જતીપુરા ગોકુલ, મહાવન, મથુરા, સહેરા, વગેરે પરગણાઓમાં ગોવધ તેમજ મોરનો વધ કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવે છે. આ સનંદો ઇરાદાપૂર્વક અપાયેલી છે, તેથી કોઈપણ જાગીરદાર કે અમલદારે કોઈ પણ વાંધો ઉઠાવવો નહિ અથવા દર વર્ષે નવી સનંદો માગવી નહિ. શ્રીવિક્કલનાથ પ્રભુએ ગાયોનું રક્ષણ કર્યું તેથી તેઓ ગોસ્વામી કે ગુસાંઈજી કહેવાયા. ગોચર ભૂમિ માટે આપેલી સનંદો વિષે શ્રીચુત કૃષ્ણલાલ મોહનલાલ ઝવેરીએ સાંજ વર્તમાનના પતેલી અંકમાં લેખ પ્રકટ કર્યો હતો, તેનું ભાષાંતર રા. ભાઈ જેઠાલાલ શાહે શુદ્ધિદેતમાં આવ્યું હતું. તે નીચે મુજબ છે.

“અત્યારના અને ભવિષ્યના પરગણાના અધિકારીઓએ જાણવું કે શવી વગેરે ગામોમાં ગોવર્ધનનાથના મંદિરની ગાયો તથા બળદોને ચરવાના ગોચર હોવાથી, તેમને ત્યાં ચરતા કોઈએ અટકાવવા નહિ અથવા તેમ તે જોવાના આક્ષેપથી અથવા પ્રાણીઓની ગણતરી કરવાના ભિષે પણ તેમને ખાળવા નહિ. આ ગામોની સનંદ ઇરાદાપૂર્વક આપેલી છે. તેટલા માટે તેમણે હુકમ પ્રમાણે વર્તવું. તેમણે તેટલા માટે કોઈપણ સંજોગોમાં દર વર્ષે નવી સનંદ માગવી નહિ.”

મોરોના વધને અટકાવનારી સનંદ નીચે મુજબ છે :-

“મથુરા સહેરા મંડોલા અને ઓડ પરગણાના કરોરી અને જાગીરદારોએ જાણવું કે રાજાના હુકમથી ફરમાવવામાં આવે છે કે હવે પછીથી આ મુલકની નજીક કોઈપણ મોરનો વધ કરવો નહિ તેમ તેમનો શિકાર પણ કરવો નહિ તેમ તેમણે (ત્યાં) કોઈપણ માણસની ગાયોને ચરતાં ખાળવી નહિ. તેમણે જાણવું જોઈએ કે આ અમારા ફરમાન (આજ્ઞા) પ્રમાણે છે. તેમણે આ પ્રમાણે વર્તવાને તેમનાથી બનતું કરવું જોઈએ. કોઈપણ માણસની બાબતમાં આનાથી વિરુદ્ધ વર્તન કરવાને કોઈપણ પ્રસંગ ઉપસ્થિત તેમણે થવા દેવો નહિ.”

ગાયોને ચરાવાની છૂટ આપવા સંબંધી ફરમાન ઉપર બેરામ ખાનાના પુત્ર ખાનખાના મીરખા અબ્દુર રહીમનો સિક્કો છે. અને મોરોનો વધ અટકાવનારું ફરમાન અકબર બાદશાહના રાજ્યના ૩૮ મા વર્ષે લખવામાં આવેલ હતું અને તેની પાછળ અબુલ ફજલની સીલ (સિક્કો) છે. આ અબુલ ફજલ મુબારકના રિસાલામાં તે લખવામાં આવેલ હતું. અર્થાત્ જ્યારે ફરમાન લખવામાં આવ્યું ત્યારે તે બાદશાહની સાથે હતો.

ગોકુલ વસાવ્યું તે સમયે જ (૧૬૨૮ ની સાલમાં) શ્રીઘનશ્યામજીનું પ્રાકટ્ય થયું હતું.



## શ્રીમદ્વાચાર્યવાઙ્મુક્તાવલી

લેખિકા : સો. જડાવ હરિશંકર શાસ્ત્રી

સકૃદધરસુધાં સ્વાં મોહિનીં પાયયિત્વા

સુમનસ ઇવ સદ્યસ્તત્યજેડસ્માન્ભવાદ્દક્ ।

પરિચરતિ કથં તત્પાદપદ્મં તુ પદ્મા

હ્યપિ વત હૃતચેતા ઉત્તમશ્લોકજલ્પૈઃ ॥૧૦-૪૪-૧૩

શ્રીવ્રજવનીમાં વિલસતી વનિતાઓ ભગવાનના મિત્ર ઉદ્ભવજીની સમક્ષ ભગવાન ઉપરજ દોષારોપણ કરવાની ધૃષ્ટતા કરે છે. કારણ કે જે જેને છેતરે તે તેના માટે આક્રોશ પણ કરે. ભગવાને પણ એમને છેતર્યા છે. ઉદ્ભવને કહે છે કે તમારા મિત્રને આટલો સંદેશો તો પહોંચાડજો જ. અધરસુધાનું પાન કરાવીને તો તમારા જેવો જ ત્યાગ કરી શકે. અમે તો ગોવાળણો, અને તમે મોટા ભગવાન. શું અધરપાન કરવાથી કે કરાવવાથી જાતિભંશ ન થયો ? અધરસુધા તો મોહિની છે. તમને પણ મોહ પમાડે તેવી છે.

ઉદ્ભવ ! તમે એમ માનતા હશો કે જેણે અધરસુધાનું પાન કરાવ્યું તેણે તો તમારા ઉપર ઉપકારજ કર્યો, છતાં તમે ભગવાનને ઠપકો કેમ દઈ શકો ? લોકમાં જે પાણી પીવડાવે તેને પણ ન વગોવાય, તો ભગવાનને વગોવવાનું કારણ શું ? ત્યારે સાંભળો ભગવાને તે અધરસુધામાં મોહ રેડ્યો છે તેથી તે મોહિની બની ગઈ. અને અમને ઉન્મત્તાવસ્થામાં મૂક્યાં. કેફી વસ્તુ પાનારને કોઈ લાડવા ખવડાવતું નથી કે તેનો કોઈ આભાર પણ માનતું નથી. તે તો ઠપકાને જ પાત્ર હોય છે.

ઉદ્ભવ ! અધરસુધાનું ઘેન કોઈપણ પ્રકારે ઉતરે તેમ નથી. આ તો નિજ અધરસુધા. હજારો પ્રકારના ઉપાય કર્યા હોય છતાં પણ આ નશો ઉતરે તેમ નથી.

નશામાં એક પ્રકારનું સુખ રહેલું છે. પણ તે ક્યારે ? જો વારંવાર સેવન કરાયું હોયતો જ. પરંતુ તમારા મિત્રે તો આ ઉત્તમ રસ એકજવાર પીવડાવ્યો. તેથી અન્તતઃ સુખ કેમ મલે !!

ફૂલને જો ચોળી નાંખ્યું હોય તો તે કોઈ પણ પ્રકારના ઉપયોગમાં આવી શકે નહિ. તેમ ભગવાને તો અમને ઈર્ષ્ય-વિવેક-હીન બનાવ્યાં છે. શું આ અમારો સર્વનાશ ના કહેવાય ? અરે જેના માટે અમે આ સર્વનાશ કર્યો તે તો અમારું સર્વસ્વ હરીને નાસી ગયો.

તમે તેને કેમ ના પકડી લીધો ?

તે તો ભ્રમર જેવો છે. ભ્રમરતો સુમનસનું મધુપાન કરીને તેમને નિઃસાર બનાવી ભાગી છૂટે છે: તેમ આ ભગવાન પણ ભાગી છૂટ્યા. ભ્રમર પોતે પીએ તો પછી તેમાં ફરીથી રસ પણ ઉત્પન્ન થાય. પણ આ તો પીવડાવીને નાસી ગયો કે જેથી ફરીથી રસ ઉત્પન્ન ન થાય.

સુધાપાનથી આસક્તિ ઉત્પન્ન કરી, અધરના સમ્બન્ધથી લોકનો ત્યાગ કરાવ્યો અને મોહથી વિવાહાદિનો અભાવ થતાં જ્ઞાન ભકિતનુંયે નિવારણ કર્યું. પરિત્યાગથી આશ્રય પણ છોડાવ્યો.

આસક્તિ, લોકસંગ્રહ, જ્ઞાન, ભકિત અને આશ્રય એ પહેલા પણ અમારામાં ન હતાં અને ભગવાન પણ નથી, ત્યારે અમારી તો અતો ભ્રષ્ટાસ્તતો ભ્રષ્ટા: જેવી સ્થિતિ થઈ જ ને ? શું તમારા ભગવાન આ ઉપાલભને યોગ્ય નથી ?

ઉદ્ભવ તમે અમને શું સમજાવો છો ? શું અમે ભગવાનનાં છીએ અને ભગવદીય છીએ તેથી શોક ન કરવો ? શું ભગવદીયત્વજ પરમ પુરુષાર્થ છે ?

ત્યારે સાંભળો. ભગવદીયને ભગવાન કોઈ દિવસ ત્યજે નહિ અને જો તેમનો ત્યાગ કરે તો તે ભગવદીય પણ નહિ.

અમને તો એ આશ્ચર્ય થાય છે કે લક્ષ્મીજી એમની સેવા કેમ કરે છે ? સ્ત્રીઓમાં મૂલભૂત એવા અત્યન્ત ચતુર લક્ષ્મીજી છે.

શું લક્ષ્મીજીને ભગવાન છેતરે ત્યારે ભગવાનને કેમ સેવવા એ ઉપાય તેઓ જાણતાં હશે ?

અરે ! તે તો પદ્મા છે. ચરણકમલમાં ચરણાત્મકત્વની પ્રાપ્તિ કરી સ્થિતિ કરે છે અને તેથી જ તો ભગવાનનું “ચરણ” કમલ કહેવાય છે.

લક્ષ્મીજી તો અત્યારે પણ - હંમેશ જ- ભગવાનને સેવે છે.

નારદાદિ ભક્તો તેમ જલ્પના કરે છે. જલ્પ એટલે સ્વપક્ષસ્થાપનપૂર્વક પરપક્ષનિવારણરૂપા કથા. પોતાને અભિમત ન હોય તેવો પણ પદાર્થ યુક્તિવડે સિદ્ધ કરવા માટે પ્રતિવાદી જે ઉપાય કરે, તેમ આ નારદાદિ ભક્તો પણ કરતા હશે ?

ભક્તોની કીર્તિ લક્ષ્મીજીની અપેક્ષાએ પણ ઉત્તમ છે. તેમની કીર્તિ લોકમાં પણ પ્રતિષ્ઠિત છે તેથી ભક્તોનો જય છે લક્ષ્મીજીનો નહિ

ભગવતો હિ નવપ્રકારા ધર્મા જ્ઞેયા નવ વિધભક્તિહેતવઃ સ્વરૂપગુણાદિપ્રકારેણ ભિન્નાઃ । (૧-૮-૨૬)

ભગવાનના નવપ્રકારના ધર્મો જાણવા. તે નવપ્રકારની ભક્તિના હેતુરૂપ છે. અને ૨૫૩૫ગુણાદિ પ્રકાર વડે ભિન્ન છે.

“જન્માદ્યસ્ય યતઃ” ઇતિ ન્યાયેન ચ યો જગત્કર્તા સ આત્મા સ ભગવાન્ તદ્બ્રહ્મેતિ । (૧-૧૦-૨૦)

જન્માદ્યસ્ય યતઃ શાસ્ત્રયોનિત્વાત્

આ ન્યાયથી જે જગત્કર્તા છે તે જ આત્મા છે, તે જ ભગવાન છે અને તે જ બ્રહ્મ છે.

અતસ્તદ્દુરાપત્વેડપિ તદાશયા તદ્ભજનમન્યભજનરહિતં કુર્વદ્ભિરેવ સર્વેઃ સ્થેયમિતિ ભક્તિમાર્ગનિષ્કલ્પઃ (૧૦-૪૪-૬૦)

એટલા માટે તે દુરાપ હોવા છતાં પણ તેની (ભગવાનની) આશા રાખનારાઓએ અન્ય ભજન રહિત થઈને તેના ભજનમાં સ્થિત થવું એ ભક્તિમાર્ગનો નિષ્કલ્પ છે.

દાનાદિભિઃ સર્વે કૃષ્ણ સ્નેહ એવ સાધ્યતે । સ ચેત્ કામેનૈવ જાતઃ કિં દાનાદિના । સ્નેહે વૈલક્ષણ્યાભાવે સાધનવૈજાત્યમપ્રયોજકમ્ । (૧૦-૪૪-૨૪)

દાનાદિ સર્વથી કૃષ્ણસ્નેહ જ સધાય છે. જો તે કામથી જ ઉત્પન્ન થયો હોય તો દાનાદિથી શું ? (દાનાદિની જરૂર ન રહે). સ્નેહમાં વૈલક્ષણ્યનો અભાવ છે. તેથી તેમાં વૈજાત્ય અપ્રયોજક છે.

યઃ સ્વાત્માનં ભગવતે પ્રચ્છતિ, ભગવાનપિ તથા તસ્મૈ પ્રયચ્છતિ (૧૦-૪૫-૨૬)

જે પ્રભુને આત્મસમર્પણ કરે છે, તેને ભગવાન પણ નિજ આત્માને સમર્પે છે. (વશ થાય છે.)

યસ્મિન્ વિદિતે સર્વમિદં વિદિતં ભવતીતિ શ્રુત્યા મૂલં ભગવાન્ જ્ઞાતવ્યઃ (૧-૧૦-૨૦)

જેને જાણવાથી આ સર્વ વિદિત થાય, એ શ્રુતિથી સર્વનું મૂલ એવા ભગવાનને જાણવા.

વસ્તુત આત્મા સંઘાતાદ વ્યતિરિક્ત ઇતિ આત્મનૈવ અહં પ્રાપ્તવ્યો ન તુ દેહ સહિતેન । ન હ્યુત્તમઃ પદાર્થઃ સ્વોપભોગ્યોઽધર્મઃ સહ ભોગમર્હતિ, અતોઽસ્માત્ સંઘાતાદાદૌ નિવૃત્તા ભવત પશ્ચાન્મદુપભોગં કુરુત । (૧૦-૪૪-૩૨)

‘વસ્તુતઃ આત્મા સંગથી વ્યતિરિક્ત છે’ એમ હોવાથી આત્મા વડે જ હું પ્રાપ્ત છું. નહિ કે દેહ સહિત આત્મા વડે. પોતાને ભોગવવા લાયક ઉત્તમ પદાર્થ અધમની સાથે ભોગવવાને યોગ્ય હોતો નથી. આથી કરીને આ સંઘાતમાંથી પહેલાં નિવૃત્ત થાઓ અને પછીથી મદુપભોગ કરો.

નહિ બ્રહ્મણો જગત્કારણત્વં પ્રત્યક્ષસિદ્ધમ્ । શ્રુતિસિદ્ધં તુ તત્ (૧-૧-૧)  
બ્રહ્મ એ જગતનું કારણ છે. એ પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ નથી પરંતુ શ્રુતિ સિદ્ધ છે. (પ્રત્યક્ષ કરતાં શ્રુતિ વધારે પ્રમાણ છે.)

ભગવાનેવ સંસારે સ્થિતો ન વદ્ધ્યતે । અન્યે તુ વદ્ધ્યન્ત ઇતિ નિર્દ્ધારિતત્વાદ્ભગવદ્ભાવેનાન્યેડપિ ચેદ્ભાવિતારસ્તે કૃતાર્થા ભવન્તીતિ ભગવદવતારઃ (૧૦-૧-૩)

ભગવાન જ સંસારમાં સ્થિત હોવા છતાં પણ તેમાં બંધાતા નથી. બીજા બંધાય છે એવા નિર્ધારથી જો બીજાઓ પણ ભગવદ્ભાવથી ભાવિત હોય તો તેઓ કૃતાર્થ થાય છે એ ભગવદવતાર છે.

જન્મમરણદુઃખસ્ય બહુધાનુભૂતત્વાત્તન્નિવારકમૌષધમત્યાદરેણ સૈવ્યમ્ । (૧૦-૧-૪)

જન્મમરણ દુઃખનું બહુધા અનુભૂતત્વ હોવાથી તેના (જન્મ મરણ દુઃખના) નિવારકરૂપી ઔષધ ઘણા જ આદરથી સેવ્ય છે.

ભગવતસ્ત્વવતારઃ સતામેવ સંરક્ષાર્થઃ (૧૦-૧-૩)

ભગવાનનો અવતાર સત પુરુષોના સંરક્ષણાર્થે હોય છે.

નરાસ્તુ ભૂમિષ્ઠા એવ સ્થલસંઘાતાભિમાનિનઃ દેવાસ્તુ સૂક્ષ્મેન્દ્રિયાદ્યધિકારિણઃ  
ભગવાન્ “ભર્તા સન્ પ્રિયમાણ” ઇતિશ્રુતેઃ ભરણીયોઽપિ ભવતિ । (૧૦-૪૨-૧૮)

માણસો ભૂમિષ્ઠ જ છે. અને સ્થલસંઘાતને લીધે અભિમાની હોય છે. દેવો એ સૂક્ષ્મ ઈન્દ્રિયાદિના અધિકારી છે. ભગવાન ‘ભર્તા સન્ પ્રિયમાણઃ’ એ શ્રુતિથી ભરણીય પણ થાય છે.

આશ્રયો હિ સ્વાધીનં સ્વયમેવ યચ્છતિ । મનસ્તુ ક્ષણિકમિતિ  
સર્વપદાર્થાભિલાષિ ભવતીતિ કદા વા કિં પ્રાર્થયેદિતિ તત્તત્સાધનેષ્વશક્તો હિ  
પ્રપત્તિમાર્ગમવલમ્બતે । (૧૦-૪૫-૨૬)

સ્વાધીનને સ્વયં આશ્રય આપે છે. મન તો ક્ષણિક છે તેથી સર્વ પદાર્થની અભિલાષાવાળું થાય છે. ક્યારે અને શું પ્રાર્થના કરું એમ તે તે સાધનમાં અશક્ત જ પ્રપત્તિમાર્ગનું અવલમ્બન કરે છે.

દયા ધર્મસ્થાનીયા તદાત્મકો ધર્મ ઇતિ, સ્મિતં ભક્તિસ્થાનીયમ્, વીક્ષિતં  
જ્ઞાનરૂપમ્, ત્રિતયમપિ મુખ્યારવિન્દે વર્તતે (૧૦-૪૨-૧૮)

દયા ધર્મની જગ્યાએ છે, કારણ કે દયા ધર્મનું સ્વરૂપ છે, ભક્તિ સ્થાને સ્મિત છે અને વીક્ષિત એ જ્ઞાનરૂપ છે, આ ત્રણેય (ભગવાનના) મુખ્યારવિન્દમાં અસ્તિત્વ ધરાવે છે.

નહિ નૌકા પ્રવાહવેગાદ્ગચ્છન્તી તિષ્ઠ તિષ્ઠેત્યુક્તા તિષ્ઠતિ ॥ (શ્રી સુ. તા. ૬.  
પ્ર. અ. ૧)

પ્રવાહના વેગને લીધે જતી નૌકા, થોભો થોભો, કહેતાં થોભતી નથી. પતિ, પ્રિયા પુત્ર અને બન્ધુજનોએ શ્રીગોપીજનને વાર્તા છતાં, જેમનો આત્મા ગોવિન્દે-ઈન્દ્રિયોના સ્વામી પ્રભુએ-આકર્ષેલા હોવાથી મોહિત થયેલા ગોપીજનો પાછા ફર્યા નહિ. ગોપોનો એ પ્રભુમાં નિરોધ તો થયો હતો જ, તથાપિ તેઓ ક્લાત્મક રસના આસ્વાદનથી અનભિજ્ઞ અજાણ્યા હતા, કેવલ સાધનમાં પ્રવણ-તત્પર હતા. પતિદ્વારા જ સ્ત્રીઓએ કરેલું ભગવદ્ ભજન કહી શકાય, સ્વતન્ત્ર રીતે સ્ત્રીઓને

ભગવદ્ભજનનો અધિકાર નથી એમ માનતા હતા. ગોપોએ ગોપીજનને પ્રભુ પાસે જતા અટકાવ્યા-વાર્તા, તેમાં હેતુ વેદમર્થદાનું પાલન-શ્રીત છે. પ્રભુપ્રત્યે ગમનમાં ગોપીજનના અન્તઃકરણને પ્રેરણા કરનાર પ્રભુ આકર્ષે છે. ગોવિન્દાપહ્તાત્માનઃ પ્રભુએ આકર્ષેલો છે આત્મા જેમનો એવા ગોપીજન કોઈના વાળ્યા વળ્યા નહિ. અહિયા આત્માનો અર્થ અન્તઃકરણ\* કરવાનો છે. જો આત્માનો અર્થ દેહમાં રહેલો કાંગરના અગ્રભાગ જેવા સૂક્ષ્મ અણુરૂપ જીવાત્મા કરવામાં આવે તો એવો ગોપીજનનો દેહ રાસસ્થલીમાં વિદ્યમાન ન હોઈ શકે અને તેમનો દેહ આપણા જેવો પ્રાકૃત-લૌકિક હતો એમ પણ માનવું પડે. અત્યારના જીવોનો દેહ પ્રાકૃત હોય ત્યાં સુધી શ્રીમહારાણીજીની કૃપાથી નવતનુત્પ-સેવોપયોગી દિવ્ય દેહ પ્રાપ્ત ન થાય ત્યાં સુધી ભગવદ્લીલાનો સાક્ષાત્કાર કરવાને યોગ્ય હોતો નથી. શ્રીપ્રજ્ઞાનાઓનો દેહ અપ્રાકૃત-અલૌકિક હોવાથી તેમને તે જ દેહવડે લીલાનો સાક્ષાત્કાર થયો-તેઓ લીલાયોગી થયા.

પ્રભુએ શ્રીપ્રજ્ઞાસીમન્તિનીઓના અન્તઃકરણને આકર્ષાને બોલાવ્યા. આથી જ શ્રીમહાપ્રભુજી ગોપોને અન્તઃકરણારૂઢ કહે છે. પ્રભુએ શ્રીગોપાંગનાઓના અન્તઃકરણને આકર્ષાને બોલાવી લીધા. અન્તઃકરણની વૃત્તિઓને વેગ રોકી શકતો નથી. નૌકાના દૃષ્ટાન્તમાં અન્તઃકરણ પ્રવાહ વેગને સ્થાને છે અને નૌકારૂપ દેહ છે. પ્રવાહમાં તણાતી પનઈ જેમ દૂરથી શબ્દ દ્વારા રોકી શકાતી નથી તેમ કેવલ શ્રીતમુક્તિઓ દ્વારા ભક્તિમાર્ગીય દૃઢાસક્તિનુંયે નિવારણ કરી શકાતું નથી.

ईश्वरवाक्यनिराकरणे यतो वाणी विभेति । एतासां तु न भयम् । यतः  
अनुरक्ताः । रागो हि भयप्रतिपक्षः यत्र रागः स्वल्पोपि न तत्र भयम् ।  
(શ્રી સુ.તા.૬. પ્ર. અ. ૧ શ્લો. ૩૦)

અત્યંત દુઃખના ભારથી કે સંરંભથી શ્રીગોપીજનની વાણી ગદ્ગદ્ થઈ ગઈ. શબ્દોનો સ્પષ્ટ ઉચ્ચાર થઈ શક્યો નહિ. કારણ કે પ્રભુની વાણીનું નિરાકરણ - ખેડન કરવા વાણીને ભય થાય છે. પરંતુ શ્રીગોપીજનોને ભય ન હતો કારણ કે તેઓ પ્રભુમાં સ્નેહવાળાં હતાં. રાગ-સ્નેહ તો ભયનો પ્રતિપક્ષી છે. જ્યાં સ્વલ્પ-થોડો-પણ સ્નેહ હોય ત્યાં ભય ન જ હોઈ શકે.

\*આત્મનું શબ્દનો અર્થ રસાત્મક શ્રીકૃપણ, અક્ષરબ્રહ્મ, ઈન્દ્રિયો, પ્રાણ, અન્તઃકરણ અને દેહ પણ થાય છે. પ્રકરણને અનુસરતો અર્થ સર્વત્ર ગ્રાહ્ય છે.



વાણીના પતિ પ્રભુ છે, તેથી પ્રભુની આજ્ઞાનું ખડકન અન્યની વાણી કરી શકે જ નહિ. પ્રભુએ શ્રીગોપીજનોને પાછા ફરવા આજ્ઞા કરી અને તેમાં જે દલીલો રજુ કરી તેનું ખડકન અન્યની વાણીથી ન જ થાય. તેથી ભક્તિમાર્ગીય રીતિને અનુસરીને પણ ગોપીજનોની વાણીએ તેનું ખડકન કરવા પ્રયાસ કર્યો, છતાં કંઈ ગદ્ગદ થઈ જતાં વર્ણોચ્ચાર સ્પષ્ટ કરી શકાયો નહિ. આ પણ રસમર્યાદા છે. રસશાસ્ત્રમાં ગદ્ગદવાણી પણ રસોત્પાદક છે એમ જણાવ્યું છે, પ્રાકૃત નાયકનાયિકાની વાણી પણ જ્યાં રસોત્પાદક હોય ત્યાં અપ્રાકૃત ગોપીજનોને વિષે શંકા સંભવે નહિ. વાણી ગદ્ગદ થવાનું કારણ કોઈ ભય નથી. જ્યાં સ્નેહ ન હોય ત્યાં ભય સંભવે. પરંતુ જ્યાં પ્રગાઢ સ્નેહનો આવિર્ભાવ થયો હોય ત્યાં ભયનો લેશ પણ ન રહે. અને આથી જ શ્રીમદ્પ્રભુજી કારિકામાં- તાસાં વાઘો જયન્તિ હિ । એમ આજ્ઞા કરે છે. પ્રભુ રસાત્મક છે તેથી પ્રભુ અને પ્રજાભક્તોના વિવાદમાં પ્રજાભક્તોની વાણી જ જય પામે છે. રસશાસ્ત્ર નાયિકાની વાણીના પરાજયને રસસતિ કહે છે. પ્રભુ શ્રીગોપીજનની વાણીને પણ રુદ્ધ કરી શકે. પરંતુ ભક્તિમાર્ગમાં ભક્તનું આધિક્ય હોવાથી સામર્થ્ય હોવા છતાં પ્રભુ પરાજિત થયા છે. ગોપીજનનો જય થયો છે.

અત્યન્તાપરાધેપિ કૃતે ભગવાન્ શાપં ન પ્રયચ્છતિ । યથા શિશુપાલાય । આત્મત્વં તત્ર હેતુઃ । અત્યન્તસેવાયાં વરમપિ ન પ્રયચ્છતિ સુખરૂપત્વં તત્ર હેતુઃ । ન હિ કામિની ઉપભોગેન સેવમાના કદાચિદપિ વરં પ્રયચ્છતિ તરમાદ્રગવત્સેવૈવ પરમપુરુષાર્થરૂપા । (૧૦-૩૧-૧૨)

અત્યન્ત અપરાધ કરેલો હોવા છતાં એ ભગવાન શાપ આપતા નથી. શિશુપાલે ઘણી જ ગાળો દીધી. ભરસલા વચ્ચે ગાળોથી ભગવાનનો અપરાધ કર્યો. છતાં ભગવાને શાપ દીધો નહિ. આમાં શાપ નહિ આપવાનું કારણ માત્ર આત્મત્વ જ છે. સર્વમાં પોતે જ આત્મારૂપે રહેલા હોવાથી પોતે શાપ દેતા જ નથી.

ઘણાંએ અપરાધ હોવા છતાં પ્રભુ શાપ દેતા નથી, અને તેની ઘણીએ સેવા કર્યા છતાં તે પ્રસન્ન થઈને વરદાન પણ આપતા નથી. સુખરૂપત્વ એ એક જ વરદાન નહિ આપવામાં કારણ છે. ઉપભોગથી સેવાચેલાં હોવા છતાં કામિની વરપ્રદાન કરતાં નથી, આથી ભગવત્સેવા એજ પરમ પુરૂષાર્થરૂપ છે.

અનધિકારિણા ભગવદાજ્ઞાવ્યતિરેકેણ પરિત્યાગઃ કર્તુમશક્યઃ (૧૦-૩૬-૪૬)

ભગવાનની આજ્ઞાના વ્યતિરેકને લીધે અનધિકારી પુરૂષથી પરિત્યાગ થયો તે તદ્દન અશક્ય છે.

અસત્સેવયા નાશઃ સત્સેવયા કૃતાર્થતા । (૧૦-૩૮-૩૫)

અસત્ પુરૂષો એટલે કે દુષ્ટલોકોના સંગથી નાશ થાય છે. અને સત્પુરૂષો એટલે કે સત્સંગથી કૃતાર્થતા કહેતાં મોક્ષને મેળવાય છે.

एक एव भगवान् नित्यमनित्यं च जगद्रूपशरीरं गृह्णाति कालादयो नित्याः घटादयोऽनित्या इति उभयमपि भगवच्छरीरम् । (૧૦-૩૭-૪૮)

એ એકજ ભગવાન છે કે જે નિત્ય અને અનિત્ય એમ બંને રૂપે જગદ્રૂપી શરીરને ધારણ કરે છે. કાલાદિ નિત્ય છે. અને ઘટાદિ અનિત્ય છે. એ પ્રમાણે એ બન્ને ભગવાનના શરીર રૂપે છે.

શ્રીહાયમાસક્તો ન કસ્યાપિ સુખં વિચારયતિ । (૧૦-૪૧-૧૬)

કીડાની અન્દર આસક્ત થયેલો પુરૂષ કોઈના પણ સુખનો વિચાર કરતો નથી.

न हि भगवद्गुणतत्परा भगवद्दोषान् कथयन्ति (૧૦-૪૪-૧૮)

પ્રભુના ગુણમાં તત્પર રહેનારા ભગવદીયો કાંઈ ભગવાનના દોષો કહેતા નથી. શ્રીગોપીજન જો શ્રીમદુદ્ધવજી પ્રત્યે નિજ દુઃખનું વર્ણન કરતાં પ્રભુના દોષોનું એ વર્ણન કરે તો ઉપર જણાવેલા વાક્યને અનુસરીને કદાચ તેમનું ભગવદીયપણું ટકી પણ ન શકે. પરંતુ રસશાસ્ત્રની મર્યાદા આથી વિલક્ષણ છે, તેથી પ્રભુની કથામાં શ્રીગોપીજનોને જે અલૌકિક રસ પ્રાપ્ત થાય છે, તેથી વિલક્ષણ પ્રકારના વિપ્રયોગની દશામાં અને તેમાં એ શ્રીમદુદ્ધવજી જેવા અતિચતુર દૂતની સમક્ષ પ્રભુની ભિશ્વચર્યાનું વર્ણન કરવામાં અનુભવે છે.

શ્રીગોપીજન રસાનુભવ માટેજ અવતર્યા છે. તેથી તેઓ રસશાસ્ત્રની મર્યાદા જાણે છે. જેમ નિર્ગુણ ભક્તિમાર્ગનું પ્રતિપાદન કરનારી શ્રુતિઓને મર્યાદાભક્તિનું પ્રતિપાદન કરતી શ્રુતિઓ પ્રત્યે દ્વેષ નથી, તથાપિ બલાબલનો વિચાર કરવાથી કે તારતમ્યનો વિવેક કરવાથી બન્ને પ્રકારની શ્રુતિઓમાંથી મર્યાદામાર્ગની શ્રુતિઓ શુદ્ધભક્તિમાર્ગની શ્રુતિઓની દૃષ્ટિમાં ઉપેક્ષાને યોગ્ય પણ હોઈ શકે; તેમ પ્રભુના ગુણગાનમાં કે ગુણશ્રવણમાં ભક્તોને - વિશેષતઃ ગોપીજન જેવા ઉચ્ચ કક્ષામાં રમણ કરતા ભક્તોને જે રસાનુભવ થાય છે, તેથી વિલક્ષણ પ્રકારનો રસાનુભવ વિપ્રયોગની દશામાં દૂતને ઉપાલમ્બ સંભળાવવામાં થાય છે.

સંયોગાવસ્થામાં જે આનંદ રહેલો છે, તેથી ઘણો જ વિલક્ષણ આનંદ

પ્રેમકલહમાં છે, એમ રસશાસ્ત્રના વેત્તાઓ કહે છે. પ્રભુ પ્રત્યે વાત્સલ્યભાવને ગાનાર ભક્ત આ પ્રકારનો અનુભવ ન જ કરી શકે. આ વિલક્ષણ અલૌકિક રસાસ્વાદ તો દામ્પત્યના\* ભાવથી જ મળી શકે છે.

न हि कोऽपि परस्तोत्रं कुर्वन् आत्मनो गुणभावमङ्गीकरोति (૧૦-૪૪-૨૭)  
કોઈપણ પુરુષ અન્યની સ્તુતિ કરતો હોવા છતાં પોતાનું ગોણત્વ સ્વીકારતો નથી. ઉદ્ભવજી શ્રીગોપીજનની સર્વાત્મભાવના જોઈને તેમની સ્તુતિ કરે છે. જો સ્તુતિ મીમાંસકોની પેઠે અર્થવાદ હોઈ વિદેય અર્થને પુષ્ટજ કરે તેવી હોય, તો તેવી અર્થવાદરૂપી સ્તુતિ કરનાર પોતાની ગોણતા કે હીનતા સ્વીકારતો નથી. વાસ્તવિક સ્તુતિમાં જ આ પ્રકાર સમ્ભવે છે.

ઉદ્ભવજી જે ગોપીજનના ઉપદેશને અનુગ્રહ માને છે આ ગોપીજન વાત્સલ્યની અપેક્ષાએ દામ્પત્ય ભાવને વિશેષ પુષ્ટ કરે છે.

धर्म्युत्कर्षेण धर्मोत्कर्षेण च माहात्म्यं द्विविधम् (૧૦-૪૩-૩૧)

સામાન્યરીતે માહાત્મ્યજ્ઞાન સુદૃઢ સ્નેહમાં કારણરૂપ છે. માહાત્મ્યજ્ઞાનનો અર્થ બ્રહ્મવાદને અનુસરતો લેવાય તો પ્રભુના સર્વત્રેય ઐશ્વર્યનું જ્ઞાન. ઐશ્વર્ય એટલે જ ઉત્કર્ષ. આ ઉત્કર્ષ પણ બે પ્રકારનો છે. ધર્મનો ઉત્કર્ષ અને ધર્મનો ઉત્કર્ષ. ધર્મી પૂર્ણપુરુષોત્તમ છે અને ધર્મ અક્ષરબ્રહ્મ છે.

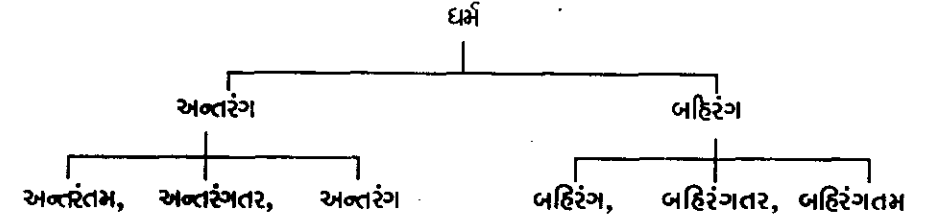
ધર્મના ઉત્કર્ષવડે થયેલું માહાત્મ્યજ્ઞાન નિર્ગુણભક્તિને સુદૃઢ ન કરી શકે. તે તો ધર્મના ઉત્કર્ષનું જ્ઞાન થાય ત્યારે જ સમ્ભવે. “ભગવાન્ અક્ષરબ્રહ્મ” વાળાઓએ વિચારવાનું છે, કે શુદ્ધભક્તિમાર્ગમાં આત્મનિવેદન દ્વારા જ પ્રવેશ થાય છે. આ આત્મનિવેદન પણ ધર્મને કરવાનું છે, નહિ કે ધર્મને. અક્ષરબ્રહ્મના જ્ઞાનવાળાને પરબ્રહ્મની પ્રાપ્તિ થાય પણ તે જ્ઞાનમાર્ગના પ્રકારે, જ્યારે ભક્તિમાર્ગનો પ્રારંભ જ જ્ઞાનમાર્ગની પરિસીમાથી થાય છે. જ્યાં જ્ઞાનમાર્ગની સીમા હોય ત્યાં ભક્તિમાર્ગનો પ્રારંભ છે. જ્યારે ધર્મિષ્ઠનો ઉત્કર્ષ જાણ્યા પછી માહાત્મ્યજ્ઞાન થાય ત્યારે જ ભક્તિમાર્ગમાં પ્રવેશ કરવાને લાયક બને.

—મ—

\*વાત્સલ્ય અને દામ્પત્યની ચર્ચા વિસ્તાર સાથે કરવાની મારી ઈચ્છા છે, તે ચર્ચાવકાશ કરીશ. વસ્તુતઃ બન્ને પ્રકાર ભાવમાં છે. અને ભાવ એ રસનું એક અંગ છે, સાક્ષાત્ રસ નથી. અમારા પ્રભુ તો રસરૂપ છે. અને તે રસાત્મકપ્રભુની સેવા પણ રસશાસ્ત્રની મર્યાદાથી વિરુદ્ધ તો ન જ હોવી જોઈએ. શ્રીદાઉજી અક્ષરબ્રહ્મનું સ્વરૂપ છે.

धर्मो द्विविधोऽन्तरङ्गो बहिरङ्गश्च । सोपि प्रत्येकं त्रिविधः (૧૦-૪૪-૬૦)

અન્તરંગ અને બહિરંગભેદે ધર્મ બે પ્રકારનો છે અને તે બંને પ્રકારના પણ (પ્રત્યેકના) ત્રણ ત્રણ ભેદ છે.



આત્મા વારે દૃષ્ટવ્યઃ શ્રોતવ્યઃ ઇત્યાદિ વડે વિહિત છે, માટે આચારાતો શ્રવણાદિ ધર્મ અન્તરંગતમ ધર્મ છે. અર્થે હિ પરમો ધર્મો યદ્યોગેનાત્મદર્શનમ્ ઇત્યાદિ વાક્યોમાં કહેલો યોગાદિ સાધનવડે આત્મચિન્તન કરવું એ અન્તરંગતર ધર્મ છે અને ફલના ઉદ્દેશવિના ઈશ્વરાર્પણબુદ્ધિથી કરાતો યાગાદિ અન્તરંગ ધર્મ છે.

વર્ણાશ્રમના ધર્મરૂપે સ્વર્ગાદિફલના ઉદ્દેશથી આચારાતો વૈદિક ધર્મ બહિરંગ છે, તે પછી તૃચ્ચસ્વર્ગાદિફલવાળો વિવિધ સ્ત્રીપુરુષો જેના અધિકારી હોય એવું પતિવ્રત્યાદિક અને વિવિધદેવતાનું વ્રતાદિક સ્માર્ત ધર્મ બહિરંગતર ધર્મ છે અને ઐશ્વર્ય, આરોગ્ય વગેરે જેનું ફલ છે, એવો વિવિધ દેવતા અને ગ્રહાદિકનું ભજન સ્માર્ત બહિરંગતમ ધર્મ છે.

આ છ વે પ્રકારના ધર્મમાં પૂર્વ પૂર્વ પ્રબલ છે. જો પૂર્વ પૂર્વ ધર્મોનો અસંભવ હોયતો જ ઉત્તરોત્તરમાં કર્તવ્યતા પ્રાપ્ત થાય.

પ્રેમની પછી નિજવ્યસનથી કરાતો શ્રવણાદિક ધર્મના લક્ષણને અનુસરતું નથી. કારણ વ્યસન સમ્પત્તિથી આચારાતું શ્રવણાદિક ધર્મના લક્ષણને અનુસરતું નથી. “વેદમાં કહેલી વેદની-પ્રેરણારૂપ અર્થ-પુરુષાર્થ જ ધર્મ છે.” એમ ધર્મનું લક્ષણ કહેવામાં આવ્યું છે. ઉપર જણાવેલા પ્રકારમાં સર્વત્ર પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિમાં પ્રયોજક તે તે વ્યક્તિનો અધિકાર જ છે.

પ્રભુ મર્યાદાભક્તિ અને પુષ્ટિભક્તિમાં જે જીવને જે ધર્મમાર્ગને માને છે, તેને વિષે તેનાજ અધિકારનું - તે તે માર્ગ ધર્મનું નિરૂપક શાસ્ત્ર સ્થાપે છે. આથી એમ સમજવાનું છે, કે તે તે અધિકારીને તે તે પ્રકારના શાસ્ત્રમાં અભિરુચિ ઉત્પન્ન થાય છે. જે જેવા ધર્મનો અધિકાર હોય તે જો તે પ્રકારનો ન આચરે તો તેને દોષ પ્રાપ્ત થાય છે.

## આસુરોની મુક્તિ

तेषां देहादिविशिष्टानां सहजासुराणां मुक्तिः । सहजासुराणां केवलजीवानां भगवत्प्राप्तिः । (જન્મપ્રકરણ લેખ)

તે પ્રકારના દેહાદિ સંઘાતવાળા સહજ-સ્વાભાવિક અસુરોને (પણ) મુક્તિ મળે છે. (દેહાદિ સંઘાત વિનાના) કેવલ પણ સહજ આસુર જીવોને ભગવત્પ્રાપ્તિ થાય છે.

દેહાદિ સંઘાતવાળા આસુરી સમ્પત્તિના જીવોને જે મુક્તિ મળે છે, તે અને શુદ્ધ સાત્ત્વિક જીવોને જે મુક્તિ મળે છે તેમાં ફેર છે. આસુર જીવોને તમસ્ સુધી ગમન કરવું પડે છે અને તેઓ તેમાં લીન થતાં તેમની પુનરાવૃત્તિ અટકી પડે છે, ત્યારે તેઓ તમસ પડે સંઘાતનો ત્યાગ કરીને પ્રભુને પ્રાપ્ત કરે છે. અહિયા એમ પણ ગૂઢ અભિપ્રાય હોવો જોઈએ કે સહજ આસુર જીવોને દેહ, ઈન્દ્રિય, પ્રાણ અને અન્તઃકરણ દેવીસમ્પત્તિવાળાં પ્રાપ્ત થયાં નથી, તેથી કમથી અમુક સમય પછી આસુર-દેહાદિ સંઘાતનો ત્યાગ કરીને સ્વરૂપ માત્રથી ભગવત્પ્રાપ્તિ થાય છે. જ્યારે બીજા જીવોને દેવી અને આસુરી એમ બંને પ્રકારની થોડીઘણી સામગ્રી મળેલી હોય છે તેમાંથી સમય આવે આસુરી સમ્પત્તિનો ત્યાગ કરીને દેવી સામગ્રી પડે વિશેષ પ્રકારના દેવી કે અલૌકિક દેહને મેળવીને પ્રભુ સાથે સર્વ કામનો-સર્વ પ્રકારના ભક્તમનોરથોનો ઉપભોગ કરે છે. જેમ કંસાદિ આસુરો પોતાના આધારભૂત અને પોતાના અધિકારને યોગ્ય એવા દેહને મેળવીને અધિકારાનુસાર ભગવદ્દીલાનો અનુભવ કરે છે. કંસમાં આવિષ્ટ કાલનેમીને સ્વરૂપથી જ ભગવત્પ્રાપ્તિ થઈ છે. (તે શ્રીસુબોધિનીજીમાં વિસ્તાર સાથે સમજાવ્યું છે.) દેહેન્દ્રિયાદિ સંઘાતવાળા આસુરોને તમસ સુધી ગમન કરવું પડે છે. તમસથી પર પ્રભુ છે, તેથી તેમને તમસથી પર એવા પ્રભુની પ્રાપ્તિ પણ થાય. અથવા તે પ્રકારે પુનરાવૃત્તિથી - વારંવારના જન્મમરણથી મુક્તિ પણ મળે જ.

### પ્રભુની કથા ત્રણ પુરુષને પવિત્ર કરે

વાસુદેવની કથાનો પ્રશ્ન, ત્રણ પુરુષોને-વક્તા, પૃચ્છક અને શ્રોતાને પવિત્ર કરે છે. (જન્મ પ્રકરણ અ.૧ શ્લો. ૧૬)

પ્રશ્ન પૂછતાં પહેલાં વક્તા કશું બોલતો નથી, ભગવત્કથા કરતો નથી તેનું

ચિત્ત સ્તબ્ધ હોય છે. પ્રભુના ગુણનું વર્ણન કરવામાં મુંઝા રહેવું એ તો પાપથી જ બની શકે. પ્રશ્ન પૂછવાથી પ્રભુના ગુણો ઉપર આવતા પાપનો નાશ થાય છે. શ્રોતાઓમાં પણ પાપ વિદ્યમાન હોવાથી પ્રભુના ગુણ શ્રવણ કરવામાં તેમનું ચિત્ત ચોંટતું નથી. પ્રશ્ન થતાં ચિત્ત ચોંટે છે, તેથી પ્રશ્ન જ શ્રોતાઓના પાપનો નાશ કરે છે, “હું પ્રશ્ન પૂછીશ” એમ વિચાર મનમાં આવતાં, જો આપણી અંદર પાપ મોજુદ હોય તો મુખમાંથી પ્રશ્ન જ નિકળતો નથી. જ્યારે પ્રશ્ન મુખમાંથી બહાર નીકળે છે, ત્યારે પાપનો નાશ થાય છે. આ રીતે વક્તા, શ્રોતા અને પ્રશ્ન કરનાર એમ ત્રણે પુરુષોના પાપનો નાશ પ્રભુની કથાનો પ્રશ્ન જ કરે છે.

### ક્રિયાશક્તિના તેર પ્રકાર

જન્મપ્રકરણ શ્રીસુબોધિનીજીમાં ગર્ભસ્તુતિ આવે છે તેના પ્રથમ શ્લોકમાં શ્રીમદ્પ્રભુજીએ ક્રિયાશક્તિના તેર પ્રકાર જણાવ્યા છે. યેષ્ટાવ બંધુઓની વિશેષ જાણ માટે તેનો સંગ્રહ આ સ્થળે કર્યો છે.

(૧, ૨) સત્યવ્રતમ્ આ પદમાં બે પ્રકારની ક્રિયાશક્તિનું નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. લોકમાં ‘સત્ય’ ઉત્કૃષ્ટ પદાર્થ છે. પ્રભુનું ઉભયે સત્ય છે - ઉત્કૃષ્ટ છે. સત્ય ઉત્કૃષ્ટ હોવાથી તેમાં સત્પુરુષોનું રમણ અને પ્રતાપરણ આ ઉભય ક્રિયાશક્તિ વિના સંભવે નહિ. તેથી પ્રથમ વિશેષણનાં બંને પદોમાં બે પ્રકારની ક્રિયાશક્તિનું નિરૂપણ થયું. સત્યમેવ વ્રતં યસ્ય આ પ્રકારે સદ્ગુણસંવિજ્ઞાન બહુગ્રીહિ સમાસમાં એકવાર ‘સત્ય’ પદમાં વિધેય (ઉદ્દેશ્યમાં પ્રકાર તથા જ્ઞાતમાન વિલસણ વિષયતાવાન પદાર્થ વિધેયત્વ) માનવાનું છે. અને એકવાર વ્રત શબ્દમાં વિધેયતા માનવાની છે. તેમ કરવાથી બે પ્રકારની ક્રિયાશક્તિનું ભાન થાય છે. (૧) સત્યં પરમ્ આ વેદ વાક્યમાં પરત્વે સત્યને જણાવ્યું છે તેથી સર્વોત્કૃષ્ટ સત્ય છે, અને (૨) વ્રત પણ ઉત્કૃષ્ટ છે. આ રીતે બે પ્રકાર જણાવ્યા. કારણ કે ઉભય ‘પર’ (સર્વોત્કૃષ્ટ) છે.

(૩, ૪, ૫, ૬) સત્યપરમ્ આ પદમાં ચાર પ્રકારની ક્રિયાશક્તિ જણાવી છે. પરં સત્યમ્ આ વેદાંશ ભાગવતોક્ત સત્યપરમ્ પદનું સમર્થન કરે છે. અહિયા પર શબ્દનો અર્થ સર્વોત્કૃષ્ટ પદાર્થ અને નિયામક એમ બે પ્રકારે થાય છે. ઉક્ત શ્રુતિનું વ્યાખ્યાન કરતી શ્રુતિ જણાવે છે કે (૧) સત્યપડે વાયુ વાય છે. (૨) સત્યપડે આદિત્ય આકાશમાં પ્રકાશે છે. (૩) વાણીની પ્રતિષ્ઠા સત્ય છે (૪) સત્યમાં સર્વ પ્રતિષ્ઠિત છે. અહિયા સત્યમાં પરં સત્યમ્ જે સત્ય છે તે પર

છે તેવા “સત્યપર” માં જણાવેલી ચાર પ્રકારની ક્રિયાશક્તિ પ્રભુમાં છે. આ સ્થળે પર શબ્દનો અર્થ નિયામક કરવો પરત્વે પણ બાર પ્રકારનું છે. (૧) સત્ય, (૨) તપ, (૩) દમ, (૪) શમ, (૫) દાન, (૬) ધર્મ, (૭) પ્રજ્ઞા, (૮) અગ્નિ, (૯) અગ્નિહોત્ર, (૧૦) યજ્ઞ, (૧૧) માનસ અને (૧૨) ન્યાસ. આ બાર પ્રકારનું ‘પર’ પણ પ્રભુનું સત્ય છે-સર્વોત્કૃષ્ટ છે.

(૭,૮) ત્રિસત્યમ્ આ પદમાંથી બે પ્રકારની ક્રિયાશક્તિ જણાય છે. લોકમાં (૧) ભુર (૨) ભુવર અને (૩) સત્ય એમ ત્રણ લોક પ્રસિદ્ધ છે. તેમજ (૧) કામ, (૨) ક્રોધ અને (૩) પરમાત્મા એમ ત્રણ આત્મા પણ પ્રસિદ્ધ છે. આ બંને પ્રકારના ત્રિકનું ગ્રહણ છે.

આશા હિ सर्वेषां दुःखहेतुः सा त्यक्तव्या (૧૦-૪૪-૪૮)

સર્વના દુઃખનું કારણ આશા જ છે. (માટે) તેનો ત્યાગ કરવો. પ્રાણી જે ઈષ્ટ વસ્તુની આશા ધરાવે છે, તે જ અનિષ્ટ પણ ઉપજાવી શકે. સ્થેરિણિ પિંગલાએ પણ કહ્યું છે, કે “નિરાશામાં જ પરમ સુખ છે.” પિંગલાનું આ વાક્ય સ્વાભાવિક રીતે જ પરમ સુખરૂપ છે, અને તે યોગ્ય જ છે. ઔપસ્થ્ય અને જેહ્વ્ય (જીભનું) ના કાર્પણથી જ માણસ કૂતરા જેવો થાય છે. આપણને લોકમાં પણ એવા ઘણા દાખલા મળી આવે છે. અત્યારે સમ્પ્રદાય ઉપર આવેલી આપત્તિ પણ ઔપસ્થ્ય અને જેહ્વ્ય જ કારણોને લીધે છે. સમ્પ્રદાયે જેની આશા રાખી હતી, તે જ સમ્પ્રદાયને આપત્તિરૂપ નથી શું ? શ્રીમદ્દાપ્રભુજીનું ઉપર જણાવેલું વાક્ય શું કહે છે ? આશાનો અન્ત નથી.

તથાપિ પ્રભુની આશા મૂકી દેવાની નથી. તેથી જ શ્રીપુરુષોત્તમજી આજ્ઞા કરે છે કે શ્રીકૃષ્ણની આશા સત્ય છે. (જુઓ પ્રકાશ) ભક્તિમાર્ગ સ્વતન્ત્ર હોવાથી પ્રભુ તે આશા પૂર્ણ કરે છે જ. અર્થાત્ આપણે પ્રભુની આશા મૂકીને-ભગવત્સેવાસ્મરણાદિ ભૂલીને બ્રાહ્મણ મહાસંમેલનાદિના કાર્યો ઉપરથી આશા ધરાવી હતી તેથી દુઃખી થયા છીએ, ઓ પ્રભુ ! સમ્પ્રદાયને બચાવ.

कर्तव्याकर्तव्यविवेकवान् हि पण्डितः (૧૦-૪૫-૨૬)

જેને કર્તવ્ય અને અકર્તવ્યનો વિવેક હોય તે જ પાણ્ડિત કહેવાય. પાણ્ડિત તો બન્ધ અને મોક્ષને જાણનારો હોય.

कुत्रिमो हि धर्मः न सुखदायी (૧૦-૪૨-૪)

કુત્રિમ ધર્મ સુખ આપનાર હોતો નથી. જો તે સુખ આપનાર હોય તો તેથી બન્ધ પ્રાપ્ત ન થાય. આ ઉપરથી એમ સમજવાનું છે, કે જે કાર્યથી સંસારમાં બન્ધન થતું હોય તે ધર્મ નથી, ધર્મ તો સંસારને છોડાવે. યેષણવોએ શ્રીમદ્દાપ્રભુજીની આજ્ઞાનો વિચાર કરી તેઓશ્રીના ગ્રન્થોમાં જે પ્રકારે ધર્મધર્મનો નિર્ણય જણાવ્યો હોય તેમ આચરણ કરવું એ જ આ અનેક દોષદુષ્ટ કલિકાલમાં શ્રેષ્ઠ છે. કોઈ ધંધકના શબ્દોમાં વિશ્વાસ મૂકવો નહિ. વિવેકનો ત્યાગ અનેક અનર્થો ઉપજાવે છે.

न हानधिकारिहृदि धर्मः स्फुरति (૧૦-૪૪-૬૦)

અનધિકારીના હૃદયમાં ધર્મ સ્ફુરતો નથી. જેમ મર્યાદામાર્ગીય ભક્તને પુષ્ટિમાર્ગીય ધર્મ સ્ફુરતો નથી તેમ દુઃસંગાદિને લીધે પુષ્ટિમાર્ગીય તો શું પરંતુ સામાન્ય ધર્મો કે નીતિ પણ ન સ્ફુરે એ સ્વાભાવિક જ છે.

मधुमादकं च यः पिबति स न स्पृश्यो भवति (૧૦-૪૪-૧૨)

મધુ અને માદકનું જે પુરુષ પાન કરે છે, તે સ્પૃશ્ય હોતો નથી. માદક પદાર્થનો સર્વથા ત્યાગ કરવો એમ આ વાક્ય જણાવે છે.

हीनानां प्रशंसाकरणमयुक्तम् (૧૦-૪૧-૩૦)

હીન પુરુષોની પ્રશંસા કરવી પણ અયોગ્ય છે. જેણે સારાં કાર્યો કર્યા ન હોય અથવા જે ઉચ્ચ કુલમાં ઉત્પન્ન થઈને પણ ખોટાં કર્મો કરતો હોય તે હીન કહેવાય. તેવાની પ્રશંસા કરવામાં બે પાપ છે.

राज्ञोऽपि सर्वथा सर्वभूतद्रोहे भवत्येवानिष्टम् (૧૦-૪૧-૪૮)

સર્વભૂતનો દ્રોહ કરે તો રાજાનું બે સર્વથા અનિષ્ટ થાય જ. આથી કોઈએ પણ કોઈનો દ્રોહ કરવો નહિ. દ્રોહ કરનારને અન્યથી ભય હોય છે જ.

मुख्यं दुःखं मातुरेव (૧૦-૪૧-૫૦)

મુખ્ય દુઃખ તો માતાને હોય, તે પછી પિતાને. પુત્રના અપકૃત્યો કઈ માતા સાંખી શકે ? જો પુત્રના દુરાચારોને જોવા માતા ગુપ્તી રહે તો તેને જે પ્રકારે

દુઃખની લાગણી થાય, તેવી અન્યને ન જ થાય. માતા ન હોય તો પિતાને પણ લગભગ તેવું જ દુઃખ થાય અથવા શાસ્ત્રના નિયમ મુજબ તે સમયે મૃત પત્નીનું સ્મરણ થતાં બેવડું પણ દુઃખ થાય.

સ્ત્રીનાં સ્વાભાવિકો ધર્મો લજ્ઞા (૧૦-૪૪-૧૦)

સ્ત્રીઓનો સ્વાભાવિક ધર્મ લજ્ઞા છે. જો સ્ત્રીઓ લજ્ઞાનો ત્યાગ કરે તો તેમનામાં શું બચે ? કુલસ્ત્રીઓ પ્રાણાન્તે પણ લજ્ઞાનો ત્યાગ તો ન જ કરે. લજ્ઞા તો સ્ત્રીઓનો અસાધારણ સ્વભાવ કહેવાય. કુલવધૂનું તો તે આભૂષણ છે.

યેષાવ બન્ધુઓ ! શ્રીમદાપ્રભુજીની આજ્ઞાનો વિચાર કરો. કિમધિકં વિજ્ઞેષુ ?

અમૃતં હિ પ્રમાદાદપ્યુપમુક્તં પ્રસાદં સમ્પાદયત્યેવ । પ્રમાદાગ્નિસ્પર્શોઽપિ દાહ્યેતુર્મવતિ (૧૦-૪૪-૬૭)

ભગવત્સેવા અજ્ઞાનીએ - મૂઢજને - કરી હોય તો પણ તે અમૃતની પેઠે શ્રેયઃ સમ્પાદન કરે છે. પ્રમાદથી પણ અમૃતનો ઉપભોગ કર્યો હોય તો તે પ્રસાદ - આત્મસન્તોષ-ને સમ્પાદન કરે છે (ઉત્પન્ન કરે છે.) જેમ ભ્રમથી અગ્નિનો સ્પર્શ થાય તો તે પણ દાહજનક હોય છે. ભગવાનનું નિજસ્વરૂપ અમૃતમય છે. પ્રમેયબલથી પોતે અમૃતમય છે.

અયમેવ ગોપિકાનાં ધર્મઃ યથા સર્વદા માં સ્મરન્તિ; મમાપ્યયં ધર્મઃ, યથા તામ્યઃ આનંદ પ્રયच्छति (૧૦-૪૪-૩૬)

શ્રીગોપીજન જે પ્રકારે મારું સર્વદા સ્મરણ કરે છે, એજ તેમનો ધર્મ છે. અને હું પણ તેમને જેમ બને તેમ આનંદનું દાન કરું છું, એજ મારો ધર્મ છે.

યો હિ યત્સ્મરતિ સર્વદા સ તદભિલાષી સન્ તત્ર ગच्छति (૧૦-૪૩-૧૯)

જે જેને સર્વદા સ્મરે છે, તે તેને વિષે અભિલાષાવાળો થઈને તેની પાસે જાય છે. (જો નિજજનોને એકવાર જોવા માટે પ્રભુ પધારશે, તો સુંદર નાસિકાવાળું અને સ્મિતહાસ્ય સાથે કટાક્ષ કરતું તેમનું મુખકમલ અમે પણ જોઈશું.)

સ્નેહાંશસ્તુ સર્વત્ર સાત્ત્વિક એવ (૧૦-૪૦-૧૭)

સ્નેહનો અંશ તો સર્વત્ર સાત્ત્વિક જ હોય છે.

જેણે જેવી ભાવાનાથી પ્રભુનું દર્શન કર્યું તેને તેવા દેખાયા. સ્ત્રીજનને સ્મર (કામદેવ) રૂપે દર્શન થયું, તેમાં પ્રયોજક તમોરૂપ અજ્ઞાનજનક કામદેવ છે. સ્ત્રીઓને સ્નેહજનક પણ છે, અને તેથીયે વિશેષ સ્નેહજનક શ્રીવસુદેવજી અને દેવકીજીને છે. પરંતુ અહિયાં મોહ હોવાથી તે રાજસ છે. વાસ્તવિક રીતે તો સર્વત્ર સ્નેહાંશ સાત્ત્વિકજ હોય, (પુત્રનો મોહ લૌકિક હોવાથી તે રાજસ છે. કામ નિષિદ્ધ હોવાથી તામસ છે, અને શુદ્ધ સ્નેહ વિહિત હોવાથી સાત્ત્વિક છે, તેથી શુદ્ધ સ્નેહનો અંશ તો સર્વત્ર જ સાત્ત્વિક હોય એમ તારતમ્ય સમજવું.)

સાક્ષાત્કારસ્તુ તદિच्छ્યા ભવિष्यति (૧૦-૪૩-૪૧)

સાક્ષાત્કાર તો ભગવાનની ઈચ્છાથી જ થશે.

અસ્માત્પૂર્વોક્તાદન્યઃ શિવઃ કલ્યાણરૂપઃ સ ધનદશાયામપિ સુખકરઃ પન્થા આદૌ તત્ર નિવિહસ્ય પુનર્નિમાભાવાર્થ માર્ગરૂપઃ કોઽપિ નાસ્તિ । (દ્વિ.સ્કં. સુબોધિનીજી)

પૂર્વે જણાવેલા ભક્તિમાર્ગથી અન્ય કલ્યાણરૂપ માર્ગ નથી, કે જે સાધનદશામાંયે સુખકર હોય, પહેલાં આ માર્ગમાં પ્રવેશ કર્યો હોય એવા સાધકને ફરીથી ભ્રમ ન થાય એવો માર્ગ- ભક્તિમાર્ગથી અન્ય નથી.

દ્રવ્ય, કર્મ, કાલ, સ્વભાવ અને જીવ આ સર્વજ તત્ત્વો વાસુદેવ-ભગવાનથી પર-અન્ય નથી. તાત્ત્વિકરીતે વિચારતાં સર્વજ પ્રભુમય છે. દ્રવ્ય એ ભગવાનનું આધિભૌતિક સ્વરૂપ છે, અથવા મહાભૂતાદિ જે આદિદેવિક તત્ત્વ છે, કે જે સર્વનું સમવાયિકારણ છે, તે પણ પ્રભુનું જ સ્વરૂપ છે. કર્મ એ સર્વજ જગત્ના જન્મમાં સાધારણ રીતે નિમિત્ત કારણ છે, અને ભૂતસંસ્કારરૂપ પણ છે. કાલ ગુણનો કોભ કરે છે અને ગુણ કોભમાં ભોક્તા છે અને તે પ્રભુનો અંશ છે. જીવ શબ્દ જીવત્વાભિમાનિની દેવતાનો પણ વાચક છે. આ સર્વજ પ્રભુથી અન્ય નથી. અર્થાત્ ભગવાનનાં જ જુદાં જુદાં સ્વરૂપો છે.

(દ્વિ. સ્કં. સુબોધિનીજી)

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥

આત્માનું તત્ત્વ જાણવાની ઈચ્છા ધરાવનારે આટલું જાણવું જોઈએ કે જે સર્વસ્થલે સર્વદા અન્વય અને વ્યતિરેકથી પણ વિદ્યમાન હોય.

સર્વ ભગવાન્ છે. જ્યાં અન્યથા પ્રતીતિ થાય ત્યાં માયા છે. સર્વત્ર ભગવાન્ છે, તે સર્વદોષથી વિવર્જિત અને સર્વલીલાસહિત છે. આટલું મારું મત, પરમ સમાધિ વડે પ્રતિષ્ઠિત કર. (આચર). જો એમ કરશો તો કલ્પ કે અવાન્તર પ્રલયકાલમાં પણ કોઈ રીતે મુંઝાશો નહિ. (દ્રિ. સ્કં. સુબોધિની૭)

अत्रेन तृप्तिस्तदैव भवति यद्यत्रमुद्वेजकं न स्यात् । (१० उ. अ. ३० स्तो. ३०)

જો અત્ર ઉદ્વેજક (દુઃખ કરનાર) ન થાય તોજ અત્રથી તૃપ્તિ થાય. અત્ર લીધા બાદ જો તે અત્રથી પેટમાં શાંતિ થવાને બદલે કંઈ દુઃખ થાય તો તેવા અત્રથી તૃપ્તિ થતી નથી. વળી ભોજન કર્યા બાદ તામ્બૂલ, વિશ્રામ અને શયન આ ત્રણ વસ્તુઓ હોય તો ન થાય. ખાધા પછી ચાર ગાઉ દોડવાનું હોય તો તે અત્ર ખાધાથી તૃપ્તિ થાય કે કેમ તે તો અનુભવી જ જાણી શકે. વિશ્રામની આવશ્યકતા ચર્ચવી એ પણ નિર્ણયક છે. આથી જ શ્રીમદાચાર્યચરણ જણાવે છે કે જે અત્ર આપણને દુઃખ આપનાર ન થાય તેનાથી જ આપણને સંતોષ મળે છે.

आनन्दार्थमेव जीवस्य प्रवृत्तिः आनन्दश्च भगवत्येवास्ति नान्यत्र । (१० उ. अ. ३८ स्तो. २०)

જીવનની પ્રવૃત્તિ કેવલ આનંદાર્થે જ હોય છે અને આનંદ એ ભગવાન સિવાય અન્યત્ર કોઈપણ સ્થળે નથી.

ભગવાનમાં સત્, ચિત્ અને આનંદ એમ ત્રણ અંશ છે. જીવ એ ભગવાનનો ચિદંશ છે, એટલે તેનામાં આનંદાભાવ છે. જીવ ભગવાનનો ચિદંશ હોવાને કારણે વિષમભાવને પ્રાપ્ત થાય છે અને તેથી જ તે તિરોહિતાનંદ છે. ભગવાન સ્વયં આનંદથી પૂર્ણ છે તેથી તેમને કોઈની પાસેથી આનંદની અપેક્ષા હોતી નથી. જીવનો આનંદ તિરોહિત હોવાથી તે ક્યાંકથીક આનંદ મેળવવા વલખાં મારે છે અને તેથી જ કરીને તે વિષમભાવને પામે છે. આથી આવા પ્રકારનું જીવનું ચેલસણ જાણનાર પુરુષ કેવલ ભગવાનનું જ ભજન અન્યોપાસના રહિત કરે છે.

को होवान्यात् कः प्राण्यात् यद्येष आकाश आनंदो न स्यात् । एष होवानन्दयति ।

જો આ બ્રહ્મ (આકાશ) આનંદરૂપે ન થાય તો કોણ જીવી શકે અથવા પ્રાણ ધારણ કરી શકે ? તે બ્રહ્મ જ આનંદરૂપ થાય છે, આનંદને આપે છે ઇત્યાદિ શ્રુતિમાં બતાવ્યા પ્રમાણે બ્રહ્મ જ આનંદરૂપ છે. આ પ્રમાણે જીવોનો આનંદ જ્યાં તિરોહિત છે, તો પછી જડ વસ્તુઓની અંદર તો આનંદની ગંધ પણ ક્યાંથી હોય? છતાંયે ઝાંઝવાના જલની જેમ અત્યંત નિર્જલ ભૂમિની અંદર જલની પ્રતીતિ જેમ બ્રાન્ત પુરુષોને જ થાય તેમ માલાધરણ ચંદનલેપનાદિમાં પણ આનંદ છે એવી ભ્રમણા લોકને થાય છે. એટલે તે પણ બ્રાન્તિ જ છે. પોતાની પાસે જે વસ્તુ હોય તે જ બીજાને આપી શકાય અર્થાત્ જીવનમાં વિદ્યમાન્ વસ્તુ બીજાને અર્પી શકાય નહિ કે અવિદ્યમાન્ અને આનંદ તો કેવલ બ્રહ્મમાં જ છે. તેથી ભગવાન્ જ આનંદ આપી શકે. જડ, જીવાદિ ભગવદિતર પદાર્થ કદાપિ આનંદનાર્થે સમર્થ નથી.

પરમાનંદ ભલે ભગવાનથી થાય પરંતુ સ્વર્ગાદિથી અલ્પ આનંદ તો મળશે જ ને ? એ શંકા પણ અચુક છે. વેદપ્રતિપાદિત ભગવાનનું ચરણકમલ એક જ ફલસાધનરૂપ છે અને તેથી કરીને યાગાદિ (યજ્ઞો) પણ ચરણરૂપ છે અને તેજ કારણે સ્વર્ગાદિપણ ચરણ કમળરૂપ છે એમ સિદ્ધાન્ત થયો. અસ્ત્યૈવાનન્દસ્યાન્યાનિ માત્રામુપજીવન્તિ એ શ્રુતિથી આ બ્રહ્મના આનંદથી જ સર્વ જીવે છે તેમ થતાં એવંદાનન્દયતિ એ ઉપર બતાવેલી શ્રુતિ પ્રમાણે વેદોક્તિને અનુસરતાં ભગવાનના ચરણારવિંદ સિવાય અન્યત્ર આનંદાનુભવ એમ માનવું. આ પ્રમાણે સ્વર્ગાદિ ભગવચ્ચરણમાંથી ઉત્પન્ન થતાં હોવા છતાં તેની તિરોભાવ પણ થતો નથી. કારણ કે તે કદાચિત્ ઉત્પત્તિરહિત પણ હોય છે એટલું જ નહિ પરંતુ અન્યનું પણ તે (ચરણકમલ) નિવર્તક છે. સ્વર્ગાદિની સામગ્રીના દર્શનથી ઉત્પત્તિઆદિથી બ્રહ્મમાં વિરુદ્ધધર્માશ્રયત્વ આવતું નથી. અને જીવની માફક તે આનંદ અને તેથી વિશેષ કંઈ ના દેખાતાં આનંદની શંકા થાય, પરંતુ પૃથ્વીની અંદર તો સહેજ પણ આનંદની સંભાવના જ નથી. તીર્થાદિની સંભાવના વડે શુદ્ધ અતઃકરણવાલા સંતો ભૂમિમાં, ભગવાનમાં જ વિશ્વાસ કરે છે અન્યત્ર ભોગના અભિનિવેશને લીધે વિશ્વાસ કરતા નથી. આ પ્રકારે જીવો ગુમાનન્દ છે અને જગત્ નિરાનન્દ છે. અતઃ સુખાર્થી જીવો પૂર્ણનન્દ હરિજ સેવ્ય છે.

આથી કરીને જીવને જો આનંદની આકાંક્ષા હોય તો તેણે ભગવત્સેવા કરવી. ભગવત્સેવા એ એક જ જીવને આનંદનું દાન કરી શકે. ભગવાનની અંદર કદાચિત્

આનંદ ન પણ થાય અથવા પૂર્ણાનંદ એવા ભગવાન્ કોણ છે ? આવી ભાવનાઓ અનુક્રમે અસંભવાના અને વિપરીત ભાવનાઓ છે. ભગવાન્ની અંદર આનંદ છે કે કેમ ? એવી શંકા પણ કરવી જોઈએ નહિ. એટલું જ નહિ પણ ભગવાન્ કોણ છે ? તે શંકાને પણ મન ઉપર ઘરવી નહિ. વળી જીવની માફક તેમાં આનંદનો તિરોભાવ પણ શંકનીય નથી. કારણ કે અવતીર્ણ એવા ભગવાન્ શ્રીકૃષ્ણના ચરિત્રના શ્રવણ માત્રથી જ જ્યાં કોઈ એવો અમૂલ્ય આનંદ પ્રાપ્ત થાય છે કે વિચારકો પણ પરમાનંદ જેનાથી લબ્ધ થાય તેની ઈચ્છા કદાપિ કરતા નથી.

જો ભગવાનમાં સદસ્ત્રાંશો પણ આનંદનો સંદેહ થાય તો પછી વિધમાનને કોણ છોડી દે ? આથી કરીને જ ભગવાન્માંના આનંદમાં કોઈ પણ ખતનો સંદેહ કરવો જોઈએ નહિ.

एवं कार्येष्वपि कारणातिरिक्तसामर्थ्यं यत्र दृश्यते तद्भगवानिति ज्ञातव्यम् ।  
(૧૦ છ. અ. ૩૬ સ્તો. ૭)

આમ, હોવાથી કાર્યમાં પણ જ્યાં કારણથી અતિરિક્ત ક્રિયા અલગ સામર્થ્ય દેખાય છે, તે ભગવાન્ જ છે એમ જાણવું.

કારણગુણા હિ કાર્યગુણમારમન્તે કારણના ગુણ જ કાર્યગુણને શરૂ કરે છે, તે ન્યાયે ધર્મિનું જે સામર્થ્ય નથી હોતું તે ધર્મોની અંદર પણ ચુક્તિથી બાધિત છે, તેમ છતાં ધર્મોમાં કાર્યનું અતિશયપણું જણાય છે અને તેનાથી જ એમ જણાય છે કે તે ધર્મો ભગવદ્રૂપ છે. તેજ ભૂમિ ઈત્યાદિ ધર્મો ભગવદ્રૂપ છે એમ નિરૂપણ કર્યું.

પ્રસંગવશાત્ અન્ય મહાભૂતોના ધર્મો પણ ભગવદ્રૂપ થાય છે. અકસ્માત્ જલ પીવામાં આવે છે, તો કંઈક તૃપ્તિ થાય છે. તે તૃપ્તિ તે જલની નથી. જો જલની હોય તો અન્યથા જલનો શોષ થાય નહિ. પ્રાણીનું પણ આધ્યાયન થાય છે, તેનાથી પ્રાણો રહે છે, અને તેમ હોવાથી જલમાં મગ્ન થયેલો પુરૂષ મરવો જોઈએ નહિ. તેથી જલનો ધર્મ પ્રાણ નથી કિંતુ ભગવાન્ જ છે. આપો વૈ સર્વા દેવતાઃ એ શ્રુતિથી ગંગાદિમાં જલનું દેવત્વ સંભળાય છે. અને જો ગંગાજલાદિમાં દેવત્વ ન હોય તો તે ગંગાજલ પાપક્ષયનું જનક ન બને. કૂપાદિ ભેદથી આ જલ ભિન્નતાથી પ્રવર્તે છે. અને તે ભિન્ન પ્રકારોથી ફલભેદ પણ રૂપષ્ટ છે. અતઃ ભગવત્તત્ત્વજ ઉપપદ્ય છે.

આજ પ્રમાણે, રસ, ઓજ, વાયુ, દિશા ઈત્યાદિ સર્વમાં ભગવત્તત્ત્વ ઉપપદ્ય છે.

# કૌરસ્તુભકિરણાવલી

गोस्वामी श्रीहरिरायमहाप्रभु विरचित

## ब्रह्मवाद

अनुवादक : श्री हरिशंकर शास्त्री, मी.शा.वे.वि. M.R.A.S.

गोस्वामी श्रीहरिरायमहाप्रभु अन्य मतावलम्बियों का सन्देह दूर करते हुए शुद्धाद्वैतपदवाच्य स्वमत सिद्धान्त का निज जनों को बोध कराने के लिये सयुक्तिक विचार आरम्भ करते हैं -

“अब यह विचार किया जाता है कि भक्तिमार्ग में कारण रूप जो माहात्म्य ज्ञान है, उसको उत्पन्न करनेवाला और भक्ति-प्रेम की दृढ़ता में अनुकूल जो ब्रह्मवाद कहा गया है वह ब्रह्मवाद क्या है?”

उपर्युक्त वाक्य में भक्तिमार्ग, कारण, माहात्म्यज्ञान और अनुकूल आदि शब्दों का प्रयोग है, अतः इन शब्दों की निरुक्ति भी आवश्यक है। पण्डितवर गोपालकृष्ण भट्टजी ने इन शब्दों पर अच्छा प्रकाश डाला है। सब से प्रथम “भक्तिमार्ग” इस शब्द पर विचार किया गया है।

### “भक्ति” मार्ग क्यों है ?

श्रीहरिरायजीने “भक्तिमार्ग” का कारण माहात्म्य ज्ञान को बताया है। अब सब से पहिले यह विचार करना चाहिये कि भक्ति को मार्ग क्यों कहा ? मार्ग शब्द का यौगिक अर्थ है जिसके द्वारा (श्रवणादि नवधा भक्ति के द्वारा) श्रीपूर्णपुरुषोत्तम को ढूँढा जाय \*वह मार्ग। अर्थात् श्रवणादि साधनानुष्ठानात्मिका भक्ति, मार्ग है।

पुष्टिमार्ग में साधन तथा साध्य को अभिन्न माना गया है और यहां श्रवणादि को साधन कहा है, अतः पुष्टि मार्ग की उपपत्ति (सिद्धि) नहीं होगी ऐसी शङ्का नहीं करना चाहिये, क्योंकि साधन और साध्य पुष्टि मार्ग में एक ही है, श्रवणादि भी भक्ति है और उससे प्राप्त होने वाली फलात्मिका “परा भक्ति” भी भक्ति ही है, अतः एव दोनों अभिन्न है। भक्ति-प्रेम श्रवणादि साधन और परा फलात्मिका भक्ति उभयत्र अनुस्यूत है। इसका विवरण आगे चल कर किया जायगा। यहां हमको भक्ति किस पदार्थ का नाम है यह जान लेना उचित मालूम होता है। जिस प्रकार “भक्ति मार्ग” शब्द का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार “भक्तिरस” शब्द का भी प्रयोग लोक में प्रसिद्ध है।

\*मृग्यते पुरुषोत्तमोऽनेनेति मार्गः।



## भक्ति का रसत्व

“स्थायी भाव को रस कहते हैं”<sup>१</sup> इत्यादि वाक्यों में स्थायी भाव को रस कहा है। देवादि विषया रति को भाव कहते हैं। अर्थात् विभावानुभाव व्यभिचारि-सात्त्विकादि भावों से अनुनीयमान माहात्म्यज्ञान पूर्वक स्नेह रसरूपी होने के कारण भक्ति भी रस है। स्नेह यदि माहात्म्य ज्ञान पूर्वक हो तो उसको ही भक्तिरस कह सकते हैं, न कि लौकिक स्नेह को। नारदपञ्चरात्र में कहा है कि “माहात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ और सर्वतः अधिक जो स्नेह है, वही भक्ति है, उसी (भक्ति) से मुक्ति प्राप्त होती है, भक्ति के बिना मुक्ति नहीं मिलती”<sup>२</sup>

“जो ईश्वर में अनुरक्ति है वह परा भक्ति है”<sup>३</sup> ऐसा शाण्डिल्य महर्षि ने भक्ति सूत्रों में कहा है। परा भक्ति का अर्थ “फल की आकाङ्क्षा के बिना जो ईश्वर में प्रेम होता है वह परा भक्ति है”<sup>४</sup> ऐसा होता है। भक्ति रस अन्य रसों का उपलक्षक (Designation) है। रसों में शृङ्गार रस प्रधान होने से वही अभीष्ट है; क्योंकि शृङ्गार रस के अन्तर्गत ही अन्य रस है। यदि ऐसा न होता तो “रस को प्राप्त करके आनन्द युक्त होता है”<sup>५</sup> इत्यादि श्रुति वाक्यों में रसप्राप्ति का फल आनन्द को कहा है; भयानकादि रसों का फल आनन्द नहीं है, यदि उनको शृङ्गार रस के अन्तर्गत न माना जाय तो उनको रस ही नहीं कह सकेंगे, अतः यह मानना चाहिये कि शृङ्गार रस में ही अन्य रसों का अन्तर्भाव हो जाता है। “वह रस रूप है”<sup>६</sup> “वह सर्व रस है” इत्यादि श्रुति वाक्यों से ज्ञात होता है कि शृङ्गाररसरूप पुरुषोत्तमविषयकज्ञान पूर्वक, स्नेह विषयक यह मार्ग है। यह मार्ग है न कि सरणि। जैसे राज मार्ग से गमनादि सौकर्य और चोरादि का भय नहीं होता है वैसेही भक्ति मार्ग में अत्यन्त आयास (प्रयत्न) साध्य शमदमादि साधन अप्रयोजक है। इसीलिये यह भक्तिमार्ग अनायाससाध्य कहा जाता है। अर्थात् इस मार्ग से गमन करनेवालों को शमादि की कठोर परीक्षा से मुक्त समझा जाता

- (१) स्थायीभावो रसः स्मृतः। रतिर्देवादिविषया भाव इत्यभिधीयते। श्रुतत्वालोकासिद्धत्वादानुभूतेश्च भेदतः। तेभ्योऽतिरिक्तो मन्तव्यः साङ्गो भक्तिरसो बुधैः॥ इत्यादि वाक्यों में भक्तिरस का वर्णन किया गया है, जिनको विशेष जिज्ञासा हो उनको “भक्ति रसत्व वाद” पढ़ना चाहिये।
- (२) माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः। स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तथा मुक्तिर्नान्यथा॥
- (३) सा परानुरक्तिरीश्वरे। (४) फलामिसन्विहता परा।
- (५) रसः होवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। (६) रसो वै सः। सर्वरसः।

है। श्रीमद्भागवत में कहा है कि<sup>१</sup> माधव तुम्हारे साथ जिनका सुहृद्भाव है, ऐसे भक्त, मार्ग से गिरते नहीं हैं, तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर निर्भय रूप से विचरते हैं। एकादश स्कन्ध में कहा है कि जिस<sup>२</sup> मार्ग से गमन करते हुए कभी प्रमाद (धोखा) नहीं होता है, आँखें मूँद कर तथा दौड़ते हुए गमन करने पर भी न कहीं फिसलने का भय है न गिरने का। इसी कारण श्रीमदाचार्यचरण भी तत्त्वदीपनिबन्ध के भक्ति प्रकरण में कहते हैं कि-<sup>३</sup> यदि भक्तसे किसी समय इस भक्ति मार्ग में रहते हुए<sup>४</sup> वेदनिन्दा हो जाय अथवा अधर्म हो जाय तो वह नरक में नहीं गिरता है, किन्तु हीन योनि में उत्पन्न होता है। भक्तिमार्ग में प्रथम से लेकर अवधि पर्यन्त दुःख से असम्भिन्न (रहित) सुख ही है यह सिद्धान्त हुआ।

## भक्ति शब्द का यौगिक अर्थ

“भज् सेवायाम्” इस धातु से “क्तिन्” प्रत्यय करने पर “भक्ति” ऐसा शब्द सिद्ध होता है। यहां प्रकृति भज् है और क्तिन् प्रत्यय है, वह क्रियासामान्य अर्थ को कहता है। वैयाकरणों का नियम है कि प्रकृति और प्रत्यय दोनों मिलकर एक ही अर्थ को कहते हैं। यहां धात्वर्थ से सूचित प्रधानभूता क्रिया है, उसका प्रत्यय में पर्यवसान होगा, तब जो प्रधानभूता क्रिया मानसी सेवा है, वही “भक्ति” शब्द का अर्थ होगा। “मेरा”<sup>५</sup> मन अन्यत्र होने से मैंने सुना नहीं, अन्यत्र मन होने से मैंने देखा नहीं” इत्यादि वाजसनेय श्रुति के वाक्यों से ज्ञात होता है कि श्रवणेन्द्रिय वा चक्षुरिन्द्रिय के कार्य करते रहने पर भी यदि मन की स्थिति एकत्र न हो तो यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। “भज्” धातु का अर्थ सेवा करना है और भाव प्रत्यय का अर्थ प्रधानभूता मानसी क्रिया होता है, इसी से प्रेम रूप मानसी सेवा भक्ति शब्द का अर्थ निष्पन्न होता है। और यही शब्द श्रवणादि नवविधा

- (१) तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति भक्तास्त्वयिबद्धसौहृदा। त्वयामिगुणा विचारन्तिनिर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो॥
- (२) यान्माथाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्। धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेत्र पतेदिह॥
- (३) अत्रापि वेदनिन्दायामधर्मकरणात्तथा। नरके न भवेत्पातः किन्तु हीनेषु जायते।
- (४) भगवद्भक्त वेदकी निन्दा वा अधर्म कर ही नहीं सकता, यदि कदाचित् प्रसङ्ग वश ऐसा हो जाय, तो उसको हीन योनि में जन्म लेना पड़ता है। यह दण्ड भी कुछ कम नहीं है, क्योंकि हीन योनिमें उसको भगवत्प्रेम से वञ्चित रखनेवाली सामग्री प्रचुर प्रमाण में प्राप्त होती है। जो लोग भक्त नहीं हैं पर भक्तहोने का आडम्बर कर अधर्म करते हैं वे अवश्य ही नरक में वास करेंगे। यही आचार्य चरणों का आशय समझाना चाहिये।
- (५) अन्यत्रमना अभूव नाशृणवम्, यत्रमना अभूव नापश्यम्।

भक्ति में पारिभाषिक है। श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद का वाक्य है कि “श्रवण,<sup>१</sup> कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन इन प्रकारों से मनुष्य के द्वारा विष्णु की जो भक्ति की जाती है, वह नवविधा भक्ति है।

अन्य लोग भक्ति शब्द का प्रयोग उपासना के अर्थ में करते हैं। नैयायिकों का कहना है कि “आराध्यरूप से जो ज्ञान होता है वही भक्ति है।

भगवान् कपिलदेवने तो श्रवणादि नव प्रकारों को सात्विकादि भेद से त्रिविध कहा है। और फिर मिश्रित भेद से प्रत्येक त्रिक को तीन प्रकार का कहा है, अर्थात् तीनों के भेदोंको गिनने से नव प्रकार होते हैं। और पुनः इन नवों के नव नव भेद किये जाँय तो ८१ भेद होते हैं। श्रीमद्भागवत में कहा है कि “भगवान् के प्रति जो अनिमित्ता (फल की आकाङ्क्षा से रहित) भक्ति हो तो वह सिद्ध से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि वह मोह रूप आच्छादन को हटा देती है, जैसे ढँकी हुई अग्नि आच्छादन को जला देती है वैसे ही मोह रूपी आच्छादन को भक्ति हटा देती है।

वही नारदपञ्चरात्र और शाण्डिल्यसूत्रोक्त मानसीसेवारूप भक्ति उपर्युक्त प्रकारेण योग रूढ शब्द से विवक्षित है। अत एव श्रीमदाचार्यचरणों ने कहा है कि “भगवान् के चरणों में धिस्त को लगा देना ही सेवा है, और वह सेवा मानसी कहलाती है। भक्ति का लक्षण इस प्रकार है - “भगवान् का भजन भक्ति है, वह ऐहिक और आमुष्मिक फल भोग की आशा को छोड़कर भगवान् में मन को लगाना है।” अर्थात् मन के द्वारा भगवान् की सेवा फलाकाङ्क्षा को छोड़कर करना ही भक्ति है। “मन का स्थिर होना ही परम योग (भक्ति योग) है।” इत्यादि श्रुति पुराणादि के अनेक वचनों से सिद्ध होता है कि भक्तिमार्ग ही श्रीपूर्णपुरुषोत्तम की प्राप्ति का उत्तम साधन है। ऐसे भक्तिमार्ग में माहात्म्य ज्ञान को उत्पन्न करनेवाला अनुकूल, कारणरूप से (ब्रह्मवाद को) कहा गया है।

### माहात्म्य ज्ञान से भक्ति उत्पन्न होती है

महान् है आत्मा-शरीर जिसका वह महात्मा, अर्थात् ब्रह्म। बृहत् होने के कारण वह ब्रह्म कहा जाता है। महात्मा के भाव अर्थात् धर्म को माहात्म्य कहते हैं। और माहात्म्य का ज्ञान होना माहात्म्य ज्ञान कहा जाता है। अर्थात् महात्मा-बृहत् शरीर वाले ब्रह्म का महामहिमज्ञान “माहात्म्यज्ञान” शब्द का अर्थ है।

(१) श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् । इति पुंसार्वभौत विष्णो भक्तिश्रेष्ठविलक्षणा ।

माहात्म्यज्ञानरूप ब्रह्मज्ञान भक्ति को उत्पन्न करनेवाला कारण है। “कारण के अभाव से कार्य का भी अभाव हो जाता है” इस न्याय से भगवत्स्वरूप ही भक्ति का विषय होने के कारण भगवत्स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है, भगवत्स्वरूप का ज्ञान न होने से भक्ति उत्पन्न ही नहीं हो सकेगी। अतः माहात्म्यज्ञान भक्ति को उत्पन्न करने के अनुकूल अर्थात् जनक है। अथवा यदि “आनुकूल्य” शब्द का अर्थ सहकारीभाव किया जाय तो समुच्चय अर्थ होगा। अर्थात् माहात्म्यज्ञान भक्ति को उत्पन्न करनेवाला (कारणरूप) और सहकारी है।

इस प्रकार भक्ति में भगवान् के माहात्म्य ज्ञान की आवश्यकता है और माहात्म्यज्ञान की प्रेम की दृढता के लिये आवश्यकता है। “माहात्म्यज्ञान” शब्द के भी दो विभाग हैं, पहिला “माहात्म्य” और दूसरा “ज्ञान”। उसमें “जिससे” जन्म आदि होते हैं” “जिससे” ये भूत उत्पन्न होते हैं” “ब्रह्म” सत्य, ज्ञान और अनन्त है” इत्यादि कार्यप्रतिपादक तथा स्वरूपप्रतिपादक वाक्यों से ज्ञात होता है कि जिसकी रचना की कल्पना मन भी नहीं कर सकता ऐसे जगत् का अनायास उत्पन्न करना, पालन करना, भङ्ग करना; संसार में लिप्त और अलिप्त रहना, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व, “उसके” हाथ न होने पर भी ग्रहण करता है और पैर न होने पर भी दौड़ता है” इत्यादि विरुद्धधर्माश्रय से माहात्म्यकी सिद्धि होती है। इससे सिद्ध होता है कि भक्ति और ज्ञान का उपजीव्य उपजीवक भाव या कार्य कारण भाव सम्बन्ध है। अतः माहात्म्य ज्ञान में कारणीभूत आनुकूल्य-सहकारी भाव ब्रह्मज्ञान है ऐसा मानना उचित है। इस तरह का यह भक्ति मार्ग व “ब्रह्मवाद” है।

### “ब्रह्मवाद” का स्वरूप

इस प्रकार का अश्रुत पूर्व “ब्रह्मवाद” क्या है ? उसमें क्या युक्ति है ? प्रमाण क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? यह सब श्रृङ्खलाबद्ध रूप से कहते हैं। “ब्रह्म एकही अद्वितीय “है।” इस श्रुति में ब्रह्म को एक ओर अद्वितीय कहा है साथ ही उसमें एक निश्चयार्थक अव्यय का भी प्रयोग है। इसका स्वारस्य “स्वजातीय, विजातीय, स्वगत भेद वर्जित ब्रह्म है” इस प्रकार अर्थ करने से

(१) जन्माद्यस्य द्यतः ।

(२) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ।

(३) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

(४) अपाणिपादो जवनो ग्रहीता ।

(५) एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ।

प्रकट हो जाता है। "एक" पद से सजातीय- जीव के भेद का निरास किया है, "ही" इस निश्चयार्थक अव्यय से विजातीय-जड़ के भेद का निरास है और "अद्वितीय" पद से स्वगत-अन्तर्यामी-के भेद का निरास है। "जो धर्म एक में होते हुए अनेक में अनुगत हो वह जाति है" इस जाति के लक्षण से "जीव" सजातीय है। क्योंकि जीव अनेक हैं उनमें चित्त्वरूपा जाति है। चित्त्व रूपेण जीव सजातीय है। मुण्डकोपनिषद् कहता है कि जैसे<sup>१</sup> सुदीप्त अग्नि से विस्फुलिङ्ग-चिनगारियाँ उत्पन्न होती हैं वैसे ही ब्रह्म से सहस्रत्रयशः-असंख्य-सरूप जीव उत्पन्न होते हैं<sup>२</sup> यहां सरूप पद प्रयुक्त हुआ है, इससे समझना चाहिये कि जीव घेतनत्व-नित्यत्व-आदि धर्म से ब्रह्म का सजातीय है। जड़ विजातीय है, क्योंकि उसमें जडत्व और अनित्यत्वादि है। और अन्तर्यामियों का स्वगतत्व प्रकट सच्चिदानन्द रूप होने पर भी परिच्छिन्न, प्रतिनियतकार्यकर्तृत्वादि से ज्ञात होता है।

### द्वैत और अद्वैत का उदाहरण

सजातीय द्वैत खण्ड-मुण्ड, गो व्यक्ति की भाँति है, विजातीय द्वैत घट-पट की तरह जानना चाहिये। पुष्प के साथ वृक्ष का अखण्ड सम्बन्ध होने पर भी वृक्ष में पुष्पत्व नहीं है, इसी प्रकार स्वगत में प्रकट सच्चिदानन्दत्व होने पर भी परिच्छिन्नत्व और परिमितकार्यकर्तृत्वरूप से भेद है। इस प्रकार का भेद वा द्वैत का न होना अद्वैत है और वही चिद्रूप से जीव में, सद्रूप से जड़ में और प्रकटानन्द रूप से अन्तर्यामी-स्वगत में, इस प्रकार इन तीनों में अनुस्यूत होने के कारण अद्वितीयत्व ब्रह्म में विद्यमान है। अतएव श्रीमदाचार्यचरणों ने कहा है कि "ब्रह्म सजातीय, विजातीय, स्वगत द्वैत वर्जित है।"

### कार्यकारणरूप से अद्वैत

इस प्रकार कारण दशा में स्थित ब्रह्म का अभेद प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियों को कह कर अब कार्यदशा में स्थित ब्रह्म का अभेद प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियों को कहते हैं "यह सब पुरुष (ब्रह्म) ही है<sup>३</sup>" यह श्रुति तैत्तिरीयोपनिषद् के सहस्रशीर्षानुवाक में पढ़ी गई है। इसके आगे "जो हो गया है और जो होगा

(१) यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रत्रयशः प्रभवन्ते सरूपाः।

(२) पुरुष एवेद सर्वम्।

(यह ब्रह्म ही है)<sup>१</sup>" कहा है इन दोनों श्रुतियों का अर्थ इस प्रकार है-पुरुष-पुरुषोत्तम, "उत्तम पुरुष अन्य है वही परमात्मा है<sup>२</sup>" इस वाक्य से पुरुषोत्तम अर्थ होता है। "यह सब भूत और भावी (यह ब्रह्म ही है,)"<sup>३</sup> इस श्रुति में भी भूत और भावी रूप से जिसका व्यवहार किया जाता है वह जगत् "यह" घटपटात्मक नाम और रूप से भिन्नतया परिदृश्यमान "सब" जगत् 'पुरुष' परमात्मा पूर्ण पुरुषोत्तम ही है। इसमें उपादान कारण रूप से पुरुषोत्तम ही अनुस्यूत होने से पुरुषोत्तम ही है, अन्य नहीं। क्योंकि "जिससे<sup>४</sup> इस जगत् के जन्मादि होते हैं" "जिससे<sup>५</sup> ये भूत उत्पन्न होते हैं" "वह<sup>६</sup> ब्रह्म ही इस (जगत्) का समवायिकारण है" इत्यादि श्रुति और सूत्र में 'पाणिनीय सूत्र के अनुसार पञ्चमी विभक्ति समवायिकारण का ही निर्देश करती है। और यही बात व्याससूत्र प्रथमाध्याय प्रथम पाद तृतीय सूत्र के भाष्य में श्रीमदाचार्य चरणों ने प्रकट की है, इस लिये उसका विस्तृत विवेचन यहां करने की आवश्यकता नहीं है। छान्दोग्योपनिषद् के धेतकेतूपाख्यान में भी यही कहा है- "यह सब 'ऐतदात्म्य' है" अर्थात् 'इस आत्मा से उत्पन्न हुआ' है। इसी उपाख्यान के प्रारम्भ में कहा है कि "में वह<sup>७</sup> जानना चाहता हूँ कि जिससे अश्रुत श्रुत हो जाय।" इत्यादि से एक के विज्ञान से सब का विज्ञान होना प्रतिज्ञात है। यह एकही सर्व हो जाता है। जैसे सुवर्ण के खण्ड और सुवर्ण के कार्य सब सुवर्ण ही है, सुवर्ण के ज्ञान से सब सुवर्णकार्यों का ज्ञान हो जाता है। इसीलिये "हे सौम्य ! (१०) यह सब पहिले भी सत् ही था" यहां से आरम्भ करके निरूपण किया है। तदनन्तर सब जड़ भी तदात्मक ही है यह कहने के लिये ऐतदात्म्यमिदं इत्यादि कहा है। इस श्रुति का यह अर्थ है-इस आत्मा से यह सब आविर्भूत हुआ है। यहां भी पञ्चमी विभक्ति समवायिकारण को कहती है। अर्थात् इस आत्मा से मृत्तिका से घट की भाँति सद्रूप से यह जगत् हुआ। "हे सौम्य<sup>१०</sup> ! यह सब पहिले सत् ही था" इस दृष्टान्त वाक्य में जड़ को तदात्मक कहने पर भी पुनः दृढ करने के लिये दार्ष्टान्तिक वाक्य में भी कहा है और इसके आगे विनाशित्वादि जडगत दोषों का परिहार

(१) यद्भूतं यच्च भाव्यम्।

(३) इदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।

(५) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।

(७) जनिकर्तुः प्रकृतिः।

(९) अपि वा तमादेशप्राप्तो येनाश्रुतं श्रुतं भवति।

(१०) सदेव सौम्य इदमग्रे आसीत्।

(२) उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।

(४) जन्माद्यस्य यतः।

(६) तच्च समन्वयात्।

(८) ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्।

करने के लिये "वह" सत्य है" यह कहा गया है। इसका अर्थ होता है "अनागन्तुक अनारोपित सत्।" उसके आगे पूर्वोत्तर जड जीव का सदात्मक होने में हेतु कहते हैं कि वह परमेश्वर आत्मा सबका स्वरूपभूत है। "वह सत्य है" वह पूर्वोक्त सत्य अर्थात् सर्व काल में रहनेवाला है। इससे वैनाशिकमत, अर्धवैनाशिक मत, असत्त्व विनाशित्वमत, मायावाद आदि का निरास होता है। जैसे सुवर्ण कटक कुण्डलादि का कारण है वैसे ही ब्रह्मात्मक यह जगत् होने से वह भी ब्रह्म के सत्य होने से सत्य ही है, ऐसा ज्ञापन कराया है। जड को तदात्मक होने के पश्चात् जीव को भी तदात्मक कहने के लिये "तत्त्वमसि" वाक्य कहा है। इसका अर्थ होता है तत्त्व=वैसाही (ऐतदात्म्य) असि=तू है। अर्थात् जैसे ऐतदात्म्य (इस आत्मा से उत्पन्न होने वाला) जड है वैसे ही तू भी ऐतदात्म्य है। यहां "असि" इस क्रिया पद से ही मध्यम पुरुष के एक वचन का ज्ञान हो जाता है, फिर "त्वम्" पद की आवश्यकता नहीं है, अतः यहां "तत्त्वम्=तस्य भावः तत्त्वम्" ऐसा पद मानना उचित है ऐसा श्री पुरुषोत्तमजीने आवरणभङ्ग में लिखा है। इसी लिये श्री हरिरायजी भी "तत्त्वमसि" श्रुति का सम्पूर्ण प्रपाठक की उपलक्षिका यह श्रुति है ऐसा कहते हैं। यह सब निबन्ध विद्वन्मण्डनादि ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक कहा गया है।

"वही? (ब्रह्म) यह सब जगत् है" इत्यादि श्रुति से पूर्वोक्तरीति के अनुसार यह स्पष्ट ही ज्ञात होता है। और भी "हे सोम्य" ! यह प्रजा सन्मूल, सदायतन, सत्प्रतिष्ठान है, यह सब पहिले आत्मा (ब्रह्म) ही था, हे सोम्य ! पहिले सत् ही था, उसने स्वयं अपने को बनाया" इत्यादि श्रुतियों से भी ज्ञात होता है कि पहिले ब्रह्म प्रपञ्च रूपेण ब्रह्म ही है, क्योंकि पूर्व में उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं।

### जगत् क्यों उत्पन्न हुआ ?

"उसने इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊँ" इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता है जब उस आनन्दमय-आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि प्रभु को रमण करने की इच्छा हुई तब उसने इस जगत् को उत्पन्न किया (जब कि सृष्टि के प्रारम्भ काल

(१) तत्त्वमसिम् । (२) सर्वे सर्वमिदं जगत् ।

(३) सन्मूलाः सौम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठानाः, सदेवसौम्येदमग्र आसीत्, स आमलन-स्वमयकुरुतेत्यादिः ।

(४) एकोऽहं बहुस्याम् ।

में ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ था ही नहीं तब जगत् का उपादान करण ब्रह्म के बिना अन्य क्या हो सकता है ? अर्थात् भगवान् स्वयं ही जगत् के रूप में प्रकट हुए। अतः) सुवर्ण से जैसे कटककुण्डलादि बनते हैं वैसे ही ब्रह्म से यह जगत् बना। जगत् का आविर्भाव आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि विशिष्ट पूर्ण पुरुषोत्तम की क्रीडा अर्थात् रसादि के अनुरूप रमण आनन्दात्मक निज भक्तों के साथ तथा तदनुकूल तादृश आत्मीय पदार्थों के सह हैं। जगत् यदि ब्रह्मात्मक न हो तो भगवान् के रमण की सामग्री में तादृश स्वरूप और भक्तों में समानशीलव्यसनत्व का अभाव हो जाने से रमण का अनुभव न होगा अतः आनन्द रूप भगवान् की क्रीडा का उपकरण भी आनन्द रूप अर्थात् ब्रह्म रूप है। साथ ही क्रीडा आधार के बिना नहीं होती है, अतः आधारत्वेन जड जीवात्मक सच्चिदंश से सत् (सत्य) रूप प्रपञ्च का आविर्भाव किया है। भगवान् ही प्रपञ्चरूप से आविर्भूत होकर सर्वजन को अपना अनुभव कराते हैं। प्रपञ्च (जगत्) भगवद्रूप होने के कारण उसका आविर्भाव होता है, न कि जन्म। क्योंकि वह नित्य और अपरिच्छिन्न है, अतः उसका नित्य और अपरिच्छिन्न तनु में ही प्राकट्य है। यह जो जगत् सकलजनों को परिदृश्यमान् होता है वह अन्य नहीं, पर भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम का ही आविर्भाव है, न कि अन्य का। क्योंकि "यह सब पुरुष (भगवान्) ही है" इत्यादि पूर्वोक्त श्रुतियों का प्रमाण विद्यमान है। इस जड में भगवान् की ही इच्छा से सदंश प्रकट है तथा धित् और आनन्दांश तिरोहित है। सच्चिदंश जीव में प्रकट है और आनन्दांश तिरोहित है। जड और जीव का आविर्भाव क्रीडार्थ होने के कारण ही उनमें वे अंश प्रकट और अन्य तिरोहित हैं।

### जगत् और ब्रह्म का अभेद

इस प्रकार काष्ठवह्निन्याय से आविर्भूत और अनाविर्भूत दोनों स्वरूप में ही "सत्य, ज्ञान और अनन्तलक्षणलक्षित ब्रह्मरूपसच्चिदानन्द स्वरूप वा भगवत्स्वरूप जगत् है ऐसा सिद्ध होता है।

सुवर्ण और कटक कुण्डलादि की तरह कार्य और कारण के एक होने से ब्रह्म अखण्ड अद्वैत है, यही श्रुतियों का तात्पर्य है। इस प्रकार श्रुतितात्पर्यरूप अखण्डाद्वैत यह ब्रह्मवाद है। अतः 'यह सब ब्रह्म ही है' इत्यादि श्रुतियों के

(१) पुरुष एवेद सर्वम् ।

(२) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

(३) सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।

अनुसार आचार्य चरण भी कहते हैं कि “यह<sup>१</sup> सब अखण्ड आनन्दमय श्रीकृष्ण रूप है, यही वाणी का निष्कर्ष है”

### क्या द्वैतापत्ति है ?

अब यहां शङ्का होती है कि कार्यकारणस्वरूप विलक्षण होने से तथा एक ही के दो रूप (ब्रह्म और जगत् अथवा ईश्वर और जीव) होने से अखण्ड अद्वैत न होकर द्वैत हो जायगा। इस शङ्का का निषेध करते हुए कहते हैं कि नहीं, “यहां<sup>२</sup> कुछ भी नाना (अनेक) नहीं हैं”। यह श्रुति वाक्य काटकोपनिषद् के द्वितीयाध्याय की प्रथम वल्ली में है। उसमें प्रथमाध्याय की पूर्व वल्ली में यम ने सब को नश्वर निरूपण किया है, यह सुन कर तथा सब पारमार्थिक नहीं है ऐसा जान कर शिष्य ने पारमार्थिक वर माँगा। अनन्तर द्वितीय वल्ली में शिष्य विरक्त है ऐसी परीक्षा करके निःश्रेयस् (मोक्ष) के हेतु केवल ब्रह्मविद्या की अभिलाषा वाला है यह बताने के लिये यम ने अभ्युदय और निःश्रेयस् का हेतु ऐसी विद्या और अविद्या का विभाग कहा, इसके पश्चात् उसी विद्या और अविद्या का फल कहने के लिये तृतीय वल्ली का आरम्भ होता है इस प्रकार सङ्क्षेप से प्रथमाध्याय का अर्थ होता है। इसके अनन्तर द्वितीयाध्याय में पूर्वोक्त विद्यादि प्रपञ्च को कहने के लिये प्रथम वल्ली का आरम्भ करते हैं। “अधिदैव अभ्यादि तथा अध्यात्म वागादि देवता स्थिति काल में प्रविष्ट होते हैं, अर्थात् उस हिरण्यगर्भरूप भगवान् की तदात्मकता का उल्लङ्घन नहीं करते यानी उससे अलग नहीं रहते अर्थात् नाना नहीं है ऐसे देवतारूप अधिदैव और अध्यात्म को जो देखता है, वही निश्चय रूप से इस प्रकरणोक्त ब्रह्म को देखता है। यहां उपक्रम और उपसंहार में जीव और ईश की एकता कही है। उसके मध्य में जड की भी एकता बताई है। इस प्रकार उसके नानात्व-अनेकत्व का दर्शन न होने से जो नानात्व दर्शन होता है वह भ्रान्ति है यह सूचन करने के लिये कहते हैं कि “जो यहां है वह सर्वत्र है, और जो सर्वत्र है वही यहां है” अर्थात् जीवोपाधि में तथा इश्वरोपाधि में अनुप्रविष्ट वह ब्रह्म ही है” उपाधिकृत भेद मिथ्या है, यह निन्दा के रूप में कहते हैं वह मृत्यु से (काल से) मृत्यु को प्राप्त होता है, जो यहां नाना-अनेक की भाँति देखता है। (इव) भाँति शब्द यहां चिद्रूप के ऐक्य का अविरोध सूचन करता है, क्योंकि चिद्रूप से ऐक्य है ही। यहां व्यतिहारोक्ति ऐक्य-अद्वैत-को दृढ़ करने के लिये तथा भेद विद्या का निवर्तक और अविद्या का कार्य होने से वह

मिथ्या है। अतः कहते हैं कि “इसको<sup>१</sup> मन से ही प्राप्त करना चाहिए, यहां नाना-अनेक-कुछ भी नहीं है” मन से यानी आचार्य और आगमोपदिष्ट एकाग्रता से उसको प्राप्त करना चाहिये। बीच में ‘ही’ यह निश्चयार्थक अव्यय है, उससे ज्ञात होता है कि चक्षुरादि भेदग्राहक इन्द्रियों का निरास है। ‘प्राप्त करना चाहिये’ इसका अर्थ होता है ‘जानना चाहिये’। अर्थात् भेदग्राहि चक्षुरादि इन्द्रियों से वह नहीं जाना जाता परन्तु मन से ही वह जाना जाता है। यह सब कठवल्ली भाष्य में विस्तृत रूप से वर्णित है। पूर्वोक्त (प्रथमाध्यायोक्त) अभेद बोधक श्रुतिवाक्यों के आगे की श्रुति में विलक्षण होने पर भी वहां द्वैतत्व का निषेध होने से द्वैतापत्ति नहीं है। सुवर्ण और कटककुण्डलादि में विलक्षण होने पर भी वस्तुतः द्वैत का अभाव ही है। अत एव श्रुति भी वैसा ही अभेद कहती है- “तपज्ञान से पूर्व उत्पन्न, और उदक से भी पूर्व उत्पन्न प्राणिमात्र के हृदयाकाश में प्रवेश करके (पञ्चमहा) भूतों के साथ वर्तमान ऐसा जो कुछ (हिरण्य गर्भ रूप तेज) कोई देखता है वही यह ब्रह्म है।” इसी प्रकार “वही यह है” “कोई धीर-बुद्धिमान् मनुष्य मोक्ष की इच्छा करता हुआ सर्व इन्द्रियों को अन्तर्मुख करके इन्द्रियों से उलटा गमन करनेवाले आत्मा को देखता है” “कोई अविद्वान् यदि सत्य को मिथ्या मान कर दो छिद्रों में से एक ही ज्योति की भिन्न भिन्न दिखाई देने वाली किरणों की भाँति अनेक कहता है, तो वह योग्य नहीं है।” “जैसे सुवर्ण को कटककुण्डलादि के नाम से व्यवहारदशा में पुकारते हैं वैसे ही अधोक्षज भगवान् भी अनेक प्रकार की वाणी से लौकिक और वैदिकों के द्वारा पुकारा जाता है।” इत्यादि अनेक वाक्यों से अभेद का प्रतिपादन किया गया है। ऐसे अद्वय ब्रह्म के प्रपञ्च रूप में भी सच्चिदानन्द रूप-जड जीवान्तर्यामी रूप में-नानात्व-अनेकत्व नहीं है। किन्तु जिनको ब्रह्मज्ञान नहीं है उनको अविद्या से-मायाशक्ति से नानात्व दीखता है। “जब तक गुणों में विषयता है तब तक आत्मा का नानात्व प्रतीत होता है, किन्तु स्वप्न के पश्चात् प्रबुद्ध होने पर स्वाप्निक ज्ञान की भाँति नानात्व की भी निवृत्ति होती है। अतः अविद्या से भासमान भेद मिथ्या होने के कारण विलक्षणता नहीं है, किन्तु एकरूप ही है। अत एव यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म एकरूप होने के कारण उपनिषद् में<sup>२</sup> एक के ज्ञान से सब का ज्ञान होना कहा गया है, एवं वाचारम्भण श्रुति से भी प्रपञ्च का समवायि कारण ब्रह्म ही है।

(१) मनसैवेदमाप्तव्यम्, नेह नानास्ति किञ्चन।

(२) तमादेशमप्राक्षो येनाश्रुतं श्रुतं भवति इत्यादि।

(१) अखण्डं कृष्णवत् सर्वमिति निर्गलितं वचः।

(२) नेह नानास्ति किञ्चन।

## वाचारम्भण श्रुति का स्वरस्य

“वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्” (छां० ६।१।१।)

वाणी से कारण का जो आरम्भ (उद्धार) होता है वह नामधेय है, कारण ही तत्तत्पदार्थ और क्रिया की सिद्धि के अर्थ तत्तन्नाम से व्यवहृत होता है। अतः कारण से कार्य अभिन्न ही है यह सिद्ध हुआ। घटादि नाम मृत्तिका के विकार का ही है, अतः मृत्तिका (कारण) के ज्ञान से घटादि (कार्य) का भी ज्ञान हो जाता है। इसीलिये उपर्युक्त श्रुति में “मृत्तिकेत्येव सत्यम्” कहा है।

अत एव भगवान् वेदव्यासजी कार्यबोधक श्रुति में मुक्ति के विरोध का परिहार करके कार्य बोधक वाक्यान्तर में श्रुतिविरोध का परिहार करने के लिये “तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः” (२/१/१४) सूत्र कहते हैं। वाचारम्भण आदि वाक्य में कार्य को कारण से अनन्य-अभिन्न कहा है न कि मिथ्या। सूत्र में आदि पद उपन्यस्त है, वह उपर्युक्त श्रुति में पठित ‘इति’ ‘नामधेय’ तथा पूर्वोक्त ‘हे सौम्य ! पहिले यह (जगत्) सत् ही था’ इत्यादि वाक्यों का सङ्ग्राहक है।

## मतान्तरनिराकरण

“तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः” श्रीरामानुजाचार्यजी एवं भास्कराचार्यजी का मत है कि यह सूत्र भेदवाद का निराकरण करने के लिये है, और उसमें आनुषङ्गिक रूप से मायावाद का भी निराकरण किया गया है। किन्तु इस मत का निराकरण आचार्यचरणों ने अणुभाष्य में तथा श्रीपुरुषोत्तमजी ने भाष्यप्रकाश में विशदरूपेण किया है। भेदवाद का निराकरण तो पहिले ही २-१-११<sup>१</sup> सूत्र में किया है। तथा प्रकृतिवाद का भी निरास पूर्व में ही १-४-२३<sup>२</sup> सूत्र में कर दिया है। विस्तार के भय से उनका विवेचन यहाँ नहीं किया है।

## नानात्वनिराकरण

घट-सकोरा, पट-पगड़ी-साड़ी इत्यादि अनेक पदार्थ हैं, इन सब का एक रूपेण ज्ञान किस प्रकार होगा ?

इस प्रश्न का उत्तर दृष्टान्त सहित इस प्रकार है - जैसे बालकों के मनोरञ्जनार्थ शर्करा (चीनी) के कङ्कणादि आभरण, घर, हाथी, घोड़ा आदि भिन्न

(१) तर्कप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः।

(२) प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपपेक्षात्।

भिन्न पदार्थ बनाते हैं और वे अनेक प्रतीत होते हैं, तथापि वे सब शर्करा (चीनी) के रूप में एक ही हैं - शर्करा रूप वस्तु नाना अनेक नहीं है। वैसे ही कार्यकारणभावरूप से इस जगत् में भी नानात्व नहीं है। क्योंकि ब्रह्म सर्वरूप होने पर भी उसमें नानात्व की प्रतीति नहीं होती है। जिनको ब्रह्म ज्ञान हो गया है उनको ब्रह्म स्वरूप मात्र दृष्टि होने से नानात्व की प्रतीति नहीं होती है। किन्तु जिनको ब्रह्म ज्ञान नहीं हुआ है उनको अविद्या से माया शक्ति से नानात्व की प्रतीति होती है। क्योंकि उनकी दृष्टि तात्पर्यान्त विचार के अभाव में असम्मत है। अर्थात् वास्तविक दृष्टि के अभाव से एक स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण नानात्व प्रतीत होता है, वस्तु में एक रूपता का अभाव अर्थात् नानात्व नहीं है। पूर्वोक्त (बालक और चीनी के खिलौने के) दृष्टान्त से सिद्ध होता है कि बालकों (यथार्थज्ञानशून्य जनों) की दृष्टि तात्पर्यज्ञान और विचार से शून्य होने से असम्मत-अयथार्थ है। तात्पर्य यह है कि एक ही मृदादि (ब्रह्म के सदृश रूप) समवायिकरण से घट पटादि बनते हैं, वह ब्रह्म का सदृश सब में अनुस्यूत-व्याप्त है, अतः उसी रूप से सब एकरूप होने के कारण कहीं भी नानात्व नहीं है। पूर्वोक्त श्रुतियों का तात्पर्य भी यही है। और विचार यह है कि कार्य क्या है ? कारण क्या है ? और उनका स्वरूप कैसा है ? अज्ञानों को न तात्पर्य का ज्ञान है न विचार का, तब उनकी दृष्टि सम्मत किस प्रकार मानी जाय ? तात्पर्य और विचार के लिये ही उत्तरमीमांसा शास्त्र है। वेद में (विशद रूप से) विचार न होने के कारण उससे निःसन्दिग्ध ज्ञान नहीं होता है अतः उत्तरमीमांसा से विचार करना चाहिये। कर्म, अकर्म और विकर्म आदि वेदवाद लौकिक नहीं है। वेद ईश्वरात्म-ईश्वर रूप-होने के कारण उसमें (उसके अर्थ में) विद्वानों को भी मोह (सन्देह) हो जाता है<sup>२</sup>। अतः यह मीमांसा शास्त्र भी बहिर्दृष्टि सापेक्ष नहीं है, किन्तु अन्तर्दृष्टि सापेक्ष है। अत एव श्रीमदाचार्यचरणों ने भी कहा है कि-वेद<sup>३</sup> का अर्थ बुद्धिमान् (जिसको अन्तर्दृष्टि हो) को स्थूणाखनन<sup>४</sup> न्याय से दृढता के लिये मीमांसा का निर्णय है, किन्तु दुर्बुद्धि (हीनाधिकारी) मनुष्य के लिये वेदार्थनिर्णय

(१) नेहानास्ति किञ्चन, वाचारम्भणं विकारो नामधेयम् इत्यादि।

(२) कर्माकर्मविकर्मैति वेदवादो न लौकिकः। वेदस्य चेश्वरात्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः।

(३) असन्दिग्धेऽपि वेदार्थे स्थूणाखननवन्मतः। मीमांसानिर्णयः प्राज्ञे दुर्बुद्धेऽस्तु ततोऽन्यम्।

(४) स्तम्भ को गाड़ने के लिये गड्ढे में रखने और मिट्टी से उस गड्ढे को भर देने के बाद भी ऊपर से कूट कर उसको दृढ करते हैं यह स्थूणाखनन न्याय है।

और दृढ़ता दोनों प्रकार से उपयोगी है। इस मीमांसा शास्त्र में ब्रह्म का अखण्ड अद्वैत सिद्ध किया है।

अत एव - स्वेच्छा से क्रीडार्थ आधाररूप से प्रपञ्चरूप को सम्पदान करने के लिये स्वयं तद्रूप हो कर भगवान् ही (प्रपञ्चरूप से) प्रादुर्भूत है इस लिये "यह सब अद्वितीय ब्रह्म है" इत्यादि श्रुतियों के तात्पर्य-प्रमाणबल से सर्वरूप से अखण्ड अद्वैत ब्रह्म ही है।

### प्रपञ्चमें हेयत्वबुद्धि

प्रपञ्च (जगत्) ब्रह्मरूप है ऐसा सिद्ध होने पर शास्त्रों में प्रपञ्च का त्याग करने की जो आज्ञा दी गई है उसमें विरोध उत्पन्न होगा। यदि प्रपञ्च ब्रह्मरूप है तो उसका त्याग नहीं हो सकता, और यदि वह असत्य है तो ब्रह्मरूप नहीं हो सकेगा, ऐसी शङ्का उपस्थित होती है, उसका समाधान इस प्रकार है- "रमणी, रथ, घोड़े इत्यादि मनुष्य को अप्राप्य पदार्थ होने पर भी मोक्ष के लिये इनका त्याग करना आवश्यक है" इत्यादि वाक्यों में प्रापञ्चिक पदार्थों का त्याग करने को कहा गया है। यद्यपि शास्त्रों में त्याग का उपदेश है तथापि प्रपञ्च को असत्य वा भगवद्रूपसे अतिरिक्त नहीं कह सकते, क्योंकि वैराग्य उत्पन्न करने के लिये उन वाक्यों का प्रयोजन है। यह प्रपञ्च सृष्टि भगवत्क्रीडार्थ ही है। अत एव भगवत्क्रीडा प्रयोजक प्रपञ्च होनेके कारण वह भगवान् से अतिरिक्त वा मिथ्या नहीं है, किन्तु भगवद्रूप ही है। यदि प्रपञ्च को मिथ्या कहा जाय तो भगवत्क्रीडा ही मिथ्या हो जायगी। तथा "मैं एकही अनेक हो जाऊँ" इस श्रुति वाक्य को भी मिथ्या कहना पड़ेगा। इस से सिद्ध होता है कि शास्त्रों में जो त्याग का उपदेश है वह इसलिये नहीं कि जगत् मिथ्या है, किन्तु उसका अन्य प्रयोजक है। इस विचित्र सृष्टि में स्त्रीत्व पुंस्त्व युवा बाल वृद्धत्वादि अनेक प्रकार से मित्र, बन्धु आदि रूपसे अविद्या के कारण उनमें स्वीयत्व बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। मैं इनका हूँ, ये मेरे हैं इत्यादि प्रकार से आत्मीयरूप से अथवा सम्बन्ध रूप से बुद्धि उत्पन्न होती है- यह बुद्धि भ्रमरूप है। क्योंकि वास्तविक रूप से यह सब ब्रह्मरूप होने से उनमें ब्रह्मत्व बुद्धि होनी चाहिये-वह न होकर रागद्वेषात्मक बुद्धि उत्पन्न होती है वह मिथ्या है और उसीका त्याग शास्त्रों में लिखा है। "किसके कौन पति पुत्रादि है-पतिपुत्रादिरूपबुद्धि मोह ही है।" इत्यादि वाक्यों में पतिपुत्रादिरूपबुद्धि

(१) एकोऽहं बहुस्याम्।

(२) कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम्।

ब्रह्मात्मकताका विरोध करके भ्रम उत्पन्न करने वाली होने के कारण अनर्थ का कारण वा दोष रूप है। इस प्रकार के भ्रम को "अहं-मम-मैं-मेरा आदि प्रकार से जो स्वीकार करता है वह कुमति है" इत्यादि वाक्यों में निन्दा भी सुनी जाती है। इससे सिद्ध होता है कि अहन्ता ममता रूप बुद्धि का त्याग है न कि प्रपञ्च का। यदि ऐसा न हो तो "भगवान् भक्तों को मुक्ति प्रदान करता है पर किसी प्रकार भी भक्तियोग प्रदान नहीं करते" इत्यादि वाक्यों में मुक्ताधिक भक्त जनों को यह जगत् भजनोपयोगी होने के कारण वे जगत् का जो परिग्रह करते हैं वह नहीं कर सकेंगे।

### मुक्ताधिक भक्तों का स्वरूप

"भगवान् मुक्ति प्रदान करते हैं भक्तियोग नहीं" इस वाक्य से ज्ञात होता है कि जिनको भक्तियोग प्राप्त है वे मुक्तों से अधिक हैं, क्योंकि पूर्णपुरुषोत्तम के चरणों का परिचरण करने में उनका अन्तःकरण भक्ति परायण रहता है। भक्ति ब्रह्म को प्राप्त कराने वाली है, और प्रवचनादि साधनों से असाध्य है। श्रुति भी कहती है कि "यह<sup>१</sup> आत्मा प्रवचन से, बुद्धि से वा शास्त्रों से प्राप्य नहीं है, किन्तु वह जिसको वरण करता है उसीसे वह लभ्य है।" भक्ति साधन साध्य नहीं है। पर मुक्ति तो तपस् आदि से साध्य है। "तप<sup>२</sup>से ब्रह्म को जानने की इच्छा करो" ऐसा श्रुति वाक्य भी साधनों का उपदेश करता है। यहां यदि उपर्युक्त दोनों श्रुति वाक्यों की एकवाक्यता की जाय तो यह सिद्ध होगा कि पहिले साधनों से मुक्ति को प्राप्त करके तीव्र विरह ताप से भगवत्कृपा द्वारा वरणाधिकार जिन्होंने प्राप्त कर लिया है वे भक्त हैं। यह ज्ञानिभक्त है। पुष्टि भक्तों को तो पहिले ही निःसाधन होने से तथा श्रीपूर्णपुरुषोत्तम की सेवा में उनका अन्तःकरण परायण होने से परमाधिकार सम्पत्ति को प्राप्त किये हुए हैं। "पुष्टि<sup>३</sup> भक्तों की सृष्टि भगवान् ने काया से ही की है" ऐसा श्रीमदाचार्यचरण का वाक्य भी है। "वह अकेला रमण नहीं करता, उसने अनेक होने की इच्छा की" इत्यादि श्रुति वाक्यों से ज्ञात होता है कि जो भगवान् ने स्वयं अपने शरीर से सृष्टि उत्पन्न की वह पुष्टिसृष्टि है।

(१) अहं ममेति स्वीकृत्य करोति कुमतिर्मतिम्।

(२) भगवान् भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्।

(३) नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तैन लभ्यः॥

(४) तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व।

(५) पुष्टिं कायेन निश्चयः। स वै नैव रेमे तरमादेकाकी न रमते सद्द्वितीयमैच्छत् बहुस्यां प्रजायेय।

केवल ज्ञानी मुक्त हैं और ज्ञान युक्त भक्तिमान् मुक्ताधिक भक्त हैं। “में<sup>१</sup> योग माया से आवृत रहने के कारण सब के लिये प्राप्त नहीं हूँ, जो सर्वभूत के हित में रत रहते हैं वे मुझे प्राप्त करते हैं” इत्यादि भगवान् के वाक्यों से भी ज्ञानी और भक्त का विवेक स्पष्ट होता है। “ज्ञानी<sup>२</sup> होकर यदि भगवत्सेवा करे तो उसमें अधिक कोई नहीं है।” यह मुक्ताधिक भक्तों के विषय में प्रशंसा वाक्य भी प्राप्त होता है। और यही श्रीमदाचार्यचरणोंने तत्त्वदीप निबन्ध और अणुभाष्य के आनन्द-मयाधिकरण में स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। उपर्युक्त प्रकार से जो मुक्ताधिक भक्त हैं वे ही ज्ञानी भक्त समझे जाते हैं और हम उनको ही पुष्टिभक्त कहते हैं।

केवल ज्ञानी वे हैं जिनको अखण्ड अद्वैत का ज्ञान हो गया है।

मुक्ताधिक भक्त और केवल ज्ञानियों को यह जगत् भजनोपयोगी है। “यह<sup>३</sup> भगवान् का ही दूसरा रूप है” “अपनी<sup>४</sup> क्रीडा के लिये यह जगत् किया” “यह<sup>५</sup> विश्व क्रीडा भाण्ड है” इत्यादि वाक्यों में यह प्रपञ्च भगवद्रूप है ऐसा प्रतिपादन किया है, अतः जगत् भजनोपयोगी है ऐसा श्रीशुक्राचार्यने भी कहा है। यदि ऐसा न होता तो जगत् को लीला रूप तथा उपास्य क्यों कहते? क्योंकि यदि भगवद्भक्तों के लिये जगत् का परिग्रह कहा जाय तो उनको जगत् के द्वारा सत्य ज्ञान न हो सकेगा, किन्तु भगवद्भक्तों की दृष्टि ब्रह्मात्मक हो जाने से वे जगत् को भी ब्रह्मात्मक ही देखते हैं। जगत् को हेय कहने का अभिप्राय यह है कि उससे (जगत् से) अहन्ता ममता हट जाय। अहन्ता ममता के हट जाने से ही ब्रह्मात्मक ज्ञान उत्पन्न हो सकता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मात्मक है तथा उसका त्याग करने का जो उपदेश है उसका यथार्थ रूप से विवेचन किया है।

### उपासना की साधना

प्रतिवादी पूछता है कि यदि आपके मत के अनुसार सम्पूर्ण प्रपञ्च (जगत्) को ब्रह्मात्मक मान लें तो फिर उपनिषदों के उपासना विषयक वाक्यों में प्रपञ्च की ही उपासना क्यों नहीं कही? उपनिषद में तो “आत्मा<sup>६</sup> को देखना चाहिये,

(१) नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायामावृतः । ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

(२) ज्ञानीषेद्धजते कृष्णं तस्मान्नास्त्याधिकः परः । (३) इदं हि विश्वं भगवानिदेतरः ।

(४) क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतम् ।

(५) क्रीडाभाण्डमिदं विश्वम् (६) आत्मावारे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।

सुनना चाहिये, मानना चाहिये, निदिध्यासन (पुनः पुनः स्मरण) करना चाहिये” इत्यादि वाक्य से आत्मा को ही उपास्य रूप से कहा है न कि जगत् रूप से। ब्रह्म सर्व रूप होने से उपासना भी सर्व रूप से होनी चाहिये, पर सर्वरूपेण उपासना कहीं भी नहीं कही गई। सम्पूर्ण वेदान्त वाक्यों में “कला<sup>१</sup> (भाग) रहित, निष्क्रिय (क्रिया रहित) शान्त, निर्दोष और निरञ्जन” ब्रह्म की ही उपासना का उपदेश है, न कि प्रपञ्च रूप से। यदि प्रपञ्च रूप से ही उपासना हो तो प्रथमाध्याय द्वितीयपाद के प्रथमाधिकरण में जो कहा गया है कि सर्वत्र वेदान्तों में जो प्रसिद्ध उपदेश है उसी ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये, उसका भी विरोध होगा।

उपर्युक्त पूर्वपक्ष का समाधान इस प्रकार करते हैं—वेदान्त वाक्यों में जो ब्रह्म को प्रपञ्च से भिन्न रूपमें उपासना का उपदेश है वह अज्ञानियों के लिये चित्त शुद्ध्यर्थ है, न कि ज्ञानवान् के लिये। क्योंकि वास्तविक रूप से प्रपञ्च से ब्रह्म भिन्न हो ही नहीं सकता। प्रारम्भिक अवस्था में सर्वाधिक ज्ञान के अभाव में ही वैसा उपदेश है। वस्तुतः प्रपञ्च और उपास्य रूप भिन्न भिन्न नहीं है, किन्तु एक ही है। बालानुशासनार्थ वैसा उपदेश होने से उपर्युक्त “दृष्टव्यः श्रोतव्यः” इत्यादि वाक्यों का निर्वाह हो जाता है। इसी लिये कहा है कि “जब<sup>२</sup> तक उस परावर परब्रह्म श्रीकृष्ण के प्रति भक्तियोग नहीं होगा तब तक उस विराट् रूपधारी भगवान् का स्मरण उपासन करें।” इस वाक्य में उपास्य रूप का वर्णन है। केवल ब्रह्म ज्ञानियों को ही सर्वत्र प्रपञ्च में ब्रह्म की स्फूर्ति होती है। अनन्तर अधिकार के अनुसार फल की प्राप्ति होती है। जिनका अधिकार सिद्ध हो गया है उनको भक्ति के अतिरिक्त उपासना का अवसर ही नहीं है। अतएव कहा है कि “यह<sup>३</sup> सब (जगत्) वासुदेवमय है ऐसा जानने वाले महात्मा अति दुर्लभ है।”

### जीव और ब्रह्म की एकता

यदि इस प्रकार शुद्ध ब्रह्मवाद का स्वीकार किया जाय तो जीव भी भगवद्रूप हो जायेंगे, तब भगवान् की सेवा जीव किस प्रकार कर सकेगा?

जीव अंश रूप से भगवद्रूप है, न कि अंशी रूप से। जीव भगवान् का अंश

(१) निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवयं निरञ्जनम् ।

(२) यावन्नजायते परावरेऽस्मिन्

(३) इदं सर्वं वासुदेव ॥२॥३॥४३॥



है इसमें अनेक प्रमाण विद्यमान है। व्यास सूत्र के द्वितीयाध्याय तृतीय पाद के सोलहवें अधिकरण में कहा है कि यह सब उत्पन्न होता है, जीव अनेक हैं जीव अनेक होने के कारण तथा वह ब्रह्म से अग्नि<sup>१</sup> से विस्फुलिङ्ग (चिनगारियों) की तरह उत्पन्न होने के कारण अंश है। यह <sup>२</sup>जीव मेरा ही अंश है वह जीव लोक में "जीव" सञ्ज्ञा से पुकारा जाता है, ऐसा भगवद्वाक्य भी गीता में प्राप्त होता है। जीव की भगवदिच्छा से आनन्दांश कहिये अथवा भगवान् में रहने वाले छः ऐश्वर्य कहिये तिरोहित हो जाने से वह जीव सञ्ज्ञा को प्राप्त हुआ है। उसको पुनः अपनी पूर्वावस्था प्राप्त करने के लिये तथा अविद्या दोष को हराने के लिये भजन की आवश्यकता है, व्यास सूत्र के <sup>३</sup>तृतीयाध्याय द्वितीयपाद २५ वे सूत्र में कहा है कि "भगवान् की इच्छा से जीव के ऐश्वर्यादि छः गुण तिरोहित हो जाने से बन्ध और विपर्यय (अन्यथा ज्ञान) होता है। (ऐश्वर्य के तिरोभाव से दीनत्व एवं परीधनत्व होता है, वीर्य के तिरोभाव से सर्व दुःख सहन करना पड़ता है, यश के तिरोभाव से दीनता, श्री के तिरोभाव से जन्मादि सर्व आपत्तियों को भोगना पड़ता है, ज्ञान के तिरोभाव से देहादि में अहं बुद्धि होती है, तथा सब पदार्थों में विपरित ज्ञान होता है, वैराग्य के तिरोभाव से विषयों में आसक्ति होती है। पूर्व चार का कार्य बन्ध है और विपर्यय दोनों का कार्य है।) अतएव भजनादि से जीव विमुख होता है। "यह आत्मा बल हीन से प्राप्य नहीं है" इस श्रुति के अनुसार पूर्वावस्था को-ऐश्वर्यादिभाव सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिये भजनादि की आवश्यकता है। इसी प्रकार अविद्या रूपी दोष की निवृत्ति के हेतु भजनादि की आवश्यकता है। क्योंकि भगवान् विच्छेद करानेवाली यही अविद्या है।

परन्तु जब भजनादि के द्वारा जीव भगद्रूपता को प्राप्त कर लेगा अथवा यों कहिये कि ऐश्वर्यादि सम्पत्ति को प्राप्त कर लेगा तब तो भजनादि की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, उस समय ये सब सेवादि कार्य छोड़ देना पड़ेंगे। उस समय भजनादि की अनुपपत्ति (असिद्धि) ही होगी ऐसी शङ्का नहीं कर सकेंगे। क्योंकि जीव और ईश्वर के बीच जो तारतम्य है वह भी तो भगवत्कृत ही है। "स्वरूप से, अवतार से, चिह्न से तथा गुण से जीव देह वा क्रिया में जो कुछ तारतम्य जान पड़े वह

(१) अथाग्नेः क्षुद्राविस्फुलिङ्गाप्युचरन्ति ।

(२) ममैवांशो जीवलोकः ।

(३) परामिध्यानास्तुतिरोहितं नतोह्यस्य बन्धविपर्ययो ॥३॥ २॥ ४॥

(४) नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।

वास्तविक तारतम्य नहीं है, किन्तु वह भगवत्कृत है। वस्तुतः भक्त और भगवान् के गुणों में समानता होती है। भक्तों में भगवान् के साथ नृत्यादि सामर्थ्य है वह तो स्पष्ट ही है। "ब्रह्म ही होकर ब्रह्म को प्राप्त करता ही है" यह श्रुति वाक्य भी भक्त और भगवान् की समानता का प्रतिपादन करता है। भगवान् के साथ भक्तों की समानता होने पर भी भगवत्कृत तारतम्य विद्यमान ही है। क्योंकि उत्कर्ष और अपकर्ष के बिना खेल क्रीडा-रमण-सिद्ध नहीं हो सकता। अतएव बाललीलादि का विचित्र वर्णन शास्त्रों में मिलता है।

भक्त और भगवान् का सम्बन्ध-तारतम्य-समझ लेने से भजन की आवश्यकता भी सिद्ध हो ही जाती। फलतः पुष्टि, पुष्टिपुष्टि, मर्यादा इन तीनों अधिकारों में यथाधिकार सिद्ध होने पर अलौकिक सामर्थ्य, पुरुषोत्तम सायुज्य, वैकुण्ठादि में सेवोपयोगी देह, यह जो तीन प्रकार का फल आचार्य-चरणों ने सेवा फल में कहा है वह अधिकारानुसार प्राप्त होता है, ऐसा श्रुतियों का तात्पर्य है।

### पुष्टिभक्तिमार्ग और भजन

शङ्का-तथापि जिस पुष्टिमार्ग में भजन का पर्यसान कहा है उस में अविद्यादि निवारणीय दोष ही नहीं है, तो फिर भजन की आवश्यकता ही क्या है? पुष्टिमार्ग शब्द का अर्थ ही भगवान् के अनुग्रह का मार्ग ऐसा होता है, और उसमें अविद्या से उत्पन्न होने वाले काम, क्रोधादि दोषों का स्वभावतः अभाव ही होना चाहिये, और आप कहते हैं कि अविद्या को दूर करने के लिये भजन की आवश्यकता है, तो जहाँ दोष ही नहीं वहाँ उसके निवारण का प्रयत्न भी व्यर्थ हो जाता है। साथ ही भगवद्गीता में कहा है कि "अतएव मेरी भक्ति करने वाला तथा मेरे में ही धित्त को रखने वाला जो भक्त हो उसके लिये ज्ञान वा वैराग्य कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जो श्रेयस्कर हो तथा "यदि अत्यन्त दुराचारी भी मेरा अनन्य रूप से भजन करता है, तो उसको साधु ही मानना चाहिये" इत्यादि वाक्यों से तथा अजामिलादि के उदाहरण से प्रतीत होता है कि भक्तों में अविद्या से उत्पन्न होनेवाले दोषों का सर्वथा अभाव ही रहता है अथवा वे दोष भगवदिच्छा से ही दूर हो जाते हैं अथवा यों कहिये कि वे दोष बाधा नहीं पहुँचाते हैं। इस से सिद्ध होता है कि भक्तों का श्रेयस् भागवदिच्छा पर ही निर्भर होने के कारण वह आकस्मिक है, तथा आकस्मिक श्रेयस् के लिये भजन की आवश्यकता नहीं है।

(१) ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्नोति ।

अर्थात् भजन अनुपपन्न है।

समाधान-यद्यपि उपर्युक्त प्रकार से विचार करने पर भजन की आवश्यकता सिद्ध नहीं होती है, तथापि मानना पड़ेगा कि भक्तों में वे दोष नहीं होते हैं जिन को निवारण करने के अर्थ भजन उपयुक्त ही, अथवा भक्तों के दोष भगवदिच्छा से ही निवृत्त हो जाने के कारण निवारण करने के लिये दोष ही विद्यमान नहीं है, तथापि भक्त (जीव) भगवान् से उन की इच्छा के अनुसार ही वियुक्त हुआ है, उसको पुनरपि भगवत्सम्बन्ध करना है-फलानुभव करना है - इस लिये उसको भजन की आवश्यकता है, यह तो पहले ही सिद्ध किया गया है कि लीला-क्रीडा - के अर्थ जीव भगवान् से वियुक्त हुए हैं, अतएव पुनः स्वरूप को प्राप्त करने के लिये भजन की पूर्ण आवश्यकता है।

अब यहाँ फिर से यह शङ्का होती है कि पहले कहा गया है कि अविद्या की निवृत्ति के लिए भजन की आवश्यकता है। और उपर्युक्त समाधान से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनमें अविद्यादि दोष नहीं है, अविद्या के अभाव में भजन अनुपयुक्त होगा।

नहीं, भजन अनुपयुक्त नहीं है। भगवान् से वियुक्त होते ही जीव संज्ञा प्राप्त होती है और साथ ही अविद्या जन्म दोष उस को धर दबाते हैं, और इसी कारण से जीव को पुनरपि अपना स्वरूप जानने के लिये तथा फलानुभवके अर्थ भजन अवश्य ही उपयोगी है।

यदि यहाँ ऐसी शङ्का की जाय कि रासलीला में कामादि की आवश्यकता होने के कारण उसकी निवृत्ति ही आवश्यक नहीं है, तो वह शङ्का भी अप्रासङ्गिक होगी। क्योंकि रास लीला में लौकिक कामादि की आवश्यकता नहीं है, किन्तु रासलीला और उसमें प्रयुक्त पदार्थ सभी अलौकिक होने से वहाँ अलौकिक काम ही रहता है (लौकिक काम साधक नहीं पर बाधक ही है) अतः लौकिक कामादि की (अविद्या की) निवृत्ति आवश्यकीय है।

रासलीला में भगवान् "श्री, पुष्टि वाणी, कान्ती, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या तथा माया शक्ति से सेवित है" इत्यादि वाक्यों से प्रतीत होता है कि अविद्या रासलीला में भी विद्यमान होने के कारण तथा उसका स्वभाव ही बन्धन करना है, तो वहाँ भी बन्धन उपस्थित कर देगी। नहीं, रासलीला में अविद्या भी अलौकिक होने से तथा "भगवान् के समीप माया शक्ति भी लज्जा युक्त हो जाती है" इस वाक्य के अनुसार जहाँ स्वयं माया शक्ति ही लज्जा युक्त रहती

है वहाँ अविद्या भी लज्जा युक्त होकर अपना प्रभाव छोड़ देती है, तथा रासलीला में बाधा उपस्थित न करके अनुकूल ही रहती है। "भगवान् ने शरद् ऋतु में मल्लिका के पुष्प खिले हुए हैं, ऐसी रात्रि को देखकर योगमाया का आश्रय लेकर क्रीडा करने की इच्छा की" उस भगवतोक्त वाक्य में भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि योगमाया भगवान् की इच्छा के अनुकूल रहती है। तो फिर अविद्या भगवान् की इच्छा के अनुकूल रहे, इसमें लेश मात्र भी शङ्का को स्थान नहीं है।

अत एव लौकिक स्वभाव युक्त अविद्या की निवृत्ति उचित ही है। यदि उसकी निवृत्ति न होगी तो फलानुभव की सिद्धि भी न होगी, इसलिये अविद्या की निवृत्ति आवश्यक है और तदर्थ भजन भी आवश्यक होने से भजन की उपपत्ति युक्त ही है।

### साध्यसाधन भेद

भजन साधन है और फल साध्य है ऐसा यदि मान लिया जाय तो पहले जो "पुष्टिमार्ग" शब्द की व्युत्पत्ति की गई है, वह सार्थक न होगी, क्योंकि पुष्टि-भगवान् के अनुग्रह का जो मार्ग, वह पुष्टिमार्ग है ऐसा अर्थ पहले किया है, उसमें भगवान् का अनुग्रह साधनसाध्य नहीं, परन्तु भगवदिच्छा ही से साध्य है। सेवक की तरक्की राजा की इच्छा सम्पादन करने से ही हो सकती है। अत एव मानना पड़ता है कि जिसमें साधन के बिना ही फल प्राप्ति हो, अर्थात् साधन और फल एक ही वह पुष्टिमार्ग है। कर्म, ज्ञान, उपासना की भाँति भजन भी साधनरूप होने से उसके द्वारा पुष्टिमार्ग साध्य नहीं होगा। अत एव भजन की उपपत्ति पुष्टिमार्ग में नहीं है।

नहीं, ऐसा कहना अनुचित है, क्योंकि भजन भावरूप है; "भजन" भक्ति शब्द से वाच्य क्रिया का रूप है। "प्रकृति (मूल धातु) और प्रत्यय मिलकर ही अर्थ को दर्शाते हैं, उसमें भी प्रत्यय की प्रधानता है" ऐसा नियम होने से यहाँ धातु से "क्तिन्" प्रत्यय करने पर भजन क्रिया का अर्थ ज्ञात होता है। यह भजन क्रिया सेवारूप है। सेवा पद निरन्तर अर्थपूर्वक कायिकव्यापारविशेष परिचर्या के अर्थ में प्रसिद्ध है। 'स्त्री सेवा' 'ओषध सेवा' इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी दीख पड़ता है। अर्थात् सेवा पद से 'निरन्तर परिचर्या' ऐसा अर्थ ज्ञात होता है। "मेरी सेवा से प्राप्त होनेवाले सायुज्यादि (सायुज्य, सामीप्य, साह्य, सालोक्य)

(१) मत्सेवया प्रतीतं य सायुज्यादिघृतुष्यम् । दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ।

चार प्रकार के मोक्ष की भी मेरे भक्त इच्छा नहीं करते हैं" इत्यादि स्वतन्त्र सेवा बोधक वाक्यों से भी उपर्युक्त ही अर्थ सिद्ध होता है। जलताडनादि क्रिया की तरह केवल क्रिया निष्फल है। अत एव भक्ति शब्द से भी प्रेमपूर्वक सेवारूप भजनक्रिया ही अर्थ होता है। "सच्चरित्र स्त्रियाँ सत्पति को जैसे (प्रेम के द्वारा) वश कर लेती हैं वैसेही मेरे भक्त मुझे वश में कर लेते हैं" इस वाक्य से भी दम्पती के दृष्टान्त से भजनक्रिया-प्रेमपूर्वक होनी चाहिये ऐसा सिद्ध होता है। यदि भजन-सेवा-प्रेमपूर्वक न हो तो वह सेवा केवल काया को कष्ट पहुँचाने वाली होने से पुरुषार्थ रूप न हो सकेगी। अत एव भजनक्रिया में प्रेम ही अपेक्षित है, यही प्रत्ययार्थ है। अतः भजन प्रधानतया प्रेमरूप होने से भावरूप है। इस प्रकार व्याकरण शास्त्र की रूढी के अनुसार भजन की भावरूपता है। यह भाव मन का धर्म है। "ईश्वर में जो अनुरक्ति होती है वह पराभक्ति है" शांडिल्य महर्षि के इस सूत्र से भी यही सिद्ध होता है कि अनुरक्ति भाव विशेष है वा यों कहिये कि अनुरक्ति शब्द वाच्य भक्ति से भावरूपता अभिव्यक्त होती है। अत एव वह भक्ति साधनरूप है, साथ ही वह फलरूप है। साधन और फल (साध्य) दोनों भी भजन ही है। भाव (साधन) के होने पर उससे अतिरिक्त दूसरा कोई फल ही नहीं है। "निष्कारम भक्ति सिद्धि से भी श्रेष्ठ है" इत्यादि वाक्यों से भी यही प्रतीत होता है कि निष्काम अर्थात् भावरूप भक्ति ही साधन एवं फलरूप है। वह भाव-प्रेम, भक्तिरस-शृङ्गार रस का स्थायीभाव का रूपान्तर है। भाव का लक्षण "रस के अनुकूल विकार को" बताया है। यह प्रेम धर्म-अन्तिम-समय तक रहता है इसी से उसको स्थायी भाव कहा है। अत एव वह अपुष्ट और पुष्ट, तथा साधन और फलरूप कहते हैं सो उचित ही है। ऐसी रसशास्त्र मर्यादा है। कहा है कि "स्थायी भाव का रस है" अत एव अपुष्ट और पुष्ट वा साधन और साध्य दोनों दशा में रसत्व की क्षति नहीं है। जिस तरह पूर्वावस्था में अंकुरित वृक्ष प्रौढ दशा में भी वृक्ष ही रहता है, उसी तरह रस भी पूर्वावस्था में भावरूप होकर प्रौढावस्था में रसरूपता प्राप्त करता है। इसी अर्थ को ग्रहण कर के श्रीहरिरायजी कहते हैं कि भजन को साधनरूप मान लें तो भी क्षति नहीं है। वह (भजन) फलरूप होनेपर भी उसको साधन मानने से उसकी फल रूपता में कुछ भी क्षति नहीं है।

इस प्रकार विचार करने से ज्ञात होता है कि फल रसरूप है, वही (फल-

रूपरस) पूर्वावस्था में रस-भावरूप होकर स्वकार्य (रसरूप से आविर्भूत होना) को सिद्ध करता है, यह उसी की दो अवस्थाएँ (साधन और साध्यरूप) हैं।

वास्तविक रूप से तो प्रेम की तीन अवस्थाएँ हैं, प्रेम, आसक्ति और व्यसन। "भक्ति से प्रेम, आसक्ति और व्यसन जब हो जाता है, तब उसको शास्त्र में दृढ बीज रूप कहा जाता है, जो कि नष्ट नहीं होता है।" इस प्रकार भजन को साधन रूप मानने में क्षति नहीं है ऐसा आचार्यचरणों का वाक्य भी है। आप की आज्ञा है कि वही पुष्टिमार्ग है जहाँ फल स्वयमेव साधन हो जाता है।

यह साधन वा फल यद्यपि अभिन्न हैं, तथापि अत्यन्त असंभ्य होने के कारण सर्वजन साधारण नहीं हैं, वह तो केवल निःसाधनता से भगवत् प्रसाद प्राप्त करने से ही प्राप्य है "भगवान् श्री निकेतन के प्रसन्न होने पर क्या अलभ्य है?" इस वचन से ज्ञात होता है कि जो पदार्थ अनेक कठिनतर साधना से भी अप्राप्य है वह निःसाधनता से केवल भगवत्प्रसाद प्राप्त करने पर प्राप्य हो सकता है। इस प्रकार भगवान् स्वयं ही कृपा कर फलदान करते हैं। दोषबाहुल्य के कारण पहिले अपूर्ण होकर दोषों की निवृत्ति रूप साधना कार्य करके पुनः परिपूर्णता से रसरूप होते हैं। यह भावरूप तथा रसरूप फल भगवान् स्वयं ही है, ऐसा सिद्धान्त है। श्रुति कहती है कि "वह रसरूप है"। "स्थायी भाव को रस कहते हैं" इस न्याय से भी सिद्ध होता है कि भगवान् स्वयं भाव रूप तथा फल रूप होने से साधन रूपता और फल रूपता भी उसी का धर्म है। इसी आशय से आचार्य चरणों ने कहा है कि "भगवान् ही फल है" अर्थात् स्वरूप बलेन स्वयं ही प्रमाण रूप है। तदनुसार श्रीहरिरायजी भी कहते हैं कि स्वयं ही फल रूप है ऐसा जो कहा गया है वह युक्त ही है, क्योंकि अपने स्वरूप बल से जो प्रमाण रूप है वह पुष्टि है। साथ ही "ज्ञान फल जनक है, यह भाष्य का वचन भी संगत होता है। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि "जि"समें साधन की अपेक्षा न होने पर भी फलसाधन से भिन्न न हो वह पुष्टि है" ऐसा लक्षण युक्ति युक्त है। शम दमादि साधनों की व्यावृत्ति के लिये 'साधनों की अपेक्षा न होने पर' ऐसा कहा है। यहाँ श्रवणादि नवविधा भक्ति साधन है, ऐसी शङ्का न करनी चाहिये, क्योंकि

(१) ततः प्रेम तथासक्तिव्यसनं च तदा भवेत्। (३) रसो वै सः।

बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्मैव नश्यति ॥ (४) गतेरर्थवत्त्वम् ब्र. सु. ३०३०२९।

(२) किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने। (५) साधनानपेक्षत्वे सति साधनानन्यफला पुष्टिः।

(१) वशीकुर्वन्ति मां भक्त्यासत्त्रियः सत्पतिं यथा।

(२) सापरानुरक्तिरीश्वरे।

(३) अनिमित्ता भगवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी।

(४) स्थायीभावो रसः स्मृतः।

वह भी (नवविधा भक्ति) साधन के साथ फलरूप है। यह बात आचार्य चरणोंने बार बार सुबोधिण्यादि ग्रन्थों में स्पष्टतया दीखाई है। "पुष्टिमार्ग वही है जहां फल स्वयं साधन बन जाय" इसी सिद्धान्त को लीला के दृष्टान्त से श्रीहरिरायजीने समर्थन करते हुए कहा है कि पहले प्रकट होकर संयोग का अनुभव करा कर पश्चात् विरह का अनुभव कराने के लिए भगवान् का मथुरा गमन रूप त्याग श्री भागवतादि ग्रन्थों में कहा है।

### क्या जीव अंश होने से भजन में अनुपपत्ति है ?

शङ्का-जीव अंश रूप है, तथापि वह ब्रह्म स्वरूप होने के कारण ब्रह्म से अन्यून है, अतः जीव और ब्रह्म का सेव्य सेवक भाव की सम्भावना नहीं है, तथा इसी कारण से भजन की उपपत्ति नहीं है।

समाधान-"मैं एक ही अनेक हो जाऊँ" इस तैत्तिरीय उपनिषद् के वाक्य से ज्ञान होता है कि क्रीडा के अर्थ ही वैसा जीव रूप से आविर्भाव हुआ है। अर्थात् जीवों में न्यूनत्व है। जीव में न्यूनत्व होने से ही सेव्य सेवक भाव सिद्ध होता है, अतः भजन में किसी प्रकार की भी अनुपपत्ति नहीं है।

पुनः शङ्का उपस्थित हो सकती है कि सृष्टि काल में उच्च नीच भाव से प्रादुर्भूत होने की इच्छा होना सम्भवित है, पर मुक्ति दशा में वैसा हो नहीं सकेगा। अतः न्यूनत्व अवास्तविक होने से मुक्ति दशा में और जीवन्मुक्त दशा में अंश रूप जीवों की ब्रह्म की समानता रहती है। यदि ऐसा न हो तो लय होने के समय सेव्य सेवक भाव को अवकाश न होने से भजन की अनुपपत्ति पूर्ववत् स्थिर रहती है।

इस शङ्का का भी समाधान इस प्रकार होता है-जीव का प्रादुर्भाव न्यूनत्व विशिष्ट ही हुआ है, अत एव भजन की उपपत्ति है। अर्थात्-प्रादुर्भाव-प्रथम से लेकर अवधि पर्यन्त पुष्टि सृष्टि के रूप में भी है, और वही भगवान् को विवक्षित है। श्रुति कहती है कि "जिस को इस लोक से ऊपर ले जाने की इच्छा होती है, उससे अच्छे कर्म कराते हैं और जिसको नीचे ले जाने की इच्छा होती है उससे असत् कर्म कराते हैं"। यदि इस प्रकार न मानेंगे तो भक्ति मार्ग का उच्छेद हो जायगा। भक्ति मार्ग का उच्छेद होने से अब के भगवद्वाक्यों का व्याकोप होगा।

इस प्रकार जीव का न्यूनत्व जब वास्तविक है तब तो न्यूनत्व में वस्तु स्वभाव ही कारण होगा न कि ब्रह्म की इच्छा। इस शङ्का को मनमें रख कर श्रीहरिरायजी शङ्का करके स्वयं ही उसका समाधान भी कहते हैं:- आविर्भाव में भगवान् की इच्छा कारण है, किन्तु वस्तु की अन्यथा कृति में इच्छा कारण नहीं है। जीवों का न्यूनत्व वस्तु स्वभाव सिद्ध होने पर भी उसका कारण भगवदिच्छा ही है, क्योंकि वस्तुस्वभाव भी तो भगवदिच्छा से ही हुआ है और वह भगवान् के अधीन है। अत एव वस्तु का जैसा स्वरूप है तथा वस्तु का जिस प्रकार का स्वभाव है उस प्रकार का स्वरूप और स्वभाव का आविर्भाव होने में भी भगवदिच्छा कारण है। किन्तु वस्तु की अन्यथा कृति में भगवदिच्छा कारण नहीं है। क्योंकि वस्तु की अन्यथा कृति का प्रयोजन न होने से वैसी इच्छा का अस्तित्व ही नहीं है।

स्वरूप की अन्यथा कृति में भगवदिच्छा कारण रूप न होने से युक्ति काल में भी जीव "भगवान् के कण्ठ में जो निर्मल मणि (कौस्तुभ) है वह जीव का तत्त्व है" इस वाक्य के अनुसार स्थित है। मुक्त जीवों को स्थिति का आभूषण रूपी होने के कारण न्यूनता युक्त है तो फिर अन्य जीवों की स्थिति न्यूनता युक्त हो इसमें आश्चर्य ही क्या है। इस कैमुतिक न्याय से सिद्ध होता है कि जीव भगवद्रूप होने पर भी अंश रूप हैं, अतः न्यूनता वास्तविक है। न्यूनता वास्तविक होने से ही जीव रूप असंख्य अंश अग्रि से विस्फुलिङ्गचिनगारियों की तरह बार बार निकलने पर भी भगवान् में न्यूनता नहीं है। एक हाथ में जो वस्तु है वही दूसरे हाथ में ले लेने से जैसी कोई क्षति नहीं है वैसे ही भगवान् स्वयं सद् रूप प्रपञ्च में स्थित होने से भगवान् में न्यूनता होने की सम्भावना लेशमात्र भी नहीं है।

अंश रूप जीवों का दैव और आसुर संज्ञा से विभाग भी भगवदिच्छा से होने के कारण फलावस्था में भी जीवों की न्यूनता जैसीकी तैसे रहने के कारण भजन की भी सार्थकता प्रतीत होती है। अन्यथा स्वतन्त्र भक्ति मार्ग के उच्छेद का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। इसलिए जीवों में स्वाभाविक न्यूनत्व और ब्रह्म में अधिकत्व है ऐसा सिद्ध होता है।

### दैवासुर विभाग या न्यूनाधिक्य

जीव रूप अंश में दैव और आसुर ऐसे दो विभाग हैं, इतना ही नहीं पर उनमें न्यूनाधिक भाव भी कहा गया है। किन्तु सब को अंश रूप से स्वीकार कर

(१) एष एव साधु कर्मकारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते। एष एवासाधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य अधो निनीषते।

लेने पर सब समान रूप से अंश होने चाहिये, उनमें न्यूनाधिक्य की सम्भावना कैसे हो सकती है ?

इसके उत्तर में कहते हैं कि भगवान् स्वयं ही कारण रूप से अभेद पूर्वक प्रपञ्चात्मक अपने आपको आविर्भूत करते हैं। इस धर्मी स्वरूप के तीनों धर्म अक्षर ब्रह्म रूप हैं, उसके चिदंश से भगवान्ने क्रीडा के लिये अपनी इच्छा से जीव उत्पन्न किए हैं। यदि इस पृथक्करण में विचित्रता न हो रमण ही तो सम्पन्न न हो सकेगा। इससे सिद्ध होता है कि पृथक्करण विचित्रता ही के लिये किया गया है। विचित्रता यानी न्यूनाधिक भाव। इसी विचित्रता के लिये ही जड़, जीव और अन्तर्यामी एक एक अंश के तारतम्य से हैं। अन्तर्यामी सत्, चित् और आनन्दांश से युक्त है जीव में उसकी अपेक्षा एक (आनन्द) अंश तिरोहित है, और उसकी अपेक्षा एक (चित्) अंश जड़ में तिरोहित है। जीव में सत् तथा चित् धर्म अभिव्यक्त है, जड़ में केवल सत् अभिव्यक्त है और अन्य दो तिरोहित हैं। इस प्रकार एक एक अधिक अंश तिरोहित होने में भगवान् की इच्छा कारण रूप है। भगवान् की इच्छा को कारण रूप 'तिरोभाव स्वतन्त्रता से होता होगा' इस शङ्का का भी निरास हो जाता है।

इस प्रकार इच्छा ही कारण रूप होने से भगवान् के भ्रमणार्थ स्वरूप का पृथक्करण हुआ है ऐसा सिद्ध होता है।

यहां शङ्का होती है कि इस प्रकार पृथक्करण होने से क्रीडा में भगवान् का भोक्तृत्व नहीं रहेगा। इसका उत्तर श्रीहरिरायजी ने इस प्रकार दिया है - कि भगवान् स्वयं मूल रूप से रहकर बन्ध और मोक्ष से अर्थात् अविद्या और विद्या शक्ति के द्वारा रमण करने से भगवान् को जीव तुल्यता प्राप्त होती है। पर ऐसी शङ्का योग्य नहीं है। क्योंकि बद्ध और मुक्त से भिन्न ही भगवान् है, और अंशी होने से अंश से भेद भी है। जीव के अविद्या के प्रभाव से बन्ध दशा में तथा विद्या के प्रभाव से मुक्त दशा में रहने पर भी स्वयं तो उस स्थिति से भिन्न ही है। श्रीमद्भागवत में कहा है कि बद्ध और मुक्त ऐसी मेरी व्याख्या गुणों से युक्त होने के कारण की जाती है, पर वस्तुतः मैं वैसा नहीं हूँ। गुण का मूल माया होने से मुझे न बन्धन है न मोक्ष<sup>१</sup>। इस प्रकार जीव के बन्ध और मोक्ष से रमण की उपपत्ति होती है। लीला के साधन, प्रपञ्च और लीला नित्य है, अतः बन्ध और मोक्ष भी

(१) बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः। गुणस्य मायारूपत्वात् न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥

नित्य है, ऐसा अवश्य मानना पड़ेगा। प्रपञ्च का नित्यत्व, भगवद्रूपता के निरूपण के साथ इसी ग्रन्थ में पहले निरूपण कर चुके हैं।

विष्णु पुराण में कहा है कि हे मुनिवर ! आविर्भाव, तिरोभाव, जन्म, नाश रूपी विकल्प से युक्त यह सम्पूर्ण जगत् क्षय रहित और नित्य है<sup>१</sup>। इस प्रकार के अनेक वाक्य प्रपञ्च की नित्यता का प्रतिपादन करते हैं। अणुभाष्य, निबन्ध, विद्वन्मण्डन आदि ग्रन्थों में इसी अर्थ का सविस्तृत निरूपण किया गया है। अतः जिनको अधिक जिज्ञासा हो उनको तत्तद् ग्रन्थों को देखना चाहिए।

## लीला की नित्यता

जब प्रपञ्च को नित्य मानते हैं तब यदि लीला को नित्य मानलें तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ? इस कैमुतिक न्याय से लीला की नित्यता सिद्ध होती है। लीला की नित्यता न हो तो साधन रूप प्रपञ्च की नित्यता निरर्थक सिद्ध होगी तथा भगवान् के भोक्तृत्व में भी अनित्यता प्राप्त होती है, अतः लीला नित्य ही है। लीला की नित्यता श्रीमद्भागवत के इस वाक्य से स्पष्टतया सिद्ध होती है—“जीवों के आधार रूप, देवकी के उदर से प्रादुर्भूत, जिसके सभासद और सेवक उत्तम यादव हैं, ऐसे को, बाहु से अधर्म को दूर करनेवाले, स्थावर जङ्गम के पापों का नाश करनेवाले सुन्दर हास्य युक्त श्रीमुख से ब्रजवनिताओं के काम को बढ़ाने वाले श्रीकृष्ण का जय<sup>२</sup> हो।” इस वाक्य में (जयति) क्रियापद तथा (अस्यन्) (वर्धयन्) आदि कृदन्तों का प्रयोग करके श्रीशुक्राचार्यजीने लीला का वर्तमानत्व कहा है। इस विषय को विद्वन्मण्डन में श्रीविठ्ठलनाथजीने विशद रूप से समझाया है। ग्रन्थ के विस्तार भय से यहां उसका विवेचन नहीं किया है।

## क्या बन्ध मोक्ष भी नित्य हैं ?

इस प्रकार लीला नित्य होने से उसके नित्यत्व की सिद्धि के लिये बन्ध और मोक्ष को भी नित्य ही कहने चाहिये। “मेरे एक अंश रूपी जीव को अविद्या से अनादि बन्ध हुआ है और विद्या के द्वारा उसका मोक्ष<sup>३</sup> है” इस भगवद्वाक्य से प्रतीत होता है कि बन्ध और मोक्ष अनादि है बद्ध और मुक्त का वैलक्षण्य इस

(१) तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्। आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत् ॥

(२) जयतिजननिवासोदेवकीजन्मवादो यदुत्तरपरिषत्सर्वदोर्भिरस्यन्नधर्मम्। स्थिरचरवृजिनधः सुरंगितः श्रीमुखेन ब्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम्।

(३) एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते। बन्धोऽस्याविद्यायानादिर्विद्याया च तथेतरः।

प्रकार कहा गया है “जो अविद्या से युक्त है वह नित्य बद्ध है और जो विद्या से युक्त है वह नित्य मुक्त<sup>१</sup> है।”

इस प्रकार बद्ध और मुक्त भेद से दैव और आसुर विभाग उत्पन्न होते हैं। यद्यपि अंशत्व से साम्य है, तथापि बन्ध और मोक्ष से वही जीव निकृष्ट और उत्कृष्ट होने के कारण भगवान् की क्रीडा के अर्थ दैव और आसुर विभाग हुए हैं ऐसा आशय समझना चाहिये।

### दैवासुर का लक्षण

जब तक दैव और आसुर का लक्षण न किया जाय तब तक उनके विषय में कोई निर्णय स्पष्ट नहीं हो सकेगा अतः उनका लक्षण करना उचित है। सृष्टिकाल में कार्य के लिये माया शक्ति का पृथक्करण किया गया है, ‘मैं’ ‘मेरा’ इत्यादि से इस पृथक्ता का ज्ञान होता है। इस माया शक्ति से जिनका परिग्रहण हुआ है वे आसुरी जीव हैं। ये आसुरी जीव कदापि मोक्ष मार्ग के अनुयायी नहीं हैं। क्योंकि वे मोक्ष मार्ग के प्रतिबन्धक हैं। जो स्वपरिगृहीत हैं अर्थात् भगवान् ने जिनका परिग्रहण किया है वे दैवी जीव हैं। “सत्त्रिंशत् जैसे सत्पति को वश कर लेती हैं वैसे ही भक्त मुझे वश<sup>२</sup> कर लेते हैं।” भगवान्<sup>३</sup> जिसको वरण करते हैं उसको ही वह (भगवान्) लभ्य है अन्य को नहीं” इत्यादि वाक्यों से सिद्ध होता है कि भगवान् दैव जीवों का परिग्रहण करते हैं। जिनका माया ने परिग्रहण किया है वे आसुर हैं।

परिग्रहण शब्द का प्रयोग होने से प्रतीत होता है कि परस्पर (एक दूसरे का) परित्याग नहीं कर सकते। भक्त कदापि भगवान् का त्याग नहीं करता एवं भगवान् भी भक्त का किसी प्रकार त्याग नहीं करते हैं। आसुर और माया का भी परस्पर अपरित्याग है। वह भी भगवान् की इच्छा के अनुकूल ही है। “हे कौन्तेय मुझे प्राप्त न करके ही (आसुर जीव) अधम गति को प्राप्त<sup>४</sup> करते हैं।” “जो दुष्ट क्रिया करने वाले मूढ़, नराधम मुझे प्राप्त नहीं कर सके उनका ज्ञान माया से अपहृत होने के कारण वे आसुर भाव को प्राप्त<sup>५</sup> करते हैं।” इन वाक्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आसुरी जीवों को कदापि भगवत्प्राप्ति नहीं होती है। परन्तु दैवी

जीवों को तो भगवत्प्राप्ति सहज है। जैसे सम्पुट (डिब्बा) से बाहर निकाला हुआ द्रव्य और घोर के हाथ जो द्रव्य चला गया हो वह हजार उपाय करने पर भी प्राप्य नहीं है। आसुर जीवों की सृष्टि भगवान् से होने पर भी उनका लय माया में होता है। क्योंकि माया के द्वारा मोहित होकर ज्ञान और भक्ति के अभाव में भगवान् से सायुज्य की सम्भावना नहीं है। “सूर्य के बिना गाढ अन्धकार से व्याप्त ऐसे लोक में जो जीव आत्मघाती हैं वे मृत्यु के पश्चात्<sup>१</sup> जाते हैं” इस श्रुति से अन्धन्तमस् में प्रवेश ‘अधमगति’ शब्द का अर्थ है ऐसा समझना चाहिये। अतएव माया से मोहित होने के कारण भगवान् की प्राप्ति के साधन ज्ञान और भक्ति का अभाव है ऐसा सिद्ध होता है।

### आसुरों को आनन्दानुभव नहीं है

आसुरी जीवों का जब कि प्रकृति के साथ सम्बन्ध है, परन्तु प्रकृति भगवान् की शक्ति होने के कारण भगवान् से अभिन्न है, और इसी लिये प्रकृति भी आनन्द रूपा है, तो प्रकृति में प्रवेश करनेवाले जीवों को भी आनन्द की प्राप्ति होनी चाहिये, फिर ऐसा क्यों कहते हैं कि भगवत्प्राप्ति नहीं होती है।

भगवान् के आनन्द रूप का प्राकट्य माया में नहीं होता है, माया में प्रकट न होने में भी कारण भगवान् की इच्छा ही है। अतएव जब कि माया में ही आनन्द नहीं है तो आसुरों में आनन्द की गन्ध भी कहाँ से होगी? अन्यथा भक्तों की तरह आसुरों को भी माया का अनुभव होना चाहिये। और यदि वैसा हो तो फिर दैव और आसुर भेद नहीं रहेगा। अतः अवश्य मानना होगा कि भगवान् के आनन्द रूप का प्राकट्य माया में नहीं है।

प्रकृति का स्वभाव मोह उत्पन्न करने का है तथापि माया से उत्पन्न होनेवाला मोह कार्यभेद से भिन्न ही है। दैवी माया से उत्पन्न होनेवाला मोह जब मोक्ष के लिये होता है तब आसुरी माया से उत्पन्न होनेवाला मोह बन्ध के लिये होता है। मोह की भिन्नता के लिए ही आसुरी माया का असत्त्व एवं क्रूरत्व दर्शाने के लिये ही “राक्षसीमासुरीं चैव” इस भगवद्गीता के श्लोक में माया के दो विशेषण दिये हैं राक्षसी, और आसुरी। क्रूरता तो स्वभाव में ही कारण है। श्रीमद्भागवत के तृतीयस्कन्ध में कहा है कि “तेषां सहजक्रूरत्वात्” आसुरों में क्रूरता सहज ही होती है अतः दया का अभाव ही है। दशमस्कन्ध के प्रथमाध्याय में कहा है कि—

(१) यो विद्याया युक्तः स तु नित्य बद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः।

(२) वशोऽकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्त्रिंशः सप्ततिं यथा। (३) यमेवैषवृणुते तेन लभ्यः।

(४) मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।

(५) न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। मायापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

(१) असुर्यानामते लोका अन्धेन तमसा वृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महानो जनाः।

“पशु की हिंसा करनेवाले (कसाई) के अतिरिक्त अन्य कौन पुरुष उत्तम कीर्तियुक्त भगवान् के गुणानुवाद से विरक्त<sup>१</sup> होगा ?” इस वाक्य से भगवान् के गुणानुवाद में अप्रीति होना आसुर भाव कहा गया है। आसुरभाव में भी “पशु की हिंसा करनेवाला” यह विशेषण होने के कारण क्रूरत्व स्पष्ट ही प्रतीत होता है। अर्थात् “क्रूरत्व” ही आसुरभाव का लक्षण समझना चाहिए।

आसुरी माया से मोह के अतिरिक्त अन्य कुछ भी कार्य नहीं होता है अतः “प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः” मोहिनी प्रकृति का आश्रय आसुरों को है, इस वाक्य से आसुरी माया को मोहिनी प्रकृति कहा है। इस प्रकार से आसुरी माया मोह को ही उत्पन्न कर सकती है अन्य कार्य उस शक्ति द्वारा नहीं हो सकता यह सिद्ध होता है। अत एव दैवी प्रकृति से इस प्रकृति का भेद है।

आसुरों को परम्परा से भी आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है। यदि कहा जाय कि प्रलय काल में प्रकृति का जब भगवान् में लय हो जाता है तब उस प्रकृति के द्वारा आसुरों का भी लय हो जाता है, तो परम्परा से सम्बन्ध हो सकता है। अतः उनको भी आनन्दानुभव हो सकता है। परन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रलयकाल में यद्यपि आसुरों का भी लय भगवान् में हो जाता है तथापि प्रकृति का अन्तराय होने से आनन्दानुभव नहीं होता है अन्यथा प्रलय और मुक्ति का भेद ही नष्ट हो जायगा। यदि प्रलय में आनन्दानुभव होता हो तो प्राचीन शिष्ट पुरुष प्रलय और मुक्ति का भेद न कर के केवल प्रलय को ही मुक्ति कह देते, परन्तु वैसा व्यवहार कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। दूसरी भी एक बाधा उपस्थित होती है, वह यह कि—यदि प्रलय ही मुक्ति हो तो मुक्ति के लिये शास्त्र में जो साधनानुष्ठान बनाये गये हैं वे व्यर्थ हो जायेंगे। प्राज्ञ पुरुष मुक्ति के लिये प्रयत्न करते हैं न कि प्रलय के लिये, क्योंकि प्रलय तो स्वयं होनेवाला है, अतः उसके लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है, इस लिये मुक्ति लिये विधान करनेवाला शास्त्र भी निरर्थक हो जाता है। इसी आशय को मन में रखकर श्रीहरिरायजी आज्ञा करते हैं कि—कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य प्रलय के लिये यत्न नहीं करेगा। किन्तु मूर्ख ही जिस शाखा के उपर बैठा है उसको तोड़ने का प्रयत्न करता है। अत एव प्रलय और मुक्ति का भेद स्वीकृत करना ही पड़ता है। जब कि मुक्ति के लिये प्रयत्न करना ही पड़ता है तब प्रलय के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार प्रलय और मुक्ति भिन्न होने के कारण सालोक्यादिरूप मुक्ति

(१) क उत्तमश्लोक-गुणानुवादात् पुमान् विरज्येत यिना पशुघ्नात्।

भिन्न ही है। उसमें भी स्वरूपानन्द के अनुभव रूप मुक्ति है वह पुष्टि मुक्ति है। यही मुक्ति हमको इष्ट है। स्वरूपानन्द के अनुभव रूप मुक्ति भिन्न है।

## भक्ति से ही मुक्ति है

प्रलय तो उदरवर्ति कृमियों की तरह रहता है। तथा वह अपने विषय को कहता है। आनन्दानुभव केवल भक्ति से ही साध्य है। वह भक्ति पूर्वोक्त स्नेह रूप है। स्नेह रूप भक्ति से लभ्य स्वरूपानन्द का अनुभव होने के योग्य मुक्ति दशा में भक्तों की भगवान् के हृदय में ही स्थिति रहती है। अत एव “भगवान् के वक्षस्थल में लक्ष्मीने निवास किया है” ऐसा वाक्य है। इसी प्रकार “साधु मेरा हृदय है और मैं साधुओं का हृदय हूँ, मेरे अतिरिक्त वे कुछ नहीं जानते, और न मैं उनके अतिरिक्त कुछ भी जानता हूँ। “जैसे<sup>३</sup> निर्धन पुरुषको कहीं से धन मिल जाय और फिर उस धन का नाश हो जाय, तब वह जिस प्रकार चिन्ता में विलीन होकर दूसरा कुछ भी जानता नहीं है” इत्यादि वाक्यों से भक्तों की भगवान् के हृदय में स्थिति प्रतीत होती है स्नेह का लक्षण पहिले कह चुके हैं। यह स्नेह मन का धर्म है। अतः स्नेह का अधिकार जिन भक्तों ने प्राप्त कर लिया है वे भी तद्रूप हो जाने से उनकी स्थिति भगवान् के हृदय में होना सम्भवित है।

## स्नेह के दो प्रकार

स्नेह दो प्रकार का है—शृङ्गार स्वरूप और भक्ति रसरूप। इष्ट की इच्छा से उत्पन्न होनेवाला मनोविकाररूप अपरिपूर्णगति को शृङ्गाररसरूप स्नेह कहते हैं। तथा महात्म्यज्ञान पूर्वक सुहृद, सर्वतः अधिक स्नेह को भक्तिरस कहते हैं।

## भक्त भगवान् के हृदय में स्थित हैं

जिस प्रकार भगवान् रसरूप हैं उसी प्रकार भक्त भी द्विविध रस रूप है। उसमें व्रज भक्त और लक्ष्मी आदि शृङ्गार रसरूप हैं और कौडिन्य, नारदादि भक्ति रस रूप हैं। उन के हृदय तत्तत्प्रकार के स्नेह रूप भगवान् अनुभाव, विभाव, संचारी और सात्विकादि भावों से परिपूर्ण रह कर रासलीला करते हैं। अतः भक्तों के हृदय में भगवान् की स्थिति कही गई है। क्योंकि भक्तों का हृदय भगवद्धाम

(१) वक्षे निवासमकरोत् परम् विभूतेः।

(२) साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्। मदन्त्यते न जानन्ति, नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

(३) यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तद्यन्तयाऽन्यन्निर्मूलो न वेद ॥

रूप अक्षरब्रह्मका स्वरूप है। परन्तु भक्ति रस का पर्यवसान तो शृङ्गार रस में ही होता है, ऐसा सूक्ष्ममतिमान् पुरुषों का मन्तव्य है। “<sup>१</sup> उत्तम पुरुष तो अन्य है, वह परमात्मा कहा जाता है” इस वाक्य के अनुसार ‘पर’ पुरुषोत्तम को जिस के द्वारा माप सकते हैं उसको ‘परम’ कहना चाहिये। यह परम आकाशरूप है उस ‘परम-आकाश’ रूपी गुफा में अर्थात् व्यापि वैकुण्ठात्मक हृदयाकाश में सत्य ज्ञान और अनन्त इन धर्मों से युक्त ब्रह्म को जो जानते हैं वह रासलीला में निपुण ब्रह्म-पूर्ण पुरुषोत्तम जो कि रस रूप उसके साथ सर्वकाम को अर्थात् सर्वरस-मनोरथों को भोगता है। यही अर्थ व्यास सूत्र के आनन्दमयाधिकरण में श्रीमदाचार्यचरणों ने प्रतिपादित किया है।

इस प्रकार भगवान् की भक्तों में अभिलाषा होने के कारण, वे भक्त भी भगवान् के हृदय में स्थित हैं ऐसा सिद्ध होता है। यहाँ यह शङ्का नहीं हो सकती कि भगवान् पूर्ण हैं, इसलिये उनके हृदय में अभिलाषा नहीं हो सकती। क्योंकि भक्त और भगवान् उभय की अभिलाषा के अभाव में रसमर्यादा का भङ्ग होने का प्रसङ्ग उपस्थित हो जायेगा। इसी प्रकार यह शङ्का भी नहीं हो सकती कि - यदि भगवान् में अभिलाषा हो तो उनकी पूर्णता को क्षति पहुँचेगी। क्योंकि “रसो वै सः” इस श्रुति के अनुसार वह रसरूप है, अतः रसलीला करना यह भी उनको इष्ट ही है। इसी प्रकार भक्तों में भी अभिलाषा के होने से उनके निष्कामपन में क्षति नहीं है। क्योंकि भक्त जो कि भगवान् का ही स्वरूप है तथा जो भगवान् को अति प्रिय है, उनका भगवान् से अभेद होने के कारण उनमें भी रसलीला की अभिलाषा इष्ट ही है। भगवान् से अतिरिक्त स्थल में यदि अभिलाषा हो तो उनको क्षति प्राप्त हो सकती है। परन्तु यहाँ तो परस्पर अभिलाषा होने से अन्योन्य मनोरथ पूर्ण करने के लिये अभिलाषा है न कि किसी वस्तु की अपेक्षा से। अतः वह अभिलाषा रस पूर्ण करने के लिये ही है, ऐसा सिद्ध होता है। इस प्रकार होने से भगवान् में पूर्णत्व के सम्वन्ध में एक भी शङ्का स्थित नहीं हो सकती।

“जो जिस प्रकार मेरे शरण आते हैं उनको उसी प्रकार मैं भजता हूँ।” इस भगद्वाक्य से पूर्वोक्त सब निर्दोष हैं।

(१) उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः।

(२) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सहब्रह्मणा विपश्चिता।

(३) ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

भगवान् के हृदय में भक्त स्थित हैं, इस विषय में भक्त कवि जयदेव की उक्ति भी प्रमाणभूत है। ‘गीतगोविंद’ जो कि शृङ्गाररस का वर्णन करनेवाला श्रेष्ठ ग्रन्थ है, उसमें “राधा को हृदय में धारणकर ब्रजसुन्दरी का त्याग किया” ऐसा कहा है। इससे भी सिद्ध होता है कि भक्त भगवान् के हृदय में स्थित हैं।

निजाचार्यानुकम्पातः संशयोऽयं निराकृतः।

हरिदासेन तुष्यन्तु तेन ते स्वामिनो मम॥

इति श्रीवल्लभाचार्यान्वयगोस्वामीश्रीमद्हरिरायजिविरचितो

ब्रह्मवादः समाप्तिमसेधत्।





## श्रीब्रजराज विरचित ब्रह्मवाद

अनुवादक : श्री हरिशंकर शास्त्री, मी. शा. वे. वि. M.R.A.S.

विशेषः प्राकृतैः शून्यमप्राकृतविशेषवत् ।

अशेषोपनिषद्वेद्यं ब्रह्मरूपं वयं स्तुमः ॥

“प्राकृत-धर्मरहित, अप्राकृत (अलौकिक) धर्मवान् तथा सर्वोपनिषद् प्रतिपाद्य श्रेष्ठ ब्रह्म की हम स्तुति करते हैं ।”

इस श्लोक में प्राकृत धर्म ब्रह्म में नहीं है, ऐसा कहा गया है, परन्तु वह ठीक नहीं है। क्योंकि “<sup>१</sup> यह सब ब्रह्म ही है, उसी से सब संसार उत्पन्न होता है, उसी में विलीन होता है और उसी के आधार पर चलता है” “<sup>२</sup> मैं बहुत हो जाऊँ” “<sup>३</sup> वह इतना था” “<sup>४</sup> मैं सब सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला तथा नष्ट करनेवाला हूँ” “<sup>५</sup> शास्त्र के कथनानुसार आकाश का जन्म जिससे होता है” इत्यादि श्रुति-स्मृति सूत्रों से सब जगत् जब ब्रह्मरूप ही सिद्ध होता है तब तदन्तर्गत धर्मों का मायिकत्व कैसे सिद्ध हो सकता है ? और उन धर्मों का निषेध कैसे कर सकते हैं ?

### धर्मों का प्राकृतत्व

इस पूर्व पक्ष का उत्तर इस प्रकार है:- “<sup>६</sup> वह अकेला सममाण नहीं होता” “<sup>७</sup> उसने दूसरे की इच्छा की” “<sup>८</sup> मैं बहुत हो जाऊँ” इत्यादि श्रुति वाक्यों के साथ एक वाक्यता करने पर समणार्थ ही ब्रह्म ने नामरूपवैचित्र्य से अपने को प्रकट करने की इच्छा की ऐसा अर्थ निकलता है। इसमें नामरूपों का वैचित्र्य उच्च नीच भाव से ही हो सकता है। और वह उच्च नीच भाव भी अंशों के कम अधिक होने से उत्पन्न होगा। अतः सत् चित् आनन्द रूप तीन अंशों का क्रम से तिरोभाव करके ब्रह्म ही जड़, जीव और अन्तर्यामी रूप में प्रादुर्भूत हुआ है, ऐसा “जैसे अत्यन्त प्रदीप्त अग्नि से विस्फुलिंग उत्पन्न होते हैं” इस मुण्डकश्रुत्यन्तर्गत वाक्य से सिद्ध होता है। वर्तमान वस्तु का अनुभव योग्य होना आविर्भाव कहा जाता है। तथा अनुभव वा योग्यत्व होना तिरोभाव है। इस लक्षण में अनुभव शब्द से जीवनिष्ठ या

जीवान्तर्यामिसाधारण अनुभव लेना चाहिये। ब्रह्म के तीन अंशों में से नंदांश और चिदंश तिरोहित या अप्रकट होने से जड़ का स्वरूप सिद्ध होता है। आनंदांश तिरोहित होने से वह जीव कहा जाता है। जीव का प्रतिबिम्बत्व भी इसी प्रकार से समझना चाहिये। आनन्दांशका आविर्भाव होने से ब्रह्मत्व सिद्ध होता है। यही विषय श्रीमदाचार्यचरणों ने “<sup>१</sup> जीव का आभासत्व और प्रतिबिम्बत्व इस प्रकार का है” इत्यादि वाक्यों से तत्त्वदीपनिबन्ध में लिखा है। सत्, चित्, आनन्द रूप तीनों अंश प्रकट हो जाने से अन्तर्यामित्व सिद्ध होगा। भगवद्वाच्य ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य इन छ गुणों का जीव में लोप अविद्या के सम्बन्ध से हुआ है। उसी से बन्ध मरण देशादिराग और भ्रम उत्पन्न होते हैं। “<sup>२</sup> उसी को (जीव को) अविद्या के कारण बन्ध प्राप्त होता है” इस वाक्य से जीव को ही बन्धन प्राप्ति कही गयी है। जीवतरो का बन्धन इस वाक्य से प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। क्योंकि कुछ प्रयोजन नहीं है। “<sup>३</sup> ईक्षरेच्छा से ही जीव में भगवद्धर्मों का तिरोभाव और आविर्भाव होता है” इस व्यासकृत सूत्र से भी यही सिद्ध होगा। यह तो हुई जीव की बात। जड़ का तो कहना ही क्या ? उसमें ऐश्वर्यादि भगवद्धर्म कभी नहीं रह सकते। क्योंकि चेतन में ही उन धर्मों का सम्भव है। जीव को जड़रूप तथा जीवरूप ब्रह्म में यह ब्रह्म नहीं है ऐसा भ्रम अविद्या सम्बन्ध से ही होता है। यही भ्रम स्वरूपाज्ञान-अपने खास स्वरूप का अज्ञान कहा जाता है। क्योंकि इसी कारण से सत्यत्वादि अनेक अलौकिक धर्मों में असत्यत्व तथा विकारित्वादि लौकिक धर्मों का भ्रम होता है। एवं च सत्यविद्या सम्बन्ध से जिन लौकिक धर्मों का ज्ञान होता है ऐसे जड़ और जीव के जितने धर्म हैं सबकी प्राकृत - धर्म संज्ञा है, और जब ऐसे प्राकृतधर्म ब्रह्म में नहीं पाये जाते तब “प्राकृतधर्म रहित ब्रह्म है” ऐसा जो आरम्भ में विधान किया गया सो बिलकुल ठीक है। प्रकृति सम्बन्ध सहकृत इन्द्रियों से जिसका ज्ञान होता है वह प्राकृत ऐसी प्राकृत शब्द की व्याख्या जाननी चाहिये।

### निषेधक श्रुतियों का तात्पर्य

निषेधक श्रुतियों का भी यही अभिप्राय है। यह निषेध, दुर्बल प्रमाण बोधित पदार्थों का प्रबल प्रमाण से किया हुआ समझना चाहिये<sup>४</sup> न कि भीमांसा

- (१) सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति । (२) अहं बहुस्याम् । (३) सहैतावानास ।  
(४) अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा । (५) जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात् ।  
(६) स एकाकी न रमते । (७) स द्वितीयमेच्छत् । (८) अहं बहुस्याम् ।

- (१) आभासप्रतिबिम्बत्वमेवं तस्य । (२) बंधोऽस्याविद्याया ।  
(३) पराभिध्यानात् तिरोहितं ततोऽस्य बंधविपर्ययो ।  
(४) इसका विशेष विवरण पूर्वभीमांसाके तीसरे अध्याय तीसरे पाद में किया गया है ।

दर्शनान्तर्गत दशमाध्याय में लिखा हुआ प्राप्तबाध - निषेध श्रुतियाँ भी इसी दृष्टि से ब्रह्म में प्राकृत धर्मों का निषेध करती हैं।

### ब्रह्म में अलौकिक धर्मों का अस्तित्व

अभी तक जो विवेचन हुआ है उससे कोई यह न समझे कि जब धर्म प्राकृत ही होते हैं और जब वे ब्रह्म में नहीं रह सकते तब ब्रह्म में कोई धर्म का अस्तित्व नहीं, इसी लिये अप्राकृत धर्मवान् ऐसा विशेषण ब्रह्म में दिया गया है। अप्राकृत शब्द का अर्थ है प्राकृत से भिन्न। अर्थात् जिनका ज्ञान प्रकृति सम्बन्ध युक्त इन्द्रियों से नहीं होता वे ही अप्राकृत धर्म कहलाते हैं। ऐसे अप्राकृत धर्म ब्रह्म में जरूर रहते हैं। इसमें प्रमाण श्रुतियाँ हैं जो कि इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही दी गई हैं।

श्रुति मायिक धर्मों का विधान नहीं करतीं पूर्वोक्त श्रुतियों में जिन धर्मों का वर्णन है वे मायिक हैं इसमें कोई प्रमाण नहीं मिल सकता। अतः ब्रह्म में अप्राकृत धर्मों का अस्तित्व सिद्ध है। यद्यपि निषेध श्रुति ब्रह्म में धर्मों का निषेध करती है तथापि उससे यह नहीं समझना चाहिये कि उन श्रुतियों ने ब्रह्म में सब धर्मों का निषेध किया है किन्तु केवल प्राकृत धर्मों का ही। ऐसा नहीं मानेंगे तो “<sup>१</sup>हाथ और पैरों के बिना ही वह ब्रह्म जाता है और गृहण करता है” तथा “<sup>२</sup>उसकी शक्ति सर्व श्रेष्ठ है” इत्यादि श्रुति वाक्यों में जो गमनादि क्रिया तथा ज्ञान आदि गुणों का विधान किया गया है वह बिलकुल व्यर्थ होगा।

### धर्म उपासनार्थ नहीं कहे गये हैं

अन्तःकरण उपासना से शुद्ध हो जाता है, एवं च इस उपासना के सिद्धयर्थ ही धर्मों का निरूपण किया गया है, अतः वे व्यर्थ नहीं हो सकते ऐसा भी कहना गलत है। क्योंकि पाँव आदि से रहित निर्विशेष ब्रह्म का ध्यान करना असम्भव है। उपासना के लिये अलौकिक धर्मों का वहाँ विधान है ऐसा भी नहीं कह सकते। क्योंकि वे सब धर्म लोक में प्रसिद्ध होने के कारण लौकिक ही हैं। पादादि के बिना गमनक्रिया अलौकिक ही होगी। एवं च स्वरूप के ज्ञानार्थ धर्मरहित्य का विधान तथा उपासना के लिये धर्म विधान इस तरह से दो विधेय होने से वाक्य

(१) अपाणिपादो जवनो गृहीता।

(२) परास्य शक्तिः।

भेद होगा। इसके सिवाय, ब्रह्म में लौकिक धर्मों का अस्तित्व भ्रम से मान कर यदि उपासना की जाय तो वह अशुद्ध उपासना किस काम की? “<sup>१</sup>दूसरे स्वभाव के आत्मा को विपरीत कहनेवाला पापी है” इत्यादि वाक्यों में भी इसी कारण से निंदा की गयी है।

ब्रह्म में यद्यपि धर्म नहीं हैं, तथापि शाखाचन्द्रन्याय से उसका वैशिष्ट्य मानने में क्या आपत्ति है? ऐसा पूछना भी व्यर्थ है। क्योंकि आप जिस दृष्टान्त को लेते हैं वह बिलकुल असम्भव है। शाखा अर्थात् डाली जिस तरह प्रत्यक्ष है उस तरह ब्रह्म प्रत्यक्ष कहाँ है? जिसमें कि, चन्द्र के मुताबिक धर्मों का आरोप करेंगे? हाथ पाँव के सिवाय लेना देना वगैरह: ब्रह्मनिष्ठ धर्म प्रत्यक्ष नहीं है। एवं च जब ब्रह्म और धर्म दोनों अप्रत्यक्ष ठहर गये तब वहाँ प्रत्यक्षस्थलीय शाखाचन्द्रन्याय लगाना बिलकुल गलत है। आकाश का दृष्टान्त लेकर ब्रह्म में धर्म सिद्ध करना भी इसी कारण से ठीक नहीं है।

ब्रह्म में किसी धर्म का आरोप नहीं हो सकता। वास्तव में किसी धर्म का ब्रह्म में आरोप तब कर सकते हैं जब कि वह इतरत्र प्रसिद्ध हो। कारण दूसरी जगह रहनेवाले धर्म की दूसरी जगह स्थापन करने को ही आरोप कहते हैं। अर्थात् पाणिपाद रहित गमनादि क्रिया जब लोक में प्रसिद्ध ही नहीं तब उसका आरोप हो ही नहीं सकता। इसी कारण से निषेध श्रुतियाँ अलौकिक धर्मों का भी निषेध नहीं कर सकतीं। पहिले यदि उन धर्मों को जान लेंगे तब निषेध हो सकता है। परन्तु अलौकिक अर्थात् लोक में अज्ञात धर्मों का निषेध कैसे होगा? हमारी इन्द्रियों से यद्यपि उन धर्मों का ज्ञान नहीं होता तथापि श्रुति की दृष्टि से होगा ऐसा भी नहीं मान सकते। क्योंकि यदि ऐसा मानेंगे तो संसार में <sup>३</sup>तीन प्राकर के रूप हो जायेंगे, और “<sup>३</sup>ब्रह्म के मूर्त तथा अमूर्त दो ही रूप हैं” इत्यादि श्रुतियों के साथ विरोध हो जायगा। इस श्रुति में जिन का ज्ञान होता है उसी का अनुवाद नहीं किया गया है। दोनों का प्रत्यक्ष हमको नहीं हो सकता इस बात को साफ करने के वास्ते पहले दो प्रश्नों का विचार करना होगा वे ये हैं - क्या शुक्ति पर रजत का भ्रम होता है उसी तरह दोष युक्त दृष्टि से उन धर्मों को देखती है?

(१) अन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्तुभाषते स पाप कृत्तमो लोकेस्तेन आत्मापदारकः।

(२) जिसका प्रत्यक्ष हमलोगों को होता है वह पहला, जिसका प्रत्यक्ष हमलोगों को नहीं होता है परन्तु जो ब्रह्म पर है वह दूसरे प्रकारका और जिसका प्रत्यक्ष श्रुतिको होता है वह तीसरे प्रकार का है।

(३) द्वे वा ब्रह्मणो रूपे मूर्तत्रैवामूर्तवदि।

या रजत में रजतत्व के समान गुण दृष्टि से ? इसमें प्रथम पक्ष कभी भी नहीं बन सकता । क्योंकि रजत जैसा दूसरे स्थान पर सिद्ध है वैसे ये धर्म इतरत्र नहीं है । और भी, श्रुतियों को भ्रम कैसे होगा ? भ्रम अविद्या से होता है । श्रुतियों के साथ अविद्या का सम्बन्ध कहीं भी नहीं कहा है । इस तरह से पहला पक्ष नहीं ले सकते दूसरा पक्ष लेंगे तो उसका निषेध नहीं किया जा सकता क्यों कि सत्य ही देखा गया है । वह सत् और एकरस होने के कारण उसमें अवस्था भेद मान कर भी उपपत्ति नहीं की जा सकती । वह और भी एक दोष ऐसा मानने पर होता है कि उपासनार्थ ही क्यों न हो झूठे धर्मों का विधान करने से श्रुति प्रतारक अर्थात् दूसरों को फँसानेवाली होगी । उपासना भी ऐसे अलौकिक धर्मों की नहीं हो सकती । वे धर्म अलौकिक होने के कारण खाली कल्पना करना भी असम्भव है । उपासना की अर्थात् ध्यान की बात तो दूर ही है । निराकारोपासना अशक्य है इसी लिये साकारोपासना का स्वीकार किया, परन्तु ऐसा करने पर भी मूल दोष ज्यों का त्यों ही कायम है । अर्थात् लहसुन खानेका पाप किया तब भी बिमारी छूटी नहीं ऐसी अवस्था हो गई ।

### उपासना क्या चीज है ?

अभी तक जो निरूपण किया गया है उससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म में धर्मों का ध्यान कोई रीति से नहीं किया जा सकता । परन्तु एक रीति से फिर उपासना सिद्ध कर सकते हैं । वह रीति शाब्दबोध की है । नदी के तीर में गय्याएँ हैं, सौन्दर्य की नदी इत्यादि वाक्यों में जिस तरह से वैशिष्ट्य बोधित किया जाता है इसी तरह से श्रुति बोधित वैशिष्ट्य मान कर उपासना की सिद्धि होगी । एवं च इस युक्ति से उपासना की सिद्धि होने के कारण आनर्थक्य दोष नहीं है । परन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं क्यों कि उपासना इस युक्ति से हो ही नहीं सकती । “धर्म विशिष्ट ब्रह्म की उपासना” इस का अर्थ उसको देखने की इच्छा अथवा उसकी प्राप्ति की इच्छा अथवा उसको जानने की इच्छा ऐसा नहीं किया जा सकता क्योंकि तुम्हारे मत में (शंकराचार्य के मत में) ब्रह्म निर्गुण है । ब्रह्म को उद्देश्य करके होम या दान करना ही उपासना है ऐसा भी नहीं कह सकते । क्यों कि इस तरह का यज्ञ शास्त्र में नहीं है । ब्रह्म निर्गुण होने के कारण पुष्पादि पदार्थों से उस की पूजा रूप उपासना भी नहीं हो सकती । मनन ही अगर उपासना हो तब निर्गुण ब्रह्म का भी मनन हो सकता है अतः उपासना के लिये

धर्म विधान किया गया है ऐसा नहीं कहना चाहिए । निर्गुण का मनन करने के लिये बुद्धिस्थैर्य की आवश्यकता है और बुद्धिस्थैर्य के लिये गुणों की आवश्यकता है । एवं च वैयर्थ नहीं है ऐसा कहना भी ठीक नहीं । क्योंकि श्रुति वाक्यों का अर्थ जान कर भी निर्गुण का मनन हो सकता है । उसके लिये उपासना की तनिक भी जरूरत नहीं है । सांप्रत सन्यासियों की अवस्था देखने पर भी यही सिद्ध होता है । वे उपासना नहीं करते हुए भी केवल श्रुति को पढ़ कर मनन करते हैं ।

### ब्रह्म में मायिक धर्म नहीं है

ब्रह्म में मायिक धर्म होते हैं ऐसा एक मत है परन्तु वह ठीक नहीं । क्यों कि मायिक शब्द का अर्थ है माया से उत्पन्न हुआ । अर्थात् माया जिस का कारण है वह । शास्त्र में तीन प्रकार के कारणों का निरूपण है । एक समवायी अर्थात् जिसके उपर समवाय सम्बन्ध से कार्य उत्पन्न होता है, दूसरा असमवायी कारण और तीसरा निमित्त कारण कहा जाता है । इन तीनों कारणों में से एक भी प्रकार से माया कारण नहीं हो सकती । माया को यदि समवायिकारण मानेंगे तब वे माया के ही धर्म होंगे । समवायिकारण ब्रह्म के साथ एक कारण में, तथा खास ब्रह्म में न रहने के कारण वह असमवायि कारण रूप भी नहीं है । दण्ड चक्र के मायिक निमित्त कारण यदि माया हो तो ब्रह्म में माया सम्बन्ध मानना होगा । और वैसा मानने से निर्विशेष अर्थात् धर्म रहित ब्रह्म की सिद्धि कैसी होगी ? माया को धर्म के प्रति निमित्त कारण मानने से दण्डादि का जिस तरह से कुलाल प्रयोजक होता है उसी तरह से माया का प्रयोजकत्व ब्रह्म में मानना होगा । और यह माया सम्बन्ध के पहले से ब्रह्म में होने के कारण मायिक कह कर इस का निषेध भी नहीं कर सकेंगे “ग्रहण निमित्तक स्नान होता है” अर्थात् स्नान का कारण ग्रहण है । प्रस्तुत धर्मों में भी इसी तरह से माया का कारणत्व मानेंगे तब तो और भी अनर्थ होगा । क्योंकि वहाँ दो प्रश्न अवश्य उपस्थित होंगे - क्या माया नित्य है या अनित्य ? यदि नित्य कहेंगे तो अद्वैत सिद्ध नहीं होगा । क्यों कि दुनिया में दो वस्तुएँ होंगी । यदि अनित्य पक्ष का स्वीकार करेंगे तो जिस काल में माया नहीं है उस काल में ब्रह्म में मायिक गुणों का अभाव मानना होगा ।

यहाँ फिर एक विचार उपस्थित होता है । प्रागभाव वस्तु के उत्पन्न होने के पहले जो रहता है वह अनादि और सान्त है । इसी प्रकार माया भी अनादि और

सान्त मानेंगे। परन्तु ऐसा कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि माया अनादि है इसका कोई प्रमाण नहीं मिल सकता। हम लोग जिस प्रकार उसके आदित्व को नहीं प्रत्यक्ष कर सकते उसी प्रकार अनादित्व भी उसमें नहीं मान सकते। वैसा मानने से ब्रह्मवत् माया भी नित्य हो जायगी। अर्थात् ब्रह्म सदृशत्व माया में होने कारण "उस ब्रह्म के सदृश कोई नहीं" इत्यादि श्रुतियों के साथ विरोध होगा। प्रागभाव का दृष्टान्त देना ठीक नहीं क्योंकि माया भावरूप है। और भाव में तो अनादित्व होने से अनन्तत्व ही रहेगा। सान्तत्व कभी नहीं रह सकता। अन्य अर्थात् उत्पन्न होनेवाले भाव का ही नाश होता है। ऐसा नियम नहीं मान कर यदि माया का उत्पत्ति नहीं मानते हुए भी नाश मानेंगे तब ब्रह्म का भी नाश मानने की आपत्ति हो जायगी क्योंकि अब किस का नाश है और किस का नहीं, इस में कुछ विशेष कारण बता नहीं सकते। असली बात यह है कि दृष्टान्त ही प्रथमतः असिद्ध है।

प्रागभाव जैसा कि नैयायिक मानते हैं सिद्ध ही नहीं। इस कपाल में घट उत्पन्न होगा इस प्रतीति को देखकर वे प्रागभाव की सिद्धि करते हैं। परन्तु यह प्रतीति प्रागभाव साधक नहीं हो सकती। परन्तु सत्ता अग्रिम काल में होगी यही उसका अर्थ है। इस कपाल में अभी घट नहीं है इस प्रतीति से भी प्रागभाव नहीं सिद्ध हो सकता। यद्यपि इस प्रतीति का अर्थ घटात्यन्ताभाव या घटध्वंस नहीं है, तथापि तिरोभाव अर्थ मान सकते हैं। तिरोभाव प्रागभाव स्वरूप नहीं है क्यों कि ध्वंस में भी तिरोभाव की प्रतीति उत्पन्न होती है। एवं च तिरोभाव से ही गतार्थता हो गई तो फिर प्रागभाव मानने की आवश्यकता क्या है? विद्यमान वस्तु का प्रत्यक्ष न होना ही तिरोभाव है। और यह ईश्वरेच्छा से होता है। ईश्वरेच्छा नित्य होने से यह तिरोभाव भी नित्य नहीं हो सकता। क्योंकि नित्य प्रलय और उत्पत्ति मानने की आपत्ति होगी। दुनिया में प्रलय और उत्पत्ति चलती ही है ऐसा देखकर इष्टापत्ति नहीं कर सकते। क्योंकि एक ही वस्तु का प्रलय और उत्पत्ति सदा होने की आपत्ति देते हैं। अथवा अभी घट नहीं है इस प्रतीति का अर्थ अत्यन्ताभाव ही समझिये। अत्यन्ताभाव नित्य है, अतः अभी ऐसा प्रयोग अनुपपन्न है, ऐसा भी नहीं मानना चाहिये। क्योंकि प्रागभाव मानने वाले के मत से भी यह अनुपपत्ति निश्चित है, उस समय प्रागभाव की उत्पत्ति कहाँ है? अर्थात् दोनों तरफ यह घट समान है। यद्यपि घट प्रागभाव नहीं मानने से घटोत्पत्ति होने के बाद भी घट होगा ऐसी प्रतीति क्यों न हो? ऐसी आपत्ति दे सकते हैं, परन्तु उसका कारण सहज है, उत्पत्ति के बाद घट होगा

ऐसी प्रतीति नहीं हो सकती, क्योंकि घटवत्ता बुद्धि उस बुद्धि को रोक देती है। एवं च प्रागभाव न मान कर भी सब उत्पन्न हो सकता है। ऐसा करने से लाघव भी होगा। अन्यथा, अतिरिक्त प्रागभाव की कल्पना करने से गौरव दोष होगा।

परन्तु यहाँ फिर शंका अपस्थित होती है की घटात्यन्ताभाव ही यदि प्रागभाव रूप माना जाय तो अत्यन्ताभाव नित्य होने के कारण घट की उत्पत्ति ही न होगी। यद्यपि एतद्घटाभाव वहाँ नहीं है तथापि दूसरे घटका अत्यन्ताभाव रहने में क्या बाधक है? गौरव दोष दिया था, परन्तु आवश्यक स्थल में वह दोष नहीं गिना जाता। घटबुद्धि प्रतिबन्धक है ऐसा कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि यहाँ बुद्धि का अर्थात् प्रतीति का विचार नहीं किन्तु उत्पत्ति का ही विचार है। एवं च नित्य प्रतिबन्धक ही है अतः घटवत्ता बुद्धि कभी होगी ही नहीं। ऐसा न मानेंगे तो वायु में रूप की उत्पत्ति माननी पड़ेगी। तात्पर्य यह कि प्रागभाव अलग मानना चाहिए, परन्तु यह नैयायिकों का कहना ठीक नहीं है। घटत्व रूपसे उस घट पर अगर अत्यन्ताभाव नहीं है तो फिर अत्यन्ताभाव त्रैकालिक क्यों कर होगा?

भूतल में जब घट नहीं रहता तब घटाभाव बुद्धि होती है फिर वहाँ घट लाने से घटवत्ता बुद्धि होती है, यह देख कर मानना होगा कि (बुद्धि का प्रतिबन्ध प्रतिबन्धक भाव उत्पन्न करने के लिये) अत्यन्ताभाव स्वतन्त्र है। परन्तु यहाँ भी दो प्रश्न उपस्थित होते हैं। क्या वहाँ सामानाधिकरण्येन अभाववत्ता बुद्धि मानते हैं या अवच्छेदावच्छेद से? प्रथम पक्ष लेने से यत्किञ्चित् घटवत्ता बुद्धि होने की आपत्ति होगी। द्वितीय पक्ष लेना चाहते हैं तो फिर सामानाधिकरण्येन अभाव का बखेड़ा ही निकाल दीजिए! व प्रतिबन्ध की उत्पत्ति दूसरी तरह से कर सकते हैं। घटरूप से आविर्भाववेच्छा होने पर अभाव ग्रहण तिरोहित होता है और सर्व व्यवहार विषय हो जाते हैं। सर्व व्यवहारों के लिये ही वह प्रकट होती है।

प्रागभाव भाव न मानेंगे तो विद्वदाभरण (विद्वन्मण्डन) में अनित्य का जो लक्षण कहा गया है वह अनुत्पन्न होगा ऐसी शंका न करनी चाहिए। क्योंकि वहाँ दूसरों का मत अभ्युपगम किया गया है न कि खास अपना मत ग्रन्थकार ने वहाँ बताया है। वास्तविक बात यह है कि अभाव का प्रतियोगी होना ही अनित्य का लक्षण ग्रन्थकार के सम्मत है। ऐसा लक्षण करने पर भी ब्रह्म में उसकी अतिव्याप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि वे सब कार्य अर्थात् अन्य वस्तुओं के गुण हैं। अस्तु अब फिर मूल विषय के तरफ देखना चाहिये।

ब्रह्मनिष्ठ धर्मोंका मायिकत्व होना असम्भव है यह सिद्ध किया गया। एवं च अलौकिक धर्मवान् ब्रह्म जैसा कि पहले ही कहा गया है - सिद्ध हुआ। इसी को सिद्ध करने के लिए दूसरा विशेषण मूल में दिया है वह है 'अशेषोपनिषद्ब्रह्म' जिन में विशेष नहीं इत्यादि विग्रह करके कर्मधारय और तत्पुरुष समास करने से यह समास सिद्ध होता है। सर्व उपनिषदों में प्रतिपाद्य ब्रह्म ही है यह मतलब निकला। 'उपनिषदों में प्राकृत धर्मों का विवेचन मानने से ब्रह्म तद्विशिष्ट मानना होगा। परन्तु प्राकृत धर्म ब्रह्म में है ही नहीं, अतः तत्प्रतिपादक सर्व वाक्यों को ब्रह्म परत्व नहीं मान सकते। एवं च 'सर्व वेद जिसका वर्णन करते हैं' यह श्रुति वाक्य निरर्थक होगा क्योंकि सब उपनिषदें कहाँ ब्रह्म का वर्णन करती हैं? एवं च यह दोष हटाने के लिए ब्रह्म में अलौकिक धर्मों का अस्तित्व मानना चाहिए।

अतात्त्विक भेद ब्रह्म में मानकर भी पूर्वोक्त दोषों का निवारण नहीं कर सकते। क्योंकि अतात्त्विक शब्दका अर्थ है सोपाधिक अर्थात् उपाधि सहित, और वह उपाधि माया है। अब देखिये इस माया का सम्बन्ध ब्रह्मके साथ कैसे हो सकता है? यदि सर्वतः ब्रह्मको आवृत् कर के माया का सम्बन्ध है तो यह हो नहीं सकता, ब्रह्म किसी से आवृत् नहीं हो सकता। ब्रह्म का एक देश मायावृत्त है, यह भी कहना ठीक नहीं। क्यों कि परिच्छिन्न वस्तु में ऐसा रहता है, ब्रह्म तो परिच्छिन्न नहीं है, अतः ऐसे व्यापक ब्रह्म का एक देश कैसे होगा। 'यह असङ्ग है' इस श्रुति के साथ विरोध भी है।

यदि फिर भी कोई आक्षेप कर सकता है कि ब्रह्म सर्वव्यापी हुआ तो क्या हरज है? आकाश के समान वह भी सावच्छिन्न होगा। अर्थात् सर्वत्र एक ही आकाश होते हुए भी घटान्तर्गत आकाश घटावच्छिन्न होता है उसी तरह ब्रह्म व्यापक होने पर भी मायावच्छिन्न हो सकता है। परन्तु यह दृष्टान्त ही पहले ठीक नहीं है। दृष्टान्त सदृश वस्तु का होना चाहिये। ब्रह्म का आकाश के साथ सादृश्य नहीं है। आकाश कार्य होने के कारण सांश है सांश होने पर भी वायु की तरह अग्राह्य है। अतः उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। वायु प्रत्यक्ष है ऐसा कहेंगे तो फिर द्वयणुक ने क्या अपराध किया है? उसका भी प्रत्यक्ष मानो। महत्व न होने के कारण द्वयणुक को आपत्ति का कारण कहेंगे तो स्पर्श न होने के कारण यहां भी वारण कर सकते हैं। सांश होने के कारण उसका नाश होगा ऐसा आक्षेप करेंगे तो कोई हरज नहीं, क्योंकि हम भी यही मानते हैं। आकाश हमारे

मत से अनित्य ही है।

आकाश का दृष्टान्त देने पर भी ब्रह्म में अवच्छिन्नत्व सिद्ध नहीं होगा। अवच्छेदक उसे कहते हैं जो विभाग करता है। जैसा घटत्व घट को पट से भिन्न कर देता है। आकाश में भी इसी तरह से घट अपने परिमाणानुसार भाग से अलग कर देता है अतः घटावच्छिन्न आकाश यह प्रयोग हो सकता है, परन्तु ब्रह्म में इस तरह का अवच्छिन्नत्व न होने के कारण ब्रह्म मायावच्छिन्न कैसे हो सकता है।

ब्रह्म मायावच्छिन्न तभी होगा जब ब्रह्मके साथ माया का कोई सम्बन्ध हो। परन्तु संयोगरूपी सम्बन्ध नहीं हो सकता; क्योंकि नित्य वस्तुओं का संयोग नहीं होता। और उस में संयोग का लक्षण भी नहीं जा सकता। समवाय भी नहीं मान सकते, अयुत सिद्धों का समवाय सम्बन्ध माना जाता है, वैसा यहां नहीं है। ब्रह्म और मायाके बीच में विशेष्यविशेषणभाव भी नहीं है। अतः स्वरूपसम्बन्ध भी नहीं होगा। विशेष्यविशेषणभाव सम्बन्ध मानेंगे तो ब्रह्म में धर्म मानने की आपत्ति होगी। अर्थात् ब्रह्म सधर्म होगा। ब्रह्म में कर्तृत्व जिस तरह से मायिक है उसी तरह से विशेष्यत्व भी मायिक मानेंगे ऐसा कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि मायिक शब्द के दो अर्थ हैं एक है मायाजन्यत्व (अर्थात् माया से पैदा हुआ) और दूसरा है माया सम्बन्ध होने पर दृश्य होनेवाला। इन में पहला अर्थ मानेंगे तो ब्रह्म सधर्मक होगा 'एकरस ब्रह्म है' इत्यादि श्रुतिओं के साथ विरोध पड़ेगा। दूसरा अर्थ लेंगे तो ब्रह्मको निःसंग कहनेवाली श्रुतिओं के साथ विरोध होगा।

ब्रह्म में माया सम्बन्ध नहीं है किन्तु जीव में ही है। और जीवनिष्ठ माया से ही ब्रह्म में विचित्र धर्म भासमान होते हैं। अर्थात् शङ्खादिओं में रक्तिमा न रहते हुए भी लालचम्पे वालों को वह लाल सा प्रतीत होता है उसी तरह से ब्रह्म में जीव को धर्मों का आभास होता है। एवं च 'ब्रह्म धर्म शून्य ही है' इत्यादि पूर्वपक्ष भी दोषग्रस्त है। जीव जब ब्रह्म रूप है तब माया सम्बन्ध उस में भी नहीं हो सकता। तात्पर्य माया सम्बन्ध न रहने के कारण ब्रह्म में मायिक धर्म नहीं रहते हैं किन्तु अलौकिक धर्म ही उस में हैं।

ऐसे ब्रह्म का महत्व वर्णन करने के लिये आरम्भ में 'परं ब्रह्म' अर्थात् 'श्रेष्ठ ब्रह्म' ऐसा कहा है। खाली 'पर' कहने से ब्रह्मका बोध नहीं होगा 'इन्द्रियों को पर कहा है' इत्यादि श्रुतियों में इन्द्रियों को भी पर अर्थात् श्रेष्ठ कहा है अतः

‘ब्रह्म’ पद भी ‘पर’ पद के आगे जोड़ दिया है। अर्थात् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म यह अर्थ निष्पन्न हुआ। खाली ब्रह्म कहने से परत्व लाभ नहीं होगा क्योंकि ज्ञेय ब्रह्म में ही उसका सम्भव है। <sup>१</sup>‘महत् से श्रेष्ठ अव्यक्त है, अव्यक्त से श्रेष्ठ पुरुष है, (परन्तु) पुरुष से कोई श्रेष्ठ नहीं’। इस श्रुति में तथा <sup>२</sup>‘इन्द्रियां पर हैं’ इस श्रुति में भी अक्षर ब्रह्म का ही वर्णन है। अतः अक्षर ब्रह्म ‘पर’ है इस में प्रमाण भी मिल गया अक्षर ब्रह्म में प्रमाण श्रुति ही है। ‘क्षर और अक्षर ऐसे लोक में दो तरह के पुरुष हैं’ इस श्रुति में अक्षर ब्रह्म ही पुरुष शब्द से बोधित होता है। ‘उत्तम पुरुष अन्य है जो परमात्मा कहलाता है’ इस में ‘परमात्मा’ शब्द से अक्षर ब्रह्मसे भिन्न पर ब्रह्म का अस्तित्व वर्णन किया गया है। तात्पर्य यह है कि ‘सत्य, ज्ञानवान् तथा अनन्त ब्रह्म है, श्रुति में प्रतिपादित जो श्रेष्ठ ब्रह्म वह मनोरथों की पूर्ति करते हुए तुमको आनन्दित करें यह आशीर्वचन बोधित किया गया है।

इति श्रीगोस्वामिश्रीरघुनाथात्मजव्रजराजविरचितो ब्रह्मवादः सम्पूर्णः।



पू. पा. गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी विरचित

प्रहस्तवाद\*

## वेदान्ततात्पर्यनिरूपण

अनुवादक : श्री हरिशंकर आरजी मी.शा.वे.वि. M.R.A.S.

अभवदतिरसालं जिह्मविद्युज्ज्वालं प्रलयजलधिजालं यत्कृपालङ्कृतेषु।  
शिशिरमुखमयूखैर्भक्तसन्तापहलं स विभुरखिलकालं मदृशां गोचरोऽस्तु॥

★ ★ ★ ★

\*श्रुतिशिरसि यस्य महिमा निरुपधिरीशोऽपि यस्य खलु महिमा।

तं कृष्णमादिमूर्तिं नमामि निरवद्यसद्गुणं ब्रह्म॥२॥

जिसकी महिमा-श्लाघा श्रुतिमूर्धन्यवेदान्त-उपनिषदों में है, जो उपाधिरहित है,

जिसकी विभूति ईश-परशिव भी है, जिसके निर्मायिक (स्रष्टृत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, दीनबन्धुत्व, पतितपावनत्वादि) सद्गुण हैं;

उस सच्चिदानन्द परब्रह्म आदि मूर्ति श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।

### उपक्रम

श्रीमद्भगवद्भवनवैश्वानरावतार श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु पूज्यपाद प्रणीत तत्त्वार्थदीप निबन्धमें सच्चिदानन्द परब्रह्म <sup>१</sup>श्रीकृष्ण को आदिमूर्ति कहा है, यही स्वरूप ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में भी सिद्ध किया है। अर्थात् निबन्ध और अणुभाष्योक्त आदिमूर्ति उपाधिरहित एवं निर्मायिक सच्चिदानन्दपरब्रह्म श्रीकृष्ण, जो कि जगत् का कारण है, उस को मैं प्रणाम करता हूँ।

वाह ! यही खूब ! सोपाधिक ब्रह्म को वेदान्तोमें प्रसिद्ध किया गया है, और आप उसकी महिमा को उपाधिरहित कहते हैं। ब्रह्म की महिमा निरुपाधि है, यह किस प्रकार जान लिया ?

(१) महत् परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः पुरुषात्रपरङ्घितः।

(२) इन्द्रियाणि पराण्याहुः।

\*प्रहस्तवाद में अवान्तर तीन वाद हैं, वेदान्ततात्पर्यनिरूपण, भ्रान्तशैवनिराकरण और मूलरवरूपनिर्धार। इन तीन वादों को तीन घरणोंमें बताया है।

<sup>१</sup> आदिमूर्तिः कृष्ण एव सेव्यः सायुज्यकाम्यया। (तत्त्वदीपनिबन्ध)

सुनिये-भगवान् वेदव्यासने चतुर्लक्षण ब्रह्मसूत्रों में प्रथमाध्याय से सब वेदान्तवाक्यों का समन्वय और द्वितीयअध्याय से अविरोध प्रतिपादन किया है। सब वेदान्तवाक्य परस्पर में अविरोधी होकर ब्रह्मपरक हैं। अर्थात् सब वेदान्तवाक्यों के द्वारा ब्रह्म कारण रूप है, आन्तर है, भोक्ता है, अन्तर्यामी है इत्यादि प्रकार से वह अनेकविध महिमायुक्त है, ऐसा प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म नानारूप हैं, वह नानारूप किस प्रकार है, वे नानारूप कैसे हैं इत्यादि निर्णय भी तत्तत्स्थलों में किया है, अर्थात् यावत् वेदान्तवाक्य अनन्तरूप ब्रह्म की महिमा का निरूपण करते हैं, अतएव वे सब वाक्य ब्रह्मपरक हैं, यह बात तो निर्विवाद सिद्ध ही है।

### क्या ब्रह्म जगत् का कारण है ?

ब्रह्म जगत्का कारण है, यह विचार व्यासजीने अपने सूत्रों में सबसे पहले अर्थात् प्रथमाध्याय प्रथमपाद का प्रारम्भकर दूसरे ही अधिकारण में किया है। "जिससे<sup>१</sup> जन्म आदि होते हैं वह ब्रह्म है, क्यों कि शास्त्र अर्थात् वेदमें उसे कारण कहा है" यहां "जिस से<sup>२</sup> ये सब भूत (पंचमहाभूत) उत्पन्न होते हैं" इस तैत्तिरीय उपनिषद् के वाक्य को लेकर विचार किया गया है। प्रश्न होता है कि ब्रह्म में कर्तृत्व है या अकर्तृत्व ? क्योंकि "सत्य,<sup>३</sup> ज्ञानरूप और अनन्त-ब्रह्म है" इस ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादक श्रुतिवाक्य में ब्रह्म को जगत् के प्रति कर्ता नहीं माना है। आगे चलकर जहाँ कहीं व्याख्यान करते समय कर्तृत्व कहा गया है, वहाँ अन्यगत कर्तृत्वका आरोप करने से भी पूर्वापरवाक्यों की सङ्गति लगजाती है, अतः स्वरूपप्रतिपादक वाक्य के उपजीवक कार्यप्रतिपादकवाक्य में भी आरोप ही मानना उचित है, इसलिये ब्रह्म कर्ता नहीं है ऐसा ही क्यों नहीं मानते ?

हम ब्रह्म को जगत् के प्रति कर्ता क्यों मानते हैं, वह भी सुनिये। "जिस से ये भूत (पंचमहाभूतात्मक प्रपञ्च) उत्पन्न होते हैं" इस तैत्तिरीय उपनिषद् के वाक्य में "ये" इस दर्शक सर्वनाम से प्रपञ्च को बताकर उसका जन्मादि कहा है, अथवा यों कहिये कि, इस वाक्य का विवरण करते समय "उस<sup>४</sup> परमात्मा से ही आकाश उत्पन्न हुआ" इस में आद्य अर्थात् आकाश का जन्म कहा है। इस से सिद्ध होता है कि शास्त्र-वेद-पूर्वकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड-के सृष्टिवाक्यों में कारणरूप

१ जन्माद्यस्त्ययतः शास्त्रयोनित्वात् १।१।२॥ (श्रीवल्मभाचार्यजीने योग विभाग का निषेध किया है।

२ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । ३ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

४ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः ।

ब्रह्म को ही कहा है। कार्यप्रतिपादकवाक्यों के स्वरूपप्रतिपादक वाक्यों पर निर्भर रहने के कारण स्वरूपप्रतिपादकवाक्यशेष<sup>१</sup>-उपसंहार-में ब्रह्म कर्ता नहीं है ऐसा निषेध देखने में नहीं आता है, प्रत्युत ब्रह्म कर्ता नहीं है ऐसा निषेध देखने में नहीं आता है, प्रत्युत ब्रह्म को कारण कहा है, इस से "वह<sup>२</sup> स्थूल नहीं है अणु नहीं है" इत्यादि धर्म निषेधवाक्य में धर्म का निषेध होने पर भी ब्रह्म अलौकिक (विरुद्धधर्माश्रय) होने से तथा निषेध में लौकिक रीतिक कर्तृत्व का निषेध होने से अलौकिक कर्तृत्व सिद्ध हो जाता है। आप के मत के अनुसार लक्षणा करके ब्रह्म पर कर्तृत्व का आरोप जघन्य-गर्हित-होने के कारण श्रुतिसिद्ध कर्तृत्व का त्याग करना अनुचित है। अतः सबका आदिकारण ब्रह्म है यह सिद्ध हुआ। आनन्दमयाधिकरण में ब्रह्म को आनन्दरूप कहा है, और वही अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय से भी आन्तर आनन्दमय है।

### सर्वान्तर ब्रह्म है

"यह जो<sup>३</sup> आदित्य के बीच हिरण्मय पुरुष दिखाई देता है, वह हिरण्य-सुवर्ण के श्मश्रु, सुवर्णकेश, नखशिखान्त सुवर्णमय है, जैसे कपिका आसन होता है, वैसे तथा पुण्डरीक-कमल के समान आरक्त उसके नेत्र हैं, वह उदय होता है, ऐसा जो जानता है वह सब पापों से मुक्त होता है" इत्यादि छान्दोग्य उपनिषद् के वाक्यों में श्रुति कहती है। यहां प्रश्न होता है कि क्या उपर्युक्त छान्दोग्यश्रुति में जिस प्रकार कहा गया है वैसा ही वास्तविक-सूर्यमण्डलान्तर्गत जो पुरुष है वह अधिष्ठातृदेवताशरीर है वा ब्रह्मशरीर ? उसमें विकारवाची हिरण्मयादि पदों से, और देहधर्मों का कथन होने से, नेत्रवाला कहने से, वह शरीर जीव का ही है। यदि कहो कि अपहृतपाप्मत्व-निष्पापआदि धर्म कहे हैं, जीव में पूर्वदोष विद्यमान रहने से वह जीव शरीर नहीं है तो किसी प्रकार से ब्रह्मशरीर हो सकता है, क्यों कि ब्रह्मशरीर कर्म जन्य न होने के कारण अपहृतपाप्म-निष्पाप हो सकता है। शरीर का स्वीकार करने पर इन्द्रियों का भी -स्वीकार हो जाता है, दृष्टान्त में आरक्त वर्ण का परिग्रहण होने से वर्णमात्र का परिग्रहण कर लेंगे, तब किसी प्रकारका

१ यद्यपि शेषशब्द का अर्थ अंग होता, तथापि यहां उपसंहार ही योग्य है।

२ अस्थूलमनणुः ।

३ 'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुहिरण्यकेश आ प्रणखात्सर्व एव सुवर्णस्तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एवं सर्वेभ्य उदेति स वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद' ।

दोष न रहेगा। ऐसा पूर्वपक्ष यदि किया जाय, तो उस का प्रत्युत्तर इस प्रकार है—

आदित्यान्तर्गत जो पुरुष दृश्यमान है, वह परमात्मा ही है, क्योंकि श्रुति में उदय होना आदि ब्रह्म धर्मों का उपदेश है, तात्पर्य यह है कि—कारण ब्रह्म है, कार्य जगत है; उस में जिस तरह कार्य के असाधारण धर्म कारण में नहीं जाते, उसी तरह कारण के असाधारण धर्म भी—कार्य में नहीं जाते। लोकव्यवहारमें भी—देखा जाता है कि घट कार्य है और मृत्पिण्ड कारण। घट के असाधारण धर्म जलाहरणादि मृत्पिण्ड में हैं और न मृत्पिण्ड के असाधारणधर्म घट में। यदि कार्य के असाधारण धर्म मृत्पिण्ड में और मृत्पिण्ड के असाधारणधर्म घट में चले जाय तो फिर कार्य और कारण में विलक्षणता क्या होगी? कार्य और कारण में (परस्पर) किसी प्रकारकी विलक्षणता न रहने पर कार्यकरणरूप व्यवहार ही नष्ट हो जायगा। अतः इस नियम को मानना पड़ेगा कि कार्य के असाधारणधर्म कारण में नहीं होते हैं और न कारण के असाधारणधर्म कार्य में रहते हैं। प्रस्तुत वाक्य में भी—“उस का उदय होता है, कहने से वह सब पापों से उदित होता है” इत्यादि प्रकारसे वर्णन होने के कारण वह अपहृत पाप्मा है, यह सिद्ध हुआ। साथ ही मूल छान्दोग्य श्रुति में ‘आदि’ पद होने से वह अक्षिपुरुष का वर्णन करनेवाली ऋचा है, वह साम है, वह यजुष् है, वह ब्रह्म है। इसी प्रकार अन्य श्रुतियों में भी ब्रह्म के असाधारण धर्म कहे हैं, वह ब्रह्म ही है ऐसा ज्ञात होता है। व्यासजीने “अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्” १।१।१८॥ सूत्रमें ‘अन्तः’ पद का प्रयोग किया है, इस से यह भी ज्ञात होता है कि स्थानान्तर में भी—जहाँ जहाँ ब्रह्म के धर्मों का वर्णन किया गया है वहाँ भी ब्रह्म ही अर्थ करना चाहिये न कि जीव वा जड। आप यह शङ्का नहीं कर सकेंगे, कि केश नखादि कार्य धर्मों का वर्णन है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। कारणधर्म उपजीव्य और नित्य होने के कारण बलिष्ठ है। अपहृतपाप्मा आदि ब्रह्मधर्म का प्रकृत में उपदेश होने के कारण वह ब्रह्म ही है।

हिरण्य शब्द का अर्थ हिरण्य का विकार नहीं है। पाणिनिसूत्र द्वयचश्छन्दसि (४।३।१५०) के अनुसार जहाँ दो स्वर न हो वहाँ वेद में विकारार्थक मयद् प्रत्यय होता नहीं है। केशादि नाम मात्र से तुल्य है, न कि वस्तुतः। “<sup>१</sup>अणु से भी अणु और महान् से भी महान् है” इस श्रुतिवाक्य से सिद्ध है कि परिच्छेद भी ब्रह्मधर्म ही है। चाक्षुषत्वादि भगवदिच्छा से है, न कि इन्द्रियसामर्थ्य से। श्रुति में भी कहा है “<sup>२</sup>वह ब्रह्म अपना शरीर का स्वयं विस्तार करता है”

१ अणोरणीयान् महतो महीयान् । २ स आत्मानं स्वयमकुरुत ।

इत्यादि श्रुति वाक्यों से यह स्पष्ट रूप से समझ में आता है। अस्थूलादिवाक्यों में स्थूलात्वादि का निषेध है न कि अलौकिक ब्रह्मधर्मों का अतः वह ब्रह्म सर्वान्तर ही है।

उक्त श्रुतिमें वाणी के साथ मन भी है, अतएव वह लौकिक वाणी की बात है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। वैदिकवाणी उसको प्राप्त कर सकती है। वेद अपौरुषेय है, ईश्वर के निश्चासरूप है अतः उस वाणी के साथ मनका रहना सम्भव नहीं है। “<sup>१</sup>वाणी से अनृत (मिथ्या) बोलता है” “<sup>२</sup>मनसे मिथ्या ध्यान करता है” इत्यादि वेदवाक्योंमें लौकिक वाणी एवं मनका वर्णन है। साथ ही “<sup>३</sup>जब यह साधक इस अदृश्य, , अशरीर, अविशेष अनिलयन (जो किसी अन्यपर निर्भर न हो) परब्रह्म में निर्भय होकर आत्मभावको प्राप्त करता है, तब उसने अभय प्राप्त किया (वह अभय तक पहुँच सका)।” इत्यादि तैत्तिरीयश्रुति का भी विरोध होगा। क्योंकि उक्त श्रुति में ब्रह्म को अविशेष (अनासक्त) कहा है। जो “यह इस प्रकार है” इत्यादि शब्दों से प्रतिपादित होता है वह निरुक्त वा सविशेष है, उससे भिन्न अनिरुक्त-अविशेष है। “वह (ब्रह्म) अनिरुक्त है” यह वाक्य भी वाणीका विषय है, और इसी वाक्यसे उसका (ब्रह्मका) बोध हो सकता है, तब यह किस प्रकार माना जाय कि पूर्वोक्त श्रुतिके अनुसार वाणीकी निवृत्ति होने से ब्रह्म वाणीका विषय नहीं है? अत एव आपको भी मानना होगा कि वहाँ वैदिक वाणीका निषेध नहीं है? लौकिक वाणीकी निवृत्ति ही उक्त श्रुतिका अर्थ है। लौकिक वाणी ब्रह्म को प्राप्त न करके ही लौट आती है और वैदिक वाणी अपनी शक्ति के अनुसार उसका वर्णन करती है। इस प्रकार ही अर्थ करने से उक्त उपनिषद् वाक्य की सङ्गति बैठ सकती है, न कि आपके कथनानुसार। आपके कथन के अनुसार तो कारणत्वबोधक और उपासनाबोधक वाक्यों का अर्थ उपाधि, आरोपापवाद आदि मानने से निर्विशेष ब्रह्म का ज्ञान ही न होगा। पूर्वोक्त दोनों श्रुतियों (यतो वाचो और अनिरुक्तश्रुति) में विवाद उपस्थित हो जाने से, उक्त विवादको दूर करने का आपके पास दूसरा कोई साधन न होने से, तथा जबतक दोनों की एक वाक्यता न हो तबतक उनके अर्थका भी निश्चय न हो सकने से साथ ही उनके द्वारा अन्य श्रुतियोंका भी तात्पर्य ज्ञान होना अशक्य हो जायगा।

१. अनृतं वै वाचा ब्रूयति । २. अनृतं मनसा ध्यायति ।

३. यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्ये अनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते, अथ सोऽभयंगतो भवति ।



यदि आप कहेंगे कि वाक्य में 'शक्ति' न होने से हम 'लक्षणा' करेंगे तब लक्षणा करने से दोनों में तुल्यता आजायेगी, वह भी ठीक नहीं है, वैसा करने से वृत्ति में द्विगुणता आजाती है, अर्थात् वाक्य में और पदमें उभयत्र शक्ति मानने की आपत्ति उपस्थित होती है। यदि आप कहेंगे कि सब-वैदिक पदों को ब्रह्मवाचक नहीं मानेंगे। हम आगे चलकर अथर्वशिखाका उपपादन करेंगे, वहां सब वैदिक शब्दों की ब्रह्म में शक्ति है, ऐसा सिद्ध किया है। साथ ही वाक्य में शक्ति है ऐसा वैयाकरणोंका सिद्धान्त है। वृत्ति द्वैगुण्यसे आगे चलकर बतावेंगे उस प्रकार विरुद्धधर्माश्रय मानने से लक्षणा से पिण्ड छूट जायेगा, साथ ही श्रुतियों भी विरोध न रहेगा। अतएव "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियों में लक्षणा मानना प्रमाणाभावे अनुपपन्न ही है<sup>+</sup>।

यदि लक्षणाका स्वीकार न किया जाय तो "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इस श्रुति में ब्रह्म को अद्वितीय कहा है, वह सिद्ध न होगा ऐसा कहना भी योग्य नहीं है। क्योंकि ब्रह्मधर्म भी ब्रह्म से अभिन्न ही है। जैसे "प्रकाशाश्रयबद्धा तेजस्त्वात्" इस सूत्र में व्यासजीने दिखाया है कि सूर्य और प्रकाश ये भिन्न भिन्न नहीं हैं, उसी तरह ब्रह्म और ब्रह्म के धर्म (अद्वितीयत्वादि) भिन्न भिन्न नहीं हैं। दोनों को एक मानने से धर्मभावकी हानी भी न होगी। अतएव आपका उपाधिपक्ष सर्वथा असङ्गत है।

खैर, न हो उपाधिपक्ष, हम प्रकारान्तर से उसको दृढ़ करेंगे। ब्रह्म की महिमा का प्रतिपादन करनेवाले वेदान्त वाक्यों को ब्रह्म के स्वरूप की अपेक्षा रहती है, अतः वे उपजीवक होने के कारण बहिरङ्ग हैं। और ब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादन करनेवाले वाक्य उपजीव्य होने से अन्तरङ्ग हैं। जिस प्रकार पूर्वमीमांसा में उत्पत्ति वाक्य का बोध अन्य वाक्य नहीं कर सकते, पर आवश्यकता पडने पर उत्पत्ति वाक्य ही अन्य वाक्यों का बोध करता है, उसी प्रकार यहाँ भी स्वरूपपरक निर्विशेष वाक्यों के द्वारा धर्म, आकारादिबोधक वाक्यों का बोध हो जायेगा और

+ यहां मूलमें लक्ष्यत्व, वाच्यत्व, लक्षणा, केवलान्वयी, अन्वयव्यतिरेकी, उपाधि आदि का विचार किया गया है, यह तार्किक विचार सर्व साधारण को समझाने में कठिनाई होगी, इस विषयकी सरल व्याख्या करके समझाने में बहुत विस्तार करना पड़ेगा, साथही यह अत्यन्त रुक्ष विषय होने के कारण पाठकोंको नीरस जंचेगा, अतः यहां पूर्वपक्षका सिद्धान्ती के मतानुसार निरास मात्र किया गया है।

\* उपाधि पक्ष मानने से शतावधि श्रुतिवाक्य और व्यास सूत्रोंका ठीक ठीक अर्थ नहीं हो सकेगा।

जब उनका बोध हो गया तब वे उपाधिपक्ष में पर्यवसित हो जाँयेंगे।

सुनिये, हम आपके इस पक्ष का भी उत्तर देते हैं - यदि आपके कहने के अनुसार महिमा को निरूपण करनेवाले वाक्य केवल उसीका निरूपण करके रह जाँय और स्वरूप के विषय में कुछ भी न बोलते हों, तब तो आप कहते हैं वैसा मान भी लिया जाय, पर ऐसा नहीं है, किन्तु जिस तरह "अस्थूलं" आदि वाक्य धर्मनिषेध के द्वारा स्वरूप का भी निरूपण करते हैं, उसी तरह "विश्वतश्चक्षुः" इत्यादि वाक्य धर्मविधि के द्वारा स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं, तब आप पूर्वोक्त न्याय से उपाधिपक्ष का किसी भी प्रकार से समर्थन नहीं कर सकते।

किसी का मत है कि - "अस्थूलं" इत्यादि वाक्य में निषेधार्थक "नञ्" का अन्वय क्रिया के साथ न होने के कारण यहाँ "प्रतिषेध" न होकर पर्युदास ही होगा। अतः सादृश्य अर्थयुक्त है। "ब्रह्म हाथी के समान बड़ा और मच्छर के समान छोटा है" इत्यादि श्रुति वाक्यों में भी सादृश्य ही कहा है। तब आप व्यर्थ ही श्रुतियों के विरोधाभाव की चिन्ता करते हैं। श्रुतियों में विरोध ही नहीं है, फिर विरोधाभाव स्थापन करने की क्या आवश्यकता है?

भिक्षु का मत है कि - यहाँ पर्युदास शक्यवचन नहीं है, क्योंकि "असङ्गम्" इत्यादि में अन्वय नहीं है, साथ ही "अचक्षुष्कम्" यहाँ क प्रत्ययमें विरोध भी हो जाता है। अतः जहाँ जैसा सम्भव हो वहाँ वैसा प्रतिषेध वा पर्युदास स्वीकार कर लेना उचित है।

परन्तु यह मत ठीक नहीं है। क्योंकि "असङ्गम्" इत्यादि श्रुति का "सङ्गभिन्न" वा "सङ्गसदृश" ऐसा अर्थ करने पर स्वरूप सम्बन्ध तो रहेगा, इससे तद्रूपताका बोध हो जायगा तब अन्वय अनुपपन्न न होगा, और "अचक्षुष्कम्" इत्यादि में 'क' प्रत्यय स्वार्थ में होने से वह पर्युदास का बोध नहीं करेगा। किन्तु "यह देव, असुर, मनुष्य, पक्षी, स्त्री, षण्ड, पुरुष, जन्तु, गुण, कर्म, सत्, असत् नहीं है; ऐसा निषेध के साथ रहनेवाला अशेष-पूर्णब्रह्म का जय हो।" इत्यादि पुराण वाक्यों में पूर्वोक्त श्रुतियों का ही विस्तार वा व्याख्यान होने से निषेध के साथ कहने से उसीके अनुसार यहां भी प्रसज्य प्रतिषेध का सम्भव होने के कारण जो विरोधाभाव के विषय में विचार करते हैं वह युक्त ही है।

अच्छा, तो आप जब प्रसज्यप्रतिषेध का स्वीकार ही करते हैं, तो हम कहेंगे कि-अणुत्वादि का निषेध होने से यहां केवल जड, जीव के धर्म मात्र का ही निषेध नहीं है ऐसा सिद्ध हुआ। धर्ममात्र का निषेध स्वीकार न करने पर श्रुति में

विरोध होगा और आपको वह विरोध, धर्म विरोध ही मानना पड़ेगा, तब वह धर्म विरोध अपने आश्रय का भेद करेगा अर्थात् धर्मों का आश्रय ब्रह्म है वह धर्म के निषेध से स्वयं निर्धर्मक होगा, उस समय धर्म प्रतिपादन करनेवाले वाक्यों के द्वारा उपाधि का ही स्वीकार करना पड़ेगा। बिना उपाधि के गत्यन्तर नहीं है।

नहीं, उपाधि का स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्यों कि ब्रह्म एक मात्र वेद से ही समधिगम्य--भली प्रकार जाना जाता है। वेद में कहा है कि "वह कम्पायमान होता है, कम्पायमान नहीं होता" "वह दूर है, वह पास है" बैठा हुआ दूर जाता है" "सोता हुआ सब जगह जाता है" महीन से भी महिन और बड़े से बड़ा है" "विना आँखवाला, विना कानवाला" "संसारभरमें आँखवाला" इत्यादि एक ही ब्रह्मके परस्पर विरुद्ध नाना प्रकारके धर्म बताये गये हैं। अतः उस (ब्रह्म)को वैसा ही मानना उचित है। सूत्रमें व्यासजीने स्रष्टृत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व आदि धर्म प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियों का परस्पर विरोध नहीं है ऐसा सिद्ध किया है। ब्रह्म विरुद्धमाश्रय है अतः श्रुतियों में विरोध का अभाव है।

### उपाधि में दोष

अब हम आपसे ही पूछते हैं कि, आप अविद्याको ब्रह्मोपाधि मानते हैं, वह क्या सादि है वा अनादि? उपाधि सादि नहीं है, क्योंकि तुम्हारे मत में उपहित को ईश्वर माना है, तब ईश्वर भी सादि हो जायेगा। आपको भी ईश्वर के सादि होजाने से साङ्ख्यवादियों की तरह कार्येश्वरवाद को मानना पड़ेगा। यदि कार्येश्वरवाद को मानेंगे तो वेदान्तसिद्धान्तका भङ्ग हो जायेगा।

यदि अनादि मानेंगे तो "जो अनादि है वह अनन्त अवश्य होना चाहिये" ऐसा नियम होने के कारण उपाधि से छुट्टी नहीं होगी तब जीवों की अपेक्षा भी ब्रह्म जघन्य हो जायगा। क्योंकि जीवों का मोक्ष है पर ब्रह्म तो उपाधि में कैसा ही रह जाता है।

यदि अनादिसान्त कहेंगे तो - उस पक्ष में भी ब्रह्म सर्वज्ञ है यह मानना पड़ेगा और वह ब्रह्म हिरण्यगर्भादिका गुरु एवं सब वेदों को जाननेवाला होने से और उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट-अधिक -के न होने से तथा "ईश्वर अपरोक्ष है ऐसा माननेवाले के पक्ष में ब्रह्मसाक्षात्कार आवश्यक होने के कारण उसकी मुक्ति होने पर प्रपञ्च का भी भङ्ग हो जायगा। अथवा एक की मुक्ति के अभाव में अन्य को

अपरोक्षज्ञान न होगा। साथ ही ईश्वर में भी जघन्यत्व दोष उपस्थित हो जायगा। और ऐसा मानने से पूर्वसूत्रोक्त हेतुविरोध उसी प्रकार उपस्थित रहेगा।

### अविद्याका स्थान कहाँ है ?

और वह अविद्या क्या जीव में रहती है व ईश्वर में? जिस में आप विशेषकी कल्पना करते हैं। पहिला पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि अविद्या में ब्रह्मगतधर्म की कल्पना करने का सामर्थ्य का अभाव है। जब कि शुद्धब्रह्म मन, वाणी का विषय नहीं है, तब जीवका अधिष्ठान, ज्ञान के अभाव होने में सम्बन्ध अशक्यवचन होने पर सम्बन्ध का अभाव होने से कल्पना असम्भव होती है। यदि आप कहेंगे कि ज्ञानी ब्रह्म को देखनेवाले होते हैं, वे ही अविद्या के कल्पक हैं, सो भी ठीक नहीं है। कहा है कि "गुणका अपाय-नाश-होनेपर मुनिगण जिसको देखते हैं" इस से सिद्ध होता है कि देखने वालों में अविद्या नहीं रहती। ज्ञानी होने पर वह नष्ट न होवे तो फिर उसका नाश ही न होगा; अनिमोक्ष प्रसङ्ग की आपत्ति होगी। अविद्या से ब्रह्म में विशेष की कल्पना करने से दृश्यत्व प्राप्त होता है, दृश्यत्व प्राप्त होने से अधिष्ठान का ज्ञान होगा, तब उसकी कल्पना होगी। इस प्रकार अन्योन्याश्रय होने से उसका (अविद्याका) कल्पक होना असम्भव है। यदि आप कहेंगे कि हम विशेष के विना ही ब्रह्मदर्शन का स्वीकार करते हैं, तब दृश्यत्वधर्म ब्रह्म में रहने के कारण आपका निर्विशेष सिद्धान्त ही नष्ट हो जायगा। यदि ब्रह्मदर्शन का स्वीकार नहीं करेंगे तब "ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है" इत्यादि श्रुति का व्याकोप होगा।

इस प्रकार जीवगत अविद्या ब्रह्मगत विशेष कल्पिका है, इस मायावादियोंके पक्ष का निरास करके, अब ब्रह्मगत अविद्या ही ब्रह्मगत विशेषकल्पिका है, ऐसे द्वितीयपक्षका खण्डन करते हैं। द्वितीयपक्ष का पहिले ही खण्डन किया है, कि अनादिअनन्त माया-अविद्या है, इस पक्ष को मानने से निर्मोक्षण निर्विशेष ही असिद्ध हो जाता है, तब सविशेष निर्विशेष आदि विभाग ही असिद्ध हो जाते हैं। अनादिसान्त मानने से अविद्या के नाश की निरुक्ति ही नहीं हो सकती। ईश्वर का ज्ञान नित्य और एक होने के कारण उस में पहिला और पिछला इत्यादि भाव बताना अशक्य होने से यदि अनादि को सान्त अर्थात् नाशवान् मानने से प्रपञ्च के अभाव की प्रसक्ति होगी। अतः नाश न होने पर सान्तत्व पक्ष भी - उसीसे असम्भव होता है। वस्तुतः जीवगत अविद्याकल्पित ही मायावादियों के

मत में ईश्वर का बिम्ब माना गया है। सबकी मुक्ति होने पर सर्वांश में अविद्या का नाश हो जाता है, तब बिम्बत्व की निवृत्ति होने से शुद्ध चैतन्यरूप से स्थिति ही उनका सिद्धान्त है। मायावादियों का यह पक्ष तो जीवगत अविद्या के पक्ष का खण्डन करते समय खण्डित हो चुका है।

### अविद्याका स्वरूपविचार

अब अविद्याका स्वरूप विचार करके मायावाद का निराकरण करते हैं। क्या वह अविद्या सत् है, असत् है, सदसत् वा सदसद्विलक्षणा है? प्रथमपक्ष (सत्पक्ष) ठीक नहीं है अनादिमाननेसे उसको अनन्त भी मानना पड़ेगी और तब द्वैतापत्ति हो जानेसे निर्विशेष ब्रह्म सिद्ध नहीं हो सकेगा अनादिसान्त मानने से पूर्वोक्तरीति से प्रपञ्चाभाव की प्रसक्ति हो जायगी अतः उसको सत् मानना अनुचित है।

द्वितीयपक्ष - अविद्याको असत् मानना यह भी उचित नहीं है, क्योंकि वैसा मानने से गगनकुसुम के समान निर्विशेषत्व कल्पना अविद्या से करना असम्भव हो जायगा।

तृतीयपक्ष (सदसत्) भी अनुचित है वैसा मानने से तो शुक्ति में रजत को मानने के समान अविद्या कल्पित ही कहनी पड़ेगी। और वैसी कल्पना करना ही असम्भव है। ब्रह्म के निर्विशेष होने के कारण - ब्रह्म की निर्विशेष अवस्था में जीव ही न होंगे, तब अविद्या के अनादि होने से पूर्वोक्त दोष प्राप्त होता है। यदि आप फिर से अनादिसान्तत्व पक्ष का समर्थन करते हैं, तो वह भी असङ्गत है। क्योंकि जीवगत अविद्या और ब्रह्मगत अविद्या का विचार करते समय उसका उत्तर दे चुके हैं। अर्थात् प्रथम और चरम ज्ञान का नाश हो जाने पर ब्रह्मगत पक्ष में प्रपञ्चाभाव की प्रसक्ति होने पर दोष प्राप्त है। और जीवगतपक्ष में उपर्युक्त प्रकार से अन्योन्याश्रय दोष होने से कल्पकत्व ही असम्भव है।

चौथा पक्ष (सदसद्विलक्षणा) भी अयोग्य है। वैसा मानने से अविद्या से ब्रह्म का अतिरेक न होगा। गीता में कहा है कि - "ब्रह्म अनादिमत्, पर तथा सदसद्विलक्षण है।" इस वाक्य से पूर्वोक्त दोष भी उपस्थित ही है। अतः यह उपाधि पक्ष असङ्गत है। श्रुति में कहीं भी सविशेषब्रह्मका निरूपण करते समय उपाधिपक्ष कहा नहीं है। यदि आप "इन्द्र मायाओं से पुरुरूप होता है।" इत्यादि वाक्य कहेंगे तो केवल इस वाक्य के बल पर आप उपाधिपक्ष का समर्थन

नहीं कर सकेंगे। यह वाक्य मधुब्राह्मण में है। उस में भैत्रेयीब्राह्मण में प्रतिपादित आत्मा का पृथिव्यादि में विद्यमान रहना, अमृतत्व, ब्रह्म का सर्वात्मक होना, आदि वर्णन उपक्रम में है। मध्य में ब्रह्म का स्वरूप कहकर उपसंहार में "सब का अनुभव करनेवाला ब्रह्म यह आत्मा है। उपक्रम और उपसंहार में ब्रह्म की सर्वरूपताका प्रतिपादन माया के बिना ही किया है। मध्य में मन्त्र का व्याख्यान करते समय भी हरि आदि रूप उसी आत्मा के बताये हैं। ब्रह्म को सर्वानुभूत अर्थात् सबका अनुभव करनेवाला कहा है, इस में ब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादन करते समय माया का करणत्व स्वीकार नहीं किया है। यदि माया को कारण माना होता तो पूर्वार्ध में ही "माया से पुरुरूप हुआ" ऐसा भूतकालिक प्रयोग करके वैसा ही व्याख्यान किया होता। इससे प्रतीत होता है कि उपाधिपक्ष असङ्गत है।

### उपास्य ब्रह्म सोपाधिक नहीं है

यदि "जो वाणीसे प्राप्त नहीं है किन्तु वाणी जिससे प्राप्त है वह ब्रह्म है ऐसा तू जान, जिस की तू उपासना करता है वह वैसा नहीं है" इस प्रकार के तलवकार ब्राह्मणोक्त वाक्यों में उपास्यरूप को अब्रह्म कहा है इससे सिद्ध होता है कि आकार मायिक है, ऐसी शङ्का करेंगे, तो वह भी अनुपपन्न होगी। क्योंकि उस वाक्य का जैसा आप अर्थ करते हैं वैसा अर्थ नहीं है। प्रारम्भ में "किसने इच्छाका" इत्यादि वाक्य मन प्रभृति को जिज्ञास्य रूप से उपस्थित करके "श्रोत्रका श्रोत्र है" इत्यादि वाक्यमें जिज्ञास्यका लक्षण कहा है, और बताया गया है कि यदि जीव श्रोत्रादि भावका त्याग कर दे तो मोक्ष को प्राप्त होता है, उक्त लक्षणयुक्त देव नेत्रादिसे प्राप्य नहीं है, इसलिये उसका आदेश नहीं कर सकते, ऐसा कह कर पूर्वोक्त मोक्ष के अभाव में हेतु की अपेक्षा से 'वह ब्रह्म ही कारण है' इस बात का कार्य द्वारा परिचय कराते हुए कहते हैं कि "जो वाणी से प्राप्य नहीं है" इत्यादि। इसका अर्थ यह होता है-

"जो वाणी से अगम्य है, जो वाणी को प्रेरणा करता है विदित और अविदित से विलक्षण है वही ब्रह्म है, ऐसा तू जान, यह वैसा नहीं है, मन आदिको प्रेरणा करते हुए भी विदित और अविदित से विलक्षण नहीं है। मन आदिको प्रेरणा करने पर भी ब्रह्म ज्ञाताज्ञातविलक्षण है" वह किस प्रकार जाना

जाता है उसका प्रकार भी वहाँ कहा है- “जो यह-श्रुति प्रसिद्ध-ब्रह्म है-जिसकी वैदिक लोग उपासना करते हैं वही ब्रह्म है।” इससे ज्ञात होता है कि आप जिस श्रुतिको पूर्वपक्ष में उपस्थित करते हैं उसी श्रुति से सदसद्विलक्षण ब्रह्म सिद्ध होता है। उसके विषय में लेशमात्र भी शङ्का नहीं रहती। यदि श्रुति में उपास्यरूप को अब्रह्म - ब्रह्मभिन्न सिद्ध करके कहा होता “ये जिसकी उपासना करते हैं-वह ब्रह्म नहीं है” तब तो आपके पक्ष का समर्थन हो सकता था पर वैसा न होने से आपकी शङ्का निर्मूल प्रतीत होती है। इससे सिद्ध होता है कि तलवकार श्रुति में जो कहा गया है वह ब्रह्मस्वरूपका परिचय करने के लिये कहा गया है। अतः उपास्य आकारों को मायिक नहीं कह सकते। आप नृसिंहोत्तरतापिनी उपनिषद् के बलपर भी उपास्य रूपको मायिक सिद्ध नहीं कर सकते; उसका खण्डन हम आगे चलकर अप्पयदीक्षित के मत का खण्डन करते समय करेंगे ही। दूसरी श्रुतियों से सिद्ध होता है कि उपास्य रूप वास्तविक है, मायिक नहीं है। अतएव व्याससूत्रों में ब्रह्म के लौकिक धर्मों का निषेध करके अलौकिक धर्म प्रतिपादित किये गये हैं। इससे सिद्ध होता है, कि वेद के वाक्यों में परस्पर विरोध नहीं है, मायावादी ही उसका उलटा अर्थ करते हैं।

### भगवान् साकार और निराकार है

नृसिंह तापिनीय श्रुतिसे मायिकाकारकी सिद्धि नहीं हो सकेगी। इसका भी निर्णय हम आगे चलकर - अप्पयदीक्षित के मत का खण्डन करते समय (भ्रान्तशैवनिराकरणवाद में) करेंगे ही। अन्य श्रुतियों से वास्तविक आकार सिद्ध हो जाने पर, प्रतिबिम्बन्याय से मायिकाकारकी सिद्धि भी हो सकती है। भगवान् अनन्तरूप होने से उनका मायिकाकार भी सङ्ग्राह्य है। मायावाद के द्वारा आकारका खण्डन करनेवाले जो अवास्तविक हेतु उपस्थित किये गये हैं उनका खण्डन “विद्वन्मण्डन” में किया गया है। अतः यहाँ विस्तार करना अनावश्यक है। अत एव श्रुतियों में स्थान स्थान पर ब्रह्म को विरुद्धधर्माश्रय ही कहा है। तदनुसार व्यासजीने भी अपने सूत्रों में परमात्माको स्थान स्थान पर उभयलिङ्ग-सधर्मक एवं निर्धर्मक-ही सिद्ध किया है। यह <sup>१</sup>उभयलिङ्गपक्ष स्थिति से एवं अवच्छेदकभेदसे नहीं है। <sup>२</sup> उभयलिङ्गाधिकरण में समझाया गया है, कि भगवान् सर्वत्र ही सधर्मक एवं निर्धर्मक है। <sup>३</sup> न भेदात्

१ देखो व्याससूत्र ‘न स्थानतोऽपि परस्योभयतिङ्गं सर्वत्र हि’ इत्यादि तृतीयाध्याय के द्वितीयपाद के ११ वे सूत्र से २२ तक। २ व्या. सू० २।३।११॥ ३ न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वयनात्।

इस सूत्रांशसे उपाधियुक्त एवं निरूपाधिक ऐसा भेद स्वीकार करने पर उभयलिङ्ग ब्रह्म हो सकेगा। वह वस्तुतः उभयलिङ्ग नहीं है - ऐसी शङ्का करके <sup>१</sup> ‘न प्रत्येकमतद्वयनात्’ इस अंश से तथा अग्रिम <sup>२</sup> सूत्र से “यह वही है जो यह है” इस मधुविद्याकी श्रुति के अनुसार एवं “यहां <sup>३</sup> कुछ भी अनेक (नाना) नहीं है” इस कण्वशाखा की श्रुति से विरोध प्राप्त होने पर भेद कहना अशक्य है, इस प्रकार उस उपाधि का निरासकर एक ब्रह्म ही उभयलिङ्ग अर्थात् विरुद्धधर्माश्रय है, इस प्रकार विषयका विचारकर <sup>४</sup> ‘अरूपके जैसा है इत्यादि पांच सूत्रों से एक देशी मत से समाधान करते हैं। वह इस प्रकार है:-

(१) ‘अरूपवदेवहि’ इस सूत्र से प्रपञ्च-जगत्-ब्रह्मकार्य है, ब्रह्मकारण है, अतः कारणरूप भी सालक्षण्य-सधर्मक-होना चाहिये, किन्तु ब्रह्मप्रकरण में ब्रह्म के धर्म ही मुख्य होने के कारण मुख्यब्रह्म से इतर (गौणब्रह्म) में ब्रह्मधर्मों का उपचार मान लिया जाय, ऐसा निर्धार किया जाने पर मुख्यब्रह्म सर्व व्यवहारातीत हो जाने से शास्त्र ही विफल होगा ऐसी शङ्का कर के-

(२) द्वितीय<sup>५</sup> सूत्र से जैसे सूर्यका प्रकाश सूर्य के आधीन है, वैसे ही ब्रह्म के धर्म भी ब्रह्म के आविर्भाव के आधीन होने से परब्रह्म के विषय में शास्त्र का व्यवहार हो सकेगा, अतः शास्त्रविफल न होगा, ऐसा कहकर -

(३) <sup>६</sup> तृतीयसूत्रसे “जैसे सैन्धव बाहर भीतर सब ही रसघन है, वैसे ही वह परब्रह्म भी <sup>७</sup> प्रज्ञानघन है, वह इन महाभूतों में से ही प्रगट होकर उन्हीं में प्रवेश करता है।” इत्यादि श्रुति में प्रज्ञानघनत्वका ही निरूपण होने से ब्रह्म के अलौकिक अवयव हैं, ऐसी कल्पना न करनी चाहिये। अलौकिक क्रिया तो है ही। उक्त श्रुतिवाक्य में धर्ममात्र का अभाव कहा गया है, जिससे क्रिया भी नहीं है, ऐसा कहा जाय। <sup>८</sup> “विज्ञानघन ही इन (पंच) भूतों से उठकर उन्हीं को अनुप्रविष्ट-लीन-करता है” यह वाक्य वेद निःशरायतन ब्रह्म की क्रिया कहता है। इससे ज्ञात होता है, कि भगवान् को हमारे समान इन्द्रियों नहीं है, किन्तु वह सर्वाकार होने के कारण उसमें आकार की प्रतीति होनी योग्य ही है। “वह <sup>९</sup> सम्पूर्ण प्रज्ञानघन है” यहाँ सम्पूर्ण (कृत्स्न) पद से भगवान् के सर्वाकार की प्राप्ति होती है। यदि ऐसा न हो तो कृत्स्नपद ही व्यर्थ हो जायेगा। अतः “जैसे <sup>१०</sup> सैन्धव

१ अपि चैवमेक ॥३॥२॥१३॥ २ अयमेव स योऽयम्। ३ नेह नानास्ति किञ्चन। ४ अरूपवदेवहि तत्प्रधानत्वात्। ५ प्रकाशवद्यावैयर्थ्यात्। ६ आह च तन्मात्रम्। ७ अरे इदं महद्भूतमनन्तपारं कृत्स्नः प्रज्ञानघनः। ८ विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति। ९ कृत्स्नः प्रज्ञानघनः। १० यथा सैन्धवः सर्वः परिदृश्यमानो रसघनः।

सब ही-सब प्रकार से -देखने में रसघन है" वैसे ही ब्रह्म भी सब तरह से - जितना दीखता है - अनुभूत होता है - सब ही प्रज्ञानघन है, उस में कुछ भी कार्यरूपता नहीं है, ऐसा कहकर

(४) "दर्शयति" इस चतुर्थसूत्र से कार्य के प्रकारों का निषेध एवं मूर्तामूर्तक्षेत्रनिषेध का प्रतिपादन करने वाली श्रुति और स्मृतियों से प्रपञ्च के धर्मों का निषेध होजाने से, वे (प्रापञ्चिक) धर्म भगवान् में औपचारिक है-

(५) "अतएव चोपमासूर्यकादिवत्" इस पांचवे सूत्र से उपधाररूप का निर्णय स्वीकार कर के "वह मच्छरके समान छोटा और हाथी के समान बड़ा है" इस श्रुति से उपमा दी गई है" यदि ऐसा न होता तो "उसके समान कोई नहीं है" इस श्रुतिका विरोध हो जाता। समान है और उसके समान नहीं है इस उदाहरण का विरोध जलचन्द्र के दृष्टान्त से निरस्त होजाता है, अतः उसमें कोई दोष नहीं है।

इस प्रकार पांच सूत्रों से एक देशी मत का निरूपण कर के "अम्बुवद्ग्रहणात्" इस सूत्र से अस्वच्छत्व और धर्मत्व से आधाररूप भगवत्प्रतिबिम्ब का ग्रहण करनेवाला न होने से, उस को छोड़कर "वृद्धिहासः" सूत्र से उन उन पदार्थों में अनुप्रवेश के निमित्त की प्रतीति करानेवाला होने पर भगवद्धर्मत्व है ही ऐसा घृतादिके दृष्टान्तसे सिद्धकर "दर्शनाद्य" इस सूत्र से उलूखलबन्धनलीलादि में विरुद्धधर्माश्रय दीख पड़ता है, इस लिये भगवान् में कोई भी अनुपपत्ति नहीं है। फिर "प्रकृतैतावत्त्वं प्रतिषेधति ततोब्रवीति च भूयः" इस सूत्र से सब प्रकार के विरोध का निरास किया है। उक्त सूत्र में इयत्ता का निषेध है न कि धर्मोंका। इयत्ता लौकिक धर्म है। ब्रह्म में अलौकिक धर्म विद्यमान है।

जो लोग "अस्थूलादि" वाक्यों का अर्थ निर्विशेष ब्रह्म करते हैं वह भी अनुचित ही है। अस्थूलादि वाक्यों का विचार निर्विशेष का निरास करते समय पहले ही कर चुके हैं। आप परिणाम वाद पर भी दोष नहीं लगा सकते। क्योंकि "आत्मकृतेः परिणामात्" इत्यादि व्यास सूत्रों में उसका समर्थन किया गया है।

१. नेति नेति और न तत्तत्रासदुच्यते। २. समो मशकेन समो नागेन। ३. न तत्समश्चानभ्यधिकश्च दृश्यते। ४. यहाँ ग्रन्थकार अरुणवदेव हि तत्प्रधानत्वात् इस सूत्रमें कुछ शास्त्रार्थ एवं अविकृत परिणामवादका निरूपण करते हैं। वह सामान्य व्यक्तियों को नीरस प्रतीत होगा। अतः उसका अनुवाद न छोड़ दिया है। पण्डितों के लिये हमने इस शास्त्रार्थका विस्तार नारायणोपनिषद्वाक्यकी "किरणावली" नामक टीकामें दिया है।

उसमें सुवर्णादि के समान अविकृतपरिणामवाद सिद्ध ही है। ब्रह्म उपनिषत्प्रतिपाद्य होने के कारण यदि उसमें युक्तियों का विरोध भी हो जाय, तो वह दूषण नहीं है, प्रत्युत भूषण ही है। अन्यथा निर्विषयक ज्ञान भी असिद्ध हो जायेगा। ज्ञान सविशेष का होता है निर्विशेष का नहीं। ब्रह्म अनेक रूप हो जाता है, यह ब्रह्म का ऐच्छिक नानात्व भी श्रुतिसिद्ध ही है।

### माया भगवन्निर्मित है

"हे नारद ! यह माया मैंने बनाई है, माया के कारण मुझे सर्व धर्मयुक्त को, तू (सहसा) देख नहीं सकता। इत्यादि मोक्ष धर्म में विश्वरूप को धारण करनेवाले साक्षात् नारायण का वाक्य है। इस वाक्य में सर्वधर्मयुक्त भगवान् को माया के कारण लौकिक पुरुष देख नहीं सकते। न कि यह स्वयं सर्वात्मक होने से, सर्वाकार होने से मायिक है। प्रतिबिम्ब पक्ष को भी सिद्धान्त में असङ्गत बताया गया है।

### सिद्धान्त

इस से पूर्णरूपेण सिद्ध होता है कि श्रुतियों में वास्तविक ब्रह्म के माहात्म्य (महिमा) को ही कहा गया है। और ब्रह्म की वास्तविक महिमा का प्रतिपादन करनेवाले वेदान्त (उपनिषद्) ब्रह्मपरक हैं। दूसरी विद्याओं का विचार अप्रासङ्गिक होनेके कारण यहाँ नहीं किया जाता।

उपर्युक्त सब प्रमाणोंसे भली प्रकार सिद्ध होता है कि वेदों में उपाधि रहित ब्रह्म की महिमा का ही वर्णन है।

॥ इति वेदान्ततात्पर्यनिरूपणम् ॥



## श्रीमद्भगवद्भवनवैश्वानरावतारश्रीवल्गाचार्यमहाप्रभुपूज्यपादप्रणीतम् विवेकधैर्याश्रयनिरूपण

श्रीश्यामलसुत श्रीव्रजराजचरणविरचिता विवृतिः ।

अनुवादक : श्री हरिशंकर शास्त्री, मी. शा. वे. वि. M.R.A.S.

यत्प्राप्तिमात्रतो नूनं रतिः स्याद् गोकुलाधिपे ।

स श्रीमदाचार्यपादरेणुर्मह्यं प्रसीदतु ॥१॥

जिसकी प्राप्ति से ही गोकुल के अधिपति श्रीकृष्णचन्द्र में निश्चय रति होती है वह श्रीमहाप्रभुजी के चरणारविन्दका रेणु मुझ पर प्रसन्न होवे ।

श्रीमदाचार्यचरणों ने तत्त्वदीपनिबन्ध में वेदप्रतिपादित कर्म, ज्ञान एवं भक्तिमार्ग का भलीभाँति विवेचन किया है, तथापि कलियुग में वे दुःसाध्य हैं, अतः उनके अनुसार आचरण करने में जीव असमर्थ हैं, ऐसा जानकर संक्षेप से शरणमार्ग का अपने चित्त में विचार किया । निबन्ध में 'जगन्नाथे विडुले च' (सर्व ० २५३) इत्यादि कारिका से जो प्रपत्ति-शरण-वर्ग का \* उपदेश किया है, उसी का विस्तृत विवेचन करते हुए पूर्वोक्त तीनों मार्गों का यह शरणमार्ग उपकारक है ऐसा बोध कराते हुए श्रीमदाचार्यचरण विवेक एवं धैर्य से आश्रय की सिद्धि होती है, ऐसा बोध कराने के हेतु आश्रय के साधनरूप विवेक एवं धैर्य की रक्षा करने की आज्ञा देते हैं । अथवा यों कहिये कि विवेक एवं धैर्य रक्षा की आवश्यकता का प्रथम श्लोक से बोध कराते हैं :-

विवेकधैर्यं सततं रक्षणीये तथाऽऽश्रयः ।

विवेक एवं धैर्य की निरन्तर रक्षा करना चाहिये । उस प्रकार रक्षा करे कि जिससे आश्रय सिद्ध हो ।

### रक्षा की आवश्यकता

विवेक एवं धैर्य की रक्षा करना आवश्यक है । आवश्यकता को दिखाने के

\* एकाकी, निःस्पृह एवं शान्तचित्तवाला पुरुष श्रीकृष्ण में तत्पर होकर पर्यटन करे, अथवा गृहधनादि का त्याग करे, अथवा उन का श्रीकृष्ण की सेवा में विनियोग करे, तथा श्रीभागवत के पाठ में तत्पर रहे इत्यादि विविध प्रकार बताकर भगवत्परायण होने को कहा गया है । 'जगन्नाथे' इत्यादि वाक्यों में कहा है कि, यदि इस प्रकार से भी प्रपत्ति प्राप्त न हो, तो श्रीजगन्नाथजी, श्रीविडुलनाथजी, श्रीरङ्गजी आदि स्थानों में जहाँ कि पूजाप्रवाह सिद्ध हो सके, वहाँ, अर्थात् भगवत्सन्निधि में अन्याश्रय रहित होकर रहे । इस प्रकार प्रपत्ति-शरणमार्ग का बोध कराया है । इसी का विवेकधैर्याश्रयग्रन्थ में विस्तार है ।

लिये ही आचार्यचरणों ने मूल में रक्षणीय शब्द की योजना की है । इनका रक्षण करने की आवश्यकता है, अतएव निरन्तर रक्षा करने को कहा है । इससे समझना चाहिये कि आश्रय के अनन्तर भी इनकी रक्षा उचित रूप से की जाय ।

### रक्षण का लक्षण

रक्षण शब्द का लक्षण है- "उसके नाशक का निवारण करते हुए उसका पोषण करना" यही अर्थ प्रायः सब सम्प्रदायिकों ने स्वीकृत किया है, अतः उसी के (विवेक और धैर्य के) अनुसन्धानपूर्वक तदनुकूल कृति करनी उचित है ।

इस प्रकार निरन्तर विवेक एवं धैर्य की रक्षा करने से आश्रय सिद्ध होता है । अथवा यों कहिये कि उनकी रक्षा उस प्रकार की जाय कि जिस से आश्रय सिद्ध हो । मूल में 'तथा' शब्द का प्रयोग है । यत् और तत् शब्द का नित्य सम्बन्ध है, अतः यहाँ (सिद्धयेत्) क्रियापद का अध्याहार करना उचित होगा । आश्रय का सिद्ध होना जीव के अधिकार में नहीं है । प्रभु प्रसन्न होकर आश्रय का दान करते हैं, तभी वह सिद्ध होता है । इसी हेतु से मूल में विवेक एवं धैर्य के साथ आश्रय को न लिखकर पृथक् उल्लेख किया है । श्रीसुबोधिनीजी में भी अकूरस्तुति के प्रसङ्ग में कहा है कि "भगवन् ! आप जब कृपाकर अपने अङ्गीकाररूपी व्रत को स्वीकार करें, तभी मेरे समान जीव आपके चरण में शरण हो सकते हैं । मैं निःसाधन हूँ, साधन करने में असमर्थ हूँ, तथापि दीनता से आपके चरण में शरण प्राप्त कर सका, यही आपका अनुग्रह है । असङ्गनों को दुर्लभ ऐसे आपके चरणारविन्द मेरे भाग्य में कहाँ ?"

आश्रय तभी होता है, जब भगवान् इस देहादि सङ्घातको योग्य बनावें, अथवा देहादि सङ्घातका त्याग करावें । देहादि सङ्घातका त्याग अथवा उसको योग्य बनाना जीव की कृति से परे है । यह तभी सम्भव है कि जब भगवान् का अनुग्रह हो । भगवान् का अनुग्रह होने से ही सत्पुरुषों की सेवा में रुचि, भगवान् के स्वरूप को जानने की इच्छा एवं समझने की तत्परता होती है, और यह अन्तिम जन्म भी तभी सिद्ध हो सकता है । अतएव तब सङ्घातों को अनुकूल बनाकर अथवा त्याग कराकर भगवान् ही जीव को शरण का दान करते हैं ।

अब हमको इस बात का भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि आश्रय का विवेक एवं धैर्य के साथ सम्बन्ध किस प्रकार का है ? इस विषय में सम्प्रदायिकों का मत निम्नलिखित है :-

(१) एक मत ऐसा भी प्रचलित है कि सिद्धयेत् इस क्रियापद का अध्याहार न करके वचन विपरिणाम कर रक्षणीय शब्द के साथ ही आश्रय का अन्वय करना उचित

है। अर्थात् विवेक और धैर्य की रक्षा करनी चाहिये तथा आश्रय की भी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि ये तीनों भी भक्तिमार्ग में समानरूप से उपयुक्त हैं। अतएव यहाँ तीनों का प्राधान्य समानरूप से है। जिस प्रकार घट बनाने में दण्डचक्रादि समानरूप से उपयोगी हैं, ठीक उसी प्रकार भक्तिमार्ग में विवेक, धैर्य एवं आश्रय समानरूप से उपकारक होने से यहाँ तीनों का प्राधान्य समानरूपेण समझा जायेगा।

(२) कितने ही टीकाकार कहते हैं कि यहाँ विवेक और धैर्य को एक पद में कहा है तथा आश्रय का पृथक् उपन्यास किया है, अतः यह समझना चाहिये कि विवेक एवं धैर्य आश्रय में कारण हैं। अर्थात् विवेक एवं धैर्य से ही आश्रय सिद्ध होता है।

(३) कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि विवेक, धैर्य और आश्रय इस प्रकार क्रम से तीनों का उपदेश किया गया है। अतः समझना चाहिये कि सेवा में तीनों की उपयोगिता है। सबसे प्रथम विवेक की उपयोगिता है और इसके अनन्तर धैर्य की। आश्रय तो इन दोनों का निर्वाहक है।

### सिद्धान्त

यद्यपि उपर्युक्त तीनों मत योग्य हैं, तथापि समाप्ति में आश्रय को ही फलरूप कहा गया है और उपर्युक्त तीनों के मत में भी आश्रय को ही मुख्य माना है, अतः 'सिद्धयेत्' इस क्रिया का अध्याहार भी निर्दोष है। अध्याहार करने से गौरव नहीं है। वचनविपरिणाम से 'रक्षणीय' के स्थान में 'रक्षणीयः' करने और सहोक्तिरूप अनुषङ्ग मानने में भी समान ही गौरव है।

साथ ही इस बात को भी ध्यान में रखना उचित है कि श्रीमदाचार्यचरण का नाम "पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा" है। अर्थात् आपश्री पृथक्शरणमार्ग का उपदेश करनेवाले हैं। यह नाम तभी सार्थक हो सकता है जबकि आश्रय को स्वतन्त्रफलरूप माना जाय। निबन्ध में आश्रय का सङ्क्षेप से निरूपण किया गया है और श्रीसुबोधिनीजी के अन्यान्य प्रसङ्गों में भक्तिमार्ग में उपकार होनेसे प्रपत्ति-शरणमार्ग का आनुषङ्गिकरूप से व्याख्यान है, स्वतन्त्र रूप से नहीं, अतः श्रीमहाप्रभुजी का नाम 'पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा' उपयुक्त न हो सकेगा। आश्रयको फलरूप मानने से ही यह नाम सार्थक होता है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि आश्रय को भक्ति का अङ्ग माना गया है, उसमें बाधा उपस्थित होगी। क्योंकि आश्रय भक्ति में उपकारक होने से गौणी लक्षणा से उसको फलरूप भक्ति का साधन माना है। भक्तिमार्ग शरणमार्ग से भिन्न नहीं है। क्योंकि "पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद" ग्रन्थ में

"भक्तिमार्ग के कहने से यह पुष्टिमार्ग है" ऐसा कहा है। अतएव दोनों एक ही हैं। किन्तु स्मरण रहे कि शरणमार्ग प्रवाहमार्ग से तो भिन्न ही है। जिस को आश्रय सिद्ध हो गया है, वह निरन्तर भगवान् ही का स्वामित्व स्वीकार करता है, इससे स्पष्ट होता है, कि प्रपत्तिमार्ग मर्यादामार्ग से भी भिन्न है। और पुष्टि में संकीर्ण-मिश्र है। पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ग्रन्थ में भेद प्रयोजक पुष्टि एक ही होने से मिश्र भेदों में आश्रय का मिश्रत्व नहीं कहा गया है। इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की समाप्ति में "कलौ भक्त्यादि मार्गा हि दुःसाध्या इति मे मतिः" कलियुग में भक्त्यादि मार्ग दुःसाध्य हैं, ऐसा कहा है। अतः मानना पड़ेगा कि आश्रय को कर्म, ज्ञान एवं भक्ति में अनुकल्प, प्रतिनिधि, अथवा गौणकल्प कहा है। अतः यह आश्रय पूर्वोक्त तीनों प्रकारों से भिन्न स्वरूप का होने के कारण, कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का सजातीय होने पर भी भक्त्यादिमार्ग का फलसाधन द्वारा उपकारक है। उपर्युक्त अनुकल्प प्रकार श्रीमदाचार्यचरणोंने श्रीमद्भगवत् के स्कं. १ अ. ६ श्लो. २६ में तीन प्रकार के तामस, राजस एवं अविद्यारूप कषायों को दूर करने के अर्थ क्रमशः कर्म, ज्ञान एवं भक्तिमार्ग बताये हैं। इन तीनों मार्गों में अधिकार भिन्न भिन्न प्रकार का होने के कारण एक जीव को एक ही समय में एक साथ तीनों मार्गों का अनुसरण करना अशक्य होने के कारण, इन तीनों में से एक का ही अनुकल्प करना उचित है। अर्थात् तीनों मार्गों में से स्वाधिकारानुसार किसी एक का ही जीव के लिये अनुसरण करना उचित होगा। इसी प्रकार अनुकल्पका वर्णन किया गया है। यदि सब प्रकार अशक्य हों, तो आश्रय ही करना योग्य है।

### आश्रय का अधिकारी कौन है ?

आश्रय का अधिकारी विरक्त होना चाहिये। तथापि श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् ने श्रीमुख से गृहस्थाश्रमी अर्जुन को "अथ तदप्यशक्तोऽसि" तथा "सर्वधर्मान् परित्यज्य" इन वाक्यों में प्रपत्ति अथवा शरणमार्ग का उपदेश किया है। अतएव गृहस्थ भी प्रपत्तिमार्ग का अधिकारी है। एकमात्र विरक्त को ही आश्रय का अधिकारी नहीं कह सकेंगे। "अनुकूल पदार्थ उपकारक भी है" ऐसा पूर्वकाण्ड का न्याय है। यहाँ इतनी विशेषता है कि पूर्वमीमांसा में अनुकूल को केवल फलोपकारक कहा है और यहाँ आश्रय स्वरूपोपकारक एवं फलोपकारक है। अतः यदि न्यायदृष्टि से देखा जाय तो पूर्वटीकाकारों से हमारा मतभेद दृष्टिपथ न होगा। जिनको जैसी स्फूर्ति हुई, वैसा उन्होंने अपना मत प्रतिपादन किया है।

## निबन्धोक्त आश्रय का विस्तार

यह आश्रय निबन्धोक्त प्रपत्तिमार्ग का ही विस्तार है, ऐसा किस आधार पर समझना चाहिये ?

निबन्धीय सर्वनिर्णय प्रकरण की कारिका में कहा गया है, कि जगन्नाथ आदिस्थानों में जहाँ पूजाप्रवाह हो, वहाँ जाकर निवास करे। इस आज्ञा से भगवान् के समीप रहने का आशय स्पष्ट होता है। तात्पर्य यह कि श्रीजगन्नाथादि स्वरूपों में तत्पर रहने का ही नाम शरणमार्ग वा प्रपत्तिमार्ग है। परन्तु निबन्धीय कारिका में भगवत्परत्वका विचार नहीं किया है, उसीका इस ग्रन्थ के द्वारा सविस्तर विवेचन करके आश्रय का समर्थन करते हैं।

प्रपत्तिशब्द का अर्थ है शरण होना। जरासन्धने जिन राजाओं को रोक रक्खा था उन्होंने भगवान् का शरण स्वीकार करते हुए प्रार्थना की है कि "हे कृष्ण ! कृष्ण ! अप्रमेयात्मन् ! हे शरणागत के भय को दूर करनेवाले प्रभो ! हम आपके शरण में आये हैं। क्योंकि आप शरणागत के भय को दूर करनेवाले हैं, हम एक जरासन्ध के ही भय से मुक्त होने की इच्छा से नहीं आये हैं, किन्तु हम को संसार से भी भय लगता है, अतः हमको आप संसार के भय से भी मुक्त करिये। पृथक् बुद्धिवाले बहिर्मुखों को संसार में भय होता है, उससे बचने के लिये हम आपके चरणों में शरण हैं।" इन वाक्यों की सुबोधिनी में शरणगमन का पर्यायवाचक शब्द प्रपत्ति का प्रयोग किया गया है। अतः कहना चाहिये कि निबन्धोक्त मार्ग का ही इस ग्रन्थ में विस्तार है।

अब हम प्रस्तुत विषय का विचार करते हैं। उपर्युक्त प्रकार से विवेक की रक्षा के लिये आज्ञा दी तथा विवेक और धैर्य का फलसम्बन्ध बताया। अब विवेक एवं धैर्य की रक्षा का प्रकार तथा आश्रय, शरणमार्ग एवं उसके स्वरूप को कहने से पूर्व उद्देशानुसार सर्व प्रथम विवेक का स्वरूप कहते हैं :-

विवेकस्तु हरिः सर्व निजेच्छातः करिष्यति ॥१॥

विवेक उसीका नाम है कि सर्व दुःखहर्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र निजेच्छासे ही सर्व लौकिक और अलौकिक कार्य करेंगे, इस प्रकार मन में विचार करना और मुख से उच्चारण करना।

विवेक तो यही है कि सर्व कार्यों में भगवान् की इच्छा के अधीन रहकर सन्तोष करे। यहाँ साम्प्रदायिक विद्वानों का अभिप्राय है कि "विवेकोऽयं समाख्यातः" "एतत्सहनमत्रोक्तम्" "एवमाश्रयणं प्रोक्तम्" इन उपसंहार वाक्यों

को देखने से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ में सामान्य विशेषभाव से इनका स्वरूप मात्र कहा गया है, इस ग्रन्थ का नाम भी "विवेकधैर्याश्रयनिरूपण" है, उसका भी वही अर्थ निकलता है। अतः इस ग्रन्थ में इनका स्वरूप मात्र कहा गया है ऐसा मानना अनुचित न होगा। और यदि ऐसा ही माना जाय तो विवेकादि की रक्षा का जो प्रकार दर्शाया गया है, उस की सिद्धि पूर्वश्लोकार्ध से ही मान लेनी उचित है।

## विवेक शब्द का अर्थ

विवेक शब्द का अर्थ है पृथक् करना अथवा उसका ज्ञान प्राप्त करना। यथा नित्यानित्यवस्तुविवेक। कभी कभी विवेक शब्द का उपयोग स्वभाव के अर्थ में भी किया जाता है। उचित सत्कार करनेवाले को विवेकी कहा जाता है। और विवेक शब्द का अर्थ जलद्रोणी, विचार और एकान्त भी होता है। हमको यहाँ उक्त रुढ़ अर्थों से प्रयोजन नहीं है। किन्तु इनसे भिन्न ही परिभाषा करनी होगी। यहाँ विवेक शब्द की परिभाषा इस प्रकार की गई है, तु शब्द अन्यव्यावर्तक होने से यहाँ विवेक शब्द से सर्वदुःखहर्ता भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र निजेच्छा से ही हमारा सर्वप्रकार लौकिक एवं अलौकिक कार्य सम्पादन करेंगे यही विवेक शब्द का अर्थ विवक्षित है।

## हरि शब्द का अर्थ

भगवान् को हरि कहा जाता है। क्योंकि वे भक्तों के सर्वदुःखों के हर्ता हैं। स्वकीय भक्तों का ऐहिक एवं पारलौकिक सर्व कार्य निजेच्छासे-स्वतन्त्रेच्छासे-लीलेच्छा से अथवा निज जनो की इच्छा से करते हैं। यही विवेक का स्वरूप है। इसी प्रकार विवेक बुद्धि का अनुसन्धान करना उचित है। हरि (भगवान्) गजेन्द्र को मोक्ष देनेवाले हैं। गजेन्द्र जैसे अज्ञ पशु योनि के जीवों के भी दुःखों को हरते हैं। यही रहस्य 'हरि' पद से स्पष्ट होता है।

भगवान् निजेच्छा से ही सर्व कार्य करते हैं। क्योंकि यह जगत् भगवान् की क्रीडास्थली है। 'क्रीडाभाण्डमिदं विश्वम्' यह विश्व भगवान् का क्रीडाभाण्ड अर्थात् रमणस्थल है। क्रीडा के लिये ही इस जगत् की रचना की गई है। 'निज' शब्द तदीयत्वका बोधक है। अज्ञानी भक्त जगत् को भगवान् का क्रीडाभाण्ड नहीं समझ सकेगा, तथापि भगवान् भक्त का कल्याण ही करते हैं। जो भगवान् इस विश्व के स्थिति, लय और प्रादुर्भाव का कारण है, जो भगवान् योगीश्वरों को भी अगम्य मायावाला है, तथा जो तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर) देवों का अधिपति है, वह भगवान् हमारा कल्याण करेगा। इस प्रकार अनुसन्धान करने से भक्त को विवेक का स्वरूप ज्ञान होता है। यदि इससे भी अधिक तदीयत्व की स्फूर्ति हो तो भगवान्



उस प्रभु के अधीन होकर रहते हैं। "मैं भक्तों के अधीन हूँ" "भक्त मेरे में हैं और मैं भक्तों में हूँ" "आत्मासम भगवान् ने भक्तों के लिये ही रमण किया" इत्यादि वाक्य भी भगवान् की भक्ताधीनता को दर्शाते हैं। भगवान् भक्तों का परोक्षहित करते हैं, भगवान् भक्तों के समीप निरन्तर रहते हैं, अपनी स्वरूपमर्यादा का भी उल्लङ्घन करके भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करते हैं। अधिकारानुसार भक्तों का भावी हित भी भगवान् ही करते हैं। भक्तों के और भगवान् के इस प्रकार के सम्बन्ध का निरन्तर स्मरण करना ही विवेक है। भगवान् भक्त का सर्व कार्य सम्पादन करेंगे, भावी अर्थचिन्ता दूर करेंगे। अतीत और वर्तमान चिन्ताओं को दूर करनेवाले वे ही थे, हैं, इस प्रकार विचार करना ही विवेक है ॥१॥

इस प्रकार विवेक का स्वरूपनिरूपण किया। अब उसकी रक्षा का प्रकार कहने से पूर्व कामनाओं की पूर्तिका साधन तथा कामनाओं के नाश करने का विचार किया जाता है। गजेन्द्र एवं ब्रजभक्तों की प्रार्थना के अनुसार प्रार्थना भी करना बाधक है, ऐसा विचार कर उनसे रक्षा करने के लिये प्रार्थना का फलव्यभिचार दर्शाते हैं -

प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात् ।

सर्वत्र तस्य सर्व हि सर्वसामर्थ्यमेव च ॥२॥

प्रार्थितवस्तु प्रदान करने की स्वामी की इच्छा है या नहीं इस अभिप्राय का संशय होने से प्रार्थना करने पर भी उस प्रार्थना से क्या होगा ? क्योंकि सर्वत्र उस भगवान् का वस्तुमात्र है, और उसी का सर्व प्रकार से सामर्थ्य है।

मान लिया जाय कि भक्त भगवान् से प्रार्थना करे। किन्तु प्रार्थित वस्तु प्रदान करने की इच्छा है या नहीं, इसका निर्णय न कर सकने से उस को प्रार्थना से भी क्या लाभ ? गजेन्द्र को भगवान् ने मोक्ष प्रदान किया, वह उसकी प्रार्थना से नहीं, किन्तु अपनी इच्छा से। यदि प्रार्थना से ही मोक्ष प्राप्त होता, तो उस को पूर्व जन्म में ही प्राप्त होना चाहिये था। क्योंकि गजेन्द्र मोक्ष के प्रसंग में कहा है कि "वह पूर्वजन्म में पड़ा हुआ परम मन्त्र का जाप करने लगा" इस वाक्य से ज्ञात होता है कि यदि प्रार्थना से ही इष्ट वस्तु की प्राप्ति होती हो तो उस को पूर्व जन्म में ही मोक्ष का प्राप्त होना वास्तविक था, किन्तु वैसा नहीं हुआ, इससे सिद्ध होता है, कि भगवान् प्रार्थना से मोक्ष नहीं प्रदान करते, किन्तु विचारित मर्यादा की स्थापना करने के लिये भगवान् भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं, जगत् में ऐसा प्रसिद्ध करने के हेतु एवं भगवान् सर्वत्र विराजमान हैं, ऐसा दर्शाने के हेतु स्वेच्छा से मोक्षदान करते हैं,

न कि प्रार्थना से। ब्रजभक्तों को भी स्वेच्छा से ही फल दान किया। यदि प्रार्थना से फल प्रदान करने की इच्छा होती, तो "मुझे कन्धे पर घड़ा के ले जाइये" ऐसा सुनते ही भगवान् अन्तर्धान न हो जाते। क्वचित् प्रार्थना से भगवान् अपेक्षित फल प्रदान न करें, ऐसा माना जाय तो भी कालविलम्ब से और न्यूनाधिक फल प्राप्त होने से वह अन्यथा सिद्ध माना जायेगा। यदि यों कहा जाय कि प्रभु प्रार्थना करने से भी फलदान करते हैं, तो मानना पड़ेगा कि वह प्रार्थना भगवान् के फलदान करने के निश्चय के अनुसार ही की गई होनी चाहिये। संशयग्रस्त प्रार्थना व्यर्थ होती है। इस प्रकार विचार करने से भी ज्ञात होता है कि सर्वत्र भगवान् की इच्छा ही कारणभूत है। और प्रार्थना निमित्तमात्र है। यदि भगवान् को फलदान करने की इच्छा न हो, और प्रार्थना की जाय, तो भक्त की अधीरता को देखकर भगवान् को भी क्रोध होगा, और फलतः वे उस की उपेक्षा ही करेंगे। अतएव प्रार्थना को बाधक समझना उचित है। यहाँ प्रार्थना के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है वह संशयकालीन प्रार्थना के विषय में समझना चाहिये।

जीव अणु होने से अल्पज्ञ होने से - उसके मनोरथ अल्प ही होते हैं, अतः कुब्जा की तरह प्रार्थना करने से भी अल्पफल ही प्राप्त होगा। और अल्पफल के प्राप्त होने से कुबुद्धि अधिक होगी। भगवान् अलौकिक होने से अप्रार्थित वस्तु अधिक परिमाण में प्रदान करते हैं और जिस प्रकार श्रुतिओं को मनोरथ से उपरान्त फल प्राप्त हुआ, उसी प्रकार भक्त भी मनोरथोपरान्त प्राप्त कर सकेगा। अतएव हमें भी कहना पड़ेगा कि संशयग्रस्त प्रार्थना करने से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होगी। यदि प्रार्थना की भी जाय तो भी विवेक के सामर्थ्य का नाश होगा, अतः प्रार्थना न करना ही अच्छा है। इस प्रकार बाधक का विचार कर के विवेक की रक्षा करनी चाहिये। उपर्युक्त प्रकार से समझ सकेंगे कि कामनाओं की पूर्ति के लिये भगवान् के अतिरिक्त अन्य साधन नहीं है। इस प्रकार प्रार्थना ही निष्फल है, तो काम्यकर्मों की निष्फलता के विषय में क्या कहा जाय ? काम्यकर्मों के फल का व्यभिचार होने से और उससे विपरीत अनिष्टकारक परिणाम उपस्थित होने से विदुर ने भगवान् से पूछा था कि "लोक सुख के अर्थ कर्म करते हैं। परन्तु उससे सुख और शान्ति प्राप्त नहीं करते। इस से विपरीत अधिक दुःख भोगते हैं, अतः भगवन् ! कृपा कर मेरे लिये योग्य आज्ञा करिये।"

यदि यथार्थ रीति से वैदिक कर्म करें तो उसका फल अवश्य प्राप्त होता है। उस के फल का व्यभिचार नहीं देखने में आता, ऐसा भी नहीं कह सकेंगे। क्योंकि

दक्षयज्ञादि की तरह कर्म सांगोपांग होना कठिन है। इसका विचार निबन्ध के "कर्मणो गहना गतिः" वाक्य में यथार्थ रीति से किया गया है। वहाँ से देख लेना उचित होगा।

निन्दावाक्यों से और कुब्जा आदि के उदाहरण से प्रार्थना की बाधकता होने पर भी, यदि भगवान् का अभिप्राय समझकर प्रार्थना की जाय, तो वह बाधक नहीं हो सकेगी, ऐसा समझकर अपनी-अभिलाषा को पूर्ण करने के हेतु भगवान् की प्रार्थना करनी ही चाहिये, यह धारणा भी-दोषमूलक है। क्योंकि भगवान् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बाहर और भीतर बिराजमान है, और वस्तुमात्र के ऊपर उसी का स्वामित्व है, तथा यह जगत् उस का क्रीडाभाण्ड है। सर्वत्र सर्वप्रकार का सामर्थ्य भगवान् का ही दृष्टिपथ होता है। श्रुति भगवती आज्ञा करती है कि "भगवान् सर्वत्र है, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्व को वश में रखनेवाला और सर्व के ऊपर शासन करनेवाला है।" अर्थात् वे यदि फलदान करने की इच्छा करेंगे तो उनके सर्वज्ञ होने के कारण वे भक्तों की इच्छा को भी जान लेंगे, और उसी के अनुसार फल प्रदान करेंगे। यदि जीव में भगवद्भक्त फल को भोगने का सामर्थ्य का अभाव देखेंगे तो वे उस प्रकार सामर्थ्य भी प्रदान करेंगे। भक्त की अभिलाषा के अनुसार वे भक्तों के मनोरथों की पूर्ति करते हैं। "भक्तों के समीप भगवान् ने नृत्य किया," "भक्तों को भगवान् ने वैकुण्ठ का दर्शन कराया" इत्यादि वाक्य उपर्युक्त भक्ताधीनता के पोषक हैं। भक्ताधीन भगवान् भक्त को फलप्रदान न करें तो समझना चाहिये कि भगवान् की इच्छा नहीं है। इस प्रकार भगवान् का अभिप्राय समझने के पश्चात् प्रार्थना का अवकाश नहीं रहेगा। अतएव भगवान् के पास प्रार्थना न करना ही उचित ज्ञात होता है। ऐसा विचार करके ही श्रीगुसांईजी ने कहा है कि "जिस प्रकार हम भगवान् के हैं उसी प्रकार भगवान् भी स्वभावतः हमारे हैं, अतः हमको इसलोक की और परलोक की भी चिन्ता नहीं है।" इस प्रकार भगवान् कामनापूरक हैं ऐसा बताकर विवेक की रक्षा का प्रकार कहा है ॥२॥

### गर्वत्याग

अब कामना से विवेक की रक्षा का प्रकार कहते हैं :-

अभिमानश्च सन्त्याज्यः स्वाम्यधीनत्वभावनात्।

मैं स्वामी के-श्रीकृष्ण के-अधीन हूँ ऐसा मानकर अभिमान का त्याग करना चाहिये। अभिमान शब्द का रूढ अर्थ गर्व होता है। और यौगिक अर्थ\* अपने को

\* अभित उभयतो वा योगाभिमाना।

अन्यसे बड़ा मानना है। चित्त में बड़प्पन अथवा पूजनीय बुद्धि का उदय होना ही अभिमान है। लौकिक अलौकिक दोनों प्रकार के अभिमान एवं उनके साधनों का त्याग करना उचित जान पड़ता है। भक्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के अधीन है, इस पराधीनता का विचार कर के गर्व का त्याग करना चाहिये। कामना से ही चित्त में बड़प्पन अथवा पूज्य बनने की बुद्धि उत्पन्न होती है। अपने गुण, कुल एवं प्रशंसाओं पर अनुचित ध्यान देना ही गर्व कहाता है। इनका विचार करनेवालों में ही वैसी कामनाएं दिखाई देती हैं। यदि भक्त समझने लगजाय कि मैं भगवान् के अधीन हूँ, अभिमान करना व्यर्थ है, तो अभिमान की उत्पत्ति ही न होगी। जिन भक्तों को इस प्रकार विचार होता है उनके चित्त में स्वभावतः अभिमान उत्पन्न ही नहीं होता है। उन्नत होजाने के पश्चात् गर्व होता है। परन्तु विचार करना चाहिये कि जिस भगवान् की कृपा से मैं इस प्रकार उन्नत हो सका हूँ, वही भगवान् मेरा अन्य सर्व कार्य सम्पादन करेंगे। उत्कर्ष भी भगवान् के ही हाथों में है। अतः अभिमान को त्याग कर विवेक की रक्षा करना उचित है। भक्तोंमें दासभाव होने के कारण उनमें सहज ही अभिमान उत्पन्न नहीं होता, किन्तु दुःसङ्गादि से होता है। इस समय मैं स्वामी के अधीन हूँ, इस बात का स्मरण करना उचित है। किसी समय भगवान् स्वयं भक्ताधीनत्व को दर्शाते हैं तब, और कभी भक्त को सेवादि करने से भी अभिमान होना सम्भव है। परन्तु स्वामी के अधीन होने का स्मरण मात्र ही अभिमान की उत्पत्ति को रोकता है। भगवान् स्वतन्त्रेच्छावान् है, अतः यदि वे किसी समय शिक्षा-दण्ड करें तो भी स्वाम्यधीनत्व का स्मरण ही खेद नहीं होने देता है। यहाँ अभिमान के त्याग में हेतु स्वाम्यधीनत्व की भावना को बताया है, उस से देहाभिमान का त्याग करने का स्वारस्य प्रकट हो जाता है, तथापि स्वाम्यधीनत्व की भावना से देहाभिमान का भी सेवा में तथा शरणागति में बाधकत्व होने से त्याग करना उचित है। इस प्रकार विवेक की रक्षा का आन्तरप्रकार कहा है। २ १/२

अब बाह्य प्रकार कहते हैं। पूर्वोक्त रीति से गर्व का त्याग कर विवेक की रक्षा करने से विवेकसिद्धिज्ञापक, भगवदाज्ञारूप अवान्तर फल प्राप्त होता है। यदि यह आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा से विरुद्ध हो, तो "उभयतः पाशारज्जुन्याय" से गुरु और भगवान् की आज्ञा दोनों में से किसका आचरण किया जाय, इस शङ्का का समाधान करते हुए प्रयोजक विभाग से आज्ञा के स्वरूपविभाग और विषयविभाग से व्यवस्था देते हैं :-

विशेषतश्चेदाज्ञा स्याद् अन्तःकरणगोचरः ॥३॥

तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दैहिकात्।

श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा से भिन्न भगवान् की आज्ञा हो तो वह आज्ञा अभिप्राय पूर्वक है या नहीं ? केवल परीक्षा के लिये तो आज्ञा नहीं की गई ? इत्यादि का विचार करने के पश्चात् देह के लौकिक सम्बन्ध से रहित होकर आज्ञा का पालन करना उचित है । इस श्लोक में 'स्वामी के अधीन होने से' इस पद की योजना बारबार करनी चाहिये ।

### भगवदाज्ञा का विचार करो

मैं स्वामी के अधीन हूँ, ऐसी भावनापूर्वक जो सेवा की जाय, और उसमें श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा की अपेक्षा अधिकता दर्शानेवाली, अथवा आग्रह को दर्शानेवाली, अथवा प्रतिदिन के नियम से विशेषता दर्शानेवाली पूर्वविलक्षण यदि भगवदाज्ञा हो, तो उसके प्रयोजक का विचार करना चाहिये । यह आज्ञा अन्तःकरण गोचर है या नहीं ? अर्थात् अभिप्रायपूर्वक आज्ञा की गई है या नहीं ? अथवा अन्तःकरण के किसी प्रसङ्ग के उद्देश्य से यह आज्ञा की गई है ? स्वप्न द्वारा अथवा अन्यद्वारा यह आज्ञा नहीं हुई है ? इत्यादि का विचार करना आवश्यक है । यदि यह आज्ञा अभिप्रायपूर्वक अन्तःकरण में प्रकाशित हुई है, और स्वप्नादि की आज्ञा के विषय में आज्ञा के प्रयोजक का विचार करना आवश्यक है । यदि आज्ञा देहसम्बन्धी है तो यह आज्ञा भगवान् ने अभिप्रायपूर्वक नहीं की है, किन्तु परीक्षार्थ की है ऐसा मानकर तदनुसार विशेष कार्यों का आयोजन न करना उचित होगा । परन्तु यह आज्ञा यदि सेवाविषयक है या प्रतिबन्धविनाशक है तो वह अभिप्रायपूर्वक की गई है, ऐसा मानकर तदनुसार कार्यों का आयोजन करना चाहिये । अथवा तीर्थदेशान्तरादि आज्ञा हो तो उसका भी पालन करना चाहिये ।

इस प्रकार बाह्य विवेक की रक्षा, आन्तरविवेक का आचरण एवं दोनों आज्ञाओं का विरोध परिहार किया गया है । इससे पूर्वोक्त सर्व योग्य ही है । क्योंकि पुष्टिमार्ग के अनेक प्रकार भगवदाज्ञा से ही प्रकट होते हैं । सर्व धर्मों का त्याग कर मेरे शरण में आ, 'हे उद्धव ! तू सर्व नोदना (प्रेरणा)ओं को छोड़कर मेरे शरण में आ, अखिल संशयादि को छोड़कर भगवान् का भजन करो' इत्यादि वाक्यों में शरणागति तथा सेवा को सिद्ध करना ही भगवदाज्ञा का तात्पर्य है । 'जो मेरा अनन्यभाव से भजन करते हैं, उनके योगक्षेम का मैं ही निर्वाह करता हूँ ।' इस वाक्य के अनुसार भगवान् ही सर्व प्रकार से निर्वाहक होने से भगवदाज्ञा में किसी प्रकार की शङ्का ही उपस्थित नहीं करनी चाहिये ॥३॥

दैहिक विषय से भिन्न प्रकार की भगवदाज्ञा होने के पश्चात् उस आज्ञा के

अनुसार यदि आचरण न कर सके और किसी प्रकार की आपत्ति उपस्थित हो जाय, तो क्या करना उचित है ? यदि आज्ञा का पालन किया जाय तो आपत्ति उपस्थित होती है, और यदि उसका पालन न करें तो आज्ञाभङ्ग होती है, इस प्रकार उभयतः पाशारज्जुन्याय के उपस्थित होने पर भक्तों को क्या करना उचित है उसका उपाय कहते हैं :-

आपद्गत्यादिकार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा ॥४॥

अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम् ।

विवेकोऽयं समाख्यातः,

जिन कार्यों में आपत्ति प्राप्त होती है वैसे अशक्य कार्यों को सम्पादन करने में आग्रह का त्याग करना उचित है । अनायास सिद्ध हो उतना ही कार्य करना चाहिये । देहसम्बन्धी तथा अन्य कार्यों में सर्वथा आग्रह का त्याग करे । और विहित तथा निषिद्ध कर्मों के परिणाम का विचार करना चाहिये । इस प्रकार विवेक की रक्षा का प्रकार कहा है ।

### हठत्याग

"मैं स्वामी-भगवान्-के अधीन हूँ" इस प्रकार विचारकर जिन में आपत्ति हो वैसे अशक्य कार्यों को सम्पादन करने में अनाग्रहयुक्त होवे । क्योंकि भगवान् का अभिप्राय भक्तों का निर्वाह चलाने का होता है, और यदि भक्त आग्रहपूर्वक किसी कार्य को सम्पादन करेगा तथा उस में आपत्ति आयेगी तो निर्वाह में भी प्रतिबन्ध उपस्थित होगा । अत एव यहाँ उपर्युक्त दोनों आज्ञाओं के तारतम्य का विचार करते हुए प्रतिबन्धक आज्ञा भगवान् को अभिप्रेत नहीं है, किन्तु यह आज्ञा परीक्षार्थ है, ऐसा समझना उचित होगा । "भक्तों के कार्य में कालादि भी प्रतिबन्ध नहीं कर सकते," इससे मानना पड़ेगा कि भक्तों के निर्वाह में आपत्ति करने की इच्छा भगवान् की नहीं है । भगवान् स्वयं कहते हैं कि "जिन्होंने लोकवेद के धर्मों को मेरे अर्थ त्याग किया है वैसे भक्तों को मैं स्वयं धारण करता हूँ ।" अर्थात् भक्तों की रक्षा भगवान् ही करते हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि आपत्ति को उपस्थित करनेवाली आज्ञा भगवान् की आज्ञा नहीं है, किन्तु ऐसी आज्ञाएं परीक्षार्थ की जाती हैं । अत एव ऐसी आज्ञाओं के पालन करने का आग्रह न करना ही उचित है । यदि हठ किया जाय तो उस का परिणाम अनिष्टकारक ही होगा । अर्थात् सेवा में प्रतिबन्ध होगा । अत एव हठ का त्याग अवश्य कर्तव्य है । इस प्रकार आज्ञा के हेतु का विचार करने से अभिमान दूर होगा तथा विवेक की रक्षा भी होगी । हठ करने से विवेक का नाश

होगा। इस प्रकार हठत्याग का उपदेश कर विवेक की रक्षा का द्वितीय साधन कहा।

अब देहसम्बन्धी आज्ञा की व्यवस्था कहते हैं। देहसम्बन्धी तथा देह के सम्बन्ध से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य कार्यों में भी आग्रह न करना चाहिये। स्वतः सिद्ध अथवा अनायास सिद्ध कार्यों को ही होने देना चाहिये। परन्तु जिन कार्यों में सेवा का त्याग कर के प्रयास करना पड़ता है वैसे कार्यों के प्रति उदासीन रहना ही योग्य होगा। यही विवेक की रक्षा है। “मैं भगवान के अधीन हूँ” इस प्रकार विचार करने से ही बुद्धि में विवेक का प्रवेश होता है।

मान लिया कि लौकिक कार्यों में आग्रह न करें। किन्तु वेदविहित कार्यों को तो वेदविधिरूप भगवदाज्ञा होने से उसमें आग्रह रखना उचित है या नहीं?

धर्म और अधर्म अर्थात् विहित कर्म तथा निषिद्ध कर्मों के परिणाम का विचार कर के इन की व्यवस्था करनी उचित है। यथा पौराणिक, स्मृत्युक्त, वैदिक, ये कर्म उत्तरोत्तर बलवान हैं। उसी प्रकार शारीरिक (देहिक), आत्मिक तथा भगवत्सम्बन्धी कार्य भी उत्तरोत्तर बलिष्ठ हैं। इन में भगवद्धर्म का जो पालन किया जाता है उस को बाधा न पहुँचाकर अन्य कार्य करने चाहिये। इस धर्म और अधर्म के विचार में भी “मैं स्वामी के अधीन हूँ” ऐसी बुद्धिपूर्वक विवेक की रक्षा करे।

इस प्रकार विवेचनपूर्वक विवेक दर्शाया है। यही सत्य विवेक है। इसके अतिरिक्त नहीं है। विवेक का विवेचन प्रमाण एवं युक्तिपुरःसर किया गया है ॥४॥

इस प्रकार विवेक का विवेचन कर अब क्रमप्राप्त धैर्य का निरूपण करते हैं :-

धैर्यन्तु विनिरूप्यते ॥५॥

त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सर्वतः सदा।

तक्रवद्देहवद्राग्यं जडवद्गोपभार्यवत् ॥६॥

अब धैर्य का निरूपण किया जाता है। मृत्युपर्यन्त सर्वतः निरन्तर आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार के दुःखों को सहन करना चाहिये। धैर्य को सहन करने में छासवाली रानी के देह की भाँति, जडकी भाँति एवं गोपभार्याओं की भाँति भावना करनी चाहिये।

### धैर्य

पूर्वोक्त प्रकार से विवेक की रक्षा में जिह्वा, उपस्थ आदि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के अर्थ धैर्य की आवश्यकता होने से उस समय धैर्य कह दिया है, पुनश्च यहाँ धैर्य का निरूपण किस लिये किया है? इसके उत्तर में कहना पड़ेगा कि विवेक का स्वरूप हृदयारूढ हो जाने के पश्चात् धैर्य आप ही आप सिद्ध हो जाता है, परन्तु

वह धैर्य के स्वरूप को यथार्थरीत्या समझे बिना अथवा उस की यथार्थ रीति से रक्षा के बिना धैर्य रहता नहीं है, अतः उसके स्वरूप को एवं उस की रक्षा के प्रकार को कहने की आवश्यकता है। वह इस प्रकार है - मृत्युपर्यन्त निरन्तर आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक-कायिक, वाचिक एवं मानसिक काल, कर्म, स्वभाव से होनेवाले धर्म, अर्थ, काम के सम्बन्धवाले तीनों प्रकार के दुःखों को सहन करना, उन की उपेक्षा करना, उन के परिहार के उपायों की योजना के बिना ही उनको भोगना (सहन करना), अनुभव करना, यही धैर्य है।

यहाँ शंका हो सकती है कि भगवद्भक्तों को आधिभौतिक दुःख नहीं होते, और न उनको कामादिजन्य दुःख ही हो सकते हैं; तो फिर वे इनको किस प्रकार सहन करें? इसका उत्तर इस प्रकार है-भगवान् भक्तों की परीक्षा के लिये कालादिको प्रेरणा करते हैं। तब भगवदाज्ञा का भंग होता है, इस भय से कालादिक बाधा करते हैं। क्योंकि “मेरे भय से वायु बहता है” इत्यादि वाक्यों से ज्ञात होता है भगवान् का भय इनको भी है।

परन्तु पुनरपि शंका उपस्थित होती है कि भगवान् सर्वज्ञ हैं उन को परीक्षा करने से क्या प्रयोजन? भगवान् भक्तों पर दया करते हैं, परीक्षार्थ भक्तों को दुःख देना क्या योग्य हो सकता है? इसका उत्तर यों है - ज्ञानमार्ग में सर्वज्ञत्वादि धर्म साधारणच्छा से भगवान् में प्रकट रहते हैं। किन्तु पुष्टिमार्ग में तो विशेष रमणेच्छा में रमणेच्छा के अनुसार ही करते हैं। अर्थात् परीक्षा में पुष्टिमार्ग की रीति से किसी प्रकार की अनुपपत्ति नहीं है। अन्तरंग भक्तों की भी “आपका स्वागत हो, मैं आपका क्या प्रिय करूँ?” इत्यादि वाक्यों से परीक्षा की थी। द्वारकालीला में भी लोकरीति के अनुसार अन्तःपुर में रमण किया है। तथा “भक्त मुझ से अतिरिक्त अन्य को नहीं जानता, और मैं भक्त के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानता हूँ” इत्यादि वाक्यों से भक्तिमार्गीय रीति के अनुसार भगवान् भक्त से अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते हैं। अतः समझना चाहिये कि भक्तिमार्ग में भगवान् बार-बार लोकरीति को दर्शाते हैं। इस लौकिक रीति से अब परीक्षा करना अनुचित नहीं है। अब भक्त को दुःख क्यों दिया जाता है इसका भी उत्तर सुन लीजिये। भगवान् भक्त को साक्षात् स्वरूप का दान करते हैं। साक्षात् स्वरूप के दान के लिये भक्त के धैर्य की परीक्षा करना आवश्यक है। जैसे बालक को पढ़ाने में ताडन “ताडन” नहीं है किन्तु परिणाम में सुख है। उसी प्रकार यह परीक्षार्थ दुःखदान भी “दुःख” नहीं है किन्तु स्वरूपदान में कारण होने से सुखस्वरूप है।

### आधिभौतिक दुःख

धैर्य का स्वरूप कहकर दृष्टान्तपूर्वक उस की रक्षा का प्रकार कहते हैं । छासवाली राजा की भार्या के देह के समान भावना अपने देह में करनी चाहिये । राजभार्या की आख्यायिका इस प्रकार है :-

\* एक रानी का किसी पामर पुरुष के साथ स्नेह हो गया । एक दिन उस ने रानी को अपने साथ देशान्तर में चलने को कहा । रानी ने संकेत किया कि वन में अमुक स्थान में मैं राजा को मारकर आऊँगी । तदनुसार वह उस वन में गया । इस रानी ने घर जाकर राजा का काम तमाम किया, और वन में पहुँचकर देखती है तो जारपति को सांपने काट खाया है । उसको मरा हुआ देखकर वह वन से निकलकर किसी नगर में पहुँची और इधर उधर भटकती हुई भाग्यवशात् वेश्या हो गई । इस अवस्था में अज्ञानवश अपने ही पुत्र के साथ रति की, जब इस बात का उसको ज्ञान हुआ तब वह पश्चात्ताप करके आत्महत्या करने के लिये स्मशान में गई और चिता में बैठ गई । किन्तु चिता का ताप सहन न कर सकने के कारण वहाँ से भागी तो एक गोप मिल गया, उसके साथ रहने लगी । और गोरस बेचकर आजीविका चलाने लगी । एक दिन कई गोपपत्नियों के साथ वह भी छास बेचने के लिये जाती थी । उस समय किसी अचिन्त्य विघ्न के उपस्थित होने पर सबकी मटकियाँ फूट गई उस समय और स्त्रियाँ शोक करने लगीं, तब वह हँसती रही । पूछने पर उसने अपना पूर्ववृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि मैंने कई प्रकार के कष्ट उठाए हैं तो अब मैं छास के लिये क्यों रोने बैदूँ ? इस आख्यायिका से यह शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार उस गोपपत्नी ने स्वदेहपोषण का साधन (छास) के नष्ट होजाने पर दुःख सहन किया, पर शोक न किया, उसी प्रकार आधिभौतिक, लौकिक साधन में उपयोगी पुत्र, धन आदि का नाश होजाने पर भी शोक न करना चाहिये । और उसके परिहार का उपाय न कर के दुःख को ही सहन करना चाहिये । दुःख सहन करने के समय उपर्युक्त आख्यायिका स्मरण में रखनी चाहिए । वैष्णवत्व प्राप्त होने के पश्चात् गृह, धन आदि वस्तुओं का त्याग करना उचित है । निबन्ध में श्रीमदाचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि “यदि गृहादि प्रतिकूल हों तो उसका त्याग करने में दोष नहीं है ।”

अब दूसरा दृष्टान्त कहते हैं । यह देह किसका है ? आधान करनेवाले का,

\* हत्वा नृपं पतिमवेक्ष्य भुजङ्गदहं देशान्तरे विधिवशात् गणिकारिणि जाता ।  
पुत्रं पति समधिगम्य चितां प्रविष्टा शोचामि (नि) गोपगृहिणि कथमद्यतक्रम् ॥

माता का, पितामह का, मातामह का, बलि का, यज्ञ का या अग्नि का ? इस प्रकार विचारने से देह साधारणतया अपना नहीं है, किन्तु अदृष्ट द्वारा हुआ है, अतः माता पिता आदि भी साधारण सम्बन्धी हैं । इस प्रकार चित्त में साधारणता का अनुसन्धान कर अभिमान का त्याग करे । यह दृष्टान्त भौतिक, कायिक, कर्मजन्य एवं आर्थिक दुःख सहन करने के लिये कहा गया है ।

### आध्यात्मिक दुःख

आध्यात्मिक दुःख को सहन करने में दूसरा दृष्टान्त कहते हैं । जैसे जड़भरत को मुक्ति का साधन विद्यमान होने पर भी मृगशरीर प्राप्त होने पर जो दुःख हुआ वह तथा भ्रातृवर्ग, स्त्रीवर्ग का दुःख भद्रकाली के वरदान समय का दुःख और अन्त में रहूँगराजा की शिबिका (पालकी) उठाने तक का दुःख सहन किया । उसी प्रकार भक्त भी आध्यात्मिक दुःख सहन करे । और उस समय जड़भरत के दुःखों का स्मरण करे । लौकिक देह के पश्चात् सेवोपयोगी देह प्राप्त होने में विप्रयोग आदि दुःखों को सहन करने के लिये जड़भरत के दुःखों की भावना करनी उचित है । भावना करने से यह तात्पर्य है कि यह दुःख दूर नहीं हो सकता अतः उसको दूर करने के लिये प्रयत्न न करे ।

### आधिदैविक दुःख

स्वाभाविक अर्थात् आधिदैविक दुःख सहन करने में गोपस्त्रियों का दृष्टान्त कहते हैं । मूल में गोपभार्याशब्द समूहवाचक है । यथा अन्तर्गृहगता गोपसीमन्तिनियों को भगवान् के विरह का दुःख सहन कर पुनरपि ध्यानप्राप्त परमात्मा के सान्निध्यसुख का अनुभव करने पापपुण्य की निवृत्ति होने पर निर्गुण देह प्राप्त करके परमात्मा को प्राप्त हुई । इसी प्रकार मैं भी प्रारब्ध आदि से उत्पन्न हुए दुःखों को सहन कर परमात्मा को प्राप्त करूँगा । इस प्रकार आधिदैविक दुःख को सहन करने के लिए गोपभार्याओं का अनुस्मरण करना उत्तम है ॥६॥

यहाँ एक बात विचारणीय रह जाती है, वह यह कि यदि यदृच्छा से ही दुःख का उपाय प्राप्त हो जाय तो भी दुःख ही सहन करना चाहिये, ऐसा कहा जाय तो दुराग्रह होकर विवेकहानि और आज्ञाभङ्ग होती है । दूसरी ओर से यदि अनायास प्राप्त उपायों से दुःख को दूर होने दिया जाय और स्वयं मौन ग्रहण करे, तो दुःख के अभाव में धैर्यहानि और आज्ञाभङ्ग होती है, ऐसी उभयतःपाशारज्जुवत् स्थिति में क्या करना उचित है ?

प्रतीकारो यदुच्छातः सिद्धश्चेन्नाग्रही भवेत् ।

भार्यादीनां तथान्येषामसतश्चाक्रमं सहेत् ॥७॥

भगवदिच्छासे ही यदि दुःखनिवारण का उपाय प्राप्त हो जाय तो दुराग्रही न होवें । स्त्रीपुत्रादि एवं तटस्थों के आक्रमण को सहन करे । अर्थात् भगवदिच्छा से बिना किसी प्रकार के प्रयत्न से ही दुःख दूर होता हो तो फिर दुःख सहन कर धैर्य की रक्षा का दुराग्रह भी न करना ही उचित होगा । इस प्रकार दुराग्रह (निन्दित आग्रह) का त्याग करने से धैर्य की सिद्धि होती है । और भगवदिच्छा का अनुसन्धान होने से विवेक भी सिद्ध होता है । तात्पर्य यह कि विवेक और धैर्य ये दोनों आज्ञापूर्वक होने के कारण उभय आज्ञाओं का इस में उल्लङ्घन भी न होम्प ।

### उपायों की योजना

अथवा इस प्रकार योजना करे । जडभरत की तरह अथवा गोपभार्याओं की तरह दुःख निवारण के उपाय भगवान् की ही इच्छा से प्राप्त होने पर दुराग्रह न करके उन उपायों की योजना करे । जडभरत ने भगवदिच्छा से रहगुण राजा से सम्वाद होने पर शिबिका (पालकी) उठाने में आग्रह नहीं किया । इसी प्रकार रास में भी गोपीजनों ने विरहताप के समय में भगवदिच्छा से गुणगान, स्मरण एवं रूपदर्शन इत्यादि उपाय प्राप्त होने पर दुराग्रही न होकर भगवान् की इच्छा के अनुसार वर्तन किया । उसी प्रकार हम को भी स्वाधिकारानुसार दुःख निवर्तक उपाय की भगवदिच्छा से प्राप्ति होने पर आग्रही न होना चाहिये । तीव्र ताप (दुःख) के समय में शीघ्रता से आश्रय का दान करने के लिये स्वयं भगवान् ही दुःख दूर करने के उपायों को बताते हैं और क्वचित् नहीं भी बताते । अत एव भगवदिच्छा पर भी आधार करके स्वयं उन उपायों के लिये कुछ भी प्रयत्न न करे, तो भगवान् की अनिच्छा होने पर भी उपायों की योजना की जाय तो भगवान् की इच्छा के विरुद्ध होने के कारण कोप से विपरीत परिणाम भी उत्पन्न हो सकता है ।

अब कायिक रक्षा के साधन का उपाय कहते हैं । भार्या शब्द से यहाँ उस के गणसहित ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये । अर्थात् भरण पोषण करने योग्य स्त्री आदि के अतिक्रमों को भी सहन करे । विभक्त एवं अविभक्त बन्धुओं के भी अतिक्रमों (अपमान) को सहन करना चाहिये । उसी प्रकार दुर्जनों के भी आक्रमणों को सहन करे । यहाँ असतः शब्द को भिन्न कहने से यह सूचित करते हैं कि भार्या बन्धु आदि की अपेक्षा दुर्जनों का अतिक्रमण दुःसह होता है । “मैं दुर्जन के आक्रमण को दुःसह मानता हूँ” इस वाक्य से उसकी दुःसहता निरन्तर होती है यह स्पष्ट करके बताया है ।

इन लोगों का तिरस्कार, भक्त को सहन करना ही चाहिये, इतना ही नहीं यदि वे लात भी मारें तो उसे भी सहन करे\* । इस प्रकार तीनों (भार्यादि, अन्य एवं असत् अर्थात् दुर्जन) के आक्रमण को सहन करने को कहा है । यदि ये सेवा में प्रतिकूल हों तो उनका त्याग करे और तत्पश्चात् दुःख सहें । और यदि विवेक की रक्षा में ही बाधक हों, सेवा में बाधक न हों तो उनका तिरस्कार सहन करे । ऐसा ही प्रकार निबन्ध में भी बताया है । “भगवान् सर्व में विराजते है, ऐसी श्रीकृष्ण-भावना से सर्व प्रकार के कटुवचनों को सहन करे” क्योंकि भगवान् स्वयं उसके हृदय में विराजित होकर उस से तिरस्कारव्यंजक वाक्यों का उच्चारण करा कर हमको उपदेश देते हैं ॥७॥

इस प्रकार तिरस्कार को सहन करने का उपदेश घर में स्थिति करने के हेतु किया गया और घर में स्थिति करनेवाले को इन्द्रिय सम्बन्धी-कार्य अवश्य ही करने पड़ते हैं । इन्द्रियसम्बन्धी कार्यों को करने से अशक्ति (भगवद्भक्ति में असमर्थता) होकर धैर्यस्वरूप और सामर्थ्य का नाश होना संभव है । इस प्रकार धैर्य और सामर्थ्य का नाश न हो इसलिये धैर्यरक्षा का द्वितीय साधन बताते हैं-

स्वयमिन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसात्यजेत् ।

अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात् ॥८॥

इन्द्रियों के कार्यों को मनसा, वाचा, कर्मणा स्वयं ही छोड़ना चाहिये । स्वभाव और इन्द्रियों को जीतने में असमर्थ पुरुष भी अपनी असमर्थता का विचार करके उन कार्यों को त्याग दें, जिनसे कि इन्द्रियों का उत्तेजित होना सम्भव है ।

भक्त स्वयं ही आग्रहपूर्वक इन्द्रियों के कार्यों को जिनमें ज्ञानक्रिया प्रधान है ऐसे भोगों को भी मन, वाणी एवं कर्म से छोड़ दें । खेल में भी उनका स्वीकार न करे, क्योंकि इन्द्रियकार्य अत्यन्त बाधक है । “विषयों का ध्यान करनेवाले पुरुष को विषयों का सङ्ग होता है” गीता के इस वाक्य से उनकी बाधकता का स्पष्ट ज्ञान होता है । भोग्य पदार्थों का स्वीकार न करना कायिक त्याग है । निस्पृह होना मानसिक त्याग है । यहाँ ऐसी शङ्का भी न करनी चाहिये कि आग्रह पूर्वक त्याग करने से विवेक की हानि होगी । क्योंकि आग्रह का उपभोग्य वस्तुओं में ही समावेश हो जाने से विवेकभङ्ग न होगा ।

\* यहाँ सहनशीलता का उपदेश किया गया है, न कि कायरता का । भक्त को भगवान् की इच्छा एवं आज्ञा का पूर्णतः प्रकार से विचार करना चाहिये । भगवान् यदि परीक्षार्थ दुःख दान करें और भक्त उसको सहन न कर सके तो धैर्यभङ्ग होता है । धैर्य का अर्थ हाथ पर हाथ धरकर बैठजाना नहीं है । ऐसा करना कायरता है । दुःख की अवस्था में क्या करना चाहिये इस का निर्णय आगे चलकर होगा ।

अब यहाँ शङ्का होती है कि मूल श्लोक में स्वयं भोग के साधनों का त्याग करने को कहा है। अर्थात् स्वयं ऐसा कोई प्रयत्न न करे, किन्तु यदृच्छा से (अनायास) जो प्राप्त हो जाय उसका त्याग न करना चाहिये ऐसा ज्ञान होता है। यदि अनायास प्राप्त होनेवाले भोग का त्याग किया जाय तो शरीर यात्रा का निर्वाह न हो सकेगा और साधन करने की शक्ति का नाश हो जायगा। और यदि भोगों का त्याग न किया जाय तो भोग विषयरूप होने से बन्धन करने का उनका स्वभाव इन्द्रियों को आकर्षित करता है। और विषयाकृष्ट इन्द्रियों से परिणाम में क्रमशः सर्वनाश का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। विषयों से बचने के लिये इस समय स्वभाव पर विजय प्राप्त करना भी अशक्य है। क्योंकि आरम्भदशा में इन्द्रियों के स्वभाव पर विजय प्राप्त करने की सामर्थ्य का अभाव रहता है। स्वभाव विजय यानी पराक्रम। पराक्रम शूरता का द्योतक है। अब ऐसी अवस्था में हमको किस प्रकार धैर्य की रक्षा करनी चाहिये ?

इसका समाधान निम्न लिखित प्रकार से हो सकता है। स्वभाव और इन्द्रियों को जीतने में असमर्थ पुरुष को भी असामर्थ्य भावना से इन्द्रिय के कार्यरूप भोगों का अवश्य त्याग करना चाहिये। मैं क्या करूँ ? मैं मन्दभागी हूँ, असमर्थ हूँ मुझसे इतनी सी आज्ञा का भी पालन नहीं हो सकता। इत्यादि प्रकार से भावना करते करते भोगों का त्याग अवश्य कर्तव्य है। इस प्रकार यत्न करनेवाले को ग्लानि होने से इन्द्रियों की तीव्रता शान्त होगी और क्रमशः स्वविषयों से आकृष्ट होने पर भी धैर्य की सिद्धि होगी।

यदि इतना भी न कर सके तो उसके लिये उपायान्तर का आयोजन करते हैं—

अशक्ये हरिरेवास्ति, सर्वमाश्रयतो भवेत्।

एतत्सहनमत्रोक्तम्,

इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना अशक्य होने पर भी सर्व दुःखों को हरनेवाले भगवान की ही शरण है ऐसा मानना चाहिये। क्योंकि शरण से ही सर्व कार्य सिद्ध होते हैं। इस प्रकार धैर्य का निरूपण किया गया है।

### अशक्य भी सुशक्य होता है

इन्द्रियनिग्रह करने में जब असमर्थ हो जाय तब दयामय भगवान् के शरण का विचार करे। क्या शरण के उपदेश से ही सिद्धि होती है ? हाँ, अवश्य ही शरण से सिद्धि होगी। भगवान् के आश्रय से सब कुछ सिद्ध होता है। 'सर्वधर्मान्

परित्यज्य' इस वाक्य से भगवान् का शरण ग्रहण करने से वे सब प्रकार के पापों से बचाते हैं, साथ ही शोक के निवारणपूर्वक आश्रय से सब कुछ सिद्ध होता है।

इस प्रकार सपरिकर धैर्य का निरूपण करके उपसंहार में धैर्य के अनन्तर आश्रय का निरूपण करेंगे, यह सूचन करने के लिये 'इस प्रकार धैर्य कहा' ऐसा कहते हैं। शरणमार्ग में साधनपूर्वक धैर्य कहा। अर्थात् जब धैर्य की रक्षा करने में असमर्थ हो जाय तब भगवान् का ही शरण है, इस प्रकार आश्रय शरण धैर्य के प्रकरण में कहने से वह आश्रय भी धैर्यरूप ही है। यहाँ आश्रय का स्वरूप बताने में नहीं आया है।

अब क्रमप्राप्त प्रधानरूप आश्रय का निरूपण करते हैं। भगवान् की शरण जाने की आज्ञा से ही आश्रय के स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा। अतः पुनः सपरिकर आश्रय का निरूपण करते हैं। आश्रय का अर्थ है आधार। यह योगरूढ अर्थ है। आश्रय यानी सेवा। यह यौगिक अर्थ है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है। 'आ' आसमन्तात् 'श्रयणं' सेवनं अर्थात् 'चारों ओर से सेवन करना'। यह आश्रय का पर्याय हुआ। इन दोनों में से यहाँ किस अर्थ का अनुसरण करना उचित है ?

आश्रयोऽतो निरूप्यते ॥९॥

ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः।

दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे ॥१०॥

भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तेश्चातिक्रमे कृते।

अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः ॥११॥

अहङ्कारकृते चैव पोष्यपोषणरक्षणे।

पोष्यातिक्रमणे चैव तथाऽन्तेवास्यतिक्रमे ॥१२॥

अलौकिकमनः सिद्धौ सर्वार्थे शरणं हरिः।

एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् ॥१३॥

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव वा।

प्रार्थनाकार्यमात्रेऽपि तथान्यत्र दिवर्जयेत् ॥१४॥

अविद्यासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकरस्तु सः।

ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्ममः ॥१५॥

यथा कथञ्चित् कार्याणि कुर्यादुद्यावचान्यपि।

किं वा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद्धरिम् ॥१६॥

एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम्।

अब आश्रय का निरूपण किया जाता है। इस लोकसम्बन्धी और

परलोकसम्बन्धी सर्व प्रकार के दुःखों को हरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ही शरण है। दुःखों को दूर करने के लिये तथा सेवा में जो प्रतिबन्धक हों उन में, भय में, लौकिक तथा अलौकिक काम के पूर्ण करने में, अथवा मनोरथों की पूर्ति न हो तो, भक्त का द्रोह हो जाने पर, भक्तों के द्वारा अपमानित होने पर, जीव की कृति से साध्य एवं असाध्य ऐसे सर्व कार्यों में सर्व प्रकार से भगवान् की ही शरण है। अहङ्कार हो जाने पर, स्त्रीपुत्रादि के भरणपोषण करने में अथवा इन के तिरस्कार करने पर मन को अलौकिक बनाने में तथा सर्व पुरुषार्थों को सिद्ध करने में भगवान् श्रीकृष्ण की ही शरण है, ऐसा चित्त में विचारे तथा वाणी से रटन करे। अन्य देव का भजन अथवा देवतान्तर के मन्दिर में चलकर न जावे। इतना ही नहीं परन्तु अन्यदेव की प्रार्थना भी न करे। भगवान् पर अविश्वास न करे, क्योंकि वह सर्वथा बाधक है। अविश्वास में ब्रह्मास्त्र एवं चातक पक्षी की भावना करनी (ब्रह्मास्त्र की आख्यायिका टीका में की जायेगी,) और अहन्ताममता का त्याग कर प्राप्त परिस्थिति के अनुसार आचरण करे। अलौकिक तथा लौकिक (व्यवहारोपयोगी) कार्यों को भी यथाशक्ति करे। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, यावत्कार्यों में श्रीहरि के शरण का ही विचार किया जाना चाहिये। इस प्रकार सबको सर्वकाल में हितकारी शरण (आश्रय) कहा है।

### ‘हरि’ और ‘शरण’ की व्याख्या

“मेरा स्मरण करनेवाले के पापों को मैं हरता हूँ, यज्ञ में हवि के भाग को ग्रहण करता हूँ, और मुझे रंग भी हरित ही प्रिय है, अतः मैं हरि कहलाता हूँ।” इस प्रकार महाभारत में भगवद्वाक्य होने से स्मरण करनेवाले के पापों को और पापों के फल को दोनों को हरनेवाले सर्व देवों के आत्मरूप, सब देवों के नियामक, स्वयं श्यामवर्ण श्रीपुरुषोत्तम ‘हरि’ हैं। ‘श्यामाच्छबलम्’ इस श्रुति में भगवान् को श्यामवर्ण कहा है। ऐसे श्यामवर्ण भगवान् इस जन्मसम्बन्धी कार्यों में, फलभोग में, अपने मन से इच्छित सेवादि साधनों में, दूसरे (आगामी) जन्म के सुखदुःख के फलोपभोग में, अपने मन से इच्छित सेवादि साधनों में, तथा सेवा के साधनों के सम्पादन करने में, सर्वथा यह श्रीहरि ही हमारी शरण है। शरण शब्द के रक्षक, घर तथा वधके समय रक्षा करनेवाला इतने अर्थ होते हैं। इन सब अर्थों का स्वरूप भगवान् ही है अर्थात् उन सब प्रमाणों में से (अनेक प्रकार की भूलों से) बचानेवाले भगवान् श्रीहरि श्रीकृष्णचन्द्र हैं। तत्तत्स्थलों में भगवान् गृहरूप हैं और तत्तत्प्रतिबन्धों से निवृत्त करते हैं। तत्तत्स्थलों में अर्थात् सर्व स्थान में भगवान् वध-नाश-से भी बचाते हैं।

इस प्रकार निरन्तर अनुसन्धान करना उचित जान पड़ता है। उसका नाम ही आश्रय है। अतः यहाँ पर चित्त की भगवान् में एकतानतारूपी सेवा को ही आश्रय कहा है। अन्य टीकाकारोंने भी “मेरा आश्रय लेकर जो यत्न करते हैं,” तथा “मेरा आश्रय लेकर पापयोनिवाले स्त्री, वैश्य तथा शूद्र भी श्रेष्ठ भक्ति को प्राप्त करते हैं।” इन वाक्यों में चित्त की एकतानतारूप अन्याश्रय के त्यागपूर्वक भगवच्छरणागति को ही आश्रय कहा है। श्रीरामानुजाचार्यजी ने भी “उसी के शरण जा” इस वाक्यानुसार भगवदनुवर्तन अर्थात् भगवदनुसरण को ही शरणागति मानी है। और शाङ्करभाष्य में तो “तू मेरी शरण आ जा” इस वाक्य से भगवान् से अतिरिक्त का अनुसन्धान न करना ही आश्रय है, ऐसा कहा है। श्रीमधुसूदनजी तो कहते हैं कि “मैं भगवान् का, भगवान् मेरे और मैं ही वह” ऐसे तीन प्रकार से साधन और अभ्यास के परिणाम से भगवान् की शरण है, ऐसा भक्तिपूर्वक अनुसंधान करने को आश्रय कहा है। यहाँ यही स्वीकृत है, किन्तु मायावादनिरासपूर्वक इस प्रकार का भाव अखण्डित रखना ही भगवान् के आश्रय के दान का द्योतक है। किसी समय इस अनुसंधान का विच्छेद हो जाय तो उस को साधन अवस्था समझनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मेरे रक्षक हैं इतना ही ज्ञान हो तो, अभी आश्रय होना शेष है ऐसा मानना चाहिये।

### आश्रय की रक्षा करो

यही आश्रय अनुकल्परूप होता है, भक्ति के अधिकारियों की भक्ति को पोषण करनेवाला मानते हैं। तथा भक्ति को उत्पन्न करनेवाला, भक्तिमार्ग के पथपर चढ़ानेवाला भक्तिमार्ग में यही अनुकल्प है। इस प्रकार ज्ञान के अधिकारियों को ज्ञान में पोषण करनेवाला यह आश्रय ज्ञानमार्गीय भी होता है। इसी प्रकार कर्मफलरूप वैराग्य का पोषण करनेवाला यह आश्रय कर्ममार्गीय भी होता है।

इस प्रकार आश्रय के स्वरूप का निरूपण करके उसकी रक्षा का प्रकार भी कहते हैं। निम्न लिखित प्रसङ्गों में निरन्तर चित्त में श्रीहरि की शरण की भावना करनी चाहिये। दुःख-हानि में अर्थात् दुःख को दूर करने के लिये श्रीहरि के शरण का विचार करे। इससे दुःख हानि के लिये शरणागत जीव को भगवान् ने शरण का दान दिया है या नहीं, इस अज्ञात संशय से या जीवबुद्धि से उत्पन्न हुए दुःख को दूर करने के विषय में भी श्रीहरि के शरण की भावना करे।

श्रीरघुनाथचरण आज्ञा करते हैं कि दुःख की निवृत्ति करने में भगवान् का आश्रय भूलना न चाहिये। अतः यह उपदेश किया है।



श्रीचाचागोपेशजी-आज्ञा करते हैं कि जो जीव सेवा में प्रवृत्त हो गये हैं उन भक्तिमार्गीय जीवों के दुःखों को दूर करने के उपायों की आज्ञा न होने के कारण उन दुःखों को सहन करने में धैर्य की रक्षा करनी चाहिये, धैर्य की रक्षा करने में चित्त में उद्वेग होने की सम्भावना होने से, उस चित्तोद्वेग को दूर करने को, शरण की भावना के अर्थ में इस आश्रय का निरूपण किया जाता है।

श्रीगोकुलोत्सवजीने इस विषय में कुछ भी विशेष विवरण नहीं किया है। इस प्रकार उपर्युक्त टीकाकारों का आशय उनकी टीकाओं में से ग्रहण करना उचित है।

श्री गोपेशजीने इस प्रसङ्ग में इस प्रकार विशेषता दर्शाई है कि जो आश्रय भक्ति निरूपण करनेवाला है, उसका सपरिकर निरूपण किया जाता है।

श्रीरघुनाथजी तथा श्रीगोकुलोत्सवजीने आश्रय को भक्ति को उत्पन्न करनेवाला तथा उसकी वृद्धि करनेवाला भी कहा है। इस विषय में कुछ भी विरोध नहीं है। क्योंकि श्रीमहाप्रभुजी के मार्ग में वर्णन किये हुए भक्तों का स्वभाव अनेक प्रकार का होने से उन उन भक्तों की रुचि और अधिकार के अनुसार फलसिद्धि के लिये आश्रय के भिन्न भिन्न प्रकार बताये हैं।

(१) पाप में - सेवा आदि में प्रतिबन्धक पाप भाग्यवशात् आ जाँय तो चित्त में निरन्तर शरणभावना करनी चाहिये।

(२) भय में - जीव स्वयं तुच्छ होने के कारण ब्रह्मादि देवों को भी दुर्लभ भगवद्धरणरेणु मुझे किस प्रकार प्राप्त होगी ? ऐसे भय में अथवा प्रत्येक भयप्रसङ्ग में चित्त में शरण की भावना करे।

(३) कामादि की पूर्ति अपूर्ति में - अलौकिक काम जो मुख्य और अमुख्य गुण-गानात्मक मोक्षरूप है, उसकी पूर्ति के लिये, अथवा काम यानी मनोरथ पूर्ण न होने पर चित्त में शरणभावना का होना।

(४) भक्तद्रोह में - अपने कामादि की पूर्ति में, भक्तों का द्रोह हुआ हो तो, अथवा कामादि की पूर्ति अन्यत्र देखने में न आवे तो, अथवा मद से भक्त का अपमान हो जाने पर, अथवा किसी भी कारण से भक्त का अपराध हो जाने पर, चित्त में सदा शरण की भावना करे। मर्यादा में भी अम्बरीष राजा का दुर्वासा मुनिने जो अपराध किया था, उसको दूर करने को मुनिजी समर्थ न हो सके, तो पुष्टिमार्ग में भक्तद्रोहरूपी अपराध हो जाने पर तो वह कैसे दूर हो सकेगा ? ऐसा भक्तद्रोहरूपी

अपराध न हो इसलिये यह उपदेश किया गया है।

(५) भक्ति के अभाव में - स्वयं अपने को या अपने आत्मियों को उत्कट भक्तिभाव प्राप्त न हो अथवा दुःसंग आदि से भक्ति का नाश हो जाने पर चित्त में सदा शरण की भावना कर्तव्य है।

(६) भक्तकृत अतिक्रमण में - यदि कोई भक्त अपमान करे तो उस को सहने के अर्थ में यह उपदेश किया है। भक्त कदापि निमित्त के बिना ही किसी का अपमान नहीं करते हैं, तथापि यदि अपमान कर बैठे तो अपने में ही कुछ दोष है ऐसा मानकर अपने दोषों को दूर करने का प्रयत्न करने के लिये चित्त में शरण भावना होनी आवश्यक है।

(७) अशक्य और सुशक्य में - अपने से न बन सके तथा बन सके ऐसे सब कामों में चित्त में निरन्तर मनसा, वाचा और कर्मणा शरण की भावना ही करता रहे। सुसाध्य कार्यों में भगवान् का स्मरण करने का कारण यह है कि उस कार्य में भी मैंने किया ऐसा अभिमान न हो।

इस प्रकार विस्तारपूर्वक यह उपदेश किया है। विवेक के बिना भी असहाय शूर के आश्रय के द्वारा ही सर्व कार्य सिद्ध होते हैं ऐसा दर्शाया है।

(८) अहङ्कार में - अहङ्काररूपी दोषों को दूर करने में शरणभावना है। अहङ्कार जैसे मद आदि में भी शरण की भावना को न भूल जाय। कारण भावना के बिना अन्य कोई भी उपाय साधक नहीं है।

(९) पोष्यों के, पोषण और रक्षण में - पालन करने योग्य कुटुम्बियों का पोषण और उनकी रक्षा के कार्य को करने से सेवा में प्रतिबन्ध होता है, इसी तरह कुटुम्ब का पोषण और रक्षण सेवापरायण भक्त से नहीं हो सकता है, अतः भक्तों के चित्त में क्लेश होता है। वह दूर करने के लिये शरण की भावना करनी योग्य है।

(१०) पोष्यवर्ग के अतिक्रमण में - पोष्य का अर्थ है। जो भरणपोषण करने योग्य हैं। जिनका निवेदन हो चुका है ऐसे पोष्यों (स्त्रीप्रभृति) से यदि अपमानित होना पड़े, अथवा अपने से उनका तिरस्कार हो जाय तब भी शरण भावना ही उचित है। क्योंकि आसुरभाव के बिना तिरस्कार का सम्भव नहीं है। उन व्यक्तियों में स्थित आसुरभावको दूर करने के लिये उपायान्तर की योजना न करके सदा शरण की भावना ही करे।

(११) विद्यार्थी के अतिक्रमण में - यदि कोई विद्यार्थी अतिक्रमण करे तो उसके ऊपर किये हुए उपकार का स्मरण करके गर्व न करे, किन्तु शरणभावना करे। गर्व से अनिष्ट होने की सम्भावना है, अतः उसकी निवृत्ति के अर्थ यह अलग उपदेश किया है।

(१२) अलौकिक मनःसिद्धि में - "मन दो प्रकार का है। शुद्ध और अशुद्ध। कामसङ्कल्पयुक्त मन अशुद्ध है और कामरहित शुद्ध है।" इस श्रुति से कामसङ्कल्परहित शुद्ध मन सेवा और आश्रय में अनुकूल होता है। अतः चित्त में शरण भावना करे।

(१३) सर्व अर्थ में - पुष्टिमार्गीय सर्व पुरुषार्थों को सिद्ध करने के लिये अतिदीन-भाव से श्रीहरि की शरण विचारणीय है।

इस प्रकार शरण का उपदेश देकर उसकी रक्षा का प्रकार कहते हैं - चित्त में शरणभाव होने से भगवान् आश्रय कराते हैं। आश्रय होने के पश्चात् क्षणमात्र के लिये भी आसुरावेश नहीं होता है। वाणी से बार बार शरण का रटन करने से शरणमार्ग का प्रचार होता है। अतः "श्रीकृष्णः शरणं मम" इस मंत्र का रटन निरन्तर करते रहना चाहिये। अन्य का भगवान् से अतिरिक्त का भजन नहीं करना चाहिये। अन्य देवों की किसी भी कामना की दुराशा से पूजा न करे तथा उनके पास प्रयत्नपूर्वक गमन भी न करे। भगवान् अनन्य भक्तवत्सल हैं। जबतक अन्याश्रय रहता है तबतक भगवान् जीव को कृपा की दृष्टि से नहीं देखते। अन्याश्रय में भगवान् अपने आश्रय का दान भी नहीं करते। अम्बिकावन में कौतुकयुक्त चित्तसे श्रीनन्दबावा गये थे, वहाँ अन्याश्रय होने से सर्प का ग्रास होना पड़ा था। मार्ग में यदि देवालय आ जाय तो उसकी अवगणना न करनी चाहिये। क्योंकि सर्व देवतागण भगवान् के अधीन होकर उनके अवयवरूप हैं। अन्य देवों के पास प्रार्थना भी न करे और यदि कदाचित् प्रार्थना करने की आवश्यकता पड़ जाय तो एकादबार भगवान् से ही प्रार्थना करे, परन्तु देवतान्तर के पास नहीं।

### प्रार्थना का अर्थ

श्रीरघुनाथचरण प्रार्थना का अर्थ इस प्रकार करते हैं-प्रत्येक कार्य में भगवान् की विज्ञप्ति करे कि हे भगवन् ! हम विवाहादि कार्यों का प्रारंभ करें ? इस प्रकार प्रार्थना करने की प्रथा विष्णुधर्म की शंकरगीता में भी है। "भगवान् की प्रार्थना के बिना जो भक्त किसी भी कार्य का प्रारम्भ नहीं करता वह भगवान् की मर्यादा का

लोप नहीं करता है, उसके ऊपर श्रीकेशव प्रसन्न होते हैं" इस प्रकार आश्रय का अर्थ विज्ञापन होने से पूर्व ग्रन्थ के साथ विरोध न आवे उस प्रकार विचार किया गया है। याचना को व्यवहार में "यह मुझे दो" इस प्रकार विचारपूर्वक होनेवाले व्यापार को प्रार्थना कहते हैं। किसी भी कारण के बिना, किसी भी प्रकार की इच्छा के बिना, अपनी ज्ञात वस्तु का स्वरूपकथन ही विज्ञापन है। इस प्रकार प्रार्थना एवं विज्ञापन के स्वरूप का भेद होने से तथा भगवान् के समीप इस प्रकार के विज्ञापन से स्वामी की अधीनता की भावना की स्फूर्ति होनेसे, विवेक की भी रक्षा होती है, अतः विज्ञापन अर्थ योग्य ही है। भगवान् कार्य करने की आज्ञा प्रदान करने में विलम्ब करे, तब धैर्य की आवश्यकता रहती है, धैर्य के लिये आश्रय की आवश्यकता होने से, आश्रय के दृढ होते ही भक्त में शीघ्र ही अपना कार्य सिद्ध करने की शक्ति आजाती है। भगवान् के पास प्रार्थना करने की आज्ञा है, किन्तु यह अन्य देवों के पास करने का निषेध है। अतः प्रार्थना और विज्ञापन अन्य देवों के प्रति न करे। साथ ही अन्य देवों के प्रति प्रार्थना करने का मन से विचार भी न करे। इस प्रकार कायिक आश्रय कहा।

### अविश्वास दूर करो

अब इन सब की सिद्धि के अर्थ बाधक के त्याग का निरूपण करते हैं। स्वरूपतः एवं फलतः अविश्वास सर्वथा बाधक है। अज्ञ एवं संशयग्रस्त पुरुष नाश को प्राप्त होता है। संशय न होने के लिये ब्रह्मास्त्र एवं चातक की भावना करनी चाहिये, अर्थात् अविश्वास की बाधकता में ब्रह्मास्त्र का दृष्टान्त है, एवं विश्वास में चातकपक्षी दृष्टान्तरूप है। इन दोनों के वृत्तान्त का स्मरण करे। जब राक्षसों ने हनुमानजी को लंका में ब्रह्मास्त्र से बाँध के रावण के सम्मुख उपस्थित किया तब हनुमानजी को चेष्टा रहित देखकर भी कच्चे डोरों से बाँधा हुआ जानकर ब्रह्मास्त्र पर अविश्वास कर लोहे की सांकलों से बाँधने का प्रयास करते ही ब्रह्मास्त्र निवृत्त हो गया और हनुमानजी लोहशृङ्खलाको तोड़कर मुक्त हो गये। इस प्रकार ब्रह्मास्त्र बाँधने का प्रयास ही व्यर्थ हुआ। इसी प्रकार यहाँ भी अविश्वास होने पर भगवान् भी फल का त्याग करते हैं। शरणरूप भक्तिमार्ग में किया हुआ प्रयास भी अविश्वास से व्यर्थ ही हो जाता है।

चातकपक्षी एक वर्षतक स्वातिविन्दु के लिये विश्वासपूर्वक राह देखता है, अतः प्रभु उस के लिये अवश्य ही स्वाति में जल बरसाते हैं। अतः एव श्रीमदाचार्यचरणों की वाणी में-भगवच्छरणागति में विश्वास होने से सब कार्य सिद्ध

होते हैं। तात्पर्य यह है कि अविश्वास का त्याग कर प्रभु में दृढ विश्वास रखने से, जो कुछ भी भगवदिच्छा से प्राप्त हुआ हो उसी में सन्तोष मानकर ममता रहित, सेवा करनी चाहिये। लौकिक ममता का त्यागकर यदृच्छा से प्राप्त होनेवाले सुखदुःख एवं साधनों का अनुभव कर उनमें लेशमात्र भी आसक्त न हो।

लौकिक में अनासक्त होकर निर्वाह किसप्रकार किया जाय, वह भी कहते हैं। सेवा एवं लौकिक के कार्य करता रहे। हर्ष के आवेश में एवं दबाव से ऋण लेकर लौकिक कार्य न करे। तथापि यदि इस तरह भी लौकिक कार्य करने ही पड़े तो, प्रभु की शरण की भावना करे। क्योंकि; काल, कर्म, स्वभाव, सङ्ग एवं देश आदि के बन्धन से लौकिक कार्य अनिवार्य ही हो, तब उन सबके परिहार के लिये भिन्न भिन्न अनेक साधन करना सम्भव नहीं है, अतः पूर्वोक्त मुख्य साधन श्रीहरि की शरण ही श्रेष्ठ है। गीता के शरणोपदेश एवं भागवत के एकादशस्कन्धोक्त वाक्यों से शरण सिद्ध होती है। शरणागत ब्रजभक्तों में, सत्यव्रतराजा में और सप्तर्षियों में शरण से ही सर्वकार्य की सिद्धि देखी गई है। अतः शरण ही मुख्य साधन है। इससे यह भी निश्चित होता है कि शरण असहायशूर है।

### उपसंहार

इस प्रकार उपदेश देकर उपसंहार करते हैं। आश्रयरूपी शरणमार्ग का निरूपण विवेक एवं धैर्य सहित किया गया। उसका स्वरूप वर्णन भी किया गया। वह शरण सभी वर्ण एवं आश्रमों के लिये सर्वदा सर्वयुग में, सुखदुःखों में भी अधिकारानुसार हितकर है। "मेरा आश्रय करनेवाले पापी जीवों का भी उद्धार करता हूँ।" इस भगवद्वाक्य से ज्ञात होता है कि शरण सभी का उद्धार करता है।

कलौ भक्त्यादिमार्ग हि दुःसाध्य इति मे मतिः ॥१७॥

कलियुग में भक्त्यादिमार्ग दुःसाध्य हैं, ऐसा मेरा अभिप्राय है।

**कलि में सब मार्ग नष्ट हो चुके हैं।**

भगवान् ने श्रीमद्भागवत के एकादशस्कन्ध में जीव के कल्याण के लिये कर्म, ज्ञान एवं भक्तिमार्ग ये तीन मार्ग क्यों बताये हैं? इसका उत्तर देते हुए आज्ञा करते हैं कि कलियुग में भक्त्यादिमार्ग नष्ट हो चुके हैं, अर्थात् दुःसाध्य हैं। क्योंकि उनको साधन की अपेक्षा है, अतः एव उनको एक पङ्क्ति में कहा है। और शरणमार्ग स्वतन्त्ररूप से कहा गया है। इस भगवदाश्रय का उत्तम रहस्य श्रीमदाचार्यचरणों को ज्ञात है, अतः एव वे अपनी सम्मति भी प्रदान करते हैं। इस विवेकधैर्याश्रय ग्रन्थ के

अनुकूल रह कर भगवदाश्रय करनेवाले जीव को अवश्य सब तरह से आश्रय सिद्ध होता है। भगवान् उस भक्त को आश्रय का दान करते हैं।

अपनी कान्ति से मेघद्युति का भी तिरस्कार करनेवाले, श्रीयमुनाजी के तटपर वेणुरव को रचनेवाले, सुन्दर रास के कर्ता ब्रजनायक को हे मदीय मन ! तू निरन्तर विचार। यह विवेकधैर्याश्रय की विवृति यथामति की है। इससे श्रीमदाचार्यचरण मेरे उपर प्रसन्न होवें। जैसे बालक की चपलता माता पिता के हर्ष के लिये होती है वैसे ही मैंने भी श्रीमहाप्रभुजी का होने के कारण कुछ धृष्टता से लिखा है वह सब उनकी प्रसन्नता के लिये हो।

इति श्रीमदाचार्यचरणैकतानश्रीशामलालसुत-  
श्रीब्रजराजविरचितविवेकधैर्याश्रयविवृतिका  
हरिशङ्कर ओङ्कारजी शास्त्रीकृत अनुवाद सम्पूर्ण।



## दशदिगन्तविजयी गो. श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज और अप्पय्यदीक्षित

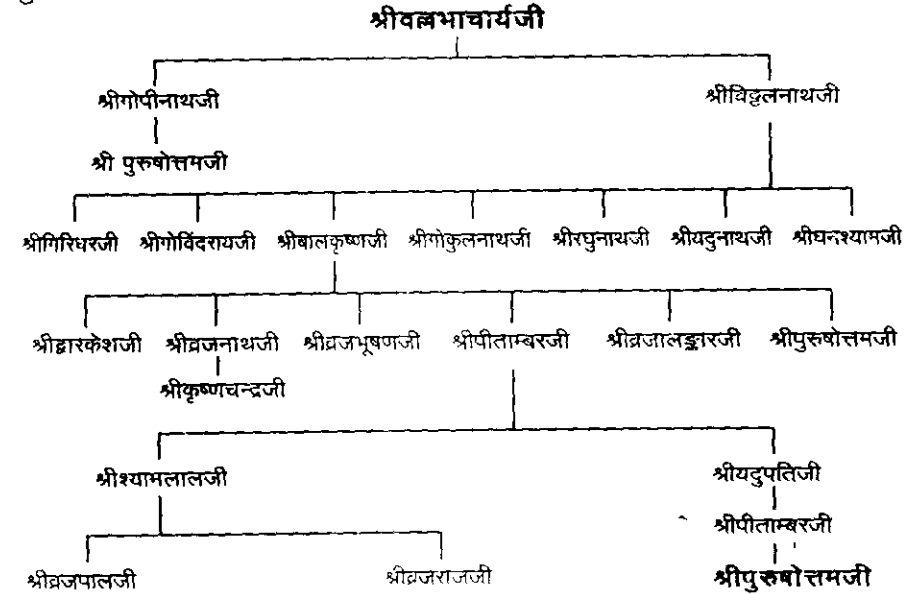
लेखक : श्री हरिशंकर शास्त्री मी.शा.वे.वि. M.R.A.S.

संस्कृत साहित्य संसार में प्रधानता दर्शनशास्त्रों की है। दार्शनिक विषयों पर जितने ग्रन्थ संस्कृत भाषा में उपलब्ध होते हैं, उतने और वैसे प्रौढ ग्रन्थ संसार की अन्य किसी भाषा में प्राप्य नहीं हैं। इस विषय में प्रायः सभी इतिहासज्ञ एकमत हैं। दर्शनों में भी वेदान्तदर्शनका ही प्राधान्य है। यदि संस्कृतवाङ्मय से वेदान्तदर्शन को पृथक् कर दिया जाय, तो धड़से शिरको पृथक् करने के समान भयङ्कर और अनिवार्युक्त कार्य होगा। वेदान्तदर्शन संस्कृत वाङ्मयका उत्तमाङ्ग (शिर) है। सहस्रों वर्षों से भारत वर्ष में वेदान्तदर्शन पर विचार हो रहा है। वेदान्तदर्शनमें ही मानव विचारशक्ति की पराकाष्ठा है। जितनी सूक्ष्मता से इस दर्शन में विचार किया गया है, वैसे सूक्ष्म विचार अन्यत्र असम्भव नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य है। वेदान्तदर्शनका मूल उपनिषद् और व्याससूत्र है। प्राचीन समय में भी वेदान्तविषयक मतभेद विद्यमान थे। व्यासजी भी वेदान्तसूत्रों में पूर्वाचार्यों के मतभेदों का उल्लेख करते हैं, पर कहा जाता है कि शङ्कराचार्य के मायावाद के पश्चात् रामानुजादि आचार्यों के विभिन्नसिद्धान्तों के आविर्भाव के अनन्तर वेदान्तदर्शन अनेक साम्प्रदायिक शाखाओं में बँट गया है। साम्प्रदायिक मतभेद एवं उपासना के विषय में भी सूक्ष्मतम विचार इन साम्प्रदायिक आचार्यों ने किया है। ईश्वरोपासना के विषय में जो साम्प्रदायिक मतभेद प्रचलित हैं, और उस विषयपर जो वादग्रन्थ लिखे गये हैं, उनके अध्ययन और मनन से सुरसरस्वती के सेवकों को एक प्रकार का विशेष आनन्दानुभव होता है। इन वाद ग्रंथों से जो आनन्द संस्कृत साहित्य के अनन्य सेवकों को प्राप्त होता है, वह इतर भाषा के विद्वानों को प्राप्त होना कठिन है। वाणी के विलास से एक प्रकार का अद्भुत आनन्द प्राप्त हुआ करता है। और वैसी उपासनाविषयक मतभेदों से पूर्ण वादसामग्री रामानुज मध्वादि एवं शैवशाक्तादि सम्प्रदायों में प्रचुरप्रमाण में प्राप्त होती है। परन्तु ऐसे वादग्रंथों से वास्तविक सिद्धान्त प्रकट नहीं होने पाता, और फलतः तत्तत्सम्प्रदायों में पारम्परिक कलह प्रारम्भ हो जाता है। विद्वानों के अतिरिक्त वास्तविक बात कोई समझ नहीं पाता है, और अल्पज्ञ अनुयायी गण उन ग्रन्थों का अनुचित लाभ उठाते हैं। फलतः एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से युद्ध

दान देता है। विक्रमकी अठारहवीं शताब्दी में भी एक ऐसी ही घटना हो गई है। रामानुज और मध्वसम्प्रदाय पर, अथवा यों कहिये कि अपने मामा (ताताचार्य) के ऊपर ही आक्रमण करने के अभिप्राय से अठारहवीं शताब्दी के एक दिग्गज पण्डित अप्पय्यदीक्षित ने प्रयत्न किया था। वास्तविक रूप से यदि देखा जाय तो अप्पय्यदीक्षित ने वैष्णवों को चिढ़ाने के उद्देश्यसे ही "शिवतत्त्वविवेक" नामका एक ग्रन्थ लिखा था। परन्तु उस ग्रन्थ के द्वारा अपसिद्धान्तों का प्रचार करने का घृणित कार्य उनके अनुयायियों ने किया था। दशदिगन्तविजयी श्रीमत्पुरुषोत्तमजी महाराजने इस ग्रन्थ के खण्डन में "प्रहरतवाद" लिखना आवश्यक समझा, और उस के द्वारा आस्तिक संसार को भयङ्कर अधःपात से बचाया है।

### श्रीमत्पुरुषोत्तमजीमहाराज जन्म और वंशपरिचय

शुद्धाद्वैत अखण्डब्रह्मवाद के संस्थापक अखण्डभूमण्डलाचार्यचक्रवर्ति-श्रीमद्भक्तभाचार्यजी के द्वितीय पुत्र गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी के पवित्र वंश में आपका प्राकट्य संवत् १७२४ के भाद्रपद शुक्ल एकादशी के दिन श्री गोकुल में हुआ था। आपका वंशपरिचय इस प्रकार है :-



आपके पितृचरण श्रीपीताम्बरजी, और ब्रह्मसम्बन्ध करानेवाले गुरु श्रीकृष्णचन्द्रजी थे। श्रीवज्रराजजी आपके पितृव्य थे। श्रीवज्रराजजीने सुरतमें श्रीबालकृष्णजी का मन्दिर बनवाया था। आपहीकी कृपासे श्रीपुरुषोत्तमजी को श्रीबालकृष्णजीकी सेवा प्राप्त हुई थी।

उपर्युक्त इतिहास को आप ही ने श्रीमदणुभाष्यकी प्रकाशटीका में इस प्रकार अङ्कित किया है :-

तत्पुत्रान् सहसूनुभिर्निजगुरुन् श्रीकृष्णचन्द्राह्वयान्  
भक्त्या नौमि पितामहं यदुपतिं तातं च पीताम्बरम् ।  
वन्दे श्रीवज्रराजमन्वयमणिं यद्रोचिषा माहशो-  
प्यासीन्मूर्ध्नि कृपापरः प्रभुवरः श्रीबालकृष्णः स्वयम् ॥

### विद्याभ्यास और ग्रन्थप्रणयन

श्रीमत्पुरुषोत्तमजी महाराज के अगाधपाण्डित्य के सम्बन्धमें निम्नलिखित आख्यायिका सम्प्रदाय में प्रचलित है :-

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज सात वर्ष के बालक थे उस समय सूरत में अप्पर्यदीक्षित आये थे और उन्होंने शुद्धाद्वैतमतानुयायी वैष्णवों को शैवमत का उपदेश करना प्रारम्भ किया, और साथ ही यह भी कहा कि शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्यों को चाहिये कि वे शास्त्रार्थ करें। महाराजश्री बालक थे, आपके मातृचरण ने कह दिया कि तीन दिनके पश्चात् मेरे लालजी (श्रीपुरुषोत्तमजी) शास्त्रार्थ करेंगे। तदनुसार अपने बालक को शास्त्रार्थ के लिये सज्ज होने की आज्ञा दी। मातृचरण की आज्ञा पाकर श्रीपुरुषोत्तमजी ने तहखाने में - एकान्त में श्रीबालकृष्णजी के समीप तीन दिन तक श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र का अखण्ड जप किया। (कोई कहता है कि त्रिविधनामावली का जप किया।) तीसरे दिन श्रीबालकृष्णजी और श्रीमहाप्रभुजीने स्वयं प्रगट होकर विद्यादान दिया। इस किंवदन्ती के समर्थन में भाष्यप्रकाश के समाप्ति के श्लोक उद्धृत किये जाते हैं। इस जनश्रुति में आंशिक सत्य तो है ही। श्रीपुरुषोत्तमजी के समय में साम्प्रदायिक ग्रन्थों का पठन पाठन निवृत्त हो चुका था। यह बात भी भाष्यप्रकाश के अन्तिम श्लोकों से ज्ञात होती है। वे श्लोक इस प्रकार हैं:-

क्रीडन् श्रीबालकृष्णः परमकरुणया मन्मनः प्रेरयित्वा  
भाष्यार्थं योतिगूढं प्रकटितमकरोत् सम्प्रदाये निवृत्ते ।

तं नित्याकुण्डशक्तिं वृत्तिनिखिलनिजाज्ञानसंसारहारं  
स्मृत्वा स्मृत्वोपकारं प्रमुदितमुदितः स्वप्रभुं सन्नमामि ॥  
मायावादादिवादैर्व्यवहितमिव तं ब्रह्मवादं प्रकाशय  
श्रीमत्कृष्णाज्ञया तद्रतिपथ उदितो दैवजीवावनार्थम् ।  
यैस्तान्कृष्णरूपान् प्रथितगुणगणान् श्रीमदाचार्यवर्यान्  
ध्यायं ध्यायं नमामि स्वहितमवहितस्तत्कृपादृष्टिवृष्ट्या ॥

इससे ज्ञात होता है कि श्रीपुरुषोत्तमजी को अगाध पाण्डित्य श्रीबालकृष्णजी और श्रीमदाचार्यजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ है।

परन्तु श्रीपुरुषोत्तमजी स्वयं प्रहस्तवाद के मङ्गलाचरण में अपने विद्याध्ययन का परिमाण इस प्रकार बताते हैं :-

“संवीक्ष्योपनिषच्छ्रुतिस्मृतिगणं भाष्याणि सूत्राण्यपि  
प्रस्थानैर्विविधैर्युतान्यथ मया वादावली तन्यते ।”

इस पद्यकी टीका में आप ही इस प्रकार लिखते हैं-

“मार्गप्रवर्तकान् गुर्वादीन् नमस्कुर्वन् लोकदृष्ट्यापि स्वस्य ज्ञानप्रकारस्य  
बोधनपूर्वकं ग्रन्थकरणं प्रतिजानते तत्पुत्रानिति । भाष्याणीति, उपनिषदादीनाम् ।  
सूत्राणीति, वैय्यासानि जैमिनीयानि च ।”

इससे ज्ञात होता है कि आपने मौज शौक में समय नष्ट न कर के उपनिषदों के भाष्य, व्याससूत्रों के यावत्प्राप्य भाष्य एवं पूर्वमीमांसा का भली प्रकार अध्ययन किया था।

श्रीमत्पुरुषोत्तमजी महाराज पर दो गोस्वामियों का उपकार हुआ है, एक श्रीवज्रराजजी और दूसरे श्रीकृष्णचन्द्रजी। श्रीवज्रराजजी की कृपा से आप को श्रीबालकृष्णजी का स्वरूप प्राप्त हुआ था। और श्रीकृष्णचन्द्रजी से आप को स्वसम्प्रदाय का यथार्थज्ञान प्राप्त हुआ था। श्रीपुरुषोत्तमजी ने अपने पितृचरण के नाम से और अपने पितामह के नाम से भी ग्रन्थरचना की है। गोलोकवासी तेलीवाला का मत है कि व्याससूत्रों पर “भावप्रकाशिका” वृत्तिकी रचना भी श्रीकृष्णचन्द्रजी के नामसे श्रीपुरुषोत्तमजी ने की है। वास्तविकरूप से विचार करने से तेलीवाला का मत यथार्थ प्रतीत होता है। जो लेखन शैली और तुलनात्मक विचार पद्धति भाष्यप्रकाश में है वही “भावप्रकाशिका” वृत्तिमें भी दृष्टिपथ होती है। किं बहुना भावप्रकाशिका में भाष्यप्रकाश की पंक्तियाँ ज्योंकी त्यों अनेक स्थानों में दृष्टिपथ होती हैं।

श्रीपुरुषोत्तमजी ने नवलक्ष श्लोकों का साहित्य सम्प्रदाय में लिखा है। आपके ग्रन्थ इस समय जो उपलब्ध होते हैं उन में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं:-

भाष्यप्रकाश	वस्त्रसेवावाद
सुवर्णसूत्र	भेदाभेदवाद
आवरणभङ्ग	अभाववाद
सुबोधिनीप्रकाश	आत्मवाद
प्रस्थानरत्नाकर	स्ववृत्तिवाद
षोडशग्रन्थोंकी टीकाएँ	जयश्रीकृष्णोच्चारणवाद
प्रहस्तवाद	उत्सवप्रदान
पण्डितकरभिन्दिपालवाद	द्रव्यशुद्धि
सृष्टिभेदवाद	भक्तिहंसविवृति
आविर्भावतिरोभाववाद	भक्तिहेतुनिर्णयविवृति
ख्यातिवाद	पूर्वमीमांसाभाष्यविवरण
प्रतिबिम्बवाद	न्यासादेशविवृति
अन्धकारवाद	गायत्रीकारिकाविवृति
ब्राह्मणत्वादिदेवतावाद	वल्लभाष्टकविवरण
जीवव्यापकत्वखण्डनवाद	कैवल्योपनिषद्दीपिका
जीवप्रतिबिम्बत्वखण्डनवाद	ब्रह्मोपनिषद्दीपिका
ऊर्ध्वपुण्ड्रनिर्णयवाद	नृसिंहतापिन्युपनिषद्दीपिका
तुलसीमालाधारणवाद	छान्दोग्यदीपिका
शङ्खचक्रधारणवाद	श्वेताश्वतरदीपिका
मूर्तिपूजनवाद	उपनिषदर्थसङ्ग्रह
भागवतशङ्कानिरासवाद	द्वात्रिंशदपराधक्षमापनटीका
उपदेशशङ्कानिरासवाद	अधिकरणमाला
भक्त्युत्कर्षवाद	भावप्रकाशिका वृत्ति.

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक वाद ग्रन्थ तथा उपनिषदों के भाष्य सुने जाते हैं, पर वे अद्यावधि प्राप्त नहीं हुये हैं। सम्भव है संशोधन करनेपर प्राप्त हो।

पूर्वमीमांसा द्वितीयाध्याय के प्रथम भावार्थपाद भाष्यका विवरण अपने पितामह श्री यदुनाथजी के नाम से निर्माण किया है। पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदकी टीका और निबन्धशास्त्रार्थ प्रकरण का आवरणभङ्ग पितृचरण श्रीपीताम्बरजी के

नाम से प्रसिद्ध किया गया है। और भावप्रकाशिका वृत्ति निजगुरु श्रीकृष्णचन्द्रजी के नाम से प्रसिद्ध की गई है।

साम्प्रदायिक साहित्य को देखने से ज्ञात होता है कि श्रीगुसांईजी का कृष्णदास अधिकारी से झगडा हो जाने के पश्चात् श्रीगोपीनाथजी के बहुजी अपने बालक श्रीपुरुषोत्तमजी को साथ लेकर साम्प्रदायिक ग्रन्थों के साथ दक्षिण की ओर चली गई और तब से श्रीगुसांईजी और उनके वंशज ही गादी के वारस बनाये गये। अर्थात् पुष्टिमार्ग में श्रीगोपीनाथजी नामशेष हैं, उनका सम्प्रदाय में कोई विशेषस्थान नहीं है। किसी भी ग्रन्थकार ने श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी के साथ श्रीगोपीनाथजी को प्रणाम नहीं किया है। परन्तु श्रीपुरुषोत्तमजी ने श्रीगोपीनाथजी को प्रणाम किया है। किं बहुना मङ्गलाचरण में "तेजोराशि" और "दयार्णव" विशेषणों का प्रयोग करके श्रीगोपीनाथजी का विरुद्ध धर्माश्रयत्व भी दर्शाया है। श्रीगोपीनाथजी श्रीगुसांईजी के ज्येष्ठ बन्धु हैं, इसलिये श्रीगुसांईजी से पूर्व श्रीगोपीनाथजी को नमस्कार किया गया है।

### लेखन शैली

प्रियभाई वसन्तरामशास्त्रीजी और गोलोकवासी मूलचन्द्रभाई की कृपासे श्रीपुरुषोत्तमजी के हस्ताक्षरों में प्रहस्तवाद, श्रीसुबोधिनीकारिका, भाष्यप्रकाशादि अनेक ग्रन्थों को देखनेका सौभाग्य इस लेख के लेखक को प्राप्त हुआ है। जिस शैली से श्रीपुरुषोत्तमजी लिखते हैं वह शैली अत्यन्त प्रामाणिक है। तुलनात्मक लेखन पद्धति जो आज हम पाश्चात्य विद्वानों में देखते हैं वैसी ही- किंबहुना उससे भी अतिसूक्ष्म तुलना श्रीपुरुषोत्तमजी ने ईसाकी सत्रहवीं शताब्दि में ही अख्तियार की थी। संस्कृत साहित्य में इस ढंग से लिखा हुआ एक भी ग्रन्थ दृष्टिपथ नहीं हुआ है।

विरामचिह्नों के लिये कहा जाता है कि अंग्रेजीका प्रचार होने से पूर्व भारतवर्ष के लेखकों को विरामचिह्नों से परिचय नहीं था। परन्तु श्रीपुरुषोत्तमजी विरामचिह्नों का यथेष्ट उपयोग करते हैं। जहाँ अल्पविराम की आवश्यकता होती थी वहाँ आप एक बिन्दु (.) से चिह्न करते हैं। जहाँ पूर्णविराम की जरूरत पड़ती है, वहाँ एक खड़ी रेखा (I) का चिह्न करते हैं। और जहाँ पेरिग्राफ छोडना हो वहाँ दो खड़ी रेखा (II) करके एक इंच स्थान छोड देते हैं। जहाँ कोई अक्षर कैपिटल करना हो वहाँ उस अक्षरपर गेरु लगाते हैं। यदि कोई अक्षर काटना है तो उसपर हरताल

पोत देते हैं अथवा उस भाग पर पट्टी लगाते हैं। यदि कुछ संशोधन या टिप्पणी लिखनी हो तो जिस पंक्ति पर टिप्पणी लिखी गई हो, उस शब्द के ऊपर दो आड़ी रेखाएँ (=) करते हैं और मार्जिन में टिप्पणी लिखकर उस पंक्ति की संख्या उसके साथ लिखते हैं, अर्थात् यदि ऊपर की तरफ कोई टिप्पणी लिखी गई हो तो ऊपर से गिनने पर जिस के ऊपर टिप्पणी लिखी गई है, वह शब्द जिस पंक्ति में होगा उसका अंक लिखा जायेगा। और नीचे की मार्जिन में लिखा गया होगा तो नीचे से पंक्तियाँ गिनी जायेगी। आप भाषाशास्त्र के भी विशेषज्ञ थे। खास कर श्रीमहाप्रभुजी, श्रीगुसांईजी, श्रीगोकुलनाथजी, श्रीहरिरायजी, आदि की भाषा तुरन्त पहिचान लेते हैं।

श्रीमदाचार्यचरणों के प्रत्येक ग्रन्थ पर श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज की टीका विद्यमान है। साम्प्रदायिक विद्वानों का यह दृढ मन्तव्य है कि जो ग्रन्थ श्रीमदाचार्यचरणों के नाम से प्रसिद्ध है उस पर श्रीपुरुषोत्तमजी की टीका होनी आवश्यक है। जिस ग्रन्थ पर श्रीपुरुषोत्तमजी की टीका नहीं है उस ग्रन्थ को आचार्यचरणप्रणीत है ऐसा कहने में बहुत से पण्डित हिचकिचाते हैं। और यही कारण है कि “भगवत्पीठिका” नामक ग्रन्थ के प्रणेता आचार्यचरण हैं ऐसा मानने वाले पण्डितों की संख्या अधिक नहीं है। “भगवत्पीठिका” पर श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज की टीका उपलब्ध नहीं है। और न कहीं श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज अपने ग्रन्थ में उसको उद्धृत ही करते हैं। इसी कारण से उस के प्रणेता आचार्यचरणों के अतिरिक्त अन्य कोई होने चाहिये। सम्भव है कि किसी ने वह ग्रन्थ आचार्यचरणों के नाम से प्रसिद्ध किया हो। आपका लेखनव्यवसाय अधिक होने के कारण सम्प्रदाय में आप “लेखवाले पुरुषोत्तमजी” के नामसे प्रसिद्ध हैं।

श्रीपुरुषोत्तमजी सेवा में और भावना में अन्यगोस्वामी बालकों की अपेक्षा कुछ न्यून समय व्यतीत करते थे और सब गोस्वामियों में आप विशेष प्रतिभासम्पन्न एवं विद्वान् होने के कारण आप का सम्मान संप्रदाय में तथा सम्प्रदायेतर विद्वानों में विशेषरूप से होने के कारण आपके बन्धुवर्ग में आप के प्रति द्वेष भाव फैल जाने से आप को कुछ अल्पज्ञ एवं असहिष्णु लोग “वेदपशु” भी कहा करते थे। पर आप इन बातों पर कभी ध्यान ही नहीं देते थे। श्रीपुरुषोत्तमजी का नाम इतिहास के पन्नों पर सुवर्णाक्षरों से अङ्कित है, पर उनको वेदपशु कहनेवालों को संसारने अपने स्मृतिपटल से साफ कर दिया है।

## दिविजय

आप के साथ प्रत्येक सम्प्रदाय के तथा प्रत्येक शास्त्र के विशेषज्ञ पण्डित हमेशा रहा करते थे। आप भारत वर्ष में सब जगह स्वयं पधारकर तत्तत्प्रान्तों के तत्कालीन पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान करते थे। आप जब यात्रार्थ पधारते थे तब आपके साथ कई \*गाडियाँ पुस्तकों की रहा करती थी। हम पहिले ही कह आये हैं कि आप भावना और वार्ता आदि में अपना समय अधिक नहीं खर्च करते थे और यही कारण है कि आपके अनुयायी शिष्यों में विशेषरूपसे भावुकता व्यक्त नहीं होती थी, अत एव श्रीगोकुलनाथजी और श्रीहरिरायजी आदि गोस्वामियों की बैठकें अनेक स्थानों में सुरक्षित हैं उसी तरह आप की कोई बैठक सुरक्षित नहीं है। और यही कारण है कि भावना के पण्डितों की दृष्टि में श्रीगोकुलनाथजी और श्रीहरिरायजी का स्थान श्रीपुरुषोत्तमजी से ऊँचा है। खेद है कि इस बीसवीं शताब्दि में भी इंग्रेजी पढेलिखे विद्वान् भी श्रीगोकुलनाथजी श्रीहरिरायजी के ग्रन्थों को श्रीपुरुषोत्तमजी के ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक मानने का दुराग्रह करते हैं। हमारा मत यह नहीं है कि श्रीगोकुलनाथादि के ग्रन्थ अप्रामाणिक हैं। पर श्रीपुरुषोत्तमजी को श्रीगोकुलनाथादिकी अपेक्षा अप्रामाणिक कहनेवालों का हम पूर्ण विरोध करते हैं। हमारा अनुरोध है कि जो लोग श्रीपुरुषोत्तमजी के ऊपर अपसिद्धान्तों के प्रचार का कलङ्क लगाते हैं वे सज्जन उन अपसिद्धान्तों की सूची प्रकाशित करें। मौखिक कोलाहल करने से अल्पज्ञता प्रगट होती है।

आपका शास्त्रार्थ काशी के प्रश्नोत्तानागर ब्राह्मण वेणीभट्ट ऊर्फ वेणीदत्त व्यास तर्कपञ्चानन भट्टाचार्य के साथ हुआ था। आपके जीवनचरित्र सुप्रसिद्ध साम्प्रदायिक मासिक पत्रिका “पुष्टिभक्तिसुधा” में गोलोकवासी मूलचन्द्र भाई का लेख छपा है उसमें कहा गया है कि सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान् गोलोकवासी छगनलालशास्त्रीजी ने कहा था कि श्रीपुरुषोत्तमजी का शास्त्रार्थ काशीस्थ वेणीभट्ट के साथ हुआ था। परन्तु पीछे से सं. १९८२ में माधवबाग में श्रीपुरुषोत्तमजी के प्राकट्योत्सव के निमित्त जो सभा हुई थी और पुस्तक प्रदर्शनी खोली गई थी उस में व्याख्यान देते हुए मूलचन्द्र भाईने अपना मत बदल दिया था। आपने “वेणुनाद” में मुद्रित दानपत्रों के आधारपर यह निश्चय किया था कि सं. १७८७ में दान पत्र लिखा गया है और छगनलालशास्त्रीजी ने शास्त्रार्थ का संवत् १८२० बताया है, सं. १७८७ के

\* कहा जाता है कि अट्ठाईस गाडी पुस्तकें आपके साथ रहती थीं। इसके अतिरिक्त ऊँट और घोड़ोंसे भी पुस्तकें ढोनेका काम लिया जाता था।

पश्चात् श्रीपुरुषोत्तमजी अधिक समय तक भूतलपर विद्यमान नहीं रहें होंगे ऐसा अनुमान करके मूलचन्द्र भाईने यह मत प्रसिद्ध किया था कि वेणीभट्ट के साथ शास्त्रार्थ नहीं हुआ होगा। इस विषय में मैं भी अपना अनुभव पाठकों के सम्मुख उपस्थित करना उचित समझता हूँ। वह इस प्रकार है:-

शुद्धाद्वैत वैष्णव वेङ्गनाटीय महासभा का तृतीय अधिवेशन बम्बई में हुआ था। उस में श्रीमदाचार्यचरणों का शुद्धजीवनचरित्र तैयार करने और तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक खोज करने के लिये कुछ द्रव्य (मुझे जहांतक स्मरण है २००० रुपिया) चि.गो. श्रीदामोदरलालजीने प्रदान किया था। अधिवेशन समाप्त होने के पश्चात् गोरवामी श्रीवल्लभलालजी महाराजने अपने खास दफ्तर से एक आर्डर मेरे नाम जारी कर इस कार्य का गुरुतर भार मेरे शिरपर धर दिया; और नाममात्र के लिये व्यवस्थापक का स्थान उन्होंने अपने मामाजी को दिया। जिन का साम्प्रदायिक इतिहास के विषय में ज्ञान कुछ भी नहीं है। मैंने महाराज से उस समय भी मूलचन्द्र भाई को इस कार्य के लिये नियुक्त करने का अनुरोध किया था। परन्तु दुर्भाग्य से फल विपरीत हुआ। मैंने सं १९८२ की विजया दशमी से कार्यारम्भ किया सो आजतक बराबर चल रहा है। महाराज से पृथक् होजाने पर भी मैंने खोज का कार्य छोड़ना उचित नहीं समझा। मैं महाराज से पृथक् हो जाने के पश्चात् काशी गया और वहाँ "चना चबेना गंगजल जो पूरे करतार" इस लोकोक्ति का अनुभव करता हुआ खोज का कार्य करता रहा। फलतः साम्प्रदायिक साहित्य का एक उत्तम इतिहास निर्माण कर सका हूँ। यदि भगवदिच्छा अनुकूल होगी तो शीघ्र ही वह छपकर प्रसिद्ध हो जायेगा। उसी खोज में श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज और वेणीभट्टका सम्बन्ध वादी प्रतिवादी का न था, पर गुरुशिष्य का था ऐसे प्रमाण एकत्रित कर सका हूँ।

जिस प्रकार गुर्जर देश में प्रसिद्ध साम्प्रदायिक पण्डित तुलजाराम भट्टजी आपके शिष्य है उसी प्रकार वेणीभट्ट भी आप के शिष्य ही हैं।

ये वेणीभट्ट काशी में कालभैरव के निकट ही घासीटोला में रहते थे। आप शुक्लयजुर्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार महीधर के वंशज हैं। आप का पूरा नाम वेणीदत्त व्यास तर्कपञ्चानन भट्टाचार्य है। आपने शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनीय शाखा का पूरा अध्ययन किया था। श्रौतकर्म में बड़े निपुण थे। कई जगह सोमयाग में आपने आध्वर्य भी किया है। व्याकरण, वेदान्त और पूर्वमीमांसा का अध्ययन आपने पंचद्राविड पण्डितों के पास रहकर किया। नव्यन्याय में आपने विशेष योग्यता प्राप्त

की थी। नव्यन्याय बंगाली विद्वानों से पढ़े थे। आपने नादिया जाकर वहाँ के बंगालियों के साथ शास्त्रार्थ करके "तर्कपञ्चानन भट्टाचार्य" की उपाधि भी प्राप्त की थी। यह उपाधि बंगदेशीय विद्वानों को ही प्राप्त होती थी। पर इन्होंने अपनी विशेष योग्यता के कारण वह सम्मान प्राप्त किया था। वेणीदत्त व्यासने अनेक विषयों पर ग्रन्थ रचना की है। आपके ग्रन्थों का विषय प्रायः नव्यन्याय हुआ करता था। वेदान्त और पूर्वमीमांसा के विषय में भी आपने ग्रन्थ लिखे हैं, पर वे भी नव्यन्याय की शैली से ही लिखे गये हैं। ज्ञात होता है कि वेदान्त और पूर्वमीमांसा के ग्रन्थ आपने श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के समागम के अनन्तर लिखे हैं। ये पहिले से ही राधाकृष्ण के उपासक थे। पर श्रीपुरुषोत्तमजी का समागम होने के पश्चात् श्रीगोवर्धननाथजी का अनन्य भजन करने लगे थे। आप श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज की यात्रा में साथ रहते थे। आपके लेखों को देखने से ज्ञात हो जाता है कि ये पहले किसी अन्य सम्प्रदाय के वैष्णव होंगे, और जब श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज का समागम हुआ तब पुष्टिमागीय वैष्णव हुए होंगे। श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज की आज्ञा लेकर काशी चले आने के पश्चात् आप का श्रीपुरुषोत्तमजी के साथ पत्र व्यवहार हुआ है। उसमें वेणीदत्तजी श्रीपुरुषोत्तमजी के लिये "श्रीज्ञानावताराणां गुरुवर श्रीपुरुषोत्तमगोरवामिनां चरणेषु वेणीदत्तस्य कोटिशः प्रणतयः" लिखते हैं।

वेणीदत्तजीकी कन्या का विवाह हुआ उस समय श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज ने अपने अधिकारी को काशी भेजा था और उस के साथ एक आज्ञापत्र काशीस्थ वैष्णवों के नाम लिखा था। उस में लिखा गया है कि "ये वेणीदत्तजी साम्प्रदायिक विद्वान् हैं, हमारे कृपापात्र हैं, इसलिये इनकी कन्या के विवाह में सब वैष्णवोंको मिलकर सहायता प्रदान करनी चाहिये।" इस से ज्ञात होता है कि वेणीदत्तजी का श्रीपुरुषोत्तमजी के साथ गुरुशिष्य भाव था। वेणीदत्तजी की अन्य गोरवामी बालकों के साथ भी घनिष्टता थी। कई गोरवामी बालकोंने आप को साम्प्रदायिक पुस्तकें प्रदान की हैं। श्रीपुरुषोत्तमजीके हरताक्षरों से संशोधित पण्डितकरभिन्दिपालवाद, प्रहस्तवाद, सुवर्णसूत्र और प्रस्थानरत्नाकर का प्रमाणपरिच्छेद, इन पंक्तियों के लेखक को देखने का सौभाग्य काशी में प्राप्त हुआ है। ये सब पुस्तकें काशी के सरस्वती भवन में सुरक्षित हैं। ऊपर जिन पत्रों के विषय में कहा गया है, वे पत्र भी सरस्वती भवन के पुस्तकाध्यक्ष श्रीयुत् नारायणशास्त्रीजी खिस्ते की कृपा से देख सका हूँ।

गत आश्विन मास में मैं गोरवामी श्रीरणछोडलालजी महाराज के साथ पञ्जाब और सीमाप्रान्त की तरफ गया था। तब वहाँ से लौटते समय लाहौरके "दयानन्द



एंग्लो वैदिक कालेज' के रीसर्च रकालर पं. भगवदत्तजी से मिला था। ज्ञात हुआ कि दयानन्द कालेज में साम्प्रदायिक हस्तलेख भी विद्यमान हैं। चार दिन तक अमृतसर में रहा। वहाँसे मैं प्रतिदिन मोटर द्वारा लाहौर जाया करता था। वहाँ वेणीदत्तजी की पुस्तकें दृष्टिपथ हुई। भगवदिच्छासे पं. भगवदत्तजी के द्वारा आर. अनन्तकृष्णशास्त्रीजी और डॉ. मङ्गलदेवजी से परिचय हो गया। अनन्तकृष्णशास्त्रीजी पुरानी पुस्तकों की खोजकर पंजाब विश्वविद्यालय को अप्राप्य पुस्तकें प्रदान करते हैं, और डॉ. मङ्गलदेवजी सरस्वती भवन में ही कार्य करते हैं। इन दोनों सज्जनों ने काशी आकर सूचित किया कि महीधर भाष्यकार का पुस्तकसंग्रह दो चार दिन पहले ही बेचा गया है और उसमें वल्लभ सम्प्रदाय की पुस्तकें अधिक संख्या में प्राप्त होती हैं। उस समय परीक्षाकाल निकट होने के कारण मैं सरस्वती भवन तक जाने में असमर्थ रहा। परीक्षा के पश्चात् १५ दिन तक मैंने उस पुस्तक संग्रह से लाभ उठाया है। अभी वह बृहत् पुस्तकसंग्रह अव्यवस्थित रूप में पड़ा है। सम्भव है कि ग्रीष्मावकाश के पश्चात् उस की सूची तैयार हो जायेगी।

### सूरत में शास्त्रार्थ

गुर्जरदेश में भारकरराय नामक एक शाक्त पण्डित हुआ है। यह सूरत में भी कुछ दिन तक रहा था। इसकी आद्य दीक्षा और पूर्णाभिषेक सूरत में ही हुए थे। श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के ऊपर इसका बहुत कटाक्ष था। इसने शाक्तमत के ३६ ग्रन्थ रचे हैं। उनमें से कुछ ग्रन्थ काशी में महाराष्ट्रीय पण्डित श्रीयुत् 'बाबू दीक्षित जडे' के पुस्तक संग्रह में विद्यमान है। इन पुस्तकों के साथ कुछ पत्रादि भी हैं। उन पत्रों में भारकररायने श्रीपुरुषोत्तमजी को गाली दी है। इससे ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ में पराजित होने के कारण यह तामसदेवता के उपासक सिद्धजी (?) क्रुद्ध होकर अंत संत बकने लगे होंगे। श्रीपुरुषोत्तमजी के ग्रन्थों में भी तान्त्रिकों का खण्डन दृष्टिपथ होता है।

### समानकालिक पण्डित

श्रीमहाप्रभुजी का जीवन चरित्र लिखने के अभिप्राय से तत्कालीन पंडितों की सूची तैयार की गई थी। उस समय अनायास ही श्रीहरिरायजी और श्रीपुरुषोत्तमजी के समानकालिक पण्डितों की भी सूची तैयार हो गई। आपके समय में भारतवर्ष में यवनों का उपद्रव अधिक होने पर भी ५०० से अधिक ग्रन्थकार भारतवर्षमें हुए हैं। पण्डितों की सूची तैयार करने में कितना परिश्रम हुआ

होगा और किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा यह बात विद्वज्जन ही समझ सकते हैं। यहाँ सब पण्डितों के नाम अङ्कित करने या उनकी रचनाओं के विषय में कुछ कहने का पर्याप्तस्थान न होने के कारण न्याय, व्याकरण, मीमांसा और वेदान्तके विशेषज्ञ पण्डित जो कि श्रीपुरुषोत्तमजी के समय काशी में विद्यमान थे उन के नाम अङ्कित करना ही पर्याप्त समझता हूँ। इस नामावली से ही विद्वज्जन समझ सकेंगे कि उस समय श्रीपुरुषोत्तमजीने कैसे कैसे अपूर्व पण्डितों का सामना किया होगा। ये नामावली History of Indian Logic और भिन्न भिन्न ग्रन्थों की भूमिकाएं और धर्मशास्त्रके निर्णयपत्रों पर से एकत्रित की गई हैं।

पूर्णन्द्र सरस्वती यति:

भट्ट नीलकण्ठ (ये अप्पय्यदीक्षितके भाई थे)

आडवा शुक्ल:

रघुदेव भट्टाचार्य:

मौनी गोपीभट्ट:

ब्रह्मेन्द्रसरस्वती यति:

वीरेश्वर शुक्ल:

गागा भट्ट

अप्पय्यदीक्षित

कविमण्डन बालकृष्ण भट्ट

खण्डदेव

वीरेश्वर शुक्ल:

लक्ष्मण पण्डित वैद्य

रामरामभट्टाचार्य:

काशीभट्ट सोमयाजी

गणेशदीक्षित

पौराणिक गदाधर

वाछा भट्ट

नमूनभट्ट

भास्कर ज्योतिर्विद

ये सब पं० वेणीदत्तजी के समय में काशी में विद्यमान थे। इसी प्रकार मधुसूदन सरस्वती ताताचार्य और नारायण भट्ट मीमांसक जैसे धुरंधर पण्डित

व्यासेन्द्र:

चक्रपाणी शेष:

गोविन्द भट्ट काले

गोविन्द भट्ट दशपुत्रे

विनायक शुक्ल:

गोविन्दभट्टाचार्य:

साम्राज्यपण्डित:

अनन्तदेव:

जगन्नाथ पण्डितराज

चिन्तामणि भट्ट द्रोण:

अनन्तभट्ट मीमांसक

माधवदेव:

रामहृदय गोमाजी भट्ट

लक्ष्मण सोमयाजी

बापूदीक्षित

जयराम पंचानन

वीनदीक्षित

महादेव भारद्वाज:

गौतमभट्ट:

श्रीपुरुषोत्तमजी के पक्षपाती भी मौजूद थे। मेरे पास जो नामावली तैयार है उस में बहुत से पण्डित श्रीपुरुषोत्तमजी के समय वृद्ध हो चुके थे उनके भी नाम सङ्गृहीत हैं।

### श्रीपुरुषोत्तमजीका स्थान

भारत के मुख्य पण्डितों में श्रीपुरुषोत्तमजी का स्थान बहुत ऊँचा है। इसाकी उन्नीसवीं शताब्दि के भारतवर्ष के अद्वितीय पण्डित भारतमार्तण्ड पण्डित गङ्गूलालाजी आप की तुलना हेमचन्द्र द्रौण सायणमाधव के साथ करते थे।

“भारतीय दर्शन शास्त्रों का इतिहास” (हिन्दू तत्त्वज्ञाननो इतिहास) नामक गुर्जर भाषा के ग्रन्थ में श्रीयुत नर्मदाशङ्कर देवशङ्कर महेता आप के चित्रपर से आपकी बुद्धिमत्ताका अनुमान इस प्रकार करते हैं: - “श्रीमद्वल्मभाचार्यजी से सप्तम आचार्य श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के ग्रन्थों को देखने से मुझे ज्ञात होता है कि इ.स. १६८८ में इस महापुरुष ने तत्त्वदर्शन में बहुत सूक्ष्म विचार किया है। उन की आकृति का चित्र “प्रस्थानरत्नाकर” के मुखपृष्ठ पर दिया गया है। उसके प्रति दृष्टिपात करने से ही ज्ञान होता है कि उनका भव्य ललाट सूक्ष्मविचारोंकी छाया से युक्त है; उन के विशालनेत्र प्रतिवादी के आक्षेपों को दृढ़ मन से स्वीकार करता है; उनकी तीक्ष्ण अग्रयुक्त नासिका आक्षेपों को सूक्ष्मरीति से उड़ा देने की शक्ति दर्शाती है; उनकी सुन्दर धिबुक उनकी अपूर्व दृढ़ता और निश्चयबल को बताती है, और उनकी हाथकी ज्ञानमुद्रा व्याख्यान कौशल स्पष्ट दर्शाती है”।

### सरल जीवन

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के जीवन में अत्यन्त सरलता थी। यद्यपि आपको आधुनिक सजातियों एवं अन्यान्य धर्माचार्यों की तरह सुख के सब साधन सुलभ थे। आपका प्रभाव राजामहाराजाओं पर भी पर्याप्त था। तथापि आप एक क्षण भी मौजशोक में नहीं बिताते थे। आधुनिक समय में जैसे धर्माचार्यों को एवं वैष्णवों को पाश्चात्य वेशभूषा रुचिकर है, वस्त्र भी पाश्चात्य ढंग के ही पहिनते हैं, बोलचाल में भी पाश्चात्यभाषा का प्रयोग करते हैं, उसी तरह उस जमाने में भी लोग करते थे। यह यावन वेशभाषादि श्रीपुरुषोत्तमजी को असह्य लगता था। आप निबन्ध के आवरण भङ्ग में लिखते हैं कि “एतेन मूर्खा अनापद्यपि म्लेच्छादिवेशभाषादिकं रोचयन्ते स्वीकुर्वन्ति च तेऽपि तथेति बोधितम्”।

### परिवार और गोलोकप्रवेश

श्रीपुरुषोत्तमजी का विवाह कहाँ और कब हुआ सो ज्ञात नहीं है। परन्तु इन के यहाँ जो पुत्रों का जन्म हुआ था, वे इनकी अवस्था में अथवा इनके अनन्तर शीघ्र ही गोलोकप्रविष्ट हुए। तब से आप की गादी पर द्वितीय पीढेके वंशज गोरस्वामी आये थे। उन्हीं के वंशज इस समय सूरत की गद्दीपर बिराजमान विद्वद्रत्न गोरस्वामी श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज हैं। आप ही इस समय पूर्वोक्त श्रीबालकृष्णजी की सेवा करते हैं।

दिविजय के अनन्तर श्रीपुरुषोत्तमजी ने अपना नित्यनिवास सूरत में किया। सूरत में ही बिराजमान होकर श्रीबालकृष्णप्रभु की स्वरूपसेवा और नामसेवा की।

स्वरूपसेवा करके प्रभुके विप्रयोगरसका अनुभव किया और नित्यसंयोगरस का अनुभव करनेके लिये विक्रम के संवत् १८२० के अनन्तर अपनी जन्मभूमि गोकुल में ही नित्यलीलाप्रवेश किया।

### श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के प्रतियोगी

यहाँ यह भी बता देना अप्रासङ्गिक न होगा कि श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज के प्रतियोगी पण्डित उस समय भारत के अनेक दिग्गज पण्डित विद्यमान थे। यों तो आप के विरोधी पण्डित बहुत थे, पर विशेष रूपसे उल्लेख करने योग्य सूरत में ही शाक्त पण्डित भास्करराय और शैव पण्डित अप्पय्यदीक्षित थे। प्रस्तुत ग्रन्थ के साथ भास्करराय का कोई सम्बन्ध न होने के कारण उनके विषय में चर्चा करना व्यर्थ है, पर अप्पय्यदीक्षित का परिचय आवश्यक है।

### अप्पय्यदीक्षित

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज जैसे प्रतिभाशाली थे वैसे ही उनके प्रतिपक्षी का होना भी आवश्यक है। अप्पय्यदीक्षित भी अपने जमाने के पण्डितों में विशेष स्थान प्राप्त कर चुके थे। दीक्षितजी के अनुयायियों ने आपको शेष का और शङ्कर तक का अवतार मान लिया था। पर ये सब अन्धश्रद्धालुओं की अतिशयोक्तियाँ हैं। यद्यपि दीक्षितजी कट्टर शैव हैं और इन्होंने शैव भाष्यपर टीका भी लिखी है, तथापि वे शैव दर्शन में मानते न थे। पीछे से वे केवलाद्वैतवादी बन गये थे। उनका जन्म तो वैष्णव माता पिता के उदर से ही हुआ है। आप की पितामही भी वैष्णव की कन्या थी। आपके विषय में मद्रास प्रान्तीय विद्वानों में अनेक आख्यायिका

प्रचलित हैं। उसमें एक यह भी है- “पितामही यस्य तु वैष्णवस्य कन्या, पिताधेतमूर्ध्वपुंड़ी”। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि दीक्षितजी के पिता और पितामही वैष्णव थे, अर्थात् वैष्णव माता पिता की सन्तान होकर भी आप शैव थे।

### जन्म और वंशपरिचय

कांजीवरम् के पास “अडयप्पलम्” नाम का एक छोटासा ग्राम है। वहाँ आचार्यदीक्षित नामक एक विद्वान् ब्राह्मण निवास करता था। वही आचार्यदीक्षित “न्यायचिन्तामणि” नामक ग्रन्थ के प्रणेता हैं। और वे ही यक्षस्थलाचार्यदीक्षित नामसे भी प्रसिद्ध थे। इन की द्वितीय पत्नी वैष्णवकुलतिलक श्रीवैकुण्ठाचार्यवंश्य श्रीरङ्गराजाचार्यकी दुहिता तोतारम्बी थी। तोतारम्बी के साथ आचार्यदीक्षित का विवाह होने के पश्चात् विजयनगराधिपति श्रीकृष्णराज महाराज का आश्रय प्राप्त किया था।

इसी वैष्णवकन्या तोतारम्बी से आप को चार पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, जिस में सबसे बड़ेका नाम रङ्गराजाध्वरी प्रसिद्ध है। रङ्गराजाध्वरी ने अद्वैतविद्यामुक्तरविवरण, अद्वैतदर्पणादि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। रङ्गराजाध्वरी के विषय में नलचरितनाटक में बहुत कुछ लिखा गया है। इन्हीं रङ्गराजाध्वरी के ज्येष्ठपुत्र का नाम अप्पय्यदीक्षित था।

अप्पय्यदीक्षित जैसे प्रसिद्ध विद्वान् के समयनिर्णय के विषय में पण्डितों में बड़ा ही मतभेद प्रचलित है। भट्ट आत्माराम और जयन्तपण्डित आदिका मत है कि अप्पय्यदीक्षित ई. स. १५६४ के पूर्व हुए हैं। ब्रह्मविद्यापत्रिकाकार गानते हैं कि १५५० में अप्पय्यदीक्षित ७० वर्ष के थे। अर्थात् १४८० में जन्म होना चाहिये। पाश्चात्यविद्वान् कहते हैं कि १५२० के पूर्व अप्पय्यदीक्षित थे। महामहोपाध्याय गङ्गाधरशास्त्रीजी का मत भी ब्रह्मविद्यापत्रिकाकार के अनुसार ही है। इस विषयमें और भी कई प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

एक मत ऐसा भी प्रचलित है कि एक बार विजयनगरके महाराज श्रीकृष्णराजको वेंकटाचल पर विश्वजिघास करने की इच्छा हुई। तब अप्पय्यदीक्षितने उन को यह याग काशी में जाकर करनेकी सलाह दी थी। और तदनुसार उन्होंने काशी जाकर विश्वजिघास किया था। उस याग में अप्पय्यदीक्षित भी संमिलित हुए थे। काशी में अप्पय्यदीक्षित का सिद्धान्तकौमुदीकार भट्टोजी दीक्षित के साथ

शास्त्रार्थ हुआ था। यह किंवदन्ती काशी के पण्डितों में प्रसिद्ध है।

इसी विषय में मद्रास प्रान्त के पण्डितों का कथन है कि भट्टोजी दीक्षित सेतुबन्ध रामेश्वर के दर्शनार्थ जाते थे, रास्ते में कांची में ही अप्पय्यदीक्षित के साथ समागम हो गया था और कांची में ही कुछ दिन निवास करके दीक्षितजी से ही ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य पढ़े थे।

किन्तु दाक्षिणात्योंका मत प्रमाणाभाव से मानने योग्य नहीं है। हम समझते हैं काशीस्थ पण्डितों का कथन आंशिक सत्य है। भट्टोजी दीक्षित अप्पय्य के समकालीन नहीं हैं। कृष्णराज ने काशी में विश्वजित् याग किया था और उसमें अप्पय्य का सम्मिलित होना भी निःसन्दिग्ध है। वहाँ भट्टोजी दीक्षित के साथ तो नहीं पर शेष वीरेश्वर के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। और उसी समय इनका समागम पण्डितराज जगन्नाथ कवि के मीमांसागुरु खण्डदेव के साथ हुआ था। और यह भी सम्भव है कि उसी समय भट्टोजी दीक्षित का भी समागम हुआ हो पर यह वार्ता अधिक विश्वसनीय नहीं है। हम यह मानने के लिये तैयार हैं कि अप्पय्य और खण्डदेव का समागम हुआ था। और अप्पय्यने कुछ दिन काशी में निवास किया था और उसी समय अप्पय्यने खण्डदेव को “विधिरसायन” बताया होगा। भाट्टरसायन में लिखा है कि “मीमांसकमूर्धन्येन विधिरसायनकृता” इन शब्दोंसे ज्ञात होता है कि काशी में अप्पय्यने स्वयं विधिरसायन का प्रचार किया था।

अप्पय्यदीक्षित काशी में आये थे और उनको खण्डदेव प्रभृति काशीस्थ पण्डितों के साथ समागम हुआ था, इस विषय में हमारे पास एक प्रमाण और भी विद्यमान है। इ.स. १६५७ में काशी के मुक्तिमण्डप में एक सभा हुई थी। उस में यह निर्णय किया गया था, कि “महाराष्ट्रीय देवर्षि (देवरुखे) ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं। इनके साथ एक पंक्ति में पञ्चद्राविड ब्राह्मण भोजन कर सकते हैं”। इस निर्णय पत्र पर खण्डदेवादि के साथ ही अप्पय्यदीक्षित के भी हस्ताक्षर हैं। यह निर्णयपत्र श्रीयुत पिंपुटकर ने “चितले भट्ट प्रकरण” नाम की पुस्तिका में मुद्रित कराया है। इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि कम से कम इ.स. १६५७ में तो खण्डदेव और अप्पय्य काशी में मौजूद थे। काशी में विधिरसायन की रचना के अनन्तर दीक्षितजी आये थे। विधिरसायन जैसा प्रौढ़ दार्शनिक ग्रन्थ दीक्षितजी ने कम से कम ३० वर्ष की उम्र में बनाया होगा।

पण्डितराज का और इनका समागम हुआ था यह भी निम्नलिखित बाल कवि के एक पद्य से ज्ञात होता है। वह पद्य इस प्रकार है :-

यह विश्वजिता परिधरं सर्वं बुधा निर्जिता

भट्टोजिप्रमुखास्स जगन्नाथोऽपि निस्तारितः ।

पूर्वार्धे, चरने त्रिसप्ततितमस्याब्दस्य सद्भिर्भजि-

द्याजी यश्च विदम्बरे स्वमभजज्ज्योतिः सतां पश्यताम् ।

इस पद्यसे तथा अन्यान्य और कई प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि पण्डितराज जगन्नाथ के साथ दीक्षितजी का समागम हुआ था । पण्डितराज १६५८ के अनन्तर काशी में थे । क्योंकि शहाजहाँ को औरंगजेबने १६५८ ई. में कारागार में बन्द किया था । अर्थात् शहाजहाँ के आश्रित पण्डितराज भी उसी समय काशी गये होंगे । अर्थात् ही १६५७ की सभा के अनन्तर इन दोनों पण्डितों का समागम काशी में होना सम्भव है ।

### ग्रन्थरचना और समकालीन पण्डित

अप्पय्यदीक्षितने पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, साहित्यशास्त्र और शैवमतके अनेक ग्रन्थ निर्माण किये हैं ।

इन के समकालीन पण्डित और कविगण निम्नलिखित हैं -

पं. आनन्दराममखी,

रत्नखरेदीक्षित

ताताचार्य

खण्डदेव

भट्टोजीदीक्षित

शेषवीरेश्वर

पण्डितराज जगन्नाथ

समरपुंगवदीक्षित

नीलकण्ठदीक्षित

राजचूडामणि

वेंकटाध्वरी

सदाशिवब्रह्मोन्द्र इत्यादि

### जीविका उपार्जन

अप्पय्यदीक्षित की जीविका क्या थी ? यह जानने का विशेष साधन हमारे पास विद्यमान नहीं है, तथापि इतना तो ज्ञात होता है कि विजयनगराधीश्वर कृष्णदेवराय के पुत्र नरसूभूपतिके पुत्र वेंकटपतिराय से इनको कुछ जीविका मिली होगी । वेंकटपतिराय ने ही विश्वजित् याग किया था । और उसी याग में दीक्षितजी उनके साथ काशी गये थे ।

### लोकापवाद

अप्पय्यदीक्षितका विवाह कहां और कब हुआ वह ज्ञात नहीं है । पर वेंकटेश्वर प्रेस में मुद्रित कुवलयानन्द की भूमिका देखनेसे ज्ञात होता है कि इनका

किसी विधवा से प्रेम हो गया था और इसी कारण ये जाति से बहिष्कृत किये गये थे । ये कहते थे कि यह मेरी पूर्वजन्म की पत्नी है । अन्त में ये घर छोड़कर उसी पूर्वजन्म की पत्नी के साथ एक शिवालय में रहने लगे थे । कहा जाता है कि ७२ वर्ष की अवस्था में ये अपनी पूर्वजन्म की पत्नी के साथ उसी शिवलिङ्गमें समाविष्ट हो गये । इनका देहान्त विदम्बरम् में हुआ था ।

हमारी समझ से श्रीपुरुषोत्तमजी की युवावस्थामें ये ७० वर्ष के करीब होंगे ।

### प्रहस्तवाद

हम पूर्व ही कह चुके हैं कि श्रीपुरुषोत्तमजी ने प्रहस्तवाद अप्पय्यविरचित शिवतत्त्वविवेक के खण्डनार्थ बनाया है । "प्रहस्त" शब्द का अर्थ होता है "तमाघा" । इस ग्रन्थ का नाम प्रहस्त रखने का एक कारण है । और वह यह है कि अप्पय्यने जानबूझ कर वैष्णवों के प्रति द्वेषभाव होने के कारण शिवतत्त्वविवेक में वैष्णवों की निन्दा की है । विवेकशून्य हो कर शिवतत्त्वविवेक लिखा गया है, इसी लिये "प्रहस्त" नामक वाद की प्रवृत्ति भी योग्य है । प्रहस्तवाद में शिवतत्त्वविवेक के प्रत्येक प्रकरण एवं श्लोकों तथा टीका में उपन्यस्त वाक्यों का शास्त्रीय दृष्टि से विचार किया गया है । खास वेदान्तदर्शन और मीमांसादर्शन के आधार पर ही शिवतत्त्वविवेक की परीक्षा की गई है ।

शिवतत्त्वविवेक के ६४ श्लोक हैं । ये श्लोक "शिखरिणी" वृत्त में रचे गये हैं । इसलिये इसको शिखरिणीमाला भी कहते हैं । शिखरिणीमाला की टीका भी अप्पय्यदीक्षित ने लिखी है उसीका नाम शिवतत्त्वविवेक है ।

शिवतत्त्वविवेक का सङ्क्षेप इस प्रकार है:-

श्लोक संख्या

प्रतिपाद्य विषय-

- १ मङ्गलाचरण । शिव ही ध्येय है । विष्णु ध्येय नहीं है ।
- २ शिव ही परदेवता होने के कारण वही परमतत्त्व है । मूर्तित्रयातीत शिव है ।
- ३ "यमादित्यो न वेद" इत्यादि श्रुतिवाक्यों से सिद्ध होता है कि ब्रह्मादि देवताओंका भी परब्रह्म (अप्पय्य के मत से परम शिव) की स्तुति करने का अधिकार नहीं है ।
- ४ वैष्णवोपासना अवैदिक है, जो शिवकी उपासना नहीं करते उनका जन्म निष्फल है ।

- ५ पूर्व श्लोकमें वैष्णवों की निन्दा करके अब "एष होव साधु कर्म कारयति" इत्यादि श्रुति शिवपरक है ऐसा कहा है।
- ६-७ पूर्वोक्त अर्थ का ही समर्थन किया गया है।
- ८ "नायमात्मा प्रवचन लभ्यः" इस श्रुति में आत्मशब्द शिवपरक है।
- ९ शिवकी भक्ति से ही चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं।
- १० दधीचि ऋषि के शाप से वैष्णवों की बुद्धि नष्ट हो गई है।
- ११ परंतु लोक में शिव की महिमा पर विश्वास नहीं है, प्रत्युत भगवान् नारायण पर विश्वास करते हैं और उसी का आराधन भी कराते हैं, इसलिये परिसङ्ख्या से शिवमहिमा पर विश्वास करने वाले अत्यन्त विरल होते हैं ऐसा प्रतिपादन किया गया है।

**यहाँ उपोद्घातप्रकरण समाप्त होता है।**

**यहाँसे श्रुत्यर्थप्रकरणका प्रारम्भ है**

- १२ शिव ही संसार में सबसे अधिक है, यह सिद्ध करने के लिये आगे उसकी उपाधि और उपाधिप्रयुक्त गुणादिक बताने की इच्छासे शिव को ही उपाधिनिर्मुक्त सिद्ध किया है।
- १३-१४ निरुपाधि ब्रह्म (शिव) भी लोकानुग्रह की इच्छा से कल्पित गुणों से युक्त हो जाता है। वह ब्रह्म माया की उपाधि से युक्त सर्वोत्तर और सगुण है।
- (यहाँ ब्रह्म मायोपाधिवाला है ऐसा सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। युक्तियों वही हैं जो कि शांकर मत के लोग दिया करते हैं, कोई ऐसी युक्ति वा प्रमाण नहीं दिया गया जो अखण्डित हो)
- १५-१७ श्रुतियों का बलाबलपरीक्षण.
- १८ शिवका कारणत्वविचार
- १९-२० कारणत्वप्रतिपादक सब श्रुतियाँ शिव में पर्यवसित होती हैं।
- २१ सब उपनिषदें शिव का ही वर्णन करती हैं।
- २२-२३ वेदोक्त पुरुषसूक्त में भी शिव का ही वर्णन है।
- २४-२८ मान लिया जाय कि पुरुषसूक्त देवतान्तर पर है, तथापि सब वेद रुद्र पर ही हैं।
- २९-३० शिव ही सर्वान्तर्यामी है।

- ३१-३५ नारायणानुवाक विष्णु पर है इस पूर्वपक्षका खण्डन। और सब श्रुतियों में शिव को ही परब्रह्म कहा है ऐसा प्रतिपादन।

**यहाँ श्रुत्यर्थविचार समाप्त होता है  
इस प्रकार पूर्वार्ध समाप्त हुआ।**

## उत्तरभाग

पूर्वभाग में कर्मकाण्ड (पूर्व काण्ड) और उपनिषद् (उत्तर काण्ड) का विचार किया गया है, अब उत्तर भाग में पुराणादि के वाक्योंका विचार है।

- ३६ पुराण सब शिव का ही वर्णन करते हैं।
- ३७ महाभारत शिव पर ही है।
- ३८ रामायण शिवका उत्कर्ष वर्णन करता है न कि विष्णु का।
- ३९ मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र भी शिव का ही वर्णन करते हैं शिव का उत्कर्ष यही एक धर्म है।
- ४० ब्रह्मसूत्रों में शिव को ही ईशान शब्द से प्रमित कहा है। उमापति शिवजी ही परब्रह्म है ऐसा सुत्रकार के हृदयस्थित आशय है।
- ४१ जब ब्रह्मसूत्र ही शिवपर है तब ब्रह्मादिशब्दों शिववाचक क्यों न माने जायें ? अर्थात् ब्रह्मादिशब्द भी शिव पर ही हैं।
- ४२ "शिव" कहने से निरतिशय ऐश्वर्ययुक्त शिवजी का बोध होता है।
- ४३-४४ सर्वाधिक पदार्थ ईशानशब्दवाच्य शिव के अतिरिक्त अन्य नहीं हैं।
- ४५ नारायण जगत्कारण है इस मत का खण्डन।
- ४६-४७ शिवपुराण और शैवागम को जो अप्रमाण कहते हैं उनके मतका निरास।
- ४८ विष्णु पर श्रुतियों का प्राबल्य निरास।
- ४९-५१ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इस त्रिमूर्ति में शिव का ही उत्कर्ष है।
- ५२-५५ गायत्री में भी शिवका ही वर्णन है।
- ५६ द्विजाति में ब्राह्मणों को शिवभजन ही करना आवश्यक है।
- ५७ क्षत्रियों को भी लिङ्गार्चन ही करना चाहिए।
- ५८ वैश्यों का आराध्यदेव शिव ही है। सामान्यतः सब कामनाओं की पूर्ति के लिये शिव का अर्चन करना उचित है।
- ५९ निःश्रेयसरूप अप्राकृत फल प्राप्त करना हो तो वह फल शिवाराधन के बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

देता है, उन सब आकारों को समानरूपसे मानने में वा उन में न्यूनाधिक भावको मानने में कोई अन्तर नहीं है। समान मानेंगे तो भी वे मायिक है और न्यूनाधिक मानेंगे तो भी मायिक तो है ही, उसमें किसी प्रकार का विशेष नहीं है।

अन्य एक ऐसा भी मत प्रचलित है कि मायिक आकारों में विष्णु आदि उत्कृष्ट हैं।

कोई शिव के आकार को उत्कृष्ट मानते हैं।

भेदवादियों का मत है कि ब्रह्म के चैतन्यादि वे भेद ही ब्रह्म है, अन्य जीव हैं।

वस्तुतः ब्रह्म त्रिगुणातीत, माया का नियामक, उपनिषदों से सिद्ध होनेवाला, विरुद्धधर्माश्रय होने से स्वाभाविकतया सर्वाकार, कर्तृ, अकर्तृ है। अब एव भिन्न भिन्नवादों को अवसर प्राप्त नहीं है, न किसी प्रकार का ब्रह्म में दोष सिद्ध हो सकता है। परन्तु अन्धहस्तिन्याय से अनेक वादों से सिद्ध होने पर भी लीला से तत्त्वस्वरूपों के उपासकों को तत्तत्फलदान करने के लिये उन उन रूपों में तारतम्य है। यह सिद्धान्त हुआ।

उपर्युक्त मतान्तरों में पूर्व परिच्छेद में उपाधिपक्ष का निरास कर देने से मायावाद का निरास हो जाता है। भेदवाद श्रुतिसम्मत न होने के कारण उस में प्रतिपादित केवल तारतम्य का ही विचार किया जाता है। उस में महामहिमशालि परब्रह्म है और उस से इतर विभूतिरूप है, अन्यरूप तो विभूति से भी न्यून है।

अब यह विचार किया जाता है कि वह जो महामहिमशालिस्वरूप कहाँ है ?

शिवतत्त्वविवेक के तेरहवें श्लोक में अप्ययदीक्षित कहते हैं कि:-ब्रह्मोपनिषद्, तापनीय श्रुतियाँ, मैत्रायणीयोपनिषद् तथा योगियाज्ञवल्क्य के वाक्य, श्रीभागवत, विष्णुपुराणादि में तथा अन्यत्र भी ऐसे अनेक वाक्य मिलते हैं, जो ब्रह्मविष्णु, शिवसे भी अतीत एक चतुर्थ तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं, वही परमशिव है। वे सब वाक्य शिवजी में पर्यवसित होते हैं।

परन्तु ऐसा कहना विचारशीलता का द्योतक नहीं है। आप जिस तत्त्वको परब्रह्म मानते हैं और उसपर ब्रह्मवाचक वाक्यों को शिवमें पर्यवसित करते हैं वह मानने योग्य नहीं है। क्योंकि आप का ब्रह्म माया की उपाधि से आच्छादित है। परब्रह्म सोपाधिक नहीं है। आप जिस को ब्रह्म कहते हैं वह सोपाधिक होने के कारण उराकी महिमा के जितने वाक्य है वे सब के सब माया में पर्यवसित किये जाते हैं। यही आपकी विचारशून्यता का एक खासा प्रमाण है। मायोपाधिक ब्रह्म की महिमा वेदपुराणादि में नहीं है, किन्तु निर्व्याज परब्रह्म की ही महिमा का वर्णन वहाँ मिलता है।

आप मायावाद को मानकर सगुण ब्रह्म को जगत् का कारण मानते हैं। यह सिद्धान्त भी शास्त्रसम्मत नहीं है। क्योंकि शास्त्रों में निर्व्याज ब्रह्म को ही जगत्कारण कहा है। "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः" इत्यादि सृष्टि का प्रतिपादन करनेवाले वाक्यों में निर्व्याज ब्रह्म ही कारण रूपसे परिगृहीत है। इस विषयपर विद्वन्मण्डनादि ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है, अतः यहाँ विचार नहीं किया।

शाङ्कर भाष्य में भी कहा है कि - "विष्णोर्व्यापनशीलस्य ब्रह्मणः परमात्मनः, वासुदेवाख्यस्य प्रकृतं पदं स्थानं सत्त्वमित्येतत्पदमाप्नोति" अर्थात् व्यापनशील जो सर्वत्र व्याप्त है वही परमात्मा परब्रह्म वासुदेव श्रीविष्णु का ही प्रकृत-सर्वश्रेष्ठ स्थान सत्त्व है।

इसी प्रकार "शास्त्रों में शिव, शम्भु, रुद्र, ईशान, महेश्वर इत्यादि शब्द मायोपाधि से युक्त परमशिव के ही वाचक हैं" ऐसा शिवतत्त्वविवेक में कहा है। हम यहाँ यह बता देना चाहते हैं कि अप्ययदीक्षित को ऐसा कहने का प्रयोजन क्या है ? उनका प्रयोजन वराहपुराण के इस वाक्य से है। वराहपुराण में कहा है कि "नारायणः शिवो विष्णुः शङ्करः परमेश्वरः। एतैस्तु नामभिर्ब्रह्म परं प्रोक्तं सनातनम् ॥" इस श्लोक का नारायणशब्द शिववाचक है, विष्णुशब्द शङ्कर का वाचक है और यही परम ईश्वर यानी परम शिव है ऐसा अर्थ दीक्षितजी करते हैं। परन्तु उनका यह मन्तव्य दोषशून्य नहीं है। वे जो अर्थ करते हैं वह गौणी वृत्ति से होता है। जैसे पूर्वकाण्ड की श्रुतियों में स्तुतिरूप से कहा गया है कि "यजमानः प्रस्तरः" "यजमानो वै पुरोडाशः" इत्यादि वाक्यों में प्रस्तर का कार्य यजमान से लेने को नहीं कहा और न यजमान को पुरोडाश की तरह शृणु इत्यादि है। पर इन वाक्यों का अर्थ यह होता है कि जैसे प्रस्तर और पुरोडाश यज्ञसाधन हैं वैसे ही यजमान भी यज्ञ का साधन है। अतः यजमान गुणीभूत है। यहाँ यजमान की स्तुति यागसाधनत्वरूप से की गई है। इसी तरह ब्रह्म की भी साधक के विशेष के अनुग्रहादि साधन (गुण) से शिवादि शब्दों से स्तुति की गई है। अथवा यहाँ सारूप्यनिबन्धना भी मान सकते हैं। जैसे "आदित्यो यूपः" यूप आदित्य है। "यजमानो यूपः" यजमान यूप है। इत्यादि वैदिक वाक्यों में अन्नजनित तेजस्वित्वऊर्ध्वत्वादिरूप से आदित्य और यजमान शब्द यूप में गौणवृत्तिक हैं, उसी तरह अनन्तरूप, परब्रह्म का जो शिवरूप से आकार है वही तुरीयरूप शिव का भी आकार है ऐसी निबन्धना होती है।

अमर कोश में "शिवः शूली महेश्वरः, ईश्वरः सर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः" इत्यादि पर्यायवाचक शब्द कहे हैं। इस से सिद्ध होता है कि ईशानादि शब्द शिव में ही रूढ हैं, इन को आप कैसे परब्रह्म में रूढ मानते हैं ?

इस शङ्का का समाधान श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज इस प्रकार करते हैं-

वस्तुतः सर्व शब्द सर्वार्थ वाचक है ऐसा पातञ्जल महाभाष्य में कहा है। इसका मतलब यह है कि यावत् शब्द जो सब कुछ हो सकता है उसके वाचक हैं। जो सब कुछ हो सकता है वह परब्रह्म ही है। अर्थात् शिवादि शब्दों से भी परमात्माका ही बोध होता है। कोशकार ने इन शब्दों को शिवजी के अर्थ में रूढ माना है उसका कारण यह है कि कोशकार ने शक्तिसंकोच करके किसी निश्चित पदार्थ के पर्यायवाचक शब्द कहे हैं। वास्तविकरूप से सब शब्द परब्रह्म के वाचक ही हैं।

मीमांसक के मत से भी शब्दों की शक्ति धर्म ही में मानी है। धर्मवाचक भाव शब्द सत्ता और व्यापकत्व का बोध कराता है। अर्थात् घटादि शब्द सत् और व्यापक के धर्म में प्रवर्तमान होते हुए अपना व्यवहारक्षमत्व सिद्ध करने के लिये उस धर्म से पुरस्कृत धर्मी जो सत् और व्यापक है उसका ज्ञान कराते हैं। वैसा धर्मी परब्रह्म ही है न कि अन्य कोई। इस से भी सिद्ध होता है कि सब शब्द भगवद्वाचक ही हैं। शब्दमात्र प्रणव की विकृति होने के कारण सब शब्दों से परब्रह्म का ही बोध होता है। अत एव कहा है कि "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" अर्थात् सम्पूर्ण वेदों से मैं ही वेद्य हूँ। सब वेद जिस के पद को मानते हैं। इत्यादि वाक्यों से भी पूर्वोक्त ही अर्थ सिद्ध होता है। ईशान, ईश्वर, सर्वेश्वर, परमेश्वर, महेश्वर, शम्भु, शिव, शङ्कर आदि सब शब्द मुख्यवृत्ति से परब्रह्म में ही पर्यवसित होते हुए योगरूढ हैं। शिवजी के अर्थ में या अन्य किसी अर्थ में उनका जो प्रयोग होता है वह भी भगवल्लीलासाधन व्यवहार के लिये ही शक्तिसंकोच करके होता है। जैसे कि किसी बालक का शिवेश्वर, नरसिंह आदि नाम पिता आदि रख देते हैं उसी तरह से व्यवहार्य ही किसी प्रकार शक्तिसंकोच से पूर्वोक्त शब्दों का अर्थ किया जाता है।

और जिस प्रकार अब्जयोनि शब्द का अर्थ "जो जगत्रय जब महाप्रलय में जलमग्न हो गये थे तब नारायण के नाभिकमल से जो ब्रह्माजी निकले" इत्यादि वाक्योक्त ब्रह्मा के अर्थ में है- वही अर्थ कोशकार भी "अज शब्द वेद्या (ब्रह्मा) और कामदेव के अर्थ में है" ऐसा कहता है। अब यदि कोश के प्रमाण के अनुसार अज शब्द का अर्थ देवता आदि के अर्थ में व्यवहारों की सिद्धि के लिये बनाया गया है। इसी प्रकार ईशानादि शब्द भी हैं, ऐसा श्रुत्याभास ही उन शब्दों का है। इसे

समाख्यावादियों का मत भी निरस्त हो जाता है।

वेदोक्त पुरुषसूक्त में भी शिवका ही वर्णन है यह भी कहना आस्तिक जनता को धोखा देना है। पुरुषसूक्त में साक्षात् विष्णु का ही वर्णन है न कि शिव का, इस विषय में श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने विस्तृत विवेचन किया है। वह राब स्थानाभावसे यहाँ अङ्कित नहीं कर सकते। और इस विषय में अधिक कहने की भी क्या आवश्यकता है ? सब कोई जानता है कि पुरुषसूक्त विष्णु का ही वर्णन करता है।

काल के अधिष्ठाता भी भगवान् ही हैं न कि शिवजी।

"नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः" इस श्रुति में पंचमी तत्पुरुष समास का आश्रय करके कहते हैं कि नारायण से परे जो तत्त्व है ब्रह्म है। यही लोगों को धोखा देना ही है। पंचमी समास करने में यहाँ कोई विनिगमक (प्रमाण) दीक्षितजी नहीं दे सकते।

अप्पय्यदीक्षित का कहना है कि गीता में भगवान् वासुदेव ने जो स्वरूप पार्थ-अर्जुन-को बताया था, वह स्वरूप शिवजी का था। और इसका प्रमाण यह कहा जाता है कि "दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्।" इस वाक्य में ईश्वरका रूप बताया ऐसा कहा है। अर्थात् ईश्वरशब्द महादेववाचक होने के कारण यह सिद्ध होता है कि वह रूप महादेवजी का ही था। अब पाठक इस बात को स्वयं समझ सकते हैं कि आस्तिक जनता की आँख में धूल झोंकने का कैसा क्षुद्र प्रयत्न किया गया है ? दीक्षितजी का इस अनुचित आक्षेप का प्रत्युत्तर निम्नाङ्कित प्रकार से श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजने दिया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि "दृष्टुमिच्छामि ते रूपम्" अर्थात् अर्जुन प्रार्थना करता है कि भगवन् ! मैं आपका स्वरूप देखना चाहता हूँ। अर्जुन की प्रार्थना भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के ही स्वरूप के दर्शनार्थ की गई थी। और उन्होंने ने अपना ही विराटरूप बताया है। खैर, यदि आप के सन्तोष के लिये "दुष्यतुदुर्जनन्याय" से मान भी ले कि भगवान् ने शिवजी का रूप बताया तो भी हानि क्या है ? आप के कथन से तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। उनकी सामर्थ्य कि उन्होंने अपने में ही सारे ब्रह्माण्ड के साथ ही शिवजी को भी बताया। अर्थात् जैसे इतना बड़ा ब्रह्माण्ड उनके स्वरूप में स्थित है वैसे ही शिवजी भी उन्हीं के स्वरूप में स्थित हैं।

जिस प्रकार यह कहना कि गीता में शिवजीस्वरूप का विराटरूप से दर्शन कराया क्षुद्रता है, उसी तरह यह कहना भी कि महाभारतादिपुराणों में शिवजी का

ही वर्णन है। अद्वारहों पुराण में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का ही यशोवर्णन है।

आगे चलकर गायत्री के विषय में दीक्षितजी ने प्रलाप किया है। दीक्षितजी अपने को स्वयं आस्तिक सिद्ध करना चाहते हैं पर शिवतत्त्वविवेक में आपने जो बातें लिखी है वे सब आपके प्रचण्ड पाण्डित्य को कलङ्कित करती हैं। शङ्कराचार्यजी ने भी गायत्रीभाष्य लिखा है उस में भी उन्होंने यह नहीं कहा कि गायत्रीमन्त्र शिवजी की स्तुति करता है। ये महाशय गायत्री को भी शिवपरक सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। दीक्षितजी ने इसमें भी सुबह की खाई है। श्रीपुरुषोत्तमजीने गायत्री की व्याख्या कारिकाओं में लिखी हैं। प्रहस्तवाद के पाठकों को उचित है कि गायत्र्यर्थ सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन करें। गायत्री में साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम के ही स्वरूप का प्रतिपादन है। परब्रह्म ही सर्वश्रेष्ठ होने से वेदवृक्ष का बीज गायत्री से भी अतिरिक्त किसी अन्य तत्त्व का प्रतिपादन किस प्रकार होगा ?

अन्त में श्रीपुरुषोत्तमजीने यही सिद्ध किया है कि वेद और पुराणादि में निरुपधिक महामहिमशाली परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के बिना अन्य का प्रतिपादन नहीं किया गया। परब्रह्म सर्वाकार है। तथापि उसका मुख्य स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण ही है, अन्य स्वरूप विभूतिरूप है। विभूतियों में भी शिव मुख्य विभूति है। यही सकल शास्त्रों का निर्णय है।

इस प्रकार भ्रान्तशैवनिराकरण प्रकरण को समाप्त करके अनन्तर मूलरूप का निर्धार किया गया है। श्रीमदाचार्यचरणों ने कहा है कि आदिमूर्ति श्रीकृष्ण ही है।

श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज इस विषय को सुस्पष्ट करके प्रतिपादन करते हैं। शङ्का होती है कि मूलरूप सर्वाकार है और लीलावतार अनेक प्रकार के होने से गोपालतापिनी, रामतापिनी, नृसिंहतापिनी आदि उपनिषदों में तत्तत् अवतारों का मूलरूप से प्रतिपादन किया है। इससे सिद्ध होता है कि वे सब स्वरूप तुल्य हैं। तब आप कैसे कहते हैं कि श्रीकृष्ण ही मूलस्वरूप है ?

इस शङ्काका निर्णय आपने अनेक प्रमाण और अकाट्य युक्तियों से किया है। मूलस्वरूप का निर्णय करते समय श्रीपुरुषोत्तमजीने रामतापिनी, नृसिंहतापिनी आदि उपनिषदों और पौराणिक कथाओं का विशद रूपसे विचार किया है।

अन्त में ग्रन्थसमाप्ति करते हुए आप कहते हैं कि वैष्णवों के मार्ग में खलपुरुषों ने जो कीचड़ फेंका था वह श्रीवल्लभाचार्यमतानुवर्ती, और उन्हीं के दासानुदास पुरुषोत्तमने हटाकर वैष्णवों का मार्ग साफ सुथरा कर दिया है। इस वाक्य से श्रीपुरुषोत्तमजी की सरलता भी स्पष्ट रूप से दीखाई देती है।

## पण्डितकरभिन्दिपालवाद

प्रहस्तवाद का ही संक्षेप पण्डितकरभिन्दिपालवाद में किया गया है। यह छोटासा ग्रन्थ भी उपादेय है। इस ग्रन्थ की समाप्ति में दुर्गा और गणपति आदि को भी जो लोग त्रिगुणात्मक कहते हैं उस का भी निर्णय किया गया है यही विशेषता है।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका के माघ १९८३ के अंक में पं. शिवदत्त शर्मा का "श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय" शीर्षक लेख छपा था। लेखकने आधुनिक एक कवि-जिनका नाम शङ्करलालजी था-के एक संस्कृतनाटक का परिचय कराया था। प्रस्तुत लेख एवं नाटक का तात्पर्य यह है, कि वेदप्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण शिवभक्त थे। अतः वैष्णवों को भी उचित है कि वे विष्णुभक्ति एवं वैष्णव चिह्नों-तुलसीकाष्ठमाला, ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि का परित्याग कर शिवभक्ति में तन्मय हो जाना चाहिये। उक्त नाटककार और नाटक के परिचायक महाशयों का कहना है कि हरिवंश में श्रीकृष्ण को शिवभक्त कहा है। जो लोग श्रीकृष्ण के शिवभक्त होने में सन्देह करते हैं उनको प्राचीन शास्त्रों का ज्ञान नहीं है अर्थात् वे लोग मूर्ख हैं, शास्त्रों का रहस्य समझ नहीं सकते। साथ ही नाटककार-टीकाकार पं. हाथीभाई शास्त्री एवं नाटक के परिचायक पं. शिवदत्तजी का कथन है कि यह नाटक आधुनिक समय में होनेवाले साम्प्रदायिक झगड़ों को दूर करने के लिये लिखा गया है। मेरी समझ से तो यह नाटक साम्प्रदायिक झगड़ों को उभाड़ने के उद्देश्य से ही लिखा गया है। इस नाटक का सूत्रपात किस प्रकार हुआ, उसका वर्णन पं० हाथीभाईने स्वयं ही भूमिका में लिखा है - "एक समय नवानगरके जामकुलावतंस नरेन्द्र रणजीतसिंहजी और मोरबी नरेश प्रवास से लौटते हुए वीरमगाम में साथ हो गये और रेल में चौकानेर जंकशन तक साथ साथ यात्रा करते रहे। मोरबी नरेशने विलायत यात्रा नहीं की थी, और उनका रहनसहन विशेष रूप से प्राचीन शैली का था। उन्होंने बात ही बात में जामसाहेब से कहा कि आप तो विलायत हो आये हैं, क्या वहाँ के परिचयसे स्वधर्माचरण त्याग दिया ? कंठी तिलक आदि आपके शरीरपर नहीं हैं। जामसाहेबने उत्तर देते हुए कहा, कि, क्या आप कंठी तिलक धारण करने को ही धर्म समझते हैं ? मोरबी नरेन्द्र यह जानते थे कि जामसाहेब यदुवंशी होनेपर भी शिव के उपासक हैं, अतः वे बोले कि आपने तो श्रीकृष्ण के वंशमें जन्म लिया है; अतएव आप को भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करना योग्य है। इसपर जामसाहेब ने कहा कि, हाँ आप का वचन सत्य है, परन्तु मैं उनकी भक्ति



करता हूँ जिनकी भक्ति स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र किया करते थे'।

जामसाहब के आश्रित पं.हाथीभाईने अपने अन्नदाता के वाक्यों का समर्थन करने के लिए शङ्करलालजी को उभाडा और उनसे श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय नाटक लिखवाकर उस पर स्वयं टीका लिखी। साथ ही वैष्णवों पर शास्त्र का रहस्य न जानने का दोषारोपण करते हुए अपने आपको शास्त्रोंका विशेषज्ञ सिद्ध करने का कुत्सित प्रयत्न किया है। हम को पं० हाथीभाई शास्त्री के प्रति व्यक्तिगत रूपसे कोई द्वेष नहीं है। वे वृद्ध हैं और संस्कृत भाषा के गण्यमान्य पण्डितों में गिने जाते हैं इसलिये वे हमारे लिये श्रद्धेय हैं। परन्तु हमारी श्रद्धा का यह अर्थ नहीं हो सकता कि हम उनके अनुचित कार्य की आलोचना न करें। यदि पं० हाथीभाई शास्त्री यह कहने का दावा रखते हैं कि जो लोग शास्त्रज्ञ नहीं हैं वे ही शिवाराधन नहीं करते, तो हमको भी कहने का पूर्ण अधिकार है कि शास्त्रीजी महाराज आप कृपाकर हमारे साथ बैठकर इस विषय का निर्णय करिये। न हम को किसी की साक्षी की आवश्यकता है, और न मध्यस्थ की। आप और हम बैठकर इस का विचार कर सकते हैं। पर शर्त यह है कि विचार शास्त्र की दृष्टि से होगा। परस्पर विरोधिवाक्यों का निर्णय मीमांसा के अनुसार किया जायेगा। और यदि आप को हमारे साथ बैठकर निर्णय नहीं करना है तो आप प्रहस्तवाद का ही अध्ययन करिये। आप को ज्ञात हो जायेगा कि वास्तविक तत्त्व क्या है? किस प्रकार शास्त्रीय विचार किया जाता है? मुँहसे कह देने मात्र से कोई मूर्ख या विद्वान् नहीं माने जाते। उनके कार्य ही योग्यता का परिचय करा देते हैं। यदि आप शास्त्रीय दृष्टि से इस विषय की मीमांसा करते तो उसपर अन्य विद्वानों को भी विचार करने का अवसर प्राप्त होता। आपने टीका में इधर उधर वाक्यों का सङ्ग्रह मात्र किया है न कि विचार। इसीलिये हम को कहना पडता है कि आप इस विषय पर फिर से विचार करिये, और इस वृद्धावस्था में अब अपनी करतूतों का सिंहावलोकन करके जो भूलें पहलें एक बार हो गई हैं उनको सुधारिये।

हमारी समझ से तो श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदयनाटक की रचना करवाने में और उसपर स्वयं ही टीका लिखने में पं० हाथीभाई का एक दूसरा उद्देश्य होना चाहिये। और वह उद्देश्य यह भी हो सकता है, कि यह पुस्तक शारदापीठाधीश्वर माधवतीर्थ और वैष्णवों के बीच जिस समय विवाद उत्पन्न हो गया था, उसी समय यह पुस्तक तैयार की गई। इससे साफ जाहिर होता है कि माधवतीर्थ और उसके समर्थक हाथीभाई आदि के पास कोई शास्त्रीय प्रमाण न होने के कारण इस नाटक की रचना

करके जनता को धोखा देने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु स्मरण रहे कि अब भारतीय जनता आप के भुलावे में नहीं पड सकती। अब दिन पर दिन प्राचीन साहित्य की खोज करके प्रसिद्ध करने का प्रयत्न बढ़ता जा रहा है। आप के कल्पित नाटक की अपेक्षा सुशिक्षित जनसमाज में डॉ. भाण्डारकर आदि के शैव और वैष्णवधर्मों के विषय में गवेषणापूर्ण लेख एवं पुस्तकें अधिक विश्वसनीय मानी जाती हैं। यदि आप सहृदयता के साथ शैव

और वैष्णवों के विषय में कुछ भी जानना चाहते हैं तो अब जो प्राचीन साहित्य प्रकाशित हो रहा है उसका सूक्ष्म दृष्टि से मीमांसा की परिपाटी के अनुसार अध्ययन करिये।

### उपसंहार

इस ग्रन्थको छपवाने में मेरे मित्र पं. वसन्तरामशास्त्रीजी ने बहुत परिश्रम किया है। आप के कार्यों से वैष्णवाचार्य और वैष्णवजनता भली प्रकार परिचित है। इस ग्रन्थ की भूमिका लिखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है यह भी पं. वसन्तराम शास्त्रीजी की ही कृपा का फल है।

अन्त में मैं वैष्णव जनता से विशेष विद्वत्समाज से प्रार्थना करता हूँ कि इस समय जो साम्प्रदायिक साहित्य प्रसिद्ध हो रहा है उसका अध्ययन अध्यापन में यथेष्ट उपयोग होना चाहिये। जब तक सम्प्रदाय में अध्ययन अध्यापन और विद्वत्सम्मान के प्रति उदासीनता रहेगी तबतक सम्प्रदाय की उन्नति की आशा करना गगनकुसुम की आशा के समान है।

